Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORMA
1917-20 G.K.U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111134

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"MANORAMA" REG. No.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलङ्कार १] कार्तिक १९७२ [ध्वनि १

111134

मनोरमा

111384

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०.....
आगत सं०.....
तिथि०.....
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची।

[१] मनोरमा-स्वागत [लेखक, कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय] ... १

[२] प्रारम्भिक निवेदन २

[३] हिन्दी-कादम्बरी ३

[४] मोहिनी १०

[५] शरद्वर्णन [ले० कविवर पं० वासुदेव उपाध्याय] १६

[६] भास और शूद्रक [ले० पण्डित जनार्दन भट्ट, एम. ए.] १८

[७] हिमगिरिवर्णन २०

[८] चन्द्रगुप्त [ले० पण्डित हरिहरसुरूप शास्त्री, साहित्यभूषण] ... २३

[९] भारतवासियों का साम्प्रतिक युद्ध के प्रति कर्त्तव्य [ले० कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय] २४

[१०] श्रीदत्तात्रेयजी के २४ गुरु [ले० साहित्योपाध्याय, पण्डित शिवदत्त त्रिपाठी, काव्यतीर्थ]... ... २५

[११] शरद्वर्णन [लेखक "कुमुद"] ... २७

[१२] विविध विषय २७

[१३] पुस्तक-परिचय ३०

[१४] मनोरम श्लोक [ले० बाबू गङ्गाशरण गुप्त] ३१

[१५] प्रार्थना ३२

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित हुवा करेगी।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख आदि के प्रकाश करने न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें, और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम कार्यालय, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहियें।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं छापे जायेंगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायेंगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकेगा।

आवश्यकता है।

१—सर्वत्र ऐसे एजण्टों की, जो मनोरमा का प्रचार करें। कमीशन माकूल दिया जायगा।

२—एक मास्टर की, जिसे केवल इंगलिश में ग्रेजुएट, या अण्डर ग्रेजुएट की जैसी योग्यता हो। वेतन २०) से ३०) तक योग्यतानुसार दिया जायगा। प्रार्थना-पत्र इस पते से आना चाहिये—

मैनेजर,
मनोरम-कार्यालय,
मण्डी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

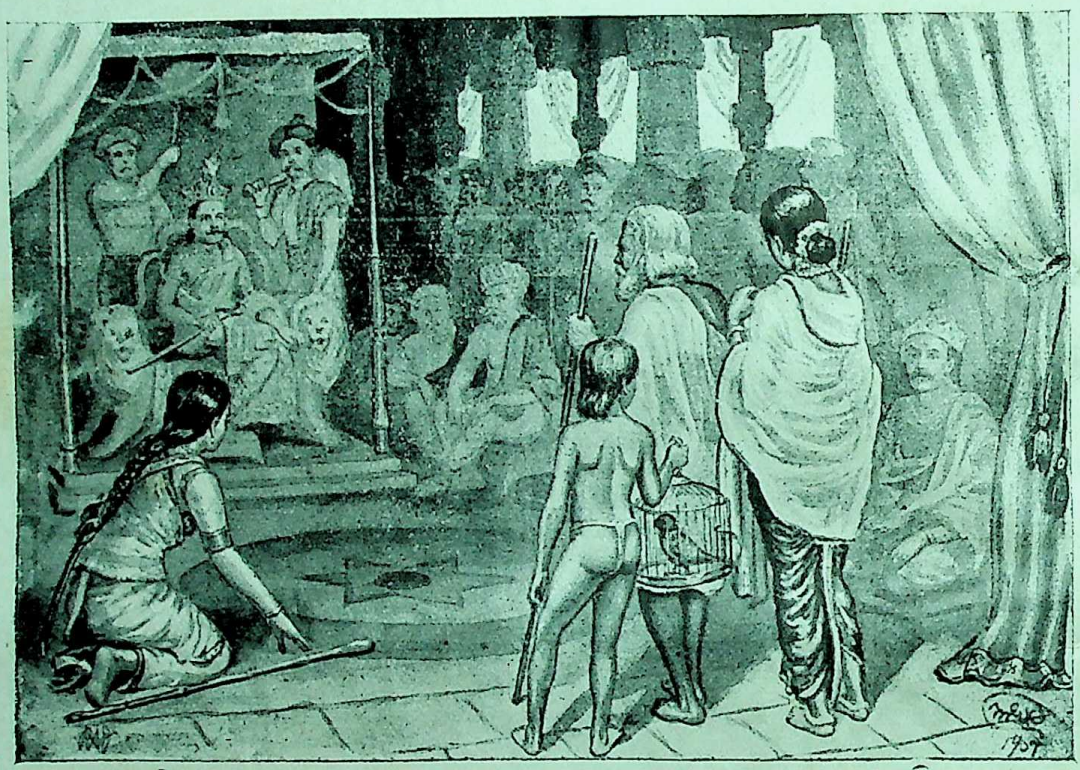

शुकशूद्रकपरिचय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्रशाला प्रेस, पूना ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | कार्तिक १९७२ | ध्वनि १

1915

मनोरमा-स्वागत ।

(१)

मनोरमे ! तेरि समान मारमा
लेके जनों के मनको मनोरमा ।
मनोरमा शब्द मनोरमातमा
मनोरमा झूँट जँचे मनोरमा ॥

(२)

न नाम ही केवल है मनोरमा
यथार्थ तू है जग में मनोरमा ।
मनोरमा ने हित मध्यलोक के
मनोरमा रूप धरा मनोरमा ॥

(३)

गुथी गुणों से बहुरीतिशोभिता
हिता ध्वनी में, रस-भाव-भूषिता ।
मिताक्षरा, अर्थगुरू, अदूषिता
जिता ह तोंसों कविता व* कामिनी ॥

(४)

रसीलि बाणी सुन कोकिला लजैं,
भजैं मराली पद-चाल देख के ।
हिरास मानैं कमलादि हासते,
न तेरि वक्रोक्ति तुला सुधा करै ॥

(५)

करैं सभी स्वागत सुस्थचित्त से
मनोरम-स्वागत हो मनोरमे ।
चिरायु हो तू जग में मनोरमे
प्रसन्नकीर्ती रह चित्त लोक के ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

कवित्व-कल्पद्रुम की तु मञ्जरी,
विचार-वारीरुह की तु दीर्घिका।
गुणी कि तू मानसराजहंसिनी,
मनोरम-स्वागत ते मनोरमे॥

(७)

तु है अद्यिवातम-भानु दीधिति,
अपूर्ववार्ता-कुमुदों कि चन्द्रिका।
विरोधि उल्लूजन को दिनद्युति,
मनोरम-स्वागत ते मनोरमे॥

(८)

करो सुमूर्ती हृदये* विचारणा,
सुवर्णमाला बिच नैन तेरि हो।
गुणीजनों के सब अङ्ग में तुझे
मिले जगः† स्वागत ते मनोरमे!

(९)

विकास तेरा सब देश बीच हो,
प्रकाश तेरा सब काल सिद्ध हो।
निवास तेरा सुमनों की बुद्धि हो,
सभी करें स्वागत ते मनोरमे॥

(१०)

मनोरमे! तू रमणार्थ निर्मिता,
रमापती के चरणों समर्पिता।
कृपालु पद्मायुत "वासुदेव" भी,
मनोरमा-स्वागत को करे सदा॥

वासुदेव उपाध्याय

प्रारम्भिक निवेदन।

परमदयालु परमेश्वर को अनेकानेक धन्यवाद है जिसके अपार कृपाकटाक्ष से आज हम, आप जैसे हिन्दी-प्रेमी सज्जनों की सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य-सुख अनुभव कर रहे हैं।

यह पहिलेही कैसे कहा जा सकता है कि हिन्दी-सेवा-रूपिणी परीक्षा में हम उत्तीर्ण हो सकेंगे या नहीं?

हमें अपनी योग्यता से तो यह आशा है नहीं कि हम उसके किसी अंश में भी फ़र्स्ट डिवीज़न में क्या थर्ड डिवीज़न में ही उत्तीर्णता प्राप्त कर सकें और आशा हो भी कैसे सकती है। हमें कुछ विद्या नहीं है। सम्पादकों को सभी विषयों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हमें एक विषय का भी पूरा ज्ञान नहीं।

एक आध छोटी मोटी पुस्तक के सिवा हम अपनी अयोग्यता के कारण आज तक हिन्दी में कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी नहीं लिख सके हैं। और तो और हमें इसमें भी सन्देह है कि हम सम्पादक-पद के भार को भी भली भाँति जानते हैं या नहीं? ऐसे अतुलनीय भार के जुए में हम जैसे अनभिज्ञों का एकदम जुत जाना हमारे इस विचार को प्रमाणित करता है।

हमें आश्चर्य है कि सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ने क्या देख हमारे उत्साह-प्रवाह को ऐसे कठिन कार्य में प्रवाहित किया है।

निःसन्देह—

"करेण वाञ्छेव विधुं विधर्तुम्" की तरह से हमारा उत्साह है। तथापि माता गरीयसी है। वह हम जैसे कुपूतों की सेवा को भी स्वीकार ही कर लेगी। यही समझ यह साहस किया जाता है।

ऐसा करने के लिये, सुयोग्य लेखकों, कवि-वरों तथा सम्पादकों की असीम कृपा ने हमें और भी बाध्य कर दिया।

कई सुलेखकों और सुकवियों ने तो पहिले ही से लेख और कविता भेजने का वचन दे हमारे उत्साह को दुगना कर दिया है। हमारे पास इतने योग्य शब्द नहीं जिनसे कि हम, संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय विद्वान् कविवर

---

* हृदये = हृदय में
† जगः = स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित श्रीवासुदेवजी उपाध्याय आदि महानुभावों की कुछ भी प्रशंसा कर सकें!

पत्रपत्रिका-सम्पादकों का भी हम धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने कार्यालय की चिट्ठी को अपने अमूल्य पत्रों में प्रकाशित कर हमें कृतज्ञ बनाया है। हम कृतघ्नी समझे जायँगे जो ज़िला मजिस्ट्रेट साहिब का नाम भी सधन्यवाद न प्रकाशित करें। आपही की कृपा से हमें आप लोगों की सेवा करने का अधिकार मिला है।

हमसे पूँछा जायगा कि—

(१) पत्रिका का उद्देश्य क्या होगा? और (२) अच्छी अच्छी सर्वगुणसम्पन्ना अनेक पत्रिकाओं के होते हुवाते इसके प्रकाशन की क्यों आवश्यकता हुई?

पहले प्रश्न का उत्तर यहाँ देते हुए हमें डर लगता है। इसलिये नहीं कि उद्देश्य नियत नहीं किया गया है, किन्तु इसलिये कि उद्देश्य बड़ा कठिन और दुःसह्य है। उसके साधन में हम जैसे अल्पज्ञ उपयुक्त नहीं। उद्देश्य है—

"संस्कृत के विद्वानों में हिन्दी का प्रचार करते हुवे हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करना"

संस्कृत के पण्डितों में हिन्दी का प्रचार करना कोई सहल काम नहीं है। हम इसे बड़ा कठिन काम समझते हैं। संस्कृत के पण्डितों की उपाधिधारणी संख्या तो अभी अंगुलियों परही गिनने लायक़ है, जिसका बेचारी दीना हिन्दी की ओर ध्यान है। वैसे तो सभी पत्रिकाओं का किसी न किसी प्रकार हिन्दी साहित्य की उन्नति करना उद्देश्य है तथापि यदि हम भूलते नहीं हैं तो भारत में हमारा निश्चित उद्देश्य भी एक निराला ही उद्देश्य है।

बस यही अन्तर दूसरे सवाल को भी अनायास ही हल करता है।

इसी उद्देश्य के साधनार्थ "हिन्दी-कादम्बरी" और "हिन्दी-कुमार-सम्भव" इस संख्या के साथ प्रारम्भ किये जाते हैं।

आशा है कि ये विद्वानों को पसन्द आयेंगे।

अब हम पाठकों से क्षमा चाहते हुवे इस निवेदन को समाप्त करते हैं।

हिन्दी-कादम्बरी।

(१)

इसी भारतवर्ष में इन्द्र के समान एक शूद्रक राजा था। सारे के सारे राजा इस की आज्ञा को शिरोधार्य्य समझते थे। चारों समुद्रों तक इसी का राज्य था,—या यूँ कहना चाहिये कि चारों समुद्रों तक सारी की सारी पृथ्वी का यही राजा था। इसके तेज और प्रेम ने सभी निकटवर्ती राजाओं को नम्र कर दिया था। यह सार्वभौम के चिह्न भी धारण किये हुये था।

इसने विष्णु भगवान के समान हाथ में शङ्ख चक्र भी धारण किये थे, अन्तर सिर्फ़ इतना ही था कि शूद्रक के हाथ में शङ्ख-चक्र की रेखा थी, और विष्णु के हाथ में साक्षात् शङ्ख-चक्र थे। यह शिव की तरह मन्मथ (इन्द्रिय) को भी जीतने वाला था। स्वामिकार्तिक के समान इसकी शक्ति (सामर्थ्य) सफल होती थी, ब्रह्मा के समान राजहंसों का विमान (तिरस्कार) किया करता था। यह (शूद्रक) समुद्र के समान लक्ष्मी (शोभा) का स्थान था, या यूँ कहना चाहिये कि संसार की शोभा इसी से उत्पन्न हुयी थी। इसने गङ्गा महारानी के प्रवाह समान भगीरथ-पथ का भी अनुसरण किया था। भगीरथ ने स्वर्ग से गङ्गा को लाकर अपने बड़ों का उद्धार किया था, इसने "तर्पण श्राद्धादि" द्वारा अपने बड़ों का उद्धार किया था, उन्हें स्वर्ग-प्राप्ति करायी थी। शूद्रक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के समान, प्रति दिन उदय (धनादि वृद्धि) ही को प्राप्त करता रहता था। इसने सुमेरु की बराबरी भी की थी। बस अन्तर इतना ही था कि सुमेरु पर्वत की पादच्छाया (पास के पर्वतों) को देवता सेवन करते हैं और इसकी पादच्छाया (पाद-कान्ति) को सकल प्राणी सेवन करते थे। इस के तेज का आदर करते थे-इसकी सेवा किया करते थे।

यह, दिग्गजों की भी समानता करता था, या यूँ कहना चाहिये कि यह दिग्गजों से भी किसी दशा में कम न था, दिग्गजों का हर समय दान (मद) के जारी रहने से कर (सूँड) गीला रहता है, इसका हर समय दान के करने से कर (हाथ) गीला रहता था। युद्धादिकों को भी शूद्रक अपने निराले ही ढङ्ग से किया करता था।

यह समस्त शास्त्रों का दर्पण था। यज्ञों का करने वाला था, शिल्पादि कलाओं का जन्मदाता था, धीरतादि गुणों इसके कुलागत ही थे। काव्य-सम्बन्धी अमृत-रस का प्रकटकर्ता था।

मित्रमण्डल*के लिये उदय-शैल (वृद्धिका स्थान) था। शत्रुओं के लिये यह उत्पात केतु (पूछरिया तारा) था, मनोहर कथा, आख्यायिकाओं का प्रवर्तक था, रसिक पुरुषों का स्थान था, बड़े बड़े धनुर्धारियों को नीचा दिखाने वाला था, साहसी पुरुषों में धुरीण समझा जाता था। पण्डितों में भी मुख्य समझा जाता था।

शूद्रक, गरुड़ से भी कुछ कम न था। गरुड, विनतानन्द (अपनी माता को आनन्द) देता है, यह, नम्र राजाओं को आनन्द देता था, शूद्रक ने राजा पृथु से भी बराबरी की थी, राजा पृथु † ने शत्रु और कुल पर्वत, दोनों का तिरस्कार किया था, शूद्रक ने शत्रुरूपी पर्वतों का तिरस्कार किया था।

शूद्रक ने विष्णु भगवान की भी हँसी सी उड़ायी थी, विष्णु भगवान ने नृसिंह रूप धारण किया था या यूँ कहना चाहिये कि विष्णु भगवान को अपने शत्रु हिरण्यकशिपु के मारणार्थ नृसिंह-रूप धारण करना पड़ा था, इसने अपने नाम मात्र से ही शत्रुओं के हृदय विदीर्ण किये थे, या यूँ कहना चाहिये कि शत्रु इस का नाम सुनते ही घबरा उठते थे। विष्णु भगवान् विक्रमत्रय (तीन-चरणों) से त्रिलोकी को आक्रान्त (अधीन) कर सके थे, इसने एक विक्रम (अकेले बल) ही से अधीन कर लिया था। बस, यही हँसी का कारण था।

इसके खड्ग की धारा रूप जल में लक्ष्मी ने भी अति काल तक निवास किया था। इसी लक्ष्मी को पहले राजाओं के पास भी निवास करना पड़ा था। ये बड़े दुष्ट थे अत एव इन राजाओं का दोष इस लक्ष्मी को ग्रहण करना पड़ा था, मानो इसी दोष के प्रक्षालनार्थ लक्ष्मी ने ऐसा किया था।

शूद्रक ने, मनमें धर्म को धारण करते हुये अर्थात् सदा 'धर्म ही को विचारते हुये, क्रोध में यमराज की स्थापना करते हुये अर्थात् अपराधियों को तत्काल ही दण्ड देते हुये, प्रसन्नता में कुबेर को धारण करते हुये अर्थात् सेवकों पर प्रसन्न हो कर उन्हें खिलतें और जागीरें देते हुये, प्रताप में अग्नि को धारण करते हुये अर्थात् समस्त शत्रुओं को जलाते हुये, भुजा में पृथिवी को स्थान देते हुये अर्थात् समस्त राज्य-भार सहन करते हुये, नेत्रों में श्री को धारण करते हुये अर्थात् प्रीति-पूर्वक देखते हुये, वाणी में सरस्वती को धारण करते हुये अर्थात् सहसा अनेक गद्य-पद्य रचते हुये, मुख में चंद्रमा को धारण करते हुये अर्थात् सब मनुष्यों को आनन्द देते हुये, बल में वायु को धारण करते हुये, अति ही बली होते हुये, बुद्धि में बृहस्पति को धारण करते हुये अर्थात् अनुपम-

---

* "मित्रमण्डल" सूर्यबिम्ब को भी कहते हैं। यह भी उदय-शैल पर वृद्धि को प्राप्त होता है।

† ऐसी पुराण-गाथा है कि राजा पृथु ने पृथ्वी को पर्वतों से ढकी या दबी देख कर धनुष की कोन से पर्वतों को हटा कर साफ़ या एकता किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभाशाली होते हुये, रूप में कामदेव को धारण करते हुये अर्थात् माननियों के भी मन हरते हुये, तेज में सूर्य को धारण करते हुये अर्थात् असह्य तेजस्वी होते हुये,

सर्वदेवमय, विश्वरूपा मूर्ति को धारण करने वाले, नारायण भगवान् का भी अनुकरण किया था—बराबरी की थी।

युद्धरात्रि में, बड़े मतवाले हाथियों के मनोहर मस्तक, विदीर्ण करते हुये, इस शूद्रक के समीप अभिसारिका के समान शत्रुश्री भी आगयी थी, अन्तर सिर्फ़ इतना ही था, कि अभिसारिका स्त्री अपने प्रिय के समीप आकर चली जाती है, यह लौट कर नहीं गयी थी—इसी के पास रही थी।

इस शत्रुराजश्री को इसी के खड्ग ने आकर्षण किया था-बुलाया था। उस समय इस खड्ग में बड़े बड़े क़ीमती मोती लगे हुये थे, यहाँ यही समझना पर्य्याप्त होगा कि ये मोती शत्रुगजों के मस्तक विदीर्ण करने पर उन्ही के रुधिर के साथ लगे चले आये थे, दृढ़ मुट्ठी के दबाने से इसके धारा रूपी जलविन्दु निकल पड़े थे, अतएव यह दन्तुर के समान मालूम होता था। जिस तरह रात्रि में अँधेरा होता है ठीक इसी तरह युद्धरात्रि में भी गज-कपोलों से गिरे हुये मदजल की अति वर्षा से दुर्दिन-अन्धेरा-था जिस राजश्री को इसके खड्ग ने खींचा था इसका स्थान भी बड़ा दुर्गम्य था। यह, शत्रुयोद्धाओं के हृदयरूपी कपाटों पर हज़ारों कवचों के बीचों बीच अँधेरे में रहा करती थी। अभिसारिका भी अँधेरे में ही प्रिय के निकट जाया करती है।

शूद्रक का प्रतापाग्नि, विरहिणी स्त्रियों के, अपने हृदय में रहने वाले पतियों को भी जलाने की इच्छा सी करता हुवा, रात दिन प्रदीप्त रहता था। ये विरहिणी इसके शत्रुओं की स्त्रियाँ थीं, क्यों कि इसने अपने शत्रुओं को ही प्रथम स्वर्ग के दर्शन कराये थे। इसका प्रतापाग्नि शत्रु स्त्रियों के हृदय में दाह भी उत्पन्न किया करता था। बात यह थी कि इसका प्रतापाग्नि शत्रु-समुदाय को कभी सहन ही न कर सका था।

सारे संसार को जीतने वाले, इस राजा के शासन-काल में, चित्रकारी में ही वर्णसङ्करता (लाल, काले, और पीले का मेल) थी। प्रजा में वर्ण-सङ्करता न थी, या यूँ कहना चाहिये कि इसके राज्य में व्यभिचार का नाम भी न था। प्रजा को मैथुन में ही केशाग्रह (केश-स्पर्श) करना पड़ता था, लड़ाई झगड़ों में केशग्रह (शिखा आदि का खींचना) न था। बात यह थी कि यह राजा उचित-शासन होने के कारण प्रजा को लड़ाई झगड़ों का अवसर ही न देता था।

इसके शासनकाल में काव्यों में ही दृढ़बन्ध (कठिन रचना) हुवा करता था, अपराधियों को दृढ़बन्ध (कड़ी सज़ायें) नहीं दिया जाता था। प्रजा को शास्त्रों में ही चिन्ता (विचार) थी, गार्हस्थ्य-कार्य्यों में चिन्ता (फ़िक्र) न थी, स्वप्नदशा में ही विप्रलम्भ (वियोग) हो जाया करता था, अक-स्मात् विप्रलम्भ (मृत्यु) न होता था। बात यह थी कि इसके समय में इसके धार्मिक-राज्य और प्रजा के सदाचरण से मनुष्यों को अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। छातों में ही सुवर्ण-दण्ड (सोने की दण्डी) था, प्रजा से सुवर्ण-दण्ड (दण्ड द्वारा सोने को लेना) न था, क्यों कि प्रजा अपने कर्तव्य से कभी विमुखही न होती थी, या यूँ कहना चाहिये कि प्रजा राजनियमों का कभी उल्लङ्घन ही न करती थी।

इसकी ध्वजाओं में ही प्रकम्पा थी अर्थात् इसकी ध्वजा ही फ़र्राया करती थीं, प्रजा को प्रक-म्पा (उत्पात, चोरी आदि की भीति) न थी, गान-विद्या में ही रागविलास था प्रजा में रागवि-लास (क्रोधादि का नाश) न था, बात यह थी कि इसके राज्य में निष्कामता भी राज्य किया करती थी इसी लिये क्रोधधादिक का अभाव था तो नाश ही किसका किया जाय?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्रक के हाथियों में ही मदविकार था, इस की प्रजा में मदविकार (अहङ्कार-दोष) न था, क्यों कि इसकी प्रजा सदाचारी गुरुओं के उपदेश से अपने अन्तःकरण को शुद्ध और दृढ़ बनाये रखती थी, धनुषों में ही गुणच्छेद (प्रत्यञ्चा का भङ्ग) देखा जाता था। प्रजा में गुणच्छेद (शौर्य्यादि गुणों का नाश) नहीं पाया जाता था। बात यह थी कि इसकी प्रजा बड़ी जितेन्द्रिय थी, अतएव उसमें गुणच्छेद होना असम्भव था, रोशनदानों में ही जाल पुरा हुवा था प्रजा में मत्स्यादिकों के मारणार्थ जाल न था। इसके शासन-काल में चन्द्रमा, खड्ग और कवच में ही कलङ्क (कालुष्य) था, प्रजा में किसी तरह का कलङ्क न था। काम-केलि में ही विलासी या विलासिनी के अप्रसन्न होजाने पर दूत-प्रेषण होता था, युद्धादिक में दूतप्रेषण नहीं होता था क्योंकि इस शूद्रक का ऐसा कोई प्रबल शत्रु ही न था जिसके निकट इसको दूत भेजना पड़ता।

शतरञ्ज या फासों में ही ख़ाली स्थान पाये जाते थे, प्रजा के स्थान शून्य नहीं देखे जाते थे, बात यह थी कि लगान वसूल न होने पर गाँव में से किसानों को नहीं निकाला जाता था, प्रत्युत उनको सहायता दी जाती थी,—उनको तक़ावी देकर मदद पहुँचाई जाती थी, इस शूद्रक के चित्त पर दयालुता अधिक थी।

शूद्रक को परलोक ही से भय था, शत्रु आदिकों से नहीं? इसकी रानियों के केशों में ही भङ्ग (टेढ़ापन) था, प्रजा में भङ्ग (क्रूरता) न था, नूपुरों में ही मुखरता (ध्वनि) थी, प्रजा में मुखरता (चञ्चलता) न थी।

इसके शासन-काल में विवाह के समय ही करग्रहण (हाथ का ग्रहण करना) हुवा करता था, प्रजा में करग्रहण (कर लेना) न था, या यूँ कहना चाहिये कि प्रजा से राजकर नहीं लिया जाता था। इसकी प्रजा के नेत्रों से, यज्ञाग्नि के धूम-द्वारा ही ज़ल गिरता था, शोकादिक से नहीं? या यूं कहना चाहिये कि इसकी प्रजा नित्यप्रति यज्ञ करती थी, यज्ञ ही के अग्निधूम से आँसू टपकाती थी, किसी शोकादि से नहीं?

घोड़ों में कशाघात (हन्टर का मारना) पाया जाता था, प्रजा में नहीं? बात यह थी कि घोड़ों के लिये ही हन्टर रक्खा जाता था, प्रजा के लिये इसकी आवश्यकता न थी क्योंकि प्रजा ऐसा कोई अपराध ही न करती थी। कामदेव में ही चापध्वनि थी, प्रजा में चापध्वनि न थी, अर्थात् प्रजा के लिये धनुष नहीं चढ़ाया जाता था, क्योंकि प्रजा से किसी तरह का भय ही न था।

शूद्रक की विदिशा नगरी राजधानी थी।

यह विदिशा, कलिकाल के भय से एकत्र हुवे सत्ययुग से तुलना रखती थी, या यूँ कहना चाहिये कि कलियुग से डर कर सत्ययुग, और स्थानों का परित्याग कर इसी में निवास करने लगा था। यह बड़ी भी इतनी थी कि मानो त्रिलोकी की उत्पत्ति का स्थान है या यूँ कहना चाहिये कि त्रिलोकी इसी से उत्पन्न हुयी है।

इस विदिशा के चारों तरफ़ एक नदी भी थी। इसका नाम वेत्रवती था। इस नदी की तरङ्गें, स्नान करती हुई मालव देश की स्त्रियों के कुचप्रान्त के ताड़न से क्षीण होगयी थीं। या यूँ कहना चाहिये कि मालवे की स्त्री इस नदी में स्नान करने आती थीं और अपने स्तनों को ख़ूब मल मलकर धोतीं थीं। इनके स्तन बड़े कड़े थे, इन्हीं स्तनों की रगड़ से इस नदी की तरङ्गें कम हो जाती थीं।

और इस नदी का जल, स्नान करने के लिये आये हुये, * जयकुञ्जरों के मस्तक-सिन्दूर से सायङ्काल के समान मालूम होने लगता था या यूँ कहना चाहिये कि इस नदी में जयकुञ्जर नित्यप्रति स्नान करते थे, इनकी शोभा के लिये इनके मस्तक पर सिन्दूर लगा रहता था, यह स्नान करते समय

* जयकुञ्जर वे हाथी कहलाते हैं जो शत्रु-सेना के नाश करने का अपने में बल रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुल जाता था, इसके धुलने से जो शोभा सायङ्काल की होती है ठीक, वही शोभा इस नदी के जल की हो जाती थी।

इस नदी का तट भी उन्मत्त कलहंसों की ध्वनि से प्रतिध्वनित रहता था।

बात यह थी कि इस नदी का जल मोती के समान अति स्वच्छ था, अतएव बहुत से हंस वहाँ रहते थे और शब्द किया करते थे, शब्द करने पर इनको उत्तर-रूप, शब्द ही मिलता था अत एव इस नदी का किनारा प्रतिध्वनित रहता था।

शूद्रक ने इसी विदिशा नगरी में, * प्रथमावस्था के समय अति काल, सुखपूर्वक, निवास किया था, इसने सारे संसार को जय कर लिया था, इसी हेतु से इसको राज्यचिन्ता भी न रही थी। यह सिद्धप्रयोजन था। द्वीपों से आये हुए अनेक राजाओं के मस्तकों से इसका चरणयुगल पूजित रहता था—अनेक द्वीपों के राजा इसको शिर झुका कर प्रणाम करते थे। इस राजा ने अपनी भुजा से जगद्भार को लीला-द्वारा-अल्प होपरिश्रम-द्वारा—धारण किया था। तात्पर्य्य यह है कि जिस तरह यह अपनी भुजा में भुजबन्द धारण से कुछ भार न समझता था, बिलकुल इसी तरह इसने अपनी भुजा में राज्यभार का भार भी न समझा था।

शूद्रक एकाकी कभी नहीं रहता था। यह अपने मन्त्रिपुत्रों के साथ क्रीडा करता हुवा रहा करता था।

इसके मन्त्रिपुत्र भी साधारण बुद्धिमान् न थे, अपने बुद्धिबल से बृहस्पति का भी उपहास करनेवाले थे—बृहस्पति को भी लतानिया बतानेवाले थे। ये मन्त्रिपुत्र, इसके कुल परम्परा से चले आते थे, इन मन्त्रिपुत्रों के मन, अनेक नीतिग्रन्थों से निर्मल हो गये थे। ये नीति के अद्वितीय विद्वान् थे। "ये नीति ही के नहीं किन्तु और विषयों में भी" पण्डित थे। ये निर्लोभ, स्निग्ध थे अत एव इसके शुभेच्छु भी थे।

शूद्रक ने, इन दिनों में मन्त्रिपुत्रों के साथ ही नहीं, राजपुत्रों के साथ भी क्रीड़ा की थी। ये राजपुत्र, अवस्था, विद्या और अलङ्कारों से इसकी बराबरी का दावा रखते थे। हज़ारों राजा जिनको शिर झुकाते थे, ये राज पुत्र, उनके वंश में, उत्पन्न हुये थे, सारे संसार के विज्ञानावलोकन से इनकी बुद्धि भी बड़ी परिपक्व हो गयी थी—इन से सम्मति लेनी भी समुचित थी। ये बड़े प्रतिभाशाली और अवसर के जानने वाले थे। "शूद्रक के" प्रभाव से इन राजपुत्रों के चित्त भी शूद्रक में आसक्त थे। ये इसके चित्तानुकूल थे।

ये नागरिक-हास्य में भी बड़े कुशल थे—दूसरों का चित्त बहलाना अच्छा जानते थे, चेष्टा आकार को भी ख़ूब जानते थे, मनुष्य के रङ्ग ढङ्ग से ही मनुष्य के चित्त की बात टटोल लेते थे, काव्य, नाटक, आख्यान, आख्यायिका, और आलेख्य, व्याख्यान आदि भी भली भाँति जानते थे। इनके कन्धे बड़े मोटे और मज़बूत थे। इनकी भुजा और वक्षःस्थल भी ऐसे ही थे, इन्होंने शत्रुओं के मतवाले हाथियों का निरन्तर मर्दन किया और उन्हीं हाथियों का आसन बनाया। ये सिंहों के बच्चों से तुलना रखते थे, इनको पराक्रम ही अद्वितीय रस था—या यूँ कहना चाहिये कि ये अद्वितीय पराक्रमी थे, तदपि विनय से रहते थे। ये इतने बड़े बली होने पर भी विनय को बड़ा समझते थे—या यूँ कहना चाहिये कि पराक्रमी होते हुये भी इनमें नम्रता विशेष थी।

शूद्रक को तरुणावस्था में रनवास के होते हुये भी, सुरतसुख पर द्वेष सा था। यह जवानी में भी मैथुनानन्द से जलता था, और कहा करता था कि स्त्रियाँ तृणसमान तुच्छवृत्ति होती हैं, इनसे क्या लाभ?

"क्यों न हो? इसको तो चेटक ही दूसरी थी" यह अति विजय की इच्छा किया करता था—इसी

* तरुणावस्था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार में मग्न रहता था। यह बड़ा धीर भी था, "अतएव अल्पकामिता की घटना इस में घट गयी थी" प्रायः धीर पुरुष सिंह के समान स्वल्प कामी होते भी हैं।

यह रूपवान् भी अधिक था—स्त्रियों के मन को विचलित कर देता था। पर स्वयम् जैसे का तैसाही रहता था, सन्तानार्थी मन्त्रिजनों को भी यह इष्ट था-मन्त्रि जन भी इसके अनुकूल थे, "इसका रनवास सौन्दर्य्य की सीमा था"। इसके रनवास ने, अपने सौन्दर्य्य और हाव भावादि विलासों से रति के हाव भावादि विलासों का उपहास किया था। इसका रनवास नमकीनपन और विनयता को भी लिये हुये था, अतएव निःसन्देह इसके अनुकूल था, इसका रनवास कुलीन भी था, "अत एव इतना रूप लावण्य कुछ अनुचित या अत्युक्त भी न था" चित्त को हरनेवाला भी था—सब के चित्त अपनी ओर खींच लेता था।

शूद्रक,जब कभी संगीत* से दिन बिताता था। उस समय इसका, रत्नजटित कङ्कण हिलता रहता था, बात यह थी कि गाने बजाने में हाथ का इशारा करना पड़ता था या उस समय कङ्कण हिलता था, घर्घरिकाओं के बजाने से इधर उधर हिलना पड़ता था। उस हिलने से इसके मणिजटित कर्णभूषण "झन झन" शब्द किया करते थे।

यह,स्वयं मृदङ्ग के समान बाजा बजाया करता था—दोनों हाथों से ताल दिया करता था।

कभी यह,आखेट द्वारा ही दिन बिता देता था। आखेट में भी यह सहसा बाण-वर्षा से वन को शून्य कर दिया करता था, कभी काव्य और कथाओं की रचनाओं से दिन बिताता था, इस समय विद्वत्समाज को भी इकट्ठा करता था—विद्वानों में प्रेम रखता था।

कभी शास्त्रालाप से-शास्त्रसम्बन्धिनी बातों से, कभी आख्यान,आख्यायिका, इतिहास और पुराणों के श्रवण से, कभी चित्रक्रीड़ा से, कभी वीणावादन से (बांसुरी के बजाने से),कभी दर्शनार्थ आये हुये मुनिजनों की सेवा से ,और कभी अक्षरच्युत, मात्राच्युत, विन्दुमती, और प्रहेलिका, आदि से, स्त्रियों के सम्भोगसुख से पराङ्मुख,—कान्तानन्द को बुरा समझता हुआ बिताया करता था।

जैसे यह (शूद्रक) दिन को बिताता था वैसे ही (जब तक यह शयन नहीं करता था) तब तक रात्रि को भी मित्रों सहित बिताता था। इसके मित्र अनेक प्रकार के क्रीड़ाहास्य में बड़े कुशल थे।

एक समय इस शूद्रक के पास आकर इसी की प्रतिहारी ने बड़ी विनती से कहा।

इस अवसर पर सूर्य भगवान् अपनी हज़ारों किरणों से बड़े अच्छे मालूम हो रहे थे, और कुछ कुछ लालिमा दिये हुये थे, नये नये कमल के पत्तों को भेदन कर रहे थे—कमलों को खिला रहे थे, इनका उदय भी कुछ दूर न था—प्रातःकाल हो गया था। शूद्रक सिंहासन पर विराजमान था।

"यह प्रतीहारी भी विलक्षण मालूम होती थी" चन्दन-लता के समान इस प्रतीहारी की भयङ्कर और मनोहर आकृति थी, चन्दनलता के निकट सर्प होते हैं इसके भी बायें हाथ की ओर तलवार लटकी हुई थी जो इसके प्रतिकूल थी, अतएव यह भयङ्कर मालूम होती थी, चन्दनलता बड़ी मनोहर मालूम होती है, ऐसे ही यह भी रमणीय मालूम होती थी।

यह, कुछ कुछ गङ्गा महारानी से भी साम्य रखती थी, गङ्गा में स्नान करते हुए ऐरावत हाथी का गण्डस्थल है, जो श्वेत और कठिन होता है। इसका भी स्तनतट गाढ़-चन्दन के लेप से श्वेत हो गया था और कठिन भी था। यह,राजा की आज्ञा से भी सादृश्य रखती थी। राजा की आज्ञा बड़े बड़े राजाओं को शिरोधार्य्य होती है, यह प्रतिहारी भी चूडामणियों के प्रतिबिम्बों के बहाने से

* जिसमें गाना, बजाना और नाचना, तीनों चीजें हों, वह संगीत कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

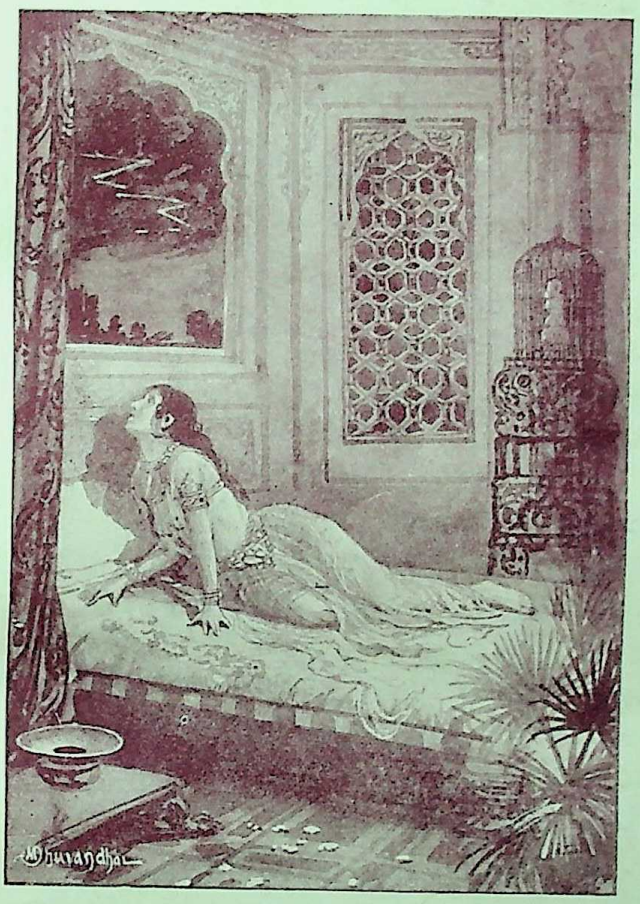

विरहावस्था.

लक्ष्मी आर्ट भायखळा, मुंबई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाओं के शिरों से धारण की गई थी। बात यह थी कि इस शूद्रक के समीप बड़े बड़े राजा बैठे थे, इनके मस्तकों में चूडामणि थे, इन चूड़ामणियों में इस प्रतीहारी का प्रतिबिम्ब पड़ता था, बस, इसके इसी प्रतिबिम्ब रूप से इस प्रतीहारी को राजाओं ने भी अपने अपने मस्तकों से धारण किया था, अन्तर इतना ही था कि यह प्रतीहारी मूर्तिमती थी और आज्ञा मूर्तिमती नहीं होती।

प्रतीहारी शरद् ऋतु के समान मालूम होती थी, शरद् ऋतु में हंस रूपी वस्त्र होते हैं। इसके वस्त्र, हंसों की तरह श्वेत थे। यह परशुराम के परसे की धारा के समान भी थी। परशुराम के परसे की धारा ने, अपनी तेज़ी से सारे के सारे राजाओं को अधीन कर लिया था, इसने अपने सौन्दर्य्य और हावभावादिकों से सब राजाओं को अधीन कर लिया था।

प्रतीहारी, विन्ध्य-वन की भूमि के समान भी थी, बिन्ध्य-वन में बेंतों की लताएं होती हैं, इसके भी हाथ में बेंत था। यह, राज्य के अधिष्ठात्री देवता के समान अति सुन्दर शरीर धारण किये हुए थी। यह, पृथ्वी पर घुटने और हाथ रक्खे हुए इस प्रकार कहने लगी—राजन्! स्वर्ग को चढ़ते हुए, त्रिशङ्कु की राज्यलक्ष्मी के समान, एक चाण्डाल-कन्या आई है, त्रिशङ्कु की राज्यलक्ष्मी को कुपित इन्द्र ने अपनी हुंकृति से झिड़क कर गिरा दिया था, इसे आपके द्वारपालों ने रोक दिया है। यह दक्षिण-मार्ग से आई है और दरवाज़े पर खड़ी है, पींजरे में बन्द किये हुए एक तोता लिये हुए है। इस तोते को लेकर, आपसे अपना रहस्य निवेदन करना चाहती है या निवेदन करती है—

"आप समुद्र के समान सारे संसार के रत्न स्थान हैं। जैसे समुद्र में सारे रत्न निवास करते हैं, तैसे ही आपमें भी सारे के सारे गुणरूपी रत्न-निवास करते हैं। और यह तोता भी सारी पृथ्वी में एक अद्भुत-रत्न है, यह जानकर, इसको लेकर मैं आपके निकट आयी हूँ, और आपके दर्शनों का सुख-अनुभव करना चाहती हूँ,-आपके दर्शन करना चाहती हूँ।" जो आपकी आज्ञा हो वह किया जाय।

प्रतीहारी यह कहकर चुप हो गयी। कुतूहली राजा शूद्रक ने प्रतीहारी से चाण्डाली की इस विज्ञप्ति को सुनकर पास में बैठे हुये मन्त्रियों के मुख देखकर और मन्त्रियों की भी चाण्डाली के देखने में इच्छा जानकर, आज्ञा दी। "क्या हानि है लिवा ले आवो।" प्रतीहारी राजा के इतना कहने के पश्चात् झट से उठकर उस चाण्डाल-कन्या को लिवा ले आई। राजमण्डप में प्रवेश कराया, चाण्डाली ने वहाँ आकर राजा को देखा।

यह राजा, सुमेरु पर्वत के समान, हज़ारों राजाओं के बीच में बैठा था, जैसे सुमेरु, इन्द्र के वज्र से भयभीत होकर गोल बाँधे हुये पर्वतों के बीच बैठा हो ठीक इसी तरह यह राजा भी हज़ारों राजाओं के बीच में बैठा था। बड़े बड़े हज़ारों राजा इसके पास में बैठे थे।

इस समय यह वर्षा ऋतु के दिन के समान मालूम होता था, वर्षाऋतु के दिनों में हज़ारों इन्द्र-धनुषों से दिग्भाग व्याप्त रहता है, यह भी हज़ारों मणिजटित अलङ्कारों की किरणों से व्याप्त था, तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रधनुष में नीली पीली काली एक अद्भुत चमक देखने में आती है इससे भी बढ़ी चढ़ी चमक इसके अलङ्कारों में थी।

शूद्रक, शामियाने के नीचे चन्द्रकान्त-मणिजटित कुर्सी पर बैठा था। यह शामियाना बड़ा अद्भुत था। इसके पल्लों में बड़े बड़े क़ीमती मोती लटके हुये थे, सुवर्ण की मेखों से चारों चोबें बंधी हुई थीं, इन चोबों में भी मणियां लगी हुई थीं। यह शामियाना आकाशगङ्गा के फेन-समान, श्वेत था, यह बहुत बड़ा भी न था। साधारण था। इस समय शूद्रक के ऊपर चमर होरहे थे। इन चमरों में भी दण्डे सुवर्ण ही के थे, स्फटिक मणियों के पायदान पर इसका बाँया पैर रक्खा हुवा था, यह पायदान भी, जिसकी किरणें ऊपर को जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थीं, इस शूद्रक के मुख की कान्ति के विजय से पराभूत, अतएव पैरों में पड़े हुये चन्द्रमा के समान था। बात यह थी कि चन्द्रमा की किरणें नीचे को पड़ती हैं, इस (शूद्रक) के मुख की किरणें ऊपर को भी जाती थीं। अतएव यह विजयी हुआ, और चन्द्रमा मारे लज्जा के मानों इसके चरणों में पड़ा था।

यह शूद्रक चरण-नखों की किरणों से भी अति ही सुन्दर मालूम होता था, ये नख-किरणें, इन्द्र-नील-मणियों की, फर्शबन्दी की कान्ति के मेल से श्याम हो गईं थीं, या यूँ कहना चाहिए कि वहाँ नीलमणियों की फर्शबन्दी थी। उनकी चमक भी नीली ही थी अतएव इसकी नखकान्ति नीली मालूम होने लगी थी, मानो यह नख-किरणें नम्र राजाओं के श्वासों से कुछ मैली हो गईं थीं।

यह शूद्रक, दोनों जङ्घाओं से, विष्णु भगवान् के समान सुन्दर मालूम होता था। विष्णु भगवान् की जङ्घा, शीघ्रही मर्दन किये गये, मधुकैटभ दैत्य के रुधिर से लाल होगईं थीं। इसकी भी जङ्घा कुर्सी पर देदीप्यमान-पद्मराग-मणियों की किरणों से लाल थीं। यह, दो दुपट्टे धारण किये हुये था, इन दुपट्टों के पल्लों को चमरों का वायु हिला रहा था, ये अमृत के फेन-सदृश, श्वेत थे। बस, इनमें श्वेतता की तो सीमाही थी, इनके पल्लों पर केसर से दो दो हंस बनाये गये थे—प्रत्येक पल्ले पर हंस कढ़े हुये थे।

इस शूद्रक का हृदय, अति श्वेत-चन्दन से श्वेत हो रहा था। इस चन्दन के ऊपर भी केसर का हस्तबिम्ब था—हाथ से पाँचों अंगुली केसर में भिगो कर लगायी गयीं थीं। अतएव यह शूद्रक कैलास पर्वत से भी बराबरी करता था। कैलास पर्वत पर भी नयी चमकीली धूप के टुकड़े गिरा करते हैं बात यह है कि कैलास-पर्वत श्वेत होता है। इसके ऊपर केसरिया धूप पड़ने से, श्वेत-चन्दन के ऊपर केसर के हस्तबिम्ब जैसी शोभा हो जाती है। यह चन्द्रमा तो नहीं है, इसी भ्रान्ति से, तारा गण के समान, हार लता से, इस के मुख की परिधि की गयी थी—शोभा की गयी थी, तात्पर्य यह है कि शूद्रक एक हार पहने हुये था। यह हार, तारों की तरह अति निर्मल और चमकीला था, इसी से इसका मुख बिलकुल चन्द्रमा जैसा मालूम होता था।

इन्द्रमणिजटित दो भुजबन्दों से इसकी भुजाएं वेष्टित थीं, यह दोनों भुजाओं में भुजबन्द पहने हुए था। ये भुजबन्द अति चपला राज्य-लक्ष्मी के बाँधने के लिये, बेड़ी की भ्रान्ति, उत्पन्न करते थे। मानों इसकी दोनों भुजाओं में राज्य-लक्ष्मी बँधी पड़ी थी, अथवा यह नित्यप्रति भुजाओं में भी चन्दन लगाता था, अतएव चन्दन रस के लोभी, दो सर्पों ने, दोनों भुजाएं लपेट रक्खी थीं।

शूद्रक के कर्णकमल कुछ लटके हुये थे—इसके कानोंकी लौ लटकी हुई थी। इसकी नासिका भी ऊँची थी। खिले हुये कमल के समान इसके नेत्र थे। इसका माथा निर्मल सुवर्ण के पट्टे के समान चौड़ा था। इसके मस्तक का आकार भी अष्टमी के चन्द्रशकल* के समान था। इसकी भौओं के बीचोंबीच ऐसा अद्भुत चक्र था जो चक्रवर्ती सकल संसार के राज्याभिषेक से पवित्र किया गया था, सारे संसार का राजा बनाया गया था।

(असमाप्त)

मोहिनी।

(१)

देहली के छोटे मगर ख़ूबसूरत एक चमन में प्रेम के दो मतवाले आपस में मिल रहे थे। इनकी आँखों में आँसू थे, और आँसुवों की आड़ में चाहत।

* चन्द्रमा का आधा हिस्सा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह जी जलानेवाली शाम रोज़ आती है।'

'मैं तो इसे आशा का प्रातःकाल समझता हूँ।'

'मनुष्यों और स्त्रियों में बड़ा अन्तर है। तुम लोगों का हृदय बड़ा कड़ा होता है, उसे पाषाण हृदय कहना चाहिये। हमारा हृदय शीशा जैसा नरम होता है वह विरहाग्नि को नहीं सह सकता।'

'शीशा तो ठसक लगते ही टूट जाता है, नरम चीज़ों में तो लचक हुवा करती है।'

'चलो रहने दो! बातें न बनाओ! दिन भर राह देखूं और रात भर घड़ी की सुइयां, तब कहीं तुम्हारे दर्शन होते हैं।'

'प्यारी! मैं तो हरदम तुम्हें अपने हृदयासन पर बिठाये रखता हूँ।'

'सच बतलाओ। कब आओगे?

'ग्यारह बजे। मगर मकान का पिछला दरवाज़ा खुला रखना।'

'इन्हें मेरी आखें समझो।'

'अच्छा अब जाता हूँ।'

'आह! कैसे बेदर्द हो! जाते हो और गले से भी नहीं मिलते।'

(२)

मिस्टर प्रमथनाथ देहली के ऊंचे दरजे के बारिस्टरों में थे। कई सोसायटियों के सेक्रेटरी और कई समितियों के सभापति थे। पत्र-पत्रिकाओं में अच्छे २ लेख लिखते, प्लेटफ़ार्म पर जोशीले लेक्चर देते, विलायत से जब आप लौटे ही थे तब आपका अजीब जोश था। अब बेकार न थे, बेगार क्यों करते? सगों को सग (कुत्ते) समझने लगे। हां! क्रिकेट का शौक़ अबतक बाक़ी था। वह क़ैसर क्लब के नेता और क्रिकेट के बड़े शौक़ीन थे। सौभाग्यवश यदि प्रमथबाबू को क्रिकेट की धुन थी, तो इनकी बहिन मोहिनी टेनिस की शौक़ीन थीं। इन्हें नित्य नये खेलों की तलाश रहती, शहर में कहीं ड्रामा हो, कोई थ्येटर आये, कोई सरकश, कोई वाइस्कोप, मोहिनी का उसमें न जाना एक असम्भव बात थी। जल और वायु को जैसे मनुष्य ज़रूरी समझता है या योरप में अख़बार पढ़ना जैसा आवश्यक समझा जाता है, ठीक वैसा ही मोहिनी का खेलों में जाना आवश्यक था।

वैसे प्रमथ बाबू भी कुछ रूखे सूखे विचार के मनुष्य न थे। यह उपदेशक अवश्य थे, मगर थे रंगीन उपदेशक!

मोहिनी की तरह थ्येटर पर इनकी भी असीम कृपा थी, यह भी प्रायः थ्येटर में आया जाया करते थे।

ख़ुशक़िस्मती से मोहिनी के पति मिस्टर महेश देव भी इन्हींके जैसे ख़याल के आदमी थे। वे एक साल से आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे।

देहली में अलफ्रेड कम्पनी आई हुई थी, और शहर में जहाँ देखिये इसी तमाशे की चर्चा थी, मोहिनी के लिये यह ईद की रातें थीं। रात को थ्येटर देखती, दिन को कुछ सोती और कुछ देर वही थ्येटर के राग अलापती, प्रेम और रूप की एक नई सृष्टि की सैर कर रही थी।

जहान की आपत्तियाँ भी इसकी सम्पत्तियों से कहीं ज़्यादा बलवती हैं। मोहिनी को दो महीने बीत गये। रोज़ाना थ्येटर का देखना और दिन में थ्येटर के प्रेमभरे राग अलापना और फिर वह भी युवावस्थामें! कुछ परिणाम तो आख़िर होना ही चाहिये था, उसका आरम्भ यूं हुआ—

थ्येटर हाल में एक रूपवान् युवा की निगाहें मोहिनी की तरफ़ उठने लगीं। वह रूपवती थी, अतः चञ्चला थी, इसलिये पहले उसे इन निगाहों में कोई विशेषता न मालूम हुई। नेत्रों का रूप से शाश्वतिक सम्बन्ध है। घूरना मनुष्यों का और लजाना स्त्रियों का स्वभाव है।

कुछ दिनों के बाद मोहिनी को इन निगाहों में गुप्त अर्थ दीखने लगा। मन्त्र अपना काम करने लगा। आँखें दो चार होने लगीं।

अब बेचैनी का अध्याय प्रारम्भ हुआ। मोहिनी एक दिन के लिये भी यदि किसी दूसरे थ्येटर या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकश में जाती तो वहाँ उसका जी उचाट रहता। आँखें किसीको ढूँढा करतीं। आख़िर प्रेम सीमा में न समा सका, विचार ने कार्य रूप में परिणत होने की ठान ली। इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी एक झलक पहिले ही हम देख चुके हैं।

इस रूपवान युवा का नाम रूपकुमार था। बेङ्गाल का रहनेवाला, संस्कृत का तीर्थ – इंगलिश का एम. ए. फ़ारसी से भी ख़ूब परिचित, देहली के एक बड़े लोहे के कारख़ाने का मैनेजर था। घर में रूपवती स्त्री, एक पुत्र, एक कन्या,—दो सन्तति; अपने मित्रों में शुद्धाचार के लिये प्रसिद्ध, न यौवन का मद था, और न तबीयत में छछोरापन। घरगिरस्ती की ज़ञ्जीर में जकड़ा हुआ, मालूम नहीं कि कौनसी आकर्षण शक्ति इसे उस जादू के पञ्जे में ले गयी। सचमुच ही संसार निःसार और छल का स्थान है, और मोहिनी आः !! उस क्रूराचारा मोहिनी को क्या कहा जाय ? जिस की बनावटी प्रेमधारा ने लज्जा और धैर्य के बन्धन को तोड़ कर अपने स्वतन्त्र प्रभाव में सभ्यता के टूटे फूटे एक गरीब झोंपड़े को ढादिया।

(३)

रात के बारह बज गये थे, अभिसारिकायें अपने अपने नियमित स्थान पर बड़े शौक़ के साथ जारही थीं। कोई कोई बेचारी बेसुरे सुर में यह भी अलाप रही थी –

'थे शबेवस्ल में जो जी के जलाने वाले।
कहां वह मरगये घड़ियाल बजाने वाले॥

ठीक मोहिनी की भी यही दशा थी। विरहाग्नि ने जब इसे बहुत सताया, तब यह एकदम उठ कर बैठी हो गयी। इसके पलंग के पास ही एक छोटी सी परन्तु गोल मेज़ पड़ी हुई थी, और, मेज़ के पास ही एक कुरसी।

विरहावस्था में मन बहलाने के लिये चिट्ठियाँ लिखना भी अच्छा और सहल उपाय बतलाया जाता है। यह सोचकर इसने जैसे तैसे कुरसी पर सवार हो कर चिट्ठियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं।

श्रीः

देहली
प्रमथ-भवन

मेरी जान !

सचजानो ! तुम्हारी चिट्ठी पढ़ कर मेरी जान निकल गयी ! उफ़ !! अभी एक महीना और लगेगा ! इतने दिनों में तो शायद तुम्हें यहाँ मेरी भस्म भी न मिल सकेगी !

एक ही सप्ताह में अधमरी सी हो गयी हूँ। चन्द्रापीड के चले जाने पर कादम्बरी को शायद इतना दुःख न हुवा होगा, जितना, तुम्हारे वियोग में मैं अनुभव कर रही हूँ। तुमसे अपने दुःखों को क्या रोऊं ? बनावट के अपराध से डरती हूँ। जो कुछ बीत रही है, मैं ही जानती हूँ। हाय !! बिना दुखड़ा सुनाये जी की जलन भी कैसे जायगी। यह विरहाग्नि कैसे शान्त होगा। अब मुझे मालूम हुवा है कि प्रेम यदि दहकता हुवा अग्नि है, तो विरह इसके लिये घृत है। थ्येटर अब भी जाती हूं, मगर देखने के लिये नहीं ! रोने और मृगतृष्णावत् तुम्हें ढूँढने के लिये।

रोने ही से चित्त को कुछ शान्ति मिल जाती है, आँसू हैं कि निगोड़े उमड़े चले आते हैं। मगर मालूम होता है कि इस लोहे के व्यापार ने तुम्हारे हृदय पर भी अपना पूरा प्रभाव जमा लिया है ! नहीं तो क्या यह सम्भव था कि तुम्हें मेरी ज़रा भी ख़बर न होती ? मेरा जीवन निरर्थक सा होगया है। न किसी से मिलने को जी चाहता है और न कहीं सैर करने को तबीयत।

अभी परसों रवीन्द्र बाबू का लेक्चर था। भाई साहब ने बहुत कहा परन्तु मैं न गयी। जाती क्या, जाने को जी ही नहीं चाहा ! प्यारे ! मौत से पहिले मत मारो ! आपत्ति के दिन तो आयेंगेही आः !! जब उन आनेवाली आपत्तियों का ध्यान करती हूं, सिर में चक्कर आने लगता है, ईश्वर करे वह दिन देखने के लिये मैं जीती ही न रहूं ! परन्तु प्रेमोल्लास की इन गिनीगिनायी घड़ियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वियोग का दुःख मत दो । आओ, और जितनी भी जल्दी हो सके गले से लगाकर मेरे जी की जलती हुई आग को बुझाओ; नहीं तो यह क्या असम्भव है कि विरह का अथाह समुद्र धैर्य की सीमा में न समा सके ?

विरहिणी—
मोहिनी

यह चिट्ठी लिखने के बाद मोहिनी ने दूसरी चिट्ठी अपने पति को लिखी—

देहली
प्रमथ-भवन

मेरे प्यारे महेश !

इन दो सप्ताहों में तुम्हारे दो प्रेमपत्र आये। परन्तु शोक है कि मैं उनमें से एक का भी उत्तर न दे सकी । ऐसा करने में मैं ही केवल अपराधिनी नहीं हूँ। दो सप्ताह से शिरःपीड़ा से पीड़ित हूँ। किसी पहलू चैन नहीं आता ! अब कुछ आराम हुवा है। कोई सन्देह की बात नहीं है, तुमने जो ड्रामे (नाटक) भेजे हैं इनके लिये मैं कृतज्ञ हूँ। स्वास्थ्य ज़रा अच्छा हो जाय तो पढ़ना प्रारम्भ करूँ। तुम वहाँ के दृश्यों का ज़िक्र मुझसे मत किया करो। ऐसा होने से मुझे तुम से जलन होती है। मैं यदि हठ करूँ तो भाई साहब मुझे तुम्हारे पास तक पहुँचा तो देंगे, परन्तु इन्हीं के पास स्वयं इतना ख़र्च है कि मुझे यह मासिक रूप से वहाँ कुछ सहायता नहीं दे सकते। मेरा अनुमान है कि ऐसा होने से शायद तुम भी मुझे वहाँ बवालेजान समझने लगो; अस्तु ! ईश्वर चाहेगा तो वह दिन भी आयेंगे जब मैं तुम्हारे साथ उस दिव्य-भूमि की सैर करूँगी ! जी चाहता है कि इस समय तुम्हें कुछ कष्ट न दूँ ! लेकिन यह तो बतलाओ कि अपनी आवश्यकतायें भी किससे कहूं ? मेरे पास अब कोई अच्छा गाउन नहीं रहा ! किसी भी जलसे में जाती हुई शरमाती हूँ। पहले कपड़े ज़रूरत से ज़्यादा शोख़ और भड़कीले हैं ! हो सके तो अपनी पसन्द का एक गाउन बनवाकर भेज दो। आशा है कि तुम अच्छी तरह होगे।

तुम्हारी
मोहिनी

[४]

देहली के जज के इजलास में बड़ी भीड़भाड़ थी। अदालत का कमरा वकीलों से खचाखच भरा हुआ था। एक तरफ़ जज के सामने ही बड़े गर्व के साथ तनी हुई मोहिनी खड़ी थी, इसका मुंह लाल हो रहा था और मस्तक पर स्वेदविन्दु चमक रहे थे। कोई महाकवि ही इसके मस्तक पर सर्पायमान काले काले केशों और मौलिक विन्दुओं के लिये समुचित उपमा ला सकता है। हम तो केवल यही कह सकते हैं कि लाख छुपाने पर भी ये बातें इसके हृदय का सच्चा सच्चा हाल प्रकट कर रही थीं। कमरे में मौन का जैसा सन्नाटा छाया हुआ था, बाहर बरामदे में तमाशाइयों का इतना हजूम था, मालूम होता था कि सारी देहली यहीं सिमट कर आगयी है। और सच पूँछिये तो था भी वस्तुतः ऐसा ही। शहर की बहुत सी दूकानें बन्द थीं, जो खुल रही थीं उन पर भी कोई ग्राहक न होने के कारण ठाली बैठे लड़के ताशबाज़ी कर रहे थे। शहर से अदालत तक मनुष्यों का ताँता लगा हुवा था। मोहिनी को एक नज़र देखने के लिये, इसके मुख से निःसृत एक शब्द को सुनने के लिए, उस समय प्रत्येक मनुष्य अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार था।

वे लोग जो कभी व्याख्यानवाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्म्मा या महामहोपाध्याय पण्डित हरिनारायण शास्त्री विद्यासागर जैसे प्रभावशाली वक्ताओं की वक्तृता सुनने के लिये घर से बाहर नहीं निकले,—वे जिन्होंने कभी अलफ़्रेड थ्येटर में जाकर क़दम भी नहीं रक्खा—वे सदा ही परदे में बैठनेवाले रईस, जिन्हें वाइसराय के भी देहली में शुभागमन तक की ख़बर नहीं, सबके सब आज गिरते पड़ते, उठते बैठते अदालत की तरफ़ चले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहे हैं। असूर्यंपश्या (परदेनशीन) स्त्रियाँ अट्टालिकाओं पर जा जाकर बड़े चाव के साथ इस तरफ़ निगाहें दौड़ाती हैं, जिधर इनके गहरे विचार में अदालत थी. यद्यपि ये बेचारी निगाहें प्रासादों की निर्दयिनी भित्तियों से टकराकर वापस लौट आती थीं।

यह सब कुछ इसलिये था कि आज अदालत के थ्येटर में एक बड़ा रमणीय तमाशा होनेवाला है, जिसके सामने अलफ्रेड के हज़ारों तमाशे यूँ ही पानी भरते हैं। आज प्रेम के वे भेद खुलने वाले थे जो अन्धेरे में राई होते हैं, और चाँदनी में आकर पर्वत हो जाते हैं। आज मन्मथ महाराज की करामात और मानुषीय विचारों का परदा उठने वाला था। यह नितान्त असम्भव था कि रूपकुमार जैसा विद्वान् मनुष्य बलात्कार का अपराधी हो। पुलिस का यदि यह बयान है, तो हुवा करे। साक्ष्य भी यदि पुलिस की बातों का समर्थन करता है तो करे!

"भला कहे जिसे आलम उसे भला समझो।
आवाज़ए ख़लक़ को नक़्क़ारए ख़ुदा समझो॥"

वाली बात थी। संसार का फ़ैसला ही ईश्वरीय फ़ैसला माना जा रहा था। "यह सारी पुलिस की करतूतें हैं" यही एक वाक्य था जो अदालत के कमरे के सारे तमाशाइयों में भ्रमण कर रहा था। कोई कोई रसिक मुँह फेर यह बेसुरी भी अलाप रहा था कि यह कुसुमों से भी कोमल कपोल, और पत्थर से भी कड़े स्तन, यह चाल, ये अदायें, जो कुछ न करें थोड़ा है।

हमारे एक गीतापाठी भी अपने एक श्लोक को समयानुकूल बनाते हुवे पढ़ रहे थे—

मोघाशा मोघकर्म्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
आसुरीं राक्षसीं चैव दयितां मोहिनीं श्रिताः॥

और ऐसे लोगों को बेवक़ूफ़ बतला रहे थे। अस्तु!

तमाशाई भी घर के इतने ठलवे थे कि हरेक कहनेवाले की कहानी को बड़े आश्चर्य से मुँह फैलाकर सुनते थे। जिसे देखो यही चर्चा कर रहा था।

[५]

मिस्टर प्रमथ-नाथ का बयान समाप्त हुआ। अब मोहिनी कि बारी आई। इसने कहा—

"मैं अपने कमरे में रात को सो रही थी। एक बजे के लगभग 'चोर चोर' का ग़ुल सुनकर चौंक पड़ी और अपने बेंत के पलंग के समीप चार मनुष्यों को हाथापाई करते हुवे पाया। मेरे भाई साहिब (मिस्टर प्रमथनाथ) अपने दो सेवकों के साथ अपराधी को पकड़ते थे, और वह अपने तईं इनसे छुड़ाकर भागना चाहता था। मैं जल्दी से उठ कर बरामदे में चली आई। इसके बाद सेवकों को मैंने अपराधी के साथ पुलिस स्टेशन की तरफ़ जाते देखा! बस! इसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानती—"

रूपकुमार ने मोहिनी का बयान सुना और एक ठंडा साँस लिया। आँखों के सामने से परदा सा हट गया। आः!! मोहिनी! तू ऐसी शुकाक्षी (तोतेचश्म) है! तू ऐसी कमज़ोर है! तेरी वे जो के लुभानेवाली प्रेमभरी बातें, वे विरहावस्था की लम्बी लम्बी कहानियाँ सब धोके की टट्टी थीं? तूने कितनी बार आँखों में आँसू भर कर मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारी हो गयी। मेरी लाज तुम्हारे हाथ है। हा! तेरी वे सब बातें परीक्षा का एक झोंका भी न सँभाल सकीं। तूने मेरे साथ दग़ा की और मेरा जीवन मिट्टी में मिला दिया।

बेचारे रूपकुमार तो मन्मथदेव की ऊहापोह में डूबे हुवे थे। इनके वकील ने मोहिनी से जिरह के सवालात करने प्रारम्भ किये—

वकील—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि रूपकुमार तुम्हारे स्थान पर प्रायः नहीं आया जाया करता था?

मोहिनी—मैंने कभी उसे अपने स्थान पर नहीं देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वकील—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुम उसके साथ कभी थ्येटर देखने नहीं गईं ?

मोहिनी—नहीं, मैं कभी नहीं गयी ?

वकील—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुमने उसे प्रेममयी चिट्ठियाँ भी कभी नहीं लिखीं ?

शिकरे के पञ्जे में फँसी हुई फ़ाख़ता की तरह चिट्ठियों का नाम सुनते ही मोहिनी के होश उड़ गये, हाथ पैर फूल गये, बतीसी न खुल सकी, जज ने, वकीलों ने, और कई हज़ार चकित नेत्रों ने, उसकी तरफ़ दत्तदृष्टि से देखा। रूपकुमार का मुखड़ा बदला लेने के हर्ष से चमक उठा। वह मन ही मन दाँत पीस कर कहने लगा—

"अपने सुख और अपनी मानसिक प्रतिष्ठा मुझे और मेरे कुटुम्ब को बलिदान करने वाली ! दग़ाबाज़ !! तू अब भी मेरे वश में है ? मैं अब भी तुझे तेरी इस उद्दण्डता का दण्ड दे सकता हूँ ! तेरी चिट्ठियाँ, जिन्हें तूने न मालूम सच्चे दिल से लिखा था या नहीं, परन्तु जिनमें मेरे विरहतप्त प्राणों को धैर्य प्रदान करने की अनिर्वाच्य शक्ति थी, सबकी सब मेरे पास हैं ?

इसी तरह क्रोध में आकर रूपकुमार ने अपने कोट की पाकेट में हाथ डाला। जज ने, वकील ने, कई हज़ार चकित नेत्रों ने, उसकी तरफ़ दत्त-दृष्टि से देखा।

अब मोहिनी की घबराई हुई आँखें चारों तरफ़ से निराश होकर रूपकुमार के मुखड़े की तरफ़ पहुँचीं। उनमें इस समय लज्जा और प्रार्थना का सन्देश था। उनमें शिकायत भी थी और क्षमा-प्रार्थना भी !

वह आकृति से ही यह कह रही थी कि मैं अबला हूँ, अतएव अबला हूँ, ओछी हूँ। तुम मनुष्य हो, अतएव बलवान् हो। यह ओछापन तुम्हें अच्छा नहीं लगता। मैं कभी तुम्हारी थी और अब यद्यपि कई कारण मुझे तुमसे पृथक् किये देते हैं तथापि मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।

रूपकुमार की आँखों ने उत्तर दिया—यदि तुम्हारी लाज मेरे हाथ है तो इसपर भी कोई आँच न आने पायेगी। तुम्हारी लाज पर आज भी अपना सब कुछ क़ुरबान है ?

रूपकुमार के वकील ने मोहिनी से फिर वही सवाल किया—

क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुमने उसे प्रेममयी चिट्ठियाँ भी कभी नहीं लिखीं ?

मोहिनी ने बे धड़क कह दिया कि नहीं ! मैंने उसे कभी कोई चिट्ठी नहीं लिखी ? इस्तग़ासे की कार्यवाही समाप्त हुई। अब अपराधी के बयान की बारी आई। इसकी तरफ़ सफ़ाई की कोई शहादत न थी, तथापि जज को, वकीलों को और अधीर जनता को पूरा विश्वास था कि अपराधी का बयान इस्तग़ासे के इस हवाई दुर्ग को क्षण भर में बिस्मार कर देगा।

रूपकुमार जज के सामने आया। उसके मुखड़े पर धैर्य दीख रहा था और आँखों में शान्ति। हज़ारों आँखें एक मात्र उसकी तरफ़ लगी हुई थीं।

पूँछने पर रूपकुमार ने कहा—

मैं अपने अपराध को स्वीकार करता हूँ।

यह सुनना था कि लोग चकित हो उठे। एक दूसरे के मुँह को ताकने लगा और—

अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः।
गुञ्जाफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः ? ॥

का पाठ बड़े ज़ोर के साथ पढ़ा जाने लगा। दो घण्टे बीच गये, अदालत में फिर एक बार मौन का राज्य हुआ।

जज फ़ैसला सुनाने के लिए खड़े हुवे। फ़ैसला बहुत छोटा था—

अपराधी युवा है, शिक्षित है, इसलिए उसे आँखोंवाला अन्धा कहना चाहिए। वह अपराध स्वीकार करता है, मेरी राय में उसे शिक्षाप्रद दण्ड मिलना चाहिये। मैं उसे तीन साल की "क़ैद सख़्त" की सज़ा देता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई हज़ार मनुष्यों ने यह हृदयविदारक फ़ैसला सुना और कलेजा थाम कर रह गये। मालूम होता था कि कलेजों में किसी बेरहम ने भाले चुभो दिये हैं। प्रत्येक मुख पर क्रोधज नैराश्य झलक रहा था। यह इन्साफ़ नहीं है, सख़्ती है, सरासर ज़ुल्म है। यही सब लोग कह रहे थे।

मुसीबत का मारा बेचारा रूपकुमार चुप खड़ा था। यह ज़रूर है कि इसके चेहरे पर लाली की जगह अब पीलापन आगया था। आग जल चुकी थी। केवल राख बाक़ी थी। और मोहनी! आः! रूपकुमार-मोहिनी! वहीं अदालत में खड़ी टप टप आँसू बहा रही थी।

शरद्-वर्णन

[१]

अमल-जल-सरों में, शोभना, नीरजाली।
चल-अलि-कुल-शाली, क्या निराली खिली है॥
कल-रव-गति-लोला, हंसमाला, विशाला।
पुलिन-जघन, राजै, मेखला सी नदी की॥

[२]

लघुलघुजल-वीची, बाहु, रोलम्बनेत्रा।
कुवलय-मुखि, मध्ये, क्षीण-शैवाल-बाला॥
तनु-सलिल-दुकूला, फेनहासा, प्रसन्ना।
प्रिय लगत जनों को, निम्नगा, कामिनीसी॥

[३]

जल, मलिन, चले जो, त्याग मर्याद को थे।
कर, विमल सबों को, युक्त पन्था बताया॥
श्रुति-कटु, न सुहाते, शब्द, बर्हीं घनों के।
रसिक-जन, मनों को, हंस का शब्द भाया॥

[४]

गगन, विघन आशा, सुप्रकाशा विकासा।
दिशि दिशि सित काशा, हास-भा कैरवों की।
ललित-रव, खगों के, खञ्जनों के विलासा।
उडु उदय घनासा ध्वान्त नाशा निशा का॥

[५]

अमृतकर-करों के, संग से शान्त ताप।
अनुदिन अधिकाई, खूब पाई निशा ने॥
विरह-विधुर कोकी, कोक शोकाकुलों की।
अतुलित तनुता को, धारती, जीविताशा॥

[६]

मुदित-मन, चकोरी, चन्द्र, निस्तन्द्र, देखे।
चिर-चटुलित-चञ्चू, घूमती उच्च-चक्षु॥
हसित-कुमुदिनी को, गाढ आलिङ्गिता को।
सर-जल-प्रतिबिम्बी चूमता, इन्दु रागी॥

[७]

विकच-कुमुद, तारामण्डित स्वच्छ तोय।
अमलछवि, अगाधापार, निःसीमरूप॥
बहु-नद-नदि-युक्ताकार, दिग्व्याप्त देह।
जलनिधि, नभ, देखे, भेदभासै न जी को॥

[८]

झष-मकर-कुलीर-स्फूर्ति, फेनोडुशाली।
गत-जल-जलदाली, च्छेद-कल्लोलमाली॥
असिततनु, समस्तेन्दूदयोत्कर्षलब्धा।
शरदि, समसमुद्र, व्योम-सन्देह-कारी॥

[९]

जल-निधि-प्रतिबिम्बी, चन्द्र, हो, देख शङ्का।
किमु, जलपति, छत्रश्वेत, किं? गेन्दुकं वा?॥
हरि-शयन भयो, क्या? कुण्डली कुण्डलीश।
जनक-मिलन, आयो, इन्दु, आकाश से वा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारीक्रीडावन.

लक्ष्मी आर्ट, भायखळा, मुंबई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०]

कुसुमित-वनमाला, तीर नीराशयों के ।
मुदितविहग जाला मत्त षट्पाद गाना ॥
सुरभि सकल आशा मारुताधूतशाखा ।
विजय कर, जलश्री को दिपै नाचती सी ॥

[११]

विकच-कमल-पङ्क्ती, कांस-लेखा, प्रफुल्ला ।
स्फुट-कुमुद-वनाली, हंस-नक्षत्र-वीथी ॥
विषमदल, मराल- श्रेणि, चन्द्रांशु, फेन ।
शरदृतु यश मानो शुभ्रता है पसारी ॥

[१२]

सरित, प्रतनु-तोया, पङ्क-हीना, धरित्री ।
सुगम, सुखद, पन्था, सेतु, दीर्घापगा का ॥
नरपति-जय-इच्छा, व्याध आखेट-वाञ्छा ।
मदयुत वृषभों की, गर्जना, सुष्ठु भाती ॥

[१३]

विनत, फल भरों से, पिङ्गला, पक्वता से ।
शुक शलभ खगों से, रक्षिता, कर्षकों से ॥
असित-कमल-जालों, से युता मध्यमध्ये ।
वन, उपवन, सोहै, धान्य-पङ्क्ती, मनोज्ञा ॥

[१४]

परिणत-फल, खेती काट कै, कर्षकों ने ।
भुसरहित, बनाया, शोधकै अन्नसारा ॥
सफल शरद आये, मोद छाये सबों में ।
कृषिकर, फल पाया, खेद जी का मिटाया ॥

[१५]

प्रचुर-पयवती, गौ, काननों में चरैं हैं ।
सवृषभ, कृतरक्षा, मुग्ध-गोपालकों से ॥
दधि-मथनपरा, जो, गोप-पत्नी, व्रजों में ।
प्रचलित तनु, सो, हैं, सोहती नाचतीसी ॥

[१६]

हरिण-गण, कुरङ्गी-यूथ को सङ्ग लेकै ।
तृण-भरित-मही, में, कूदते, चित्त मोहैं ॥
गिरि-गहन-विहारी, के खनों को विचारे ।
सुन करि-शिशु, केलि, त्याग, भागें अधीर ॥

[१७]

निशि, कुमुद-वती को, भोग निःस्नेह भौंरा ।
स्फुटित-कमलिनी के, पास है प्रात जाता ॥
यह कुमुद-वती ने, देख संकोच धारा ।
परिचय मलिनों का, कौन को मोददाता ॥

[१८]

प्रिय-विरह-निशा में, पाय सङ्कोच-शीला ।
समसुख दुख कोकी, के खनों से न बुद्धा ॥
अरुण निजकरों से, पूँछता पद्मिनी के ।
दल-नयन-निलीन, प्रात प्रालेय अश्रु ॥

[१९]

पतित जलधि-मध्ये, पद्मिनी-बन्धु, देखा ।
खल-कुमुद-गणों ने, हास अत्यन्त कीना ॥
सहचर मधुपों के, मित्र के जो विरोधी ।
लख पर दुख हर्षी शुभ्रता धिक् तिनों की ॥

[२०]

सरसिज कुमुदों को, हास, ह्रास, क्षणेन ।
सह समयनियोग प्राप्त जो प्रात देखा ॥
मुदित, करुण, जैसे पुष्प, प्रालेय-पात ।
मिष विहसन, अश्रु-स्राव कीना, तटद्रु ॥

[२१]

विमल-जल निगूढ़, भ्रान्तमत्स्यप्रदूरात् ।
खल-बक, नभचारी, देख आ, तीर बैठा ॥
अचलतनु, तनू को, धार कै एकपादे ।
स्थल-कमल खिला सा, देखने में दिपै है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२२]

विजय-दशमिकासे, शारदी पौर्णमासी।
अहह यह अहोई, दीपमाला विशाला॥
शुभगिरिवरपूजा क्या छटा चन्द्रिका की।
जन-मन-मुद-दाता, यूँ शरत्काल भाता॥

वासुदेव उपाध्याय

भास और शूद्रक

भास कवि का नाम अब तक केवल दो एक कवियों के काव्यों में मिला करता था। कालिदास अपने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास कवि के बारे में लिखते हैं—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य इत्यादि"। राजशेखर और बाण-भट्ट के काव्यों में भी भास कवि और उनके नाटकों के बारे में लेख मिलता है। किन्तु अब तक उनका कोई नाटक देखने में नहीं आया था। हाल में ट्रावंकोर राज्य के प्रसिद्ध पण्डित गणपति शास्त्री ने भास के नाटकों को ढूँढ निकाला है और उनमें से कई एक को ट्रावंकोर राज्य की ओर से छपाकर प्रकाशित किया है। भासकृत "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक के प्रारंभ में उक्त शास्त्रीजी ने एक विस्तृत भूमिका लिखी है जिस में उन्होंने भास का समय-निरूपण, और उनके काव्यों का गुण-दोष-विवेचन भली प्रकार किया है। उसी भूमिका में उन्होंने भास कवि कृत "दरिद्रचारुदत्तम्" नाटक का शूद्रक कृत "मृच्छ-कटिक" नाटक से मिलान किया है। इन दोनों नाटकों का न सिर्फ प्लाट एक है वरन पूरे वाक्य के वाक्य और श्लोक के श्लोक एक दूसरे में उठाकर रख दिये गये हैं। 'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक के पहले अंक में एक श्लोक है:—

यासां वलिर्भवति मद्गृहदेहलीनाम्
हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पः।
तास्वेव पूर्ववलिरूढ़यवाङ्कुरासु
वीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढ़ः॥

इसी के जोड़ का "मृच्छकटिक" में यह श्लोक है:—

यासां वलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव संप्रति विरूढ़तृणाङ्कुरासु,
वीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढ़ः॥

अर्थात्—जिस हमारे घर के द्वार की बलि को हंस और सारसगण, बलि के डालते ही, तुरन्त चुग लेते थे, उसी का अब दरिद्रता के कारण मरम्मत और सफ़ाई न होने से चींटी और भटे खाद लेते हैं।

भास के "दरिद्रचारुदत्तम्" नाटक के तीसरे अंक में यह श्लोक है:—

"मार्जारःप्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने,
निद्रा सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने संसर्पणे पन्नगः।
माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग् देशभाषान्तरे;
दीपो रात्रिषु संकटे च तिमिरे वायुः स्थले नौर्जले॥"

इसी के जोड़ का एक मृच्छकटिक के तीसरे अंक में भी है:—

मार्जारः क्रमणे मृगः प्रसरणे श्येनो ग्रहालुंचने
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने श्वा सर्पणे पन्नगः।
माया रूपशरीरवेशरचने वाग् देशभाषान्तरे
दीपोरात्रिषु संकटेषु डुडुमो वाजी स्थले नौर्जले॥

अर्थात्—चलने में बिलार सदृश, दौड़ने में मृग समान, किसी को पकड़ने में बाज के समान, सोये या जागे हुए मनुष्य के वीर्य की जाँच करने में कुत्ता के समान, छाती के बल चलने में साँप, एक वेश छिपा दूसरा वेश बनाने में अर्थात् कपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश बनाने में बहुरूपिया या इन्द्रजाल, हर एक देश की भाषा बोलने में सरस्वती समान, रात के समय दीप, स्थल में घोड़ा और जल में नौका सदृश मैं हूँ।

लिम्पतीव तमोंऽगानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

अर्थात्—अंग मानों अन्धकार से लीप दिया गया है, अथवा आकाश ने मानों काजल की वृष्टि की हो। दृष्टि खल मनुष्य की सेवा के समान विफल हो गई है। यह अन्धकार का वर्णन है।

ऊपर का यह श्लोक दोनों नाटकों में एक-साही पाया जाता है।

"दरिद्रचारुदत्तम्" की प्रस्तावना में है—"किराणु खु अज्ज पच्चू ए एव्व गेहा दो णिक्खन्तस्स बुभुक्खाए पुक्खरपत्त पडिदजलबिन्दु-विअ चलचलाअन्ति विअ मे अक्खीणि (परिक्रम्य) जाव गेहं गच्छिअ जाणामि किराणु खु सविधा विहिदा ण वेत्ति। एदं अह्माणं गेहं। जाव पविसामि।"

वही भाव "मृच्छकटिक" में भी इन शब्दों में है:—

".....चिरसंगी दो वासणेण सुक्ख पोक्खरणा लाइं विअ मे बुभुक्खाए मिणालाइं अंगाइं। ता जाव गेहं गदुअ आणामि अत्थि किंपि कुटुम्बिणी ए डवगदिअं ण वेत्ति। (परिक्रम्य) एदं तं अह्माणं गेहं ता पविसामि।"

और भी अनेक समान वाक्य और श्लोक दोनों में हैं, किन्तु विस्तारभय से यहाँ उद्धृत नहीं किये जा सकते। दोनों नाटकों में "चारुदत्त" की ही कथा प्रधान है। इससे यह सिद्ध होता है कि एक दूसरे के आधार पर लिखा गया है। पण्डित गणपति शास्त्री ने सिद्ध किया है कि "दरिद्रचारुदत्तम्" नाटक के आधार पर "मृच्छकटिक" नाटक लिखा गया है, न कि "मृच्छकटिक" के आधार पर "दरिद्रचारुदत्तम्"। कारण यह कि यह बात केवल बाद के नाटकों में देखी जाती है कि नाटक और उसके रचियता का वृत्तान्त प्रस्तावना में साफ़ साफ़ दिया गया हो। "मृच्छकटिक" की प्रस्तावना में कवि और उसके नाटक का वृत्तान्त पाया जाता है, किन्तु "दरिद्रचारुदत्तम्" में यह बात नहीं पाई जाती, जिससे विदित होता है कि "मृच्छकटिक" बाद का है। दूसरे यह कि "मृच्छकटिक" में बहुत उत्तम उत्तम श्लोक हैं जो "दरिद्रचारुदत्तम्" में नहीं मिलते। अतएव यह सिद्ध होता है कि भास कवि के "दरिद्रचारुदत्तम्" नाम के छोटे नाटक में उत्तम उत्तम श्लोक जोड़ कर और नई नई बातें मिलाकर उसकी कथा को शूद्रक कवि ने खूब बढ़ाया और उसे अपने नाम से प्रसिद्ध किया।

पं० गणपति शास्त्री भास का समय ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के पहले निश्चित करते हैं। विष्णुगुप्त (चाणक्य) अपने अर्थशास्त्र में एक स्थान पर यह श्लोक उद्धृत करते हैं—"नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्। तत्तस्य माऽभून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्" यह श्लोक भास कवि के "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" नाम के नाटक में पाया जाता है। शास्त्रीजी के विचार में यह श्लोक भास ही का रचा हुआ है, जिसे चाणक्य ने इस तरह पर कोट किया है:—"अपीह श्लोको भवतिः—नवं शरावं सलिलस्य पूर्णमित्यादि"। चाणक्य का समय ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी माना जाता है। इस तरह से भास का समय चाणक्य के समय से भी पहले स्थिर होता है।

कालीदास के समय में भास के नाटकों का बहुत प्रचार था। इस बात का प्रमाण कालीदास का, "मालविकाग्निमित्र" में, यह लेख है—"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनामित्यादि;" किन्तु शूद्रक के समय तक भास के नाटकों का प्रचार इतना कम हो गया था कि शूद्रक को बहुत यत्न के साथ भास के "दरिद्रचारुदत्तम्" नाटक के बहुत से श्लोकों और काव्यों को ढूँढ़ ढूँढ़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने "मृच्छकटिक" नाटक में रखना पड़ा, तथा उन्होंने उस संक्षिप्त नाटक को बृहत् आकार में करके अपने नाम से प्रकाशित किया।

भास के नाटकों का प्रचार क्यों उठ गया और अब तक उनका पता क्यों नहीं लगता था इसका कोई गूढ़ कारण है, क्योंकि इनमें नाटक-संबन्धी जितने गुण हैं सब पाये जाते हैं। "मृच्छकटिक" क़रीब क़रीब "चारुदत्तम्" नाटक का दूसरा ही रूप है। अतएव ऐसा मालूम पड़ता है कि लोग इस नाटक को भी बहुत प्राचीन समझने लगे, इस विचार से कि शूद्रक "मृच्छकटिक" का मूल लेखक है। यद्यपि शूद्रक ने और कुछ नहीं केवल यह किया कि पुराने मसालों को लेकर एक नया नाटक गढ़ डाला। पण्डित गणपति शास्त्री के मत से शूद्रक बहुत प्राचीन नहीं हैं। उनका विचार है कि कालिदास के बाद शूद्रक हुए, क्योंकि कालिदास के समय में भास के नाटकों का प्रचार अच्छी तरह था, और शूद्रक के समय में भास के नाटकों का पठनपाठन इतना घट गया था कि शूद्रक को "दरिद्रचारुदत्तम्" नाटक के श्लोकों और वाक्यों को बीन बीन कर सुरक्षित रखना पड़ा और उस नाटक को एक दूसरे स्वरूप में ढालना पड़ा।

जनार्दन भट्ट

मूलसहित

हिन्दी-कुमार-सम्भव

पहिला सर्ग।

हिम-गिरि-वर्णन

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य,
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥१॥

उदीची आशा * में, विदित सुर है रूप जिसका
पहाड़ों का राजा, "हिमगिरि" यही नाम धरके।
फैलाले औ पूर्वी सलिल-निधि के बीच बढ़ के
धरा † की मानो माप यह करने स्थित हुआ॥१॥

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं
मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥२॥

सभी ही शैलों ने, इस गिरि हि को मान बछड़ा
किया है दोग्धा ‡ मेरु इस विधि में था कुशल जो।
दुहीं पृथ्वी से हैं, तब हि मणि औ औषध भलीं
इसी पृथ्वी को था, नृपति पृथु ने सूचित किया॥२॥

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥३॥

अनेकों || रत्नों का यह विदित कर्ता गिरि हुवा
न पाला भी इसके सुभगपन का नाशक हुआ।
गुणों में थोड़ा सा अवगुण नहीं दीख पड़ता
यथा चन्दे का श्यामपन किरणों में न रहता॥३॥

यश्चाप्सरो विभ्रममण्डनानां
सम्पादयित्री शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागा-
मकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥४॥

यही सिन्दूरों को, निज शिखर से धारण करे
इनी सिन्दूरों से, अमर-अबला, भूषण करें।

---

* उत्तर दिशा में। † पृथिवी ‡ दुहनेवाला।
|| (अथवा) अनेकों रत्नों की, चमक इसमें थी नित घनी
न पाले ने इनकी कुछ चमक को है कम किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनी से मेघों के *शकल बिच राग च्छय रहा
अहो! सच्ची जानो, हिमगिरिभि संध्या-सम हुवा॥४

श्रामेखलं सञ्चरतां घनानां
छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते
शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥५॥

नितम्बों लौं जिसके, भ्रमण करते, मेघगण जो,
इनों के नीचे की, शिखरगत छाया, बस कर ।
वहाँ की वर्षा से, अति दुखित हो सिद्धगण भी
जहाँ धूपोंवाले, शिखरगण का सेवन करें ॥ ५ ॥

पदं तुषारस्रुति धौतरक्तं
यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नगरन्ध्रमुक्तै-
र्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः॥६॥

धुला है पाले से, मृग-पति-पदों का रुधिर भी
लगा था इनके जो गजहनन में शोणित जहाँ ।
कहा व्याधों ने यूँ, नख पतित मोती लखकर
"गजों के हन्ता सिंह इस पथ से हैं अब गये" ॥६॥

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र
भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणा-
मनङ्गलेखक्रिययोपभोगम् ॥ ७ ॥

गजों के बिन्दु की, सम अरुण हैं, भोजदल जो †
उनी में गेरू से, लिखकर, इसी पर्वत पर ।
संदेशा भेजे हैं, प्रिय निकट में यक्ष-अबला
लिखा जाता इसमें, मनसिज‡ हि का वर्णन भला॥७॥

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्
दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां
तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥८॥

गुहा ही को मानो, मुख, इस स जो वायु निकला
उसी को बाँसों के, भर विवर में ये हिमगिरि ।
खड़े गाने को उच्च सुर भर के यक्ष गण जो
उनी को मानो ताल अब यह देना चह रहा ॥ ८ ॥

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं
विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः
सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥९॥

कपोलों का खर्जू, अपगम* करें हैं गज यदा
तदा होते हैं हा!, सरल विटपी घर्षित जहाँ ।
इनी वृक्षों द्वारा, निसृत पय से निर्गत हुई
सुगन्धी ने जिसकी, शिखरगण कीना सुरभित ॥९॥

वनेचराणां वनितासखानां
दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः ।
भवन्ति यत्रौषधयोरजन्या-
मतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥ १० ॥

गुहा गेहों में भी, चमक पड़ती है जिन हि की
जहां रात्री में हैं, इस तरह की औषध घनीं ।
सखी स्त्री हैं जिन्की, इस तरह के यक्षगण का
करें दीपों का काम रतिसुख में तैल बिनही ॥ १० ॥

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागा-
न्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता
भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः॥११॥

* टुकड़े । † "पचास वर्ष के हाथी के सारे शरीर में भोजपत्र जैसी लाल बिन्दु हो जाती है" ऐसा गजविद्या के जानने वाले कहते हैं । ‡ कामदेव ।

* दूर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां एड़ी औ अंगुलि भि चरणों की अति गलें
वहां के पाले में सुख-युत चलें यक्ष-अबला।
हुई धीमी धीमी, गति, कुचनितम्बों स इनकी
यहां के मार्गों की, हिमततिभि पाषाणसम* है ॥११॥

दिवाकराद् रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥ १२ ॥

दिवा † में उल्लू तुल्य रवि भय से प्राप्त तम जो
करे रक्षा उसकी, रख यह, गुफा-मध्य, अपनी।
बड़े जो होते हैं, अधम जन की भी निकट में
करें हैं रक्षा वे, समझ, अपना सज्जन सम ॥ १२ ॥

लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभै-
रितस्ततश्चन्द्रमरीचगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं
कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्य्यः॥१३॥

स्वपुच्छों से इसको, चमर चमरीपुञ्ज ‡ करता
"पहाड़ों का राजा यह हि" यह मानों कह रहा।
इसी से ही पूछें, निकट इसके हैं हिल रहीं
अहो! ये चन्दे की, किरण-सम, प्यारी लगरहीं॥१३॥

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां
यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बा-
स्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति॥१४॥

जिनोंने, वस्त्रों को, सुरत-झगड़े में तज दिया
बड़ी लज्जा-युक्ता, सकुचित जहां यक्ष-अबला।
गुहागेहों के द्वार पर जब ये दृष्टि करतीं
मिटातीं शङ्का देख जलधर, पर्दे-सम तमी ॥ १४ ॥

भागीरथीनिर्झरसीकराणां
वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥१५॥

किरातों ने जिसके, इस पवन का सेवन किया
यही गङ्गाजी के, विमलकण को प्राप्त करता।
* कँपावे कल्पद्रु, विकिरण करे, मोर-छद को †
वहां घूमें ये किन्नर हरिण अन्वेषण करें ॥ १५ ॥

सपूर्षिहस्तावचितावशेषा-
रयधो विवस्वान् परिवर्तमानः।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि
प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥ १६ ॥

नितम्बों में जिसके, भ्रमण करता ये दिनकर ‡
खिलावे पद्मों को, किरण वन § से नित्य अपने।
|| तड़ागों में जन्मे, ऋषि भि कर से त्रोटन करें
पड़े इन पद्मों में, किरण गण ऊर्ध्वानन हुवा ॥१६॥

यथाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य
सारं धरित्रीधरणक्षमञ्च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं
शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥१७॥

धरा के बोझे को, सहन करने में कुशल ये
सभी यज्ञों के साधन भि यह सम्पादन करे।
यही जान प्रजा पति न, मख भागी, स्वगुण से
सभी शैलों का राज्य इस गिरि को अर्पण किया ॥१७॥

---

* पत्थर के समान। † दिन। ‡ सुरा गायों का समूह।

* कल्पवृक्ष को कंपाने वाला।
† मोरों के पंखों को बखेरनेवाला। ‡ सूर्य। § किरण समूह। || तालाबों में पैदा होनेवाले इन कमलों को ऋषि हाथ से तोड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रगुप्त

यवन कौन हैं ? और अलक्सान्द्र (Alexander) कौन है ? सुनते हैं यह हमारा देश कभी पहले यवनों से आक्रान्त हुआ था। शुक्र अपने नीति-ग्रन्थ में लिखते हैं "यवना नास्तिकाः, तेषां मतं याचनम्।" कात्यायन ने "यवनाल्लिप्याम्" वार्तिक कह, 'यवनानी' शब्द की निष्पत्ति सुझाई है। कविसार्वभौम कालिदास, "यवनीमुखपद्मानाम्" आदि श्लोकों से यवन-ललनाओं के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। यवनियों के शिरीष-कुसुम सुकुमार अंगों की मधुरिमा पर "यवनी-नवनीत-कोमलाङ्गी" कह पण्डितराज लटटू हैं। वराहमिहिर ने भी किसी यवनाचार्य्य का ज़िक्र किया है। और ज्योतिःशास्त्र-प्रसिद्ध कुछेक पद यवनों से लिये गये हैं,—यह भाषा तत्त्ववेत्ताओं का डिण्डिम नाद है। जो हो, यह बात पक्की है कि इस देश में किसी समय यवनों का ख़ूब दौर दौरा रहा है। उनकी जन्मभूमि या निकास का स्थान यूरोप के अन्तर्गत ग्रीस नामक भूभाग स्थिर किया गया है। आज से कोई तेइस सौ वर्ष पहले दिग्विजयी अलक्सान्द्र नामक यवन चक्रवर्ती का वहाँ जन्म हुआ। और वह भारी सेना साथ लेकर जैत्रयात्रा के लिये निकल खड़ा हुआ। क्रम से ऋषिप्रस्थ (Egypt) आदि देशों को जीत, पारसीक [को पछाड़, भारतवर्ष की जिगीषा से सिन्धु के किनारे तक आया और परिसर में स्थित कितने ही नगरों को अपनाया, जगह जगह यवन-राष्ट्र स्थापित कर डाले।

उसके साथ के जस्टिन् (Justin) आदि विद्वानों ने स्वलिखित ग्रन्थों में यूँ दर्शाया है—"अलक्सान्द्र के भारतवर्ष से चल देने के बाद, यवनों से च्युत किये गये राजाओं को फिर से उनके राजपाट सौंप, क्रमशः वश में कर, संद्रकोट (Sandracottus) एकच्छत्र साम्राज्य का सुख लूटने लगा। यह नीच जाति का था, किन्तु देवताओं के विशेष अनुग्रह से इस पद तक पहुँचा। इसकी दुर्विनीतता पर क्रुद्ध हो अलक्सान्द्र ने वधदण्ड की आज्ञा दी, पर वधस्थल से जल्लादों को धोका दे, भाग निकला, और बच गया। दुर्गम कान्तारों में घूमता फिरता, भूख प्यास से दुःखी हो भूमि में ज्यों ही लेटा कि सम्पूर्ण वन को कम्पित करती हुई निर्घोषगम्भीरा मृगेन्द्रध्वनि सुन पड़ी, परन्तु डर की कोई बात न थी, बल्कि सिंह ही स्वयं हलता काँपता आया और पाँवों में लोट कर श्रमसम्भूत पसीनों को चाट, चुपके से खिसक गया। सन्द्रकोट को इस घटना से भारी आश्चर्य हुआ, और उत्साह भी। उसने सोचा कि अवश्य मेरे पुण्य कर्मों का उदय होगा। उसी क्षण उठ बैठा और स्तेन, किरात, आदि जंगली उजड्ड जातियों को इकट्ठा कर, नागरिकों का साहाय्य ले, यवन वीरों के सामने आ डटा, और विजयी हुआ। सुनते हैं कि कभी वन में छावनी डालते समय, एक जंगली हाथी ने चिरपरिचित की भाँति इसका आलिंगन किया था। जो हो, वीर सन्दुकोट साम्राज्य भोगने लगा। अलक्सान्द्र के भारतीय सेनापति शैलाक्ष ने (Seleucus) भी इसके साथ सन्धि की इच्छा की।"

सिन्धु नदी के परिसर में कुछ समय तक छावनी डालकर, अलक्सान्द्र चक्रवर्ती ने आप्त दूतों के द्वारा भारत वर्ष के मध्यदेश की दशा इस प्रकार सुनी—'सिन्धु नदी के पूर्व में, पहले पहल बारह दिन में तै होने योग्य बड़ा भारी मरुप्रदेश है। (मरुस्थल या बागड़ उसी देश का नाम है जहां सिवाय बालू के टीबों के आँखें फाड़कर देखने पर भी, सैकड़ों कोस तक कुछ नहीं दीख पड़ता, जहाँ जलही अमृत है, और जिसके नाम से बनिये का दम खुश्क होता है, जहां गिरोह के गिरोह गर्द में लदपद हो जाते हैं, और जो 'पटपड़ की नाव' (उष्ट्रदेव) की कृपा के बिना दुस्तर हैं। वही 'मरुकान्तार' कहे जाते हैं।)

'उसी मरुस्थल की पूर्व दिशा में गंगा नाम की नदी बहती है। उसके तट पर प्राच्य रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका राजा सान्द्रेमस् (Xandrames) स्वयं महावीर है, दो हज़ार रथ, चार हज़ार हाथी, बीस सहस्र घोड़े, और एक लाख पैदल बात की बात में संग्राम के लिये इकट्ठा करने और लड़ाने में समर्थ है।'

यवन चक्रवर्ती को दूतों की इन बातों पर पूरा विश्वास नहीं आया और आसन्नवर्ती पुष्कलावती के राजा पुरुषोत्तम से इस विषय में पूछा। राजा ने उत्तर दिया—बेशक, ये सब बातें सच हैं, परन्तु सुनते हैं कि वह राजा किसी नाई की पुन्याई है राजमहिषी नाई पर इतनी आसक्त हुई कि पतिको मार, नाई से पैदा हुए बेटे सान्द्रेमस् को राष्ट्रभार सौंप दिया।

पुरावृत्तवेत्ता कर्टियस् इस प्रकार लिखता है—'सान्द्रेमस के बाप ने बहाने से राजा को मारा और फिर पोषक होकर निरअपराध मुग्ध राजपुत्रों को बड़ी नृशंसता से एक एक कर यमपुर पहुँचा दिया, और बाद में अपने पुत्र को मूर्धाभिषिक्त महाराज बना डाला।'

'सन्द्रकोट'(Sandracottus) नामक मशहूर नरपति पालिबोत्र (Palibothra) नगर में रहता था—जिसकी सभा में मगस्तनि (Magasthenes) नाम का चतुर एलची, यवन यूथपति ने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था, इसके साथ सेनापति शल्यक ने सन्धि की और सिन्धु के पूर्वी देश को दे, बदले में पांचसौ हाथी लिये, इसी ने छै लाख पैदल सेना ले सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को जीत लिया।' यह स्ट्राबो (Strabo) महाशय का मत है।

अस्तु, जब हम ध्यानपूर्वक सोचते हैं तब भारतीयों से लिखी गई चन्द्रगुप्त की कथा का यवनों से उपवर्णित सन्द्रकोट के चरित का परस्पर सादृश्य पाते हैं। निम्नलिखित बातें ध्येय हैं—

(क) सन्द्रकोट ने पालिबोत्र में नवीन साम्राज्य का स्थापन किया—यवनमत,

चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र में नवीन मौर्यराजवंश की स्थापना की—भारतीय मत,

(ख) स्तेन, किरात और वनवासियों की अखंड सेना की सहायता से, सन्द्रकोट ने राज पाया—यह स्ट्राबो प्रभृति पुरावृत्त पण्डितों की राय है,

उसी प्रकार के सैन्य को ले चन्द्रगुप्त ने विजय पाया—यह ब्राह्मण और सौगतों का सिद्धान्त है,

(ग) देवताओं की कृपा और भाग्य की प्रबलता से सन्द्रकोट महाराजा बना—यह यवनों की भावना है।

चन्द्रगुप्त को चाणक्य की सहायता से राज्य प्राप्ति हुई—इसमें भी भारतवासियों का कुछ ऐसा ही अभिप्राय है।

इस कारण से चन्द्रगुप्त ही सन्द्रकोट है, इस सिद्धान्त के मानने में कोई आपत्ति नहीं दीख पड़ती। बौद्धमत-प्रचारकों में अग्रगण्य अशोक के पितामह होने के कारण, बौद्धों ने चन्द्रगुप्त के उत्तम क्षत्रिय होने की कथायें रच डाली हों, यह सम्भव है और इधर यह भी आश्चर्य नहीं कि ब्राह्मणों ने उसके बौद्धपने से चिढ़कर नीच ठहराने की अनुरूप कल्पनायें गढ़ डाली हों।

यवन, ख्रिस्त वत्सर से तीनसौ वर्ष से पूर्व इस देश में आये। और चन्द्रगुप्त भी उसी समय हुआ, यह निर्विवाद है। अतः इन दोनों में नाम के भेद के सिवाय और कोई भारी अन्तर नहीं दीख पड़ता।

श्रीहरिहरसुरूप शर्मा

भारतवासियों का साम्प्रतिक युद्ध के प्रति कर्त्तव्य।

वसन्ततिलका

[१]

प्यारो! विचार मन में कर नेक देखो?
राजा प्रजा कि इतरेतर जैसि नीति।
राजा पिता, तनय है सब लोक, वाको
प्रीती उनों कि चहिये अरु रीति ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

पालै नृपाल सब लोक समान सुनु
सूनू समान सब लोक नृपाल पालै।
ज्यों हस्त दक्षिण विशुद्ध करै द्वितीय,
त्यों हस्त वाम, कर दक्षिण, शुद्ध कर्ता॥

[३]

ओजार्ज पञ्चम तथा तिहि पूर्वजों ने
पाला समान सुत के यह देश सारा।
शत्रूजनों स जब युद्ध छिड़ा उनों का
कर्त्तव्य पालन हुवा चहिये हमारा॥

[४]

भूमी हिरण्य रजतादि सुत प्रियादि
जो वित्त चित्त तन धाम अहै तुमारा।
सो, सर्व देकर करो स्थिर राजभक्ति
चूको न मित्र! समयोचित नेह सारा॥

[५]

जीना वृथा ह उसका मरना हि अच्छा
जो पूर्व रक्षित नहीं उपकार कर्त्ता।
ऐसा जु नीति कहती ह उसे विचारो
हो जन्मभूमि जननी कुलकीर्त्तिकर्त्ता॥

[६]

जागो! उठो! समरभूमि चलो! निहारो!
टारो! महान अरि का गुरुदर्प सारा।
जो! कीर्त्ति हाथ, निज नाथ जयी बनाओ!
मारो मरो, न पग एक धरो पिछारी॥

[७]

देखो! बड़ों कि अपने तुम जीवनी को
जो द्रोण, भीष्म, शल, शल्य, जयद्रथादि।
भूरिश्रवा, द्रुपद, सौबल, से महीपा
दे युद्ध बीच सिर, देव शरीर धारा॥

[८]

धर्मार्थ युद्ध करते नरपाल जार्ज
गर्वार्थ कैसर करे धरणी दुखारी।
हो धर्मजीत, अरु गर्व घटे अरी का
ऐसा करो, समर वीर! महीपलाला!॥

[९]

श्रीकृष्ण ने नृपति को निज रूप माना *
भूपाल देवसम ही मनु ने बखाना †।
श्रीकृष्णभक्त! सुरभक्त! सुनो हमारी
वाणी महीप महिमा कहि शास्त्र भारी॥

[१०]

ऐ हिन्दुओ! सब करो, मिल राजभक्ति
है ईशभक्ति सम सुन्दर राजभक्ति।
दे तुष्ट विष्णु तुम को चिर राजभक्ति
क्या क्या न देति फल सुन्दर राजभक्ति॥

श्रीदत्तात्रेयजी के २४ गुरु

[१]

प्रथम गुरु पृथ्वी क्षमा की परम सीमा धारती।
जो सुजन औ दुर्जन सभी को धारती नहिं मारती॥

[२]

गुरु दूसरा है वायु जो गुण-दोष में समता गहै।
जैसे सुगन्धित पै वहै मल-मूत्र पै तैसे वहै॥

[३]

गुरु तीसरा आकाश सबके पास सबसे दूर है।
तैसे वहै आत्मा चराचर में रहा भरपूर है॥

---

* नराणां च नराधिपम् [गीता]

† सर्वदेवमयो राजा मनुना सम्प्रकीर्तितः।
तस्मात्तमेव सेवेत न व्यलीकेन कर्हिचित्॥ [पाराशर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

चौथा गुरू जल एक अनुपम गुण धरै कैसा भला।
जो दूसरों की मलिनता धोता हुआ रह ऊजला॥

[५]

पाँचवाँ गुरु अग्नि जो कुछ देय उसको खावता।
लेकर उसीसे अधिक गुणयुत पुण्य तुरत दिलावता॥

[६]

छठा गुरु है चन्द्रमा जो देत ऐसा ज्ञान है।
क्षयवृद्धि जगका धर्म कबहुँ न रहत समय समान है॥

[७]

सातवाँ गुरु सूर्य शिक्षा देय अपने भाव से।
कीजे करों से ग्रहण अरु दीजे समय पै चाव से॥

[८]

आठवाँ गुरु बाणकर्त्ता सीख देत सुहावनी।
मन लगा कर काम कर तब मिलै सिद्धि सुभाविनी॥

[९]

नवम गुरु पक्षी कपोत चरित्र शिक्षा देत है।
अति संग अपनी प्रियतमा का प्राण निश्चय लेत है॥

[१०]

निर्द्वन्द्वता का पूर्ण परिचय दशम अजगर देत है।
खावै तबहि घर बैठे आवै भली नहिं तो रेत है॥

[११]

ग्यारवें गुरु सिन्धु का कैसा स्वभाव अनूप है।
छोड़ै नहीं मर्याद को बिन पाज जैसे कूप है॥

[१२]

बारवाँ जलता पतंग बताय अवगुण रूप में।
मेरे समान सुरूप का रसिया गिरै दुख-कूप में॥

[१३]

तेरवाँ गुरु भृंग लेकर पुष्परस सिखलात है।
सार को लेवै चतुर अरु मूर्ख चक्कर खात है॥

[१४]

चौदवां गुरु मक्षिका संग्रह दशा बतलात है।
बिन दान भोग किये वृथा धन आय जैसे जात है।

[१५]

पन्द्रवां गजराज गुरु स्त्रीसंग फल दिखलात है।
स्वछन्द भी पड़ि खड्ड में साँकल से बाँध्यो जात है।

[१६]

सोलवाँ मधु ग्रहणकारी देय मधु को छीन के।
संग्रहपरायण का विभव लूटै चतुर इमि बीन के॥

[१७]

सत्रवाँ गुरु हरिण गीत असक्ति बहुत निवारता।
मैं गान के वश में हुआ मोइ नाँहि कोइ उबारता॥

[१८]

अट्ठारवाँ गुरु मत्स्य शिक्षा देय छोड़ो स्वाद को
मैं जीभ के कारण मरा तज दी जभी मर्याद को॥

[१९]

उन्नीसवीं गणिका हमें शिक्षा यहै बतलात है।
जन जन के मनको राखती सो बाँझ पन फल हात है।

[२०]

बीसवाँ गुरु कुरर कहता गुप्त भोगो भोग को।
सबल पक्षी छीन लीना खाद्य देकर रोग को॥

[२१]

इक्कीसवाँ गुरु शिशु स्वभाव विचित्र अपना धारता।
जे मान अरु अपमान सम उसको न कोई मारता।

[२२]

बाईसवाँ गुरु द्विजसुता एकान्तवास बतात है।
जहँ रहै सब विधि शांति अरु नहिं कोइ किसे सताता

[२३]

तेईसवाँ मकड़ी बतावै ईश्वर के काम को।
जो सृष्टि को रचि अंत में रख लेत केवल नाम को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२४]

चौबीसवाँ गुरु कीट शिक्षा देत मंगलकारिणी ।
सत्संगपूर्वक हरि भजै तब भक्ति भवजलतारिणी ॥

शिवदत्त त्रिपाठी

शरद्-वर्णन

[१]

अहह ! ठण्ड बड़ी पड़ने लगी
रजनि भी क्रम से बढ़ने लगी ।
घट गई दिन की गुरुता अहो !
सच नहीं कहदें किसकी कहो ? ॥

[२]

शरद में सबही द्विज लोग हा !
जलविहीन करें विधियाँ अहो ! ।
जल समेत करें द्विज जो सही
कर नहीं मुख लों ह पहुँचता ॥

[३]

तगड़ियाँ तज नार-समूह ने
विवश वस्त्र हि धारण हैं किये ।
अहह ! बे तगड़ी इनको किया
शरम की कुछ भी हद ना रही ॥

[४]

शरद ! सत्य हि कारण आपके
नम नहीं पड़ता सच कौन है ? ।
मनुज की नहि बात यहाँ, सुनो !
कुसुमिता नमिता द्रुमवल्लरी ॥

[५]

मन बढ़ा पर नाम बढ़ा नहीं
दिन घटा पर काम घटा नहीं ।
विधि कहो यह कैसि अयोग्यता
तुम अहो ! करते भि थके नहीं ॥

[६]

शरद-वर्णन नग्न-शरीर हा !
कर सकूँ नहि दीन दरिद्र मैं ।
शरद से मन थर्थर काँपता
लिख नहीं सकता यह हाथ है ॥

"कुमुद"

विविध विषय

१—शास्त्रिपरीक्षा

ठीक ३ महीने पीछे, अब (भाद्रकृष्णपक्ष में) पञ्जाब यूनिवरसिटी की शास्त्रिपरीक्षा का परिणाम निकला है । अब की बार यह ज़रा देर से निकला। देर होने का कारण क्या है, यह नहीं मालूम हुआ। कोई १५० विद्यार्थी इसमें सम्मिलित हुये थे और ४७ उत्तीर्ण हुये हैं—

१३	ओरिएण्टियल कालिज
३	रन्धीर कालिज
३१	प्राइवेट
४७	

स्त्रीशिक्षा के प्रेमी यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि इस परीक्षा में इस वर्ष १ कन्या भी उत्तीर्ण हुई है । इनका नाम कृपादेवी है, और यह, विद्यानुरागी लाला ठाकुरदासजी की पुत्री हैं । वस्तुतः आपका उद्यम सराहनीय है। साहित्याचार्य पण्डित शालिग्रामजी शास्त्री भी कुछ कम प्रशंसा के योग्य नहीं हैं, जिन्होंने कई वर्ष के कोर्स को अपने अध्यापन-कौशल से १ ही साल में समाप्त करा दिया ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—एक सम्पादक आनरेरी मजिष्ट्रेट।

सम्पादक विभाग में यह ख़बर बड़ी ख़ुशी से सुनी जायगी कि कानपुर से प्रकाशित होनेवाले "ज़माना" और "आज़ाद" के सम्पादक लाला दयानारायण निगम, बी. ए., अपने शहर कानपुर में आनरेरी मजिष्ट्रेट बनाये गये हैं। हमारे प्रान्त में लाला साहिब दूसरे सम्पादक हैं जिनको आनरेरी मजिष्ट्रेटी का पद मिला है। आपसे पहिले, गोरखपुर से निकलनेवाले सयोगी "मशरिक़" के सम्पादक एक हकीम साहिब को यह प्रतिष्ठा प्राप्त है। और आप कई साल से आनरेरी मजिस्ट्रेटी कर रहे हैं। अस्तु! लाला साहिब को हम उनको ऐसी प्रतिष्ठा मिलने के लिए बधाई देते हैं।

हमें आशा है कि लाला जी इसे और रईसों की तरह से केवल प्रतिष्ठा ही प्रतिष्ठा न समझेंगे। आनरेरी मजिस्ट्रेटी जनता के काम करने के लिए मिलती है न कि आज कल के "हुज़ूरपसन्द" रईसों को जैसे जनता पर हुकूमत करने के लिये?

*

३—एक सती

पिछले दिनों देहली के साज़िश के मुक़दमे में जो चार आदमियों को फाँसी का दण्ड दिया गया था। इनमें एक भाई बालमुकुन्द भी था। इसका विवाह हुए अभी कुछ ज़्यादा दिन न हुए थे। भाई बालमुकुन्द का देहली में फाँसी पाना था कि उसकी नवविवाहिता धर्मपत्नी ने अपने स्थान पर पृथिवी में आसन जमा लिया और ऐसा जमाया कि फिर उठी ही नहीं। वह अपने प्राण त्यागने के लिये आजकल की सती होनेवाली स्त्रियों की तरह न तो चिता ही में कूदी और न उसने कपड़ों को मिट्टी के तेल में भिगोकर आग ही लगाई। न फाँसी ली और न कोई ज़हर खाया। बैठे ही बैठे योगियों की तरह अपने प्राणों को अपने प्राणाधार के पास पहुँचा दिये! सच है—

किञ्चित् त्वया नहि पतिव्रतया दुरापम्

*

४—हिन्दु-यूनिवर्सिटी।

ख़ुशी की बात है कि हिन्दुयूनिवर्सिटी के लिये ५० लाख रुपये का चन्दा जमा हो चुका है। यूनिवर्सिटी को अभी ३० लाख रुपये की शीघ्र ही और आवश्यकता है—

५ लाख भूमि के लिये, जिसमें यूनिवर्सिटी के भवन बनाये जायेंगे।

२५ लाख भवन बनाने के लिये।

आशा है कि इसे भी दानवीर भारतवासी बहुत ही शीघ्र इकट्ठा कर देंगे।

गत ८ सितम्बर (सन् १९१५) को शिमले में वाइसरीगल कौन्सिल का अधिवेशन, श्रीमान लार्ड हार्डिङ्ग महोदय के सभापतित्व में हुआ था। इसमें बहुतसी बातों के मसविदे पेश किये गये थे। हिन्दुयूनिर्सिटी के विषय में जो आनरेबिल सर हारकोर्ट बटलर महाशय ने कहा था, उसका थोड़े शब्दों में सारांश यह है—

"हिन्दुयूनिवर्सिटी के मसविदे के विषय में यद्यपि हम, अभी अन्तिम साफल्यसीमा तक नहीं पहुँचे हैं, तथापि उसमें अधिक सफलता प्राप्त कर चुके हैं। यूनिवर्सिटी की स्कीम के नेताओं की आन्तरिक इच्छा है कि यह मसविदा लार्ड हार्डिंग ही के समय में क़ानून के रूप में परिणत हो जाय, जिनके शुभनाम का सम्बन्ध इस यूनिवर्सिटी के साथ यावज्जन्म रहेगा।

"इस मसविदे के सम्बन्ध में, अभी तक भिन्न मति पायी जाती है। बहुत से लोगों की इच्छा है कि यूनिवर्सिटी के वर्तमान प्रबन्ध में अमुक परिवर्तन होना चाहिए। मेरी राय है कि इस भिन्न मतित्व को वादरूप में न परिणत किया जाय। प्रत्युत यह इसी तरह से पास हो जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यूनिवर्सिटी के नेताओं ने अपनी स्कीम में बड़ी सफलता प्राप्त की है, जिससे भारतवसियों की योग्यता का समुचित परिचय मिलता है। यह साधारण मसविदा क़ानून नहीं है। यह ग़ैरसरकारी तर्ज़ का मसविदा है, जिसे गवर्नमेंट ने अपने हाथ में ले लिया है, और जिससे यूनिवर्सिटी के नेतृगण की एक बड़ी इच्छा पूर्ण होती है। मुझे मालूम हुवा है कि वे पचास लाख रुपये से ज़्यादा, इस के लिये इकट्ठा भी कर चुके हैं। इस यूनिवर्सिटी का प्रबन्ध गवर्नमेंट का दिया हुवा प्रबन्ध नहीं है। प्रत्युत इसके सम्बन्ध में गवर्नमेंट की यह सरणि रही है, कि स्कीम को हर प्रकार से उन्नति दी जाय"

हर्ष का विषय है, कि पहली अक्तूबर को शिमले में होनेवाले, इस कौन्सिल के अन्तिम अधिवेशन में, हिन्दुयूनिवर्सिटी का मसविदा स्वीकार किया जाकर क़ानून के रूप में परिणत कर दिया गया। पास होते समय इस मसविदे के सम्बन्ध में एक चिन्ताजनक बात कही गयी है। कहा गया कि "इस यूनिवर्सिटी में सभी जाति के विद्यार्थी पढ़ाये जा सकेंगे, और इस यूनिवर्सिटी की अवश्यम्भाविनी हिन्दुधर्म-शिक्षा को गवर्नमेंट इस क़ानून में सम्मिलित नहीं कर सकती"।

प्रचलित 'गॉडलेस' ईश्वरविहीन शिक्षा के कारण ही तो हिन्दुयूनिवर्सिटी का प्रस्ताव उठाया गया और उसीकी व्यवस्था को दूरकरना, सर्वथा अनुचित होगा—दानियों की इच्छा के विरुद्ध होगा। आशा है कि इस प्रश्न पर धीरता से विचार किया जायगा।

*

५—विकालत में हिन्दु-मुसलमान,

कुछ दिनों से हमारे मुसलमान भाइयों ने, यह अनावश्यक और अविषयक प्रश्न उठा रक्खा है कि विद्वत्ता, योग्यता, और परिश्रम आदि सब बातें व्यर्थ हैं, बस एक बात आवश्यक है कि हर प्रकार के अधिकार प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार को मुसलमान होना चाहिये। कौंसिल की मेम्बरियाँ इनको ज़्यादा मिलनी चाहिए। पुलिस में इन्हें बहुतायत से जगह मिलनी चाहियें। सरकारी वज़ीफ़ों में इनका ठीक आधा हिस्सा होना चाहिये। केवल इस लिये कि वे मुसलमान हैं।

यह तो था ही, अब हिसार के एक वकील साहिब फ़र्माते हैं कि विकालत में भी मुसलमानों को आधा हिस्सा मिलना चाहिये। इसलिये कि वे अधिक संख्या में पास नहीं होते और अच्छे नम्बर नहीं प्राप्त कर सकते। अब के साल केवल चार मुसलमान (पञ्जाब यूनिवर्सिटी में) अव्वल के तीस नम्बरों में आये हैं। तात्पर्य यह है कि पास होनेवाले हिन्दुओं की अपेक्षा, फ़ेल होने वाले मुसलमानों का ध्यान रक्खा जाय। जिस तरह से शिक्षा में विशेष सहायता की आवश्यकता मानी जा चुकी है और सरकारी वज़ीफ़ों में मुसलमानों का हिस्सा नियत है, इसी तरह विकालत की सनद देने में भी इनपर ध्यान रक्खा जाय। और कम से कम विकालत की आधी सनदें इन्हें दे देनी चाहियें। योग्यता या नम्बरों के देखने की ज़रूरत नहीं। आपका मतलब यह है कि अच्छे नम्बरों पर पास होनेवाले हिन्दू तो देखते रह जायँ और मुसलमान जो नीचे नम्बरों पर पास हों वकील बन बैठें।

एक मुसलमान व्यक्ति की यह निष्पक्षपातिता और स्वजातिप्रेम अवश्य स्तुत्य है! परन्तु हम कदापि विश्वास नहीं कर सकते कि ऐसा अन्याय कार्यरूप में परिणत हो जायगा। बड़ा अन्याय होगा यदि योग्यता की परीक्षा में उत्तीर्णता, परिश्रम आदि का ध्यान न रख कर केवल यह देखा जाय कि उम्मीदवार का मज़हब क्या है?

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—हाईकोर्ट का जज गोला, बारूद, बनाता है।

पाठक यह सुन कर चकित होंगे कि मिस्टर काकस, जो कलकत्ता हाईकोर्ट में जज थे, और हाल ही में भारत से इङ्गलेण्ड गये हैं, सैनिक सामग्री गोला, बारूद बनाने के एक कारख़ाने में एक मज़दूर की हैसियत से काम करते हैं। इससे भी अधिक प्रशंसा की बात यह है कि आप और मज़दूरों की बराबर ही मज़दूरी लेते हैं। आपके दो पुत्र युद्धस्थल में बलिदान हो चुके हैं।

आपके इस जाति तथा देश-प्रेम की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। जिस जाति में आप जैसे सच्चे स्वदेशबान्धव हों उसका बड़े से बड़े शत्रु के मुक़ाबले में भी क्यों न पल्ला भारी रहे और क्यों न पूर्णतया जीत हो।

पुस्तक-परिचय

१—धर्ममार्तण्ड

इस छोटे साइज़ के ५०० पृष्ठवाली पुस्तक का स्वामी माधवानन्दजी सरस्वती ने सङ्ग्रह किया है। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी प्रायः सभी विषय इसमें आगये हैं। सङ्ग्रह वस्तुतः बड़े परिश्रम से किया गया है, जो संग्रहकर्त्ता की बहुदर्शिता का समुज्ज्वल प्रमाण है। धार्मिक पण्डितों के लिये यह बड़े लाभ की चीज़ है। इसके होते मन्वादि स्मृतियों की भी पास रखने की ज़्यादा ज़रूरत नहीं। साथ ही साथ इसका हिन्दी-अनुवाद यदि हो जाता तो और भी अच्छा था। केवल हिन्दी जाननेवाले धर्म-जिज्ञासुओं को भी इससे बड़ा लाभ होता। यह ज़रूर है कि ऐसा करने से पुस्तक का कलेवर दुगना या इससे भी ज़्यादा हो जाता। इसी कारण से शायद ऐसा उद्यम नहीं किया गया मालूम होता। डाक्टर हरद्वारीमल जी की सहायता से ब्रह्मचारी रतीराम ने इस अमूल्य पुस्तक को लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद में छपाया है। छपाई भी साधारणतया अच्छी है। यह पुस्तक इस के अधिकारी महाशयों को डाक्टर हरद्वारीमल जी, पोस्ट गोहाना, ज़िला रोहतक से विना मूल्य मिल सकती है। डाक्टर साहिब इस धर्मपरता के लिये प्रशंसा के पात्र हैं।

*

२—देश की दशा

लेखक, पण्डित पारसनाथ द्विवेदी, प्रकाशक, पण्डित रुद्रदत्त शर्म्मा वैद्य, मन्त्री, विश्वविद्या प्रचारक महामण्डल, चन्दौसी यू० पी० सम्पादक पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा। आकार छोटा। पृष्ठ संख्या ४८।

चन्दौसी में अब एक उपर्युक्त नाम के महामण्डल की स्थापना हुई है। उसीकी ओर से "विश्वविद्याप्रचारिका ग्रन्थमाला" निकाली गयी है। 'देश की दशा' उसी ग्रन्थमाला का पहिला पुष्प है। पुस्तक अच्छे उद्देश्य से लिखी गयी है। भाषा भी सुन्दर है। २६ पृष्ठों में पुस्तक समाप्त हुई है। और शेष १६ पृष्ठों में महामण्डल के सहायकों की सूची, उसके नियम और समाचारादि हैं। सम्पादक महाशय का कथन है कि "महामण्डल की ओर से एक विश्वविद्या-प्रचारक मासिक पत्र निकलने वाला था किन्तु प्रेस ऐक्ट के कारण तथा कई एक ऐसे विघ्न उपस्थित हुए, जिनके कारण मण्डल पत्र निकालने में असमर्थ रहा।" अच्छा! पत्र न सही यह ग्रन्थमाला ही सही! इसीसे आप दुनिया भर की विद्याओं का प्रचार कीजिये! उद्देश्य आप का सराहनीय है। ग्रन्थमाला का वार्षिक मूल्य ३) है। और सालभर में यह १२ पुस्तकें देगी पाठकों को इसका ग्राहक बन कर इसे अपनाना चाहिये। मिलने का पता—जनरल मैनेजर विश्वविद्या-प्रचारक महामण्डल, चन्दौसी यू० पी

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—मनोदूत-काव्यम्

इसके रचयिता हैं रावलपिण्डी-निवासी स्वर्गीय पण्डित भगवद्दत्तजी। इसकी पृष्ठ-संख्या दो सौ से कुछ ज़्यादा है। आकार मँझोला है। इसके छापने का सौभाग्य लक्ष्मीनारायण प्रेस बनारस ने प्राप्त किया है। छपाई सफ़ाई, अच्छी है। इसकी गूढ़ार्थप्रकाशिका नाम की टीका भी की गयी है। इस टीका के कर्ता हैं इनही के पिता पं० बालानन्द जी शास्त्री। आपने प्रथम के ४ पृष्ठों में ग्रन्थकर्ता का संस्कृत ही में जीवन-वृत्तान्त लिखा है, जो बड़ा आश्चर्यजनक और साथ ही सहृदय-हृदय-विदारक है। पिता के सामने ऐसे धुरन्धर विद्वान् पुत्र का स्वर्गवास होजाना, और फिर वह भी थोड़ी अवस्था में, पिता ही के लिये नहीं, मनुष्य मात्र के लिये, वस्तुतः बड़ा हृदय-विदारक है।

इसके मिलने का पता अलिखित है, परञ्च यह विना मूल्य मिलती है। यह पुस्तक संस्कृत मेघदूत के आधार पर लिखी गयी है। कहीं कहीं तो पाद के पाद ज्यों के त्यों ही लिख दिये हैं। ऐसा करने से भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी पुस्तक में अपूर्व-वस्तु उद्घाटन की है। इसमें कहीं दोष भी देखा जाता है, परञ्च ग्रन्थकर्ता की १५ वर्ष की अवस्था, और इसी पुस्तक के गुणों ने "एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" की भाँति बिलकुल ही छिपा दिया है।

इसपर शास्त्री जी की टीका ने भी सोने में सुगन्धि का काम दिया है।

आपकी टीका, योग, न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि विषयों को लेकर चलती है। आपने, तर्कनाओं का भी अनोखे ढंग से ही समाधान किया है। आपका यह प्रखर पाण्डित्य स्तुत्य है। योग-शास्त्र को तो आपने सचमुच ही मूर्तिमान् बना कर स्थिर कर दिया है। वास्तव में इस पुस्तक का विषय भी मनोनियोग ही है।

हमारी प्रार्थना है कि जो महानुभाव कालिदास आदि के ग्रन्थों को अश्लील समझ कर उनसे लाभ उठाना नहीं चाहते, वे इस पुस्तक को, उक्त शास्त्रीजी से आज्ञा लेकर और अपने द्रव्य से छपा कर, अपने गुरुकुल, पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में नियत कर लाभ उठावें। यह संस्कृत के विद्वानों के मनोमोद के लिये बड़ी अच्छी पुस्तक है, अतः आदरणीय है। विद्यार्थियों के बड़े काम की चीज़ है। अतः उपादेय है। शास्त्री जी ने जो हमारे पास पुस्तक भेजने की कृपा की है इसके लिये आपको अनेक साधुवाद।

मनोरम श्लोक।

विरही कहता है—

प्रियाया विरहे रामो बबन्ध सरितां पतिम्।
मया नयनजं वारि वारयितुं न शक्यते ॥ १ ॥

प्रिया के विरह में रामचन्द्रजी ने तो समुद्र के जल को रोक दिया था। एक मैं हूँ जो मुझ से प्रिया के विरह में अपनी आँखों का पानी भी नहीं रुकता।

केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां ?
को वा करोति रुचिराङ्ग-रुहान् मयूरान् ? ॥ २ ॥
कश्चोत्पलेषु दलसंनिचयं करोति ?
को वा करोति विनयं कुलजेषु पुंसु ? ॥ ३ ॥

अञ्जन लगाया किसने ?
आँखों में हरिणियों के।
करता कौन रुचिर है ?
मोरों के रोमगण को।
है कौन करता गुन्थन ?
पत्तों का उत्पलों में।
विनय वह किससे सीखें ?
जो हैं कुलीन मानुष ॥

गङ्गाशरण गुप्त :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

लेखकों से प्रार्थना है कि वे लेख, काग़ज़ के एक ही तरफ़ और सुवाच्य अक्षरों में लिख कर भेजने की कृपा किया करें? काग़ज़ के दोनों तरफ़ कदापि न लिखें? हमें शोक है कि अब की बार हम, कई, सन्दिग्धाक्षरों में और दोनों तरफ़ लिखे हुवे लेख नहीं प्रकाशित कर सके।

सम्पादक

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा के प्रबन्ध से हिन्दी प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित

और

पं० प्यारेलाल दीक्षित द्वारा मंडी धनौरा, यू. पी. से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"MANORAMA" REG. No.——

अलङ्कार १] मार्गशीर्ष १९७२ [ध्वनि २

मनोरमा

"बभूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

*

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

*

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

(१) हिन्दी-कादम्बरी ३३

(२) हिन्दी कुमार-सम्भव ४४

(३) जयपराजय ४६

(४) पीछे नहीं हटूँगा [ले० 'कुमुद' ... ४९

(५) टाइम्स ५०

(६) पम्पा नदी पर राम [ले० बाबूगङ्गाशरण गुप्त ५२

(७) तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रसिद्ध गौड़ स्वामी, ... ५३

(८) दमयन्ती और हंस ५९

(९) हेमन्त-वर्णन [ले० पण्डित वासुदेव उपाध्याय ६७

(१०) लण्डन का दृश्य ६८

(११) विविध विषय ७०

(१२) पुस्तक-परिचय ७४

(१३) चित्र-परिचय ७६

मनोरमा के नियम ।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित हुवा करेगी

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य और एक संख्या का ।=) है ।

३—किसी लेख आदि के प्रकाश करने न करने का अधिकार सम्पादक को है ।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें, और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें । मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम कार्यालय मण्डी धनोरा, यू. पी." के पते से आने चाहिये

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है ।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं छपे जायेंगे ।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायें और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता पूर्वक दिया जायगा ।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकेगा ।

आवश्यकता है ।

१—सर्वत्र ऐसे एजण्टों की, जो मनोरमा का प्रचार करें । कमीशन माक़ूल दिया जायगा

२—एक मास्टर की, जिसे केवल इंगलिश में ग्रेजुएट, या अण्डर ग्रेजुएट की जैसी योग्यता हो । वेतन २०) से ३०) तक योग्यतानुसार दिया जायगा । प्रार्थना-पत्र इस पते से आना चाहिये

मैनेजर,

मनोरम-कार्यालय,

मण्डी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Burman Press, Calcutta

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | मार्गशीर्ष १९७२ | ध्वनि २

हिन्दी-कादम्बरी ।

(२)

यह (शूद्रक) पश्चिम के पर्वत के समान भी था। इसके मस्तक पर, अतिसुगन्धित चमेली के फूलों का भूषण या माला थी, पश्चिमाचल की चोटी पर प्रातःकाल गिरे हुवे तारागण होते हैं। गहनों की कान्ति से, इसका अङ्ग पिशङ्गित (लालपीला) था, अतएव शिव के नेत्राग्नि को लिये हुवे कामदेव के समान भी था, या यूँ कहना चाहिये कि गहने मणि, सुवर्णादि के बने हुवे थे, अतः इनकी चमक पीली और तेजोयुक्त थी। शूद्रक शुभ्रवर्ण था। दोनों की चमक मिलकर पिशङ्गित दीखने लगी थी।

दिशारूपिणी स्त्रियों के समान, इसके चारों तरफ़, वेश्यायें बैठी थीं। ये वेश्यायें प्रायः सब नगरों से, इसकी सेवा करने के लिये आयी थीं। अतएव इसके पास ही बैठी थीं। निर्मल मणियों की फ़र्शबन्दी में, इसके सारे शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ता था, अतः पति की प्रीति से पृथिवी ने मानों इसको हृदय से धारण किया था। राजलक्ष्मी ने इसके देह का आलिङ्गन किया था—राजलक्ष्मी सहर्ष इसके पास आगयी थी। इस राजलक्ष्मी को सर्व साधारण लोग भोग चुके थे। तदपि यह साधारण थी—सर्वोत्तमा थी।

इस (शूद्रक) का असंख्य परिवार था, तदपि यह अद्वितीय था—शौर्यादि गुणों में अनुपम था—अपनी बराबरी नहीं रखता था। अनन्त हाथी, घोड़े इस शूद्रक के सहायक थे, तदपि यह खड्ग-सहायक था—युद्ध में तलवार ही को यह एक मात्र सहायक समझता था—दूसरे की परवाह नहीं करता था। यह एक देश (स्थान) में रहता हुवा भी संसार भर में व्याप्त (प्रसिद्ध) था। यह आसन पर बैठा हुवा भी धनुष में वर्तमान तरह था—धनुष संज्ञा में रहता था। बात यह थी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका नाम सुनते ही शत्रुवों को भय उत्पन्न हो जाता था, अतः यह शूद्रक इन शत्रुवों के सामने ही सा रहता था।

इस शूद्रक ने शत्रुरूपी ईंधन नष्ट कर दिया था सही, पर इसका प्रतापाग्नि जलता रहता था—प्रकाशमान रहता था। इसके बड़े बड़े नेत्र थे, तदपि यह सूक्ष्मदर्शन (छोटे छोटे नेत्रवाला) था—अध्यात्मशास्त्र का जाननेवाला था। यह, महादोष भी सकलगुणों का आकर था—यह महादोष अर्थात् बड़ी बड़ी भुजाओंवाला था। यह कुपति (दुष्टपति) भी स्त्रियों का प्रिय था, कु-पति (पृथ्वी का स्वामी) था, अतएव स्त्रियों का प्रिय भी था।

इसके सदा दान (मद) रहता था, तदपि यह अमद—मदरहित था। इसके सदा दान (ख़ैरात) हुवा करता था। यह बड़ा ही निर्मलस्वभाव था, तदपि कृष्ण-चरित (दुराचार) था—यह कृष्ण चरित अर्थात् कृष्ण या अर्जुन के समान चरित वाला था। यह अकर (हाथरहित) भी हाथ ही में भुवनतल को धारण किये हुवे था। बात यह है कि यह अकर अर्थात् कर न लेने वाला था, अतएव इसकी प्रजा इसमें बड़ी अनुरागवती थी।

ऐसे राजा को देख कर, दूरही खड़ी हुई चाण्डाल-कन्या ने बाँस की लकड़ी को उठाया। इस लकड़ी का आगे का हिस्सा जीर्ण था—फटा हुवा था, अतएव इससे शब्द भी होता था।

राजा को अपना आगमन जतलाने के लिये—राजा की दृष्टि अपनी ओर खींचने के लिये, इसने सभा की फ़र्शबन्दी पर एक बार हाथ से आघात किया—खटखटाया।

इसके हाथ का रत्नजटित कङ्कण हिल रहा था, और यह हाथ लाल कमल के पत्ते के समान कोमल था।

इस शब्द से सारे राजा (जो वहाँ बैठे थे) ताल-शब्द (ताली के बजाने) से हाथियों के समान* एक दम राजा के मुख से दृष्टि हटा कर—मुख फेर कर चाण्डाल-कन्या के सामने हो गये—चाण्डाल-कन्या को देखने लगे। अब राजा शूद्रक ने भी इस चाण्डाल-कन्या को टिकटिकी लगा कर देखना आरम्भ किया, और प्रतीहारी ने भी इसे "राजा को दूर ही से देखना" यह कह कर होशियार कर दिया।

इस अवसर पर, चाण्डाल-कन्या के आगे, एक वृद्ध पुरुष खड़ा हुवा था। इस पुरुष का वृद्धावस्था से सिर सुफ़ेद होगया था—सिर के बालों पर सुफ़ेदी आगयी थी। इसके लाल कमल जैसे नेत्र थे। यह प्रतिदिन व्यायाम किया करता था, अतएव इसकी वृद्धावस्था में भी शरीर-सन्धि शिथिल न हुई थी। यद्यपि यह चाण्डाल-कुल में उत्पन्न हुवा था, तदपि इसकी आकृति बड़ी मनोहारिणी थी। यह सभ्य पुरुषों का जैसा वेष धारण किये हुए था, इसके वस्त्र भी बड़े साफ़ थे।

इस चाण्डाल-कन्या के पीछे एक चाण्डाल का लड़का खड़ा हुवा था। इसकी चोटी इधर उधर घूम रही थी। यह एक पींजरा हाथ में लिये हुवे था। यह पींजरा भी सोने की सलाइयों का बना हुवा था। इसी पींजरे में एक तोता था, जिसकी कान्ति से यह पींजरा काला था—मरकतमणियों से बना हुवा जैसा मालूम होता था।

यह चाण्डाल-कन्या दैत्यों से हरे हुवे अमृत के हरने के लिये, कपटपटु मोहनी रूपधारी विष्णु भगवान् जैसी मालूम होती थी। यह सञ्चारिणी-चलनेवाली, जीवरूपा इन्द्रनील मणियों की पुतली थी।

यह घुटनों तक लटके हुवे नीले कञ्चुक से अपना शरीर ढके हुवे थी और ऊपर बहुत बारीक लाल दुपट्टा ओढ़े हुवे थी। यह ठीक, इस समय जिसके ऊपर सन्ध्या का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो,

*ताल के बाजे से बन में हाथी, पंक्ति बाँध कर खड़े हो जाते हैं। ऐसा सुना जाता है। ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी नील कमल की स्थली के समान मालूम होती थी।

यह एक कान में कर्णभूषण पहने हुवे थी, जिसकी कान्ति से इसका गण्डस्थल श्वेत हो रहा था। अतः यह उदय होते हुवे चन्द्रमा की किरणों से शोभितमुखी, रात्रि जैसी मालूम होती थी। यह पार्वती से भी तुलना रखती थी। पार्वती ने शिवजी महाराज के किरात रूप बनने पर स्वयं भी किरात रूप बना लिया था, इसने लाल पीली केसर का तिलक ही तीसरा नेत्र बनाया था।

यह हृदय में निवास करने से प्रतिबिम्बित हुवे नारायण की शरीरकान्ति से श्यामा लक्ष्मी जैसी मालूम होती थी। बात यह है कि लक्ष्मी विष्णु भगवान् के हृदय में निवास करती है, विष्णु की अतिश्याम मूर्ति है, इस श्यामता का लक्ष्मी के शरीर में प्रतिबिम्ब पड़ना असम्भव नहीं, चाण्डालकन्या स्वतः ही श्यामा थी। ऐसी दशा में, इन दोनों का साम्य समुचित ही दीख पड़ता है।

चाण्डाल-कन्या कोपित शिव के अग्नि से जलते हुवे कामदेव के धुवें से मलिन हुई, काली हुवी, रति जैसी भी मालूम होती थी। यह श्यामता में अतीव अहङ्कारी बलदेव महाराज के भय से पलायित हुवी यमुना से भी कुछ कम न थी। इसका चरणकमल अति घने यावक रस की लालिमा से लालायित था, अत एव तत्काल ही मर्दन किये गये महिषासुर के रक्त से लाल चरण वाली दुर्गा देवी जैसी मालूम होती थी। इसकी नख-किरणें भी लाल लाल अंगुलियों की कान्ति से विलक्षण लालिमा लिये हुवे थीं।

यह कड़ी मणियों की फ़र्शबन्दी का सहन नहीं कर सकती थी—इन पर नहीं चल सकती थी, अतएव, मानो, पृथ्वी पर कोंपलों की फ़र्शबन्दी करके चलती थी। इसके पैर बड़े कोमल थे।

इसके शरीर को, इसी के नूपुरमणियों के कान्तिसमूह ने ख़ूब रङ्ग सा दिया था। यह कान्ति-समूह लाल पीला और सब तरफ़ को पड़ता था, अतएव इस समय इस चांडाली के रूप में पक्षपात करनेवाले—इसको ख़ूबसूरती पर मात होजाने वाले और ब्रह्मा की भी न माननेवाले, महात्मा अग्निदेव ने इसकी जाति की शुद्धि के लिये, मानो, सचमुच ही इसके शरीर का आलिङ्गन किया था।

तगड़ी रूपी रज्जु से इसकी जङ्घा व्याप्त थी। यह तगड़ी पहने हुवे थी। यह तगड़ी, कामदेव रूपी हस्ती के मस्तक में शोभा के लिये नक्षत्रपंक्ति जैसी मालूम होती थी। यह तगड़ी रोमाञ्चरूपिणी लता का तो सचमुच आलवाल (थाँवला) ही था। इस चांडाल-कन्या का एक बड़े सुन्दर हार ने कंठग्रहण कर रक्खा था-यह गले में हार पहने हुवें थी, जिसमें बड़े बड़े क़ीमती मोती लगे हुवे थे। यमुना की भ्रान्ति से इस चाण्डाल-कन्या का गङ्गाप्रवाह जैसे श्वेत हार ने कंठग्रहण कर रक्खा था। बात यह थी कि यह चाण्डाली यमुना जैसी काली मालूम होती थी। इसी भ्रान्ति से गङ्गा रूपी हार ने इसका कण्ठालिङ्गन कर रक्खा था।

यह चाण्डाल-कन्या शरद्ऋतु जैसी भी मालूम होती थी। शरद्ऋतु के खिले हुवे कमल ही नेत्र होते हैं। इसके कमल जैसे नेत्र थे।

इसका उस समय वर्षा ऋतु से भी साम्य घटता था। वर्षाऋतु में घनकेशजाल (मेघ ही केश-समुदाय) होते हैं, इसके भी घनकेशजाल (घिनके घिनके केशों का समुदाय) था।

यह मलयमेखला (मलयाचल के मध्य की भूमि) के समान भी मालूम होती थी। मलयमेखला के चन्दन को कोंपलों के आभूषण होते हैं। इसके चन्दन के पल्लव ही शिरोभूषण थे। यह सिर में चन्दन को कोंपल रक्खे हुवे थी।

यह तारापंक्ति जैसी भी प्रतीत होती थी। तारापंक्ति चित्रश्रवणाभरण (चित्रा और श्रवण नक्षत्ररूपी अलङ्कार) से विभूषित होती है। यह भी चित्रश्रवणाभरण (अनेक प्रकार के कर्णालङ्कार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विभूषित थी। यह लक्ष्मी के समान भी सुशोभित थी। लक्ष्मी के हाथ में कमल की शोभा होती है। या यूं कहना चाहिये कि लक्ष्मी का हाथ कमल जैसा कोमल होता है, उससे वह सुशोभित होती है, इसके भी हाथ में कमल का चिह्न था। यह मूर्च्छा जैसी भी मालूम होती थी। मूर्छा प्राणी के बेहोश कर देने से मन को हर लेती है। यह रूप का आकर होने से—बहुत ही ख़ूबसूरत होने से, प्राणियों के मन को हर लेती थी।

इसने वन-भूमि से भी बराबरी की थी। वन-भूमि, रूपसम्पन्न (पशुओं सहित) होती है, यह भी रूपसम्पन्न (सौन्दर्यसहित) थी।

यह अप्सरा जैसी मालूम होती थी। अप्सरा, अ—कु—लीना (पृथ्वी में अस्थिर) होती है। मतलब यह है कि अप्सरा मर्त्यभूमि पर निवास नहीं करती, स्वर्ग में रहती है। यह भी अ—कुलीना (नीच कुल में पैदा होनेवाली) थी—चाण्डाली थी।

यह निद्रा का भी गुण रखती थी। सोते समय निद्रा सारे के सारे प्राणियों के नेत्रों को अपनी तरफ़ खींच लेती है—पलकों का मारना बन्द कर देती है, यह भी अपने अद्भुत रूप से कामियों के नेत्रों को अपनी तरफ़ खींच लेती थी—इसके रूपसौन्दर्य को कामी जन टिकटिकी लगाकर देखा करते थे।

यह वन-कमलिनी का भी गुण रखती थी। वन-कमलिनी मातङ्ग-कुल (गज-समुदाय) से दूषित होती है—इसे हाथी तोड़ डालते हैं यह भी, मातङ्ग-कुल (चाण्डाल-वंश) से दूषित थी। चाण्डाल-कुल ने ही इसे दूषिता बना रक्खा था।

यह अमूर्ता (निराकार) के समान भी थी। जैसे निराकार का स्पर्श नहीं होता तैसेही यह भी स्पर्शवर्जित थी। चांडाल-कुल में उत्पन्न होने से शिष्ट पुरुष इसका स्पर्श नहीं करते थे। चित्र में खींचे गये फ़ोटो की तरह बस इस का दर्शन मात्र ही फल था—इसे केवल देख ही सकते थे, कुछ उपभोगादि के काम की यह न थी।

यह वसन्त की पुष्पवृद्धि के समान भी थी। वसन्त की पुष्पवृद्धि जैसे अजाति* (चमेली-रहित) होती है, तैसेही यह भी अजाति (ब्राह्मण आदि जातिरहित) थी—चाण्डाल-जाति की थी।

किसी अंश में, यह चांडाल-कन्या, कामदेव के पुष्पधनुष की रेखा जैसी भी मालूम होती थी। कामदेव के पुष्पधनुष की रेखा, मुट्ठी से ग्राह्य होती है, इसकी भी कमर मुट्ठी से ग्राह्य थी—यह बड़ी कृशोदरी थी।

यह कुबेर की शोभा से भी तुलना रखती थी। कुबेर की शोभा अलकोद्भासिनी (अलकापुरी से उद्भासिनी) होती है, इसकी भी शोभा अलकोद्भासिनी (केशों से उद्भासिनी) थी—बालों से यह अनोखी ही प्रतीत होती थी।

इसने शीघ्र ही यौवन प्राप्त किया था—इसको नयी जवानी थी, साथ ही अतिसौन्दर्य लिये हुवे थी—सुन्दरी थी।

इसको देखकर राजा शूद्रक को बड़ा आश्चर्य हुवा और यह इस विषय का अपने मन में यूँ विचार करने लगा—

अहो! देखो तो सही ब्रह्मा का अपात्र में सौन्दर्य-रचना का प्रयत्न है। अपने सौन्दर्य से सारी की सारी रूप-सम्पत्ति का उपहास करनेवाली इस चाण्डाल-कन्या को यदि पैदा ही किया था तो स्पर्श और सम्भोग से रहित कुल में किस लिये जन्म दिया? मैं समझता हूँ कि ब्रह्मा ने चांडाल-जाति को स्पर्श दोष के भय से विना स्पर्श किये ही—विना हाथ लगाये ही इस

* "न स्याज्जातीवसन्ते न च फलकुसुमे गन्धसारद्रुमाणाम्
इत्याद्युन्नेयमन्यत् कलिसमयगतं सत्कवीनां प्रबन्धे॥"
महाकवि विश्वनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चांडाली को बनाया है। यदि ऐसा न होता तो इस चांडाली में लावण्य की क्यों ऐसी कोमलता होती? क्यों ऐसा नमकीनपन दीखता? करतल से मर्दन किये गये अवयवों में ऐसी शोभा नहीं होती—हाथ के लगजाने से ऐसी कान्ति नहीं हो सकती। इस अनुचित संयोग करनेवाले विधि को बार बार धिक्कार है। क्योंकि यह रूपवती भी क्रूरजाति (चांडाल-जाति) में उत्पन्न होने के कारण दैत्यलक्ष्मी जैसी सदैव निन्दितमैथुना है—इसके साथ सम्भोग करना अति ही वर्जित है। अतः रमणीया भी यह पीडा ही करती है—जी को जलाती है।

राजा शूद्रक यह मन में चिन्तन ही कर रहा था तभी प्रौढा स्त्री के समान इस चांडाली ने इसे प्रणाम किया। प्रणाम करते समय इसका कर्णभूषण कुछ नीचे को हो गया था।

प्रणाम करके यह फ़र्श पर बैठ गयी, तभी उस बूढ़े पुरुष ने ज़रा आगे को बढ़ कर, पींजरे ही में बन्द किये हुवे उस तोते को हाथ में लेकर राजा को दिखलाया और कहा,—महाराज!

यह तोता है। इसका "वैशम्पायन" नाम है। अब ज़रा इसके गुणों को भी सुन लीजिये।

यह सारे के सारे शास्त्रों का जाननेवाला है। राजनीति की शिक्षा में बड़ा कुशल है। पुराण, इतिहास और कथा, आलाप को भी भली भाँति जानता है। गानविद्या की २२ श्रुतियों का अच्छा वेत्ता है। काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यान और अनगिनत सुभाषित का अध्येता है। यही नहीं, यह इनके रचने की भी स्वयं शक्ति रखता है। हँसी की बातों में भी यह बड़ा कुशल है—मीठा हास्य भी यह अच्छा करना जानता है। बाँसुरी, वेन, और मृदङ्ग आदि बाजों का भी यह बड़ा शौकीन है। नृत्यप्रयोग की बारीकियाँ देखने में बड़ा कुशल है। चित्रकारी में प्रवीण है। जुए के व्यवहार में भी यह बड़ा पण्डित है। स्नेह-कलह से कुपित कामिनियों के प्रसादोपाय में चतुर है—मैथुन या क्रीड़ादिक में किसी कारण से पति से अप्रसन्न हुई कामिनियों को भी प्रसन्न करना ख़ूब जानता है। यह हाथी, घोड़े, मनुष्य और स्त्रियों के लक्षण जानने में भी बड़ा पण्डित है।

सारे भारतवर्ष में यह एक रत्नरूप है। तोतों में यह अपने ढङ्ग का एक ही तोता है। आप भी समुद्र के समान सकल रत्नों के स्थान हैं—आपके यहाँ भी पृथ्वी भर की सारी उत्तम उत्तम वस्तुएँ उपस्थित हैं। यही समझ कर मेरे स्वामी की पुत्री आपके चरणों में आयी है—आपके समीप आयी है, अतएव आप इसे अपनाइये।

यह कह कर और पींजरे को राजा शूद्रक के सामने रख कर, यह बूढ़ा पुरुष वहाँ से कुछ ही दूर पीछे हट कर खड़ा हो गया। बूढ़े पुरुष के पीछे हट जाने पर इस तोते ने राजा के सामने खड़ा हो कर दाहिना पैर उठा कर और "जय जय" शब्द का उच्चारण करके इस आर्या का पाठ किया। मतलब यह है कि तोते ने राजा को बड़े साफ़ और शुद्ध उच्चारण से एक आर्या छन्द सुनाया—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहार व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥*

राजा शूद्रक तोते के मुख से इस आर्या को

* महाराज! आपके शत्रुओं की स्त्रियों का कुचयुगल (दोनों स्तन) व्रत जैसा आचरण कर रहा है। कुचयुगल आँसुओं के जल से स्नान किये हुवे है और हृदयरूपी शोकाग्नि के पास ही अपना निवास स्थान बनाये हुये है। विमुक्ताहार अर्थात् हार को भी त्यागे हुवे है। अन्तर बस इतना ही है कि व्रत में साधारण जल से स्नान करना पड़ता है, यह आँसुओं के जल से स्नान कर रहा है। व्रत में अग्नि के समीप निवास करना पड़ता है, यह हृदयरूपी शोकाग्नि के निकट निवास कर रहा है। व्रत में विमुक्ताहार (आहार, भोजनादि का त्याग) होता है। यह भी विमुक्ताहार (हार का त्यागी) है। मतलब यह है कि आपने अपने भुजबल से शत्रुओं को पराजित कर उन्हें समूल नष्ट किया है। उनकी स्त्रियों को विधवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन कर बड़ा चकित हुवा और सहर्ष अपने एक बूढ़े मन्त्री से कहने लगा।

इस मंत्री का नाम "कुमारपालित" था। सारे मन्त्रि-समाज में यह प्रधान मन्त्री था। जाति का भी यह ब्राह्मण था। यह बड़े कीमती एक सुवर्ण के आसन पर बैठा हुवा था। यह बृहस्पति के सदृश नीतिशास्त्र का पारगामी था – उसके रहस्यों को जानता था।

आपने सुना? इस पक्षी की वर्णों के उच्चारण में स्पष्टता और स्वर में मधुरता कैसी है? – यह कितना साफ़ और मधुर बोलता है? प्रथम तो यह ही बड़े आश्चर्य की बात है कि यह ऐसा उच्चारण करता है कि बड़े मिले हुवे शब्दों का भी संयोग, मात्रा, अनुस्वार और व्याकरण की शुद्धि से प्रकट होता चला जाता है और वर्णों का उच्चारण भी बिलकुल साफ़ साफ़ विलक्षण ही शैली से होता है। दूसरे यह भी बड़ा अद्भुत विषय है कि एक पक्षी का उपादेय प्रयोजन में संस्कारी मनुष्यों के समान बुद्धिपूर्वक व्यापार हो। तात्पर्य यह है कि यह पक्षी होते हुवे भी मनुष्य के समान समझ कर किसी काम का आरम्भ करता है। देखिये, इस तोते ने दायां पैर उठा कर "जय जय" शब्द का उच्चारण कर और मुझे जतला कर कितना अच्छा और साफ़ आर्या का गान किया है। प्रायः पक्षी और पशु दोनों भय, भोजन, मैथुन, निद्रा और संज्ञा ही के जाननेवाले होते हैं। राजा शूद्रक के यह कह चुकने पर कुमारपालित कुछ मुसकराया और कहने लगा—

महाराज! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो आप जानते ही हैं कि ये तोता, मैना आदि पक्षी, जैसा सुनते हैं, वैसा ही उच्चारण करते हैं। इसपर भी पूर्वजन्म के संस्कार-बल से और उनके पालनेवालों के प्रयत्न से, संस्कार की और भी वृद्धि हो जाती है—और भी अच्छी उच्चारणशक्ति हो जाती है। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

हाँ! एक बात मुझे यहाँ और याद आती है पहिले, शुक आदिकों की भी मनुष्य की वाणी जैसी ही वाणी थी – पहिले, ये तोता, मैना आदि भी मनुष्यों के समान ही साफ़ साफ़ बोलते थे अग्नि के शाप से इन बेचारों की वाणी अस्फुट हो गयी – साफ़ न रही और हाथियों की जिह्वा का परिवर्तन हो गया – स्वाभाविकी जिह्वा को पृथक् कर दूसरी जिह्वा की स्थापना हो गयी।

कुमारपालित यह कह ही रहा था कि इतने में मध्याह्न काल की शंखध्वनि हो गयी – बारह का घण्टा बज गया। यह ध्वनि यह बतला रही थी कि सूर्यनारायण आकाश के मध्य में प्राप्त हो गये। उस समय यह ध्वनि, नाडिकाच्छेद में बजी हुई बड़ी दुन्दुभि का शब्द जैसी मालूम होती थी।

राजा शूद्रक ने इस ध्वनि को सुनकर अपने निकटवर्ती राजाओं को विसर्जित किया – अपने अपने स्थान को जाने के लिये उन्हें आज्ञा दी और स्वयं भी आस्थानमण्डप से खड़ा हो गया।

इसके उठने पर अभ्युत्थान करते हुये और राजाओं का बड़ा सम्भ्रम हुआ – बड़ी भीड़भाड़ हुई। इस समय राजाओं ने बड़े वेग के साथ गमन किया था। अतः इनके भुजबन्द भी गम कर गये थे – टूट गये थे। इन भुजबन्दों का मुख (अग्रभाग) नाके के समान था, अतः यह तिरछे और पैने थे। इसी ने राजाओं के अंशुक और पटों को चीर चीर कर डाला था – उन्हें फाड़ डाला था।

इन राजाओं की एक दूसरे के मिलने से कण्ठमालायें भी हिल रही थीं और आपस में

कर उनके अन्तःकरण पर चोट पहुंचाई है, अतः उनका अन्तःकरण भभकता हुवा अग्नि जैसा है। उसके पास कुचयुगल निवास ही करता है, अतः वे रात दिन रुदन करती हैं – अपने आँसुवों से अपने कुचयुगल को स्नान कराती हैं। अपने पतियों के वियोग ही में उन्होंने मुक्ता-रादि का भी परित्याग कर दिया है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रगड़ से कन्धों से, झड़े हुये केसर और पटवास के धूलिसमुदाय से दिशायें धूसर हो गयी थीं—केसर और पटवास ने इनके पास की भूमि को धूँधला सा कर दिया था।

ये राजा चमेली के फूलों को सिरों में रक्खे हुये थे। उन्हीं का इन्होंने शिरोभूषण बना रक्खा था। अतः इनके ऊपर भ्रमर-पुञ्ज भ्रमण कर रहा था।

कानों में ये कमल धारण किये हुये थे, जो आधे नीचे लटक रहे थे, अतः ये राजाओं के गण्डस्थलों का चुम्बन कर रहे थे।

इनके हृदय पर हारलता हिल रही थी—ये मोतियों की माला पहने हुये थे।

"पहले मैं प्रणाम करूँ" "पहले मैं प्रणाम करूँ" ये ही इनका परस्पर मनोविवाद था। अतः गमनप्रणाम (चलते समय की नमोनमः) में भी इनको बड़ी लालसा थी।

इस समय, आस्थानमण्डप, अनेकों प्रकार के शब्दों से, चारों तरफ़ से, क्षुभित जैसा हो रहा था—गूँज सा उठा था। इधर उधर गिरती पड़ती, कन्धों पर चमर रक्खे हुये, चमर ग्रहण करनेवाली—चमर हिलानेवाली स्त्रियों के मणि-जटित नूपुरों की ध्वनि से गूँज उठा था। इन नूपुरों की मणियाँ भी पद पद पर ध्वनि करती जाती थीं। यह ध्वनि, कमलों के रस-पान करने से मत्त हुये बूढ़े कलहँसों की ध्वनि से जर्जरित जैसी मालूम होती थी। इधर घूमती हुई वेश्याओं की मणिजटित तगड़ियाँ, अपनी मनोहर झङ्कार से अलग ही आस्थानमण्डप को गुञ्जित कर रही थीं। जङ्घाओं के ताड़न करने से—जङ्घाओं के बार बार छूने से, इन तगड़ियों की लड़ें शब्द करती जाती थीं। राजभवन की बावड़ियों के हंसों के कलकल शब्द से गूँज और भी बढ़ गयी थी। नूपुरों के शब्द ने इन हँसों को अपनी ओर आकर्षित किया था—खींच सा लिया था। इन हंसों ने आस्थान मण्डप की सोपान—सीढ़ियों को तो बिलकुल श्वेत ही कर दिया था।

गृहसारसों की, घिसे हुए, साफ़ किये काँसी के पात्र की ध्वनि जैसी दीर्घ ध्वनि बड़ी ही अद्भुत मालूम होती थी। ये सारस इस समय तगड़ियों की झङ्कार में उत्सुक थे—बड़े ज़ोर से बोल रहे थे।

आस्थानमण्डप की अव्यक्त ध्वनि से उत्पन्न हुई गम्भीर ध्वनि ने तो मानो पृथ्वी को हिला सा दिया था। फिर इस ध्वनि से बढ़ी हुई गूँज का तो ठिकाना ही क्या है। क्योंकि आस्थान-मण्डप, बड़े वेग के साथ चलते हुए सैकड़ों सामन्त राजाओं के चरणों से ताड़न किया गया था। उस समय सैकड़ों सामन्त राजा यहाँ बड़े ज़ोर शोर के साथ घूम रहे थे।

बिना ही किसी देखभाल के प्रतीहारी भी उस समय, मनुष्यों को हटा रहे थे, ये दण्डे हाथ में लिये हुवे थे, और क्रीडासहित, "अरे देखो! देखो! सावधानी से चलो" यह कहते जाते थे।

इनके अतिदीर्घ शब्द साधारण भवन और राजभवनों में स्वच्छन्दता से उच्चारण किये गये, अतएव अतिदीर्घता को प्राप्त हो रहे थे। "देखो! देखो!!" शब्द ने भी गूँज की कुछ कम वृद्धि न की थी।

शूद्रक को प्रणाम करते हुए, इतर राजाओं के मुकुटों से कुरेदी गई मणियों की फ़र्शबन्दी ने भी इस गूँज में सहायता दी थी। मुकुटों में बड़े निर्मल और क़ीमती रत्नों की सलाइयाँ लगी हुई थीं, अतः ये मुकुट तिरछे, पैने थे। इन राजाओं के मस्तक के चञ्चल चूडामणि सहसा नत किये गये थे—नौड़ाये गये थे।

प्रणाम से नीचे गिरे हुए अतएव कड़ी मणियों की फ़र्शबन्दी पर पड़े हुए, और गिरने से "रण रण" शब्द करते हुए, मणिजटित कर्णपूरों के शब्द से भी गूँज बढ़ गई थी। बात यह थी कि शूद्रक को और राजाओं ने प्रणाम किया था, अतः इनको मस्तक नीचा करना पड़ा था। ऐसी दशा में कर्णभूषण भी नीचे की फ़र्शबन्दी पर लग गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, ये मणियों के थे। फ़र्शबन्दी भी मणियों ही की थी। इसलिए इन दोनों के सम्पर्क ने एक अद्भुत ही शब्द उत्पन्न किया था।

शूद्रक के आगे चलनेवाले बन्दीगण ने भी इस समय बड़ी मधुर वाणी से "जयजीव" इस शब्द का पाठ किया था—उच्चारण किया था। इस उच्चारण से दिशाओं की भी ख़बर लेनेवाला शब्द उठता था। ऐसी दशा में इससे भी सहायता मिलती थी।

इस समय मनुष्यों के चरणों की भीड़भाड़ से भौंरे भी फूलों का परित्याग करके उड़ रहे थे और उड़ते हुए, "हुँहुँ" शब्द कर रहे थे। इस गूँज का तो कुछ ठिकाना हा न था।

बड़े वेग से पैर रखनेवाले—शीघ्र चलनेवाले राजाओं के भुजबन्दों के अग्रभाग से ताड़ना किये गये मणिस्तम्भों के शब्द से तो यह सारे का सारा आस्थान मण्डप व्याप्त ही था। परञ्च मणि-स्तम्भों में भी रत्नों की लड़ी लटकी हुई थीं, इनके शब्द से, मणिस्तम्भ और भी वाचाल हो गये थे। इनका शब्द भी सहायता देता था। बात यह है कि अधिक भीड़ होने के कारण राजाओं के कन्धे स्तम्भों में लग जाते थे। ये कन्धे के कुछ ही नीचे—बाजू पर बाज़ूबन्द पहने हुए थे; स्तम्भ मणिजटित तो थे ही, परंच इनमें रत्न और लगे हुए थे। दोनों की रगड़ से बड़ा सुन्दर शब्द होता था।

इसके बाद शूद्रक आप ही उस चाण्डाल-कन्या को "ज़रा ठहरो" यह कहकर और तांबूल—करङ्क—वाहिनी के लिये "वैशम्पायन को भीतर पहुँचाओ" यह आज्ञा देकर कुछ एक राजपुत्रों सहित मकान के भीतर चला गया। यह वहाँ जाकर व्यायाम-भूमि में गया—कसरत की जगह पहुँचा। यहाँ पर व्यायाम करने के लिये दण्डकश, मुद्गर और मूँगरी आदि सब साधन उपस्थित थे।

इस समय यह सूर्यनारायण जैसा मालूम होता था। सूर्यनारायण का किरण-समुदाय पतित (गिरा हुवा) होता है—सूर्य की किरणें चारों तरफ़ को फैली रहती हैं। इसने भी अपने अलङ्कारों को उतार कर रख दिया था। अतएव इसके अलङ्कारों की किरणें चारों तरफ़ को फैली हुयी थीं।

यही नहीं, यह इस समय चन्द्रमा और तारागणरहित आकाश जैसा भी प्रतीत होता था। तात्पर्य यह है कि शूद्रक ने चन्द्र-तारागणरूपी अलङ्कारों को त्याग दिया था। यद्यपि शूद्रक ने सवयस्क राजपुत्रों के साथ इस व्यायामभूमि में थोड़ा सा ही परिश्रम किया था, तदपि इतने से ही परिश्रम के कारण इसकी मूर्ति पसीने की बून्दों से अलंकृत हो रही थी—इसके सारे के सारे शरीर पर पसीना आ रहा था।

ये पसीने की बूँदें इसके दोनों कपोलों पर कुछ एक मर्दन की गयी निर्घुण्डी की कुसुम-मंजरी जैसी मालूम होती थीं।

हृदय पर इन बूँदों की एक निराली ही छटा थी। ये यहाँ कसरत करने से टूटे हुवे हार के मोतियों का अनुकरण करती थीं।

मस्तक पर ये पसीने की बूँदें अष्टमी के चन्द्ररूपी शकल-तल पर, अमृत की बूँदों का भी तिरस्कार करती थीं—उनसे भी अच्छी मालूम होती थीं।

अब इधर इसके स्नान की तैयारियाँ हो रही थीं। अतएव स्नान की सामग्री संग्रह करने में शीघ्र आगे दौड़ते हुवे सेवक जन से (सूचित होकर) फ़ौरन ही छोटे छोटे मनुष्य होने पर भी राज-भवन में उचित-निषेध-शासन (मनुष्यों के दूर करने की आज्ञा) करते हुवे दण्ड-धारी मनुष्यों ने "महाराज! इधर आइये" इस तरह स्नान-भूमि का मार्ग राजा शूद्रक को बतलाया। शूद्रक भी स्नान-भूमि की तरफ़ चल दिया—स्नान की जगह पहुँच गया। यहाँ एक छोटा सा, सफ़ेद शामियाना तना हुआ था और इसके नीचे बहुत से नौकर चाकर मंडल बाँधे हुवे बैठे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भूमि के बीचों बीच एक जलद्रोणी (जल की बावड़ी) थी। यह बावड़ी भी सुवर्ण-मयी थी, सोने की बनी हुवी थी और यह बड़े सुरभित-जल से परिपूर्ण थी—इसमें बड़े ही खुशबूदार मसालों का जल भरा हुवा था।

यहीं शूद्रक के स्नान करने के लिये स्फटिक मणियों की बनी हुवी एक चौकी रक्खी हुवी थी और एक तरफ़ स्नान के लिये कलशे रक्खे हुवे थे। इनसे यह भूमि अतिसुशोभित थी।

ये कलशे अति सुगन्धित जल से पूरित थे—भरे हुवे थे। अतएव सुगन्धि से आकर्षण किये गये—खींचे गये भ्रमर-समुदाय से इनके मुख अन्धकार जैसे मालूम होते थे। मानों इन कलशों ने धूप के भय से अपने मुखों को नीले जीर्ण वस्त्र से ढक रक्खा था।

जल-द्रोणी के पास शूद्रक के आजाने पर इसके चारों तरफ़, अभिषेक के अधिष्ठात्री देवता के समान वेश्यायें भी उपस्थित हो गयी थीं।

एक वेश्या ने शूद्रक के सिर को सुरभित आँवले से ख़ूब मर्दन किया था। इस समय ये वेश्यायें भी कुछ ऐसे वैसे वेष से न थीं। इन्होंने अपने कुचमण्डल को, बड़े मोटे कपड़ों से लपेट रक्खा था और भुजबन्दों को अपनी भुजलता से दूर कर रक्खा था—भुजबन्दों को इन्होंने निकाल कर रख दिया था। कानों के कर्णभूषण इन्होंने ऊपर को कर लिये थे। केशों को भी कानों के पास से ऊपर को हटा लिया था और हाथों में इन्होंने जल के कलशे ले रक्खे थे।

शूद्रक इस समय जल में बैठा हुवा इन वेश्याओं से हथनियों सहित हाथी जैसा शोभित हो रहा था। इन वेश्याओं का कुचमण्डल ऊपर को उठ रहा था—इनकी कुचायें उठी हुवी थीं। शूद्रक, द्रोणी के जल से निकल कर, राज-हंस पर वरुण के समान स्फटिक मणि जैसी श्वेत चौकी पर बैठ गया।

इसके बैठ जाने पर इसको स्नान कराना प्रारम्भ हुवा।

मरकतमणि-जटित कलशों की कान्ति से श्यामायमान, मूर्तिमती कमलनियों के समान, कितनी ही वेश्याओं ने पत्रपुट (दौनों) से, इस शूद्रक को स्नान कराया। बात यह है कि मरकत-मणि नीले होते हैं। इनकी कान्ति भी कृष्णा ही होती है। शूद्रक के स्नानार्थ इसकी वेश्याओं ने इन कलशों को कुक्षि में दबा रक्खा था, अतएव इन वेश्याओं का रूप मूर्तिमती कमलिनी जैसा प्रतीत होता था।

कुछ एक वेश्यायें चान्दी के कलशे हाथ में लिये हुवे थीं। इन्हीं से शूद्रक को स्नान करा रही थीं। अतएव ये इस समय पूर्ण-चन्द्र-बिम्ब से निकली हुवी चान्दनी के प्रवाह से रात्री जैसी शोभायमान हो रही थीं। तात्पर्य यह है कि ये चान्दी के कलशे थे, अतएव ये पूर्ण-चन्द्र-बिम्ब जैसे मालूम होते थे। इनमें जल भरा हुवा था। कुछ तो जल का रूप स्वतः ही श्वेत होता है, और कुछ चान्दी की चमक ने जल की श्वेतता को और भी बढ़ा दिया था, अतएव यह चाँदनी का प्रवाह जैसा मालूम होने लगा था।

कुछ एक वेश्याओं के शरीर पर, कलशों के उठाने के परिश्रम से, पसीना आ गया था, तदपि ये स्फटिक मणियों के कलशे और तीर्थ-जल लिये हुये जल के अधिष्ठात्री देवता के समान स्नान करा रहीं थीं।

कितनी ही चंदन के रस से मिले हुये—चन्दन मिले हुये जल से, मलयाचल की नदियों के समान स्नान करा रही थीं। बात यह है कि मलयाचल पर चन्दन के वृक्ष होते हैं। उनका रस नदियों में मिलकर आता है। इन्होंने चंदन घिस कर जल में मिला रक्खा था।

बहुत सी वेश्याओं ने इस समय कलशों के उठाने में नीचे ऊपर दोनों तरफ़ अपने हाथ लगा रक्खे थे। इनके हाथों का किरण-समुदाय प्रकीर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहा था—फैल रहा था। इनकी प्रत्येक अँगुली के छिद्र से जल-धारा निकल रही थी। अतएव ये जलयंत्र (फव्वारा) के अधिष्ठात्री देवता जैसी मालूम होती थीं।

कुछ एक वेश्यायें सोने के कलशों को हाथ में लिये हुये थीं, और इनको केसर मिले हुये जल से भरे हुये थीं। अतएव ये आकर्षण की गई नई धूप के समान, केसर के जल से, इसकी स्नानोत्पन्न शीतता को दूर करने के लिये, इसको दिनश्री जैसी स्नान करा रही थीं।

स्नान के बाद, बड़े ज़ोर से बजाये शंखों की ध्वनि हुवी। यह ध्वनि मानो, इस समय, कानों को भेदन सा कर रही थी। सारे के सारे भुवनों में यह व्याप्त हो रही थी। अनेक प्रकार से बजाये गये अतिपटु, नक्कारे, झाँझ, मृदङ्ग, बांस, बांसरी और गान से अनुगम्यमान थी—इनके सहित थी। और बन्दिगणों के कोलाहलयुक्त थी—बन्दिगणों का शब्द भी इसमें मिल रहा था।

शूद्रक ने, इस प्रकार स्नान से निवृत्त होकर, साँप की काँचली के समान, हलके और सुफ़ेद, अच्छी तरह साफ़ किये गये, दो वस्त्रों को धारण किया—धोती और दुपट्टे को पहना और देवस्थान—शिवमन्दिर को प्रस्थान किया। इस समय जल के प्रक्षालन से इसका शरीर शरद्ऋतु में आकाश का भाग जैसा निर्मल था—साफ़ था। अति श्वेत बादल के टुकड़े के समान, निर्मल दुपट्टे के पल्ले से इसने अपने सिर को लपेट रक्खा था—यह सिर से बहुत ही साफ़ दुपट्टा लपेटे हुवा था। इस अवसर पर, यह, आकाशगङ्गा के प्रवाह से हिमालय ने अपने मस्तक को ढक रक्खा हो, ऐसा मालूम होता था।

इसी अवसर में इसने वैदिक मन्त्रों से पवित्र की गयी जलाञ्जलि से सूर्यदेव को प्रणाम कर—सूर्य को जलाञ्जलि देकर, पितरों के लिये जलक्रिया की थी—अपने पितरों का तर्पण किया था।

शिवालय में जाकर, इसने शिवजी महाराज का पूजन किया और बाहर आकर विधिवत् होम किया। तथा अङ्गरागशाला में चन्दन से अपने देह को लेपित किया—अपने देह के सारे अवयवों पर चन्दन लगाया।

यह चन्दन कस्तूरी, कर्पूर और केसर की सुगंधि से सुगंधित था—इसमें कस्तूरी, काफूर और केसर पड़ी हुवी थी। इसीसे इसका गन्ध बहुत बढ़ गया था। अतएव "झन" "झन" शब्द करता हुवा, भ्रमर-समुदाय, इसकी सुगन्धि को ग्रहण कर रहा था—इसके चारों तरफ़ चक्कर लगा रहा था।

चन्दन लगाने के बाद, इसने, बड़े सुगन्धित चमेली के फूलों का शिरोभूषण धारण किया—माला पहनी। वस्त्रों का परिवर्तन किया—पूजा के वस्त्रों को त्याग कर दूसरे वस्त्र धारण किये। अलंकारों में से रत्न-जटित कर्णभूषण धारण किया।

इसने, जिनके साथ भोजन करना उचित था—जिनसे अपना खानपान था, उन्हीं के साथ तभी भोजन भी किया। अभिमत-भोजन के रसास्वादन से इसको बड़ी तुष्टि हुवी।

भोजन करके इस (शूद्रक) ने आचमन किया और बड़े निर्मल मणिजटित आसन* से—भोजन के आसन से खड़ा हो गया।

खड़े हो कर, इसने ताम्बूल ग्रहण किया—पान खाया और सिगरट को भी पीना शुरू कर दिया।

इतने ही में इसके पास बैठी हुवी प्रतीहारी ने सभय दौड़कर—जल्दी चलकर, अपना एक हाथ फैला दिया—आगे को बढ़ा दिया। शूद्रक, इसके हाथ का सहारा लेकर—इसको पकड़ कर—इसके हाथ में हाथ डाल कर, आस्थान-मण्डप को चल दिया।

इस समय, इसके पीछे पीछे एक सेवक भी चल रहा था। इसके हाथ की हथेली, बेंत के विशे

*इस आसन का भी शूद्रक के भोजन के समय वर्णन करना चाहिये था। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करने से कठोर पत्ते के समान होगयी थी। यह, भीतर जाने के लिये भी उचित था—यह रनवास में भी जा सकता था।

इस समय, आस्थान-मण्डप की शोभा भी कुछ अद्भुत ही थी। इसका बाहरी हिस्सा सुफ़ेद सुफ़ेद वस्त्रों से व्याप्त था, इसके बाहर की तरफ़ ऊपर को सुफ़ेद सुफ़ेद कपड़े पड़े हुवे थे। या यूं कहना चाहिये कि यह आस्थान-मण्डप श्वेत वस्त्रों से ढका हुवा था—इसके ऊपर चान्दनी बिछी हुवी थी। अतएव यह, स्फटिक मणियों की दीवारों से बना हुवा जैसा मालूम होता था।

इस आस्थान-मण्डप की मणियों की फ़र्शबन्दी पर चन्दन मिला हुवा जल छिड़का गया था। यह जल बड़ी ख़ुशबूदार कस्तूरीसहित था—इस में कस्तूरी भी पड़ी हुवी थी। इससे यह और भी सुगन्धित हो गया था। अतएव यह मणियों की फ़र्शबन्दी, बड़ी ठंडी मालूम होती थी।

यह आस्थानमण्डप, निर्मल मणियों की फ़र्शबन्दी पर, घिनके घिनके बिखरे हुवे कुसुम-समुदाय से, आकाश में तारागण जैसा निरन्तर व्याप्त था। बात यह है कि यहाँ फ़र्शबन्दी पर, आकाश में तारागण के समान, फूल बिखरे हुवे थे।

यह आस्थान-मण्डप, सोने के स्तम्भों से व्याप्त था—इसमें सोने के स्तम्भ लगे हुवे थे। ये स्तम्भ, सुगन्धित-जल से धोये गये थे। इनमें पुतलियाँ भी खोदी गयी थीं—नक़्शकारी भी हो रही थी। ये पुतलियाँ, समीप में विराजमान घर के अधिष्ठात्री देवता के समान मालूम होती थीं। या यूँ कहना चाहिये कि ये पुतिलियाँ, घर के अधिष्ठात्री देवता विराजमान हों, ऐसी मालूम होती थीं।

इस आस्थानमण्डप में बहुत सारे अगर की धूप की सुगन्धि थी।

यहाँ (आस्थानमण्डप में) एक तरफ़ हिमशिला के समान श्वेत एक पलंग पड़ा हुआ था। इस पलंग पर बिलकुल जल से शून्य बादल का जैसा पलंगपोश बिछ रहा था। यह पलंगपोश भी फूलों की सुगन्धि से सुगन्धित था।

इस पलंग का शिरोभाग, सुफ़ेद कपड़े के तकिये से अधिष्ठित था—इसके सिराने की ओर, एक बड़ा सुफ़ेद तकिया रक्खा हुआ था।

इस पलंग के पायों के नीचे, मणियों के बने हुये पड़वाये भी लगे हुये थे और इसके पास ही में एक रत्न-जटित पायदान भी रक्खा हुआ था।

शूद्रक इस पलंग पर बैठ गया। इसके बाद, पृथिवी पर बैठी हुयी, गोद में तलवार रक्खे हुये, खड्गवाहिनी—इसकी अनुचरी, कमल-दल के समान करपुट से—हाथ की मुट्ठी से, सहज सहज इसके पैरों को दबाने लगी।

यह भी, इस पलंग पर इस समय, उचितदर्शन राजा, मन्त्री और मित्रों के साथ प्रस्तावोचित बातचीत करता हुआ, दो घड़ी तक—अड़तालीस मिनट तक, बैठा रहा।

इसके बाद, तोते की बात पूँछने के लिये कुतूहली राजा शूद्रक ने, पास ही खड़ी हुई प्रतीहारी को, "रनवास से वैशम्पायन को लेकर आओ?" यह आज्ञा दी।

प्रतीहारी ने भी घुटने और हाथ पृथ्वी पर रखकर—कुछ नौड़ कर "महाराज की जैसी आज्ञा" यह कहते हुये, राजा की आज्ञा को शिर पर धारण कर—अपने मस्तक पर अपना हाथ लगाकर, राजा की आज्ञा का पालन किया—वैशम्पायन को लिवा ले आई।

वैशम्पायन इतने ही में राजा के समीप आ गया। प्रतीहारी इसके पींजरे को लिये हुवे थी। पक्षित्व जाति की प्रीति से, बूढ़े राज-हंस के समान एक कञ्चुकी इसका अनुगमन कर रहा था—इसके पीछे था। इस कंचुकी के हाथ में सुवर्ण की एक यष्टि थी—यह एक सोने की छड़ी लिये हुये था। इसके शरीर का पिछला भाग कुछ नौड़ा हुआ था—इसकी कमर झुकी हुयी थी। सुफ़ेद कंचुक से, इसने अपना शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढक रक्खा था—यह, एक सुफ़ेद कुरता पहिने हुये था। वृद्धावस्था से, इसका सिर सुफ़ेद हो गया था—इसके सारे सिर पर बालों की सुफ़ेदी थी। अतएव इसका शब्द भी गद्गद था—इसका उच्चारण भी साफ़ साफ़ न था। यह धीरे धीरे चलता था। इस कञ्चुकी ने पृथिवी पर हथेली रक्खे हुए कुछ डरते हुए राजा शूद्रक से इस प्रकार निवेदन किया—

महाराज! राजपत्नियाँ मेरे मुख से इस तरह, सूचना दिलाती हैं—मुझसे कहलवाती हैं, "महाराज की आज्ञा से यह वैशम्पायन स्नान और भोजन किये हुए है, या यूँ कहना चाहिए कि आपकी आज्ञानुसार, हमने इस तोते को स्नान और भोजन करा दिया है। और प्रतीहारी, आपके समीप ले आई है।"

यह कह कर कञ्चुकी चला गया। इसके चले जाने के बाद शूद्रक ने वैशम्पायन से पूँछा—

क्या तुमने अन्दर—रनवास में यथेष्ट भक्ष्यों का भक्षण किया? अपनी जाति के अनुकूल पदार्थों का आस्वादन किया? तोता कहने लगा—

हाँ महाराज! मैंने सब पदार्थों का भक्षण किया है। सुनिए, कसैला आमला जैसा मीठा, जामनों का रस, तृप्तिपूर्वक पान किया—जामनों का भक्षण किया। ये जामनें, नीली होती हुवी भी पाटल थीं—ऊपर से नीली और भीतर से पाटल थीं। अतएव इनकी छवि, मत्त कोकिलों की नेत्र-छवि जैसी थी। और मैंने अनार के दानों को तोड़ा था। इनका तोड़ तोड़ कर रसास्वादन किया था। इनकी शोभा, सिंह के नखों से विदीर्ण हुवे—नोचे गये, हाथियों के गण्डस्थलों से गिरते हुवे, खून से गीले गीले मोती जैसी थी।

कमलिनी के पत्तों के समान हरे हरे, और मुनक्का जैसे मीठे मीठे दूधिया आमलों का भी मैंने स्वेच्छा-मदन किया—उनका भी आस्वादन किया।

विशेष क्या कहा जाय, अधिक कहना व्यर्थ है। सारे के सारे पदार्थ, राजपत्नियों की हथेलियों पर प्राप्त हुवे—आये हुवे अमृत जैसे होजाते हैं—उसमें अमृत केसा स्वाद आजाता है।

इस प्रकार कहते हुवे, वैशम्पायन की बात को आक्षिप्त कर—अपनी विशेष प्रशंसा न सुनकर राजा शूद्रक कहने लगा—

यह होगा! इन बातों को रहने दो! हमारा कुतूहल दूर करो—हमारे मन का सन्देह मिटाओ। आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त निवेदन करो! तुम्हारा जन्म किस देश में हुवा है? तुमने अपने जन्म से किस देश को सुशोभित किया है? तुम्हारा जन्म किस तरह हुवा है, और किस कारण से "वैशम्पायन" यह नाम पड़ा? कौन तुम्हारी माता है, और कौन पिता? किस तरह वेदों को प्राप्त किया—कैसे वेदों को पढ़ा और कैसे शास्त्रों को देखा? कहाँ इन ७२ कलाओं का अभ्यास किया? तुम्हारे जन्मान्तर की कथा-स्मरण में क्या हेतु है—तुम्हें दूसरे जन्म की बातें कैसे याद हैं? क्या इसमें किसी का वरदान है, या पक्षी का वेष धारण किये हुवे, गुप्त-रूप से रहते हो? पहिले कहाँ रहे? अब तक कितनी अवस्था हुवी? पींजरे का बन्धन क्यों प्राप्त हुवा और चांडाली के हाथ में कैसे आये? यहाँ कैसे आना हुवा?

वैशम्पायन से आदरपूर्वक शूद्रक ने इस प्रकार पूछा। इसे स्वयं ही यह कुतूहल हुवा था।

(असमाप्त)

मूलसहित

हिन्दी-कुमार-सम्भव।

(गताङ्क से आगे)

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां
कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीया-
मात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥१८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भली होगी रक्षा, निज कुल कि" ये जान गिरिने
मनोज्ञा मेना से, विधियुत किया था परिणय ।*
सुता ये पित्रों की, मुनि-निवह २ से मानित हुयी
सुधी मर्यादा का, हिमगिरि सखा हेमगिरि का ॥१८॥

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते
स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे ।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या-
गर्भोऽभवद्भूधरराजपत्न्याः ॥१९॥

अभी इन्दोनों के, परिणयन को अल्प समय—
हुवा था, तौ भी ये, रतिरत हुये खूब बढ़ के ।
करो थी मेना ने, अति तरुणता धारण भली
तभो तेजस्वी औ, रुचिर इसके दौहृद * रहा ॥१९॥

प्रसूत सा नागवधूपयोग्यं
मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रा-
ववेदनाच्चं कुलिशक्षतानाम् ॥२०॥

सुजन्मा मेना ने, जलधि-सख मेनाक, तनय
सुता नागों की के, य "पति" पद से भूषित हुवा ।
न इस्के पक्षों को, सुरपति हि ने छेदन किया
हुवा पक्षच्छेदी, यह कुपित अत्यन्त यदपि ॥२०॥*

अथावमानेन पितुः प्रमुक्ता
दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी ।
सती सती योगविसृष्टदेहा
तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥२१॥

यदाहि ये साध्वी, स्वपितृ-मख में कोपित हुयी
तभी त्यागा इस्ने, रुचिर वपु को योग-पथ से ।
वही मेना के ये, फिर जनन को प्रापण हुयी
पुरा थी पत्नी ये, शिव हि कि, "सती" नाम तब था"

सा भूधराणामधिपेन तस्यां
समाधिमत्यामुदपादि भव्या ।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां
नीताविवोत्साहगुणेन सम्पत् ॥२२॥

इसी को मेना में, गिरिपति न उत्पादन किया
यथा अत्युद्योगी, धन सुनय से संग्रह करें ।
भली शैली से वो, यदि सुनय भी आचरित हो
सुता थी ये रम्या, नियमयुत मेना भि रुचिरा ॥२२॥

प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातं
शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि ।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां
सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ॥२३॥

सभी प्राणी इस्के, जनि-दिन सुखी थे अति हुए
प्रसन्ना थों आशा, अनिल* अति ही निर्मल चला ।
हुवा था शङ्खों के, ध्वनि-निकर से व्योम धुनित
तभी ही पुष्पों का, विकिरण भि शोभान्वित हुआ ॥

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री
स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे ।
विदूरभूभिर्नवमेघशब्दा-
दुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव ॥ २४ ॥

दिशा सारी ही ये, अतिचमक जिस्की पड़ रही
स्वपुत्री से ऐसी जननि इसकी शोभित हुई ।
नये मेघों के जो रव निकट से निर्गत हुई
शलाका रत्नों की, स, गिरिवर हो शोभित यथा ॥२४॥

---

* परिणय = विवाह
२ मुनिनिवह = मुनिसमुदाय
दौहृद = गर्भ
*यद्यपि, यहां मेनाक का वर्णन, प्रकृतविषय से बिलकुल भिन्न था, तथापि महाकवि को दिखलाना यह था, कि शिवजी ने पार्वती के साथ विवाह में—
"पिता न ज्ञायते यस्या भ्राता यदि न विद्यते ।
नोपयच्छेत्तु तां कन्यां धर्मलाभ-भयात् सुधी ।"
इस धर्मवाक्य का भी आदर किया था ॥
* अनिल = वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिने दिने सा परिवर्धमाना
लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान् विशेषा-
ञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि

पहाड़ों के राजा, हिम-अचल से जन्म धरके
सुता मेना की ने दिन दिन कला तुल्य बढ़के।
लुनाई थी जिन्में, स्व अवयव पोषण किये
यथा चन्द्र-ज्योत्स्ना, इतर भि कला वर्धन करे ॥२५॥

जयपराजय

"कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने !"

पद्मपुराण

कलकत्ते का ज़िक्र है, अलफ़्रेड थ्येटर में संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक, "मृच्छकटिक" खेला जा रहा था। पाठकों को यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि उसमें वसन्तसेना को उत्तम नायिका अतएव परमधैर्यवती वर्णन किया गया है। जो वर्णन है, वही खेला गया। बाबू मोहनचन्द्र घोष, सरला (अपनी स्त्री) के साथ दरजए ख़ास में बैठे थे।

जब चार ड्राप ख़तम हो चुके तब बाबूजी ने सरला से यूँ कहना प्रारम्भ किया—

सरला! क्या स्त्रियाँ सचमुच ही ऐसी धैर्यवती और शुद्धहृदया होती हैं?

यह शूद्रक* की बेजा हठधर्मी है—पक्षपात है। मेरी राय में वे स्वार्थ की साक्षात् मूर्ति हैं। बेवफ़ाई का नमूना हैं। एक नहीं हज़ारों उदाहरण मैं तुम्हें ऐसे बतला सकता हूँ।

सरला—(क्रोध को रोकते हुवे) संसार में केवल आप ही जैसे न्यायप्रिय रह गये हैं। बेचारी स्त्रियों के लिये जो वाक्य आपने कृपापूर्वक प्रदान किये हैं। अच्छा होता, यदि आप पुरुषों को उनसे विभूषित करते। स्त्री सच्चे प्रेम का ख़ज़ाना है सदा उसके हृदय में प्रेम का समुद्र लहरें मार करता है।

शकुन्तला के साथ किसने बेवफ़ाई की दमयन्ती को वन में किसने रोते छोड़ा!! सीता देवी की बातों को एक छोटा सा बालक भी जानता है। आप जैसे विद्वान् मनुष्य ऐसी गन्दी बातों को अपने हृदय में स्थान दें, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

मोहनचन्द्र घोष—वह समय और था।

सरला इसका उत्तर देना ही चाहती थी कि थ्येटर का परदा उठा, और खेल प्रारम्भ होगया।

खेल समाप्त हुवा तो घर आये। मोहनचन्द्र घोष बोले—

सरला! मैं सिद्ध करूँगा कि स्त्रियाँ बेवफ़ा और अधीरा होती हैं।

सरला—अच्छा, मैं, यदि मरजावूँ तो क्या तुम दूसरा विवाह नहीं करोगे? एकपत्नीव्रत धर्म के पालन करोगे?।

मोहनचन्द्र घोष—हाँ! मैं ऐसा करूंगा और अवश्य करूँगा। परन्तु यह तो बतलावो यदि मैं + + +

आगे कुछ कहना चाहते थे, सरला शीघ्रता से अपना दायाँ हाथ घोष बाबू के मुँह पर रख कर बोली—ईश्वर के लिये चुप रहो! तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।

(२)

बाबू मोहनचन्द्र घोष एक प्रसिद्ध समाचार-पत्र के सम्पादक और प्रकाशक थे। इंगलिश में एम० ए० तक इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें देश तथा जाति-सेवा की बड़ी लगन थी। बङ्गाली होते हुवे भी ये हिन्दी ही को राष्ट्रीय भाषा होने योग्य समझते थे। और इस बात का प्रायः कभी कभी समर्थन भी किया करते थे। इनका पत्र हिन्दी में छपता था—और ११ हज़ार से अधिक छपता था—पत्र, ये जीविका के लिये

---

* शूद्रक, मृच्छकटिक नाटक के रचयिता का नाम है। म० स०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं निकालते थे। शौक़ से ऐसा करते थे। पत्र के सिवा इन्हें कोई पचास हज़ार रुपया साल की आमदनी अपनी ज़मींदारी से होती थी।

सरला और इनके पिता का घर एक ही महल्ले में था। एक ही पाठशाला में ये बाल्यावस्था में दोनों पढ़ते रहे। बाल्यावस्था ही के प्रेम ने दोनों को पति-पत्नी बनाया। सरला ज़रा मित-भाषिणी थी और ये बाबू जी थे मसख़रे। यद्यपि यह साधारण सा ही अन्तर था, तथापि ये एक दूसरे के लिये ही पैदा हुवे थे। इनको हरसमय—आठों पहर सरला को छेड़ने में ही आनन्द मिलता था।

सरला की बहिन विमला, बाबू जी के पास कुछ दिनों के लिये आई। बाबूजी प्रायः साली से छेड़छाड़ करने के अभ्यासी थे। विमला भी सरला जैसी सीधी साधी न थी। यह चञ्चला थी। हँसी हँसी ही में यह, कभी तो बाबू जी को ऐसे आड़े हाथों लेती थी कि बाबूजी की लपल-पाती जीभ लज्जा के मारे बतीसी ही में दुबक रहती थी।

एक दिन विमला कहने लगी—बाबू! सरला को मैं अपने घर दो सप्ताह के लिये लेजाना चाहती हूँ।

मोहनचन्द्र घोष—यह तो नहीं हो सकता। हाँ यदि तुम यहाँ रहो, और सरला को भिजवा दो, तो मैं ख़ुशी से आज्ञा देता हूँ।

सरला को अपने प्राणप्रिय की यह बेहूदा हँसी बहुत बुरी मालूम हुवी। परन्तु उसने उस समय किसी कारण से कुछ नहीं कहा। विमला ने कहा—यदि तुमने सरला को लेजाने की आज्ञा न दी तो याद रखना, मैं कभी यहाँ न आवूँगी, और न कभी तुमसे बात चीत करूँगी।

मोहनचन्द्र घोष—अच्छा लेजाओ। पर यह ध्यान रखना, दो सप्ताह से १ दिन भी ज़्यादा न होने पाये।

विमला—हाँ! यह माना।

दूसरे दिन विमला, सरला के साथ, अपने घर आई।

(३)

विमला के पति नरेन्द्र कलकत्ते के प्रसिद्ध बारिस्टरों में से थे। सरला को देख कर नरेन्द्र ने कहा—घोष बाबू ने कैसे आज तुम्हें आने की आज्ञा दे दी? मैं सच कहता हूँ कि बीसियों बार, मैंने तुम्हारे भेजने के लिये, उन्हें लिखा। पर वह टालते ही रहे। बस, यही उनका १ जवाब था कि "सरला को मैं अपने साथ लाऊँगा"।

सरला—हाँ, उनका यह कहना ठीक ही था। घर में और कोई नही है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। विमला के बहुत कहने पर भेज दिया है, नरेन्द्र यह सुन कर मुसकराये।

रविवार की शाम को विमला और सरला बैठी आपस में बातें कर रही थीं कि इतने ही में घड़ी ने टन टन ७ बजाये। मेज़ पर लेम्प जल रहा था। मोहनचन्द्र घोष का सम्पादित पत्र मेज़ पर रक्खा था। नरेन्द्र बाबू उसके स्थायी ग्राहक थे। सरला ने पत्र उठाया और एक बात याद आने पर उसे नीचे डाल कर विमला से बोली—बहिन! बाबू ने मुझसे १ प्रतिज्ञा की है कि मेरे मरने के बाद वे दूसरा विवाह नहीं करेंगे। तुम नरेन्द्र बाबू से कह कर अभी एक तार भिजवा दो? कि—"सहसा हृदय की बीमारी से सरला मर गयी"। सरला ने थ्येटर की वे सारी बातें भी विमला को कह सुनाईं। विमला, ज़रा तबीयत की चलती तो थी ही, यह सरला की राय से सहमत हुवी।

१० बजे रातको नरेन्द्र घर आये। विमला ने सरला की बात को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये नरेन्द्र को बाध्य किया। नरेन्द्र बाबू बहुत कुछ टालते रहे, पर यहाँ सुननेवाला कौन था। उसी समय तार का फ़ार्म लिखवाया गया।

Sarala died suddenly of heartely disease

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनना था कि सरला बेहोश हो कर गिर पड़ी। केवल आँखें घोष बाबू को तक रही थीं। घोष बाबू बहुत कुछ धैर्य से काम ले रहे थे। तथापि अब अधिक रोकथाम उनके लिये असम्भव थी। दौड़ कर सरला को गोद में उठाया, और कहने लगे कि सरला! बस, अब इस इन्द्रजाल को समाप्त करो। सरला! बेहोश थी, इसे कुछ मालूम नहीं कि कौन क्या कहरहा है। केवड़ा छिड़का गया, एसन्स मँगाया गया, तब कहीं इसे कुछ होश हुवा। यह उठ बैठी, और उठ कर, घोषबाबू के गले से लिपट कर रोने लगी। विमला और नरेन्द्र अलग रो रहे थे, और यह भयानक दृश्य देख कर चकित हो रहे थे।

घोष बाबू ने सरला से पूँछा कि क्या अपनी सपत्नी को ऊपर न बुलावोगी? अच्छा होता, यदि तुमही जाकर उसे ऊपर लातीं? आख़िर वह कब तक प्रतीक्षा करती रहेगी।

यह सुन कर सरला सहसा पीछे हट गयी, सौकन! सौकन!! कहती हुवी इधर उधर देखने लगी और क्रोधित हुवी दूसरे कमरे में चली गयी। मनाने के लिये, घोषबाबू ने, बहुत कुछ विनय से काम लिया। किन्तु सब निष्फल रहा। सरला की यह दशा देख कर, घोषबाबू को विश्वास हो गया, कि सरला के हृदय में, इस बात ने पूरा स्थान कर लिया है। सरला बराबर एक महीने तक बीमार रही, जब उसका स्वास्थ्य ज़रा अच्छा हो गया तब घोषबाबू ने पूँछा—

सरला! तुमने ऐसा क्यों किया?

सरला—केवल हँसी से, और तुम्हारी बातों की परीक्षा करने के लिये।

मोहनचन्द्र घोष—(हंसते हुवे) इसका फल किसको भुगतना पड़ा? तुम्हारा वह धैर्य कहाँ है? प्यारी! यह "जयपराजय" का झूँठा तमाशा था।

सरला—(लजाती हुवी) तुमने मेरा चित्र छाप कर लोगों को विश्वास दिला दिया कि सन्मुख ही मैं मर गयी। अब फिर मुझे देख कर वे क्या कहेंगे?

मोहनचन्द्र घोष—(हँस कर) वे संख्या केवल तुम्हारे पास ही भेजने के लिये छपाई गयीं थीं। जब तुम्हारे मरने का तार गया था, साथ ही साथ नरेन्द्र ने, तुमसे न कहकर, तुम्हारी कुशलता का तार भी भेज दिया था।

विमला—अपने पति की इस कार्यवाही पर क्रोधभाव का अभिनय करती हुवी बोली—

क्यों जी! तुमने इस बात का मुझसे ज़िक्र तक भी नहीं किया? इस बेईमानी का दण्ड ज़रूर दिया जायगा। नरेन्द्र कहने लगे—

क्यों नहीं, सरला का हाल तो तुम देख ही चुकी हो, तुम भी अपने किये पर इसी तरह पछताओगी।*

पीछे नहीं हटूँगा।

चारों तरफ़ हों शत्रु, कीचड़ हि का हो घेरा।
साथी न कोइ भी हो, इक दम हो शेष मेरा।
रस्ते को रोक आगे, कोई खड़ा हुवा हो।
हाँ! शक्ति और बल में मुझसे बढ़ा हुआ हो॥
पीछे नहीं हटूँगा, पीछे नहीं हटूँगा।
बन्दूक़ दग़ रही हों, ख़ञ्जर भी चल रहे हों।
यहाँ रक्त बह रहा हो, वहाँ सिर उछल रहे हों।
कुछ इस तरह की शक्ति, ईश्वर न मुझको दी है।
इच्छा य मेरे दिल में, केवल बसी हुई है॥
पीछे नहीं हटूँगा, पीछे नहीं हटूँगा।
करता हो बन्द रस्ते, काँटे बिछा बिछाकर।
अटका रहा हो रोड़े, पत्थर जमा जमा कर।
छल बल से भि सहायक, अपने चहें बनाले।
शक्ती कहाँ कि मुझको, पीछे ज़रा हटाले।
पीछे नहीं हटूँगा, पीछे नहीं हटूँगा।†

"कुन्द"

---

*मरहटी के एक लेख के आधार पर लिखित। म०स०।

†प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ की एक कविता के आधार पर। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाइम्स

कहना न होगा कि जीवन के लिये मनुष्य को हवा और पानी जैसे आवश्यक हैं ठीक वैसे ही योरप में समाचार-पत्र-पत्रिकाओं का पढ़ना आवश्यक है। ईश्वर न करे, यदि योरप और अमेरिका में पत्र-प्रकाशन बन्द हो जाय तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं, कि संसार में अन्धेर छा जाय। योरप में वह मनुष्य बड़े आश्चर्य और घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, जिसने प्रातःकालिक चाय के साथ कोई समाचार-पत्र न पढ़ा हो और संसार भर के नये से नये समाचारों से परिचित न हुवा हो। इधर हमारे भारत की यह दशा है कि यहाँ के पत्र प्रायः मुमूर्षु रहा करते हैं। पत्रों के पढ़ने वालों की संख्या भी यहाँ निराली ही है। सैकड़े पीछे एक आदमी यहाँ समाचार-पत्रों को मुश्किल से रींग राँग कर पढ़ सकेगा। उन पढ़नेवालों में भी समझ सकनेवालों की संख्या तो सैकड़े पीछे शायद आधी भी न होगी? इस लेख के लेखक ने कयी, समाचार पढ़नेवालों के मुख से, "देहली के साज़िश के मुक़दमे" को "बम का मुक़दमा" कहते सुना है। दैनिक पत्रों का तो भारत में और विशेषतः हिन्दी में, प्रायः अभाव ही सा है। यहाँ का दैनिक मुश्किल ही से शायद कोई १६-१७ हज़ार छपता हो, परन्तु योरप में एक नहीं बहुत से ऐसे दैनिक पत्र हैं जिनकी मुद्रणसंख्या १६-१७ लाख से भी ज़्यादा है। नहीं कहा जा सकता कि परमदयालु सर्वशक्तिमान् ईश्वर वह दिन कब दिखलायेगा जब भारत में भी योरप की तरह पत्र-पत्रिकाओं का सञ्चार होगा। अस्तु! आज हम अपनी पाठक-पाठिकाओं को योरप के एक ऐसे समाचार-पत्र का कुछ वृत्तान्त सुनाना चाहते हैं जिसकी कयी पत्रों की अपेक्षा मुद्रणसंख्या कम होने पर भी संसार भर में अधिक प्रतिष्ठा है। इस पत्र का नाम

टाइम्स

है। और यह लण्डन से निकलता है। यह बड़ा पुराना, और यदि हम भूलते नहीं हैं तो, संसार भर में सबसे पुराना, पत्र है। इसे निकले हुवे आज

एक सौ पचास वर्ष

के लगभग हो चुके हैं। १० सेप्टेम्बर सन् १९[illegible] को इसकी

चालीस हज़ारवीं संख्या

छपी थी। यह संख्या विशेष प्रबन्ध के साथ छापी गयी थी। इसमें प्रकृत संख्या से ४४ पृष्ठ अधिक थे। इन अधिक पृष्ठों में अधिकतर तीन प्रकार के लेख थे।

मुद्रण-पद्धति का इतिहास।
समाचार-पत्रों का इतिहास।
और टाइम्स का इतिहास।

इस अवसर पर चारों तरफ़ से टाइम्स के प्रबन्धकर्त्ताओं को

साधुवाद

किये गये। ये (साधुवाद) उन लोगों ने ही नहीं किये जो टाइम्स की टिप्पणियों से सहमत हैं प्रत्युत उन लोगों ने भी किये, जो इसकी टिप्पणियों से कभी सहमत नहीं रहते। इसका कारण यह है कि हरेक न्यायशील मनुष्य यह बात मानने के लिये तय्यार है कि आज के दिन भी कई बातों में,

टाइम्स संसार भर में अच्छा समाचार-पत्र है।

चालीस हज़ारवीं संख्या की माँग इतनी थी कि मङ्गलवार को यह संख्या छपी और उसी दिन प्रातःकाल के दस बजे तक सारे के सारे पत्र बिक गये और उसी दिन उसे दुबारा छापने की फिर ज़रूरत पड़ी। बुध की शाम तक वे भी सब बिक गये और टाइम्स की माँग वैसी ही बनी रही।

टाइम्स में कितना मसाला होता है?

पाठक चकित होंगे कि प्रति दिन इतने [illegible] और समाचार कहाँ से आते हैं, जिन्हें टाइम्स [illegible] निकलने से पहिले ही छाप देता है। भारत [illegible] हम देखते हैं कि, बड़े से बड़े समाचार-पत्र, [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारों और तकरारों ही के समाचारों से भरे रहते हैं। बहुत हुवा तो आप उनमें उद्धृत लेख देखेंगे, परन्तु टाइम्स में यह बात नहीं है। इसमें अपने ही मँगाये तारों के समाचार होते हैं और अपने ही सम्पादकों तथा लेखकों के लेख। हमारे भारतीय पत्रों की तरह इसे यह आपत्ति भी नहीं होती कि

पत्र कैसे भरा जाय ?

प्रत्युत आपत्ति यह होती है कि बहुत से लेख और समाचारों को

कैसे खपाया जाय ?

टाइम्स में साधारणतया २० पृष्ठ होते हैं। लेख और समाचार जब अधिक हो जायें तो ३६ पृष्ठ तक भी हो जाते हैं। इससे ज़्यादा इसका कलेवर होना असम्भव है। इस कारण से नहीं कि इतने लेख और समाचार नहीं मिल सकते, प्रत्युत कारण यह है कि पढ़नेवालों की आख़िर शक्ति की भी तो कोई सीमा है। एक दिन में इतने सारे समाचार और लेख कौन पढ़ सकता है ?

सम्पादन का परिश्रम

इसका ठीक ठीक अनुमान करना ज़रा दुःसाध्य काम है, कि टाइम्स के सम्पादन में इसके प्रकाशकों को कितना परिश्रम उठाना पड़ता है। टाइम्स के लेखकों की संख्या २००० दो हज़ार से भी ऊँची है। गत वर्ष में १९२४ लेखकों को उनके श्रेष्ठतम लेख होने के कारण पुरस्कार दिया गया था। टाइम्स के केवल दफ़तर ही में २९० आदमी काम करते हैं। उनमें यद्यपि बहुत से

सहकारी सम्पादक

कहलाते हैं परन्तु वे लिखने का काम बिलकुल नहीं करते। उन्हें केवल आगत लेखों को दुरुस्त करना पड़ता है। इनके सिवा ३५० आदमी छापने का प्रबन्ध करते हैं।

टाइम्स के समाचार प्राप्त करने के भी बड़े वसीले हैं। वह रूटर एजन्सी के आश्रय पर काम नहीं करता। एक बार, जब रूटर कम्पनी की स्थापना ही हुई थी तब, उसके प्रवर्त्तक ने टाइम्स के सहकारी सम्पादक से आकर कहा कि हम आपको संसार भर के दैनिक समाचार दिया करेंगे। टाइम्स के सहकारी सम्पादक ने उत्तर में कहा था कि—

"हमारा अपना अनुभव यह है कि हम अपना काम दूसरों के साहाय्य बिना ही स्वयं अच्छा कर सकते हैं"

इस बात को कहे आज ६५ वर्ष बीच गये परन्तु इसके ठीक होने में अणुमात्र भी आज तक किसी को सन्देह नहीं हुआ।

टाइम्स अपने ग्राहकों को केवल पत्र ही देने मात्र से सन्तुष्ट नहीं करता। यह ग्राहकों के लिये

मनोहारी उपहार

भी देता है। बड़े दिन पर प्रायः यह सचित्र पुस्तकें दिया करता है। यह अपने दैनिक परचे के निर्धारित ग्राहकों को दो साप्ताहिक पत्र और बहुत सी पुस्तकें भी दिया करता है।

टाइम्स का सम्पादक

इङ्गलैन्ड का श्रेष्ठतर अनुभवी और वाइसराय की जैसी योग्यता रखनेवाला विद्वान् टाइम्स का सम्पादक होता है। भारत की तरह यह नहीं होता कि थोड़े बहुत पढ़े पढ़ाये और सम्पादक बन बैठे। इसके सहकारी सम्पादक का वेतन भी इङ्गलैंड के प्रधान सचिव के वेतन के बराबर होता है, अर्थात् पाँच हज़ार पाउण्ड वार्षिक।

यह सब कुछ होने पर भी शोक है कि टाइम्स भारत के विषय में कभी ज़हर उगले बिना नहीं रहता। कांग्रेस के विषय में इसने कभी अच्छी सम्मति नहीं दी! ऋषिकल्प मिस्टर दादाभाई नौरवजी का कथन है कि—

"मैं तब तक किसी भारतीय काम के विषय में अपनी सम्मति स्थित नहीं करता जब तक टाइम्स उस पर विवेचना न करले! टाइम्स जिस बात को भारत के लिये अच्छी लिखता है, अभ्यास ही में समझ लेता हूँ कि भारत के लिये वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हानिप्रद है। वह जिसे हानिप्रद लिखता है मैं समझ लेता हूँ कि वह अच्छी है।" ऋषिकल्प के इन वचनों से टाइम्स की साधुता और पक्षपातिता का अनुमान हो सकता है।

परन्तु टाइम्सवालों का कथन है कि टाइम्स में जो कुछ छापा जाता है या सम्मति दी जाती है हठ या आग्रह से नहीं, किन्तु सत्यभाव से विवेचना करके लिखा जाता है।

लेखकों की उद्दण्डता

लेखकों की उद्दंडता से भी टाइम्स नहीं बचा। अभी गत ३१ मई (सन् १९१५) को इस पर एक मुक़दमा क़ायम किया गया था। "ज़बरदस्ती सेवा की आवश्यकता" शीर्षकवाले इसके एक लेख में लिखा गया था कि—

"अल्पवयस्क रंगरूट फ्रांस भेजे जा रहे हैं और अच्छे मोटे ताज़े युवा बेकार बैठे मज़े उड़ा रहे हैं"

निःसन्देह इससे यह झूँठा अनुमान हो सकता है कि इङ्गलैंड में युद्ध के विषय में बिलकुल उदासीनता से काम लिया जा रहा है। यही कारण था कि टाइम्स पर ऐसा बे सिर पैर का झूँठा समाचार छापने के लिये मुक़दमा क़ायम हुआ। इति।

पम्पा-नदी पर राम

(मालिनी-छन्दः)

(१)

विमल-सलिल-युक्ता, शोभती आज पम्पा
विकसित कमलों से, दीखती है निराली।
शिशिर सलिल इसका, है पिपासा मिटाता
गिरिश-भजन जैसे, किल्बिषों को मिटावे॥

(२)

निकट, इस नदी के, काननों को भि देखो!
द्रुम-निकर जहाँ का, सस्नु हो शैल जैसा।
यदपि जनकजा का, है मुझे क्लेश भारी
तदपि अतिहि बन्धो! चित्त को हर्ष होता॥

(३)

अवनत सुलता हैं, पादपों की यहाँ के
कुसुम-चय विना के, है नहीं अन्य हेतु।
शिशिर-पवन देता, है इसी से हिलोरे
परवश करता है, काम, ऐसी दशा में॥

(४)

फिर अब तुम देखो! पुष्पशाली वनों को
पवन इन सुमों से, खेलता है निराला।
इस विध बरसाते, पुष्प-वर्षा धरा पे
जिस विध बरसावें तोय को मेघ-पुञ्ज॥

(५)

अनिल-चलन से हैं, पादपों की शिखा भी
मिलकर सुख-युक्ता, मित्र से मित्र जैसे।
भ्रमर-निकर इन्के, मध्य में ख़ूब घूमे
जन, रव-युत जानें, हैं इसी से इनों को॥

(६)

पतग-निकर पम्पा,—तीर ये शब्दकारी
विन, जनक-सुता के, है मुझे दुःखकारी।
सुन सुन पतगों के शब्द को, काम-बाण
इस, मृदु-तनु को हैं, बींधते सूचिका से॥

(७)

प्रिय! अब तुम देखो, आगया चैत्र मास
दिशि दिशि सुनता हूँ, कोकिलों की सुकूज।
मनसिज, शर, लेके, सामने ही खड़ा है
किस विध नहि होवे? दीप्त, सीता-दुखानि।

(८)

इधर उधर कैसे, नाचते हैं मयूर
तनु-रुह अपनों को, खोलते हैं निशङ्क।
नयन-मुदित-दायी, दीखते हैं तदा ये
सुजटित मणियों के, ठीक जैसे गवाक्ष॥

(९)

गिरिवर यह कैसे, शोभते किंशुकों से
वन बिच, घर जैसे, दीपकों का समूह।
स्थित-अलि-कुल इन्को, सूँघ के भाग जाते
जल-रहित सरों को, छोड़ते मीन जैसे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

जलबिम्ब यह पम्पा, के सुपद्मों कि पंक्ति
रुचिर लख पड़े है, मैथिली-नेत्र, जैसी।
लख कर इसको है याद आती सुनेत्रा
छिपकर अब सीता ! हा ! कहाँ है गयी तू ? ॥

(११)

सुनकर यह, भाई, वीर सौमित्रि बोले—
"इतर-मनुज नायीं, छोड़िये ! शोक, राम !।
यदि अनुचर को हो आज आदेश ऐसा
सहित जनकजा के, बाँध के चोर लाऊँ ॥"

गङ्गाशरण गुप्त

तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रसिद्ध "गौड़ स्वामी"

तेरह चौदह वर्ष हुवे, सुदर्शन-सम्पादक, पं० माधवप्रसाद मिश्र ने "विशुद्ध-चरितावली" नामक पुस्तक का प्रथम भाग लिख कर प्रकाशित किया था। आपने उसमें लिखा है कि स्वामी विशुद्धानन्दजी सरस्वती से कुछ भी सम्बन्ध रखनेवाले सब महानुभावों का क्रमशः यथालब्ध जीवन-चरित लिखा जायगा, किन्तु आज तक, जहाँ तक हमें मालूम है, चरितावली का दूसरा भाग भी प्रकाशित नहीं हुवा है। अस्तु।

आज उसी के आधार पर प्रस्तुत जीवन-चरित पाठकों की भेंट किया जाता है।

जन्म और बाल्यकाल

पंजाब में पटियाला राजधानी के पास "शनेवर" नाम का एक ग्राम है। वहीं पण्डित जयगोपाल मिश्र एक गौड़ ब्राह्मण रहा करते थे। हमारे चरित-नायक तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रसिद्ध गौड़ स्वामी जी का जन्म संवत् १८२३ में उन्हीं के यहाँ हुवा था। पं० जयगोपाल ने अपने इस होनहार पुत्र का नाम "भगवानदत्त" रक्खा। बाल्यावस्थाही से पढ़ने की इन्हें धुन थी। पं० जयगोपाल को घरगिरस्ती के कामों से अवकाश कम मिलता था और न इन्हें, कुछ इस बात की परवाह हो थी कि बालक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाय। अतः ये थोड़े बहुत वहीं की चटसाल में पढ़े पढ़ाये।

१२ वर्ष की अवस्था में इनके माता पिता ने इन्हें सपत्नीक भी बना डाला।

यद्यपि ये अपने विवाह हो जाने से प्रसन्न नहीं हुये तथापि माता पिता की लज्जा से कुछ कह भी नहीं सके। वैसे ही मन मार कर रह गये।

विवाह के पश्चात् एक दिन ये चुपचाप, विना कुछ कहे सुने, अपने घर से चल दिये। माता पिता बड़े घबराये, कि इनको आँखों का प्यारा, लाडला दुलारा भगवानदत्त कहाँ चला गया। परन्तु खोज करने पर कुछ दिन पीछे उन्हें मालूम हो गया कि इनका विद्याव्यसनी पुत्र "मदूदों" में विद्याध्ययन कर रहा है। "मदूदों" होशियारपुर के ज़िले में एक छोटा सा ग्राम है। वहाँ पंडित केशवरामजी सारस्वत एक अच्छे विद्वान् रहते थे। इनके शिष्य बड़े बड़े धुरन्धर पंडित हुवे हैं। "वृत्तिप्रभाकर" "विचारसागर" आदि ग्रथों के रचयिता विख्यातसाधु निश्चलदासजी और पण्डित हरियशरामजो आदि अनेक विद्वानों ने संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा इनही से प्राप्त की थी। भगवानदत्तजो ने भी इनही से तीन चार वर्ष में सारस्वत, चन्द्रिका और श्रीमद्भागवतादि अनेक ग्रन्थों को पढ़कर व्युत्पत्ति प्राप्त की। अब इनकी असाधारण प्रतिभा का विकास होने लगा।

काशी-गमन

जब तक किसी रस का आनन्दानुभव न हुवा हो, तभी तक रसाभिलाषी पुरुष को, उससे निवृत्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

भगवानदत्त को बाल्यकाल ही से पढ़ने का बड़ा शौक़ था। परन्तु तब तक इस विषय का उन्हें ज्ञान नहीं हुवा था—इन्हें मालूम ही न था कि उसमें क्या आनन्द है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उस अनिर्वाच्य आनन्द का अनुभव होने से इनकी पठनलालसा बढ़ गयी और ये घर वालों की अनिच्छा रहने पर भी विद्या-केन्द्र काशीधाम को चले गये।

काशी जाकर इन्होंने, पण्डित काकाराम जी शास्त्री, पण्डित सखाराम जी भट्ट और वङ्गीय पण्डित चन्द्रनारायणजी भट्टाचार्य आदि सुप्रसिद्ध विद्वानों से व्याकरण, वेदान्त एवं न्याय-शास्त्र प्रभृति का अध्ययन किया। अभी इनकी पूरे २० वर्ष की अवस्था भी न होने पाई थी कि यह ज्यौतिष-शास्त्र को छोड़ कर प्रायः सब शास्त्रों के असाधारण पण्डित होगये। उस समय इनका पाण्डित्य, पण्डित-मण्डली का सचमुच मण्डन हो रहा था।

अपने स्थान को प्रत्यागमन

काशी से जो पण्डित, राजधानी पटियाले में आया करता, भगवान्दत्तजी के पिता, पण्डित जयगोपाल मिश्र उसी से अपने विद्वान् पुत्र का वृत्तान्त पूँछा करते और उनसे अपने पुत्र के विद्या-वैभव की बड़ाई सुनकर बड़े प्रसन्न होते, अपने भाग्य को सराहते और उस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा किया करते कि कब हमारा विद्वान् पुत्र हमसे मिलेगा।

ईश्वर की कृपा से माता पिता की इच्छा पूरी हुई। उस बेचारी, पतिव्रता बालवधू की मनोवांछा सफलीभूत हुई, जिसको अपने प्राणाधार के बिना सारा संसार शून्य मालूम होता था।

आठ दस वर्ष पीछे विद्वान् पुत्र से मिल कर मां-बाप बड़े प्रसन्न हुवे। "शनोवर" के सब लोग इनसे मिलने के लिये आये।

सरदारों से मुलाकात और तिरस्कार

भगवान्दत्त जब काशी में पढ़ते थे, तभी इनके पिता, पटियाले के महाराज और बड़े बड़े सरदारों से कहा करते कि "हमारा पुत्र बड़ा विद्वान् हो गया है, सब शास्त्र पढ़ चुका है"। ये भी उनको भरोसा दिया करते कि "अवश्य उसकी राज्य बड़ी प्रतिष्ठा होगी।"

पुत्र का प्रबल-प्रताप प्रलोकन करने के लि और पटियाले की रियासत में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये, इसी प्रकार पण्डित जयगोपाल अनेक मनोरथ किया करते।

एक दिन अपने मनोरथ को सफल करने लिये पुत्र से यूँ कहने लगे—

बेटा! चलो! सरदार साहब से मिलें। जि से तुम्हारी भाग्योन्नति हो और विद्या का चमत्कार दीखे।

तेजस्वी भगवान्दत्तजी ने किसी सरदार पास जाकर मिलना उचित न समझा। इसलि इस विषय में बड़े नम्र-भाव से अपनी अनिच प्रकट की और कहने लगे—

पिताजी! भाग्योन्नति विधाता के हाथ विद्या पढ़ना हमारा परम-धर्म था और तज्जनि आनन्द, उसका मधुर-फल है। इसके सिवा फल न्तर की हमें इच्छा नहीं है। हमारी सच्ची भाग न्नति तो इसी में है कि हम विद्या का प्रचार और आपको सेवा में तत्पर रहें। फिर हमें ज़रूरत है जो राजदरबार में जाकर अपनी वि का आप ही स्वयं अपमान करें।

पिता पुत्र में इसी बात पर कई दिन विचार हुवा। पिता अपनी प्रबल युक्तियों राजदर्बार में जाना ही श्रेयस्कर सिद्ध करते और विद्वान् पुत्र थोड़े से ही शब्दों में उस निराकरण कर देते थे। अन्त में विवश हो पुत्र ही की हार हुवी। इन्होंने कहा "अच्छा इच्छा हो ले चलिये। कई नारियल लेकर पिता दोनों, राजकीय सरदारों से मिलने के लिये दिये। सबसे पहिले एक सरदार के पास गये, महाराज का बड़ा प्रेम-भाजन था। इसे वेद जानने का भी बड़ा घमंड था। यह एक चौकी बैठा हुवा पानी के कुल्ले कर रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितापुत्र दोनों को एक साथ आते देख कर यह मुसकराया और पास ही दरी पर बैठने को कहा। कुछ देर पीछे वह अपना एक आवश्यक काम करने के लिये चला गया और इनसे कहला भेजा कि अब हमें मिलने की फुरसत नहीं है, फिर आना"।

इसी तरह ये, एक और सरदार के पास पहुँचे। उस दयालु ने तो इन बेचारों को दूर ही से फटकार बतलाई। मन्त्री और महाराज भी किसी आवश्यक कार्य में संलग्न थे। अतः घण्टों तक दर्शनों की इच्छा से ये राजद्वार पर बैठे रहे। पर वहाँ तक पहुँच ही नहीं हुवी। द्वारपालों ने बड़ी बेरहमी के साथ मना कर दिया। निराश हो बेचारे दोनों घर को वापस लौट आये। इन दोनों को इस अनादर से जो आन्तरिक दुःख हुवा। उसे यहाँ लिखने की ज़रूरत नहीं है।

संन्यास-ग्रहण

भगवान्दत्त जी मनही मन में अपने को धिक्कारने लगे। किस लिये विद्या पढ़ी थी? क्या विद्या देवी का यही फल है कि पेट भरने के लिये कुत्तों की तरह प्रत्येक द्वार पर भटकते फिरें? कहाँ ब्रह्मबल! विद्याबल! और कहाँ यह निःसार संसार का तुच्छातितुच्छ लोभ! जब तक गृहस्थ में रहेंगे तब तक इसी प्रकार भटकना पड़ेगा। अच्छा हो, यदि गृहस्थ ही को, जो लोभ, मोह का मूल है, छोड़ दिया जाय।

यही बिचारते बिचारते ये अपनी परमप्यारी पत्नी के पास गये। इसका सरला नाम था और सचमुच इसकी आकृति भी सरला ही थी।

उससे यह कहने लगे कि हम एक आवश्यक कार्य के लिये कहीं बाहर जायेंगे। तुम कोई चिन्ता न करना। और जब तक हम न आवें, हमारे पिताजी की सेवा करना। यह हमारी बात किसी से कहना भी मत। उस दिन माता-पिता की भगवान्दत्तजी ने खूब सेवा की। पिता बड़े प्रसन्न हुवे और कहने लगे कि बेटा! आज बिना मुहूर्त्त राजदरबार में गये थे। इसलिये उनसे मुलाक़ात नहीं हुवी। अबकी बार अच्छा मुहूर्त्त देखकर चलेंगे। ईश्वर की कृपा से सब काम ठीक हो जायगा।

इन्हें यह मालूम ही न थी कि भगवान्दत्तजी ने क्या ठान ली है।

रात को जब सब सो गये तब अपनी स्त्री के पास से ये, "अद्वैतसिद्धि" "गौडब्रह्मानन्दी" और "शास्त्रदीपिका" ये तीन पुस्तकें उठा, घर से निकल, चुपचाप दक्षिण की ओर चल दिये। सरला बेचारी टिकटिकी लगाये देखती ही रह गयी। प्रातःकाल पिताजी को यह वृत्तान्त मालूम होने पर बड़ा दुःख हुवा। इधर उधर आदमी दौड़ाये गये। स्वयं भी बेचारे काशी तक चक्कर लगा आये। कहीं भी पता न चला।

सन्यास-ग्रहण करने की इच्छा से, विरक्त भगवान्दत्त घर से निकले। सोचा कि कहाँ चलें? काशी का विचार हुवा। साथ ही यह भी विचार हुवा कि काशी में तो कोई दक्षिणी, गौडब्राह्मण को सन्यास ही न देगा। उन अभिमानियों के समीप तो गौड़ ब्राह्मण ब्राह्मण ही नहीं हैं। फिर वहाँ जाना वृथा ही है। दक्षिण देश में चलें। वहीं किसी सन्यासी से सन्यास ग्रहण कर लेंगे।

इस विचार से नासिक-क्षेत्र में जाकर विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे। थोड़े ही दिनों में यह वहाँ के एक प्रसिद्ध पण्डित हो गये। सौभाग्य से एक बार नासिक में, कई वीत-राग सन्यासियों का समागम हुवा। उनमें से दो एक इनके पास भी आया करते। उन्होंने अपने गुरु से पण्डित भगवान्दत्त जी के वैराग्य आदि सन्यासोचित गुणों की प्रशंसा की और साथ ही निवेदन किया कि वे आपसे सन्यास लेने की इच्छा करते हैं।

पण्डितजी भी उक्त महात्माजी के पास आने जाने लगे। इन्होंने सन्यास दे दिया और इनका "तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती" नाम रक्खा। तारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मानन्द सरस्वती नाम होने पर, नासिक के लोग इन्हें "पंडित स्वामी" के नाम से पुकारा करते थे।

काशी-प्रस्थान

२० वर्ष तक नासिक में इन्होंने निवास किया और वहाँ विद्या का प्रचार करते रहे। बाद को अपने पुरातन, पुनीत, काशी-धाम को चले आये।

काशी के पण्डितों ने, पहिले ही से इनके अलौकिक पाण्डित्य के कारण, "पण्डित स्वामी" का नाम सुन रक्खा था। परन्तु इन्हें यह मालूम न था कि यह "पण्डित स्वामी" वही हमारे पूर्व परिचित पण्डित भगवान्दत्त जी गौड़ हैं। अब अपने सुयोग्य मित्र को जगद्वन्दनीय सन्यासी के रूप में देखकर, सबने सहर्ष स्वागत और अभिवादन किया।

गौड़ ब्राह्मणों के लिये, अब तक सन्यास का मार्ग दाक्षिणात्य लोगों ने आच्छादित सा कर रक्खा था। उसे अब उन्मुक्त हुवा देखकर, गौड-कुल के इस सबसे पहिले सन्यासी को सब काशीस्थ "गौडस्वामी" के नाम से पुकारने लगे। यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि "तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती" न कहकर लोग "गौडस्वामी" कहने लगे।

मरहटों के शासनकाल में कितने ही आत्माभिमानी दाक्षिणात्य पण्डित, गौड़ ब्राह्मणों को खुल्लमखुल्ला नीच कहकर पुकारा करते थे। उनके इस अनुचित नामकरण का ठीक ऐसा ही उत्तर देने की, समय के फेर से उस समय गौड़ जाति में शक्ति न थी। यही क्यों? ज्यों ज्यों मरहठों का अत्याचार राजपुताने को वीरभूमि पर बढ़ने लगा त्योंहीं यह दाक्षिणात्य लोग मनचाही दून की हाँकने लगे।

कितने ही दक्षिणी पण्डित वैश्यों के वैश्यत्व की भी यह कहकर इतिश्री करने लगे कि "कलियुग में ब्राह्मण और शूद्र दो ही वर्ण हैं। क्षत्रिय वैश्य हैं ही नहीं। इन लोगों ने गौड़ ब्राह्मणों को वेद पढ़ाना छोड़ दिया था, और वैश्य बेचारों को तो वेद सुनाते भी न थे।

यही कारण था कि गौड़ ब्राह्मणों को इन लोगों ने सन्यास के भी अयोग्य बतला दिया था।

आश्चर्य है कि इन लोगों को यह मालूम होते हुवे भी कि स्वामी शङ्कराचार्य के परम गुरु गौड़पादाचार्य का जन्म इसी गौड़-ब्राह्मण-जाति में हुवा था, क्यों गौड़ जाति को संन्यास के अयोग्य समझा? अस्तु।

काशी में गौड़ स्वामी के आने का समाचार सुन कर ग्वालियर और इन्दौर के राजपुरुषों ने उनके लिये मठ बनवाने और सदा के लिये उसमें सदाव्रत का प्रबन्ध करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु निरपेक्ष स्वामीजी किसी प्रकार इस बात से सहमत नहीं हुवे। और अहिल्याबाई की धर्मशाला में आन कर ठहर गये।

इनके निवास करने के कारण ही यह छोटा सा स्थान आज तक काशी में बड़ा प्रसिद्ध है।

इसकी पहिली मंज़िल में दूर दूर के विद्यार्थी न्याय, व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ते थे और दूसरी में शान्त-शील दण्डि-सन्यासियों का निवास था। पहिली मंज़िल में पहुँचने पर ब्रह्मचर्य का अद्भुत-दृश्य दीखता था और दूसरी में कौपीनावशेष वीतराग सन्यास का। मानो यह स्थान इस बात का निदर्शन हो गया था कि ब्रह्मचर्य के बिना कोई पुरुष सन्यास मार्ग का अधिकारी नहीं हो सकता।

शिष्य-समुदाय

गौड़ स्वामी जी के बहुत शिष्य थे। जिनमें से कुछ के नाम यहाँ नीचे लिखे जाते हैं—

स्वामी विश्वरूपानन्द जी। स्वामी विशुद्धानन्द जी। स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी। स्वामी शङ्करानन्द जी। स्वामी अच्युतानन्द जी। स्वामी सच्चिदानन्द जी। नृसिंह स्वामी जी। पंडित श्रीधर डासनेवाले। पंडित हरियशरामजी भाटियावाले। पण्डित विभवरामजी सारस्वत। पंडि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणु शास्त्री इन्दौर वाले। पंडित गणेश शास्त्री धारा वाले।

शरीर

बूढ़े होने पर भी गौड़ स्वामी जी का हृष्टपुष्ट मोटा ताज़ा शरीर था। जो इनके पूर्वाचरित ब्रह्मचर्य का परिचायक था। दोनों कान श्वेत-रोमावली से आच्छादित थे। मालूम होता था कि ज़रा-देवी तपस्वी शिष्यों के भय से अब इन्हें अन्तिम गुप्त सवाद सुना रही है।

शास्त्र-ज्ञान

उस समय काशी में व्याकरण-शास्त्र की बड़ी चर्चा हो रही थी। वेदान्त और मीमांसा के पढ़ने को लोग गौण समझते थे। फक्किकाओं का रटना ही एक प्रधान कर्तव्य माना जाता था। स्कूली और कालिजी पण्डितों के कथनानुसार फक्किका की "फक्किकायते मन्दीभूयते बुद्धिरनयेति फक्किका" यह व्युत्पत्ति जब न की जाती थी। परिभाषेन्दुशेखर और शब्देन्दुशेखर की नई नई टीका-टिप्पणियों को लोग चाव से देखते थे। व्याकरण में जो नई कल्पना करता, बस वही प्रतिभा-सम्पन्न समझा जाता था।

एक बार गौडस्वामीजी के दो एक विद्यार्थियों को व्याकरण के शास्त्रार्थ में कुछ नीचा देखना पड़ा। वे बेचारे स्वामीजी के पास आकर उदासीन भाव से कहने लगे कि आपको भी "शेखर" पर कोई टीका बनानी चाहिये, जिससे हम व्याकरण में भी किसी से पराजित न हों।

शिष्यों की प्रार्थना से कृपालु और विद्वान् स्वामी जी ने दो अमूल्य टीकाओं की रचना की, पहली "परिभाषेन्दु शेखर" पर "चिदस्थिमाला" और दूसरी "शब्देन्दुशेखर" पर "चित्कला"।

यह दोनों टीकायें इतनी अच्छी बनी थीं और लोगों को इतनी पसंद आई थीं कि ये यदि छपतीं तो अब तक नहीं, तभी इनके कई संस्करण हो गये होते। महात्मा तिलक लिखित गीता की टीका वाली पुस्तक, छः दिन में छः हज़ार बिकी थी। ये यदि छपतीं तो सच जानिये, छः घण्टे में छः हज़ार बिक जातीं। परंतु उस समय तक भारत में आज का जैसा प्रेस का प्रचार नहीं हुआ था। तब भी विद्यार्थी लोग लिख लिखकर इन दोनों टीकाओं का प्रचार करते हुवे अपने को धन्य मानते थे। उस समय "त्रिपथगा" टीका से दूसरा स्थान इन्हीं की टीका को मिला था। इनके शिष्य स्वनामधन्य स्वामी विशुद्धानन्दजी व्याकरण के असाधारण पण्डित होते हुवे भी इनसे भाष्य विवरणादि ग्रन्थ पढ़ते थे और स्वयं और विद्यार्थियों को पढ़ाते तथा विचरवाते थे। यही हाल इनके दूसरे शिष्य स्वामी विश्वरूपानन्द जी का था, जिन्हें यह "विश्व" कह कर पुकारा करते थे। ये दोनों महानुभाव उस समय काशी भरमें एक बहुत ही श्रेष्ठ अध्यापक समझे जाते थे। तब भी दोनों गौड़स्वामी जी से नित्यप्रति पढ़ा करते थे।

अध्यापक की अवस्था में अध्ययन करना भले ही और नगरों में रीति-नीति के प्रतिकूल समझा जाता हो। पर काशी में यह बात नहीं है। वहाँ अध्यापक भी—आचार्य और शास्त्री भी विद्यार्थी बनते हैं।

अभी, थोड़े दिन हुवे, मनोरमा-सम्पादक के पास एक विद्यार्थी पढ़ता था जो पहिले काशी में भी पढ़ा था। वह कहता था कि कविवर देवीप्रसाद आदि के स्थान पर कई बूढ़े विद्यार्थियों को मैंने स्वयं जाते देखा है।

यद्यपि आजकल के कई महामहोपाध्याय, आचार्य और शास्त्री, उपाध्याय और तीर्थ, अब अध्ययन करने में तो लज्जित होते हैं किन्तु अनधीत ग्रन्थों का अनर्थ करने में ज़रा भी नहीं सकुचाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुतरां इससे यह जाना जा सकता है कि इनका शास्त्रज्ञान कितना बढ़ा चढ़ा था।

स्वभाव

गौड़स्वामी जी स्वभाव के भी बड़े सरल थे। गौड़ और दाक्षिणात्य, दण्डी और परमहंस, सभी जाति और सम्प्रदाय के पुरुष, इनमें श्रद्धा रखते थे। कटुवाक्य कहना या किसी का तिरस्कार करना तो यह जानते ही न थे। परमहंस लोग कुम्भ महापर्व के अवसर पर डङ्के और निशान के साथ इनके निषेध करने पर भी, अपने से पूर्व आचार्य की तुल्य इन्हें स्नान कराया करते थे। अध्ययनार्थी, दादूपन्थी, विख्यातसाधु निश्चलदासजी को यद्यपि ब्रह्मविद्या पढ़ाई नहीं, पर कभी शूद्र समझ कर इनका तिरस्कार भी नहीं किया। आने पर कुशलक्षेम पूँछते और प्रीति से बात चीत किया करते थे।

रोग और उपदेश

संवत् १९१६ के कार्तिक मास में सहसा गौड़स्वामी जी को ज्वर आने लगा और साथ ही खाँसी का भी प्रादुर्भाव हुवा। इन दोनों रोगों का अभी अच्छी तरह विनाश भी न हुवा था कि मार्गशीर्ष के अन्त में इन्हे फिर ज्वर आने लगा। शिष्य-समुदाय से आप कहने लगे—

"लो, अब यह शरीर अधिक दिन तक नहीं रहेगा, जो बात पूँछनी हो, पूँछ लो। एक घर को छोड़ कर हमने यहाँ दूसरा घर बसा लिया। पुत्रों से अधिक तुम लोगों में स्नेह होगया। परन्तु यह सन्यासी के योग्य नहीं है। काष्ठ "दण्डमात्र" से कोई संन्यासी नहीं हो सकता। सन्यास के लिये तितिक्षा, ज्ञान आदि गुणों की जैसी आवश्यकता है विषयवासना-त्याग की भी उससे कुछ कम नहीं है। श्रुति कहती है—

सर्वान् कामान् परित्यज्य, श्रद्धैते परमे स्थितिः।
ज्ञान-दण्डो धृतोयेन, एकदंडी स उच्यते॥
काष्ठ-दण्डो धृतोयेन, सर्वाशी ज्ञान-वर्जितः।
तितिक्षाज्ञानवैराग्य,-शमादिगुणवर्जितः॥
भिक्षामात्रेण योजीवेत् स पापी यति-वृत्तिहा।
स याति नरकान् घोरान् महारौरवसंज्ञिकान्॥

तुम सब लोग यद्यपि शास्त्रों के ज्ञाता तथापि कहना पड़ता है कि सन्यासाश्रम ही कठिन आश्रम है। जहाँ तक हो सके विषों को अपने पास न फटकने देना। कर्म यदि आप छुट जायें तो चिन्ता नहीं, किन्तु जानकर मोक्ष-सिद्धि के लोभ से शुभ-कर्म्मों का त्याग करना भी सचमुच निरालम्ब आकाश लटकना है। भगवद्भक्ति विना मोक्ष-फल भी नहीं पा सकता। ब्रह्मज्ञान भगवान् की का फल है। मैं फिर भी यही कहता हूँ कि कर्म त्याग का नाम सन्यास नहीं है। कर्म्म-फल-त्याग का नाम सन्यास है। देखो, गीता में कितना साफ़ कहा है—

नहि देहभृता शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्म-फल-त्यागी, स त्यागीत्यभिधीयते॥

यह शास्त्रसिद्ध और मेरी अनुभूत बात है—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः, स चेत् त्यक्तुं न शक्यः
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः, सतां संगो हि भेषजम्।
कामः सर्वात्मना हेयो, हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत् कार्यं, सैव तस्यापि भेषजम्॥

यदि तुम्हारे चित्त में परोपकार की कुछ वासना हो तो मीमांसा आदि शास्त्रों का प्रचार करना। शास्त्रों का प्रचार ही ब्राह्मणों का बल है। यद्यपि सन्यासी के लिये अध्ययनाध्यापन भी निषिद्ध है। किन्तु कलिकाल में दुष्कर्म्मों से बचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे अच्छा अन्य कोई उपाय भी नहीं है। मैंने स्वयं इस काम को किया है और तुमको करने की अनुमति देता हूँ। मुझे आशा है कि संस्कृत के प्रचार में श्रीधर पण्डित आदि मेरे अन्य शिष्य और तुम यथासाध्य चेष्टा करोगे।

देहान्त

पौषशुक्ला प्रतिपदा की रात में रोग अधिक प्रबल होगया। रात भर सब लोग जागते और उपनिषदों का पाठ सुनाते रहे। गौड़स्वामी जी "ओं तत्सत् ओम् ओम्" कहते हुवे अपने नश्वर देह का परित्याग कर गये।

द्वितीया के दिन ही काशी भर में यह समाचार फैल गया। इस हृदय-विदारक संवाद को जिसने सुना, मुँह से हाहाकार करने लगा। काशी में उस दिन ऐसी कोई आँख न थी जिससे आठ आँसू न निकल पड़े हों और ऐसा कोई हृदय न था जिसमें वज्र की तरह से आघात न हुवा हो।

सब शिष्यों ने मिलकर वैदिक मन्त्रों से गुरुदेव के शव को स्नान कराया और रंगे हुवे नये वस्त्र पहिनाये। पुष्पमाला से कण्ठ को, विभूति से मस्तक को और चन्दनादि से अङ्ग को मण्डित किया।

इसके बाद, मणिकर्णिका घाट पर ले जाने के लिये गौड़स्वामी जी का विमान उठाया गया। हरि-नाम-कीर्त्तन और स्तोत्र के साथ हाहाकार भी होने लगा। काशी के सब सन्यासी, परमहंस और सुप्रतिष्ठित विद्वान् विमान के साथ साथ गये थे। शङ्ख घड़ियालों की ध्वनि उस समय विचित्र ही मालूम होती थी। इस प्रकार आप का दिव्य शरीर, मणिकर्णिकाघाट पर परमपावनी गङ्गा जी के प्रवाह में प्रवाहित कर दिया गया॥ इति॥

दमयन्ती और हंस

प्राचीन काल में निषधदेश में (जिसे आजकल कुमायूं कहते हैं) वीरसेन का पुत्र नल नामक एक राजा राज्य किया करता था। यह बड़ा ही प्रतापी राजा था। ख़ूबसूरत भी यह परले दरजे का था। महाकवि हर्ष ने इसकी ख़ूबसूरती के विषय में यहाँ तक लिख दिया है—

"नल इतना ख़ूबसूरत था कि इसके एक नेत्र ही ने कमल को फटकार बतलाई थी और बेचारे चन्द्रमा की शोभा को तो इसके ज़रा से हँसने ने ही पाजी सा बना दिया था। किसी के मुख का वर्णन करते हुए दो उपमायें दी जा सकती हैं। एक कमल को और दूसरी चन्द्रमा की। इससे अच्छी और क्या चीज़ है जिससे उपमा दी जाय?

"इन दोनों का तो इसके मुख के साधारण से अवयवों ने ही तिरस्कार कर दिया। अब इसके मुख की उपमा के लिये कोई चीज़ ही नहीं मिलती! अतः विवश होकर कहना पड़ता है कि इसके मुख की उपमा न मिलने के विषय में महाकवियों की दरिद्रता ही पेश की जा सकती है। उनके पास ऐसी कोई चीज़ ही नहीं जिससे इसके मुख की वे उपमा दे सकें।

"उस समय पतिव्रता स्त्रियों को छोड़कर, प्रायः सब युवतियाँ इसके रूपलावण्य पर मुग्ध होकर हर समय इसी का ध्यान करती रहती थीं। स्वप्न में भी उन्हें नल ही दीखता था, किसी को पुकारते हुवे उसका नाम भूल जाने पर, सहसा नल ही का नाम मुँह से निकल पड़ता था। अपने पति से भी रमण करते हुए उसमें नल-भाव ही कर लिया करती थीं"।

होते होते इसके रूपलावण्य का सारे संसार में समाचार फैल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदर्भ-देश (जिसे आजकल बरार कहा जाता है) के राजा भीम की कन्या दमयन्ती भी उस समय एक ही स्वरूपवती थी। नल के रूपलावण्य को सुनकर इसका भी नल में अनुराग हो गया। इसके पिता के पास जब जब बन्दीगण आकर और और राजाओं की प्रशंसा सुनाया करते तब यह नल के अद्भुत रूपलावण्य और प्रताप का समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्न हुवा करती।

नल में इसका इतना अधिक अनुराग हो गया था कि कभी यह सखियों के मुख से, कथाप्रसङ्ग में बाँस के "नल" का नाम भी सुनती तो उत्सुक हो उठती। उसके भी सुनने में इसे बड़ा रस आता।

इधर नल ने दमयन्ती के रूप-लावण्य और गुण की प्रशंसा सुनी। यह भी दमयन्ती पर बे तरह मुग्ध हो गया। यह यहाँ तक मोहित हुवा कि इसे दयमन्ती का विरह, बड़ी पीड़ा देने लगा। हर समय, दमयन्ती ही का ध्यान रहता। यह चतुर भी बड़ा था। अतः इसने अपनी विरह-व्यथा और अधीरता को अपने पास बैठने वालों तक पर यह न प्रकट होने दिया। हां! दमयन्तीकी विरह-व्यथा से रात भर जागने के कारण निशा और शय्या तो इसके अनिर्वाच्य दुःख को कुछ कुछ समझ गयी थीं।

दमयन्ती नल पर आसक्त थी और नल दमयन्ती पर। तो फिर इसने विदर्भ-राज से इसे माँग ही क्यों न लिया? इसके लिये "हर्ष" कहते हैं—

मानी पुरुष, अपने सुख और प्राणों तक का परित्याग कर देते हैं परन्तु वे अपने एक अयाचितव्रत को नहीं छोड़ते। यही कारण था कि नल ने विदर्भ-राज से इसकी कन्या को नहीं माँगा।

नल से बड़े प्रयत्न करने पर भी जब अपनी विरह-व्यथा न छिपाई जा सकी, तब इसने बाग़ में जी बहलाने के बहाने से निर्जन-स्थान में जा की इच्छा की और अपने भृत्यों को इस सवारी लाने के लिये आज्ञा दी। भृत्य ले इसके लिये एक बहुत ही तेज़ चलनेवाला घो ले आये।

यह उस पर सवार होकर चल दिया। औ भी बहुत से सवार इसके पीछे पीछे गये। व पहुँच कर यह विलास-कानन के भीतर च गया। वहाँ इसने एक बहुत ही अच्छा तड़ा देखा। तड़ाग के तट पर हँसी के साथ किलो करते हुवे इसने एक हंस को भी देखा।

यह हंस इसे बड़ा ही अच्छा मालूम हुवा प्रिया के विरह से यह दुःखित था सही पर थोड़ी देर हंस को टिकटिकी लगाये देखता रहा।

हंस थोड़ी देर के बाद रति-श्रम से थकित कर उस तड़ाग के तट पर ही एक पैर के सहा खड़ा होकर और अपनी गर्दन को सुकेड़ कर सिर अपने पंखों से ढक कर सो गया।

नल को यह अच्छा अवसर मिल गया, इसकी मन चाही हो गयी। इसने झट घोड़े उतर कर कुछ एक नौड़ कर और चुपचाप पैरों जाकर हाथ से हंस को पकड़ लिया।

अपने एक साथी को इस प्रकार पकड़ा कर सरःस्थित हंस-मण्डली बड़ा विलाप क लगी और पृथ्वी को रहने के अयोग्य बतला हुवी आकाश को उड़ गई।

हंस को भी बन्धन में पड़ जाने के कारण ब दुःख हुवा। यह विलाप करने लगा। इसने मु दान के लिये राजा की स्तुति की, और इसे पक्षी पर हाथ साफ़ करने के लिये फटकार बतलाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसं तनौ सन्निहितं चरन्तं,
मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम् ।
ग्रहीतुकामादरिणाशयेन,
यत्नादसौ निश्चलतां जगाहे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
चित्रशाला प्रेस, पूना।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नल को हंस का विलाप सुनकर दया आगयी और इसने हंस को छोड़ दिया। इसको मुक्त हुवा देखकर पक्षीगण बड़े प्रसन्न हुवे। इसे भी उस समय अनिर्वचनीय आनन्द हुवा।

इसने अपने पंखों को ज़रा फड़फड़ाया और यह फिर स्वयं ही नल के हाथ पर आ बैठा।

हंस को स्वयं ही फिर से हाथ में आया देख नल को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कौतुक-तरङ्गों में बेतरह ग़ोते खाने लगा। हंस कहने लगा—

राजन्! मैं यह जानता हूँ कि सर्वज्ञ ऋषियों ने मृगया के लिये राजाओं को निषेध नहीं किया है। अपने ही अबल-कुल को खा डालने वाली मछलियों का और अपने घोंसलों को अकारण ही पीडा पहुँचाने वाले पक्षियों का एवं निरपराध—तृण को खानेवाले मृगों का मार डालना कुछ पापकर नहीं। इसीलिये, मेरा पकड़ लेना भी आपके लिये पाप नहीं। आपने जो कृपया मुझे छोड़ा है यह आपकी दयालुता का समुज्ज्वल प्रमाण है। मैंने जो इससे पहिले आपके प्रति अप्रिय भाषण किया है, उसे अब मैं वापस लेना चाहता हूँ। एक पक्षी से आपका क्या उपकार हो सकता है यह जानते हुवे भी, प्रत्युपकार करने की इच्छा मेरा पीछा नहीं छोड़ती।

मेरा कहा हुवा यदि विचार चारु न हो, तब भी आपको सुन तो लेना ही चाहिये। और नहीं तो कम से कम इसी से आपको प्रसन्नता होगी कि पक्षी मनुष्य की तरह कह रहा है। सुनिये।

विदर्भ-देश में आजकल राजा भीम बड़ी ही योग्यतापूर्वक राज्य करते हैं। उन्हीं की अलौकिक रूपवती एक कन्या है। दमयन्ती उसका नाम है। तड़ागों की सैर करते हुवे, अनेक देशों में मैं घूमा हूँ। एक बार मैंने भी विदर्भ-देश में उसे देखकर अपने नेत्रों को पवित्र किया था। वस्तुतः वह आपके योग्य है। उसे देखकर तभी मैंने विचार किया था कि देखें ब्रह्मा किसको उसके पति होने का सौभाग्य प्राप्त कराता है। आपको तभी मैंने उसके अनुरूप समझ कर "आप ही उसके पति होने योग्य हैं" यह विचार लिया था। सच जानिये। आपके इस अद्भुत रूप को देखकर मुझे दमयन्ती का रूप याद आता है। मैं कह सकता हूं कि आपका यह रूप दमयन्ती के बिना नितान्त निरर्थक ही सा है।

यह सब कुछ होने पर भी दमयन्ती सहज ही में आपको नहीं मिल सकती। उसको पाने की मनुष्य तो मनुष्य, देवता तक इच्छा करते हैं। भला बतलाइये तो, वर्षाऋतु में बादलों से ढके हुवे चन्द्रमा की चमक को कुमुद बेचारा कैसे प्राप्त कर सकता है?

अच्छा! कोई बात नहीं है!! मैं आपका दमयन्ती के सामने, इस शैली से वर्णन करूँगा जो इन्द्र भी आपको उसके हृदय से दूर नहीं कर सके। अहा! मैं भूल गया, मुझे धिक्कार है कि मैंने आप की अनुमति मात्र जानने के ही लिये इतना निवेदन किया। सज्जन-जन अपनी उपयोगिता को अपने मुख से नहीं कहा करते, प्रत्युत फल-द्वारा कहा करते हैं।

नल हंस की यह आश्चर्यजनक बातें सुनकर कुछ हँसा और इसे हाथ से पुचकार कर यूं कहने लगा—

तुम्हारी आकृति की उपमा नहीं दी जा सकती। यह स्वयं ही उपमान है और तुम्हारे स्वभाव की प्रशंसा नहीं की जासकती। मेरा अनुमान है कि तुम्हारी आकृति और स्वभाव को देख कर ही सामुद्रिक शास्त्रकारों ने "पत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति" यह कहा है। तुम्हारी तनु (शरीर) ही सुवर्णमयी नहीं है, मैं समझता हूं कि तुम्हारी वाणी भी सुवर्णमयी ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने दमयन्ती को इससे पहिले भी सैकड़ों बार सुना है, परन्तु तुम्हारे कथन से मैं उसे आँखों देखी जैसी समझता हूँ। सुहृद् या स्वहृद् से देखी हुवी चीज़ में सन्देह नहीं हुआ करता। दमयन्ती-सम्बन्धिनी बातें सुन सुन कर मदनानल मुझे बुरी तरह जलाता है। मुझे धिक्कार है कि मैं धीर नहीं। ये कामबाण जिन्हें कुसम कहा जाता है, मेरे लिये वज्र का काम दे रहे हैं।

इस लिये तुम ही कामबाणों से की गयी कथा के अगाध समुद्र में मुझ डूबते हुये के लिये डोंगी का काम करो।

हाँ! मैं भूल गया!! मैंने यह तुमसे व्यर्थ ही कहा। सज्जन पुरुष तो स्वतः ही दूसरों का काम कर दिया करते हैं। अच्छा! अब तुम जावो। मार्ग में तुम्हारा कल्याण हो! शीघ्र ही मिलना। और देखना! मुझे भूल मत जाना।

इस प्रकार नल हंस को बिदा करके उद्यान-गृह में चला गया।

हंस भी दमयन्ती के देखने से उसी दिन को सफल करने के लिये कुण्डिन नगर को चल दिया।

उड़ते उड़ते इसे कुण्डिन नगर दीख पड़ा। कुण्डिन नगर में आकर यह दमयन्ती के बाग़ में उतरा। इसने यहाँ सखियों के साथ टहलती हुवी दमयन्ती को देखा। उड़ते उड़ते यह दमयन्ती के पास ही की भूमि पर उतर गया। उतरते हुवे इसके पंखों की अचानक ही आवाज़ होने से दमयन्ती उस तरफ़ देखने लगी। सखियाँ भी सब कुछ देखना छोड़कर एकमात्र इसी को देखने लगीं।

दमयन्ती पास ही हंस को चलता देख डरते डरते, अपने हाथ से इसे पकड़ने के लिये निस्तब्ध सी होगयी और चुप चाप इसे पकड़ने की चेष्टा करने लगी। (इस संख्या का चित्र नम्बर देखिये।) हंस यह समझते हुवे भी कि "मुझे पकड़ना चाहती है" आकाश को नहीं उड़ा और दमयन्ती के हाथ में भी नहीं आया। यूँ ही खिलन्दरी सी करता रहा। वह इसे पकड़ती और यह फुदक कर ज़रा अलग हो जाता।

इसकी सखियों ने यह देखकर कि दमयन्ती से हंस नहीं पकड़ा जाता, उस समय तालियाँ बजायीं।

दमयन्ती को उस समय यह बात बहुत बुरी मालूम हुवी। वह कहने लगी—

हाँ! तुम्हें तालियाँ बजाकर इस हंस को उड़ा ही देना चाहिये!! यह अच्छी तरह जान लेना कि तुममें से जो मेरे पीछे पीछे चलेगी मैं समझूंगी कि वह मुझ से द्वेष करती है।

दमयन्ती के क्रोध-युक्त ये वाक्य सुन कर सब सखियाँ खिल खिलाकर हँस पड़ीं।

सखियों के हँसने पर इसे कुछ क्रोध सा आया और यह फिर हंस के पीछे ही चलने लगी। उस समय यह हंस के पीछे चलती हुवी ठीक ऐसी मालूम होती थी, जैसे सूर्य-सम्मुख चलते हुवे पुरुष की छाया पीछे होती है। सखियाँ कहने लगीं—

दमयन्ती! हंस के पीछे पीछे चलना तुम्हें अच्छा नहीं लगता! यह शास्त्रनिषिद्ध बात है अतएव अशकुन है।

यह सुनकर दमयन्ती कहने लगी—

प्यारी! यह हंस भावि-प्रिय का जतलाने वाला है। अतः अशकुन नहीं है। इस हंस-गति दमयन्ती को देख कर सखियाँ ही नहीं हँसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युत हंस भी इसके देखते ही देखते, इसकी चाल का अनुसरण करके इसके सामने ही चलता हुवा हँसने लगा। उस समय यह बड़ा ही अच्छा मालूम होता था।

मैं इसे अभी पकड़े लेती हूँ, यह समझते हुवे, दमयन्ती हंस के पीछे पीछे चली गयी, और यह हंस इसे इसी तरह धोका देता हुवा गहन लताओं में ले गया। यह राज-कन्या थी, अतएव बड़ी कोमल थी। हंस के पीछे पीछे चलते हुवे इसे पसीना आगया। सखियों ने इसका साथ नहीं छोड़ा। यह उन्हें फिर क्रुद्ध होकर मना करने लगी।

हंस ने जब यह समझ लिया कि अब यह खूब थक गयी है तब यह तोते की तरह मनुज-वाणी से यूँ कहने लगा—

दमयन्ती! और कितनी दूर मेरे पीछे पीछे आओगी! यह तो बतलाओ, कि तुम व्यर्थ हो क्यों इतना परिश्रम कर रही हो? इस घनी वन-पंक्ति को देखते हुवे क्या तुम्हें डर नहीं लगता? (इस संख्या का चित्र नम्बर २ देखिये।)

देखो तो! व्यर्थ ही अस्थान और अमार्ग में व्यवसाय करती हुवी, तुम्हें यह वनाली (वन-पंक्ति) भी आली (सखी) की तरह वायु से अपने पल्लवरूपी हाथों के हिलाने से, और कबूतरों के हुंकार से मना सी कर रही है।

भला यह तो विचारो, कहाँ तुम एक मात्र पृथ्वी पर चलनेवाली और कहाँ मैं आकाश की सैर करनेवाला। तुम्हारा मेरा क्या साथ? तुम मुझे कैसे पकड़ सकती हो? मुझे आश्चर्य है कि कामदेव के मित्र तारुण्य ने तुम्हारा बाल-भाव अभी तक खण्डित नहीं किया है। दमयन्ती! कमलासन ब्रह्मा जी की सवारी में जो हंस रहते हैं उन्हीं के कुल में मैं उत्पन्न हुवा हूँ। हमारे प्रिय वाक्यों को स्वर्लोकवासी पुरुषों के अतिरिक्त और पुरुष नहीं प्राप्त कर सकते। स्वर्ग-नदी की सुवर्ण-कमलिनियों के मृणाल हम लोग खाया करते हैं। इसीलिये "जैसा खइये अन्न वैसा होजाय तन" इस लोकोक्ति के अनुसार हमारा सुवर्ण-शरीर है। ब्रह्माजी की आज्ञा से राजा नल के क्रीडासर की सैर करने के लिये आये हुवे हंसों में से मैं भी एक हंस हूँ। मेरा जी चाहा कि मैं सारे पृथ्वीलोक की सैर करूं। इसी लिये मैं घूमता घूमता यहाँ भी आगया।

पहले एक बार ब्रह्मा जी की बाह्य-लीला में लगे हुवे हमारे पूर्वज (हंस) थक गये थे। तभी मैंने उन्हें अपने कन्धे का सहारा दिया था। उन्हीं के प्रसाद से अब मैं चाहे सारे विश्व की सैर कर लूँ, पर थक नहीं सकता।

मैं दिव्य हूँ, अतः मुझे एक ऐसे नर को छोड़ कर जिसके "र" के स्थान में "ल" हो जाय, कोई नहीं पकड़ सकता।

नल वस्तुतः बड़ा ही प्रतापी और धर्मात्मा राजा है। उसकी स्मर-केलि के समय हम लोग सुमेरु-पर्वत से उतर कर अपने पंखों से उसे हवा किया करते हैं। इतना कह चुकने पर हंस को यह मालूम हो गया कि दमयन्ती का स्वयं भी नल में अनुराग है। अतः इसने नल का विशेष प्रकार से वर्णन करना प्रारम्भ किया। यह कहने लगा—

दमयन्ती! नल भक्त भी इतना है कि साधुओं में उसका नाम सबसे पहिले लिये जाने योग्य है। वह बड़े बड़े यज्ञों का करनेवाला है। कौन ऐसा है जिसने उसके प्रति, कभी याचना न की हो? एक बार प्रसिद्ध अप्सरा रम्भा ने हमसे उसकी अनुपम कान्ति का समाचार सुना था, तभी वह उस पर अनुरक्त हो गयी और उसे पाने की इच्छा करने लगी। पर नल उसे मिला नहीं! रम्भा उस पर इतनी अनुरक्त थी कि उसने नल को न पाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुवेर के पुत्र नलकूबर के साथ ही विवाह कर लिया। उसने अपने मन को यही मान कर समझा लिया कि और नहीं तो नलकूबर में नल के नाम की गन्ध तो है, यही बहुत है। संसार में प्रायः ऐसा होता भी है, कि कोई अभीष्ट वस्तु न मिलने पर, किसी भी अंश से वैसी होने पर दूसरी वस्तु स्वीकार करली जाया करती है।

एक बार हम यहाँ से स्वर्ग को जारहे थे। वहाँ हमने नल का गान-कौशल वर्णन किया। यह सुन कर इन्द्र का गायक, "हा! हा!!" यह कह कर बड़ा आश्चर्य करने लगा। तभी से वहाँ के निवासी इन्द्र के स्तोता को "हाहा" इस नाम से पुकारने लगे। स्वयं इन्द्र भी उसकी सज्जनता को सुन कर बड़ा प्रसन्न हुवा।

और तो और, पार्वती ने उसके रूप लावण्य और सज्जनता को सुन कर पातिव्रत-भङ्ग-भय से खुजाने के बहाने से अपने कानों को ढक लिया था।

ब्रह्माजी के उस निर्लज्ज और बेहूदे हाथ को वारंवार धिक्कार है जो नल के मुख की शोभा को याद करते हुवे भी पूर्णिमा के कलंकयुक्त चन्द्र को बनाने बैठ गया। उसने यह नहीं समझा कि इसमें मेरी तारीफ़ ही क्या है जब इससे पहिली चीज़ ही इससे अच्छी मौजूद है। हाँ! मैं ब्रह्माजी के उस हाथ को वस्तुतः कुशल समझता हूँ जिसने नल की मुख-शोभा का स्मरण करके आधे चन्द्रमा को शिवजी के मस्तक पर फेंक दिया।

हम से, जबसे चन्द्रमा ने अपने मुख से भी ख़ूबसूरत नल के मुख को सुना है, तभी से, वह बेचारा छिप जाने की कोशिश करता रहता है। उसे अमावस्या में या वर्षाऋतु में ऐसे अवसर मिल जाया करते हैं।

कमल नल की मुख-शोभा को सुन कर संकुचित होजाता है, अतः ब्रह्माजी संकुचित कमल ही में बैठे बैठे देखा करते हैं।

उसके मुख में जो नीचे ऊपर दोनों तो मिल कर चौदह और अठारह अर्थात् बत्तीस हैं उन्हें देख कर मानो, ब्रह्माजी ने कहा था कि इसके मुख में ये १४ और विद्यायें हैं।*

कहा करते हैं कि कामदेव बड़ा ख़ूबसूरत और इन्द्र बड़ा समृद्धिमान् है। परन्तु सुनिये नल की अद्भुत शोभा को देख कर हम एकदम कामदेव को भूल जाते हैं और उसकी समृद्धि को देख कर हम इन्द्र को भी याद नहीं करते। नल के घोड़े भी बड़े तेज़ चलनेवाले हैं। कौन सी ऐसी दिशा है जिसकी उन्होंने सैर की हो? पंखों के बिना ही गरुड़ समझना चाहिये। उसके बाण भी इतने प्रबल हैं कि उन्होंने सारे के सारे शत्रुओं का नाश कर दिया है। अतएव आज उसका यश सर्वदिग्व्यापि हो रहा है।

मैं जैसा तुच्छ उसके सारे गुणों का वर्णन नहीं कर सकता! त्रिलोकी यदि उसके सारे गुणों को वर्णन नहीं गिनना चाहे और साथ ही में उसे अमर भी कर दिया जाय, तथा गणित-शास्त्र थोड़ा सा और बढ़ा दिया जाय, तब कहीं यह सम्भव है कि उसके सब गुणों की गणना भी हो सके, वर्णन तब भी नहीं हो सकता। उसका रनवास में मनुष्यों की हो, पर पक्षियों के जाने की मनादी नहीं है, अतः हम उसके अन्तःपुर में जाकर कृशोदरी रमणियों को गतिविशेष (चाल) सिखलाया करते हैं। रम्भा आदि अप्सराओं को पुरुष-वशीकरण-कथाओं को सुनाते हुवे, नल की रमणियों को हम शृङ्गार-समुद्र में ख़ूब नहलाया करते हैं।

* कितने ही आचार्यों के मत में १४ विद्यायें और कितने ही आचार्य १८ विद्यायें मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नल की सब रमणियाँ मुझसे काम-केलि की बातों को कहा करती हैं। वे मुझसे ऐसी बातें कहती हुवी भी बिलकुल नहीं शरमातीं! इसका कारण यह है कि पक्षी किसी प्राणी के सामने नहीं शरमाते, अतः उनके सामने भी किसी को न शरमाना चाहिये। मैं उनकी किसी बात को किसी से कहा भी नहीं करता, यही कारण है कि वे बेचारी मुझसे ऐसी बातों को भी कह दिया करती हैं।

इतना कह कर हंस अपने मतलब की तरफ़ झुका और कहने लगा—

दमयन्ती! मुझे शोक है कि नल के आश्रय से और और ही अयोग्य स्त्रियाँ, हमारे पंखों से की गयी हवा को ग्रहण करती हैं। कमलिनी के होते हुवे चन्द्रमा के विकास को कुमुदिनी ग्रहण करे, यह बड़ी ही अनुचित बात है। मैं कह सकता हूँ कि तुम्हें एक मात्र सुख, नल के आश्रय से ही, मिल सकता है।

तुम्हें इसके लिये अधीर न होना चाहिये। यह किसने दैव के मन में घुस कर देख लिया है कि तुम्हारा नल के साथ विवाह हो ही नहीं सकेगा? तुम्हारा अभी तक विवाह नहीं हुवा है और तुम अतिशय रूपवती हो। ये दो बातें हैं जिससे नल के साथ तुम्हारा विवाह होना कुछ असम्भव नहीं!

निशा और निशाकर, शिव और पार्वती एवं लक्ष्मी और विष्णु का जोड़ा मिलाते हुवे विधि का मालूम पड़ता है कि परस्पर योग्य समागम ही के लिये, स्वारसिक-प्रयत्न हुवा करता है। तुम वस्तुतः नल ही के योग्य हो अन्य के नहीं। चमेली के फूलों की माला कुश के डोरे से नहीं गूँथी जाया करती।

एक और बात है। मुझे एक बार ब्रह्मा जी के विमान का वाहक होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुवा था। तभी मैंने उनसे यह पूँछा था कि आपने नल के क्रीडा करने योग्य, किस सुन्दरी का निर्माण किया है? मुझे याद पड़ता है कि उन्होंने शायद यह कहा था कि दयन्ती को हमने उसके लिये बनाया है। सम्भवतः तुम यह पूँछोगी कि मैंने ऐसा कहने में शायद शब्द का क्यों प्रयोग किया? इसका कारण यह है कि रथ के चलने में झंकार हुवा करती है अतः मैं उसकी झंकार के कारण साफ़ साफ़ न सुन सका था। यह निःसन्देह बात है कि ब्रह्माजी का वाक्य कभी झूँठा नहीं हो सकता! वे सर्वज्ञ हैं। अच्छा! मान लो! यदि उन्होंने और किसी के साथ ही तुम्हारा जोड़ा मिला दिया तो उनका सारा सर्वज्ञपना रिल जायगा। कौनसी नौका है जिससे जनापवाद रूपी समुद्र से वे पार हो जायँ?

हाँ! मेरी बड़ी भूल हुवी! मैंने व्यर्थ ही तुम्हारे सामने नल का वर्णन किया। भला इससे क्या प्रयोजन? यहाँ इन बातों के कहने की क्या आवश्यकता थी? मैंने तुम्हारा निष्प्रयोजन ही बहुत सा समय लिया। तुम तो थक गयी होगी। अतः इसके लिये, मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ—मेरा अपराध क्षमा करो और यह भी बतलाओ कि मैं तुम्हारा क्या मनोरथ करूँ?

हंस यह कह कर दयन्ती के मन की बात जानने की इच्छा से चुप हो गया। कुछ विचार कर दयन्ती इस प्रकार कहने लगी—

हंस! मेरे इस बाल-भाव को धिक्कार है जिसकी प्रेरणा से तुम्हारे पीछे लगकर मैंने तुम्हें व्यर्थ ही पीडा पहुँचाई! तुम वस्तुतः बड़े रमणीय हो—देखने योग्य हो। मैं तुम्हारी निष्कपटता से तुम्हें साधुवों में दृष्टान्त-रूप समझती हूँ। तुम अपनी निर्मलता से सचमुच दर्पण हो। दर्पण का यह स्वभाव है कि उसके सामने कोई चीज़ आने से उसे वह स्वयं ग्रहण कर लेता है—वह चीज़ उसमें दीखने लगती है। तुम्हारे में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल यही बात है। तुम्हारे पीछे लगकर तुम्हें थकाने का किया मैंने अपराध, एतदर्थ माँगनी चाहिये मुझे क्षमा, और कहते हो तुम कि "मेरा अपराध क्षमा करो।" साधुवों में भी यही बात हुवा करती है। वे भी प्रायः दूसरों के अपराध को अपने ऊपर ले लेते हैं।

अपराध मेरा है, इसलिये पहिले उसे क्षमा करो? तब पीछे जो कुछ कहना है, कहूँगी। तुम अपने जी में शायद यह समझो कि यह मनुष्य-जाति और मैं पक्षी, अतः यह मुझसे क्या कहेगी। सो यह बात नहीं है! तुम ब्रह्माजी के वाहन हो अतएव देवांश होने के कारण हमारे पूज्य हो। पशु, पक्षी का ऐसी बातों में विचार नहीं हुवा करता। मत्स्य (अवतार) को देवांश होने के कारण ही तो सब लोग पूजते हैं। हंस इन बातों के बीच ही में बोल पड़ा और कहने लगा—

इन बातों को रहने दो। अब तुम्हें अपना मनोरथ कहना चाहिये। दमयन्ती कहने लगी—इससे अधिक और मेरा क्या मनोरथ होगा जो तुम्हें देख रही हूँ? तुम्हारे देखने से जितना हर्ष मुझे होता है, मैं नहीं समझ सकती कि इससे भी अधिक और हर्ष तुम किस प्रकार से कर सकते हो? चन्द्रमा तो अपनी किरणों से संसार के नेत्रों को ही आहलादित किया करता है।

अच्छा! अपना मनोरथ कहो तो सही! उसे कमसे कम मैं सुन तो लूँ! हंस के यह कहने पर दमयन्ती यूँ बोली—

प्यारे! जिस मनोरथ को मन ही नहीं छोड़ता वह कण्ठ पर कैसे आजाय? मन के छोड़ने पर ही तो कहा जा सकता है! अपनी मूढ़ता से क्या कोई बाला कुमारी द्विज-राज पाणि-ग्रहाभिलाष* को कह सकती है?

दमयन्ती की ऐसी मधुरवाणी सुन कर हंस बड़ा प्रसन्न हुवा। इसे दमयन्ती की वाणी के मुक़ाबिले में कोकिलों का नाद और बांसरी का सुरीला शब्द भी बुरा मालूम होने लगा।

दमयन्ती के कथन को सुन कर इसे सन्देह हुवा। यह मन ही मन में विचार करने लगा कि दमयन्ती के "द्विजराजपाणिग्रहाभिलाष" के दो अर्थ होते हैं। मुझे इसमें से कौनसा मानना चाहिये? इसलिये यह कहने लगा—

दमयन्ती! तुम्हारे इस वाक्य के दो अर्थ होते हैं। हाथ से चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छावाला अर्थ तो मुझे व्यर्थ ही मालूम पड़ता है, यतः यह तात्विकी इच्छा नहीं है। तुमने गुप्तरीति से जिस अर्थ को कहा है क्या तुम यह समझती हो कि मैं उसे समझ ही नहीं सकता? वस्तुतः यदि तुम यही समझती हो तो तुम्हारी भूल है। समझ नहीं, मैं उसे कर भी सकता हूँ। हाँ! यह मानता हूं कि यह तुम्हारा गुप्ताभिप्राय है और इसे साधारण पुरुष नहीं समझ सकता। परन्तु ऐसी बातों का जाननेवाला, अच्छा पण्डित तो समझ ही सकता है। और तो और ब्रह्म को जिसे पाने के लिये मन भी चक्कर में पड़जाता है, परिश्रम-शील योगिजन प्राप्त कर लेते हैं।

हमें तुम ऐसा वैसा मत समझो। हमारे मुख वर्तमान सरस्वती वेदों के मध्य में रहती है। अतः हमें धोका होना असम्भव है। हम ठीक वही समझते हैं जो वक्ता का अभिप्राय होता है। यह भी मत समझना कि यह पक्षी कर ही क्या सकता है? भारत की तो बात ही क्या है, तुम यदि समुद्र पार लङ्का की भी सैर करना चाहो तो इसी ही देर में करा सकता हूँ। यही नहीं! ...

*इस के दो अर्थ हैं, एक हाथ से चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा, दूसरा नल के साथ विवाह की इच्छा।

+ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। "श्रु...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भी दुष्प्राप्य, यदि किसी चीज़ को तुम्हारा जी चाहे तो उसे हाथ ही में आयी समझना। उसके आने में ज़रा भी देर न होगी।

दमयन्ती ने इसके उत्तर में कुछ शरमाते हुवे और साथ ही प्रसन्न होते हुवे यह श्लेषोक्ति कही –

"चेतो न लङ्कामयते मदीयं,
नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्। *

(अवशिष्ट आगे)

हेमन्त वर्णन

[१]

शरद् बीची, छाई दिशि विदिशि हेमन्त-सुषमा।
नवीना, सस्यश्री, लगत, रमणीया विपिन में॥
पके से इक्षू में, अधिक सरसाई मधुरता।
घने से जाड़े से, सुकड़ दिन संकोचित हुआ॥

[२]

त्रियामा कामाग्नि, ज्वलन समिधा ने वपु धरा।
विलासी लोगों के, रमण हित पंच प्रहर का॥
किया मित्राख्या को, सफल जनसंसेव्य रवि ने।
सभी उत्संगों से, मुदित-मन सेवैं दहन को॥

[३]

जले छोटे छोटे द्रुम, कुसुम पत्ते बड़न के।
अपत्रा, निष्पुष्पा, कमल-कुमुदाली बन गई॥
हिमानी वर्षा से, सतत अकुलानी विरहिणी।
जिगीषा लोकों की, स्मर मन समानी समर में॥

[४]

जवानी की गर्मी-युत युवति वक्षोज उर से।
लगाये जो प्राणी, सच मुदितमानी वह अहै॥
मृडानी के उष्णस्तन मिलन को पाय शिव ने।
न मानी, शीताधी, हिम समय कैलाश गिरि में॥

[५]

चलैं ठण्ढे ठण्ढे, पवन हिमवाही खर-गति।
निशा में, सन्ध्या में, सब दिवस में सर्वदिश में॥
न सोहै थोड़ा भी, विमल-सलिल-स्पर्श, तनु को।
स्वकर्मानुष्ठाता, द्विजगणन को संकट, अति॥

[६]

पदार्थों में इच्छा, अरुचि मनुजों की नियतना।
सभी में होती है, उभय, बल से काल गति के॥
यही शिक्षा देने हित, महित, हेमन्त ऋतु ने।
अनिच्छा इच्छा का, विषय उलटा ग्रीष्म ऋतु का॥

[७]

शशी तारा सूझैं, शिशि न मिहका-पात बल से।
न दीखै भानू का, उदय नयनों से जनन को॥
नदी कासारों के, पय हिम पड़े से जम गये।
हुए ऊँचे ऊँचे, शिखर-गिरि के, खूब धवल॥

[८]

मसालों का खाना, प्रति-दिन तनू तैल मलना।
प्रभा में भानू की, गरम जल से स्नान करना॥
सवारी घोड़े की, विविध-भुज संग्राम मृगया।
धनुः शिक्षा दीक्षा, समय ऋतु हेमन्त सम ना॥

[९]

विशाला शाला हो, गरम हित बाला दहन हो।
न जालों से आवै अति पवन आलोक घन हो॥
पिये हाला,* बाला-सहित, मतवाला, शयन पै।
दुशाला जो तानै निशि न तिहि पाला परुष है॥

---

* इसके भी पहिले की तरह से दो ही अर्थ हैं। एक मेरा लंका को सैर करने को जी नहीं चाहता, और नहीं किसी राजा में अभिलाषा है। दूसरा, नल को मेरा मन चाहता है, उसके अतिरिक्त किसी दूसरे राजा को नहीं।
लेखक

* हाला = मदिरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०]

कुचों पै कस्तूरी, अगुरु रज काश्मीरज लगा।
सुगन्धी तैलों से, ललित कच मे कुन्द कलिका॥
नवीना पश्मीना, पहिन, मितभूषा, शशिमुखी।
रती, दूजी अङ्गों, लगत हरती शीत-शत को॥

[११]

दधि क्षीर क्षौद्र, प्रचुर घृत मिष्टान्न अशन।
लवङ्गी, पूगी के फल-मिलित-ताम्बूल मुख में॥
रुई तूई शय्या, रमण-हित-बाला, बग़ल में।
रज़ाई ओढ़े से यतन कर जाड़ा भगत है॥

वासुदेव उपाध्याय,

लण्डन का दृश्य

भारतीय सिपाही का आश्चर्य

"साहिब! यदि इस पृथ्वी पर ही कहीं स्वर्ग है तो वह लण्डन है" ये शब्द मिस्टर एडवर्ड किंडलर ने "डेलीमेल" पत्र में एक सिक्ख सिपाही जगतसिंह की ज़बानी लिखे हैं। जो युद्धस्थल में आहत हो गया था और जिसको स्वास्थ्य अच्छा हो जाने पर लण्डन जाने का सौभाग्य प्राप्त हुवा था।

जगतसिंह का कहना है कि जब हम स्टीशन पर पहुँचे तब हमें एक साहिब मोटर में बिठा कर ले गया। इसको सब लोग करनेल के नाम से पुकारा करते थे। दिन भर में जहाँ जहाँ हम गये वहाँ और सब लोगों का आना जाना रोक दिया गया, यतः हमारा समय व्यर्थ न जाय। हमसे कहीं किसीने "पास" या किराया नहीं माँगा।

गाड़ियों की बहुतायत

मैंने इतनी संख्या में छोटी और बड़ी गाड़ि कभी नहीं देखी थीं। कहीं कहीं तो चार च गाड़ियाँ एक ही बार और एक ही सड़क चलती देखीं। और कहीं भी गाड़ियों को आप में टकराते या पथिकों को, जो बाज़ार में चलते चोट खाते नहीं देखा।

*

भवन-निरीक्षण

हमें पार्लिमेंट के भवन दिखाये गये। औ एक ऐसा पुल दिखलाया गया जो केवल प बटन के दबाने से दो टुकड़े किया जा सकता एक दुर्ग भी दिखलाया गया जिसमें महाप का मुकुट और बहुत से पुराने हथियार र हैं। वहाँ से हम महाराज के महल की तरफ़ ग वहां जा कर हम द्वार पर ठहर गये—अन्दर न गये।

*

एक बड़ी दूकान

महाराज के महल के पास ही एक दूका जिसे स्वयं एक अच्छा नगर कहना चाहिये। के दरवाज़े कयी बाज़ारों में खुलते हैं। इस दू का अर्ध-भाग लेडियों के क्रिय-विक्रिय के लि है। जो कपड़ा ख़रीदने के लिये एक बहुत संख्या में वहाँ उपस्थित थीं।

इस दूकान से सब चीज़ें हर समय मि सकती हैं। एक कमरे में साहिब लोग बैठे हुवे कोई समाचार-पत्र पढ़ रहा था और कोई चिट्ठि लिख रहा था। करनेल साहिब ने मुझे बत कि समाचार-पत्र पढ़ने और चिट्ठी लिखने की यहाँ कोई फ़ीस नहीं ली जाती। इस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अये ! कियद्यावदुपैषि दूरं,
व्यर्थं परिश्राम्यसि वा किमित्यम् ? ।
उदेति ते भीरपि किन्तु बाले !
विलोकयन्त्या न घना वनालीः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
चित्रशाला प्रेस, पूना ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान और मसाला हरेक मनुष्य, जो यहां आता जाता है, बिना फ़ीस दिये काम में ला सकता है। मुझे भी वहाँ बैठने और चिट्ठी लिखने की आज्ञा दी गयी। मैंने वहीं बैठ कर एक चिट्ठी अपने भाई गंगासिंह को लिखी, जो युद्धस्थल में लड़ रहा है। और एक चिट्ठी अपने पिता स्वरूपसिंह जी को लिखी, जो जालन्धर के ज़िले में रहते हैं। दूकान के मालिक ने मुझे कार्ड दिये। जब मैं चिट्ठी लिख चुका तो करनेल साहिब ने इनपर अंगरेज़ी में नाम और पता लिख दिया। ये चिट्ठियां भी बिना मूल्य दिये ही डाक में डाल दी गयीं।

*

भारतीय-भोजन-भवन

इस दुकान से चल कर हम बड़े बड़े जरनेलों की क़बरें देखने गये। इसके बाद हमने एक भारतीय-भोजन-भवन में भोजन पाया। भोजन वही था जिसे हम भारत में खाया करते हैं। यह भोजन एक ब्राह्मण का बनाया हुवा था।

*

विचित्र-पशु

भोजन पाने के बाद हम एक बाग़ में गये। जहाँ हमने एक कछुआ देखा जिसकी अवस्था आठ सो ८०० वर्ष की है और जो अभी तक जीवित है। एक सर्प देखा जो सारी की सारी बकरी को निगल सकता है और महीनों सोता रहता है। एक मृग देखा जिसकी गर्दन दो गज़ लाँबी है और जो ऊँचे ऊँचे वृक्षों की टहनियाँ काट कर खा सकता है। सिंह और ऊँटों के सिवा हमने एक चूहा देखा जो वृक्षों की छाल पर ही अपना निर्वाह कर सकता है।

*

चलने फिरनेवाला कमरा

इन सबसे विचित्र चीज़ जो हमने देखी वह यह है कि एक जगह हम मोटर को बाज़ार में खड़ा करके एक छोटे से कमरे में गये। जो सारे का सारा चित्रों से सजा हुआ था। हमारे देखते ही देखते यह कमरा पृथ्वी में समाने लगा और हम अपने को नीचे पाकर बड़े चकित हुए। जब कमरा पृथ्वी में समा रहा था तो मुझे डर मालूम हुवा। यतः मेरा विश्वास था कि ऐसी बातें स्वप्न के अतिरिक्त कभी देखने में नहीं आतीं। जब हम नीचे उतर गये तो एक ट्रेन हमारी तरफ़ आयी। उसके साथ कोई अञ्जन नहीं था। इस ट्रेन में हम सवार हो गये और बहुत दूर तक चले गये। जब हम ट्रेन से उतरे तो फिर उसी कमरे में आगये। हमने अपने आपको फिर वहीं पाया जहाँ हमने मोटर खड़ी की थी।

*

चलने फिरनेवाली सीढ़ियाँ

जब मेरे साथी सन्तसिंह ने आश्चर्य प्रकट किया कि लण्डन के मकानात इस ढंग से बनाये गये हैं कि इनमें रहनेवाले को नीचे ऊपर जाने का कष्ट न उठाना पड़े तो करनेल साहिब ने कहा कि यहाँ मकान ही नहीं, सीढ़ियाँ भी ऐसी ही हैं जो हर समय चलती फिरती रहती हैं। ऊपर की सीढ़ियाँ बारी बारी से नीचे आती रहती हैं और नीचे को ऊपर जाती रहती हैं। यदि कोई मनुष्य सबसे नीचे के ज़ीने पर खड़ा हो जाय तो बिना हाथ पैर हिलाये ऊपर चला जाता है।

*

चलने फिरनेवाला स्टीशन

हमारे आश्चर्य को साक्षात् कराने के लिए करनेल साहिब इस बात से सहमत हो गये कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सीढ़ियों द्वारा बड़े स्टीशन पर जायें, जो तैल और भाप की सहायता से चलते हुवे ज़रा भी शब्द नहीं करतीं। हमें जो बातें साहिब ने बतलायी थीं वही हमने अपनी आँखों से देखीं। इन चलने फिरनेवाले कमरों में मनुष्यों को खड़ा रहना चाहिये। बैठना न चाहिये।

बड़े स्टीशन जाकर फिर हम अस्पताल में में वापस आगये।

विविध विषय

१—भारत के अङ्गरेज़ों की देशभक्ति।

जो अङ्गरेज़ आज कल भारत में रहते हैं वे रहते तो भारत में हैं, परन्तु उनका हृदय इङ्गलेण्ड में, नहीं नहीं युद्धस्थल में है। जहाँ इनके देश और जाति के भाविभाग्य का फ़ैसला हो रहा है। भारत में रहनेवाले इङ्गलेण्डीय सज्जनों की देशभक्ति का अनुमान, एक इस साधारण से समाचार से, हो सकता है कि आगराकालेज के प्रायः सब अङ्गरेज़ अध्यापक युद्धस्थल को चल दिये हैं। केवल दो अङ्गरेज़ शेष हैं एक प्रिंसिपल, और दूसरा एक साइन्स का अध्यापक। इसी तरह सैंटजांस कालिज के अध्यापक, मिस्टर विट् फ्रांस के युद्धस्थल में लड़ रहे हैं। इस कालिज के प्रिंसिपल साहिब के भाई लड़ाई में काम आ चुके हैं और भूतपूर्व प्रिंसिपल साहिब के सुपुत्र भी अपनी जाति के लिये अपने अमूल्य नश्वर देह को बलिदान कर चुके हैं। अध्यापक मिस्टर स्मिथ जो कालिज में वापस आने की तयारी कर रहे थे, वे भी सैनिक देवी की भेंट होगये। एक और सज्जन जो अध्यापकी के लिये आरहे थे शत्रु के मुकाबिले के लिये सेना में भरती हो गये। यही हाल सैंटजांस स्कूल का है। वहाँ से भी मिस्टर युद्धस्थल को गये हैं।

जिन विद्वानों का काम विद्या का प्रचार था, जातिहित से प्रेरित होकर वे भी अपने की रक्षा के लिये हथियार उठा रहे हैं। ऐसी जाति के सिर पर क्यों न विजय का मुकुट जायगा?

*

२—"नीतिरञ्जन" लार्ड कारमाइकल

अभी हाल ही में बेंगाल के गवरनर सा लार्ड कारमाइकल महोदय जो अपनी प्रजा-रञ्ज लिये संसार भर में प्रसिद्ध हैं, नवद्वीप पधारे आपको वहाँ के पण्डितों ने "नीतिरञ्जन" उपाधि से अलंकृत किया। वस्तुतः आप सार्थक उपाधि से अलंकृत होने योग्य हैं—आ यह अनुरूप है। अब आपको "नीतिरञ्जन" कारमाइकल कहना चाहिये। इस बात से नई बात का पता लगता है। वह यह कि संस्कृत के पण्डितों में भी अब नये फ़ैशन जागृति हो चली है। संस्कृत के पण्डितों के यह सौभाग्य की बात है। कितने ही पण्डित आज के दिन भी केवल कौमुदी, महाभाष्य पङ्क्तियों का रटना और शुष्क लकड़तोड़ वाद करना ही अपना कर्त्तव्य समझ बैठे हैं। वे बातों को बाबूसमाज ही के सर मँढ़ कर प्रसन्न नवद्वीप के पण्डितों से ऐसे लोगों को शि ग्रहण करना चाहिये।

*

३—आर्यकन्याओं में फ़ैशन की गुला

स्त्रीशिक्षा का फल हमारे पारिवारिक में शान्ति होना चाहिये था। परन्तु आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों तरफ़ से अशान्ति ही अशान्ति की आवाज़ सुन रहे हैं। जिन सनदयाफ़्ता छात्राओं ने गृह-जीवन को रसमय और सुखमय बनाना था, वही आज दुःखों, झगड़ों, और बखेड़ों का कारण बन गयी हैं। शिक्षा ने इनके काम करने की ताक़त को बिलकुल नष्ट करा दिया है। तिनका तोड़ने की भी हिम्मत नहीं, रोटी पकाये तो नौकर, घर का काज करे तो नौकर, बच्चों को पाले तो नौकर। अगर पति की तनख्वाह कम हो और नौकर रखने की तौफ़ीक़ न हो तो ये सारे काम खुद पति करे। अगर क़ीमती साढ़ी और फ़ासन का बूट न मिले तो फिर पति की ख़ैर नहीं। चुनाँचे आजकल एक आर्यसमाजी स्त्री की निशानी ही यह बन गयी है जो साढ़ी और बूट पहने—फ़ैशन में अपटूडेट हो, दूसरों को उपदेश करे, मगर खुद कुछ न करे वही पक्की आर्यसमाजन है। हम जो कुछ कह रहे हैं, इसमें रत्तीभर मुबालग़ा नहीं, फ़ैशन की गुलामी और ऐशोअशरत के सामान की ज़रूरत, तालीमयाफ़ता लड़कियों के अन्दर इस क़दर ज़ोर पकड़ गयी है कि इनके वालिदैन को इनके लिये सख़्त तकालीफ़ पेश आने लगी हैं। कोई तालीमयाफ़ता लड़की, किसी पचास साठ रुपया माहवार कमानेवाले नौजवान के साथ व्याह करना पसन्द ही नहीं करती, चाहे वह कैसा ही शुद्धाचारी, धार्मिक और खुशअख़लाक़ क्यों न हो। इसका नतीजा यह हो रहा है कि लड़कियों के वालिदैन हमेशा ऐसे नौजवानों की तलाश में रहते हैं जो चाहे नास्तिक × × ख़यालात के हों, चाहे शराबी, कबाबी और भ्रष्टाचारी हों, चाहे आर्यसमाज के नाम से कोसों दूर भागनेवाले और वे असूले हों, मगर दो ढ़ाइसो रुपया माहवार ज़रूर कमाते हों, ताके लड़की का फ़ैशन ठीक चल सके। (प्रकाश से उद्धृत)

४—संयुक्त प्रान्त के नागरी-उर्दु-अख़बारों का मुक़ाबिला

	उर्दू अख़बारों की संख्या	उर्दू ग्राहक	नागरी अख़बारों की संख्या	नागरी ग्राहक	जनसंख्या जो जानती है उर्दू	जनसंख्या जो जानती है नागरी
वार्षिक	२	६००	०	०	५,३१,१७८	१३,१३,३२७
त्रैमासिक	०	०	३	२८५०		
मासिक	६१	४०३३२	६१	५४८५६		
पाक्षिक	१३	६३०३	११	७१२५		
दाशाहिक	१	६००	०	०		
साप्ताहिक	१६	२६२७३	१०	१०६००		
अधसाप्ताहिक	२	२२००	१	२०००		
दैनिक	१	३००	०	०		
टोटल	११६	७६६०८	८६	७७७३१		

ऊपर के नक़शे से मालूम होता है कि नागरी की अति शोचनीय अवस्था है, और हम लोगों को अभी बहुत काम करना बाक़ी है।

रघुनाथप्रसाद त्रिवेदी (एल-एल. बी.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—सर हनरी काटन का देहावसान।

दुःख की बात है कि गत अक्टूबर के महीने में भारत के एकमात्र सच्चे हितैषी सर हनरी काटन का देहान्त होगया। आप बहुत दिनों से रोग-पीड़ित थे। आपका स्वास्थ्य अच्छा होने का समाचार सुनने के लिये भारत बड़ा उत्सुक था, शोक है कि उसकी यह आशा पूरी न हुवी।

इङ्गलेण्ड में जितने अङ्गरेज़ भारत और भारतीयों से प्रेम रखते हैं स्वर्गीय का उनमें सबसे पहिला नम्बर था। भारत को आपसे बड़ी आशायें थीं। यद्यपि एङ्गलो इण्डियन पत्र आप की इस वृत्ति पर निरर्थक आक्षेप भी किया करते थे कि वे भारतवासियों से इतना प्रेम क्यों रखते हैं? तथापि जैसा कि इङ्गलेण्डीय सज्जनों का स्वभाव है कि वह किसी शत्रुता के कारण अपने आदर्श को नहीं छोड़ते, आपने अपनी भारतहितैषिता की लगन को नहीं छोड़ा। आप आसाम के चीफ़ कमिश्नर रहे थे। एक बार आपने कांग्रस के साभापत्यपद को भी गौरवान्वित किया था। आपकी लिखित "न्यूइण्डिया" नामक पुस्तक देखने लायक़ है। वस्तुतः आपके देहान्त से भारत को अनिर्वचनीय दुःख हुवा है।

परमात्मा आपकी आत्मा को सद्गति दें और आपके कुटुम्बियों को धैर्य।

*

६—शब्दों का प्रयोग।

एक इङ्गलेण्डीय विद्वान् का कथन है—कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा कम शब्दों का प्रयोग करती हैं। जो स्त्री प्रातःकाल से रात के दस बजे तक बराबर बातचीत करती रहे तो ५०० पाँचसौ शब्दों से अधिक नहीं बोलती। और यह बात अधिकतर शिक्षा पर निर्भर है। एक अशिक्षित किसान के पास ३०० तीनसौ से अधिक शब्द नहीं होते। इसके विचार भी गिनती के ही होते हैं। मिस्टर "ऐसक्विथ," अपने भाषण में साधारण वक्ताओं की अपेक्षा छः गुने अधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। एक ऊँचे दरजे का औपन्यासिक चार हज़ार शब्द लिखता है और साधारण आख्यायिकाओं के लेखक को पूँजी दो हज़ार शब्दों के लगभग होती है। महाकवि "मिल्टन" ने अपनी एक पुस्तक में आठ हज़ार शब्दों का प्रयोग किया है। यद्यपि हाल के संगृहीत कोशों में दो लाख शब्द लिखे गये हैं। महाकवि "शेक्सपियर" ने पन्द्रह हज़ार शब्दों से काम लिया है। आजकल "रिडयारकप्लिंग" सबसे अधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसका कारण यह है कि वह कोश को प्रायः देखते रहते हैं।

महाकवि कालिदास और वर्तमान कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रयुक्त शब्दों को भी गिनना चाहिये कि इन्होंने कितने शब्दों का प्रयोग किया है।

*

७—ग्रामोफ़ोन से सिंह का आखेट।

ये मशीनें न मालूम क्या क्या कर दिखायेंगी। संसार भर के प्रायः सब काम यही सम्पादन करती हैं। एक ग्रामोफ़ोन ही को लीजिये। गाना सुनाने के सिवा बड़े बड़े वक्ताओं का काम भी यही देने लगा है। मालवीयजी और व्या-वा दीनदयालुजी की वक्तृता आप घर बैठे चाहे जब इसके द्वारा सुन सकते हैं। पशुवों को जाने दीजिये अनेक प्रकार के पक्षियों के नाद आप इसीसे सुन सकते हैं। उन बेचारों को पींजरे में बन्द करने और उन्हें चुग्गा खिलाने की अब इसने ज़रूरत ही नहीं रक्खी। पक्षियों के नाद की नक़ल एक विशेष प्रकार की मशीन द्वारा ली जाती है, जो चलते हुवे ज़रा भी शब्द नहीं करती। इसके हारन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाना डाल दिया जाता है और पक्षी इसके अन्दर बिठला दिये जाते हैं। वे दाना चुगते और गीत गाते रहते हैं और गोत मशीन के अन्दर सदा के लिये आजाते हैं।

इसी प्रकार अफ्रिका में अब सिंहों के आखेट में भी ग्रामोफ़ोन से ही काम लिया जाने लगा है। भेड़ के बच्चे का नाद ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड में भर लिया जाता है और आखेट-स्थल में मचान के नीचे ग्रामोफ़ोन रख दिया जाता है। भेड़ के बच्चे का नाद होता है। सिंह लपक कर आता है और बेचारा लक्ष्य बन कर सदा के लिये परलोक की सैर करता है।

*

८—गङ्गाजी का मेला

कार्तिक-मास बड़ा पुनीत मास है। इसमें गङ्गास्नान का शास्त्रों ने बड़ा माहात्म्य बतलाया है। इसी के अन्तर्गत पञ्च भीष्म स्नान भी बतलाया गया है, जो एकादशी से पूर्णिमा तक होता है। इन दिनों में प्रायः, गङ्गोत्तरी से लेकर गङ्गासागर तक सुरासुर-वन्दनीया, परमपवित्रा गङ्गाजी के किनारे बड़ो धूमधाम से मेले हुवा करते हैं। यद्यपि इन दिनों में पुष्करादि तीर्थों पर भी मेले होते हैं और वहाँ जन-समुदाय, ख़ासा इकट्ठा हो जाता है। पर जितना समुदाय हरिहर क्षेत्र के मेले में हो जाता है उतना और कहीं नहीं होता। इस मेले में हाथियों तक का क्रयविक्रय होता है। यह सब कुछ होने पर भी यह मेला गङ्गाजी के एक तट पर ही होता है। अस्तु!

हमने जो दर्शनीय दृश्य तिगरी (तहसील हसनपुर, ज़िला मुरादाबाद) के मेले में देखा, वह दूसरे स्थान में हमें नहीं देख पड़ा। इस नोट में उसी का संक्षिप्त-विवरण दिया जाता है—

यह मेला श्रद्धेय गंगाजी के दोनों तटों पर होता है। एक तरफ़ का तिगरी के नाम से, और दूसरी तरफ़ का गढ़मुकुटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों किनारों पर कई लाख मनुष्यों का समारोह हो जाता है। कयी जातीय और धार्मिक सभायें भी यहाँ आया करती हैं। यूँ तो यह मेला कार्तिक-कृष्ण द्वितीया से प्रारम्भ हो जाता है और इसका प्रबन्ध इससे भी पहिले से होने लगता है तथापि इसका ज़ोर दशमी, एकादशी से पूर्णिमा तक होता है। इन दिनों में रास्तों पर मनुष्यों के लिये भी बड़ी खचाखच रहा करती है। मेले के रास्तों की सड़कों पर हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट हमारे सुख के लिये मील मील भर पर एक चौकीदार को तइनात कर देती है। जो दिन छिपने पर गाड़ियों को चलने से बन्द कर देता है और आराम से ठहरने के लिये स्थान बतलाता है। यह इस तिगरीवाले मेले के लिये सौभाग्य की बात है कि इसमें कयी साल से पण्डित गोविन्द-प्रसाद डिप्टीकलक्टर, मुरादाबाद का प्रबन्ध रहता है जो निःसन्देह न्यायप्रिय और अनुद्वेगजनक होता है।

इस मेले में अब कयी वर्ष से एक प्रदर्शिनी भी होने लगी है। इस वर्ष सुनते हैं कि इसका प्रबन्ध बाबू जगराजविहारी माथुर, बी० एस-सी, सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मुरादाबाद के हाथों में था। इस प्रदर्शिनी का दृश्य भी वास्तव में दर्शनीय ही था। इसके आगे एक बहुत बड़ा दरवाज़ा लगाया गया था जो बाँस की खपच्चों का बना हुवा था। ऐसा ही एक दरवाज़ा याद पड़ता है कि किसी नरेश ने दरबार के अवसर पर बनवाया था। ऐसे कार्यों के लिये सेक्रेटरी साहिब वस्तुतः धन्यवाद के योग्य हैं। शोक है कि उस समय आप बीमार थे। बीमार होते हुवे भी आप के प्रबन्ध में अणुमात्र न्यूनता न थी, जो आपकी प्रबन्ध कारिता का समुज्ज्वल प्रमाण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शिनी में एक तरफ़ एक थ्येटर और दंगल भी था। इस दंगल का प्रबन्ध शायद कांठ के रईस और स्पेशल मजिस्ट्रेट चौधरी धर्मसिंह को सौंपा गया था। आपने भी अपनी उपस्थिति तक दङ्गल का बड़ी ही योग्यता के साथ प्रबन्ध किया। २१ नवम्बर को ३ बजे के बाद किसी आवश्यक कार्यवश (शायद दरबार की तैयारी के लिये) आप कहीं चले गये थे और अपना निरीक्षण कार्य किसी "मुंशी जी" को सौंप गये थे। मुन्शियों के जैसे काम हुआ करते हैं वैसा आपने भी किया। आपको एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ जाना बुरा मालूम होता था। दर्शकों को, जिन्होंने पैसे ख़र्च किये हैं, भले ही न दीखे, लेकिन आपने आगे पैर रखने के लिये क़सम सी खा रक्खी थी। अस्तु। आगे ऐसी बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

इस वर्ष, गङ्गा के पार होने के लिये, पुल का प्रबन्ध कुछ ज़्यादा अच्छा न था। चलते चलते पैर नीचे को निकल जाते थे। टिकट लेने और देने के लिये भी आदमी उचित स्थान पर नहीं खड़े किये गये थे। पुल के बीच ही में खड़े थे। जिसके कारण व्यर्थ ही आदमियों की बड़ी भीड़भाड़ हो जाती थी। यदि इस अवसर पर कोई गाड़ी आजाती तब तो आदमियों को बड़ा कष्ट होता। एक दिन गाड़ी के झटके से कुछ बच्चे पुल से नीचे गिर गये और उनको बड़े परिश्रम से निकलवाया गया। यह घटना गङ्गाजी के परले किनारे पर हुवी थी और इस नोट के लेखक ने स्वयं अपनी आँखों से देखी थी।

इस किनारे पर ज़िला मजिस्ट्रेट, ज्वाइन्ट-मजिस्ट्रेट और पण्डित गोविन्दप्रसाद डिप्टी-कलक्टर प्रायशः उपस्थित रहा करते थे, जो बड़ी आसानी से लोगों को निकलवाते थे।

इस मेले की सारी कार्य्यवाही निर्विघ्न समाप्त होने के लिये हम अपने ज़िला मजिस्ट्रेट मिस्टर जे. एस. इस्टीविन्सन साहिब बहादुर, आई० सी० एस० का धन्यवाद करते हैं।

पुस्तक-परिचय।

१—शिव सतसई।

आकार बड़ा, पृष्ठसंख्या ८६। मूल्य ।) रचयिता, साहित्योपाध्याय, पंडित शिवदत्त शर्मा काव्यतीर्थ, अध्यापक गवर्नमेंट हाईस्कूल अजमेर"। "श्रीमान् ई० एफ, हैरिस, महोदय (बी० ए०) प्रिंसिपल गवर्नमेंट कालिज अजमेर मेवाड़ प्रान्त की पाठशालाओं के इन्सपैक्टर के करकमलों में" यह पुस्तक समर्पण की गई है। कविवर विहारीलाल की बिहारी सतसई की तरह इसमें भी सातसौ ७०० दोहे हैं, जो सुभाषितरत्नभाण्डागार, सुभाषितावली आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर बड़ी योग्यता के साथ लिखे गये हैं। उदाहरण—

अति परिचय तें भक्ति की, अवशि होत है हानि।
जैसे लोग प्रयाग के, करें कूप पै स्नान॥

× + +

अपना मुख भी काँच बिन, जब देखा नहिं जाय।
तब ईश्वर का ज्ञान बिन, कैसे दर्शन पाय?॥

+ + +

एक भाग संग्रह करै, एक भाग को खाय।
अरु इक भाग सुकर्म्म में, व्यय करि नर सुख पाय॥

बालकों को इस नीतिग्रन्थ के पढ़ाने से बड़ा लाभ होने की सम्भावना है। मिलने का पता—पं० रामदत्त त्रिपाठी, हेडपंडित, मिशन-हाईस्कूल अजमेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—दुवासातृप्ति स्वीकार नाटक।

आकारमझोला। पृष्ठसंख्या ६६। मूल्य ।-)। आने।

श्रीहरिभक्त शिरोमणि काशीनाथ भट्टाचार्य कृत "श्रीपाण्डव-भक्ति-परिचय" नामक एक अमुद्रित नाटक का यह हिन्दी अनुवाद है। इसे भी हरिभक्तों के विनोदार्थ, श्रीकृष्ण-मंडल राजपूताना की प्रेरणा से "साहित्योपाध्याय पंडित शिवदत्तजी काव्यतीर्थ ने लिखा है और श्रीमान मेहर जी डी. बी. महोदय के करकमलों द्वारा श्री कृष्णचन्द्र की पवित्र सेवा में इस पुस्तक को लेखक ने समर्पण किया है।

पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी गयी है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। भाषा भी सरल है। हाँ! 'हम' और 'मुझे' के स्थान में "अपन" ज़रा खटकता है। इसे दूसरे प्रान्तवाले तो शायद आसानी से समझ भी नहीं सकेंगे।

कोई कोई पद्य इसका बड़ा अच्छा मालूम होता है। काग़ज़ और छपाई बहुत साफ़ है।

मिलने का पता। पं० रामदत्त त्रिपाठी, हेड पंडित, मिशन हाई स्कूल, अजमेर।

३—मूर्खलक्षणावलिः।

आकार मझोला, पृष्ठसंख्या १३, मूल्य दो पैसे। प्राप्ति स्थान पुस्तक पर लिखा नहीं। पुष्करवासी पं० मुरलीधर शर्मा त्रिपाठी ने इस छोटी सी पुस्तक की रचना की है। ऊपर संस्कृत में श्लोक और नीचे हिन्दी में दोहे हैं। विषय इसके नाम ही से स्पष्ट है।

४—सटीक सामवेदी सन्ध्या।

आकार मझोला, पृष्ठसंख्या ३२, मूल्य ईश्वरोपासना। इसे "हितैषिणी" सभा की अनुमति से गवर्नमेंटकालिज अजमेर के भूतपूर्व संस्कृत प्रोफ़ेसर पंडितवर शालग्रामजी शास्त्री ने गोभिलीयगृह्यकर्म्म प्रकाशिका से संग्रह किया है। और दाधीच हितकारिणी सभा अजमेर की प्रेरणा से उनके शिष्य गवर्नमेंट हाई स्कूल के हेडपंडित साहित्योपाध्याय त्रिपाठी शिवदत्त काव्यतीर्थ ने सर्वसाधारण के लाभार्थ भाषानुवाद कर प्रकाशित किया है।

यह यजुर्वेदी संध्या से प्रायः मिलती जुलती है। पुस्तकान्त में ८—१० पृष्ठों पर काव्यतीर्थ महाशय ने सन्ध्यासम्बन्धी प्रश्नोत्तर बड़ी उत्तम रीति से लिखे हैं। उनसे बहुत सी सन्ध्यासम्बन्धी बातें मालूम होती हैं।

यह पुस्तक दो पैसे का टिकट भेजने से पंडित प्रह्लाददत्त शर्मा, मन्त्री दाधीच हितकारिणी सभा कायस्थमुहल्ला, अजमेर से मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-परिचय।

भारत के वाइसराय और गवर्नर जनरल—
लार्ड हार्डिङ्ग,

भारत-सचिव—
मारक्विस आफ़ क्रू,

कमांडर इन चीफ़—
जनरल सर ब्यूचम्पडफ,

श्रीमान् सम्राट्
पञ्चम जार्ज
महोदय,

बम्बई के गवर्नर—
लार्ड विलिङ्गडन,

मद्रास के गवर्नर—
लार्ड पेंटलैंड,

बङ्गाल के गवर्नर—
"नीतिरञ्जन" लार्ड कारमाइकल,

युक्त-प्रदेश के छोटे लाट—
सर जे. एस. म्यस्टन

बर्मा के छोटे लाट—
सर हार्वे एडमसन,

पञ्जाब के छटे लाट—
सर माइकल एफ़. ओ. डूयर,

बिहार और उड़ीसा के छोटे लाट—
सर सी. एस. बेली,

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanura (Muradabad)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"MANORAMA" REG. No. A. 755

अलङ्कार १] पौष १९७२ [ध्वनि ३

मनोरमा

"असूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

*

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

*

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लेख-सूची

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) हिन्दी-कादम्बरी ७७

(२) परिवर्तन [लेखक, कविकुमार, पण्डित महेश्वर प्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य ८६

(३) दमयन्ती और हंस ९०

(४) हिन्दी-कुमारसम्भव ९८

(५) पुरुषार्थ [ले० कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय १००

(६) योरपीय महायुद्ध को जानेवाले भारतीय सिपाही का गीत [ले० लाला लालचन्द "फ़लक" १०२

(७) बेकली (गल्प) [ले० "कुमुद" ... १०२

(८) मदालसा और ऋतुध्वज [ले० कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय... १११

(९) विविध विषय ११४

(१०) पुस्तक-परिचय ११८

(११) मनोरम-श्लोक [ले० बाबु गंगाशरण गुप्त ११८

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मू और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने बढ़ाने तथा प करने न करने का अधिकार सम्पादक को

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें, बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी ध यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम कार्या मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने प

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना श्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं जायेंगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करें मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रस पूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकेगा।

आवश्यकता है

१—सर्वत्र ऐसे एजंटों की, जो मनोरमा का प्रचार करें। कमीशन म दिया जायगा।

२—एक मास्टर की, जिसे केवल इंगलिश में ग्रेजुएट, या अंडर ग्रे की जैसी योग्यता हो। वेतन २०) से ३०) तक योग्यतानुसार दिया जाय प्रार्थना-पत्र इस पते से आना चाहिये—

मैनेजर,

मनोरम-कार्यालय,

मण्डी धनौरा, यू. पी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

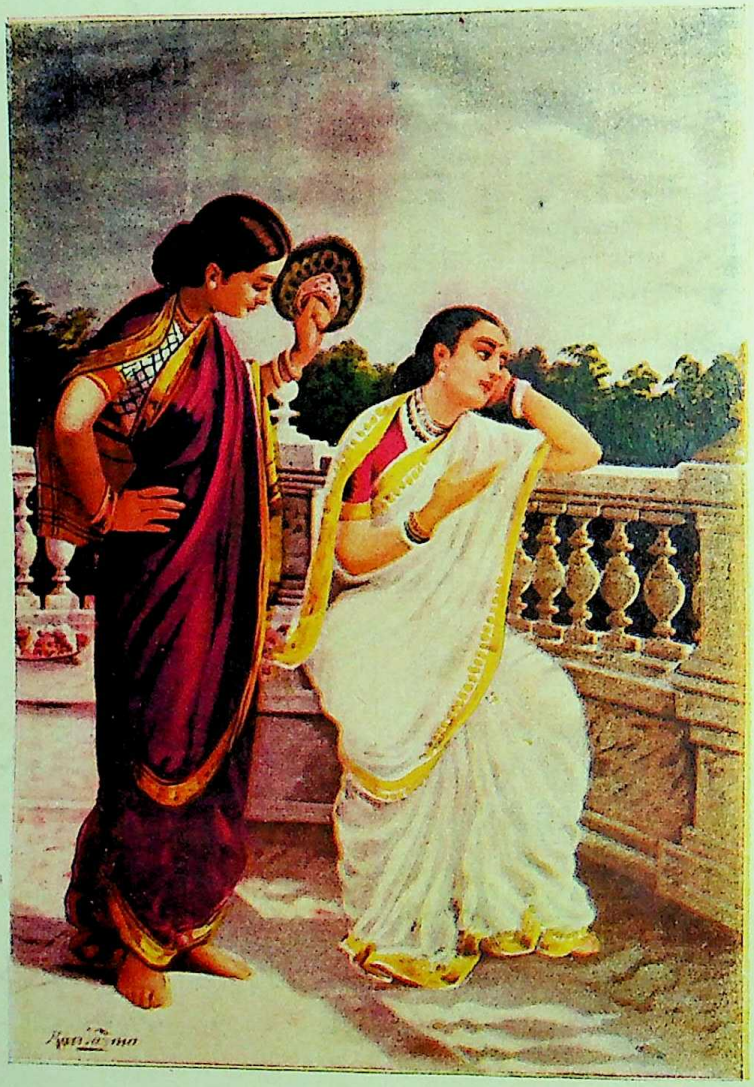

अयि ! विधुं परिपृच्छ ? " गुरोः कुतः,
स्फुटमाशिक्ष्यत दाहवदान्यता ।
ग्लपि तश्भुगलाद गरलात् त्वर्थो
किमुदधौ जड ! वा वडवानलात् ॥ "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | पौष १९७२ | ध्वनि ३

हिन्दी-कादम्बरी

(३)

वैशम्पायन भी थोड़ी देर विचार कर—कुछ चुप रह कर सादर यूँ कहने लगा—

महाराज ! यह बहुत बड़ी कथा है । यदि आश्चर्य ही है तो सुनिये ।

एक विन्ध्याटवी है—विन्ध्याचल के पास वन है । वह विन्ध्याटवी, पूर्वीय और पश्चिमीय समुद्र के किनारे तक चली गयी है, और मध्य-देश के लिये वह भूषण-स्वरूप है । अतएव वह, पृथ्वी की मेखला जैसी प्रतीत होती है ।

वहाँ के वृक्षों से वह बड़ी ही अच्छी मालूम होती है । ये वृक्ष, वन-गजों के मद-जल सेचन करने से वृद्धि को प्राप्त हैं—हाथियों के मदरूपी जल के लगने से बढ़े हुवे हैं । और ये, अपनी चोटियों पर, लिखे हुवे सुफ़ेद सुफ़ेद कुसुम, धारण किये हुवे हैं । ये, बड़े ऊँचे भी हैं, अत एव ये, बहुत से तारों को धारण किये हुवे, जैसे मालूम होते हैं ।

उस विन्ध्याटवी में, मद से मनोज्ञ, कुररी पक्षी, मिरचों के पत्तों को अपनी चोंच से काटा करते हैं—उनका भक्षण किया करते हैं ।

वहाँ पर, हाथियों के बच्चे, तमाल के वृक्षों के पत्तों का, अपनी सूँड़ से मर्दन किया करते हैं । उस समय, उन पत्तों से सुगन्धि का आविर्भाव होता है, अतएव, वह सुगन्धि, सारी की सारी अटवी को सुगन्धित कर देती है ।

वह अटवी, इधर उधर घूमते हुवे, वनदेवताओं के चरणों के लाक्षा-रस से लाल लाल हुवे जैसे पत्र-समूह से आच्छादित है—अलंकृत है, और इन पत्तों की, मद से लाल लाल हुवे केरल-देश की स्त्रियों के गण्डस्थल की छवि, जैसी छवि है ।*

* कुछ तो स्वतः ही केरल-देश की स्त्रियाँ, कोमलाङ्गी या लाल रंगवाली होती हैं और कुछ मधु-मद से लाल होगयीं । इसलिये, इनके गण्डस्थलों की उपमा, इन पत्तों के लिये, बड़ा अच्छा काम देती है । ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अटवी, वन-लक्ष्मी के निवास-स्थान जैसे लतामण्डपों से विराजित है—वहाँ लतायें, अपना सौन्दर्य, अनुपम ढंग से ही दिखाती हैं।

लतामण्डपों का बीच का हिस्सा, तोतों से काटे गये अनारों के रस से गीला रहता है। बात यह है कि उस अटवी में, तोते भी वृक्षों पर निवास किया करते हैं, अतएव अनारों के वृक्षों पर जाकर उनके फलों को तोड़ कर उनका रसास्वादन करते हैं। उस समय रस नीचे को टपकता है, और नीचे की लताओं पर गिरता है।

कितने ही लतामण्डप, चञ्चल बन्दरों से हिलाये गये, कक्कोल वृक्षों से गिरे हुवे फल और पत्तों से कर्बुर हो जाते हैं—चितकबरे हो जाते हैं। और कितने ही नितान्त गिरे हुवे पुष्पों की धूलि से धूसरित रहते हैं।

बहुत से लतामण्डपों में तो पथिक जन, लौंग के पत्तों ही का बिछौना बिछाते हैं। कितने ही लतामण्डपों के अन्त्य-प्रदेश (ऊपर के हिस्से) बड़े कठोर नारियल, केतक, केसर, और मौलसिरी से व्याप्त रहते हैं। और कितने ही, पानों की लताओं से जकड़े हुवे सुपारी के वन से सुशोभित रहते हैं।

वह अटवी, निरन्तर, इलायचियों की लताओं से अन्धकारित सी रहती है—काली काली हुवी रहती है। ये लतायें भी, उन्मत्त हाथियों के गण्डस्थल से गिरे हुवे मद-जल से सिञ्चित हुवी जैसी मालूम होती हैं, अतएव इन लताओं का गन्ध भी मद का गन्ध जैसा होता है—इनकी ख़ुशबू भी मद की ख़ुशबू जैसी होती है।

उस अटवी में, भीलों के सेना-नायक, सैकड़ों सिंहों का हनन करते हैं—मारते हैं। ये सेना-नायक, हाथियों के गण्डस्थल से पैदा हुवे और इन सिंहों के नखों के अग्रभाग में लगे हुवे, मोतियों के लुब्धक होते हैं—चाहनेवाले होते हैं। बात यह है कि उस अटवी में ऐसे हाथी भी हैं, जिनके मांस-रस से मोती उत्पन्न होते हैं। उन हाथियों को सिंह, अपना ग्रास बनाते हैं—उनको मारते हैं। उस समय, सिंहों के नाख़ूनों में उनके मोती लग आते हैं। मोतियों को सिंहों के नाख़ूनों में लगे देख कर शिकारी, बेचारे सिंहों को भी अपना शरव्य बना लेते हैं—उनको मार डालते हैं।

वह अटवी, सचमुच यमपुरी जैसी मालूम होती है। यमपुरी में सदा निकटवर्ती मृत्यु (यमराज) है, उससे भयङ्करी रहती है। उसमें भी सदा निकटवर्ती मृत्यु (अजगर साँप) हैं, उनसे भयङ्करी है। यमपुरी, महिष (यमराज के वाहन भैंसों) से अधिष्ठित है। वह भी, महिष (भैंसों) से अधिष्ठित है—व्याप्त है।

युद्ध के लिये तैयार सेना, से भी वह अटवी तुलना रखती है। सेना, बाणों में शिलीमुखों (लोहे के टुकड़ों) को चढ़ाती है। वह अटवी, बाणों (बान के वृक्षों) में शिलीमुखों (भौंरों) को धारण कराती है। सेना में सिंह के शब्द-समान, शब्द होता है—सेना के सुभट, सिंह के समान गर्जना करते हैं। उस अटवी में सिंहों का नाद हुआ करता है—सिंह, बड़े ज़ोर से गर्जा करते हैं।

वह अटवी, दुर्गादेवी जैसी भीषणा और भूषिता है। दुर्गादेवी, अपने चलाये गये खड्ग से भयकारिणी मालूम होती है—अपनी तलवार को चलाते हुवे भय देती है, और रुधिररूपी चन्दन से अपने देह को चर्चित रखती है—ख़ून ही का चन्दन लगाये रहती है। वह अटवी भी, बहुत सी सेनाओं द्वारा चलाये गये खड्ग (गर नामक मच्छ) से भयङ्करी रहती है। बात यह है कि उस अटवी में बड़े बड़े सरोवर हैं, जिनमें कच्छ, मच्छ निवास करते हैं। उनमें गर नामक मच्छ भी रहा करता है। वह बड़े डीलडौल का होता है। किसी का सेना समुदाय, उस तरफ़ को निकलते हुवे, जब कभी उससे छेड़छाड़ करता है, तब वह अटवी, बड़ी ही भयोत्पादिका हो जाती है। और रक्त चन्दन (लाल चन्दन के वृक्षों) से वह, सुशोभित रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अटवी को, कर्णीसुत राजा* के वृत्तान्त से भी तुलना देते हैं। कर्णीसुत की कथा में, विपुल और अचल नामधारी मित्र पास रहते हैं, और शश नामक मन्त्री, इसमें उपस्थित रहता है। उस अटवी के पास में, विपुल (बड़े बड़े) अचल (पर्वत) हैं और शश (लोध के वृक्षों) की भी कमी नहीं है। वह अटवी, कल्पान्त में प्रदोष-सन्ध्या के समान है। प्रदोष-सन्ध्या में नील-कण्ठ (शिवजी) का नृत्य होता है—शिवजी नाचा करते हैं। अटवी में भी नील-कण्ठ (मयूर) नृत्य किया करते हैं। प्रदोष-सन्ध्या, पत्तों के समान, लाल लाल होती है। वह अटवी भी, पत्तों से लाल लाल मालूम होती है।

वह अटवी, अमृत-मथन के समय से भी तुलना रखती है। अमृत-मथन का समय, श्री (लक्ष्मी) और द्रुम (कल्पवृक्ष) से सुशोभित था—उस समय, लक्ष्मी और कल्पवृक्ष का प्रादुर्भाव हुवा था। वह अटवी, श्रीद्रुम (सुन्दर सुन्दर वृक्षों) से सुशोभित है और वह समय, वारुण (मदिरा) सहित भी था—उस समय, समुद्र से मदिरा भी निकली थी। वह अटवी, वारुण (बरने के वृक्षों) सहित है।

वह अटवी, वर्षाऋतु जैसी भी मालूम होती है। वर्षाऋतु, घन (बादलों) से, काली काली हुवी रहती है। अटवी भी घन (अति) काली है,—बहुत से वृक्षों से घिनकी मालूम होती है। वर्षाऋतु, अनेक शत (सैकड़ों) ह्रद (तालाबों) से अलंकृत रहती है—वर्षाऋतु में सैकड़ों सरोवर उमड़ा करते हैं। वह अटवी भी, अनेक (बहुत से) शत-ह्रद (जल बालिकाओं) से अलंकृत रहती है—उस अटवी में, बहुत सी जल बालिकायें उत्पन्न होती हैं।

वह अटवी, चन्द्रमा के शरीर की शोभा को भी धारण किये हुवे है। चन्द्रमा का शरीर ऋक्ष-सार्थ (नक्षत्र-समूह) से अनुगत और हिरन से अध्यासित है—इसके पीछे पीछे बहुत से तारे और बीच में मृग का चिह्न है। वह अटवी, ऋक्ष-सार्थ (रीछों के समुदाय) से अनुगत है—उसमें बहुत से रीछ घूमा करते हैं और मृगों से अध्यासित है—मृग भी उसमें रहा करते हैं।

वह अटवी, राज्य-मर्यादा जैसी भी मालूम होती है। राज्य-मर्यादा, चमरी, हिरन, और चमरों से सुशोभित एवं समद हाथियों से सुरक्षित होती है—राज्य में चमरी, हिरन, चमर और बड़े बड़े मतवाले हाथी होते हैं। वह अटवी, चमरी, हिरन और चामर से सुशोभित एवं समद हाथियों से सुरक्षित है। यही नहीं, वह अटवी, पार्वती देवी से भी बराबरी का दावा रखती है। पार्वती, स्थाणु (शिव) को प्राप्त किये हुवे है—शिव को अपना पति बनाये हुवे है, और सिंह से सेवित है—सिंह को अपना वाहन बनाये हुवे है। वह अटवी, स्थाणु (ठूँटों) को प्राप्त किये हुवे है—उस अटवी में वृक्षों के पत्ते आदि झड़जाने से कुछ ठूँट भी हैं और सिंहों से सेवित भी है—बहुत से सिंह भी उसमें रहते हैं।

वह अटवी, सीताजी से भी तुलना रखती है। सीताजी ने कुश और लव नाम के दो पुत्रों को पैदा किया और निशाचर (रावण) से परिगृहीत (स्वीकृत) हुवी—अपने स्थान को प्राप्त की गयी—चुराई गयी। वह अटवी भी कुश (दाब) के लव (अङ्कुरों) को पैदा करती है और निशाचर (उल्लू आदि) को भी स्वीकार किये हुवे है—उल्लू आदि भी उसमें निवास करते हैं।

वह अटवी, कामिनी के गुण भी धारण किये हुवे है। कामिनी, चन्दन और मृगमद (कस्तूरी) देह में लगाये रहती है और सुन्दर अगर के तिलक से भूषित रहती है—अपने मस्तक में अगर का तिलक लगाये रहती है। वह अटवी, चन्दन और

* यह कोई क्षत्रिय था। इसके विपुल और अचल नाम के दो मित्र थे, और शश नामक इसका एक बड़ा अच्छा मन्त्री था। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगमद (गन्ध-रज) की सुगन्धि को धारण किये रहती है और सुन्दर अगर (अगर के वृक्ष)तथा तिलक (तिलक के वृक्ष) से अलंकृत रहती है – उस अटवी में चन्दन,अगर और तिलक के भी वृक्ष हैं।

वह अटवी, उत्कण्ठित स्त्री, (बड़ी उत्कण्ठा से अपने प्रिय के पास जानेवाली) से भी कुछ कम नहीं है। उत्कण्ठित स्त्री, अनेकों प्रकार के पर्ण-वायु से वीजित रहती है – तरह तरह के पत्तों से हवा किया करती है और मदन (कामदेव) सहित होती है – सम्भोग की अभिलाषिणी होती है। वह अटवी भी अनेकों प्रकार के पर्ण-वायु से वीजित रहती है – उसमें बहुत से पत्तों से निकली हुवी हवा चला करती है। और मदन (मदन के वृक्ष) सहित है–उस अटवी में मदन के भी वृक्ष हैं।

वह अटवी, बालक की ग्रीवा जैसी भी मालूम होती है। बालक की ग्रीवा, व्याघ्र-नख (शेर के नाखूनों) से सुशोभित होती है – बच्चे के गले में शेर के नाखून बाँधे जाते हैं और उसकी ग्रीवा में गण्डक (गण्डों) ही का गहना होता है। बात यह है कि थोड़ी अवस्था में बच्चे के गले में व्याघ्र-नख और गण्डेतावीज़, स्त्रियाँ उसकी रक्षा के लिये, डाल दिया करती हैं*। वह अटवी भी व्याघ्र (सिंह) और नख (कक्कुदनि) से अलंकृत है और गण्डक (गेंडों) ही को अपना गहना बनाये हुवे है – उसमें गेंडे भी निवास करते हैं।

वह अटवी, पान-भूमि (शराब पीने की जगह) से भी कुछ कम नहीं है। पान-भूमि, सैकड़ों मधु (शराब) के कोशकों (प्यालियों) को प्रकट करती है – वहाँ शराब पीने के लिये, सैकड़ों प्यालियाँ पड़ी रहती हैं और अनेकों प्रकार के फूल बिखरे रहते हैं। उस अटवी में भी सैकड़ों मधुकोशक (शहद की मक्खियों की मुहाल) हैं और बहुत से फूल भी वहाँ बिखरे रहते हैं।

वह अटवी, किसी स्थान में तो प्रलय-वेला की शोभा को धारण किये हुवे है। प्रलय-वेला में महावराह (शूकरावतार) अपनी डाढ़ से पृथिवी को उखाड़ता है – नीचे से ऊपर को ले आता है। उस अटवी के पृथिवी-मण्डल को महावराह (बड़े बड़े शूकर) अपनी डाढ़ों से खोदते हैं।

वह अटवी, कहीं कहीं लङ्का जैसी भी मालूम होती है। चञ्चल-वानर-पुञ्ज से लङ्का की तुङ्गशाल (ऊँची ऊँची मीनारें) तोड़ी गयीं थीं अतएव वह व्याकुल हुवी थी। चञ्चल वानरों से उस अटवी के भी तुङ्गशाल (ऊँचे ऊँचे साल के वृक्ष) भग्न-मान हैं – तोड़े गये हैं अतएव वह व्यग्र है।

और किसी स्थान में तो वह अटवी, तत्काल ही हुवे विवाह की भूमि जैसी सुशोभित है। विवाह-भूमि दूर्वा, कुशा, समिधा, फूल, जांड और पलाश से शोभित रहती है। वह अटवी भी इन सब वस्तुओं से सुशोभित है—उस अटवी में ये सब वस्तु उपस्थित हैं।

वह अटवी, कहीं कहीं सिंह की निर्मर्याद गर्जना से भयभीत, स्त्री का गुण भी धारण किये हुवे है। भीता स्त्री, सिंह की गर्जना को सुन कर कण्टकित (रोमाञ्च-युत) हो जाती है। वह अटवी भी कण्टकित (काँटों सहित) है उसमें—काँटेदार वृक्ष हैं। कभी कभी वह अटवी, मत्ता स्त्री जैसी प्रतीत होती है। मत्ता स्त्री, कोकिलों की तरह प्रलाप (व्यर्थ बकवास) किया करती है। उस अटवी में भी कोकिलों का प्रलाप (मनोहर शब्द) हुवा करता है। यही नहीं, वह अटवी उन्मत्त स्त्री के भी गुण, धारण किये हुवे हैं। उन्मत्त स्त्री वायुवेग से वायु के प्रबल हो जाने से, ताल शब्द करती है – तालियाँ बजाती है। वह अटवी, वायु वेग से – वायु के ज़ोर से चलने से ताल (ताड़ के वृक्षों द्वारा) शब्द करती है।

वह अटवी, कहीं कहीं विधवा की भी बराबरी करती है। विधवा स्त्री, तालपत्र (पत्र नामक आभूषण) त्यागे हुवे होती है। वह अटवी

* शार्दूलदिव्यवरभूषणभूषिताय, नन्दात्मजाय "व्यास"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालपत्र (ताड़ के पत्तों) को त्यागे हुवे है—उसमें ताड़ के पत्ते टूट कर पृथिवी पर पड़े रहते हैं। वह अटवी, किसी भाग में संग्राम-भूमि जैसी भी प्रतीत होती है। संग्राम-भूमि, सैकड़ों शर (बाणों) से व्याप्त रहती है। वह अटवी,सैकड़ों शर (सैंटों) से व्याप्त है। उसमें बहुत सी मूंज भी पैदा होती है। और वह अटवी, इन्द्र-तनु जैसी सुशोभित है। इन्द्र-तनु नेत्र-सहस्र (हज़ार नेत्रों) से व्याप्त है—इन्द्र के शरीर में हज़ार नेत्र हैं। वह अटवी भी नेत्र-सहस्र (हज़ारों जटाओं से) व्याप्त है—उसमें हज़ारों वृक्षों की जटाएं हैं।

किसी भाग में तो वह अटवी, कृष्ण-मूर्ति जैसी भी प्रतीत होती है। कृष्ण की मूर्त्ति, तमाल के समान नील है। अतएव वे श्याम-मूर्ति हैं। वह अटवी, तमाल के वृक्षों से नीली है।

वह अटवी, कहीं कहीं तो, अर्जुन की रथ-पताका जैसी मालूम होती है। अर्जुन की रथ-पताका, कपि से—वानर के चिह्न से आक्रान्त थी—ध्वजा में हनुमान् की मूर्ति लगी हुवी थी। वह अटवी भी कपि (वानरों) से आक्रान्त है—उस अटवी में वानर-वृन्द भी निवास करता है।

वह अटवी, राजा की ड्योढ़ी जैसी भी मालूम होती है। ड्योढ़ी,सैकड़ों वेत्र-लता—वेंत की लकड़ियों से दुर्गम्य होती है। बात यह है कि राज-द्वार पर हाथ में दण्डा लिये हुवे बहुत से द्वारपाल खड़े रहते हैं। अतएव वह ड्योढ़ी दुर्गम्य होती है। वह अटवी भी सैकड़ों वेत्र (वेंत के वृक्षों) और लताओं से दुर्गम्य है।

वह अटवी, विराट-नगरी जैसी भी है। विराट-नगरी, कीचक (कीचक नामक राजा के साले) से व्याप्त थी। उसमें विराट का साला कीचक रहा करता था। वह अटवी कीचक (बाँसों) से व्याप्त है।

वह अटवी, किसी स्थान में आकाश की शोभा से भी तुलना रखती है। आकाश-शोभा में व्याध (व्याध रूपी महादेव) से, तरल तारक मृग (मृग) शिर नक्षत्र] अनुगम्यमान था। बात यह है कि शिवजी ने व्याध का रूप धारण करके चन्द्रनक्षत्र का अर्ध-शिर काट डाला था, उस समय शिव ने उसके पीछे पीछे अनुगमन किया था। उस अटवी में भी तरल (भयभीत) तारक मृग (चितकबरे हिरन) व्याधों से अनुगम्यमान हैं—उस अटवी में हिरनों के पीछे पीछे व्याध दौड़ते रहते हैं।

वह अटवी, किसी तरफ़, व्रतिनी स्त्री, जैसी भी मालूम होती है। व्रतिनी स्त्री,कुशा,चीर, जटा (खुले हुवे केश) और वल्कल धारण किये रहती है। वह अटवी भी कुशा, चीर, जटा और वल्कल धारण किये हुवे है। बस, अन्तर इतना ही है कि इन वस्तुवों को व्रतिनी स्त्री अपने शरीर पर धारण करती है, और अटवी, वृक्षों द्वारा धारण किये हुवे है।

वह अटवी, असंख्य घिनके घिनके पत्तोंवाली भी है। उस अटवी में अगण्य पत्र-समुदाय है। तो भी वह, सप्तपर्ण से सुशोभित है। सप्तपर्ण (छतिवनों के वृक्षों) से शोभायमान है और क्रूरसत्वा (दुःस्वभावा) होते हुवे भी मुनिजनों से सेवित है। बात यह है कि वह अटवी, क्रूरसत्वा है—उसमें सिंहादि भी निवास करते हैं। एवं पुष्पवती (ऋतुमती) होते हुवे भी पवित्र है। बात यह है कि वह पुष्पवती है—फूलोंवाली है अतएव पवित्र है।

उसी अटवी में दण्डकारण्य के भीतर, सारे जगत में प्रसिद्ध, धर्म का उत्पत्तिस्थान जैसा, महर्षि अगस्त्य का आश्रम था।

उसी अगस्त्य ने इन्द्र की प्रार्थना से सारे के सारे समुद्र का जल-पान कर लिया था—एक आचमन कर लिया था और उसकी आज्ञा का विन्ध्याचल ने भी उल्लंघन न किया था—शिरसा धारण किया था।

विन्ध्याचल ने मेरु की मत्सरता से अपनी लम्बी चौड़ी हज़ारों चोटियों को फैला दिया था। अतएव यह विन्ध्याचल, सूर्यनारायण के रथ की गति रोकने को भी तैयार था—सूर्य की गति भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने रोक दी थी और इसने उस समय, सब देवताओं की वाणी का भी तिरस्कार किया था—किसी की भी बात न मानी थी। * उस अगस्त्य ने अपने उदराग्नि से वातापि दैत्य को भी जीर्ण कर दिया था—भस्म कर दिया था।

अगस्त्य की चरण-धूलि को देवता और दैत्य दोनों अपने मुकुटों के मकर-पत्रों के अगले हिस्से से चुम्बन किया करते थे—उसे देव और दानव दोनों प्रणाम किया करते थे। वह अगस्त्य, दक्षिण दिशा के मुख का तिलक है—दक्षिण दिशा में निवास करता है और उसने स्वर्ग से नहुष को एक हुंकार से ही गिरा दिया था। जिससे उसका प्रताप अब तक प्रकट है।

वह आश्रम, वृक्षों से सुशोभित था। उन वृक्षों के थाँवले, महामुनि अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा ने अपने हाथों से ही बाँधे थे और हाथरूपी दौनों के जल से उनको वर्धित किया था—अपने हाथों से जल देदे कर उनका पालन किया था। अतएव वे पुत्र के तुल्य थे। उस आश्रम के ढाक का दण्ड धारण किये हुवे, दृढ़दस्यु नामक अगस्त्य के पुत्र ने पवित्र कर रक्खा था। वह उसमें निवास करता था। वह, व्रत भी धारण किये हुवे था। अतएव वह प्रत्येक कुटी पर जाकर भिक्षा माँगा करता था। और पवित्र भस्म का त्रिपुण्ड्र रूपी आभूषण धारण किये रहता था। उस समय, उसके कुशा ही चीवर वस्त्र थे। और मूँज की तगड़ी से उसका मध्य भाग व्याप्त था—वह मूँज की तगड़ी पहिने हुवे था। और हाथ में हरे पत्तों का दौना लिये रहता था। हवन के लिये वह, बहुत सा इध्म (ईंधन) लाया करता था। अतएव उसके पिता ने उसका दूसरा नाम "इध्म-वाह" भी रख दिया था।

उस आश्रम की प्रत्येक दिशा में तोते जैसे हरे केलों के वृक्ष खड़े हुवे थे, अत एव उस आश्रम की भूमि श्यामल हो रही थी।

वह आश्रम, गोदावरी नदी से व्याप्त था—उस आश्रम के चारों तरफ़ गोदावरी भी बहती थी। वह गोदावरी, अगस्त्य से पान किये गये समुद्र के मार्ग को अनुगत हुयी जैसी मालूम होती थी। वह, धाराप्रवाह बाँधे हुवे थी॥

उसी आश्रम में महामुनि अगस्त्य की सेवा करते हुवे, सीता-सहित रामचन्द्र ने कुछ दिनों तक पञ्चवटी पर सुखपूर्वक निवास किया था। यह, वही रामचन्द्र थे कि जिन्होंने अपने पिता दशरथ की आज्ञा पालन करते हुवे राज्य परित्याग कर दिया था, और जिनके लिये लक्ष्मण ने एक पर्ण-शाला बनायी थी, एवं जिन्होंने रावण के शोभा-विलास का अन्त कर दिया था—रावण का मृत्यु भी उन्ही के हाथ से हुवा था।

उस आश्रम में, बहुत दिनों से ख़ाली होने पर भी जिन वृक्षों की टहनियों पर बहुत सुफ़ेद कबूतर पंक्ति बाँधे बैठे हैं, वे वृक्ष, अब भी तपस्वियों के अग्नि-होत्र से लगे हुवे निर्म्मल धुवेंवाले जैसे

* एक बार सुमेरु और विन्ध्याचल में कुछ झगड़ा होगया। दोनों बढ़ने लगे। विन्ध्याचल हद से ज़्यादा बढ़ गया। यहाँ तक कि सूर्य का भी मार्ग बन्द होगया और सारे संसार में अन्धेरा छागया। प्रजा को दुखी देख, देवताओं ने प्रार्थना की, पर विन्ध्याचल ने अहंकार में मग्न हो किसी की न मानी। तब देवताओं ने विचारा कि अब अगस्त्यजी के पास चलना चाहिए। यह उन का शिष्य है। उनकी अवश्य मानेगा। देवता, अगस्त्य जी के निकट आये, और कहा—महाराज! इस अन्धकार को दूर कीजिए। यह आपके शिष्य ही की करतूत है। अगस्त्यजी विन्ध्याचल के पास गये। उनको आता देख विन्ध्याचल, अगस्त्यजी के चरणों में पड़ गया। अगस्त्यजी को भी यह अच्छा अवसर मिल गया। कहने लगे—तू हमारा शिष्य है, हमारी आज्ञा का पालन करना। जब तक हम लौट कर न आवें, आगे न बढ़ना। यह सच्छिष्य था। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य समझ कर इसने ऐसा ही किया। और अगस्त्यजी दक्षिण दिशा को चले गये, वहीं अपना निवासस्थान बना लिया और अब तक नहीं लौटे। लं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी देते हैं। बात यह है कि उस आश्रम के वृक्षों पर सुफ़ेद सुफ़ेद कबूतर बैठे रहते हैं। तपस्वी लोग घृत से होम करते थे। अतः उस होम का धुवाँ भी सुफ़ेद होता था, और इकट्ठा होकर वह वृक्षों पर भी जाता था, इसलिये, वह धुवाँ कबूतर जैसा दीखने लगता था। अब कबूतर ही बैठे रहते हैं।

जहाँ पर पूजा के लिये, फूल तोड़ते हुवे सीता के हाथ से निकली हुवी ही लालिमा लता-पत्तों में व्याप्त हुवी जैसी स्फुरती है—विकास को प्राप्त हुवी जैसी प्रतीत होती है। बात यह है कि जिस समय, रामचन्द्र पञ्चवटी पर निवास करते थे, उस समय सीताजी पूजा के लिये, फूल तोड़कर लाया करती थीं। सीताजी के हाथों में ऐसी विकट लालिमा थी कि वही फूल तोड़ते समय, टहनियों तक में प्रवेश कर गयी, और वही लालिमा मानो, वहाँ की टहनी और पत्तों में अब तक चमकती है।

जहाँ आश्रम के निकट के बड़े बड़े तडागों का जल, अगस्त्यमुनि से पान कर के निकाला गया, सारे समुद्र का जल विभक्त हुवा जैसा दिखायी देता है। बात यह है कि वहाँ बड़े बड़े तडाग हैं। अगस्त्यजी भी वहीं निवास करते थे। उन्होंने सारे समुद्र को पी लिया था और बाद को निकाला भी था। इसलिये वह जल, पास के ही तडागों में विभक्त हुवा सा वहाँ मालूम होता है।

जहाँ, अब तक नये नये पत्तोंवाला वन, शोभा को प्राप्त होता है। उस वन की जड़ें रामचन्द्र के तीक्ष्ण बाणों के मारने से मृत्यु को प्राप्त हुवे राक्षस-समुदाय के अतिरुधिर से सिञ्चित थीं। अतएव वह वन उसी की ललाई को लिये हुवे, निकले हुवे टेसू के फूलोंवाला जैसा मालूम होता है। बात यह है कि रामचन्द्र ने वहाँ रहते हुवे बहुत से राक्षसों को मार कर रुधिर का झरना सा बना दिया था। उसका रुधिररूपी जल पलाश के वृक्षों की जड़ों में लगने लगा। वह जल लाल लाल था। उसके लगने से ही लाल लाल फूलों को पैदा करनेवाला पलाश जैसा मालूम होता है। और अब भी जहाँ पर, वर्षा ऋतु में, नये नये मेघों का गम्भीर शब्द सुन कर भगवान् रामचन्द्र का त्रिलोकी के विवरों में प्रवेश होनेवाले, धनुष के शब्द को स्मरण करते हुवे, बूढ़े हिरन, घास के ग्रासों को नहीं ग्रहण करते—घास का भक्षण करना छोड़ देते हैं। उस समय, दशों दिशाओं को शून्य देख कर, इन हिरनों के नेत्र, लबालब आँसुवों के जल से व्याकुल होजाते हैं—नेत्रों में जल भर कर रुदन करने लगते हैं। यतः वे हिरन सीता से पाले हुवे हैं—उन हिरनों की सीता ने रक्षा की थी। अतएव उनके सींग भी वृद्धावस्था से जीर्ण होगये हैं—हिलने लगे हैं। बात यह है कि वहाँ पर रामचन्द्र के समय के वे हिरन निवास करते हैं, जिन्हें सीता ने बड़े प्रेम से पाला था। वे वर्षा ऋतु में बादलों की गर्जना सुन कर, सहसा यह अनुमान कर लेते हैं कि यह शब्द महाराज के बाण का है। और फिर जब चारों तरफ़ को देखते हैं तो रामचन्द्र की मूर्त्ति का दर्शन नहीं पाते। उस समय अपनी आपत्तियों का स्मरण करते हुवे, वे मुँह की घास को भी छोड़ देते हैं और रामचन्द्र की दयालुता पर ध्यान देते हुवे, बड़ा रुदन करते हैं। या यूँ कहना चाहिये कि रामचन्द्र के समय के बूढ़े हिरन, वर्षा ऋतु में मेघों के गम्भीर-नाद को सुनकर, रामचन्द्र के धनुष की याद करते हैं। और किसी ओर भी अपने जातीय हिरनों को न देख कर बड़ा रुदन करते हैं कि यदि रामचन्द्र यहाँ होते तो हमारे तरुण हिरणों का बद्धक राक्षस लोग कुलान्त न करते।

जहाँ पर नित्यप्रति, मृगया से हत हुवे हिरनों से बचे हुवे हिरनों द्वारा प्रोत्साहित के समान, सोने के मृग ने रामचन्द्र को हर लिया था—दूर ले गया था। इसी हिरन ने सीता से रामचन्द्र का वियोग कराया था—सीता-हरण में यही मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हुवा था। जहाँ पर, सीता-विरह के दुःख से दुखित हुवे, रावण की मृत्यु के सूचक, कबन्ध नामक राक्षस से गृहीत हुवे—घिरे हुवे, और साथ साथ घूमते हुवे, राम और लक्ष्मण ने चन्द्र और सूर्य के समान त्रिलोकी को बड़ा भय किया था—बड़ा विचलित कर दिया था। बात यह है कि रामचन्द्र को वन में घूमते हुवे कबन्ध ने अपनी लम्बी लम्बी भुजाओं में दबा लिया था। उन्हें देखकर संसार को, चन्द्रमा और सूर्य को राहु के ग्रहण करने से जो क्लेश होता है वही क्लेश हुवा।

जहाँ, रामचन्द्र के बाणों से गिरी हुवी योजन बाहु दैत्य की बड़ी मोटी ताज़ी भुजा, ऋषियों को, अगस्ति ऋषि के कोप से प्राप्त हुवे नहुष राजा के अजगर देह की शंका करती थी—ऋषियों को सन्देह दिलाती थी। बात यह है कि वहाँ रामचन्द्र ने योजनबाहु को मारा था, उसकी भुजा को काट डाला था। भुजा, काली और बड़ी लम्बी थी, तथा बहुत मोटी थी। और उसी आश्रम की पृथिवी पर पड़ी थी। ऋषियों को उसे देख कर नहुष राजा के अजगर शरीर का भान होता था। जहाँ पर सीता, रामचन्द्र से, वियोग दूर करने के लिये, लिखी गयी थीं—रामचन्द्र ने सीता को अपना वियोग दूर करने के लिये पृथिवी पर लिख लिया था। वह सीता, राम का निवास-स्थान देखने में उत्कण्ठित हुयी, दुबारा पृथ्वी से उछलती हुवी—निकलती हुवी के समान अब भी वन-चरों से देखी जाती है—उस सीता को वन-चर अब भी देखते हैं। बात यह है कि सीता के चुरा ले जाने पर रामचन्द्र ने कुटी के अन्दर पृथ्वी पर अपने सन्तोषार्थ एक सीता की मूर्त्ति लिख ली थी—उसे पृथ्वी पर चित्रित कर लिया था। सीता का जन्म पृथ्वी से ही हुआ था उन्हें भी रामचन्द्र से बड़ा प्रेम था—उनके दर्शनों में बड़ी उत्कण्ठा थी, अतएव वे, पृथ्वी से पुनर्जन्म के समान दीखने लगी थीं। उस मूर्ति को उस आश्रम में वन-चर लोग अब भी देखते हैं।

जिसका पूर्व वृत्तान्त स्पष्टतया [illegible] था। उसी अगस्त्य-आश्रम के पास में, समुद्र पान करने से कुपित, वरुण से प्रेरित हुवे, [illegible] ने, अगस्त्य की मत्सरता से, अगस्त्य के आश्र[illegible] का निकट-वर्ती दूसरा समुद्र जैसा एक तड़ा[illegible] बनाया था। पम्पा उसका नाम है। वह तड़ा[illegible] प्रलय में नष्ट हुवे आठों दिशाओं के विभागों [illegible] सन्धियों के बाँधनेवाले—मर्यादावाले पृथ्वी [illegible] गिरे हुवे आकाश के समान मालूम होता है। [illegible] जल से भरा हुवा, शूकरावतार से, बाहर [illegible] किया गया पृथ्वी मण्डल का स्थान जैसा प्रती[illegible] होता है।

उस तड़ाग का जल, निरन्तर, स्नान का[illegible] हुवी, भीलों की उन्मत्त स्त्रियों के कुचा[illegible] कलशों से विलोडन किया जाता है—उ[illegible] किरातों की कान्ता ख़ूब मल मल कर स्नान कि[illegible] करती हैं।

उस तड़ाग में सुफ़ेद कमल, साधारण कम[illegible] और कुमुद खिले रहते हैं। उन खिले हुवे कम[illegible] के रस-द्रव्य से चन्द्रिका (मोर के पुंख का च[illegible] सी बँधी रहती है और उस तड़ाग के सु[illegible] कमल, भ्रमर-समुदाय से अन्धकारित रहते[illegible] बात यह है कि उनकी सुगन्धि से भौंरे [illegible] टूट टूट कर पड़ते हैं—इतने अधिक भौंरे [illegible] चारों तरफ़ हो जाते हैं कि उनका दीखना [illegible] बन्द हो जाता है। अतएव वे कमल अन्धका[illegible] रहते हैं।

उस तड़ाग पर समद-सारस भी [illegible] मनोहर शब्द करते रहते हैं और कमलों का [illegible] पान करने से मत्त हुवी हंसी भी अपना कोला[illegible] करती रहती हैं। उस तड़ाग पर हज़ारों [illegible] के पत्ते भी रहते हैं। उनके चलने से तड़ा[illegible] तरङ्ग-माला, वाचाल और चलायमान रहती [illegible] पत्तियों से तरङ्गें हर समय चलती रहतीं हैं। [illegible] वायु से उठे हुवे तरङ्गरूपी शिखरों के फ़[illegible] से दुर्दिन छाया रहता है। बात यह है कि [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झकोरों से तरङ्गों द्वारा जल के कण चारों तरफ़ व्याप्त रहते हैं। अतएव वहाँ दुर्दिन छाया रहता है।

निःसन्देह आयीं हुवीं—वेधड़क उसके भीतर गयीं हुवीं, जल-क्रीड़ा में प्रेम करनेवालीं, वनदेवता, स्नान के समय, अपने केश-पाश के फूलों से उस तड़ाग को सुगन्धित किया करती हैं।

वह तडाग. एक हिस्से में प्राप्त हुवे—एक तरफ़ जल भरने को आये हुवे, मुनिजनों से कमण्डलु भरते हुवे सुन्दर शब्द द्वारा बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। बात यह है कि उस सरोवर में मुनिजन, कमण्डलु भरने आया करते हैं। कमण्डलु भरते हुवे, कमण्डलु और जल की रगड़ से एक बड़ा सुन्दर शब्द होता है। उस समय वह तड़ाग बड़ा अच्छा मालूम होता है।

वह तडाग, कलहंसों से सेवित है—बड़े अच्छे अच्छे हंस भी वहाँ रहते हैं। वे हंस, खिले हुवे कुवलयों के बीच में विचरते रहते हैं। इसलिये वे सवर्णता से—दोनों का एकसा वर्ण होने से, शब्द ही से पहिचाने जाते हैं। बात यह है कि उस सरोवर में सुफ़ेद कमलों पर हंस घूमते रहते हैं। दोनों का बिलकुल एक ही रंग होता है, इसलिये जब तक हंस शब्द नहीं करते तब तक वहाँ यह पता ही नहीं चलता कि हंस कौन से हैं।

वह तडाग, स्नान के लिये आयीं हुवीं पुलिन्दराज* की स्त्रियों के स्तन चन्दन की धूली से और भी श्वेत रहता है। और उस तडाग के किनारे पर मालती के धूलि-समुदाय से, पुलिन बँध जाता है—उसके किनारे पर बहुत सी मालती की धूली इकट्ठी हो जाती है। उस तडाग के किनारे का जल, निकट के आश्रमों से आये हुवे तपस्वियों से, प्रक्षालन किये गये गीले वल्कलों से, कसैला और पाटल होजाता है। बात यह है कि उस सरोवर के पास बहुत से तपस्वी रहते हैं। वल्कलों ही के वे वस्त्र पहिनते हैं। जिस समय, वे उन्हें धोते हैं, उस समय उनमें से कसैला और कुछ लाल रंग निकलता है। अतएव, किनारे का जल, कुछ सुफ़ेद कुछ लाल और कसैला हो जाता है।

वह तडाग, किनारे के वृक्षों की हवा से बीजित रहता है—उसे किनारे के वृक्ष हवा करते रहते हैं। और उस तडाग का किनारा वन-पंक्तियों से बँधा हुआ है—उसके किनारे पर बड़े बड़े अच्छे वन खड़े हुवे हैं। वे वन पंक्तियाँ घिनकी घिनकी तमाल-पंक्ति से अन्धकार जैसी मालूम होती हैं। उन वनों की लतायें, बाली से निकाले हुवे, ऋष्यमूक-पर्वत पर निवास करते हुवे, और प्रतिदिन उन वनों में घूमते हुवे सुग्रीव द्वारा फलों के टूटने पर हलकी हो गयीं हैं। बात यह है कि सुग्रीव, दुन्दुभि दैत्य से अपने भाई बाली को मरा हुवा समझ कर अपने आप स्वयं राज्य करने लगा था। इधर जब बाली, दैत्य को मार कर किष्किन्धा पुरी में आया तब सुग्रीव को राज्य करता हुवा देख कर भभक पड़ा और तुरन्त ही उसको राज्य से निकाल दिया। सुग्रीव, ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर रहने लगा, वहाँ रहते हुवे, पम्पा तडाग के समीपस्थ वृक्षों पर जो फल आते थे तोड़ लाता था। अतएव वहाँ के वृक्षों की टहनियाँ हलकी रहती थीं।

उन वनों के पुष्प, वहाँ के निवासी तपस्वियों की पूजा के लिये उपयुक्त हैं—वहाँ के फूलों को तपस्वी, अपनी पूजा के काम में लाया करते हैं। और उन वन-पंक्तियों के किसलय, पम्पा सरोवर में उछलते हुवे, नाके, मछली आदि जल-पक्षियों के पक्षपुटों से गिरती हुवी जल की बूँदों के सिञ्चन से सुकुमार हैं—कोमल हैं। और उन वनों के लतामण्डपों के नीचे बहुत से मोर अपना नृत्य किया करते हैं। वे वन-पंक्तियाँ अनेकों तरह के फूलों की सुगन्धि प्राप्त किये हुवे हैं। और वे, वन-देवताओं से अपने श्वास ही से बसायी गयीं

* भीलों का राजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसी मालूम होती हैं, या यूँ कहना चाहिये कि उनको वनदेवताओं ने अपने प्राणों से ही बसाया है।

उस सरोवर का जल, बहुत सी कींच से मलिन हुवे, वन के हाथियों से पान किया जाता है—बहुत से हाथी, उसमें जल पीने के लिये आया करते हैं। उस समय, वे हाथी, दूसरे समुद्र की शंका कराते हुवे, जल लेने के लिये आये हुवे, मेघ जैसे मालूम होते हैं। वह तडाग गहरा भी इतना है कि अगाध है—उसको थाह नहीं। लम्बा चौड़ा भी इतना है कि उसके पार के किनारे का पता नहीं लगता! यही नहीं, वह अपने जोड़ का दूसरा सरोवर नहीं रखता। सारे के सारे जलों का वह, निधान है। वन में विचरनेवाले या पथिक जन, उस सरोवर में चकवी चकवों के जोड़ों को देखा करते हैं। उन चकवी चकवों के पक्ष-पुट, खिले हुवे कमल की कान्ति के समान श्यामायमान होते हैं। वे चकवी चकवे, अब भी वहाँ, परशुराम के मूर्त्तिमान शाप से गृहीत हुवे—पकड़े हुवे जैसे मालूम होते हैं।

ऐसे उस सरोवर के पश्चिमीय किनारे पर और रामचन्द्र के बाणों से जर्जरित हुवे ताड़ के वृक्षों के पास में बहुत पुराना एक सीमल का वृक्ष था। उस वृक्ष की जड़ को दिग्गज की सूँड जैसे एक पुराने बूढ़े अजगर साँप ने लपेट रक्खा था। अतएव वह वृक्ष, बड़े थाँवलेवाला मालूम होता था। और ऊँचे ऊँचे गुद्दों पर लटकी हुवीं, वायु से कपायी गयीं—हवा से उड़ायी गयीं—साँपों की काँचली से दुपट्टा धारण किये हुवे जैसा मालूम होता था।

वह वृक्ष, दिङ्मण्डल के विस्तार को मानो, ग्रहण किये हुवे, सारे जगत में फैले हुवे, अपने शाखा-समुदाय से, प्रलय-काल में ताण्डव के लिये, हज़ारों भुजाओं को फैलाये हुवे महादेव की भी विडम्बना करने को तैयार था। और वह, पुराना होने के कारण गिरने के भय से जैसा, वायु कन्धे में लगा हुवा था—हवा, उसे अपने बड़े से हिलाती थी।

वह वृक्ष, सारे शरीर में व्याप्त होने वाले बहुत दूर तक ऊँची ऊँची लताओं से परिवेष्टित था—उसमें लतायें लिपटी हुवी थीं जो जीर्णता नसें जैसी दीखती थीं और उस वृक्ष का शरीर बुढ़ापे के तिलक बिन्दु जैसे, काँटों से व्याप्त था बात यह है कि वृद्धावस्था में मनुष्य के शरीर काली काली बूँदें हो जाया करती हैं। उस वृ में भी काले काले काँटे थे। शाखाओं के भीतर छिपे बैठे हुवे पक्षियों के समान, मेघों से भी वृक्ष की शिखा अदृष्ट थीं—बादल भी उस ऊँचाई को नहीं जान सकते थे। उसके पत्र-समुदाय में ही बेचारे छिप के रह जाते थे। क्यों मेघ, समुद्र का सारा जलपान किये हुवे आकाश से आये हुवे हैं और क्षणमात्र, जल भार से अलस हैं—सहज सहज चलते हैं। तो उसके पत्तों को अपने जल से गीला करते रहते हैं। बात यह है कि मेघ, आकाश से जल भरने लिये, समुद्र पर आते हैं, वहाँ से वे इतना जल भर लेते हैं कि जिसके बोझ से, वे उस वृक्ष चोटी तक नहीं पहुँच सकते—उस वृक्ष के बड़ा बड़ा होने के कारण बीच ही में रह जाते हैं और उसके पत्तों पर वर्षा करते रहते हैं। उसकी शिखर को मेघ भी नहीं देख सकते।

वह वृक्ष, बहुत ही ऊँचा था, अतः नन्दन की लक्ष्मी को देखने के लिये सप्रयत्न हो, ऐसे प्रतीत होता था। बात यह है कि नन्दन इन्द्र का वन है और स्वर्ग में है। वह वृक्ष, अपने ऊँचाई से स्वर्ग तक चला गया था अतः नन्दन को देखना चाहता था; और उस वृक्ष की शिखा शाखायें (चोटी की टहनियाँ) उसके पास ही रहनेवाले, और ऊपर चलनेवाले अतः आकाश में चलने के दुःख से दुःखित हुवे सूर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घोड़ों के ओष्ठ-प्रान्त (जबाड़ी) से गिरे हुवे झागों से सुफ़ेद हो जाती थीं। वे झाग उस समय, रुई के गालों की भ्रान्ति कराते थे। वह वृक्ष, हाथियों द्वारा कपोलों के खुजाने से, उसी में लगे हुवे मत्त भ्रमर-समुदायवाली जड़ से युक्त था—उसके चारों तरफ़ भौंरे भी बैठे रहते थे। उस समय, वह जड़, लोहे की ज़ञ्जीर के बन्धन से स्थिर जैसी मालूम होती थी। अतएव कल्प-पर्य्यन्त ठहरनेवाली थी। बात यह है कि वन के मतवाले हाथी, उस वृक्ष से अपने गण्डस्थलों को रगड़ा करते थे। उन हाथियों के मद-गन्ध से भौंरे भी उनके साथ ही रहते थे। उस वृक्ष का इतना उत्कट गन्ध था कि भौंरे हाथियों को छोड़ कर उस वृक्ष की जड़ में पंक्ति बाँध कर बैठ जाते थे। उस समय, वह जड़, लोहे की ज़ञ्जीर से बँधी हुवी जैसी मालूम होने लगती थी। और वह वृक्ष, खखोडरों में प्रविष्ट हुवे, चलते हुवे, भौंरों से सजीव जैसा मालूम होता था।

वह वृक्ष, दुर्योधन से बराबरी करता था। दुर्योधन का शकुनि (अपने मामा) में पक्षपात पाया जाता था। उस वृक्ष पर शकुनि (पक्षियों) के पक्ष (पंखों) का पात (गिरना) देखा जाता था—उस वृक्ष पर पक्षियों के पंख गिरा करते थे। और वह वृक्ष, कृष्ण जैसा भी था। कृष्ण, वन-माला से उपगूढ (आलिङ्गित) थे—वन की माला पहिने हुवे थे। वह वृक्ष, वन-माला (वन की पंक्तियों) से उपगूढ (आच्छादित) था—ढका हुवा था। उस वृक्ष के पास ही में बहुत से वन थे।

वह वृक्ष, नवीन-मेघ समुदाय के समान था—बहुत से बादलों के तुल्य था। मेघ, आकाश में ऊँचाई दिखाये हुवे होते हैं—मेघ, आकाश में ऊँचे ऊँचे दीखते हैं। वह भी आकाश में अपनी ऊँचाई दिखाये हुवे था।

वह वृक्ष, वन-देवताओं को सारा संसार देखने के लिये प्रासाद था अर्थात् वन-देवताओं की स्त्रियाँ, उस वृक्ष पर बैठ कर सारी की सारी दुनिया की सैर कर लिया करती थीं। और वह वृक्ष, दण्डक-वन का स्वामी जैसा था—उस वन में उससे बड़ा कोई और दूसरा वृक्ष ही न था। वनस्पतियों का वह नायक था—फूलों के बिना फलनेवाले वृक्षों में सबका अफ़सर था—अपनी जाति में अग्रणी था और विन्ध्याचल का मित्र जैसा था। अपने शाखारूपी हाथों से विन्ध्याटवी को, मानो, आलिङ्गन कर—चिपट कर स्थित था—वह सारी अटवी को अपनी शाखाओं से व्याप्त किये हुवे था।

उस वृक्ष पर बहुत से तोते और अन्य पक्षी रहा करते थे। कुछ पक्षी और तोते उसकी टहनियों के अगले हिस्से में और कुछ खखोडरों के भीतर एवं कितने ही पत्तों के बीच में रहा करते थे। बहुत से गुद्दों के जोड़ों में और बहुत से पुराने बक्कलों के भटों में रहा करते थे। उन तोतों और पक्षियों ने उस वृक्ष का बड़ा विस्तार होने के कारण ही उसमें निःशङ्क हज़ारों घोंसले बनाये थे। बड़े होने के कारण वृक्ष पर चढ़ना कठिन था। अतएव उन पक्षियों और तोतों के भय दूर हो गये थे। वे तोते और पक्ष, दूर दूर के देशों से आये हुवे थे—दूर दूर देशों से आकर रहने लगे थे। उन पक्षियों से पतझड़ होने पर छीदे छीदे पत्तोंवाली भी वनस्पति घिनके घिनके पत्तों से श्यामल जैसी दीखती थी। क्योंकि वे पक्षी, रात दिन वहीं रहते थे—उसी वृक्ष पर बैठे रहते थे। बात यह है कि पतझड़ होने पर वनस्पति ख़ाली सी दीखने लगती है। परंच उस वृक्ष पर असंख्य पक्षी रहा करते थे। वे भी पत्ते जैसे ही दीखते थे, अतएव पतझड़ होने पर भी वह, वृक्ष बिना ही पतझड़वाला जैसा दीखता था।

वे पक्षी, अपने घोंसलों में रात को बिता कर और प्रति दिन उठ कर चुग्गा ढूँढ़ने के लिये, जिस समय आकाश में पंक्ति बाँध कर उड़ते थे, उस समय वे मानो, मद से मनोज्ञ, बलदेवजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज के हल की कोन द्वारा खींचने से, बिखरे हुवे सोतोंवाली यमुना को दिखाते थे – वे, यमुना के टुकड़े जैसे दीखते थे। बात यह है कि जिस समय वे पक्षी, घोंसलों से उड उड़ कर आकाश में अपनी अपनी क़तारें बाँधते थे उस समय वे काले काले दीखते थे और उनकी पंक्तियाँ बहुत सी होती थीं। यमुना से निकले हुवे सोत भी काले ही होते हैं। इसलिये बलदेवजी के हल से खींचने पर यमुना के बहुत से सोतों के समान दीखने लगते थे।

वे पक्षी, ऐरावत हाथी से उखाड़ा गयी, नीचे गिरती हुवी आकाश-गंगा की कमलिनी का सन्देह कराते थे। बात यह है कि कमलिनी काली होती है। पक्षी भी बहुत ऊँचे पर पंक्ति बांधे हुवे, कमलिनी जैसे दीखने लगते हैं। इसलिये, उस समय नीचे के मनुष्यों को यह सन्देह हो जाता था कि कहीं कमलिनी के शत्रु ऐरावत हाथी ने आकाश-गंगा से कमलिनी को तोड़ कर तो नहीं डाल दिया! जो सामने दीखती हैं। वे पक्षी, आकाश को भी सूर्य के रथ के घोड़ों की कान्ति से लिप्त हुवा – नीला हुवा जैसा दिखाते थे। बात यह है कि उन पक्षियों से आकाश में यह भान होने लगता था कि सूर्य के घोड़े हरे हरे होते हैं। उन की कान्ति से यह आकाश नीला तो नहीं दीखता और वे पक्षी, इधर उधर चलनेवाली मरकत-मणियों की स्थली का भी तिरस्कार करते थे – अपनी नीलिमा से नील मणियों का भी तिरस्कार करते थे।

वे, आकाशरूपी तडाग में सिरवाल के पत्र-समुदाय को मानो, प्रसारण कर रहे हों, ऐसे दीखते थे। बात यह है कि सिरवाल के पत्ते भी बहुत नीले होते हैं। ये तडागों में होते हैं। वे पक्षी भी ऐसे ही दीखने लगते थे।

वे पक्षी, आकाश में फैले हुवे अपने पंखों से, सूर्यनारायण की तीखी तीखी किरणों से खेदित हुवे, दिशाओं के मुखों को मानो, पंखा कर रहे थे, उन्हें हवा कर रहे थे। उनके पंख केले के पत्ते के समान नीले थे। और वे पक्षी, आकाश में फैले हुवी घासों की सरणी को मानो, रचना कर रहे थे – वे नई दूब की मैंड जैसे प्रतीत होते थे। आकाश को इन्द्र के धनुषसहित करते हुवे विराजते थे – वे, आकाश में इन्द्र के धनुष की भ्रान्ति कराते थे। वे पक्षी, चुग्गा किये हुवे, लौट कर घोंसलों में बैठे हुवे अपने बच्चों के लिये, अनेक प्रकार के फलों के रस, और धान की बलुरियों के किनकों को, अपनी चोंच से दे दे कर रात्रि को बिताते थे। उनकी चोंचें, मृत्यु को प्राप्त हुवे उसी सिंह से मारे गये, हिरन के ख़ून से लाल लाल हुवे, सिंह के नाख़ून जैसी पाटल थीं। उस समय, उन्होंने अपने बच्चों के असाधारण और गुरु, फिर लौट कर न आनेवाले प्रेम से, और सब वस्तुओं के प्रेम का तिरस्कार कर रक्खा था। वे पक्षी, चुग्गा खिला कर उसी वृक्ष पर अपनी गोद में अपने बच्चों को रख लिया करते थे।

एक पुरानी खखोडर में स्त्री (मेरी माता) सहित रहते हुवे, पिता के यहाँ बड़े दुःखों से प्रारब्धवश मैं अकेला ही पैदा हुवा। मेरे जन्म काल के समय मेरे पिता बूढ़े थे। और मेरे पैदा होते समय, मेरी माता, बड़ी भारी प्रसव-व्यथा से दुखी हुवी परलोक को सिधार गयी थी – मेरे जन्म-समय में ही मेरी माता का मृत्यु हो गया था।

अपनी प्यारी स्त्री के मृत्यु-दुःख से दुःखित हुवे भी मेरे पिता, स्पष्ट बढ़े हुवे – अच्छी तरह वृद्धिगत हुवे शोक को पुत्र के स्नेह से – मेरी प्रीति से भीतर ही रोक कर – मन ही मन में रो कर एकाकी, मेरे पालनपोषण में लगे रहते थे।

वे बूढ़े तो थे ही अतएव कुशा और चीर और थोड़े बचे हुवे पुराने पंखों से जर्जर हुवी, घोंसले से गिरी हुवी अतएव शिथिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भी शक्ति को नष्ट किये हुवे, पक्ष-सन्तति को—पंखों को प्राप्त किये हुवे, दूसरों के घोंसलों से गिरी हुवी धान की बल्लरियों में से चावलों की किनकी लेकर और वृक्षों की जड़ों में गिरे हुवे, दूसरे तोतों से कुतरे गये, फलों के टुकड़ों को इकट्ठा करके मुझे दिया करते थे।

वे चलने की ताक़त न रखते थे और कम्पा भी प्राप्त किये हुवे थे—काँपते भी थे। अतएव वे शरीर में लगी हुवी दुख-दायिनी वृद्धावस्था को कंपाते हुवे से प्रतीत होते थे। उनकी चोंच भी कोमल निर्गुण्डी के फूल की डण्डी जैसी पीली थी और उस चोंच की अगली रेखा, धानों को बालें काटने से चिकनी और घिसी हुवी थी। उस चोंच की अग्र-कोटी (सबसे अगला नेज़ी का हिस्सा) चिरा हुवा था।

प्रतिदिन मेरे खाने से बचा हुवा, मेरे पिता आप खाया करते थे।

(असमाप्त)

परिवर्तन ।

[१]

विधाता की बातें, मनुज कब हैं जान सकते ?
विना भाग्यों के वे, उचित प्रभुता पा न सकते ॥
हमारे कार्यों के, सब फल उसी विश्वपति से ।
मिलेंगे पावेगा, वह नर चहेंगे प्रभु जिसे ॥

[२]

जहाँ वेदों के थे, प्रति दिन हुआ पाठ करते ।
अनेकों यज्ञों के, अमल फल थे पाप हरते ॥
वहाँ के लोगों में, निविड़तम अज्ञान घन हैं ।
विषैली बातों में, सब लग गये मग्नमन हैं ॥

[३]

तपस्याओं में थे, निरत धरणी के वलय में ।
जहाँ के वे प्राणी, अमर रहते थे प्रलय में ॥
वहाँ रोगों का है, अटल अब साम्राज्य रहता ।
घने दुःखों का है, हृदय-तल से स्रोत बहता ॥

[४]

जहाँ के दानी भी, विदित बलि या कर्ण-सम थे ।
नहीं छोड़ी श्रद्धा, सुकृत-सुख से पूर्णतम थे ॥
वहीं के हा प्राणी, विकल अब भिक्षाटन करें ।
पड़े कष्टों में हैं, उदर अपने दुर्गत भरें ॥

[५]

भरा अन्नों से भी, अह ! यह कभी भारत रहा ।
घृतों का क्षीरों का, उमड़ करके सागर बहा ॥
वहाँ गो-माता की, विकट अब है दुर्गति-दशा ।
करायेगी क्या क्या ? कुटिल कलि की कर्कश कशा ॥

[६]

वनों के वासी थे, ऋषि मुनि रहे आश्रम बना ।
जहाँ विश्वात्मा से, परिचय किया साधन घना ॥
वहाँ रेलों के हैं, धक धक किये अञ्जन चले ।
उसी की ज्वाला से, गिरि कट गये जङ्गल जले ॥

[७]

जहाँ भीनी भीनी, सुरभि कुसुमों की मन हरे ।
चले सीरी सीरी, पवन-सुख में चित्त विहरे ॥
फलों के मूलों के, सहित मिलतीं निर्झर-नदी ।
नहीं ऐसी कोई, अब रह गई सौख्यद-पदी ॥

[८]

जहाँ के धर्मात्मा, अटल अपने मार्ग पर थे ।
प्रतिष्ठा पाते थे, शुभ-गुण-गणागार नर थे ॥
वहाँ दम्भी लोभी, अबुध अभिमानी रह गये ।
हमारे कर्मों के, कटुफल निराले सब नये ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९]

जिन्होंने विद्या की, अनुपम छटा से उदित हो।
सिखाया देशों को, शुभपथ दिखाया मुदित हो॥
उन्हींको शिष्यों से, अब उदय-शिक्षा मिल रही।
बड़े रोये गाये, अहह! सुखभिक्षा मिल रही॥

[१०]

जहाँ के छालों को, पहन, तप के थे फल लिये।
जगाया आत्मा को, सकल जनता स्तम्भित किये॥
वहीं "कोटेड् पैन्टेड्", रुचिर शिरपै "हैट" अब हैं।
सजे "कालर्टाई", चुरुट चशमा के विभव हैं॥

[११]

जहाँ के वीरों की, विकट धनु टङ्कार-घटना।
सुनाई देती थी, प्रलय-घन का सा गरजना॥
वहाँ के लोगों को, अब कठिन है मार्ग चलना।
हुये ढाँचे ढीले, पद पद उन्हें है सँभलना॥

[१२]

प्रतिज्ञा के पूरे, नृप जन जहाँ राम-सम थे।
पिता पुत्रप्रेमी, दशरथ सरीखे न कम थे॥
पिता-पुत्रों में हैं, अब सब पृथग्भाव कितने।
बढ़े स्वार्थों से हैं, स्वहित-सुख के चाव कितने॥

[१३]

जहाँ गोभक्तों के, मुकुटमणि श्रीकृष्ण वर थे।
रहे गीता गाते, प्रबल वह योगीन्द्र नर थे॥
उसी भूमी में हा!, मनुज व्यभिचारी उपजते।
भुला के गीता के, नियम तजते, भोग भजते॥

[१४]

छटा सी छाई थी, अखिल सुखदा व्यास-कविता।
प्रतापी कैसा था, प्रखर-तर साहित्य-सविता॥
समाई माया से, कविजन-मनों में मलिनता।
बड़ी प्यारी मानी, रतिमदन की काम्य-कविता॥

[१५]

वृथा भेदों से हैं, अब मन सबों के फट गये।
पुरानी श्रद्धायें, विभव, बल, सारे घट गये।
लुभाई छाई थी, अखिल प्रभुता उन्नति रही।
प्रभो! विश्वस्वामिन्! अब वह कहाँ भारतमही।

—महेश्वरप्रसाद शास्त्री

दमयन्ती और हंस

[२]

हंस, फिर उसी प्रकार श्लेषोक्ति को सुन कर कहने लगा—

दमयन्ती! क्या तुम अभी तक यही समझे जाती हो कि "राजा के साथ विवाह करने की इच्छा" और "नल को मेरा मन चाहता है" तुम्हारी इन दोनों श्लेषोक्तियों को मैं नहीं समझा। तुम्हारा यह प्रश्न हो सकता है कि "तुम यदि समझ ही गये हो तो फिर क्यों बेशरमी के साथ मुझसे साफ़ साफ़ कहलवाते हो?" सुनो! इसका कारण यह है—

तुम अभी बाला हो, अतः मैं तुम्हारी चञ्चलता को विचार कर तुम्हारे अभिप्राय को ठीक ठीक नहीं समझ सकता। मैं क्या, कामदेव का निशाना भी चञ्चल प्रकृति-बालाओं के हृदय के विषय में चूक जाता है। फिर भला बतलाओ तो सही ऐसी अनिश्चित बात को मैं, इतने बड़े राजा के सामने कैसे कह सकता हूँ। अच्छा! यदि मैं इसी तरह—विना निश्चय किये ही, नल से कह दिया कि "तुम्हें दमयन्ती के साथ विवाह कर लेना चाहिये"। और इधर तुमने पिता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा से या अपनी ही इच्छा से और किसी के साथ विवाह कर लिया तो मेरा तो, ज़रा भी उसे विश्वास न रहेगा। वह यह समझ लेगा कि यह झूँटा है। तुम्हें स्वयं भी मुझे ऐसे सन्दिग्ध कार्य में नियुक्त न करना चाहिये। दमयन्ती! यह ऐसा वैसा मामला नहीं है, यह विवाह का मामला है। हाँ! इससे पृथक् जो भी और जैसे भी तुम कहो, मैं करने के लिये तैयार हूँ।

यह सुन कर दमयन्ती यूँ कहने लगी—

हंस! "मैं पिताजी की आज्ञा से, या अपनी इच्छा से किसी दूसरे के साथ विवाह न कर लूँ" इस शंका की यदि वेद की भाँति, तुम्हारे हृदय में कल्पना ही हुवी है तो निशा का भी निशाकर से अतिरिक्त किसी दूसरे प्रेमी की शंका को, उस वेद में प्रणवरूप पहिले लगालो। कमलिनी, सूर्य के सिवा किसी दूसरे को नहीं चाहा करती। तुमने इस प्रसिद्ध बात को भी तो नहीं विचारा। और व्यर्थ ही अपने हृदय में मेरे विवाह-सम्बन्धिनी शंका की कल्पना करली! तुम्हारे इस साहस को देख कर मुझे आश्चर्य होता है।

दमयन्ती, यह कह कर फिर हँसते हुवे कहने लगी—

हाँ! तुमने यह ठीक ही कहा है कि सम्भवतः मैं अपनी इच्छा से कहीं अनल को (नल से अतिरिक्त किसी दूसरे को) ग्रहण न कर लूँ। वस्तुतः यह ठीक बात है। नल के न मिलने पर अवश्य मैं अनल (अग्नि) ही को ग्रहण कर लूँगी। यह तो रही मेरी इच्छा, अब मेरे पिता की इच्छा के विषय में भी सुनो—

शरीरावशेष मुझे यदि पिताजी, किसी दूसरे ही को देवें, तो वे प्रसन्नतापूर्वक मुझे दे सकते हैं। उन्हें यह अधिकार है। वे इस शरीर के स्वामी हैं। इसका जो चाहें, कर सकते हैं। शरीर का भले ही कोई दूसरा स्वामी हो जाय, पर प्राण-नाथ दूसरा नहीं हो सकता। मेरा प्राण-नाथ तो एक मात्र नल ही है। यह ठीक ही समझो कि मुझे नल के सिवा, चिन्तामणि की भी इच्छा नहीं! नल को मैंने अभी तुम्हारे मुख से नहीं, पहिले भी कई बार बन्दीगणों के मुख से सुना है। क्या कहूँ! मुझे तो उन्माद से नल ही नल सब जगह दीखता है। और हर समय, उसी का ध्यान रहता है। इसलिये, अब उसकी प्राप्ति, या मेरे प्राणों का नाश, ये दोनों बातें तुम्हारे हाथ में हैं। जो जी चाहे, एक बात कर डालो।

तुम पहिले यह कह चुके हो कि "जिस बात को तुम्हारा जी चाहे, मैं उसे कर सकता हूँ" अतः तुम्हें अपनी उस प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये। और मेरे प्राणों का मेरे ही लिये दान देकर पुण्य-संचय करना चाहिये! हे आर्य्य! तुम्हें अब उस व्यर्थ सी शंका को (कि मैं कहीं दूसरे के साथ विवाह न करलूँ) दूर कर देना चाहिये। यह तो बतलाओ कि तुम अब चुप क्यों हो गये?

हंस! तुम्हें मेरी इस याचना का अतिक्रमण न करना चाहिये, और न ही इसमें कुछ "मीन-मेख" लगानी चाहिये। तुम जैसे कृपण को, जो मुझ मेरे प्राण (नल) भी नहीं देना चाहते, अपने प्राण (जल) दे डालनेवाले मेघों को देख कर भी क्या लज्जा नहीं आती! अब तो तुम्हें सदा के लिये मुझे अपना ऋणी बना लेना चाहिये। मैं तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी प्रत्युपकार नहीं कर सकती। प्रत्युपकार न सही तो तुम्हारा यश तो गाती ही रहूँगी।

एक तरह से मैं तुमसे ज़बरदस्ती भी कह सकती हूँ कि तुमको मेरे लिये, नल से प्रार्थना करनी चाहिये। सुनो! नल, राजा है, अतः उस में आठों लोकपालों का अंश है। उसी में वर्तमान, आठों लोकपालों को मैंने प्रसन्न कर लिया है। इस बात को मैं इस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण समझती हूँ कि तुमने आकर स्वयं ही यह कहा कि "जिस चीज़ को तुम्हारा जी चाहता हो उसे अपने हाथ में ही आयी समझना।" यह बात, लोकपालों की प्रसन्नता के बिना कभी नहीं हो सकती! लोकपालों ने मुझे विश्वास दिलाने के लिये तुम्हें ज़ामिन बना दिया है। इसलिये अब तुम्हें ही नल से याचना करनी चाहिये। यह ज़ामिन का कर्त्तव्य है कि वह किसी चीज़ को जिसका कि वह ज़ामिन है, दे या दिलाये। अतः तुम्हें इस मामले में ज़रा सी भी देर न करना चाहिये।

मेरे लिये, तुम्हें इन इन अवसरों पर नल से प्रार्थना न करनी चाहिये —

१—जब वह रनवास में बैठा हो। वहाँ कहने से अकारण ही उसकी स्त्रियों में स्वयं उसी के प्रति डाह उत्पन्न हो जायगा।

२—जब वह, अपने रनवास के सम्भोग से सन्तुष्ट हुवा बैठा हो। अतः प्यास न होने पर गुलाब और केवड़ा पड़ा हुवा जल भी अच्छा नहीं मालूम होता।

३—जब उसे क्रोध आ रहा हो। यतः ज़ायक़ा बिगड़ जाने पर खाँड जैसी मीठी चीज़ भी कड़वी मालूम हुवा करती है।

४—जब वह किसी और आवश्यक काम में लगा रहा हो।

शेष तुम स्वयं बुद्धिमान् हो। अच्छी तरह समय को विचार कर कहना।

सम्भवतः यहाँ, कुछ सहृदयम्मन्य पाठक शायद यह कह उठें! कि 'हर्ष' ने दमयन्ती के मुँह से ऐसा साफ़ कहलवा दिया है जो किसी भी विदग्ध नारी विशेष कर बाला कुमारी को कहना चाहिये।

इसका उत्तर स्वयं ही 'हर्ष यूँ' देते हैं—

इत्युक्तवत्या यदलोपि लज्जा
सानौचिती चेतसि नश्चकास्तु।
स्मरस्तु साक्षी तददोषताया-
मुन्माद्य यस्तत्तदवीवदत्ताम्॥

अर्थात्—दमयन्ती ने जो यह सब कुछ साफ़ साफ़ बेशरमी के साथ कहा। कवियों के चित्त में अवश्य ऐसा करने से अनौचित्य की झलक आयेगी। आये! दमयन्ती इससे दोषिणी नहीं ठहरायी जा सकती! उस बेचारी की अदोषता के विषय में मन्मथ महाराज गवाह हैं, जिन्होंने उसे उन्मादिता बनाकर यह सब कुछ कहलाया।

उन्मत्तता भी कुछ ऐसी वैसी चीज़ नहीं है। इसे पाकर भी एक अनिर्वचनीय ही आनन्द आता है। देखिये तो! शिवजी महाराज, धतूरे के फल को (जो उन्मत्त हैं) पाकर कितने प्रसन्न होते हैं और कामदेव, उन्मत्त मनुष्य को प्राप्त करके कितना आनन्दित होता है। अस्तु!

हंस देवता का भी दमयन्ती की ऐसी बात को सुन कर मौन खुल गया। और यह, हंस यूँ कहने लगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दमयन्ति ! तुमने ये जो बातें कहीं हैं वस्तुतः यदि ये सत्य ही हैं तो मुझे इस काम में अब कुछ भी करना बाक़ी नहीं दीख पड़ता। स्वयं कामदेव ही ने तुम दोनों को कलपाते हुवे तुम्हारा जोड़ा मिला दिया है। मनुष्य तो मनुष्य, लोहा जैसी कड़ी चीज़ को भी तपा लेने पर जोड़ने के लिये, और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं हुवा करती।

तुम्हें तो विरह, दुःख दे ही रहा है। पर नल के भी विरह-दुःख को कुछ कम मत समझो। उस की भी दशा अच्छी नहीं है। सुनो—

अनङ्ग कामदेव, तुम्हारे विरह से नल को बुरी तरह पीड़ा पहुँचा रहा है। वह उससे यह समझ कर ईर्ष्या करता है कि पहिले मेरा और इसका एक सा ही शरीर था। मेरे शरीर को शिवजी ने भस्म कर दिया। और इसके शरीर का कुछ भी नहीं हुवा। अनङ्ग कामदेव का इसी कारण से, नल से शाश्वतिक-वैर सा होगया है। वह मूर्ख, वृथा ही उसे अपने तीक्ष्ण बाणों से बींधा करता है। किसी अंश में तो वह कृतकृत्य भी होगया है। उसने उसे भी अनङ्ग (दुबला पतला) बना दिया है। क्या हुवा ! शरीर उसका भले ही कृश होगया है। हो जाय ! सौन्दर्य तो जैसे का तैसा ही है।

अपने सन्तोष के लिये, उसने तुम्हें अपनी दीवारों पर चित्रित कर लिया है। अतः वह उसी को टिकटिकी बाँधे देखा करता है। ऐसा करने से उसकी आँखें लाल हो जाती हैं और उन में पानी निकलने लगता है। मानो, उसकी आँखें भी तुम्हारे प्रति अपना अनुराग प्रकट करती हैं। कभी कभी तो उसकी आँखों का आपस में (पानी निकलते समय) विवाद भी हो जाया करता है। एक कहती है कि ये मेरे आँसू हैं और दूसरी कहती है कि तेरे नहीं ये मेरे हैं।

नल, तुम्हें प्राप्त करने के लिये, अब पाप से भी नहीं घबराता। उसे तुम्हारे लिये कुछ भी करना पड़े। वह, करने के लिये तैयार है। और तो और उसे तुम्हारा दास बनने में भी, कुछ शरम नहीं मालूम होती, यद्यपि यह, राजाओं के लिए, बड़ा ही नीच और निषिद्ध कर्म्म है। कामदेव ने उसके शरीर को बुरी तरह कमज़ोर कर दिया है। शरीर के साथ ही उसका स्वभाव भी कमज़ोर हो गया है। "मरता क्या न करता" वाली बात हो रही है। यही कारण है कि वह, सब कुछ करने के लिए तैयार है। उसकी विशेष दशा को मैं क्या कहूँ ! वह तो सचमुच बावला सा बन रहा है। कभी कभी तो वह यही समझ लेता है कि दमयन्ती मेरे पास बैठी है और यही समझ कर स्वयं ही बार बार पूँछा करता है कि "दमयन्ती! तू कहीं नाराज़ तो नहीं होगयी?" और कहता हुवा वैसे ही डरा करता है। कभी कभी वह यह समझ कर कि दमयन्ती को मैंने प्राप्त कर लिया है, वैसे ही हँसा करता है और कभी तुम्हें चलती हुवी मान कर वैसे ही तुम्हारे पीछे पीछे चला करता है।

भला ! इस उन्माद का भी कहीं ठिकाना है !!

मन्मथ महाराज के बहुत सताने से, उसने हँसना तो बिलकुल छोड़ ही दिया है। उसी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा था कि "तुम ही जाकर दमयन्ती से मेरे लिए कुछ कहो" यहाँ आकर मैंने कुछ और ही बात देखी कि तुम्हारा स्वतः ही उस में अनुराग है और मुझे विकालत करने की कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ज़रूरत नहीं। मैं अपनेको इससे कृतकृत्य मानता हूँ कि मुझे बिना विकालत किये ही मेहनताना मिल गया।

दमयन्ती! तुम धन्य हो जो नल जैसे धीरोदात्त नायक को भी अपने उदार गुणों से वश में कर सकती हो। चन्द्रिका की इससे अधिक और क्या स्तुति की जा सकती है कि जो वह, समुद्र को भी चञ्चल कर देती है।

अच्छा! निशाकर से निशा की तरह, अब तुम नल के साथ विहार करो। मैं समझूँगा कि तुम्हारे स्तन बड़े विशाल हैं जो नल जैसे पण्डित का रचना-कौशल उनपर समाप्त होजाय! अकेले चन्द्रमा को देखने से तुम्हारे दोनों नेत्रों की तृप्ति नहीं हो सकती! अच्छा है, अब दो चन्द्रों को देख कर (अर्थात् एक चन्द्रमा को और दूसरे, नल को) तुम्हारी तृप्ति हो जाया करेगी।

पहिले ही कह आये हैं कि दमयन्ती ने अपनी सखियों को पीछे आने से मना कर दिया था। अतः यह, उनकी आँखों से ओझल हो गयी थी। और ओझल होकर ही यह, हंस से बात चीत कर रही थी।

इतने ही में इसकी सखियाँ, इसे ढूँढते ढूँढते इसके पास आगयीं। हंस भी "अच्छा! मुझे अब जाने दो। तुम्हारा कल्याण हो।" यह कहकर नल की राजधानी निषध-देश को चल दिया। दमयन्ती को अपने प्यारे के दूत के साथ, बातचीत करते हुवे सचमुच घी के से घूँट आये। और इसे उस समय ज़रा भी विरह-व्यथा न हुवी।

उड़ते उड़ते हंस, निषध-देश में पहुँच गया, और इसे, नल वहीं उसी तडाग पर एक वृक्ष के नीचे बैठा मिला जहाँ छोड़ गया था। विरह-व्यथा से वहीं हंस की प्रतीक्षा करता हुआ नल बैठा था।

हंस ने, नल को विरह-व्यथा से वैसे ही बावला सा यह कहते हुवे देखा—"दमयन्ति! तुम पराधीन हो! अतः मैं तुमसे, "अब भी तुम मेरे पास क्यों नहीं आतीं?" इत्यादि कुछ भी नहीं कह सकता। हंस! तुम्हें भी गये हुवे बहुत दिन होगयो। इसलिये तुम ही जल्दी से आजाओ और मुझे बतलावो कि दमयन्ती ने तुमसे मेरे लिये क्या कहा है?"

हँस ने इसे दमयन्ती की सारी बातें सुनायीं पर सब सुना देने पर भी इसकी तृप्ति नहीं हुवी और यह बार बार दमयन्ती-सम्बन्धिनी बातें पूछता ही रहा। सच है, प्यारी की बातें पूछते हुवे, मनुष्य का जी नहीं भरा करता।

इधर हंस के चले जाने पर दमयन्ती की विरह-व्यथा ने फिर उद्दण्डता धारण की। इस मृदु-तनु के हृदय में घुस कर नल ने उसे कितनी तकलीफ़ दी होगी, इसे तो वही जाने! हमारे पैर में तो यदि एक छोटा सा काँटा भी चुभ जाय तो बेहाल बना देता है।

मदन-व्यथा सहते सहते दमयन्ती का हृदय उकसा गया था। इसलिये उसने फटकर निकलने का बहुतेरा उद्योग भी किया, पर दमयन्ती के निविड-स्तन होने के कारण बेचारा न निकल सका!

इसे न मालूम क्यों चन्द्रमा ही बुरी तरह जलाने लगा। यतः चन्द्रमा को तो शीतल कहा लाया जाता है। अच्छा! मान लो!! जलाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण यदि दमयन्ती ने चन्द्रमा ही को सूर्य समझ लिया हो तब भी यह बात समझ में नहीं आती! जल को यदि कोई अग्नि मान ले तो क्या वह जला देगा? कभी नहीं।

यह ठीक ही है कि स्त्रियाँ, बड़ी कोमल होती हैं तभी तो कामदेव ने दमयन्ती को कुसुम-बाणों से ही ख़ूब कष्ट पहुँचाया। दमयन्ती, सचमुच विरह-व्यथा से पीली हो गयी थी। मानो, नल के प्रति इससे वह, अपनी शुद्धता जतला रही है कि मैंने तुम्हारे सिवा किसी को भी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। इसने चन्द्रमा को कामदेव का आग्नेय-अस्त्र समझ कर (क्योंकि वह इसे जला रहा था) झट से उसके प्रति आँसूरूपी अपने वारुण-अस्त्र को उठाया। बात यह है कि चन्द्रमा के निकलने पर इसे बड़ी ही व्यथा हुवी और यह रोने लगी। और मेघों को इसने काम-देव का वारुण-अस्त्र समझ कर उनके प्रति अपने लम्बे लम्बे श्वासों के बहाने से, उन्हें उड़ा देने के लिये, अपना वायव्य-अस्त्र फेंका। अब यह चन्द्रमा की निन्दा करने पर उतारू हुवी और अपनी एक सखी को सम्बोधन करके यूँ कहने लगी—

सखि! मैं समझती हूँ कि विरह में जलने की अपेक्षा, अग्नि में जलने से कम तकलीफ़ होती है। यदि ऐसा न होता तो बहुत सी स्त्रियाँ, अपने मृत-पति की उपासना करने के लिये आग में न जला करतीं! उन्हें विरह में जलने की अपेक्षा आग में जलने में अधिक सुभीता होता होगा, तभी तो वे ऐसा करती हैं।

सखि! तुम इस चन्द्रमा से पूँछो तो सही! कि तूने यह जलाना किससे सीखा है? कहीं उस विष ही से तो नहीं सीख लिया है, जिसने शिव जी के गले को दग्ध कर दिया था। या समुद्र में रहते हुवे वडवाग्नि से सीखा है? (इस संख्या का रंगीन चित्र देखिये।)

सखि! चन्द्रमा से कहो, कि तू क्यों विरहिणियों को वृथा सताता है? तुझ जैसे कुलीन और सत्संगी को ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। तेरा समुद्र में जन्म हुवा है, और तू शिवजी के मस्तक पर रहा करता है। क्या ये सारी बातें, तू यूँही भूला जाता है? अरे शशलाञ्छन! खेद है कि मन्दराचल जब समुद्र में गिरा था तभी तुझ जैसे क्रूर को उसने क्यों न पीस डाला? और तू अगस्त्य जी के जठराग्नि में (समुद्र के पीने पर) क्यों न नष्ट हुवा।

अरे मूर्ख! क्या तू यह समझता है कि तंग आकर दमयन्ती का मन, मेरी तरफ़ हो जायगा? तेरी यह भूल है! ऐसा कभी नहीं हो सकता। कहाँ तू! और कहाँ नल!! अच्छा! फिर बात ही क्या है? मुझे सताता क्यों है, मार ही क्यों न डाल? अनाथ स्त्रियों ही के मारने में तू यदि अपनी कीर्त्ति समझता है, तो शौक़ से ढंढोरा पिटवा दे। वस्तुतः तेरे पिता समुद्र का तेरी इस करतूत से, वंश उज्ज्वल हो जायगा। कपट से तू अब रात में मनमाने, सूर्य के गुण ग्रहण करले। दिन निकलने पर सूर्य के सामने तुझे देखूँगी कि तू कहाँ है?

सखि! तुम मेरे और अपने कर्णपूरों को, इस चन्द्र-मृग के मुँह में घास की जगह डाल दो। सम्भवतः कोख में पड़ जाने के कारण यह कुछ मोटा हो जाय, और ज़रा इस चन्द्रमा को ढक ले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतः मैं साँस तो ले लूँ। इस दुष्ट के देखने से मुझे पीड़ा होती है और साँस भी नहीं लिया जाता। क्या कहूँ, गया वक्त फिर हाथ नहीं आता, कुसमय में बुद्धि होती है। हाथ में आयी हुवी अमावस्या को यूँ ही जाने दिया, सखि! अब की बार यदि अमावस्या आये तो उसकी प्रार्थना करके उसे यहीं ठहरा लेना। यतः उस जी जलानेवाले दुष्ट चन्द्रमा के फिर दर्शन ही न हों! और हाँ! मेरी यह चकोर ही अगस्त्य मुनि की शिष्या क्यों नहीं हो जाती? तुम यह पूँछोगी कि "इस बात से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा"? सुनो! अगस्त्य ने समुद्र को पान कर लिया था, उनकी शिष्या होने पर चकोर को भी यह बात कुछ मुश्किल न होगी। अतः जो समुद्र को पान कर सकता है उसे चन्द्रमा की इंन गिनी चुनी किरणों का पान करना क्या बड़ी बात है। ऐसा होने पर ही इस दुष्ट के तो दर्शन न होंगे।

सखि! तुम एक बहुत ही भारी लोहे का हथौड़ा हाथ में लो, और एक दर्पण को मेरे घर से बाहर कहीं रख दो। उस दर्पण में जब यह दुष्ट प्रतिबिम्बरूपेण प्रवेश कर जाय—उस दर्पण में जब यह दीखने लगे तभी इसपर वह भारी हथौड़ा मारो! यतः यह चूर चूर होजाय। ऐसा करने ही से मेरी कुछ पीड़ा-शान्ति हो रहेगी। यह, समझ में नहीं आता कि राहु भी इसे पकड़ कर छोड़ क्यों देता है? राहु का सिर विष्णु ने काट डाला था। अतः वह इस बात का बदला लेने की फ़िक्र में संलग्न रहता है। उन्ही तीक्ष्ण चक्र की गोलाई के भ्रम से तो वह कहीं चन्द्रमा को नहीं पकड़ लेता? जिससे बाद को छोड़ देता है।

सखि! उस राहु ही से कहो कि क्या तो इस चन्द्रमा को पकड़ लेने पर भी द्विजराज (ब्राह्मणों में श्रेष्ठ श्रोत्रिय) समझ कर छोड़ देते हो तुम यदि यही समझते हो तो तुम्हारी भूल है यह ब्राह्मण नहीं है! यदि यह ब्राह्मण होता तो वारुणी (मदिरा और वरुणदिशा) का सेवन करता और पतित होकर (छिप कर) भी स्वर्ग (आकाश) को न प्राप्त करता। पतित-ब्राह्मण स्वर्ग को प्राप्त नहीं करते। तुम शायद यह कहो कि "द्विज-राज न सही, साधारण द्विज ही सही, तब भी, 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इस श्रुति के अनुसार इसे नहीं मारना चाहिये।" गरुड़ ने जैसे भीलरूपधारी एक ब्राह्मण को गला जलने के कारण ब्राह्मण समझ कर छोड़ दिया था। तुमने भी शायद यही समझ कर चन्द्रमा को छोड़ दिया है। यह बात नहीं है सुनो! इसका तो स्वभाव ही जलन का है, कुछ ब्राह्मीशक्ति के कारण नहीं! ब्राह्मणों का तो कोई अपराध होने पर ही क्रोध हुआ करता है, इस समय वैसे ही नहीं! मैं अभी पहिले कह चुकी हूँ कि इसका स्वभाव ही जलन का है। देखो तो मैंने क्या इसका अपराध किया है जो मुझे यह जला रहा है। क्या यही इसका ब्राह्मण्य है?

तुम्हारे जो में यह बात शायद जम सी गयी मालूम पड़ती है कि यह द्विजराज ही है अच्छा! द्विजराज ही मान लो। संसार, इस द्विजराज का ब्राह्मण अर्थ नहीं समझता। वह इसका एक और ही अर्थ समझता है। सुनो—ब्राह्मण ने इस चन्द्रमा को कलारूपी दाँतों से बनाकर यमराज को दिया और साथ ही कह दिया कि तो विरहिजनों को चाब डालने का कारण समझो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी लिये, यह द्विज (दाँतों में) राज (श्रेष्ठ) होने के कारण, द्विज-राज कहलाया।

इस प्रकार चन्द्रमा की निन्दा करते हुवे दमयन्ती को कुछ समझ आई, और यह कहने लगी-अहा! मेरी बड़ी भूल हुवी! मैंने व्यर्थ ही दूरस्थ चन्द्रमा की निन्दा की। अब इसने मन्मथ महाराज की निन्दा के नद बहाने प्रारम्भ किये—

अरे अनङ्ग! संसार भर को तू भले ही जला। मेरे हृदय में यदि तू रहता ही है तो इसे तो मत जला! अपने निवास को जला डालने में कौन सा पाण्डित्य है? यह तो बतला! यदि तू अपने आश्रय ही को जला डालेगा तो रहेगा कहाँ? यह सुना करते हैं कि तू रति (अपनी स्त्री) ही के साथ रहा करता है। फिर तेरे रहते हुवे भी मुझ में क्यों रति (प्रीति) नहीं। या सम्भवतः यह बात हो कि मृत-अवस्था में तेरी और उसकी संगति नहीं है। यतः वह तेरे साथ तो मरी ही न थी। एक बात, मैं तुझसे पूँछती हूँ कि रति (तेरी स्त्री) तो पतिव्रता स्त्रियों में भी प्रथमगण्य थी फिर तेरे साथ जैसा कि पतिव्रता स्त्रियों का धर्म है, वह क्यों नहीं मर गयी? वियोगिनियों को मारने के कारण पातकी समझ कर तो कहीं उसने तुझे नहीं छोड़ दिया?

अरे काम! तू मर चुका है। अतः कहीं भूत परेत तो नहीं बन गया! जिससे मुझे कष्ट पहुँचा रहा है। तू यदि मुझे मौत भी नहीं देता, तो कृपा कर हाथ से धनुष को क्यों नहीं डाल देता! पर हाँ तू तो मर चुका है। मरे हुवे में कृपा और दया कहाँ। यही कारण है कि धनुष भी तेरे हाथ से नहीं छूटता! मुरदे की मुट्ठी बँध जाने पर फिर नहीं खुला करती।

तू बड़ा क्रूर है। इसलिये ब्रह्मा ने पहिले ही से तुझे ऐसा समझ कर, तुझे फूलों के बाण दिये। तुझे यदि कहीं लोहे के बाण दे दिये जाते तब तो सचमुच प्रलय ही कर डालता! अच्छा हुवा ईश्वर ने गंजे को नाख़ून नहीं दिये।

इतना करने पर भी तेरी क्रूरता के कारण ब्रह्मा को सन्तोष नहीं हुवा। उसने तुझे पुष्प-बाण भी गिनती के पाँच ही दिये। शोक है कि उनसे भी तूने संसार भर को दुःखी कर रक्खा है।

अनंग! तुझे शरम नहीं आती। जो माँगे तूँगे टुकड़ों से काम चलाता हुवा भी इतना गर्वित है। छओं ऋतुवें तुझे अपनी दयालुता से एक एक पुष्प दे देती हैं। उन्हीं के तू पाँच पुष्प-बाण और एक धनुष बना लेता है। इस बात पर इतना अहंकार! मैंने तेरा जैसा परापकार में कुशल मनुष्य न तो देखा और न आज तक सुना।

इसी तरह कहते कहते दमयन्ती का कण्ठ सूख गया। अतः इसे अब मित-भाषिणी बनना पड़ा। और इस प्रकार एक सखी के साथ में इसकी बात चीत हुवी—

सखी—दमयन्ति! इस दुष्ट काम से अब तुम्हें अपने प्राणों की धीरता के साथ रक्षा करना चाहिये।

दमयन्ती—सखि! आज मुझे अपने ये प्राण ही शत्रु जैसे मालूम पड़ते हैं। मुझे आश्चर्य है कि तुम शत्रुवों की रक्षा के लिये क्यों कहती हो?

सखी—तुम्हारा प्यारा तो तुम्हारे हृदय ही में उपस्थित है। फिर क्यों दुखित हो रही हो?

दमयन्ती—हाँ। हृदय में है पर बाहर नहीं। इसीलिये दुखी हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कह कर दमयन्ती, बेहोश होकर गिर पड़ी। कोई सखी इसके मुँह में जल डालने लगी और कोई इसके स्तनों को कमल के पत्तों से ढकने लगी। कोई हवा करने लगी और कोई इसके शरीर पर चन्दन छिड़कने लगी।

यह सब कुछ होने पर इसे कुछ होश आया और इसने घबरायीं हुवीं सखियों के मुँह से, आपस में यह कहते हुवे सुना—

"सखि! देखो तो! यह साँस तो ले रही है। और इसके पलक भी चलते हुवे मालूम होते हैं। यह देखो! इसका नीचे का होंठ फड़क रहा है। और यह कुछ अस्पष्ट सा कहती भी है। इन लक्षणों से कोई सन्देह की बात नहीं है। अरी केशिनि! इसके केशों को तो ज़रा ठीक करदे! और हे तरंगिणि! इसके आँसुवों को पूँछ डाल।"

इस कोलाहल का समाचार मिलने पर विदर्भ-नरेश भी रनवास में आये। यह, एक अपने विश्वास-पात्र मंत्री को और एक वैद्य को, दमयन्ती के देखने के लिये साथ लाये। दमयन्ती की नाड़ी देख कर वे कहने लगे—

महाराज! सुश्रुत (सुनने) और चरक (सेवक) के कथनानुसार, हमारी राय में नलद (ख़स या नल नामक राजा को देनेवाला—प्राप्त करानेवाला, हंस) के क्वाथ के सिवा और किसी चीज़ से दमयन्ती की ताप-शान्ति नहीं हो सकती!

भीम, अपनी पुत्री दमयन्ती की इस अवस्था से इतने व्याकुल होगये थे, कि इन दोनों की इस वक्रोक्ति को अच्छी तरह सुन भी न सके।

दमयन्ती को जब यह मालूम हुवा कि इसके पिता, इसे देखने के लिये आये हैं। तो यह झट अपनी वियोगावस्था को छिपाती हुवी सी पिता के पैरों में गिर पड़ी। इसने अपनी अवस्था को लाख छिपाया सही पर इसके पिता इस बात को ताड़ गये। ठीक है—

"ताड़ जाते हैं ताड़नेवाले"

दमयन्ती के मस्तक को उठाते हुवे, पिता आशीर्वाद देने लगे—बेटी! तू सौभाग्यवती हो और दो ही चार दिन में अपने मनचाहे पति को स्वयंवर में प्राप्त करे। यह कह कर भीमराज दमयन्ती की सखियों से कहने लगे—तुम्हारी सखी दमयन्ती, अब दो ही चार दिन में अपने अभिलषित-वर को वर लेगी। अतः तुम्हें अब दो चार दिन तक इसके मन को ख़ूब बहलाते रहना चाहिये। विदर्भ-नरेश के कथनानुसार दो चार दिन बाद स्वयंवर रचाया गया और दमयन्ती का नल के साथ आनन्द-पूर्वक विवाह हो गया*।

मूलसहित

हिन्दी-कुमार-सम्भव

(गताङ्क से आगे)

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना
बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव।
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम॥

* हो सका तो दमयन्ती के स्वयंवर का वृत्तान्त भी पाठकों को फिर कभी सुनाया जायगा। सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वत से हुयी थि जनि, "पार्वती" कहि गयी
बान्धव-वर्ग से भि इस नाम से कहि गयी ।
पार्वति का "उ-मा" कह निषेध था तप किया
नाम तभी "उमा" उस न प्राप्त था कर लिया ॥२६॥

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टि-
स्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम् ।
अनन्त-पुष्पस्य मधोर्हि चूते
द्विरेफ-माला सविशेषसङ्गा ॥२७॥

पिता था बेटे का, तदपि गिरि की दृष्टि हठ से,
लगी पुत्री में ही, तदपि न हुयी तृप्ति उसकी ।
अति फूलोंवाले, अति सुरभिवाले, सुरभि (१) की
द्विरेफों की माला मुदित रहती आम्र-सुम (२) से ॥२७॥

प्रभा महत्या शिखयेव दीप-
स्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी
तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥२८॥

बड़ी शोभावाली, खर-शिखर३ से दीपक-सम
त्रिमार्गी गङ्गा से, अमर-पुर के मार्ग-सदृश ।
विशुद्धा वाणी से, स्फुट-कथन४ से, पण्डित-सम
स्वकन्या से भूभृत्५ अकलुषित६ औ भूषित हुवा ॥२८॥

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः
सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां
क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥२९॥

१ वसन्त । २ फूल । ३ तेज़ लोग । ४ साफ़ उच्चारण । ५ हिमालय पर्वत । ६ पवित्र ।

सुबाल्यावस्था में, सखि-निकर१ बीच स्थित हुयी
उमा, क्रीड़ाओं के, सरस-रस का भोग करती ।
किनारे गङ्गा के, रज-गण हि से वेदि रचती
भली गेंदों से औ, पुतलि-गण से क्रीड़न करे ॥२९॥

तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां
महौषधिं नक्तमिवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले
प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥३०॥

ख-गङ्गा२ को जैसे, शरदृतु में हंस-निकर३
तथा घासों को हैं, स्वत रजनि में कान्ति चलतीं ।
अति प्रज्ञावाली, उस गिरि-सुता के पठन में
पुराभ्यस्ता विद्या, इस तरह हैं आकर रहीं ॥ ३० ॥

असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टे-
रनासवाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं
बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे ॥३१॥

विना यत्नों के ही, मनुज-वपु४ का मण्डन५ भला
विना मद्यों के ही, विकृत-मद का साधन भला ।
सुपुष्पों का जैसा, मनसिज६ हि का आयुध७ भला
सुता, मेना की ने, तरुण वय का प्रापण किया ॥३१॥

उन्मीलितं तूलकयेव चित्रं
सूर्य्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि
वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥३२॥

१ बहुत सी सखियों के । २ आकाश की गङ्गा । ३ हंसों का समुदाय । ४ मनुष्य का देह । ५ भूषण । ६ कामदेव । ७ शस्त्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोधन करता हुवा, विस्तृत लेख को यथासम्भव स्वल्पाक्षरों में ग्रथित करके आप लोगों के समक्ष उपस्थित करता हूँ। विषय-निबन्धन, अनिवार्य गाम्भीर्य्य और न्यूनता-दोष-निवारिणी, आवश्यक लेखविस्तृति को देख कर आप लोग अकुलायेंगे नहीं, यह गुणपक्षपाती, सारज्ञ आपसे लोगों से मुझे हार्दिक विश्वास है। शीर्षक "पुरुषार्थ" शब्द का अर्थ वह वस्तु है, जो पुरुष मात्र की अभिलाषा का विषय है। "पुरुषार्थ" का यही लक्षण पर्याप्त है। और वह यथायोग्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रमित है। अर्थ धातु से कर्म्मार्थक, क या घञ् प्रत्यय से निष्पन्न अर्थ शब्द पुरुष से समस्त होकर पुरुषार्थ रूप में परिणत होता है। जो अवयवार्थ (योग-वृत्ति) से पूर्वोक्त अर्थ का बोधक है। सकल विवेकी लोगों से चाही जानेवाली वस्तु, फल, उद्देश और प्रयोजन आदि शब्दों से पुकारी जाती है। क्योंकि मूढ़, उन्मादादि बुद्धि दोषहीन प्रेक्षावान् मनुष्य की न्यून से न्यून चेष्टा फल बिना नहीं देखी जातीं। उस ही फल, प्रयोजन, या उद्देश का नाम पुरुषार्थ है। "घृत आयु है" इस वाक्य में जैसे आयु-साधन-घृत में "आयु" शब्द लाक्षणिक है। इसी तरह फलसाधन उद्योग बलादिकों में फल-वाची "पुरुषार्थी" शब्द लक्षणावृत्ति से पूर्वोक्त सदृश अनेक स्थलों पर बुद्धिमानों से भी व्यवहार किया जाता है। इस रीति से फल, प्रयोजन, उद्देश और "पुरुषार्थ" शब्द पर्य्याय-सिद्ध हुए।

यह सर्व-तन्त्र-सिद्धान्त बात है। एवं प्रमाण और लक्षण से प्रमित और लक्षित पुरुषार्थ, पदार्थ की संख्या निरूपण के अवसर पर लौकिक और परीक्षकों की विरुद्धमति मारुत विवेचकों के मनःसागर में अनेक शङ्काकल्लोलों को प्रादुर्भूत करता है, जिनका उल्लेख भविष्य में किया जायगा। ऐसी दशा में तटस्थ पर, पार-इच्छु जीव पान्थ को यदि बुद्धिरूप तारिणी नौका आचार्य कर्णधार सहित नयनगोचर न हो तो उस दीन-पान्थ की पार-आशा दुराशा मात्र ही ठहरै, अतः उस दूर-यात्री को उस ही कल्लोलाकुल-सागर के किसी एक देश में हो नौका अन्वेषण करना चाहिये। समाचार-पत्रों में विदित हुआ है कि अमेरिका में ऐसे जल-यान बने हैं जिनका जल और तरङ्गों के समान आकार है और सभ्य देश भी ऐसा अनुकरण कर रहे हैं।

यह जल-यान समीपस्थ होते हुवे भी साधारण दृष्टि से देखने में दुर्लक्ष हैं। यदि सचमुच ऐसा ही है तो इस पान्थ को भी दूर-दृष्टि-यन्त्र से काम लेना आवश्यक ही नहीं अत्यावश्यक हो पड़ा है। क्योंकि उक्तयन्त्र की सहायता से इसको वह दुर्लक्ष वस्तु दृष्टिगोचर हो सकती है परन्तु यह यन्त्र बहु-मूल्य है। सर्वसाधारण को इस यन्त्र की प्राप्ति भी आकाश-पुष्प-समान है। बहुमूल्य जिनके पास है उनको यह यन्त्र मिल सकता है। इस अङ्क में असमाप्त, और अग्रिम-अङ्कों में प्रकाश होनेवाला, "पुरुषार्थ" लेख बहुमूल्य से वह दूर-दृष्टि-यन्त्र अनायास ही प्राप्त करके, जीवपान्थ, बुद्धि-नौका लाभ करैं तो आशा की जाती है कि बुद्धि-नौका पर आरुढ़ जीव-पान्थ विना खेद शङ्का-सागर के पार निर्विकल्प पद को प्राप्त होकर सुख और शान्ति से रह सकता है। यही वेद-वेदान्तों का सार है। यही परम उपनिषद् है और यही पराकाष्ठा है। शम्॥ —वासुदेव उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरपीय महायुद्ध को जानेवाले भारतीय सिपाही का गीत

("देश" से उद्धृत)

अय तीर ! तड़प, अय तेग़ ! चमक, योरप कि जंग को जाना है।
मग़रिब के वारे-थ्येटर में, मशरिक़ का रंग जमाना है॥
अय द्रोणमदद, बलदेवमदद, अय भीष्म-नकुल-सहदेवमदद।
पच्छम के दिलेरों को जाकर, पूरब का जोश दिखाना है॥
अय हाथ ! सफ़ा कर बाजों को, हिन्दी तग़मे के साज़ों को।
पेरिस के बेंडनवाज़ों को, भारत का राग सुनाना है॥
दुनियाँ के मंगलकारन को, इङ्गलेण्ड के काजसँवारन को।
भारत के कष्टनिवारन को, हर एक क्लेश उठाना है॥
दुश्मन का नाम मिटाने को, भारत का मान बढ़ाने को।
मुशफ़िक़ की जान बचाने को, ख़ुद अपना ख़ून बहाना है॥
अय सर ! तैयार हो कटने को, अय तन ! तैयार हो मिटने को,
भारत-स्वराज्य की ख़्वाहिश में, इङ्गलेण्ड प भेट चढ़ाना है॥
कर दूर, जिगर से ख़ौफ़ेअजल, * बेबाक फ़लक मैदान में चल।
दुश्मन के लिए, अर्जुन के अटल-बाणों की सेज बिछाना है॥

लालचन्द "फ़लक"

बेकली

(१)

प्रतीक्षा करते करते पञ्जाब यूनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा का दूसरी अगस्त (सन् १९१२) के दैनिक "पञ्जाबी" में परिणाम निकल आया। विद्यार्थी बेचारे बड़े चाव से इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सरकारी "गज़ट" का तो किसी को ध्यान भी न था, क्योंकि वह साप्ताहिक है और "पञ्जाबी" दैनिक।

कभी कभी तो यह "पञ्जाबी" गज़ट से कई दिन पहिले, बहुत से विद्यार्थियों के मनो को सफलीभूत, और बहुत सों के मनोरथ ख़ाक में मिला डालता है। मिशन कालेज विद्यार्थी प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी का नाम इस बी० ए० में फ़र्स्ट डिविज़न में रहा है।

* ख़ौफ़ेअजल = मृत्यु का भय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यू० पी० में अबकी बार (सन् १९१५ में) जैसे बी० ए० में पास होनेवालों में "प्रकाशनारायण सप्रू" का नाम जहाँ तहाँ लिया जाता है। ठीक, इसी तरह उस समय पञ्जाब में प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी का नाम लिया जा रहा था। दूसरी अगस्त के "पञ्जाबी" में बी० ए० का परिणाम निकला था। और तीसरी अगस्त ही को सारे के सारे पञ्जाब में शोर मच गया कि प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी, इस साल फ़र्स्ट डिविज़न में पास हुवे हैं। इनके फ़ेल होनेवाले सहपाठियों ने इन्हें बहुतेरा अपने जी में कोसा। पर इस कोसने से होता ही क्या है? होता है, अपने किये परिश्रम से। प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी देहली के एक महल्ले में रहा करते थे। इनके पिता का नाम था, श्रीयुत पण्डित राधाचन्द्र चतुर्वेदी। और यह, हैदराबाद की रियासत में सबजजी का काम किया करते थे।

तीसरी अगस्त को प्रातःकाल ही प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी के मकान पर, इनके मित्रों का इन्हें बधाई देने के लिये एक हल्ला सा आ गया। दूर ही से "बधाई" और "मुबारकबाद" की आवाज़ें उठने लगीं।

सब मित्र कुर्सियों पर बैठ गये। पानों से सब का आतिथ्य किया गया। एक साहब कहने लगे—

"भाई! केवल पानों से काम न चलेगा! अब कुछ खाये बिना हम लोग यहाँ से न टलेंगे" मुसकराते हुवे प्रेमचन्द्र बोले—मैं आप लोगों को अपना नमकख़्वाह बनाना नहीं चाहता! यह सुन कर एक चलती तबीयतवाले मित्र से न रहा गया। आप कहने लगे—

मित्र! नमकीन न मँगाना! केवल मिठाई ही मँगवा लो! मिठाई में तो नमक नहीं पड़ता! यह सुन कर सारी मित्र-मण्डली में कबूतर से उड़ने लगे।

घंटेवाले के यहाँ से मिठाई मंगवायी गयी और मित्र-मण्डली खा पीकर विदा हुवी।

चौथी अगस्त को पण्डित प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी बी० ए० के मकान पर १० बजने से पहिले ही, पोस्टमैन आया। और उसने एक बहुत ही ख़ूबसूरत लिफ़ाफ़ा, आपके कहार को दिया। आप उस समय, विलायती कंघे से अपने बाल सवार रहे थे। कहार ने आकर लिफ़ाफ़ा आपके हाथ में देते हुवे बड़ी नम्रता के साथ कहा—सरकार! आपकी यह एक चिट्ठी आयी है।

लिफ़ाफ़े को देखकर, नहीं नहीं उसके सङ्केत को देखकर, प्रेमबाबू का दिल फ़ड़क उठा। उस पर पता यूँ लिखा था—

× } पंडित प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी बी० ए०
तम्बाकू का महल्ला
देहली

लिफ़ाफ़ा इतना ख़ूबसूरत था कि कुछ देर लिफ़ाफ़े को हाथ में लिये यह सोचते रहे कि इसे फ़ाड़ूँ कि नहीं। उसे खोलने के बहुत यत्न करने पर भी जब वह नहीं खुला, तब लाचार होकर फ़ाड़ ही डाला। चिट्ठी में लिखा था—

देहली
३—८—१२

यथायोग्य—

कल अपने भाई साहिब से, "पञ्जाबी" में आपके पास होनेवाले हर्ष-जनक समाचार को सुन कर बड़ा ही आनन्द हुआ। लेखनी में इतनी शक्ति नहीं और दवात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इतनी रोशनाई नहीं, कि उसका भले प्रकार वर्णन कर सकूँ ! सच पूँछिये, तो यही दोनों न्यूनतायें मेरी अयोग्यता को भी छिपा लेती हैं। यह सुन कर तो और भी अधिक हर्ष हुवा, कि अपने भावि-प्राणप्रिय, पञ्जाब भर में फ़र्स्ट डिविज़न में रहे हैं। परिश्रम किया है आपने, और उसका सुखानुभव करूँगी मैं। अस्तु। मैं कुशल हूँ, आप भी कुशल होंगे। इति

आपकी सदैव वृद्धि चाहनेवाली—

चन्द्रवती

मन ही मन में चिट्ठी को पढ़ कर प्रेमचन्द्र बड़े प्रसन्न हुवे। और इस चिट्ठी का किन शब्दों में उत्तर दूँ, यह सोचने लगे। यह बी० ए० के फ़र्स्ट डिविज़न में पास हो गये थे सही पर इन्हें पूरे एक घंटे के विचार में यह तक न सूझपड़ा कि इस चिट्ठी का इन्हें क्या उत्तर देना चाहिये ?

(२)

चन्द्रवती, देहली के महल्ले + + में रहनेवाले पण्डित यादवकुमार की पुत्री है। यादवकुमार सदर में काँच का सामान बेचा करते हैं। इनका एक पुत्र मुकुटचन्द्र, मिशन कालिज में प्रेमचन्द्र का सहपाठी था। यही कारण था कि प्रेमचन्द्र, मुकुटचन्द्र के मकान पर प्रायः आया जाया करते थे। मुकुट की बहिन (चन्द्रवती) की अवस्था उस समय १५—१६ वर्ष की थी। नयी रोशनी के प्रवाह में प्रवाहित हुवे मुकुट के कहने से, इसके पिता यादवकुमार ने अभी तक इसका विवाह नहीं किया था। यह बला की ख़ूबसूरत थी। इसका रूप-सौन्दर्य अनिर्वचनीय था। महाकवि बाण यदि इस समय होते, तो कादम्बरी से दूना पोथा इस के रूप-सौन्दर्य-वर्णन में ख़र्च कर डालते।

महाकवियों ने किसी सुन्दरी के रूपला में उसकी जंघाओं को हाथी की सूँड़ से उ दी है। हमें चन्द्रवती की जंघाओं को हाथी सूँड़ से उपमा देते हुवे संकोच होता है। इसि कि हाथी की सूँड़ में कुछ सख़्ती होती है उसकी खाल खरदरी होती है। चन्द्रवती जंघाओं में यह बात न थी। उसकी जंघा में यदि खरदरापन और सख़्ती होती, तो उस बारीक रेशमी साड़ी फट जाया करती ! हाँ ! की जंघायें, हाथी की सूंड़ जैसी उतार चढ़ा मोटी थीं। और उसके पेट पर त्रिबली सी रही थी। इससे वह यह बतला रही थी, कामदेव के चढ़ने के लिये ये सीढ़ियाँ हैं। च वती, हिन्दी अच्छी तरह लिख पढ़ सकती थी

प्रेमचन्द्र, अपने मित्र के यहाँ आया जाया करते ही थे। इनकी अपने अनुरूप रूपवती च वती से आंखें दो चार होगयीं। चन्द्रवती की सीढ़ियों पर इनका भी चढ़ने को जो चाहने ल कभी कभी चिट्ठी चपाती भी आने जाने ल इनके आपस के पत्रव्यवहार में लिफ़ाफे पर + संकेत बना देने का नियम होगया था।

इन दोनों के इस शुद्ध व्यवहार का या कुमार को भी पता था। यह भी इसे कुछ बु समझते थे। इनका विचार था कि—

"विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमाग

ही हुवा करता है। इन्होंने अपने जी में निश्चय कर लिया था कि अबकीबार जब स साहिब (प्रेम० के पिता) हैदराबाद से आयें, शुभलग्न में चन्द्रवती का प्रेमचन्द्र के सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी—
सर फ़ीरोज़शाह मेहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह कर दिया जायगा। सम्भवतः बी. ए. के परिणाम निकलने का भी इन्हें इन्तज़ार हो।

सातवीं अगस्त को प्रेम बाबू के पास, इनके पिता की एक चिट्ठी आयी। उसमें लिखा था—

प्रियपुत्र!

हमें तुम्हारे बी. ए. के फ़र्स्ट डिविज़न में पास हो जाने से बड़ी प्रसन्नता हुवी। अब दो ही तीन दिन में हम देहली आते हैं। तुम्हारी अग्रिम पढ़ाई की ठीक ठाक करना है। और भी कयी बातें हैं जिनका प्रबन्ध करना है।

तुम्हारा—

राधाचन्द्र

"और भी कयी बातें हैं जिनका प्रबन्ध करना है" इसे पढ़ कर न मालूम प्रेम बाबू के जी में क्या क्या विचार उत्पन्न हुवे।

दो तीन दिन बाद पं० राधाचन्द्र सबजज आगये। शाम को ये आये थे और अगले दिन सुबह ही को यादवकुमार इनकी सेवा में आ उपस्थित हुवे। और प्रेम के साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिये प्रार्थना की।

घर में राधाचन्द्र को यह मालूम होगया था कि लड़की देख ली है। बस, आपके आने ही की देर थी। अतः लड़की को देखने का प्रश्न ही नहीं उठाया गया।

राधाचन्द्रजी ने यादवकुमार के बहुत विनय करने पर अपने पुत्र का उनकी पुत्री के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। पण्डित जी बुलाये गये। विवाह का दिन निश्चय होगया और प्रेमचन्द्र का विवाह इनकी प्यारी चन्द्रवती के साथ आनन्दपूर्वक बड़ी धूमधाम के साथ होगया। गौने की रस्म को आजकल के सभ्यों ने दूर ही सा कर दिया है। अतः इनका "पट्टा-फेर" उसी समय होगया। और प्रेमचन्द्र, निर्द्वन्द्व होकर सुखपूर्वक अपनी प्रिया को बरसात का आनन्द अनुभव कराने लगे।

(३)

विवाह होजाने के कई दिन बाद, एक दिन प्रेमचन्द्र को इनके पिता राधाचन्द्रजी ने बुलाया और कहने लगे—

प्रेम! तुम बी. ए. तो पास होगये, अब किस लाइन में जाना चाहते हो?

प्रेमचन्द्र—जैसी आपकी आज्ञा हो?

राधाचन्द्र—हमारी राय में तो तुम्हें "ला कालिज" में चले जाना चाहिये?

प्रेम०—नहीं, मैं विकालत तो नहीं करना चाहता!

राधा० क्यों?

प्रेम०—पहिले तो विकालत पास करना ही कुछ आसान काम नहीं है। पास भी होगये तो पञ्जाब यूनिवर्सिटी का नियम ऐसा निराला है कि अव्वल के तीस नम्बरों में यदि न आवो, तो सारी उमर बेकार पड़े रहो। "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" वाली बात हो जायगी।

राधा०—प्रेम! तुम्हारी योग्यता के सामने यह सब कुछ रेत की दीवारें हैं। तुम निःसन्देह अव्वल के तीस नम्बरों में आओगे। इस बात का तो तुम्हें विचार ही न करना चाहिये।

प्रेम०—मान लिया। ऐसा भी यदि होगया, तब भी विकालत को जी नहीं चाहता।

राधा०—फिर क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम०—इसमें बड़ा अन्याय करना पड़ता है। ग़रीबों के गले काटने पड़ते हैं।

राधा०—बेटा! यह तुम्हारी भूल है। विकालत बे गुठली की मेवा है। रुपया पैदा करने और प्रतिष्ठा बढ़ाने का एक उपाय है। उन शैतानों को ग़रीब न मालूम तुम किस कारण से समझ रहे हो! जो फ़िज़ूल मुक़दमें लड़ाते हैं वे ग़रीब नहीं, देखो, इस बात पर विचार करो। भारत के प्रायः सब बड़े बड़े आदमी प्लीडर ही हैं या थे। तुम्हारा जैसा ही कदाचित् मालवीयजी का भी विचार होता, तो वे कदापि वकील न बनते। तुम जानते हो कि पण्डित विशननारायण दर कौन हैं? वे भी बारिस्टरी अर्थात् विकालत ही कर रहे हैं। यू. पी. की बात जाने दो, पञ्जाब ही को लो, अब न करें यह दूसरी बात है. पर पहिले लाला लाजपत राय भी विकालत ही किया करते थे। प्लीडरों को ही आज भारत के लीडर होने का सौभाग्य प्राप्त है। जब जी चाहा "प" हटाया और झट लीडर बन गये। तुम अभी बच्चे हो, शोक है कि तुम कुछ नीच ऊंच को नहीं समझते।

प्रेम०—यह सब कुछ ठीक होने पर भी मेरा जी इंगलेंड की सैर को चाहता है। आप जो कुछ भी कहेंगे, मैं अपनी शठता से यही एक उत्तर दूँगा।

राधा०—भैया! समुद्रयात्रा तो हमारे शास्त्रों से मना है। क्या तुम उनपर एकदम हरताल लगाओगे?

प्रेम०—यदि यही बात है, तो मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने समुद्र-यात्रा क्यों की?

राधा०—तुम नहीं समझते, उस समय समुद्र यात्रा करना मना न था। दूसरे वे सर्वशक्तिमान थे। उन्होंने समुद्र का पुल बाँध दिया था। पर तुम हो जो उनकी हिरस करना चाहते हो।

प्रेम०—मेरी राय में तो ये क़ानून पहिले आदमियों के लिये थे। समय है कि अब इनकी ज़रूरत नहीं। देश, काल को देख कर भी तो क्या हुवा करती है।

राधा०—(क्रोध को मन ही मनमें रोककर) हाँ! जो तुम कहते हो, ठीक है। अच्छा जैसी तुम्हारी मरज़ी!! इसी का प्रबन्ध किया जायगा।

पुरानी लकीर के फ़क़ीर पिता के उपदेश का जीचले पुत्र पर कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने बहुतेरा समझाया पर इन्होंने एक न मानी सच है—

"क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्?"

लाचार पं० राधाचन्द्र को उसी तरफ़ कोशिश करनी पड़ी। उन्होंने बहुत चाहा, और यथाशक्ति सई सिफ़ारिशें भी करायीं कि इनका प्यारा पुत्र इङ्गलेंड जाने पर आई. सी. एस. (I. C. S.) की कक्षा में भरती हो जाय। पर ऐसा नहीं हुवा पंजाब गवर्नमेंट, इसके लिये इससे पहिले एक सज्जन को निर्वाचित कर चुकी थी। विवश होकर "प्रेमचन्द्र को बारिस्टरी में शरीक करा दिया जाय" यही मित्रमण्डली की पं० राधाचन्द्र को सलाह मिली।

पिता ने पुत्र से कह दिया कि अच्छा! शौक से इङ्गलेंड जावो। अकतूबर के पहिले हफ़्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज़ में तुम्हें बम्बई से लण्डन के लिये प्रस्थान कर देना चाहिये ! और यहाँ से २६ (सितम्बर) ही को चले जावो। देखना, एक बात कहे देता हूँ। लण्डन के कालिजों में बोर्डिङ्ग नहीं होते, अतः वहाँ बाहर के विद्यार्थी, होटलों या कुटुम्बों में रहा करते हैं। तुम होटल में न रहना, किसी कुटुम्ब में रहना ! होटल में रहने की अपेक्षा किसी कुटुम्ब में रहना बड़ा अच्छा है। यह बात मुझे अपने कई अनुभवी मित्रों से मालूम हुवी है। तुम भी इस बात का वहाँ जाकर स्वयं अनुभव कर लोगे। अब हम कल हैदराबाद चले जायेंगे। ध्यान करके नियत तिथि को बम्बई पहुँच जाना !

(४)

प्रेम बाबू का आज बम्बई जाने का दिन है। दूर दूर से आकर मित्र मिल रहे हैं। कल तक तो इनका चाँद का सा मुखड़ा लण्डन की सैर के उत्साह से प्रसन्न मालूम होता था। परन्तु आज यह विचित्र ऊहापोह में निमग्न हैं। दिल में पछताते हैं कि मैंने फ़िज़ूल ही पिताजी से, उनके मना करने पर भी, इङ्गलेंड जाने के लिये हठ की। अपनी नयी प्राणप्रिया के वियोग की आने वाली लम्बी लम्बी कहानियाँ इनके सामने आकर मण्डलाने लगीं।

इतने ही में इनके श्वसुर पण्डित यादवकुमार भी इनके पास आये। उन्हें देखकर इन से न रहा गया। न मालूम इन्हें अचानक ही क्या याद आ गयी कि ये रोने लगे।

यादवकुमार बड़े चकराये, कि यह क्या मामला है ? परन्तु इन्हें ज़रा विचारने से मालूम होगया कि लड़का आज काली कोसों दूर इंगलेंड के लिये प्रस्थान कर रहा है। सम्भवतः इसका दिल कचिया गया हो।

ये इन्हें ढारस बँधाने लगे—बेटा ! घबराने की कोई बात नहीं है। देखते नहीं ! हज़ारों भारतीय-युवक पढ़ने के लिये इंगलेंड जाते हैं। जिस कालिज में भी तुम भरती होगे बीसियों अपने देशी भाई तुम्हें वहीं मिल जायेंगे। यहाँ से बम्बई तक चन्द्रवती और हम तुम्हारे साथ चलेंगे।

पिछले वाक्य को सुनकर प्रेम को कुछ सन्तोष हो आया।

डेढ़ बजे की ट्रेन से चलना स्थिर हुआ। यादवकुमार भोजन पाने के लिये चले गये। और चलते समय प्रेम बाबू से कह गये कि अपना अस्तरा बिस्तरा बाँध रक्खो। मैं अभी भोजन करके आता हूँ।

यादवकुमार के चले जाने पर प्रेम भी भोजन पाने के लिये भीतर गये। थाल परस कर इनके सामने रक्खा गया। इङ्गलेंड जाने के उत्साह से कहिये या दुःख से, इनसे भोजन कुछ भी कम नहीं हुवा, जैसे का तैसा थाल में रक्खा रहा। प्राणप्रिया के बार बार पूँछने पर भी इनसे यह न कहा गया, कि वह क्यों भोजन नहीं पाते। अस्तु ! यादवकुमार भोजन पाकर आगये। फ़िटन तैयार होगयी, और उसमें प्रेम, चन्द्रवती तथा यादवकुमार बैठ गये। पीछे एक नौकर भी खड़ा हो गया। बैठ जाने पर फ़िटन "टन टन" करती हुवी स्टीशन की तरफ़ चल दी। स्टीशन पर पहुँच कर यादवकुमार टिकट ख़रीद लाये। और तीनों रेल में सवार होगये। बम्बई पहुँच कर ये एक धर्मशाला में उतर गये। और कम्पनी से जहाज़ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकट ख़रीदने की बात चीत की। यादवकुमार के किसी काम को शहर में जाने पर प्रेम अपनी प्रिया से यूँ कहने लगे—

प्यारी! सच जानो। तुम्हें छोड़कर जाने को जी नहीं चाहता, क्या करूँ लाचार हूँ।

चन्द्रवती—घबराइये नहीं। यह कोई ऐसी बात नहीं है। दो बरस बाद तो आप लौट ही आयेंगे। हाँ! एक बात कहती हूँ। बुरा न मानना! मुझे भूलियेगा नहीं। और कहते शरम मालूम होती है कि किसी लेडी से भी वहाँ मन न मिला लीजियेगा! वहाँ की ऐसी ही प्रथा मैंने सुन रक्खी है।

प्रेम०—नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता! यह बिलकुल असम्भव है!! प्रेम-कुमुद, कभी भी चन्द्रवती-निशा के अतिरिक्त नहीं खिल सकता!

चन्द्रवती—अच्छी बात है, देख लूँगी। मेरे पास हर मास पत्र भेजते रहना।

प्रेम०—हाँ! ऐसा ही होगा।

यादवकुमार आगये। जहाज़ में बैठने की तैयारियाँ होने लगीं। बन्दर पर पहुँचे और प्रेमचन्द्र, दोनों से यथायोग्य मिलकर जहाज़ में सवार हो गये। और जहाज़ में सवार होकर, कै आदि साधारण कठिनाइयों को झेलते हुवे, ये लण्डन पहुँच गये।

(५)

लण्डन के ला कालिज में "प्रेमचन्द्र चातुर्वेदी" की बुद्धि की बड़ी धूमधाम थी। क्या योरपियन और क्या भारतीय, सभी विद्यार्थी चतुर्वेदी के चातुर्य का सिक्का मानते थे। मासिक, त्रैमासिक आदि सब परीक्षाओं में ये सबसे फ़र्स्ट करते थे।

लण्डन पहुँच कर ये अपने पिता की आ नुसार एक कुटुम्ब में ठहराव ठहरा कर रहने थे। अब इन्होंने कालिज की नियमित पढ़ाई स करली थी। ये बारिस्टर बन चुके थे। क थी केवल भारत में आने की, और आकर वा स्टरी करने की।

[६]

"अब मैं इसी सप्ताह के जहाज़ में भारत ज वाला हूँ"

"हाँ! मुझे मालूम है। पर इस कहने से तुम्हारा यह मतलब है कि मैं तुम्हारे साथ न चल

"नहीं, इससे मेरा मतलब यह है कि तु चलने के लिये तैयार होजाना चाहिये! और अप घरवालों से भी पूँछ देखना चाहिये!"

"अच्छा! यह सब कुछ हो जायगा, पर ए बात है। बुरा न मानना। इसमें कुछ विश्व अविश्वास की बात नहीं है, तुम्हें एक इक़रारना लिख कर मुझे दे देना होगा।"

"वह कैसा?"

"यह कि—ईश्वर न करे तुम्हारा मेरा ग निभाव न हो सके—तुम मुझे न चाहो, तो सारे जीवन का ख़र्च तुम्हें देना पड़ेगा।"

"हाँ, मैं यह लिखने के लिये तैयार हूँ, क्यों ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।"

"अच्छा लावो! मुझे लिख कर दे दो। चलने का सामान करती हूँ"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७]

मिस्टर प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी बारिस्टर एट-ला को फ़ैन्सी सामान ख़रीदने का बड़ा शौक़ था। एतदर्थ यह प्रायः ऐसी दूकानों पर जाया करते थे। जाते जाते एक दूकान पर एक युवति से इनकी आँखें लड़ गयीं। इसका नाम था "मिस बैक्ली"। परन्तु यह इसे बेकली कह कर पुकारा करते थे। सच पूँछिये, तो था भी वस्तुतः ऐसा ही। एक दिन भी यदि मिस बैक्ली से इनकी मुलाक़ात न होती तो इन्हें बेकली हो जाती। बैक्ली को ये भारत लाना चाहते थे। इस विषय में इनकी जो बातें हुवीं उन्हें पाठक पढ़ चुके हैं। विवश होकर इन्होंने इक़रारनामा लिख कर दे दिया था।

सोमवार को सब लोगों से बिदा होकर मिस्टर प्रेमचन्द्र अपनी "बेकली" साथ लेकर जहाज़ में सवार होगये। इनके सवार होने से कई दिन पहिले ५ जनवरी (सन् १५) के दैनिक भारतमित्र में छप गया था कि—

"मिस्टर प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी बी० ए०, जो सन् १२ में पंजाब भर में बी० ए० में फ़र्स्ट रहे थे बारिस्टरी पास करके भारत वापस आ रहे हैं। और आप २३ जनवरी को आनेवाले जहाज़ से बम्बई उतरेंगे।"

२३ जनवरी को जहाज़ बम्बई आया। और ये दोनों प्रेम के मतवाले, उसमें से उतर कर सीधे गाड़ी में सवार होकर देहली आये।

हाँ! हम यह बात यहाँ लिखना भूल ही गये कि मिस्टर प्रेम ने श्रीमती बेकली को बम्बई की ख़ूब सैर करायी और फिर बाद को देहली आये।

देहली के इस्टीशन पर इनका बड़ी सज धज के साथ स्वागत किया गया। इनके मित्रों के सिवा शहर के बड़े बड़े रईस भी आये।

घर पहुँचने पर ज़रा देर आराम करके भोजन का तक़ाज़ा हुवा। अपनी मेहमान श्रीमती बेकली के साथ मिस्टर चतुर्वेदी ने भोजन पाया। बेकली को अपनी अवस्था में शायद यह पहिला ही अवसर था कि इसे देशी खाना खाना पड़ा हो।

पाठक चकित होंगे कि बेकली को यहाँ मेहमान क्यों बतलाया गया। इसका कारण, हमें मिस्टर चतुर्वेदी का आदेश है। आपने अपनी पहिली प्यारी स्त्री तथा मित्रों के पूँछने पर कि "यह कौन है?" बतलाया था कि यह हमारी मेहमान है। मेहमान को रहते हुवे जब तीन महीने बीत गये, तब चन्द्रवती ने एक दिन मिस्टर चतुर्वेदी से पूँछा—

"अब यह आपकी मेहमान कब कहीं जायेंगी?"

प्रेम०—(शरमाते और मुसकराते हुवे) क्या बतलाऊँ कब जायेंगी।

चन्द्रवती—साफ़ साफ़ क्यों नहीं कह देते! क्या बात है?

प्रेम०—कहते शरम आती है, क्षमा करना! इसे मैं साथ लिवा कर लाया हूँ।

चन्द्रवती यह सुन कर आगबबूला हो गयी, और कहने लगी, क्या यही इक़रार था?

[८]

१० मई सन् १५ को पण्डित राधाचन्द्र सबजज, हैदराबाद को एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमपूज्य पिताजी !

यह तो आपको मालूम ही होगा कि आपके पुत्र, विलायत से बारिस्टरी पास करके आ गये हैं। सम्भवतः आपको यह न मालूम हो कि आपके प्यारे पुत्र, अपने लिये एक "बेकली" का तोफ़ा साथ लाये हैं। आपका यहाँ शीघ्र ही आना आवश्यक है।

आपकी—

पुत्रवधू

पत्र को पढ़ कर राधाचन्द्र बड़े चकराये, और झट ही तार द्वारा छुट्टी की प्रार्थना कर देहली आये। शाम की गाड़ी से आप देहली आये थे। प्रेम मकान पर नहीं थे। वे बेकली को लेकर हवा-ख़ोरी के लिये गये थे।

राधाचन्द्र सीधे घर में आये। यहाँ इन्हें सारी बातें मालूम होगयीं, अब इन्हें यह फ़िक्र हुवी कि जैसे भी हो इस बेकली को दूर करना चाहिये।

८ बजे के बाद मिस्टर प्रेम बेकली समेत मकान पर वापस आये। अचानक ही पिता को देख कर बड़े सटपटाये कि यह क्या मामला है? दूर ही से पिता को झुक कर प्रणाम किया और बैठ गये।

राधा०—(सहज में) यह बाहर जो खड़ी है, कौन है ?

प्रेम०—यह एक मेहमान हैं। बम्बई से इनका और मेरा साथ होगया था। देहली की सैर करने के लिये आयी हैं। मिस बैक्ली इनका नाम है।

राधा०—इन बातों से क्या परिणाम ? सच बतलाओ ? क्या बात है ?

प्रेमचन्द्र यह सुन कर चुप हो रहे।

पिता कहने लगे—बेटा ! अच्छा है। जो हुवा सो हुवा। अब इस बेकली को बिदा कर इसमें बड़ी बदनामी है। मुँह दिखाने को कहीं जगह न रहेगी। नव्वाब साहिब ने सुन पा तो न मालूम वह क्या कुछ कहेंगे।

आज्ञाकारी पुत्र की यह बात कुछ समझ आगयी। अब इन्हें बेकली को दूर करने सूझी।

प्रेम को अब बेकली की पहिली सी बेक नहीं रही। बेकली को वह पहिला सा प्रेम का न देखकर सन्देह हुवा। ऐसी ही दशा में २ म बीत गये। बेकली से यह रूखा बर्ताव न सहा ग एक दिन बोली—

प्रेम ! अब तुम्हारा वह पहिला सा प्रेम रहा। क्या बात है ?

प्रेम०—नहीं, मेरा प्रेम तो पहिला ही सा है नहीं समझता कि तुमने यह कैसे समझ लिया

बेकली—तुम्हारी बातों से। तुम्हारे पि तुम से क्या कहा था ?

प्रेम०—घर गृहस्थ की बातें थीं जो तुमसे कही जासकतीं।

बेकली—हाँ अब मैं ऐसी ही होगयी हूँ मुझसे घर-गृहस्थ की बातें नहीं कही जासक वे दूकान की बातें याद हैं ? अच्छा ! फिर बा क्या है, तुम यदि मुझसे प्रेम नहीं रखना च तो न सही, मैं जाती हूं। लाइये, मेरा ठहरा सारा ख़र्च।

प्रेम—वह कितना ?

बेकली—सवा इकतीस हज़ार रुपये।

प्रेम०—इतने तो शायद मैं न दे सकूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेकली० — अच्छा, न दीजिये, लण्डन के हाई-कोर्ट में दीजियेगा। मैं जाती हूँ। मेरा सलाम है।

यह कहकर मिस बैक्ली सीधी बम्बई गयीं। और वहाँ से जहाज़ में सवार होकर लण्डन पहुँचीं। लण्डन पहुँच कर अभी सितम्बर के महीने में इन्होंने हाईकोर्ट में, मिस्टर प्रेमचन्द्र चतुर्वेदी बी. ए. बारिष्टर एट. ला साकिन देहली पर सवाइकत्तीस हज़ार की नालिश दायर की है। मिस्टर "कुमुद" के नाम भी, गवाही का समन आया है।

देखिये इस मुक़दमे में क्या होता है?

"कुमुद"

मदालसा और ऋतुध्वज

[१]

महाकुलोत्पन्न, युवा, गुणान्वित,
सुवेष शौर्य्य-श्रुत-शिल्प-शीलवान्।
अशेष,-नारी,-रमनीय-दर्शन,
ऋतुध्वज, क्षत्रिय-पुत्र, एक, था॥

[२]

निशाचरों के, बहु, विघ्न, देख कै,
अविघ्न से, यज्ञ-समाप्ति, के, लिए।
विचार, पर्य्याप्त, मुनीश, गालव,
उसे, बुलाया, निज-वास, पास में॥

[३]

वराहरूपी, मख-विघ्न-कारण,
सुराङ्गना-चोर, निशाचरेन्द्र को।
बलिष्ठ, धर्म्मी, उस, राजपुत्र ने,
किया, गत-प्राण, सु-बाण-पात, से॥

[४]

सुकीर्ति, पाए, निज-शत्रु-नाश से,
प्रसन्न-धी, आशिष से, मुनीन्द्र की।
वनान्त-शोभा-अवलोक कौतुकी,
विहार के, हेतु, चला, महीन्द्र-ज *

[५]

दिगन्त में, घूम, कुमार, धूम से,
सुदूर-उद्यान, विलोकता हुआ।
चला, अकेला, उस-बाग़-पास में,
मनोज्ञता, देख, विनोद-हेतु से॥

[६]

नता, फलों से हँसती, प्रसून से,
पुकारती, भृङ्ग-पतङ्ग-शब्द से।
विलोल-शाखाङ्गुलि से, बुलावती,
प्रिया-सखी, तुल्य, लखी, वन-द्युति॥

[७]

प्रभाव से, निर्जित, रोक, ना, सकी,
कुमार को, द्वार-नियुक्त-राक्षसी।
प्रविष्ट, हो, बीच, विचित्र-बाग़ के,
महीप ने, अद्भुत, सौध, है लखा॥

[८]

विशाल से, आँगन में, सु-हर्म्य के,
तहाँ, खड़ी, फुल्ल, अशोक के तले।
विशाल-रूपा, तरुणी, गुणा-न्विता,
कुमारिका, दीख पड़ी, कुमार को॥

[९]

कुमार, माराकृति† को, रती समा,
कुछेक, नीचे, नयनों, निहारती।
मुखेन्दु, लज्जा-नत, एक-हाथ से,
उभारती सी, विमुखी, अवस्थिता॥

---

* ऋतुध्वज † कामदेव के सी आकृतिवाले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०]

भुजा, उठाने, मिष, चित्र शाटिका,
उभारकै, जो, नत, अंसपै, धरी।
कराब्ज, पार्श्व, स्तन, बाहु-बल्लरी,
प्रकाश को, ये, शुभ, गुप्त, रीति, की॥

[११]

कुमारिका की, मृदुता, मनोज्ञता,
विलासिता, सुस्मितता, विमुग्धता।
विलोक, भूमी-पति-पुत्र, हो गया,
विचेष्टसा, विस्मितसा, विमूढसा॥

[१२]

धरे हुए, दक्षिण-हस्त, वक्ष पै,
करे हुए, लोचन-युग्म, मुद्रित।
अनङ्ग-बाण-व्रण-खिन्न, चित्त की,
दशा, करै, वर्णन, अक्षरों, विना॥

[१३]

अधीरता को, तज, सावधान, हो,
मही-प, बोला, फिर, दीर्घ-काल में।
प्रिये, कहो कौन, विशुद्ध-वंश में?,
तनू, धरी, कौन, पवित्र, नाम, है?॥

[१४]

अरण्य में, निर्जन में, निवास का,
कहो, न, क्यों, सुन्दरि! कौन, काम है?।
तभी, कुमारी-रुख, पाय, भूप से,
कही, कथा, सर्व बुझाय, राक्षसी॥

[१५]

मदालसा, नाम, मराल-गामिनी,
प्रसूत, गन्धर्व-कुल-प्रवाह में।
प्रभूत-रूपा, हरकै, निशाट* ने,
यहाँ, छिपाई, निज-बाग़-बीच में॥

[१६]

कुमार ने, ये, सुनकै, प्रसन्न, हो,
कथा, सुनाई अपनी, समस्त ही।
डरो, न, भीरू! वह राक्षसा-धम,
मरा, महा-बाण-प्रहार से, मम॥

[१७]

मदालसा, शुद्ध-चरित्र, भूप ने,
विवाह-गन्धर्व-विधान से, गही।
पुनः सपत्नीक, कृती, ऋतु-ध्वज,
स्व-राज-धानी-बिच, लौट, आ गया।

[१८]

अनेक, आनन्द, विलास, भोग से,
कुछी, दिनों, बाद, अतृप्त, भूमि प।
मही-सुरों के, ऋतु के, अविघ्न के,
निमित्त, कीनी, पृथिवी-परिक्रमा॥

[१९]

वराह-रूपी, मृत, राक्षसे-न्द्र के,
सुबन्धु ने, वेष, धरा, मुनीश का।
समीप, जा, भूपति के, विदेश में,
गहा, महाभूषण, एक, कण्ठ का॥

[२०]

निशाचरों से, लड़ता, विदेश में,
गया, पुरी को, यम की, मही-पति।
दिखाय कै, भूषण, राज-वास में,
प्रसिद्ध की, झूठ, कथा, कुबुद्धि* ने।

[२१]

मदालसा ने, सुन, नाथ की, मृति,
किया, उसी, काल, शरीर भस्मस

*निशाचर।

*मुनिवेषधारी राक्षस ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद के नवाब साहिब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवृत्त, होकै, घर, आ, महीपने,
समस्त, जाना, छल, यातुधान*का ॥

[२२]

मदालसा, जान, मरी, पति-व्रता,
अनन्त, ही, शोक, किया, क्षितीशने।
विवाह का, छोड़, विचार, दूसरे,
विरक्त हो, पालन, लोक का, करा ॥

[२३]

अनेक, थे, मित्र, मही, महेन्द्र के,
परन्तु, दो, आत्मज, नाग-राज के।
वयस्य, अत्यन्त, हि, थे, स्व-लोक में,
कही, पिता से, यह, सर्व, बात, जा ॥

[२४]

किया, शिवा-राधन, नाग-राज ने,
पुनः, जिलाई, शिव ने, मदालसा।
मदालसा, को, घर, लाय, नागने,
बुलाय, भाषा, नृ-पती, ऋतु-ध्वज ॥

[२५]

कहो, सुहाती, चित वस्तु, कौनसी,
करूँ, वही, मैं, तुमको, उपस्थित।
प्रणाम के, बाद, कहा, ऋतुध्वज,
समस्त, है, मोहि, कछू, न, चाहता ॥

[२६]

विचार कै, मानस दुःख, भूपका,
करी, खड़ी, सम्मुख, ला, मदालसा।
हुआ उसे, देख, महीश, विस्मित,
कहा, सभी, सत्य, उदन्त†, नागने ॥

[२७]

मदालसा, पाकर, नागराज से,
पुनः गया, गेह, नरेन्द्र, तुष्ट हो।
किया मही-पालन, दीर्घ, काल, लो,
हुए गुणी, चारु, तनूज, चार, थे ॥

[२८]

मदालसा ने, सुत, तीन, पूर्वज,
प्रबोध, दे, जन्म-समान-काल, ही।
प्रबुद्ध कीने, इस, भाँति, वे, हुए,
विदेह, शुद्धात्म-निविष्ट, अव्यय ॥

[२९]

अलर्क, छोटे, सुत को, महीन्द्र ने,
विलोक कै, बोधित, की, मदालसा।
इसै, न, देना, उपदेश, तत्त्व का,
सभी, सिखाना, व्यवहार-चातुरी ॥

[३०]

अवार्य, आज्ञा, पति की, विचार के,
पतिव्रता, तुर्य,* अलर्क, पुत्रको।
प्रवृत्ति-शास्त्रादि, लगी सिखावने,
सुपुत्र ने, राज्य, किया, प्रबन्ध से ॥

[३१]

अलर्क, भी, त्याग, नृपत्व, अन्त में,
विरक्त, हो, ब्रह्म-समाधि, धारके।
प्रबोध, पाकै, जननी-मुखाब्ज से,
स्वपूर्वजों के, सम, शान्त, होगया ॥

[३२]

मदालसाकी, यह, शोभना, कथा,
करै, न, जी को, किसके, मुदान्वित।
ऋतु-ध्वज, क्षत्रिय, कीर्त्ति-सद्ध्वज,
लगै, न, नीका, किसके, विचार में ॥

वासुदेव उपाध्याय

---

* राक्षस। † समाचार।

* चौथे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय

१—हमारे वस्त्र

शरीर को ढाँपने के सिवा, वस्त्र को देश, प्रान्त और जाति के पहिचानने का भी एक साधन बतलाया जाता है। वस्त्रों को देख कर सहज ही में यह पता लगाया जा सकता है कि इनका पहिनने वाला, किस जाति या देश का रहनेवाला है। हमारे पूर्वजों ने वस्त्रों को धर्मानुकूल बनाने का क़ानून बना दिया था। परन्तु आज वह मर्यादा—सर्वज्ञ महर्षियों का वह क़ानून—लुप्तप्राय दीखता है। सारे भारतवर्ष के साधारणतया, और हिन्दुओं के विशेषतः, वे पहिले से वस्त्र नहीं रहे। यू. पी. की पचमेल को जाने दीजिये, जिसे देखियेगा, कोट, बूट, पतलून और हैट से आवेष्टित ही मिलेगा। नयी रोशनी के सभ्य पुरुषों ने, सभ्यता और स्वतन्त्रता की आड़ में ऐसे वस्त्रों का बड़े ज़ोर के साथ पहिनना प्रारम्भ कर दिया है जो न केवल धर्म ही के, प्रत्युत यहाँ के जलवायु के भी विरुद्ध हैं। योगिराज कृष्ण के कथनानुसार—"यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" जब हमारे सुधारक ही धर्मानुकूल वस्त्र नहीं पहिनते तो साधारण लोग कैसे पहिन सकते हैं?

हमारा पहिनावा तो बिगड़ा ही, हमारी स्त्रियों का पहिनावा भी बिगड़ा और बिगड़ रहा है। किस देश-हितैषी का हृदय, हमारी स्त्रियों का और वेश्याओं का एक सा पहिनावा देख कर न धधक उठेगा? बारीक रेशमी जाली का दुपट्टा ओढ़ कर जो दिखावे का घूँघट निकाला जाता है वह कितना बनावटी है? पढ़ी लिखी स्त्रियों में यह बात और भी ग़ज़ब ढा रही है। वे स्त्रियाँ, का क्या ख़ाक काम कर सकती हैं जिन्हें समय अपनी रेशमी साड़ी पर धब्बा लग जा का भय रहता है और जो अपनी क़मीस ही सँवारने में लगी रहती हैं? भला बतलाइये तो एक निर्धन के घर में, एक साधारण दूकानदार घर में, और एक पन्द्रह बीस रुपया पानेवा क्लार्क के घर में ऐसी स्त्रियाँ कैसे निर्वाह सकती हैं?

यह देख कर बड़ा दुःख होता है कि रो प्रति दिन बढ़ता जा रहा है, और वैद्य महाराज पता नहीं।

आज कल के सभ्यमानियों ने—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनै

मनु महाराज के इन वाक्यों से अनुचित ला उठाया है। सर्वांश में वस्त्रों की तरफ़ ध्यान जाने के कारण परिणाम यह हुवा कि गहने स्थान भी वस्त्रों ने ही छीन लिया। जिस हि घराने में गहना आपत्ति के समय सचमुच "स यक फंड" का काम देता था वहाँ आज काँच की चूड़ियों के सिवा, कुछ न मिलेगा चाँदी की तो कुछ पूँछिये ही नहीं, यह बेचारी चार दिन की चाँदनी हो गयी। सोने को भी कोई नहीं पूँछता। बहुत हुवा तो आप "गोल्ड" की एक आध अँगूठी देखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन हिन्दु, सोने का पहिनना धर्म का अंग समझते थे। परन्तु आज हम बिलकुल एक उल्टे मार्ग पर चल रहे हैं।

हमारी विवाहिता स्त्रियों की तरह हमारी विधवाओं का पहिनावा भी बहुत बिगड़ रहा है। उन्हें रंगीन कपड़े कदापि न पहिनने चाहियें।

हमारी राय में समाचार-पत्र पत्रिकाओं में, इस विषय पर बड़े ज़ोर के साथ आन्दोलन होना चाहिये। ख़ुशी की बात है कि सहयोगी "देश" और "प्रकाश" का इस तरफ़ ध्यान हुवा है।

*

२—सर फ़ीरोज़शाह मेहता

इस से पहिली संख्या में पाठक, सर हनरी काटन के देहान्त का हृदयविदारक समाचार पढ़ चुके हैं। नवंबर का महीना भी ऐसी ही ख़बर सुनाये बिना न रह सका। इसे, भारत के सच्चे हितैषी, स्पष्ट वक्ता और गवर्नमेंटीय कार्यों के तीव्र समालोचक प्रसिद्ध पारसी सर फ़ीरोज़शाह मेहता के दुःखद मृत्यु का समाचार सुनाने का दुर्भाग्य प्राप्त हुवा।

माननीय ऋषिकल्प दादाभाईनौरोजी को छोड़ कर, राजा और प्रजा दोनों की निगाहों में स्वर्गीय की सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी। कांग्रेस के भी आप एक बार सभापति बनाये गये थे। यह बड़ी से बड़ी प्रतिष्ठा है, जो भारतवासियों की तरफ़ से अपने किसी सच्चे लीडर को दी जा सकती है। बम्बई म्यूनीसपिल कमेटी के कई बार आप प्रधान चुने गये। गवर्नमेंट ने आपकी योग्यता के उपलक्ष में आपको के० सी० आई० ई० की उपधि से विभूषित किया था और बम्बई यूनिवरसिटी का वाइस चान्सलर नियत किया था। छोटे और बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के भी आप सदस्य रहे। बम्बई में आप एक सिद्ध-हस्त बारिस्टर माने जाते थे।

महात्मा गोखले और सर हनरीकाटन के देहान्त के बाद ही, सर फ़ीरोज़शाह मेहता का देहान्त, वस्तुतः भारत के लिए बड़ा दुःखदायी है।

आपकी मृत्यु पर शोक-प्रकाशनार्थ, भारत के सब बड़े बड़े नगरों में सभायें की गयीं। लण्डन में भी एतदर्थ एक सभा का संगठन हुवा।

*

३—बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?

"भूखा आदमी क्या कुछ पाप नहीं कर डालता"? इस उक्ति का उदाहरण हमें नवद्वीप के समाचार से मिला है।

वहाँ एक युवति चमारी पर मुक़दमा क़ायम हुवा था कि इसने अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे को स्वयं मार डालने का यत्न किया। इसने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और कहा कि मेरा पति बहुत दिनों से रोगी था और मुझे स्वयं चार दिन से कुछ खाने को न मिला था। मैंने ऐसी दशा में यही उचित समझा कि इस आपत्ति के जीवन को समाप्त ही कर दिया जाय। एतदर्थ मैंने पहिले बच्चे के गले पर चाकू मारा और फिर अपनी गरदन पर। परन्तु घाव पूरे नहीं लगे। दोनों बच गये। अदालत ने इस मामले को सिशन मैं भेज दिया। सिशन जज का दुःखिता अभियुक्ता की कहानी सुन कर चित्त आर्द्र होगया। और उन्होंने चमारी को एक दिन की क़ैद अर्थात् कचहरी होने तक के समय का दंड दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवद्वीप की जनता आपके इस फ़ैसले पर आपकी प्रशंसा करती है।

*

४—विद्यार्थियों को सुभीता

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, अपने विद्यार्थियों के लिये, अब कुछ दिनों से बड़े सुभीते के काम कर रही है। पहिले एम. ए. और एम. एस. सी. की परीक्षा में प्रथम नम्बर में पास होनेवाले विद्यार्थियों को सैकड़े पीछे ७० नम्बर प्राप्त करने पड़ते थे। यूनिवर्सिटी ने संख्या घटा कर अब वे ६५ कर दिये हैं। तथा शास्त्री, मुन्शीफ़ाज़िल और मौलवी फ़ाज़िलों को यूनिवर्सिटी ने केवल अङ्गरेज़ी में बी० ए० की परीक्षा देने की आज्ञा दे रक्खी थी। परन्तु ऐसे लोगों को बी० ए० पास कर चुकने पर भी प्रोफ़ेसरी के सिवा कोई दूसरा मार्ग न था। सर्वसाधारण में, ऐसा करने से बड़ी बेचैनी थी कि क्यों इन लोगों के साथ जो अपनी योग्यता का एक नहीं दो बार या यूँ कहना चाहिये कि एक भाषा में नहीं दो भाषाओं में परिचय देकर उत्तीर्णता प्राप्त करते हैं, ऐसा अन्याय किया जाता है? अब मालूम होता है कि यूनिवर्सिटी के अधिकारियों ने भी सर्वसाधारण की इस बेचैनी को न्यायोचित समझ लिया। और अब यह फ़ैसला होगया है कि ऐसे विद्यार्थियों को, जिन्होंने शास्त्री, या मौलवी फ़ाज़िल आदि परीक्षा पास करके केवल इंगलिश में बी० ए० पास कर लिया है, बी० ए० के सारे के सारे अधिकार प्राप्त होंगे और उनकी सनद में बी० ए० पास ग्रेजुएटों से कोई भी न्यूनता न रक्खी जायगी।

इसका मतलब, हम यह समझते हैं कि ये लोग अब हरेक मद में जा सकेंगे। निःसन्देह पञ्जाब यूनिवर्सिटी का यह फ़ैसला, विद्यार्थियों के लिये उत्साह-वर्धक है। एतदर्थ हम यूनिवर्सिटी के अधिकारियों का धन्यवाद करते हैं। हम चाहते हैं कि इन लोगों को, "बी० ए० की परीक्षा कालिज ही में रह कर दी जा सकती है" इस नियम से भी मुक्त कर दिया जाय? वे चाहें तो प्राइवेट रूप से उसमें सम्मिलित हो सकें। ऐसा करने से यूनिवर्सिटी की कुछ हानि नहीं, और विद्यार्थियों को बड़ा लाभ है। क्या ही अच्छा हो यदि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी भी पंजाब यूनिवर्सिटी की इस लोकोपकारिणी सरणि का अनुसरण करे।

*

५—उपाधियों पर टैक्स का प्रस्ताव

बहुत से हिन्दुस्तानी रईस उपाधि प्राप्त करने की लालसा में हज़ारों रुपया दावतों पर ख़र्च कर डालते हैं। और तो और म्यूनिसिपल कमिश्नरी के लिये भी वे, परचियों का सौदा करते हैं, ज़रा नहीं झिझकते! इन्हीं का ध्यान कर शायद मिस्टर रिडक्लफ़ ने "इंगलिशरिव्यू" में आमदनी बढ़ाने का यह प्रस्ताव किया है कि उपाधियों पर टैक्स लगाया जाय। आपकी राय में लण्डन ऐसे मनुष्य पेश कर सकता है जो डेढ़ लाख रुपया प्रतिवर्ष देकर अपने को डयूक की उपाधि से विभूषित करना स्वीकार कर लें। और ऐसे टैक्सों में बड़ी आसानी भी है क्योंकि यह टैक्स सर्वसाधारण से वसूल होनेवाला टैक्स नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवासियों की इच्छा पूरी करने के ख़याल से "टाइम्स" ने राय दी है कि यह प्रस्ताव भारत वर्ष में अ.ए भी ज़्यादा अच्छा रहेगा। नाइट तथा बैरन के उपाधि-धारी बीस हज़ार रुपया प्रतिवर्ष, बड़ी प्रसन्नता के साथ दे सकेंगे। इसी तरह राय-बहादुर, रायसाहिब, खांसाहिब और महामहोपाध्याय आदि भी अपनी अपनी हैसियत के अनुसार दे सकेंगे। अनुमान है कि यह प्रस्ताव यदि स्वीकृत हो गया तो अकेली बम्बई से ही २६ लाख रुपया प्रति वर्ष मिल सकता है।

सचमुच यदि ऐसा हो जाय, तब तो फिर गाँव गाँव में उपाधिधारी दीखने लगेंगे।

*

६—हैदराबाद के नवाब साहिब

वस्तुतः हैदराबाद के नवाब साहिब बड़े ही सरल-स्वभाव और दीन-दयालु हैं। आप अपने स्वर्गीय पिता ही की सरणि पर चलते रहे हैं और चल रहे हैं। आपकी रियासत में हिन्दु प्रजा भी बहुतायत से रहती है। आपको उसका बड़ा ध्यान रहता है। हिन्दु मुसलमानों के साथ आप का एक सा बरताव है। मसजिदों की तरह मंदिरों के नाम भी जागीरें हैं।

अबकी बार गत ईद के अवसर पर आपने एक दया-प्रदर्शिनी आज्ञा दी कि "गो-बध न किया जाय और हिन्दुओं के सिद्धान्त का सर्वथा ध्यान रक्खा जाय" इस आज्ञा की मुसलमानों ने बड़ी ख़ुशी के साथ तामील की। अब की बार आपके राज्य में मुहर्रम के दिनों में शराब भी नहीं बेची गयी थी। इसके लिये हम आपको हिन्दूजनता की तरफ़ से धन्यवाद समर्पण करते हैं।

*

७—मनोरमा और संस्कृत के पण्डित

संस्कृत के पण्डितों में हिन्दी का प्रचार करना, 'मनोरमा' का मुख्योद्देश्य है। हमने अपने "प्रारम्भिक—निवेदन" में लिखा था कि संस्कृत के पण्डितों में हिन्दी का प्रचार करना कोई सहल काम नहीं है। संस्कृत के पण्डितों की उपाधि-धारिणी संख्या तो अभी अंगुलियों पर ही गिनने लायक़ है, जिसका हिन्दी की ओर ध्यान है। हम, अपने कथन की पुष्टि के लिए एक पंडित जी के पत्र की नक़ल नीचे देते हैं। जिनकी सेवा में मनोरमा भेजी गयी थी और जो अभी उपाधि-धारी नहीं, केवल मध्यमा ही पास किये हुवे हैं।

चन्दौसी

ता० १६-१२-१५

श्रीमन्!

निवेदनमदः। अग्रे (?) मनोरमा पत्रिकाया प्रेक्षणमनावश्यकम् (?) अतो विज्ञापयामि च (?) क्षन्तव्योयमिति।

भवदीयः

\+ \+

प्रधानाध्यापकः वंशीधरपाठशालायाः(?)

आपके शुभनाम से हम 'मनोरमा' को सुशोभित करना नहीं चाहते। यही कारण है कि आप का नाम नहीं लिखा गया है।

बुँ बुँ करके आपने इस साल काशी की मध्यमा पास करली है। अतः इस बात में तो आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं हो सकता कि आप संस्कृत के दिग्गज पण्डित हैं। वस्तुतः आप को हिन्दी की पत्रिका और वह भी अपने ज़िले से निकलनेवाली, कदापि न देखनी चाहिये। संस्कृत के पण्डितों के लिये यह धब्बे की बात है और आपका तो कहना ही क्या है? आपने तो मध्यमा (और फिर इसी साल में) पास की है। आपको तो शायद किरात के तीन सर्ग और माघ के दो सर्गों का मनन करने ही से फ़ुरसत न मिलती होगी!

एक बात को आपने स्पष्ट नहीं किया! इसे भी लिख देते तो अच्छा था कि 'मनोरमा' का देखना आप ही के लिये अनावश्यक है या सब संस्कृत के पंडितों के लिये?

हमें आपके संस्कृत को देख कर भी आश्चर्य होता है। आपके पत्र की नक़ल में जहाँ? चिह्न हैं, ध्यान कीजिये कि वह किस व्याकरण के अनुसार लिखे गये हैं? और कैसी अच्छी शब्द-सङ्गति है? इसका परिहार सम्भवतः मध्यमा की पढ़ाई में कहीं आया हो तो आया हो। और भी हमारे पास एक ऐसी ही चिट्ठी, मुरादाबाद से एक विशारद महाशय की आयी है। अस्तु, न मालूम ईश्वर कब इन लोगों को समझ देगा?

पुस्तक-परिचय

१—नीति वाक्य रत्नावली।

आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १११, मूल्य ।) लेखक, साहित्योपाध्याय पंडित शिवदत्त त्रिपाठी काव्यतीर्थ। अच्छे अच्छे संस्कृत-नीति-वाक्यों का यह संग्रह है। नीचे हिन्दी में अर्थ लिखा गया है और हिन्दी ही में दोहे भी हैं। भाषा साधारण है। काग़ज़ मामूली है। मिलने का पता, पंडित श्रीधर शिवलाल, ज्ञान सागर प्रेस, मुम्बई।

*

२—भाषा भोज प्रबन्ध।

आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १५४, मूल्य ।) लेखक, साहित्योपाध्याय पंडित शिवदत्त त्रिपाठी काव्यतीर्थ। बल्लाल विरचित संस्कृत-भोज-प्रबन्ध का यह गद्य-पद्य-मय हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद की भाषा अच्छी नहीं—पण्डिताऊ भाषा है। पद्य साधारणतया अच्छे हैं पर आपके अनुरूप नहीं। एक साहित्योपाध्याय और काव्यतीर्थ की ऐसी रचना प्रशंसा के योग्य नहीं कही जा सकती। श्लोकों में कहीं कहीं छन्दः-सम्बन्धिनी त्रुटियाँ रह गयी हैं। सम्भवतः इसमें शीघ्रता ही (जैसा कि आपने भूमिका में कहा है) कारण हो। पुस्तक का काग़ज़ अच्छा है। छपाई साफ़ है। पं० राम दत्त त्रिपाठी, हेड-पण्डित मिशन हाई स्कूल अजमेर से यह पुस्तक मिल सकती है।

मनोरम-श्लोक

(१)

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावली विगलिता न च मे विषादः
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य,
तातेति भाषण-पराः खलु वज्रपातः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बूढ़े की उक्ति—

मेरे सिर के सारे बाल सुफ़ेद होगये। होजायें! मुझे इसका कुछ पछतावा नहीं। गालों में झुर्रियां पड़गयीं, पड़जायें! कुछ खेद नहीं। और दांत सारे के सारे गिर गये। गिरजायें, इनका भी कुछ पछतावा नहीं। पछतावा है, केवल इस बात का, कि रास्ते में मुझे देखकर मृग-नयनी युवतियाँ, "बाप"! "बाप" कह कर पुकारने लगती हैं। बस, यही एक बात नहीं सही जाती।

*

(२)

नपुंसकमिति ज्ञात्वा तां प्रति प्रहितं मनः।
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम्॥

एक जी जले की उक्ति—

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि के कथनानुसार मन को नपुंसक समझ कर हमने उसे, उस (नायिका) के पास भेज दिया था। वह दुष्ट, वहीं रमण करने लगा। हाय! हाय!! हमें इस पाणिनि ने ठग लिया। इसी की वजह से हम मारे गये*।

गङ्गाशरण गुप्त

* संस्कृत-व्याकरण में मन शब्द नपुंसक लिंग है। ले०

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"MANORAMA" REG. No. A. 755
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलङ्कार १] माघ १९७२ [ध्वनि ४

मनोरमा

"ऋजुरो वा एष परिशुध्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"
(प्रश्नोपनिषद्)

*

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

*

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

(१) हिन्दी-कादम्बरी १२१

(२) शिशिर-वर्णन [ले० "कविवर" पण्डित वासुदेव उपाध्याय ... १३७

(३) महावीर अर्जुन १३८

(४) महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र शिरोमणि [ले० न्यायोपाध्याय पण्डित दुण्ढिराज शास्त्री १४८

(५) पुरुषार्थ [लेखक "कविवर" पण्डित वासुदेव उपाध्याय ... १५२

(६) हिन्दी-कुमारसम्भव ... १५८

(७) प्रभात [लेखक कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसादशास्त्री, साहित्याचार्य ... १५९

(८) विविध विषय १६०

(९) पुस्तक-परिचय १६५

(१०) मनोरम श्लोक [लेखक बाबू गङ्गाशरण गुप्त १६६

(११) मनोरमा और लोकमत ... १६६

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मू और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने बढ़ाने तथा प करने न करने का अधिकार सम्पादक को

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें, बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौ यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम कार्या मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चा

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आव है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं जायेंगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जा और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्न पूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के वि भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकेगा।

निवेदन

महोदय!

मनोरमा की यह चौथी ध्वनि है। हम जैसा इसका प्रचार करना चाहते हैं, शोक है वैसा प्रचार नहीं हुवा। कई सौ नहीं, कई हज़ार इसकी ग्राहक-संख्या होने की ज़रूरत है। यह आ कृपा के विना होना सर्वथा असम्भव है। कई कई नहीं, केवल एक एक ग्राहक बनाने की भी यदि कृपा करें, तो मनोरमा को और भी मनोरमा बनाने का प्रबन्ध किया जाय। आशा है कि हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

जो सज्जन मनोरमा का ग्राहक बनायेंगे उनका शुभनाम सधन्यवाद प्रकाशित किया जाय

मैनेजर,

मनोरम-कार्यालय, मण्डी धनौरा, (मुरादाबाद) यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

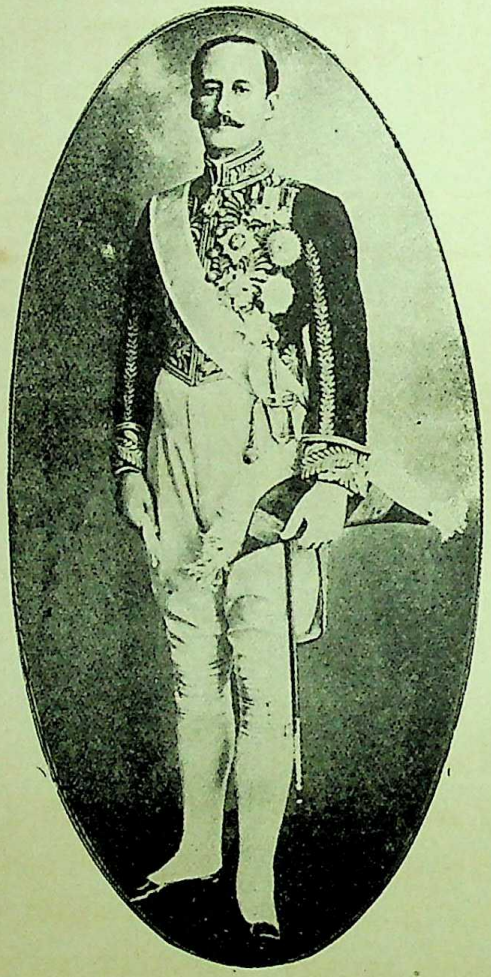

भारत के वाइसराय—
श्रीमान् लार्ड हार्डिंग महोदय।

C. S. P.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | माघ १९७२ | ध्वनि ४

हिन्दी-कादम्बरी

(४)

एक समय मैंने मृगया में लगे हुवे बहुत से शिकारियों का कोलाहल सुना। उस समय, प्रातः कालीन सन्ध्या की लालिमा से लालायित हुवा चन्द्रमा, आकाश-गंगा के पुलिन से पश्चिमीय समुद्र को उतर रहा था। वह चन्द्रमा, उस समय, आकाश-रूपिणी कमलिनी के रस से लाल लाल पंखों वाले बूढ़े हंस के समान प्रतीत होता था। और उस समय, दिशायें भी बूढ़े, रङ्कु नामक हिरन के रोमाञ्च समान श्वेत हुवीं विशालता को प्राप्त हो रही थीं—कुछ कुछ चाँदना होने-वाला था।

उस समय, सूर्यनारायण के किरणों की बढ़ी हुवी कान्ति, तारों को दूर कर रही थीं—बुहार रही थीं। उस समय, ऐसा मालूम होता था कि पद्मराग मणियों की सीकों वाली बुहारियाँ, आकाशरूपी फ़र्श पर बिखरे हुवे फूलों को दूर कर रही हैं। वे कान्ति, हाथियों के ख़ून से लाल हुवे सिंह के सटालोमों* के समान लाल थीं और तपाये गये लाख के तार जैसी पाटल भी थीं।

उस समय, सप्तऋषियों का मण्डल, उत्तर दिशा का सहारा ले रहा था—उत्तर की ओर

* सटालोम = गरदन के बाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारहा था। उस समय वह, ऐसा मालूम होता था कि सन्ध्या करने के लिये मानसरोवर के किनारे को उतर रहा है। और उस समय, पश्चिमीय समुद्र, बहुत से मोतियों को धारण किये हुवे था। वे मोती, किनारे पर आयी हुवीं और फटी हुवीं सीपियों के सम्पुट से विप्रकीर्ण हुवे थे—तिड़क कर गिरे थे। अतएव उन मोतियों ने उस समुद्र के पुलिनों को सुफ़ेद कर रक्खा था। उस समय वे मोती, ऐसे मालूम होते थे कि कहीं सूर्य-किरणों की प्रेरणा से तारे तो नीचे नहीं गिर गये हैं! वे मोती, नीचे गिरे हुवे तारे जैसे मालूम होते थे।

उस समय, वन में पाले की बूंदें टपक रही थीं, और मयूर जाग रहे थे। एवं सिंह जम्भाई ले रहे थे। हथिनियाँ भी अपने समद हाथियों को जगा रहीं थीं। वह वन, उस समय, उदयाचल की चोटी पर विराजमान सूर्य के लिये, मानो, अपने पत्ते-रूपी अञ्जलियों से फूलों को दे रहा था। उन फूलों के ज़ोरे रात्रि के जल से—रात की ओस से, शीतल हो गये थे—ठिठरा गये थे। बात यह है कि प्रातःकाल, वन में पत्तों से फूल झड़ते हैं। सूर्य को अञ्जलि-द्वारा फूल समर्पण करने का भी वह समय होता है अतएव ऐसा मालूम होता था कि वन, पत्तों-द्वारा फूलों को, अञ्जलि से दे रहा है।

उस समय, तपोवन में, गधे के बालों के समान धूँधली, अग्निहोत्रियों की धूम-लेखायें विकास को प्राप्त हो रही थीं—अग्निहोत्रियों के होम के धुवें उड़ने लगे थे। वे धुवें, वनदेवताओं के प्रासादों और वृक्षों की चोटियों पर बहुत सारे कबूतर जैसे मालूम होते थे और यज्ञादिकों की पताकायें जैसे दीख रहे थे।

उस समय, प्रातः काल का वायु, चल रहा था। वह वायु, पाले की बूंदें लिये हुवे था—वह शीतल था। कमलों को हिलाये हुवे था—वह सुगन्धित था। और मैथुन-परिश्रम से थकी हुई किरातों की स्त्रियों के पसीने की बूंदों को हरता जाता था—सुखाता जाता था—उनकी थकावट को दूर करता जाता था। वन के भैंसों की जुगाली के झागों की बूंदें प्राप्त किये हुवे था। और कम्पित पत्तों वाली टहनियों की नृत्य शिक्षा का व्यसनी था—टहनियों को ख़ूब नचा रहा था।

वह वायु, खिले हुवे कमलों के रस की बूंदों की वर्षा भी कर रहा था। और उस वायु ने फूलों के गन्ध से भौंरों को भी प्रसन्न कर रक्खा था। उसमें रात्रि के अन्त से—प्रातः काल के जाने से, कुछ जडिमा भी आगयी थी। अतएव वह मन्द मन्द चल रहा था। उस समय, कुमुद के भीतर भौंरों का "हुंकार" शब्द उच्चारण हो रहा था—भौंरे भी गुंजार रहे थे। वे भौंरे, कमल को जगाने के लिये बन्दीगण थे। उन भौंरों के लिये, हाथियों के गण्डस्थल ही पटह थे—वे हाथियों के कपोलों से बाजे का काम लेते थे। उन भौंरों के पंखों को संकुचित होते हुवे—मुंदे हुवे कुमुद के पत्तों को पुटों ने भींच लिया था।

उस समय, वन के हिरन भी अपने नेत्रों को सहज सहज खोल रहे थे—जागना चाहते थे। उनके नेत्रों की पलकें, तपाये गये लाख के रस से आलिङ्गित हुवी—चिपटी हुवी जैसी मालूम होती थीं। और प्रातःकालीन शीतल शीतल वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके नेत्र, पीड़ित हो रहे थे। उन मृगों के नेत्रों की पुतलियाँ, उछटी हुवी निद्रा से कुटिल भी हो रही थीं। और उनके पेट की रोमराजि (बाल) ऊखर ज़मीन की शय्या से धूसरित हो रही थीं। वन-चर भी इधर उधर घूमने लगे थे। पम्पा सरोवर के कलहंसों का कोलाहल भी विकास को प्राप्त हो गया था—हंस भी अपनी रसीली वाणी बोलने लगे थे।

वह कोलाहल, बड़ा श्रोत्र-हर था—तत्क्षण ही अपनी ओर खींच लेता था।

उस समय, वन के हाथियों के कान रूपी ताल का मनोहर बाजा भी बज रहा था—हाथी भी अपने कानों को फटफटा रहे थे। अतएव मोर भी नृत्य करने लग गये थे। और उस समय, सूर्य भगवान् शनैः शनैः उदय हो रहे थे। इनकी किरणें मंजीठ के रंग से रञ्जित हुवीं, और आकाश-मार्ग को क्रमशः सूर्यरूपी हाथी के चढ़ते हुवे, नीचे को चुट्टेवाले चमरों के समान दीखती जाती थीं। उस समय, सूर्यनारायण, पम्पासरोवर तक के वृक्षों की चोटियों पर गमन कर रहे थे। और पर्वत की चोटियों का भी सेवन कर रहे थे।

उस समय सुग्रीव के समान, बालातप (नई धूप) भी वन में विचरने लगी थी। वह धूप, तारा (तारों) को दूर किये हुवे थी—तारे छिप गये थे। और सूर्य से जन्म पाये हुए थी। सुग्रीव भी सूर्य से ही जन्म पाये हुवे था—सूर्य का पुत्र था। और तारा (बाली की स्त्री) को दूर किये हुवे, किष्किन्धा को छोड़ कर ऋष्यमूक पर्वत पर विचरता था।

अब स्पष्ट प्रातःकाल होगया था। थोड़ी ही देर के समान चार घड़ी में, सूर्य भगवान् स्पष्ट कान्ति वाले होगये। तोते भी यथेष्ट दिशाओं को चले गये। उस समय, घोंसलों में बेख़बर सोते हुवे, तोतों के बच्चों सहित भी वह सीमल का वृक्ष, उन बच्चों का शब्द न होने के कारण शून्य सा मालूम होता था।

उस समय, मेरे पिता अपने घोंसले में ही बैठे हुवे थे। और मैं उनके पास ही खखोडर में था। मेरे पंख, बाल्यावस्था से असञ्जात बलद्वारा विलीयमान थे—मेरे पंख अच्छी तरह न निकले थे।

सहसा उस वन में शिकार की कोलाहलध्वनि हुवी। उस ध्वनि ने सारे के सारे वनचरों को भयभीत कर दिया। वह ध्वनि, उस समय बड़े ज़ोर से उड़ते हुवे पक्षियों के पंखों के शब्द से और भी बढ़ गयी थी। बात यह है कि शिकार की ध्वनि सुनकर एक दम पक्षी उड़ गये थे। उनके उड़ने से जो शब्द हुवा, वह भी पहिली ही ध्वनि में मिल गया था। और उस ध्वनि को डरे हुवे, हाथियों के बच्चों की चिल्लाहट ने भी बढ़ा दिया था। वह ध्वनि, हिलती हुवी टहनियों पर व्याकुल हुवे मत्त भौरों की ध्वनि से भी परिपुष्ट होगयी थी। और वन में घूमते हुवे, ऊँची ऊँची नासिकावाले वन-शूकरों के शब्द से कठोर होगयी थी। वह ध्वनि, पर्वतों की गुफाओं में से.ते से उठते हुवे सिंहों के शब्द से भी बढ़ गयी थी और वृक्षों को कँपाती हुवी जैसी मालूम होती थी। वह भगीरथ से नीचे लाये हुवे गङ्गा-प्रवाह के कलकल समान बढ़ी हुवी थी और डरपोक देवताओं ने उसका श्रवण किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं, अश्रुत और अपूर्व उस ध्वनि को सुनकर काँप उठा। बालक होने के कारण मेरे कानों के छेद भी बन्द होगये—मेरे कान गुँगिया गये। मैं घबराया हुवा, भय दूर होने की बुद्धि से समीप में बैठे हुवे अपने पिता के, बुढ़ापे से शिथिल पक्ष-पुट के भीतर घुस गया—पंखों के भीतर छिप गया।

इसके पश्चात् मृगया में लगे हुवे बहुत से मनुष्यों का मैंने कोलाहल सुना। वे मनुष्य, वृक्षों के कुञ्जों की आड़ में अपने शरीर को छिपाये हुवे थे और आपस में कहते जाते थे कि, "इधर हाथियों के झुँडों से मर्दन की गयीं कमलिनियों का गन्ध है। इधर शूकरों से भक्षण किये हुवे मोथे के रस का गन्ध है। इधर से हाथियों के बच्चों से भक्षण किये हुवे गजप्रिया के रस का गन्ध आता है। यहाँ, झड़े हुवे सूखे पत्तों का मर्मर शब्द है। इधर वन के भैंसों के सींगरूपी वज्रों से फूटी हुवी वल्मीकों की धूली है। यह देखो! इधर बहुत से हिरन हैं, इधर वन में हाथियों का झुँड है और इधर वन के शूकरों का यूथ है। इधर वन के भैंसों का समुदाय है। इधर मोरों का शब्द है—इधर मोर केका ध्वनि कर रहे हैं। इधर सुफ़ेद तीतरों का मनोहर शब्द होरहा है। इधर कुरैया पक्षी अपनी ध्वनि कर रहे हैं। और इधर सिंहों के नाख़ूनों से नोचे गये गण्डस्थलवाले हाथियों का शब्द है। यह सामने वन के शूकरों का मार्ग है। इस ओर अभी शूकर गये मालूम होते हैं, क्योंकि यह मार्ग ताज़ी कींच से मलिन होरहा है। यह देखो! इधर हिरनों की जुगाली के झाग पड़े हुवे हैं और यह झाग भी नई नई कोमल घासों के ग्रासों के रस से मलिन होरहे हैं। यह सामने वाचाल भौंरों की ध्वनि सुनाई दे रही है। भौंरे, सुगन्धित मदवाले उन्मत्त हाथियों के गण्ड स्थल खुजाने से सुगन्धि में आसक्त होरहे हैं। बात यह है कि यहाँ बड़े उत्कट गन्धवाले हाथी अपने कपोलों को वृक्षों से रगड़ते हैं। उस समय एक बड़ा ही विलक्षण गन्ध प्रकट होता है। उस पर मात होकर भौंरे यहाँ गुञ्जार रहे हैं।"

"यह रुरु नामक हिरनों का मार्ग है। जो गिरी हुवी ख़ून की बून्दों से सिञ्चित किये गये सूखे पत्तों से पाटल होरहा है। बात यह है कि रुरु नामक मृग, तीर खाकर भी भाग निकलते हैं। यहाँ ऐसा ही हुवा है—तीर लगने से ख़ून टपकना शुरू हो गया है। वही यहाँ के पत्तों पर गिरा है। इसलिये यह मार्ग, कुछ सुफ़ेद और कुछ लाल लाल दीखता है। ये, हाथियों के पैरों से मर्दन किये गये वृक्षों के पत्ते दीख रहे हैं—यहाँ, हाथियों ने अपने पैरों से पत्तों को मर्दन किया है। यहाँ इस स्थान पर गैंडों ने क्रीड़ा की है। यह सिंह का मार्ग है, इसमें नाख़ूनों के अग्रभाग से भेदन किये हुवे मालूम होते हैं। यह (मार्ग) रुरु से भी लाल लाल है और हाथियों के मोतियों समुदाय (मोतियों) से दन्तुर है—दाँत निकले हुवे भी है। बात यह है कि यहाँ पर सिंहों ने मोतीवाले हाथियों पर आक्रमण किया है। उनका ख़ून यहाँ टपका है। इसलिये यह मार्ग लाल है। और हाथियों के कपोलस्थल पर पंजा मार से उनके मांस को उखाड़ लिया है। उस मांस में मोती भी हैं* वह भी पञ्जे में मांस के साथ

*जीमूतकरिमत्स्याहिवंशशंखवराहजाः।
शुक्त्युद्भवाश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिकयोनयः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस रास्ते से उन सिंहों ने गमन किया है। इसीलिये, इस रास्ते में मोती पड़े हैं। और देखो, यह भूमि, वन की हिरनी के गर्भ-रुधिर से लाल लाल है। वह हिरनी अभी ही ब्याई हुवी मालूम होती है। यह अटवी, झुंडों के स्वामी पक्षी के मद-जल से काली काली है अतएव यह चोटी जैसी मालूम होती है। यह देखो, आँखों के सामने चमरियों का समुदाय है। तुम्हें इसके पीछे चलना चाहिये। इस वनस्थली का शीघ्र सेवन करो—इस तरफ़ को जल्दी चलो। यह वनस्थली हिरनों की सूखी सूखी कर्सियों से पांसुल है। वृक्षों की चोटी पर चढ़ो! इस दिशा को देखो—इस ओर देखो! यह शब्द सुनो! धनुष ग्रहण करो—धनुष सँभालो! सावधान हो जाओ! कुत्तों को छोड़ो!" इस प्रकार से उन्होंने वन को क्षोभित कर रक्खा।

इतने ही में चारों तरफ़ से, लेप करने से गीले गीले मृदङ्ग के शब्द-समान गम्भीर, एवं पर्वतों के भटों में गये हुवे प्रतिनाद के समान गम्भीर शब्द से वह वन, क्षुभित जैसा होगया—उस वन में चारों तरफ़ से अनेक प्रकार के गम्भीर-शब्द होने लगे। किरातों के बाणों से ताड़ना किये गये सिंहों का शब्द होने लगा। संत्रस्त, (चकित) झुंड से बिछड़े हुवे अतएव अकेले घूमते हुवे, गज-यूथों के नायक हाथियों की कण्ठ-गर्जना होरही थी—बिछुड़े हुवे हाथियों की चिल्लाहट में उन्हीं हाथियों की बार बार ताडना की गयी सूँड़ों का भी शब्द मिला हुवा था। वह चिल्लाहट, बादलों की गर्जना जैसी मालूम होती थी। वहाँ, हिरनों का भी करुणायुक्त शब्द होने लगा था। इन हिरनों के अवयव (हाथ, पैर आदि) झपट कर दौड़ाये गये कुत्तों से काटे हुवे थे। इनके हाथ, पैर आदि अलग अलग होगये थे। इनके नेत्रों की पुतलियाँ चञ्चल थीं, अतएव उस समय बाहर आपड़ी थीं।

वहां, हथनियों की भी चिंघाड़ होने लगी थी। उन के झुंडों के नायक हाथी, मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। अतएव विरहिणी थीं, वे कोलाहल को ठहर ठहर कर सुन कर ऊपर को कान रूपी पत्तों को उठाये हुए थीं—उन्हों ने अपने कान खड़े कर रक्खे थे। उनके बच्चे भी उन के पाछे पीछे थे। वे, इधर उधर घूम रही थीं। उन का शब्द भी पतियों की मृत्यु के ताज़े शोक से बढ़ा हुवा था।

करुणायुक्त शब्दों को कहती हुवी, गेंडों की स्त्रियों का भी रुदन प्रारम्भ हो गया था। वे करुणापूर्वक रो रही थीं। वे डरकर बिछड़े हुवे अपने बच्चों को ढूंढ रही थीं। उनको बच्चे पैदा किये हुवे कुछही दिन हुवे थे। बात यह है कि गेंडों की स्त्रियों के बच्चे, उस शब्द को सुन कर अपनी माताओं से पृथक् हो गये, वे, अब तक कुछ ही दिनों के हुवे थे। अतएव, मातायें उनको रोती हुवीं पुकार रही थीं। वहाँ, वृक्षों की चोटियों से उड़े हुवे और घबराहट के साथ चलते हुए पक्षियों का भी कोलाहल होने लगा था। और वहां, अपनी शक्ति के अनुसार छलांग मारते हुवे हरिण-यूथों का भी चरण-शब्द होने लगा—हिरनों के चरणों के लगने से पृथिवी पर शब्द होने लगा था। वह चरण-शब्द, बड़े वेग से पदाघात द्वारा ताड़ना की गई, पृथिवी को कँपाता जैसा मालूम होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानों तक खींची हुवी प्रत्यञ्चा वाले, एवं बाणों की वर्षा करने वाले धनुषों का भी वहाँ शब्द हो रहा था। वह शब्द, मद से मनोज्ञा कुररी के मनोहर शब्द से मिला जुला था। और वहां, तलवारों का भी शब्द हो रहा था। उन तलवारों की धार वायु की ताड़ना से शब्दित थीं। और बड़े कठोर भैंसों के कन्धों पर पड़ीं थीं अतएव उनका भी शब्द हो रहा था। कुत्तों का भी वन में व्याप्त होने वाला—सारे वन की ख़बर लेने वाला शब्द हो रहा था—उन कुत्तों ने बड़े ज़ोर से घर्घर ध्वनि की थी।

उन सारे शब्दों से उत्पन्न हुवे गभीरशब्द से, वह अरण्य क्षुभित होगया था।

थोड़ी ही देर में वहां शिकार का कोलाहल शान्त होगया। उस समय वन भी वर्षा और शब्द-रहित बादलों के समान एव मथन के अन्त में शान्त जल वाले समुद्र समान शान्त होगया था। उस समय मेरा भी भय कुछ कम हुवा और मुझे आश्चर्य हुवा कि यह क्या मामला है। एतदर्थ मैं पिता की गोद में से कुछ थोड़ा सा निकला—कुछ ऊँचा हुवा और खखोडर में ही बैठे हुवे गर्दन फैलाई—गर्दन आगे को बढ़ाई। उस समय, मेरी आँखों की पुतलियां, भय से चौकन्नी हो रहीं थीं। बाल्यावस्था के कारण, मुझे उसके देखने की इच्छा हुवी, तभी उसी दिशा को मैंने अपने नेत्रों को प्रेरण किया—मैं उसी ओर देखने लगा तो क्या देखता हूं कि उस वन के अन्दर से भीलों की सेना मेरे सामने आ रही थी। वह सेना, सहस्रबाहु की हज़ार भुजा रूपी हज़ार दण्डों से छिन्न भिन्न हुवा नर्मदा का प्रवाह जैसी मालूम होती थी। और वायु से इधर उधर को उड़ाये गये तमाल के वन से तुलना रखती थी।

वह सेना, कालरात्रियों का—अन्धेरी रातों का याम-समूह जैसी भी मालूम होती थी। बात यह है कि उस सेना के भील, बड़े काले थे। अतएव वह सेना यह भान्ति दिलाती थी कि कई अन्धेरी रातों के पहर तो इकट्ठे नहीं होगये! या तमाल के वन को वायु ने छिन्न भिन्न तो नहीं कर दिया!! तमाल का वन भी काला ही होता है और श्यामता भी उसमें कूट कूट कर भरी हुई होती है। अतएव वह सेना भी ऐसी ही दीखती थी।

वह सेना, पृथ्वी के हिलने से रड़कते हुवे अञ्जन की शिलाओं के बहुत से थम्बे जैसी मालूम होती थी। बात यह है कि पृथ्वी के हिलने से कज्जल का पर्वत भी हिल जाता है। उसकी शिलाओं के थम्बे रड़कने लगते हैं। उनकी श्यामता किसी से छिपी नहीं है। बस, ठीक उस सेना की भी वही दशा थी। वह सेना, ऐसी भी दीखती थी। और वह सेना, सूर्य की किरणों से व्याकुल हुआ—डर कर भागा हुवा, अन्धकार समूह जैसी भी मालूम होती थी। बात यह है कि अन्धकार काला होता है। वह भी काली ही थी। वह सेना यमराज के कुटुम्ब के समान घूम रही थी। उस समय, उस सेना के भीलों की यमराज के कुटुम्बियों से तुलना दी जा सकती थी। यमराज के कुटुम्बियों के सी ही उनकी क्रूर मूर्त्ति थी। वह सेना, रसातल को फोड़कर निकले हुवे दानव-समाज जैसी भी प्रतीत होती थी। उसे देख कर यह भी भ्रम होता था कि कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप कर्म्मों का समुदाय ही तो एक स्थान में इकट्ठा होकर नहीं आगया है ? क्योंकि अशुभ कर्म्मों का फल भी काला ही होता है।

वह सेना, ऐसी भी मालूम होती थी कि कहीं यह दण्डकारण्य में रहनेवाले बहुत से मुनियों का शाप-समुदाय तो नहीं घूम रहा है ? शाप-समुदाय भी काला ही होता है। वह भी काली काली ही थी और वह सेना रामचन्द्र की दुश्चिन्तना से—रामचन्द्र का बुरा चाहने से, पिशाचता को प्राप्त हुवे, निरन्तर बाणों के बरसानेवाले रामचन्द्र से हत हुवे खर दूषण के सेना-समुदाय के समान दीखती थी।

वह सेना, एकत्र हुवे कलियुग के भाई बन्धुओं के समान थी और स्नान के लिये जाते हुवे वन के भैंसों के यूथ समान काली काली दीखती थी एवं पर्वत की चोटी पर बैठे हुवे सिंह के हाथों द्वारा खींचने से छिन्न भिन्न हुवी काली मेघ-पंक्ति जैसी दीखती थी। तथा समस्त चराचर के रूप का नाश करने के लिये उदय हुवे केतुओं का समुदाय जैसी भी मालूम होती थी। उसने वन को अन्धकारित कर रक्खा था। गिन्ती में वह, कयी हज़ार थी। वह, उत्पात अशुभसूचक वेतालों के समुदाय समान, बड़ी भीति पैदा करने वाली थी।

उसी किरात-सेना में मैंने एक सेनापति देखा। उसका मातङ्ग नाम था। वह, बुढ़ापे से पहली अवस्था में वर्तमान था—तरुण था। वह, अपनी कठोरता से लोहे का जैसा बना हुवा मालूम होता था—उसके हाथ, पैर आदि लोहे की बराबर सख्त थे। वह दूसरे जन्म में प्राप्त हुवे एकलव्य* के समान था। उसे देखकर सहसा एकलव्य का भान होता था। उसकी मूंछों की रेख निकल रही थीं, अत एव वह, पहिली ही मद की रेखा से शोभायमान कपोल-स्थल वाले, गजनायक हाथी के बच्चे के समान मालूम होता था। वह, काले कमल के समान काले काले देह की कान्ति के प्रवाह से, यमुना के जल से परिपूर्ण वन जैसा मालूम होता था। वह, कुछ कुछ अग्र भाग में कुटिल, कन्धे पर लटके हुवे, अपने केश-कलाप से, हाथियों के मद से मैले किये गये, सटाकलाप वाले—गर्दन पर बालों वाले, सिंह के समान मालूम होता था। बात यह है कि उसके काले काले और बहुत बढ़े हुवे बाल थे। सिंह की भी गर्दन के बाल बड़े होते हैं और केसरिया होते हैं, पर हाथी को मारते समय, उसके मद की काली बूँदें पड़ने से, उसके भी बाल काले काले होजाते हैं। अतएव वह, सिंह से भी तुलना रखता था। उसका माथा चौड़ा था और नाक बड़ी ऊँची एवं भयङ्करी थी।

वह (सेनापति) अपने वामभाग से—बांई तरफ़ से और भी अच्छा मालूम होता था। उसका वाम-भाग ऐसा मालूम होता था कि उसमें, पत्तों पर सोने के अभ्यास से पत्तों की लालिमा लग गई है। उसके वाम-भाग में ऐसी भी सम्भावना होती थी कि एव कान में भूषणता को प्राप्त हुवे, सर्प-मणि की पाटल किरणों से लाल लाल हो रहा है। बात यह है कि वह बायें कान में एक

*एकलव्य, एक किरात का नाम है। यह द्रोणाचार्य का शिष्य था और बाणविद्या में अर्जुन जैसा ही प्रवीण था। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि धारण किये हुवे था। उसके तेज से उसका बायाँ हिस्सा और भी सुन्दर दीखता था।

वह, कालागरु की कींच जैसे सुरभित मद से लेप किये हुवे था। या यूँ कहना चाहिये कि वह, अगर जैसा सुगन्धित मद वाला था। उसका मद ऐसा मालूम होता था कि तत्क्षण ही मारे गये हाथी के कपोलों से ग्रहण किया गया हो। बात यह है कि उस सेनापति ने उस समय किसी हाथी को मारा था। अत एव यह सम्भावना होती थी कि हाथी के मरने पर हाथी का सारे का सारा मद हाथी-देह का परित्याग कर उस सेनापति ही के शरीर में आगया है।

वह, सप्तच्छद* की भी सुगन्धि प्राप्त किये हुवे था। उसकी धूप को तमाल के पत्तों के समान, भौंरों ने दूर कर रक्खा था। उसकी मद-सुगन्धि से भौंरे अन्धे हुवे उसके ऊपर घूम रहे थे। अत-एव वे, उस समय मोर के पंखों का छाता जैसे मालूम होते थे। उसके कपोलों पर होने वाली, पसीने की रेखा को, विन्ध्याटवी, अपने चञ्चल पत्तों के बहाने से हाथ से जैसी दूर करती जाती थी। उस अटवी को उसने अपने भुज-बल से जीत लिया था। अतएव वह बेचारी, भय से इस सेवा का प्रारम्भ कर रही थी—यह सेवा कर रही थी।

वह, मृगों की वधरात्रि के सायङ्काल के समान, उनके रुधिर से आर्द्र और लाल हुवी जैसी अपनी दृष्टि से दिशा-विभागों को शोभित करता जाता था—अपने लाल लाल नेत्रों से चारों ओर देखता जाता था। बात यह है कि उसने अटवी प्रायः सब मृगों का वध कर डाला था। अत यह भान होता था कि कहीं उन्हीं के रुधिर से इसके नेत्र लाल लाल नहीं हो रहे हैं।

वह, अपनी दोनों भुजाओं से भी बड़ा अ मालूम होता था। उसकी भुजायें घुटनों लटकी हुवीं थीं—बड़ी लम्बी लम्बी थीं। हाथी की सूँड के परिमाण को लेकर जैसी हुवी थीं। या यूँ कहना चाहिए कि हाथी सूंड का नमूना थीं। उसकी भुजाओं का अग हिस्सा, देवी को रुधिर की बलि देने के लि परिश्रम करने वाला था। अतएव निरन्तर ती शस्त्रों के घिसने से घिस गया था। बात यह कि वह, देवी का उपासक था। अतएव देवी लिये खून की बलि दिया करता था। उस स वह, पशुओं को अपने शस्त्रों से मारा करता था कभी कभी शस्त्रों को तेज़ करने के लिये हाथ अगले हिस्से पर घिस लिया करता था। उ पशुओं का इतना बध किया था कि उसके का अगला हिस्सा भी घिस गया था।

वह, वक्षःस्थल से भी बड़ा ही सुन्दर मा होता था। वक्षःस्थल के बीच में हिरन के की बूंदें पड़ी हुवीं थीं। और वह (वक्षःस्थ पसीने के किनकों से भी व्याप्त था—उस हिस्से पसीने की छोटी छोटी बूंदें भी आरहीं थीं। एव वह वक्षःस्थल चौंटलियों से मिले हुवे, हा के गण्डस्थलों से पैदा होने वाले मोतियों से विन्ध्याचल की शिला के समान सुन्दर, अल किया गया मालूम होता था। बात यह है कि सेनापति का वक्षःस्थल, विन्ध्याचल की शिला

*सप्तच्छद एक वृक्ष का नाम है। इसकी एक डाली में सात पत्ते होते हैं। और यह बड़ा सुगन्धि वाला होता है। ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल था। उस पर, मृगों का वध करते समय, उनके ख़ून की लाल लाल बूँदें पड़ गयीं थीं और उस समय, परिश्रम करने से पसीने की सुफ़ेद सुफ़ेद बूंदों से भी वह हिस्सा ख़ाली न था। चौंटली लाल और मोती सुफ़ेद होते हैं। अतएव उस वक्षः-स्थल में यह भ्रान्ति होती थी कि यह, चौंटली और मोतियों से बना हुवा कोई अलङ्कार है।

उसका उदर तो निरन्तर परिश्रम के अभ्यास से—अपनी बल-वृद्धि के लिये अत्यन्त कसरत करने से, चिह्न मात्र ही रह गया था— सीमा-तिक्रान्त पतला होगया था। वह, अपनी दोनों जङ्घाओं से, हाथियों के मद से मलिन हुवे, आला-नस्तम्भों* का भी तिरस्कार करता था—वह, अपनी जंघाओं की मज़बूती के सामने, लोहे के, हाथियों के बंधने के थम्भों की भी कुछ असल न समझता था। लाख से रंगा हुवा, रेशमी वस्त्र ही उसका परिधान था—वह, लाख से रंगी हुवी रेशमी धोती पहिने हुवे था।

वह, बड़ा क्रूरस्वभाव था। अतएव बिना कारण ही—क्रोध न होने पर भी वह, तीन सलवट रूपी भ्रुकुटि से विकराल मस्तक रूपी पट्टे पर, अति उत्कट भक्ति से आराधना की गई, पार्वती से "ले, यह मेरा प्रसाद है" इस हेतु से त्रिशूल के समान अङ्कित था। बात यह है कि वह सेना-पति, बड़ा दुःस्वभाव था। राज़ी ख़ुशी में भी उसके माथे में तीन सलवटें ही पड़ी रहती थीं। उन सलवटों से वह, यह बतला रहा था कि दुर्गा देवी की उसने बड़ी आराधना की है। और देवी ने ही प्रसन्न होकर उसे अपने त्रिशूल का सार्टिफ़िकेट (Sertificate) देदिया है।

वह सेनापति, रङ्गबिरङ्गे कुत्तों से अनुगम्य-मान था—उसके पीछे पीछे बहुत से कुत्ते आ रहे थे। वे कुत्ते, उसके हिले हुवे थे अतएव उस के पीछे पीछे आ रहे थे। और परिश्रम-वश, बाहर निकली हुवी जिह्वाओं से वे, अपना दुःख निवेदन करते जाते थे। बात यह है कि उन कुत्तों ने मृगया के समय इतना परिश्रम किया था कि उनकी जिह्वायें बाहर को निकल गयी थीं। वे जिह्वायें, दूसरों को स्पष्टतया यह सूचित करती थीं कि कुत्ते, इस समय थक रहे हैं और दुखी हैं। उनकी जिह्वायें, यद्यपि परिश्रम करने से सूख रहीं थीं, पर कुत्ते की जिह्वा स्वाभाविक ही पाटल—लाल लाल होती है। अत एव वे, हिरन के ख़ून का स्नान करती हुवी जैसी दीखती थीं। उन कुत्तों के मुख, खुले हुवे थे। अत एव वे, दाढ़ों के बीच में लगी हुवी, सिंह की सटा के समान सृक्किणी* धारण किये हुवे थे। उन सृक्किणियों में उनके दांतों की कान्ति साफ़ साफ़ दीखती थी। बात यह है कि वे कुत्ते, उस समय मुंह फैलाये हुवे थे। उनके होंठों के पास में बाल भी थे। वे, सिंह की सटा के समान होते हैं। उनसे यह भान होता था कि इनकी दाढ़ों के बीच में सिंह की सटा लग रहीं हैं और वे ही आगे को निकली हुवी हैं। उन कुत्तों के कण्ठ, मोटी मोटी कौड़ियों की मालाओं से व्याप्त थे। उनके गलों में कौड़ियों की मालायें, पड़ी हुवी थीं। वे कुत्ते, वन के बड़े

* हाथियों के बांधने के स्तम्भ।

* सृक्किणी, होठों के दोनों तरफ़ के हिस्से का नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े सूकरों की दाढ़ों के प्रहारों से जर्जर हो रहे थे—उन पर बड़े वेग से वन्यवराहों ने आक्रमण किया था। उन कुत्तों के शरीर, छोटे छोटे थे सही, पर उनका बल बहुत बढ़ा हुवा था। अतएव वे, अजात सटा वाले सिंहों के बच्चों के समान मालूम होते थे। वे, हिरनियों को वैधव्य-दीक्षा देने में भी बड़े कुशल थे—हिरनों को मार कर हिरनियों को विधवा बनाना वे, खूब जानते थे। उनके, बड़ी मोटी ताज़ी कुतियायें भी, साथ साथ थीं। वे कुतियायें, उस समय, सिंहों से अभयदान की प्रार्थना करने के लिये आई हुवीं, सिंहियों के समान मालूम होती थीं।

वह सेनापति, बहुत से भीलों से भी आवेष्टित था। उसके साथ बहुत से भील भी थे। उन भीलों में से बहुत से भील, चमरों के बाल और बहुत से हाथियों के दांत लिये हुवे थे। बहुत से, घिनके घिनके पत्तों से मद्य के लिये दौने बना रहे थे। कितने ही सिंहों के समान, हाथियों के गण्डस्थलों से प्राप्त हुवे मोतियों से अपने हाथों को सनाथ बनाये हुवे थे। या यूं कहना चाहिये कि वन के हाथियों को मारकर उनके कपोलों से मोती निकाल कर अपने हाथों में लिये हुवे थे। सिंह भी ऐसा ही करते हैं कि हाथियों के कपोलों में पञ्जा मार कर उनके सारे के सारे मोती निकाल लेते हैं। कितने ही भील राक्षसों के समान, बहुत सा मांस लिये हुवे थे। और उनमें से बहुत सारे सिंहों का चर्म्म धारण किये हुवे थे। वे उस समय, शिव जी के पार्षदों के समान दीखते थे। शिव-पार्षद भी सिंह का चर्म्म धारण करते हैं। बस, अन्तर इतनाही था कि भील, सिंहों को मार कर सिंह-चर्म्म धारण किये हुवे थे, और पार्षद आकस्मिक प्राप्त चर्म्म धारण किये रहते हैं।

कितने ही भील, जैन साधुवों के समान, मोरों के पंख धारण किये हुवे थे। और कितने ही, बालकों के सदृश, बिखरे हुवे बाल धारण किये हुवे थे। या यूं कहना चाहिये कि वे भील, बालकों के समान दीखते थे। बालक, काकपक्ष (जुल्फ) धारण किये रहते हैं। वे भी काक (कौओं) के पक्ष (पंख) धारण किये हुवे थे उनमें से कितने ही भील हाथियों के दांतों को पहिले उखाड़ कर और पीछे धारण कर कृष्णलीला को जैसे दिखला रहे थे बात यह है कि कृष्ण ने बचपन में ही कंस की मल्ल-शाला के द्वार पर विराजमान कुवलयापीड हाथी के दांतों को उखाड़ कर धारण किया था वे भी बेचारे वन के हाथियों की यही दशा करते जाते थे। अतएव उस समय, कृष्ण-चरित का ध्यान आता था। कितने ही भील, वर्षा ऋतु के दिनों से भी तुलना रखते थे। वर्षा ऋतु में मेघों की छाया से अम्बर (आकाश) मलिन रहता है उन भीलों के मेघों की छाया (कान्ति) के समान अम्बर (वस्त्र) मलिन थे—बादलों के समान, उनके कपड़े, काले काले थे। उन भीलों के बहुत से ऐसे चरित्र थे जो कहे भी नहीं जासकते।

वह सेनापति, वन जैसा भी प्रतीत होता था वन, खड्ग (गैंडे) और धेनुका (हथनियों) युक्त होता है—वन में गैंडे और हथनियां निवास करते हैं। वह भी खड्ग (तलवार) और धेनुका (छुरी) युक्त था—वह तलवार और छुरी ले रहा था और वह सेनापति, नवीन मेघ से भी तुलना रखता था। नवीन मेघ, मोर के पंखों के समान, रंग बिरंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनु (इन्द्र धनुष) धारण किये रहता है। वह भी मोर के पंखों के समान, धनु (साधारण धनुष) धारण किये हुवे था।

वह सेनापति, बकासुर के समान समझा जाता था। बकासुर एकचक्र (एक चक्रा नाम वाली नगरी) को गृहीत (अधीन) किये हुवे था। वह भी एक (अद्वितीय) चक्र गृहीत (ग्रहण) किये हुवे था—वह सेनापति, हाथ में एक अद्भुत चक्र भी लिये हुवे था। और वह, गरुड़ महाराज से भी बराबरी करता था। गरुड़, अनेक महानागों (बहुत से बड़े सर्पों) के दशन (दांतों) को उद्धृत करते हैं—अपने मुख से निकालते हैं। गरुड़ जी बहुत से सर्पों का भक्षण करके उनके दांतों को अपने मुंह से बाहर निकाल डाला करते हैं। उसने भी अनेक महानागों (बहुत से बड़े हाथियों) के दशन (दांतों) को उद्धृत किया था—उखाड़ा था। उस सेनापति ने वन के बहुत से हाथियों के दांतों को अपने हाथों से उखाड़ लिया था।

उस सेनापति की भीष्म पितामह से भी तुलना दी जा सकती थी। भीष्म पितामह, शिखण्डी* के शत्रु थे—नपुंसक होने के कारण उससे लड़ना नहीं चाहते थे। वह भी शिखण्डी (मोरों) का शत्रु था—उसने वन के बहुत से मोरों को मार डाला था। और वह, ग्रीष्म ऋतु के दिनों के समान भी था। ग्रीष्म ऋतु के दिनों में मृगतृष्णा (स्थल में जल की भ्रान्ति) का निरन्तर आविर्भाव रहता है—मरुस्थल में निरन्तर जल ही का भान होने लगता है। उसको भी मृगतृष्णा (हिरनों के मारने की इच्छा) निरन्तर आविर्भूत रहा करती थी—उसको हर समय हिरनों को स्वर्ग पहुँचाने की इच्छा रहा करती थी।

वह सेनापति, विद्याधर जैसा भी था। विद्याधर, मानस (मानसरोवर) में वेग (गमन) रखता है—मानसरोवर तक जा सकता है। वह भी मान (अहंकार) से, सवेग (सदा तीव्र गति) था—अपने अहंकार से वह बड़ी तेज़ी के साथ चलता था। वह, व्यास के भी समान था। व्यास, योजनगन्धा (अपनी माता) का अनुसरण करने वाले थे—अपनी माता की आज्ञा पालन करने वाले थे। वह भी, योजनगन्ध (कस्तूरी वाले मृग) का अनुसरण करने वाला था—कस्तूरी वाले मृगों का बड़े वेग से पीछा दाबता था।

वह सेनापति, घटोत्कच जैसा भी था। घटोत्कच, भीम (भीमसेन) का रूप धारण करने वाला था। बात यह है कि भीमसेन पर एक समय वन में हिडम्बा नाम की एक राक्षसी मोहित होगयी थी। उसने भीमसेन से प्रार्थना की—आप मुझे स्वीकार करलें। तब भीमसेन ने उससे गन्धर्व विवाह करके घटोत्कच को उत्पन्न किया था। अत एव "आत्मा वै जायते पुत्रः" के अनुसार वह घटोत्कच, भीमसेन ही का रूप था। वह सेनापति भी भीम (भयङ्कर) रूप धारण कर रहा था। उस सेनापति की पार्वती के केश-कलाप से भी तुलना दी जा सकती थी। पार्वती के केश-कलाप में नीलकण्ठ (शिवजी) का चन्द्रक (चन्द्रमा) ही आभरण (अलङ्कार) था—पार्वती के केशों में चन्द्रमा ही आभूषण का काम देता था। वह सेनापति भी नीलकण्ठ (मोर) के चन्द्रक (चन्दों) का

* शिखण्डी, पाण्डवों के पक्ष में था और नपुंसक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभरण (धारण) किये हुवे था। और वह सेनापति, हिरण्याक्ष दैत्य से भी बराबरी रखता था। हिरण्याक्ष दैत्य का महा वराह (कृष्ण रूपी सूकरावतार) ने अपनी दाढ़ों से हृदय विदीर्ण किया था। उस सेनापति का भी महावराह (बड़े बड़े सूकरों) ने दाढ़ों से वक्षस्थल, विदीर्ण किया था—बहुत से सूकरों ने उस पर आक्रमण किया था।

वह सेनापति, अतिरागी से भी तुलना रखता था। अतिरागी पुरुष के बहुत से बन्दियों (स्तुति करने वालों) का ग्रहण होता है—उसके यहाँ उस की मन चाही बातें करने वालों की ख़ूब पूँछ पाँछ रहती है। वह भी, बहुत से बन्दियों (क़ैदियों) को चारों ओर से ग्रहण किये हुवे था—उसने वन के सारे के सारे निवासियों को अपनी क़ैद में कर रक्खा था। और वह सेनापति, मांसाहारी जैसा भी था। मांसाहारी, रक्त (ख़ून) में लुब्धक (इच्छा वाला) होता है—मांसाहारी, ख़ून ख़ून का चाहने वाला होता है। उस सेनापति में भी लुब्धक (व्याध) रक्त (आसक्त) थे—उसके साथ साथ बहुत से व्याध थे।

वह सेनापति, गान-कला की रचना से भी तुलना रखता था। गान-कला की रचना, निषाद (निषाद नामक स्वर) के अनुगत (सहित) होती है—गानविद्या में निषादस्वर से काम लिया जाता है। वह भी निषाद (भीलों) से अनुगत था—भील लोग, उसके पीछे पीछे चल रहे थे। और वह, पार्वती के त्रिशूल के समान भी था। पार्वती के त्रिशूल का अङ्ग, भैंसों के रुधिर से गीला हो जाता है। उसका भी शरीर, भैंसों के रुधिर से गीला हो रहा था—भैंसों के मारने से उसका शरीर, ख़ून से लाल लाल हो गया था।

वह सेनापति, नई अवस्था वाला था—नौजवान था। तो भी क्षपितबहुवयस* = बहुत से पक्षियों को मारने वाला, था। और वह, कृत-सारमेय-संग्रह था। वह, सार (धन) और मेय (अन्नादि) का संग्रह किये हुवे था—वह, बहुत सा धन और अन्नादि साथ लिये हुवे था। तदपि फलमूलाशन था—फल मूल का खाने वाला था। बात यह है कि वह, कृत-सारमेय-संग्रह था—कुत्तों का संग्रह किये हुवे था। अत एव फलमूलाशन था।

वह सेनापति, कृष्ण होता हुवा भी सुदर्शन चक्र-रहित था—उसके पास, सुदर्शन चक्र नहीं था। बात यह है कि वह कृष्ण (काला) था। इस लिये असुदर्शन था—भयंकर-दर्शन था—देखने में बुरा मालूम होता था। और वह सेनापति, स्वेच्छाचारी था। तदपि दुर्गैकशरण † था—दुर्गा देवी ही को अपनी पालन करने वाली समझे हुवे था।

वह सेनापति, क्षितिभृत् (राजाओं) के पद (चरणों) में रहा करता था। तो भी राजसेवा से अनभिज्ञ था—राजसेवा को नहीं जानता था। बात यह है कि वह, क्षिति-भृत् (बड़े बड़े पर्वतों) के पाद (पास के पर्वतों) में रहा करता था। अतएव राजसेवा से अनभिज्ञ था। डील डौल से वह, विन्ध्याचल का बेटा मालूम होता था। और अपनी क्रूरमूर्त्ति से यमराज का अंशावतार और मालूम होता था। एवं पाप का सगा भाई और दीखता था। और वह, कलियुग का सार और

* बहुत सी अवस्था को बितानेवाला।
† अकेले क़िले ही को अपना आश्रय समझने वाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिकल्प मिस्टर दादाभाई नौरोजी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होता था—कलियुग के दुराचारों का निचोड़ था—कलि महाराज का सर्वस्व उसी में हो, ऐसा मालूम होता था।

वह सेनापति, बड़ा भयङ्कर था। तो भी अतिसत्व होने से—डील डौल में बहुत बड़ा बड़ा होने से, दूसरों को गम्भीर जैसा दीखता था। मोटे आदमी, प्रायः गम्भीर दिखाई दिया करते हैं। और उसकी आकृति, बड़ी तिरस्करणीय थी। "मातङ्ग" उसका नाम था। मैंने उसे देखने के अनन्तर, उसके अनुचरों से उसका नाम सुना था।

उस समय, मेरे मन में बड़ा दुःख हुवा। अहो! इन भीलों का जीवन, अज्ञानप्राय है—इन लोगों का जीवन, विशेष अज्ञान से ही व्यतीत होता है। और इनका आचरण भी सत्पुरुषों से निन्दित है—सज्जन पुरुष, ऐसे आचरणों को बुरा बतलाया करते हैं। देखिये तो, मनुष्यों के मांस के उपहार में इनकी धर्म बुद्धि है—भगवती के लिये, मनुष्यों के मांस की भेंट देना ही ये धर्म समझते हैं। इनका आहार भी सत्पुरुषों से गर्हित, मदिरा और मांसादिक है। बात यह है कि जिनको बड़े बड़े विद्वान् मस्तिष्क को बिगाड़नेवाले बतलाया करते हैं उन ही मदिरा और मांसादिक के ये खानेवाले शिकार का खेलना ही ये व्यायाम समझते हैं—ये, समझते हैं कि किसी पशु, पक्षी को मार लिया तो बस, कसरत होगई। इन भीलों के लिये, गिदड़ियों का ज़ोर का शब्द ही शास्त्र है। बात यह है कि जैसे प्रातःकाल, शास्त्र के जाननेवाले स्तुति-पाठक, किसी राजकुमार को जगाते हैं ऐसे ही इनको इनके विचार में, गीदड़ी अपने सुरीले शब्द से जगाती है। उल्लू ही इनके शुभ, अशुभ कर्म्मों के उपदेष्टा हैं—ये लोग, वन में उल्लू के शब्द से ही अपने भले बुरे को पहिचान लेते हैं। पक्षियों के ज्ञान में इनकी प्रज्ञा लगती है—पक्षियों को मोटा पतला जान लेना ही इनका विवेक है। कुत्तों ही को ये, विश्वासपात्र समझते हैं—कुत्तों ही पर इनका विश्वास है। निर्जन वनों में ही इनका राज्य है। पानगोष्ठी इनके लिये उत्सव है—शराबख़ोरी को ही ये, उत्सव मानते हैं। दुष्कर्म्मों के साधक धनुष ही इनके मित्र हैं—हिंसारूपी कुकर्म्मों में सहायता देनेवाले, धनुषों को ही ये, अपना मित्र मानते हैं। सर्पों के समान, विष से बुझे हुवे मुख वाले, बाण ही इनके सहायक हैं। बेचारे मूढ़ मृगों को उत्साहित करनेवाला ही, इनका गाना है—अपनी गान-विद्या से भोले भाले हिरनों को ही ये, बहकाना जानते हैं। क़ैद कीगई दूसरों की स्त्रियाँ ही इनकी स्त्रीं हैं। दुष्टात्मा चीतों के साथ, इनका सहवास है। पशु, पक्षियों के रुधिर से ही ये, देवता की पूजा करना जानते हैं—किसी पशु को मारा और उसका, अपने आराध्य देवता को ख़ून चढ़ाया, बस, देवता की पूजा होगयी। ये लोग, मांस से ही बलि या हन्तकार का काम लेते हैं—मांस का पिण्ड बनाया और बलि देदी। चोरी ही से ये, अपना जीवन व्यतीत करते हैं—इनका जीवन, एकमात्र चोरी ही पर निर्भर है। सांपों के मणि ही इनके गहने हैं—मणिवाले सांप को मार कर और उसका मणि निकाल कर अपना गहना बना लेते हैं। वन के हाथियों के मद से ये, अङ्गराग करते हैं—वन के हाथियों का मद, ये अपने अङ्ग पर ख़ूब लपेटते हैं। और जिस वन में ये बस जाते हैं, उस सारे के सारे को उखड़ी हुवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़वाला कर देते हैं—उसे जड़ामूल से खोदेते हैं।

यह मैं सोच ही रहा था कि इतने ही में वही, भीलों का सेनापति, वन में घूमने से पैदा हुवी, थकावट दूर करने की इच्छावाला, उसी सीमल के वृक्ष के (जिस पर कि मैं रहता था) नीचे की छाया में आया। और उसने अपना धनुष उतार दिया। इतने ही में उसका सेवक,पत्तों का आसन ले आया। वह सेनापति, उस पर बैठ गया। और एक युवा भील, उसी (निकटवर्ती) पम्पा सरोवर के भीतर,सवेग घुस कर बहुत से ताज़े उखाड़े हुवे बसींडों* को ले आया। उन बसींडों की उस भील ने, कमलिनी के पत्तों के दौने से, कींचड़ धो डाली थी। अतएव वे, बड़े निर्म्मल दीखने लगेथे। बात यह है कि कमलों की जड़ ही बसींडे होते हैं। वे, तालाब के भीतर, कींचड़ में घुसे रहते हैं। जब वे, निकाले जाते हैं तब कीचड़ भी उनके साथ ही साथ लगी चली आती है। उस कींचड़ को ही भील ने धो डाला था।

बसींडे निकालते समय, उस सरोवर के जल को भी उस भील ने अपने दोनों हाथों से विलोडन किया था—उसको ख़ूब बिलोया था। उस सरोवर का जल, वैदूर्यमणि का रस जैसा मालूम होता था—उसका जल इतना उज्ज्वल था कि उसमें असम्भवनीय भ्रान्ति होती थी कि कहीं यह, वैदूर्य मणियों का रस ही तो इकट्ठा नहीं हो गया है! और उसका जल, प्रलयकालिक, सूर्यनारायण की किरणों की गर्मी से गिरे हुवे, आकाश के हिस्से से भी तुलना रखता था। यह है कि आकाश बड़ा निर्म्मल होता है। प्रलय काल में सूर्य की किरणें, आकाश की संज्ञा भी भ्रष्ट कर देती हैं। अतएव यह, भान होता कि कहीं यह आकाश का टुकड़ा ही तो नहीं है।

उस सरोवर का जल, चन्द्रमा के मण्डल चुए हुवे के समान भी प्रतीत होता था—उस यह भ्रान्ति होती थी कि यह, चन्द्रमण्डल चू चू कर तो इकट्ठा नहीं हो गया है! बात यह है कि चन्द्रमा बड़ा स्वच्छ है। उस से चू झरनेवाला पदार्थ भी अच्छा ही होना चाहिये इसलिये जल की स्वच्छता उस (जल) में यह भ्रान्ति करती थी कि यह, चन्द्र-मण्डल से चू कर इकट्ठा हो गया है। और वह जल, बहुत मोतियों का रस जैसा भी मालूम होता था। यह है कि मोती, स्वच्छता में अपनी तुलना न रखते। यद्यपि ऐसा होना नितान्त असम्भव है उनका रस हो जाय। तथापि थोड़ी देर को मान लेने पर यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि मोतियों का कैसा स्वच्छ रस होना चाहिये। उस रस की भी वह जल, उपमा रखता था उसकी निर्म्मलता से यह पता ही न चलता कि यह जल है। हाँ उसके छूने से यह अनुमान जाता था।

वह जल, पाले के समान निश्चल था—सा मालूम होता था। और कमलों के डोंढ़ों रज से—उनके ज़ीरे से कसैला भी होरहा था।

उस सेनापति ने जल पिया। जल बसींडों को खाया। बसींडों को खाते हुवे सेनापति, चन्द्रमा की कलाओं को भक्षण

*कहीं कहीं बसींडों को कौल ककड़ी भी कहते हैं। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुवे राहु के समान मालूम होता था। बात यह है कि सेनापति, इतना क्रूरमूर्त्ति था कि वह, राहु जैसा दीखता था और बसींडे इतने निर्म्मल थे कि वे, चन्द्र-कला जैसे दीखते थे।

अब उस सेनापति की थकावट दूर हो गयी। शबर-सेना ने भी जल-पान किया। सेनापति, उठ कर सहज सहज—शिकारियों के ढङ्ग से, यथेष्ट दिशा को चल दिया। सारी की सारी सेना भी उसके पीछे चलदी।

उसी भीलों की सेना में से एक बूढ़ा भील, उसी पेड़ के नीचे (जहाँ मैं रहता था) दो घड़ी बराबर ठहरा रहा—दो घड़ी को उसने देर की। उसकी मूर्ति, देखने में बड़ी बुरी मालूम होती थी। अतएव वह, दूसरों को व्याघ्र जैसा भयङ्कर दीखता था। उसे उस सेना में मृगमांस नहीं मिला था, अतएव वह, मांसार्थी था—उसे मांस प्राप्त करने की इच्छा थी।

उस बूढ़े भील ने, सेनापति का अन्तर होजाने पर—कुछ दूर चले जाने पर, उस पेड़ को बहुत देर तक, जड़ से फुनङ्गन तक देखा। वह, उस समय ख़ून की बूंदों के समान, लाल लाल और धूंधली धूंधली भौं रूपी लताओं के मण्डप से भयङ्करी—धूंधली धूंधली भौंओं से भय देने-वाली, दृष्टि से, हमारी अवस्था को पीता हुवा जैसा दीखता था—उस दृष्टि से हमें खाता हुवा जैसा मालूम होता था। और वह, उसी दृष्टि से तोतों के घोंसलों के स्थानों को गिनता हुवा जैसा भी मालूम होता था—तोतों के घोंसलों को गिन रहा हो, ऐसा मालूम होता था। उसकी शिकरे के समान, पक्षियों के मांसास्वादन में बड़ी लालसा प्रतीत होती थी। वह उस पेड़ पर चढ़ना भी चाहता था। उस समय, उस भील के देखने से डरे हुवे, तोतों के प्राण निकल गये हों, ऐसा मालूम होता था।

निर्दयी पुरुष, क्या क्या नहीं करते? सभी अकर्म्म करने को वे सर्वदा तैयार रहते हैं। हाय! हाय!! उस भील ने, बहुत से ताड़ के वृक्षों से भी ऊंचे, तथा बादलों तक टहनियों के अग्रभाग-वाले, उस वृक्ष पर, विनाही किसी परिश्रम के सीढ़ियों से जैसे चढ़कर, उसकी वनस्पति और शाखाओं के भीतर से, फलों के समान, तोतों के बच्चों को पकड़ लिया और उनको गतप्राण करके—मार कर पृथिवी पर डाल दिया। उनमें बहुत से बच्चे ऐसे थे कि जिनमें उड़ने की भी शक्ति नहीं आई थी। बहुत से ऐसे भी थे कि जिन्हें पैदा हुवे थोड़े ही दिन हुवे थे। कितने ही तो ऐसे थे, जो अपनी माता के गर्भ की कान्ति से पाटल हो रहे थे—जिन्हें कुछ ही देर पैदा हुवे हुवी थी, अतएव जो सीमल के फूलों की भ्रान्ति कराते थे। बात यह है कि उन बच्चों का और उस सीमल के वृक्ष के फूलों का एक ही सा रंग था। इसलिये उन बच्चों में यह भी भ्रान्ति होती थी कि ये, इस पेड़ के फूलही तो नहीं हैं!

उनमें से बहुत से बच्चों के पङ्ख निकल आये थे। अतएव वे बच्चे, कमलों के नये नये पत्तों के समान मालूम होते थे। उनके पङ्ख, बड़े ही निर्मल थे। और कितने ही बच्चे, आखड़े की गुंझियों के समान, मालूम होते थे—गुंझियों के आकार वाले थे। कितनोंही का चोंच का अगला हिस्सा लाल लाल हो रहा था। कितने ही, कुछ एक खिले हुए

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रपुट से – थोड़े थोड़े खुले हुवे पत्तों से, पाटल मुख वाले, कमलों के डोढ़ों की शोभा को प्राप्त कर रहे थे। बात यह कि उनमें कितने ही बच्चों के कुछ थोड़े ही पङ्ख निकले थे, वे पङ्ख हरे हरे थे। अतएव वे, कुछ खिले हुवे पत्तों वाले कमल के डोढ़े जैसे मालूम होते थे। उनमें से कितने ही जो प्रतीकार में असमर्थ थे, उससे बचने का कोई उपाय न कर सकते थे, वे बराबर अपनी गर्दन हिलाने के बहाने से, हम बालक हैं, हम पर दया करो! हमें न मारो!! इस तरह निषेध करते हुवे मालूम होते थे।

उस समय, मेरे पिता, बिना अवसर के ही प्राणों को नाश करने वाले उपायशून्य, आये हुवे उस उपद्रव को देखकर, डरसे अपने स्थान को छोड़े हुवे जोड़ों वाले अतएव शिथिल अपने पत्र-पुट से मुझको ढककर, उस समय, यही एक उचित उपाय समझ कर, गोद के हिस्से से मुझे सहारा देकर बैठ गये। उस समय, मेरे पिता के शरीर में दुगुनी कम्पा हो गयी। मेरे पिता, पहले की अपेक्षा दूने काँपने लगे। उनके नेत्रों की चञ्चल पुतलियां, मरने के डर से चक्कर खाने लगीं-- इधर उधर घूमने लगीं। और वे, दुःख से निस्तेज हवाइयाँ उड़ी हुवी, तथा आंसु भरी दृष्टि को इधर उधर दिशाओं में प्रेरणा करने लगे। चारों तरफ़ देखने लगे, उस समय, उनका कण्ठ भी सूख गया। गले में ख़ुश्की आ गयी। और अपने क्लेश के दूर करने का कोई उपाय न कर सके। मेरे स्नेह में परवश अतएव मेरी रक्षा करने में व्याकुल, मेरे पिता, अब क्या किया जाय? चक्कर में पड़ गये।

इतने ही में और शाखाओं पर घूमते हुवे अतिनृशंस, पापी, उस बूढ़े भील ने, हमारे खखोडर के द्वार पर आकर अपने बायें हाथ को फैला कर, उस खखोडर में अपने बायें हाथ को देकर, मेरे पिता को खींचकर मार डाला। पकड़ते समय, मेरे पिता ने उस भील के हाथ में चोंच से प्रहार भी दिया – चोंच मारी, और बड़ा शब्द किया। उस भील का हाथ, बूढ़े और काले काले साँप के समान, भयङ्कर था। उसका हाथ, लोहे जैसा काला काला और डरावना था। और वह से वन-सूकरों की चरबी से मिली हुवी गन्धवाला था। उसके हाथ में सूअरों की चरबी की दुर्गन्धि भी आती थी। क्योंकि उसने बहुत से सूअरों को मारकर उनकी चरबी निकाली थी। उसके कुहनी के नीचे के हिस्से में, धनुष की प्रत्यञ्चा के खींचने से व्रण का चिह्न हो गया था – ठेठ पड़ गई थी। वह हाथ, यमराज का दण्डा जैसा मालूम होता था। मैं छोटा सा था। कुछ मेरे अङ्ग (हाथ, पैर आदि) डर से सुकड़ गये। साथ ही मेरा अल्प आयु भी शेष था। मेरा कुछ ढेर में दाना था। अतएव वह भील, बड़े कष्ट से पत्रपुट के भीतर छिपे हुवे, मुझको न देख सका।

(असमाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशिर-वर्णन

(द्रुतविलम्बित)

[१]

शिशिर का, शुभ, आगम, देखकै,
कुसुमिता, चहुँ, कुन्द परम्परा ।
विरहिणी, नलिनी, फलिनी*, लता,
सकुचिता, दलिता, स्फुटिता, हता ॥

[२]

हसित-कुन्द-लता, फलिनी खिली,
लख, मधुव्रत, एक, हि, काल में ।
उभय में, समता, अनुराग को,
इत, उतै, उड़ता, दरसावता ॥

[३]

दिवस में, हिम से, घन-छेद से,
विरल, धूप, न, लागत अङ्ग को ।
निशि, न, दीख पड़ै, उडु-मण्डली†,
विधु, विधूत-मयूख, न भावता ॥

[४]

कुमुदके, मुखपै, मुद, नैक, ना,
कमल, भी, हिम से कुम्हला गए ।
मलिन, मल्लि, अशोक, सशोक है,
कुसुम-बाण, तथापि, अहीन, है ॥

[५]

समय पै, कर, संग्रह, शीत में,
सुख, करैं, बिल-बीच, पिपीलिका ।
विहग, रात, बिताय, कुलाय‡ से,
दिन, चढ़े, निकलैं, रवि-धूप में ॥

[६]

शिशिर में, सर में, सरितान में,
पवन में, वन में, गगनान्त में ।
वसन में, तन में, दिश-धाम में,
अवनि में, अति, शीतलता, छई ॥

[७]

शशि-समान, सुहात, रवि-प्रभा,
प्रिय, लगै, अति, ताप, कृशानु का ।
तनक, ना, तनु, तोय, सहारती,
न, रति, किञ्चित, होत समोर में ॥

[८]

वन-विहार, लगै, मन, भारसा,
निकलना, गृह से, ग्रह-कोप, है ।
वसन के, तन के, सहयोग को,
तजन की, जन की, रुचि, होत, ना ॥

[९]

शिशिर में, जिनके, पति, गेह, ना,
शर-समान, समीरण*, है, तिनै ।
मरण से, कम, वास, विदेश, ना,
नरन को, चरचा, यह, लोक में ॥

[१०]

तपन, तूल, तँबूल, तनूनपात†,
तरुणता, तरुणी, तिल, तैल, च ।
मिलन से, इन, आठ, तकार के,
दलित, होत, महा-बल, शीत का ॥

[११]

अशन, हों, दधि, दुग्ध, सिता, घृत,
वसन, हों, मृदु, उष्ण, वि-रङ्ग के ।

---

* फलिनी एक बेल होती है । † उडु-मण्डली = तारा-मण्डली । ‡ कुलाय = घोंसला ।

*समीरण = वायु । † तनूनपात् = अग्नि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पियन को, मधु, चर्वण, पान का,
निकट, हो, अबला, हिम, हीन, हो ॥

[१२]

सुरत में, नखर-क्षत-वक्ष पै,
दशन दंश-लगै, अधरोष्ठ पै।
शिशिर-मारुत-घात, विभात* में,
न, सहती, सिसकार, करैं, वधू ॥

[१३]

कठिन, उष्ण, उरो-ज†, नितम्बिनी,
विपुल से, प्रिय के, उर पै, धरे।
विविध, काम-कला, दरसावती,
शिशिर की क्षणदा‡, क्षणसी, करैं ॥

[१४]

यह, चरित्र, अतीव, विचित्र, है,
करत, चित्त, न, विस्मय, कौन के।
शिशिर, शीतल, चित्त, जलावता,
विरहिणी-जन के, किस, भाँति से ॥

[१५]

लसत, पुष्पित, लोध्र, दिगन्त में,
करत, पाण्डु, वनान्त, पराग से ॥
मिल, मिलिन्द, चखैं, रस, राग से,
मुदित, हो, भँवरी, कल, कूजती ॥

[१६]

नियम से, जन, मज्जन, जो, करैं,
सुर-नदी-जल, माघ-विभात में।
सुकृत से, तनु, पाय, अमानवी",
शुभ-विमान, चढ़े, नभ में, फिरैं ॥

[१७]

अधिक, वर्णन, का बिध, शीतका,
कर सकै, कविकी, रसना, भला,
बजत, दाँत, दबावत, होंठ को,
निकलना, मरना, सम, है, उसै ॥

—वासुदेव उपाध्

महावीर अर्जुन

पांचों पाण्डव जब वन में रहते थे तब उ
ने एक वनचर को दुर्योधन की चाल ढाल
रीति नीति देखने के लिये भेजा था।

वही, अब ब्रह्मचारी रूपधारी, वनचर वा
आगया। आकर उसने युधिष्ठिर को प्र
किया, और यूं कहने लगा—

महाराज! आप वन में रहते हैं, और
राज्य-सिंहासन पर बैठा है। तब भी वह आप
ख़ौफ़ खाता है। और धोके से जीती हुवी
पृथ्वी को न्यायबल से जीतने की इच्छा कर
है। अब उसने अपने काम का प्रोग्राम बना
है। मतलब यह है कि वह अब टाइम पर
करता है। अपने नौकर चाकर और भाई बन्
को भी उसने एक अजीब ही तरह से गाँठ
है। वह, अपने नौकरों से मित्रों की तर
बर्ताव करता है और मित्रों से भाई बन्धुवों
तरह से। अपने भाई बन्धुवों को तो उसने
का मालिक सा बना रक्खा है।

भला इस जाल का भी कहीं ठिकाना है!
किसी को ख़ुश करने के लिये, देनाही
एकमात्र सार समझ रक्खा है। देना भी

---

* विभात = प्रातःकाल। † उरोज = स्तन।
‡ क्षणदा = रात्रि। " अमानवी = दैवी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूखे नंगों को जैसा देना नहीं है। वह, लेनेवाले की तारीफ़ों के पुल बांधता हुवा बड़े सत्कार-पूर्वक देता है। क्रोध और लोभ का तो उसके अन्दर पता नहीं। नीति उसके यहां हाथ बांधे खड़ी है। शत्रु और पुत्र सबके साथ एक सा क़ानून है, किसी की रू रियायत नहीं ! चालाक वह इतना बड़ा है कि शङ्कित हुवा हुवा भी अपने आत्मीयों को चारों तरफ़ नाके बन्दियों पर खड़ा करके अशङ्कितावार दिखला रहा है। और लोग उसे यह नहीं समझ सकते कि इसे किसी भी प्रकार का सन्देह है। सब राजाओं को उसने अपने अधीन कर लिया है। बहुत से राजा, उसे मद हाथी, भेट के लिये भेजते हैं। और बहुत से स्वयं ही उसे प्रणाम करने के लिये, अपने रथों में बैठ कर आया करते हैं। उन हाथियों के मद से उसके सभा-मण्डप के मैदान में कींच सी होजाया करती है।

अब उसके राज्य में किसानों को खेती के लिये, वर्षा की ज़रा भी परवाह नहीं, सब जगह उसने नहरें जारी कर दी हैं। उसने अपने, युद्ध में लब्धकीर्त्ति मानधन योधाओं को ख़ूब धन देकर प्रसन्न कर लिया है। और वह उन्हें अपनी होशियारी से कभी आपस में मिलने नहीं देता और नहीं आपस में उनमें विरोध होने देता है। मैंने वहाँ जाकर यह सुना तक नहीं, कि दुर्योधन ने कभी धनुष उठाया हो या कभी उसने गुस्से से मुंह टेढ़ा किया हो। ऐसा होने से भी उसके काम में कभी ख़राबी नहीं पड़ती। उसके गुणानुराग ही से सारे के सारे राजा उसके आदेश को माला की तरह अपने मस्तकों पर धारण करते हैं।

दुर्योधन, अब धार्मिक भी बड़ा हो गया है। उसने अब अपने जवान भाई दुःशासन को युवराज पद पर बिठा दिया है। और स्वयं, पुरोहित जी महाराज के कहने से हविर्द्वारा अग्नि को प्रसन्न कर रहा है।

चारों समुद्रों तक उसका बड़ा अच्छा राज्य है सही, पर आप से वह डरता ही रहता है। बातों बातों में कभी आपका ज़िक्र होने से वह घबरा उठता है। अतः आपको दुर्योधन के प्रति शीघ्र कोई उचित यत्न करना चाहिये ! हम लोग तो कहने वाले केवल मज़दूर ही हैं। इधर से बात लाये और इधर कहदी।"

युधिष्ठिर ने वन-चर को उचित पारितोषिक देकर विदा किया और वे सीधे द्रोपदी के रहने के स्थान पर पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपने भाइयों को वन-चर का कहा गया सारा वृत्तान्त सुनाया। द्रौपदी से शत्रु की बढ़ी हुवी समृद्धि और अपनी अपाकृति को सुनकर न रहा गया। उसने युधिष्ठिर के क्रोध को बढ़ानेवाली बातें कहना प्रारम्भ कीं। वह कहने लगी—

मैं यह जानती हूँ कि मेरी प्रार्थना को आप अपने लिये तिरस्कार समझेंगे। पर ये मनोव्यथायें मुझे कहने के लिये प्रेरित कर रही हैं।

मतवाला हाथी जैसे अपनी ही सूंड से अपनी माला को गिरा देता है। ठीक, उसी तरह इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अपने पूर्वजों से धारण की गयी इस पृथ्वी को आपने बैठे-बिठाये व्यर्थ ही अपने हाथों से खो दिया। जो मायावी पुरुषों में स्वयं मायावी नहीं बनते—जो "शठं प्रति शठं कुर्यात" इस नीति पर नहीं चलते—जो कृष्ण के,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" इस वाक्य को नहीं मानते, उन मूर्खों का अवश्य ही तिरस्कार हो जाया करता है। विना कवच पहिने हुवों का जैसे बाण, काम साफ़ करदिया करते हैं, ठीक उसी तरह ऐसे आदमियों को, मन में घुसकर शठ लोग मार डाला करते हैं। आप शायद यह कहें कि "लक्ष्मी का स्वभाव ही चंचल होता है। अतः उसी ने हमें छोड़ दिया है"। नहीं, यह बात कदापि नहीं हो सकती! आपने स्वयं ही अपनी करतूतों से ज़बरदस्ती उसे छोड़ा है। मैं नहीं समझती, कि आपको इस कायर पुरुषों के मार्ग में रहते हुवे भी क्रोध क्यों नहीं भड़काता! आपत्तियों के नाशक, तेज़ तबियत वाले, मनुष्य के वश में स्वतः ही अन्य पुरुष हो जाया करते हैं। और मीठी तबियत वाले, सीधे सादे, क्रोधहीन मनुष्य को जो स्नेह से भी रहे, कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूंछता। शत्रु भी उसका आदर नहीं करते।

देखिये तो, यह भीम आप ही के तो भाई हैं। जो रथों में चला करते थे और शरीर से चन्दन लगाया करते थे। आज पैदल चलते हैं और पहाड़ों में धूली से धूसरित हो रहे हैं। इन्हें देखकर क्या सत्यधारी आपके जी में दुःख नहीं होता? और यह देखिये, अर्जुन हैं, जिन्हों ने पहिले उत्तर देशवासी कुरुवों को जीतकर और फिर उन्हीं को बहुत सा धन दे दिया था। आज वही, जाड़े के मारे आपके ऊपर से वृक्षों के बक्कलों को खींच रहे हैं। वस्त्र तो वस्त्र, आपके पास वृक्षों के इतने बक्कल भी नहीं, जो सब के सब उन्हें ही आसानी से ओढ़ सकें। क्या आपको इस दुर्दशा से आपको गुस्सा नहीं आता! जोड़िया आपके छोटे भाई नकुल, सहदेव जिनका पत्थरों पर सोने से शरीर सख़्त हो है। और जिनके बुरी तरह से बाल बढ़े हुवे अतएव जो पर्वतों से पैदा होनेवाले हाथी से मा होते हैं। आश्चर्य है कि इन्हें देख कर भी आप विचित्र धैर्य और सन्तोष अब तक बाक़ी आपकी कैसी विचित्र वृत्ति है, यह मेरी स ही में नहीं आता। इतने दुःखपर इतना धैर्य "भिन्नरुचिर्हिलोकः" वाली बात है। आप आपत्तियों का विचार करते हुवे मेरे तो हृदय मनोव्यथायें टुकड़े टुकड़े किये डालती हैं।

हाय! हाय!! जो पहिले बड़े क़ीमती प पर सोया करता था और जिसे अनेक प्रकार स्तुति गीत मङ्गल से जगाया करता था। अ वह, बहुत सी कुशाओं की स्थली पर सोता और अमङ्गल गिदड़ियों के रोने से सहसा उ पड़ता है।

आपका जो शरीर ब्राह्मणों को खिलाने से हुवे अन्न से ख़ूबसूरत और हृष्ट पुष्ट बना था, आज वह, वन के फल खाने से यश के ही साथ सुकड़ रहा है। जिन चरणों को राजाओं के मुकुटों का पराग ख़ूबसूरत बनाता आज वह, कुशाओं में बुरी तरह पड़े हैं।

यह देख कर तो और भी दुःख होता है ये आपत्तियाँ शत्रुवों के कारण हमें भुगतनी रही हैं। यही आपत्तियाँ यदि दैव वश होतीं इतना दुःख न था। इसलिये आपको अब इस शान्तिभाव को छोड़ कर, शत्रुवों को दिखाने के लिये अपने उसी तेज को ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू यूनिवर्सिटी के नेता—
आनरेबल पण्डित मदनमोहनजी मालवीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। "शान्ति ही से काम हो जायगा, क्रोध की क्या ज़रूरत है" यह बात मुनियों के लिये है, राजाओं के लिये नहीं। आप जैसे यशस्वी भी यदि तिरस्कार सह कर वैसे ही बैठ जायें तो बेचारी अभिमानिता को तो बस गयी गुज़री ही समझिये। अच्छा! आप यदि इसी तरह ख़ुश हैं और इस शान्ति ही को एकमात्र सुख का साधन समझे जाते हैं तो राजाओं के चिह्न, इस धनुष को छोड़ कर और लम्बे लम्बे बाल रखते हुवे अग्नि में होम क्यों नहीं करने लगते? आप जैसी प्रकृति वाले पुरुष के पास यह धनुष अच्छा नहीं लगता!

आप समर्थ हैं अतः "तेरह वर्ष वन में रहने" के वाक्य पर आपको ध्यान ही न देना चाहिये, राजा लोग प्रायः कोई न कोई बहाना लेकर अपने इक़रार को तोड़ डाला करते हैं। समर्थ को तो जैसे भी हो अपना कार्यसाधन करना चाहिये, असमर्थ की दूसरी बात है।

द्रौपदी को अपने मन के सी बात कहती देख, भीमसेन भी युधिष्ठिर से यूँ कहने लगे—

वीरक्षत्रिया द्रौपदी ने जो बातें स्नेहदृष्टि से कही हैं, निःसन्देह मेरा अनुमान है कि उन्हें बृहस्पति भी शायद न कह सकते। ऐसे वैसे की तो भला बात ही क्या है!

ईश्वर करे! द्रौपदी की इन बातों का आपके जी पर कुछ असर हो जाय। विद्वान् लोग कहने वाले पर कि "यह पुरुष है या स्त्री" "बालक है या वृद्ध" ब्राह्मण है या शूद्र" ध्यान नहीं दिया करते। वे ध्यान देते हैं उसकी सारगर्भित उक्ति पर। विद्वान् पुरुष प्रायः "छोटा बड़ा न जानिये जो गुनवन्ता होय" इस युक्ति के क़ायल होते हैं। आपकी विलक्षण बुद्धि की तो बड़ी प्रशंसा थी, फिर यह क्या बात है जो अब यह कीचड़ में फँस रही है। बतलाइये तो, इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है? जो शत्रुओं से की गयी इस बुरी दशा में आप वर्तमान हैं। आपके पुरुषार्थ की सम्भावना करके देवता तक अपने जी में दुःखी हो रहे हैं। जो शत्रुओं की बढ़ी हुवी समृद्धि को यूँ ही सहन कर लेते हैं उनके पास लक्ष्मी भी लोकापवाद के भय से नहीं ठहरा करती।

आप शायद यह कहें कि "दुर्योधन का और हमारा क्या साथ? कहाँ वह और कहाँ हम! वह बलवान् हैं और हम बलहीन, ऐसी दशा में हार के सिवा और क्या परिणाम होगा?" यह बात नहीं है। सुनिये! आप प्रजा को सुखी करने के लिये ऐसा करेंगे। इसलिये आप ही का सारा संसार सिक्का मानेगा। संसार को आह्लादित करनेवाले तेज को धारण करते हुवे हारे नीरे भी दोयज के चन्द्रमा को सब लोग प्रणाम किया करते हैं। और पूर्णिमा को कोई पूँछता भी नहीं, मैं तो यह जानता हूँ कि ऊपर चढ़ने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य का उत्साह ही एक मात्र अवलम्बन होता हैं। और यह सर्वसिद्धान्त बात है कि परिश्रमहीन मनुष्य को आपत्तियाँ चारों तरफ़ से घेर लिया करती हैं।

अब इस तरह हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने का समय नहीं है। कुछ करने की ज़रूरत है। आप शायद यह समझ रहे हैं कि "लड़ने से क्या फ़ायदा? अवधि पर वह स्वयं ही राज्य छोड़ देगा।" सच जानिये, यह समझना आकाश-पुष्प समान है। दुर्योधन की कुटिल वृत्तियों से ही यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम हो रहा है कि वह ऐसा कभी न करेगा। बहुत दिनों राज्य-सम्पदाओं को भोग कर दुर्योधन जैसे नीच से राज्य बड़ी मुश्किल से छूटेगा। मान लीजिये, यदि ऐसा ही होगया, दुर्योधन ने अवधि आने पर स्वयं ही राज्य दे दिया, तब भी अच्छा नहीं है। आपके छोटे भाइयों की ये शक्तियाँ किस दिन काम आयेंगी?

इस सवाल के उठाने की ज़रूरत ही नहीं, कि हम कुछ माँगने के लिये लड़ रहे हैं। वास्तविक बात यह है कि तेजस्वियों का यह स्वभाव हुवा करता है कि दूसरों को जीतने की इच्छा करते रहें। बतलाइये तो, गर्जते हुवे बादलों के प्रति जो सिंह गर्जा करता है, क्या वह बादलों से कुछ माँगता है? बात यह है कि बड़े आदमियों की यह प्रकृति होती है कि वे दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकते। अब आपको इस प्रमादज अन्धकार को दूर कर देना चाहिये, और पुरुषार्थ करना चाहिये आपको अपनी हार की तो कभी शङ्का ही न करना चाहिये। शत्रु-सेना में ऐसा कौन सा बलवान् है? जो आपके चारों छोटे भाइयों का मुक़ाबिला कर सके! ईश्वर करे, शत्रुवों की स्त्रियों की आँखों के पानी की झड़ियाँ, आपके हृदय में शत्रु से की गयी धधकती हुवी आग को बुझायें।

इतना सुन लेने पर युधिष्ठिर ने भीमसेन की सान्त्वना करनी प्रारम्भ की—

भाई! वस्तुतः तुम बड़े बुद्धिमान् हो! तुमने जो कुछ कहा है, बड़ी योग्यता के साथ कहा। तुम्हारी इन बातों में सचमुच बड़ा अर्थ-गौरव था। एक वाक्य को भी तुमने विश्रृंखल न होने दिया। यद्यपि तुम्हारी इन युक्तियुक्त बातों के सामने कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं, तथापि मेरे जी में सन्तुष्टि नहीं हुवी। वह अभी और निर्णय की अपेक्षी है।

विना विचारे ही किसी काम को जल्दी से कर डालना चाहिये, अविवेक आपत्तियों का स्थान है। विवेकी पुरुष को स्वयं ही गुणज्ञ सम्पदा स्वीकार कर लिया करती हैं। भिन्नमतित्व हो जाने पर विद्वान् पुरुष को शास्त्र की शरण लेनी चाहिये। शास्त्रानुसार चलने पर हानि भी लाभ के बराबर है। जीतने की इच्छा करने वाले विवेकी पुरुष ख़ूब अच्छी तरह जब अपनी जीत समझ लेते हैं तब पुरुषार्थ किया करते हैं। अन्यथा हँसी होने की भी तो सम्भावना है। औरों को जाने दो, सूर्य ही को देख लो। वह भी पहिले रात्रि के अन्धेरे को अपनी किरणों से दूर करके बाद ही को निकलता है।

जो लोग शास्त्र पढ़ कर भी अपने, शरीर के काम, क्रोधादि शत्रुवों को वश में नहीं कर सकते उनके पास कभी लक्ष्मी नहीं रहती। चञ्चल स्थान में लक्ष्मी नहीं रहना चाहती। शान्ति के बराबर कोई चीज़ नहीं है। बड़े बड़े कर्मफलों का यही कारण है। तुम्हारा यह ध्यान बिलकुल ग़लत है कि देर होजानेसे दुर्योधन सब राजाओं को अपनी तरफ़ खींच लेगा। ऐसा कभी नहीं होसकता। यादव लोग हमारे अभाव में उसके पास रहते हैं सही, पर युद्ध छिड़ जाने पर वे कभी भी उसकी तरफ़ न होंगे। यतः वे हम से बड़ा प्रेम करते हैं। यादवों के हमारी तरफ़ हो जाने पर उनके रिश्तेदार और मिलने वाले भी अनायास हमारी तरफ़ होजायेंगे। रही यादव और उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्तेदारों तथा मिलने वालों से भिन्न राजाओं की बात, उनकी भी हमारी तरफ़ ही होजाने की आशा है। सुनो, दुर्योधन बड़ा कुटिल है। उससे ठाली न बैठा जायगा। वह अवश्य ही और राजाओं का तिरस्कार करता हुवा उनमें झगड़े करायेगा। ऐसा करने से उनका जी खट्टा होजायगा। शत्रु के शत्रु को अपनी तरफ़ कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है।

यह अवश्य है कि दुर्योधन एक बड़ा शत्रु है। तथापि उसका परास्त कर देना हमें कोई बड़ी बात नहीं। घर के भेदी का लंका ढा देना मामूली सा काम है। वृक्ष-शाखाओं की रगड़ से पैदा हुवी आग सारे के सारे पर्वत को जला डालती है।

एक और बात है। बुद्धिमान् मनुष्य अपने मूर्ख शत्रु की उन्नति की ज़रा उपेक्षा कर जाय तो अच्छा है। उसे मन माना कुछ दिनों बढ़ लेने दे। ऐसा होने से उसे चक्कर में डाल देना बड़ा सहल काम है। जिस राजा के मन्त्री आदिकों में द्वेष होजाय, उसे भी बस गया गुज़रा ही समझो!

युधिष्ठिर, भीमसेन से ये बातें कह ही रहे थे कि इतने में, वेदव्यास जी इनके पास आगये। अचानक ही वेदव्यास को देख कर युधिष्ठिर को बड़ा विस्मय हुवा। यह समझने लगे कि हम अपने पुण्यों को इस समय मूर्तिमान् देख रहे हैं। युधिष्ठिर, शीघ्र ही अपने आसन से उठ खड़े हुवे और उनका यथायोग्य आतिथ्य किया। व्यास जी के कहने पर वे भी एक आसन पर बैठ गये।

कुशलादि प्रश्नों के अनन्तर, युधिष्ठिर को व्यास जी के आने का कारण मालूम करने की इच्छा हुवी। एतदर्थ उन्होंने यूं कहना प्रारम्भ किया—

कृपानिधे! आज हमारी यज्ञादि-क्रियायें, यथेष्ट फल देने वाली हो गयीं, ब्राह्मणों के आशीर्वाद भी इस समय सच्चे होगये, जो आप ने आज यहां पधार कर मुझे बहुमानपात्र बनाया। इससे अधिक और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है? जो व्यास जैसे मुनि-प्रवर अपने स्थान पर पधारने की कृपा करें। सच जानिये, चन्द्रमा के देखने से मेरी आंखों को तृप्ति नहीं हुवी। इस समय आपके दर्शनों से निवृत्ति होगयी। और मेरे चित्त में इस समय अपने भाइयों का ज़रा भी दुःख नहीं रहा। आपके यहां आने का कारण क्या है? यह पूंछना तो बिलकुल बेकार ही सा है। यतः आप जैसे निराकाङ्क्षी सज्जनों की क्या अभिलाषा होसकती है? दूसरे हम जैसे तुच्छ दे ही क्या सकते हैं? तथापि आपकी कल्याणकरी वाणी को सुनने की इच्छा हम से यह सब कुछ कहला रही है।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर व्यास जी कहने लगे।

राजन्! यह ठीक ही सी बात है कि हम मुनि लोग निराकाङ्क्षी होते हैं। तथापि तुम्हारे सद्गुणों ने हमारे हृदय को अपने वश में कर रक्खा है। प्रायः निराकाङ्क्षी मुनियों का भी साधुजनों में स्नेह सा होजाया करता है।

युधिष्ठिर! क्या तुम लोग धृतराष्ट्र के पुत्र नहीं हो! या तुम दुर्योधन से अपने गुणों से बढ़े चढ़े नहीं हो!! जो तुम्हें उसने इस प्रकार छोड़ रक्खा है। निःसन्देह धृतराष्ट्र बड़ा मूर्ख है। उस का शीघ्र ही नाश होजायगा, यह मैं बतलाये देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। कर्ण आदिक उसके मुशीर हैं। वे बड़े दुष्ट तथा कुटिल हैं। कुटिल पुरुषों का संसर्ग विपत्तियों का स्थान ही समझना चाहिये।

सुना करते हैं कि विपत्ति के समय बुद्धि बिगड़ जाती है। परन्तु तुमने ऐसा नहीं होने दिया। वस्तुतः तुम बड़े धीर हो। द्रौपदी का जिस समय दुःशासन ने चीर खींचा था। तुम्हें ज़रा भी गुस्सा नहीं आया। क्या हुवा! मैं तो यह कहूँगा कि उन दुष्टों ने ऐसा करने से भी तुम्हारे साथ उपकार ही किया! इसी से सारे संसार में उनकी दुष्टता और तुम्हारी सज्जनता प्रकट होगयी। अस्तु।

तुम्हें अपने बल से अब वह राज्य प्राप्त करना चाहिये। मैं यह जानता हूं कि बल में दुर्योधन का पक्ष प्रबल है। और जीत हुवा करती है सदा बल वाले की। अतः तुम लोगों को सब से पहिले उस तरफ़ ध्यान देना चाहिये। दुर्योधन की सेना में अकेला भीष्म ही एक ऐसा है जो सब के दिल हिला देगा। वह इतना बली है कि २१ बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिया बना डालने वाले उसके गुरु परशुराम उसके बल को देख कर एक बार झेंप से गये थे। दुर्योधन की सेना में द्रोणाचार्य को भी कुछ कम मत समझो! उन की बाण-वर्षा के सामने ठहरना भी कुछ आसान काम नहीं है। और कर्ण के शौर्य का क्या ठिकाना है जिसे देख कर मृत्यु भी चम्पत होता है।

अच्छा! यह सब कुछ होने पर भी कोई बात नहीं है। जिस विद्या द्वारा तपस्या करता हुवा अर्जुन, इन (भीष्मादि) सबको परास्त कर देगा, उस विद्या की सिद्धि देने ही के लिये मुझे आ[illegible] समझो!

यह कह कर व्यासजी चुप होगये। और यु[illegible]ष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन इनके पास आकर [illegible] गये। व्यास जी ने उन्हें उस विद्या का उप[illegible] दिया और कहने लगे—हथियार लेकर मेरे [illegible] कथनानुसार तपश्चर्या करना। और जहाँ तुम [illegible] को प्रसन्न करने के लिये तपश्चर्या करोगे [illegible] हिमालय पर तुम्हें यह यक्ष पहुँचा देगा। [illegible] अन्तिम वाक्य कहते हुवे व्यास जी तिरोधान [illegible] गये। और यक्षराज, पहुँचाने के लिये अर्जुन [illegible] प्रणाम करके इनके पास आकर बैठ गया।

अर्जुन को वन में जाते हुवे किञ्चिन्मात्र [illegible] दुःख नहीं हुवा। क्योंकि इन्हें तो लगन ही दू[illegible] लग रही थी। चलते समय यह विदा होने के लि[illegible] अपने चारों भाइयों के पास गये। और [illegible] द्रौपदी के पास चले गये।

इन्हें देख कर द्रौपदी की आँखों में सह[illegible] पानी भर आया। पर वह इस ध्यान से कि [illegible] चलते समय यह अमंगल न समझा जाय, आं[illegible] को बन्द तक न कर सकी—वैसे ही विना प[illegible] मारे टिकटिकी लगाये देखती रही। कुछ देर [illegible] व्यवहार रहा। फिर द्रौपदी कहने लगी—

ईश्वर करे! वन में अकेले रहते हुवे तुम्[illegible] जी न हिराये। तुम एक बहुत ही बड़ी कार्य सि[illegible] के लिये जा रहे हो। हे वीर! शत्रु से किये [illegible] तिरस्कार का अनुभव करना तो दूर रहा, स्म[illegible] करते हुवे भी जी काँपता है। हाय! मेरे चीर [illegible] जिस समय दुष्ट दुःशासन ने खींचा था [illegible] वह समय तुम्हें याद है? वस्तुतः क्षत्रिय [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दूसरों की रक्षा करने में समर्थ हो। अच्छा! अब तुम्हें महर्षि के कथनानुसार शीघ्र हमारे मनोरथ को सफल करना चाहिये। मैं तुम्हारे शीघ्र कृतकृत्य होकर वापस लौट आने की इच्छा करती रहूँगी।

अर्जुन ने हिमालय को प्रस्थान कर दिया। हिमालय पर्वत पर पहुँच कर यक्ष ने हिमालय का अच्छी तरह वर्णन करके कहा—यहाँ आप शौक़ से तपश्चर्या करें। ईश्वर करे, यहाँ आपकी इन्द्रियाँ विचलित न हों! यह कहकर यक्ष अपने स्थान को चला गया।

अर्जुन ने वहाँ घोर तपस्या करनी प्रारम्भ करदी। होते होते इसका समाचार वनचरों को मिला। वे बेचारे, अर्जुन के अपूर्व तेज को देखकर बड़े घबराये और इन्द्र के पास गये। वहाँ जाकर कहने लगे—

महाराज! आपकी वाली शिखर पर एक सूर्य के समान तेज वाला पुरुष, संसार को ताप देता हुवा, विजय की इच्छा से तप कर रहा है। वह वल्कलों से अपने शरीर को ढके हुवे है। विजय की इच्छा से वह तप कर रहा है। यह हम लोगों ने इस लिये समझा कि वह हाथ में धनुष ले रहा है। महाराज! उसकी तपःसिद्धि का क्या ठिकाना है! पृथ्वी, जल, तेज आदि पञ्चभूत उसकी सेवा सी करते हैं। वह, इतना सरलस्वभाव भी बन रहा है कि हिरन उसके पास बैठे रहते हैं—उससे ज़रा भी नहीं डरते। वृक्ष, उसके लिये फूल लिये हुवे से खड़े रहते हैं। अधिक क्या कहा जाय। वह इन्द्रकील, आपकी तरह से उसके अधीन सा हो रहा है। वह, किसी ऋषि का पुत्र है या कोई दैत्य है अथवा किसी राजा का पुत्र है। यह बात हम लोग नहीं पहिचान सके।

यक्षों से अपने प्यारे पुत्र की बात सुनकर इन्द्र मन ही मन में बड़े प्रसन्न हुवे। और अर्जुन के मन की स्थिरता की जाँच करने के लिये उन्होंने अप्सराओं को भेजा। अप्सरायें, अपने स्वामी की आज्ञा पाकर बड़ी सज धज के साथ अर्जुन का तपोभङ्ग करने के लिये चलदीं।

अर्जुन के तप के प्रभाव से उनकी सारी मनोहारिणी अदाओं को वहाँ की पृथ्वी ने ही हर लिया। उन्होंने अर्जुन को लुभाने के लिये यथाशक्य बहुतेरी चेष्टायें कीं। दूतियों से भी कहलवाया। जिन प्रयोगों से अनेक मुनियों का उन्होंने तपोभङ्ग कर दिया था उन्हें भी काम में लायीं। पर अर्जुन जैसे पत्थर को जोख नहीं लगी।

अप्सराओं के वैसे ही वापस लौट आने पर स्वयं इन्द्रदेव, बूढ़े मुनि का रूप धारण कर अर्जुन के पास आये। अर्जुन ने उनका यथायोग्य आतिथ्य किया। इसके बाद इन्द्र कहने लगे—

तुमने यह बड़ा अच्छा काम किया जो जवानी ही में तप करने लगे। मेरे जैसे तो बूढ़ों से भी कुछ नहीं होता। वस्तुतः तुम बड़े प्रशस्य हो, जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुवी। पर मुझे तुम्हारे इस मुनियों से विरुद्ध वेष को देखकर सन्देह होता है कि यह क्या दाल में काला है। सैनिकों की तरह से तुमने यह कवच क्यों पहिन रक्खा है? तपस्वी लोग तो वल्कल पहिना करते हैं। तुम्हारी और भी कयी बातें, तुम्हारे शान्त होने के विषय में सन्देह कराती हैं। तुमने यह एक धनुष और तलवार क्यों ले रक्खी है? क्या अपनी शरीररक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये ? मुमुक्षु पुरुषों को तो इस नश्वर शरीर में कुछ इच्छा ही नहीं हुवा करती। तुम्हारे इन चिह्नों से मालूम होता है कि तुम विजयार्थ तपकर रहे हो। सचमुच यदि विजयार्थ ही तप कर रहे हो, तब तो अच्छा नहीं करते। ऐसा करने से तुम्हें बहुत ही ज़्यादा हत्या करनी पड़ेगी। इस नश्वर देह को तुम कितने दिनों तक रहने वाला समझ रहे हो। इसे तो केवल लक्ष्मी की तरह से चञ्चल समझो! फिर क्यों इतना व्यर्थ इन्तज़ाम करते हो? इस युद्ध के उत्साह को छोड़ दो। इसमें क्या धरा है। अपने तप का अपने ही हाथों से क्यों फ़िज़ूल नाश करते हो!

अच्छा! तुम यदि शत्रुवों को ही जीतना चाहते हो तो पहिले अपने नेत्र आदि शरीरस्थ शत्रुवों को जीत लो। इन्हें जीत लिया तो फिर सारे संसार को जीत लिया। जिस ने अपनी इन्द्रियों को भी नहीं जीता उसे तो निरा बैल ही समझो। जहां जी चाहा जोत लिया। इन हथियारों को त्याग दो। ये हत्यारे हैं। फिर बहुत ही जल्द तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।

इन्द्र के इतना कह चुकने पर महावीर अर्जुन ने यूँ कहना प्रारम्भ किया—

महाराज! आप की इन युक्तियुक्त बातों का मेरे जैसा तुच्छ आदमी क्या उत्तर दे सकता है। सच पूछिये, तो मैं आप के इस उपदेश का अधिकारी ही नहीं। मेरी आपको सारी रामकहानी मालूम नहीं है यतः आप मुझे मुनियों को जैसा उपदेश कर रहे हैं। आपका उपदेश, वस्तुतः बड़ा उत्तम है। पर शोक है कि मैं उस का पात्र नहीं। ऊपर ज़मीन में कैसा ही अच्छा बीज क्यों न हो, कभी नहीं जम सकता! अतः आप कृपा कर पहिले मेरी रामकहानी को सुन लीजिये—

मैं क्षत्रिय हूं। पाण्डु का पुत्र हूँ। अर्जुन मेरा नाम है। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर को और हिस्सेदारों ने राज्य से निकाल दिया है। उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ तप करने के लिए आया हूं। व्यास जी के उपदेशानुसार मैं आराध्यदेव, इन्द्र महाराज की उपासना करता हूं। शस्त्र-सहित उपासना करनी चाहिये। यह भी मुझे व्यासजी ने ही बतला दिया है। आप शायद यह कहें कि युधिष्ठिर स्वतः बड़े बली हैं और तुम जैसे वीर उनके भाई हो फिर शत्रुवों से उनका कैसे पराभव हुवा? सुनिये विवश जुआ खेलते-हुवे महाराज युधिष्ठिर ने अपने राज्य को, आत्मा को, हमें और द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया। कपट के फांसे थे। सब हार गये। क्या किया जाता? ऐसी ही होनी थी। हाय! हाय!! उन बातों की जिस समय याद आती है, छुरी सी लग जाती है, जब कि द्रौपदी को बेइज़्ज़ती के साथ वस्त्र उतारे गये थे और लोगों को कहनी न कहनी सब कुछ बातें कही थीं। युधिष्ठिर ही थे, जिन्हों ने वे बातें सही करलीं। हम से तो ऐसी बातें सही नहीं जाती। क्या करें, उस समय हम उन के कारण इन्द्रियां रखते हुवे भी चूं तक न कर सके। एक तरह से तो यह अच्छा ही हुवा, शत्रु को तो फिर भी कभी में किया जा सकता है। वह समय बार बार आता। ऐसा करने से हमारी बड़ी निन्दा थी।

आप शायद यह कहेंगे कि शत्रु के वध करने में कौन सी निन्दा है? उसे मार डालने से उलटा यश होता! नहीं, यह बात नहीं, युधिष्ठिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े तनस्वी हैं। मनस्वियों के मन और समुद्रों के जल, मर्यादा से बाहर कभी नहीं हुवा करते। आप कह सकते हैं कि युधिष्ठिर को अजातशत्रु कहा जाता है। अतः उनका तो कोई भी, और विशेष कर अपने भाई बन्धु ही, शत्रु न होने चाहियें। सुनिये—उन लोगों से मैत्री ही शत्रुता का कारण हुवी। दुष्टों की मैत्री दोष ही के लिए हुवा करती है।

यह कहने से आप के चित्त में सम्भवतः यह शङ्का उत्पन्न होगी कि वे यदि दुष्ट ही थे, तो पहले ही क्यों उनके साथ मित्रता की गई? इस के लिए एक प्रसिद्ध उक्ति, समाधानरूपेण उत्तर है कि धूर्तों के विचार दैव की तरह से कोई भी नहीं जान सकता!

हम लोग मानो कहलाते हुवे, इतने बड़े भारी तिरस्कार को सहकर निर्लज्जता से नहीं जी रहे। किन्तु बदला लेने की इच्छा से जी रहे हैं। अन्यथा कभी के मर गये होते। सहवासियों की तो बात ही क्या है। हम लोग, इस तिरस्कार से आपस में भी तो शरमाते हैं। आप इन सारी बातों को उड़ादेने वाली एक यह बात कह सकते हैं कि यह मान ही सब कुछ दुःख दे रहा है। इसे ही क्यों न छोड़ दिया जाय। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मानहीन पुरुष की और तिनके को एक सी गति है। जो चाहे उसे उड़ा डाले। जब तक मनुष्य का यश रहता है, लक्ष्मी भी तभी तक पास रहती है। मानभ्रष्ट पुरुष तो पुरुष कहलाने लायक़ ही नहीं।

मुझे सुख की इच्छा नहीं, और न मुझे समुद्र की तरङ्गों की तरह से चञ्चल धन ही की आवश्यकता है। मुक्ति की भी मुझे कुछ अभिलाषा नहीं। मेरी इच्छा केवल यह है कि शत्रुवों से कपट से किये गये अयश रूपी कींचड़ को विधवा होने के कारण दुखित हुवीं शत्रुवों की स्त्रियों के आसुवों से धोवूं।

सम्भवतः इस कहने से पण्डित लोग मेरी हँसी करें, या यह विचार मेरी बुद्धि ही का प्रमाद हो। भलेही आप भी अपने जी में इससे शरमायें कि हमने इसे व्यर्थ ही उपदेश दिया। पर मेरी यह जी की लगन शत्रु की पराभवेच्छा, कभी नहीं छूट सकती। सच जानिये, मैं तो इस काम को किये बिना मोक्ष को भी एक प्रकार का जंजाल ही समझता हूँ। सचमुच उस जीवित पुरुष को भी मरा हुवा ही समझना चाहिये, जो शत्रुवों से विलुप्त यश को अपने बाणों से नहीं लौटाता। जिस पुरुष का क्रोध, शत्रुवों का पराजय किये बिना ही शान्त हो जाता है, आप ही बतलाइये, उसे कैसे पुरुष कहा जा सकता है? जिस मनुष्य में पौरुष नहीं, उसे पुरुष कहना सरासर भूल है!

अब आप मुझ से अधिक क्यों कहलाते हैं? मैं ने अपने जी में यह निश्चय कर लिया है कि या तो इन्द्रदेव को प्रसन्न करके इस अयशरूपी कांटे को निकाल ही दूँगा। या इसी पर्वत पर टुकड़े टुकड़े होकर शरीर छोड़ दूंगा। यह सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गये। अर्जुन को गले से लगा लिया। और अपनी मूर्त्ति के दर्शन कराये। साथ ही अर्जुन को शिव जी की आराधना करने की आज्ञा दी।

(अवशिष्ट आगे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहोपाध्याय
कैलासचन्द्र शिरोमणि महाशय

काशी एक प्राचीन तथा पवित्र विद्या-पीठ है, इस बात को कौन पुरुष भारतवर्ष में नहीं जानता। भारत वर्ष ही क्या यूरोप, चीन आदि द्वीपान्तर में रहने वाले विद्वान् भी इस बात को अच्छी तरह जानते और मानते हैं कि काशी हिन्दुओं का परम पवित्र और मुख्य विद्या का स्थान है। यह बात यथार्थ में ऐसी ही है, क्योंकि यहाँ प्राचीन समय में तो एक से एक विद्वान् पुरुष थे ही, पर अब तक भी यहाँ ऐसे ऐसे विद्वान् दिखाई देते हैं। उन्हीं विद्वानों में से प्रसिद्ध, महामहोपाध्याय श्रीमान् पंडित कैलासचन्द्रशिरोमणि महाशय भी हैं।

आज उन्हीं का प्रस्तुत पवित्र प्रातःस्मरणीय जीवन-चरित्र मनोरमा के पाठकों की भेंट किया जाता है।

जन्मकाल और बाल्यावस्था

इन्होंने १७५२ शक वर्ष में माघमास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन बङ्गाल के प्रसिद्ध बर्दवान् जिले के 'धात्री' ग्राम में जिसे 'राढा' गांव बोलते हैं, बड़े प्रसिद्ध विद्वानों के वंश में महात्मा पंडितवर घनश्याम सार्वभौम के गृह को अपने जन्म से पवित्र किया। इनके पिता सार्वभौम महाशय प्रसिद्ध स्मृति-शास्त्र के पण्डित थे, और पितामह (दादा) उस काल के सुप्रथित नैयायिकों में अद्वितीय विद्वान् थे, जिनका नाम भवनाथ तर्कपञ्चानन था। श्रीमान् शिरोमणि महाशय ने बाल्यावस्था, पूज्य माता श्रीमदादिरिणी देवी की गोद में क्रीडा करते हुए सुख से बिताई।

विद्याभ्यास

शुभ मुहूर्त में प्राचीन रीति से विद्यारम्भ कर उस ग्राम की शिशुपाठशाला में बङ्गभाषा की शिक्षा पाकर अपने पितृव्य (चाचा) 'श्रीजनार्दन तर्कवागीश' के निकट, व्याकरण, काव्य, कोष, अलङ्कार आदि शास्त्र अच्छी तरह शिरोमणि महाशय ने पढ़े और उसमें दृढ व्युत्पत्ति होने के अनन्तर अठारह वर्ष की अवस्था में 'न्यायशास्त्र' पढ़ने की इच्छा से पास के 'देवीपुर' नाम के ग्राम में प्रथित विद्वान् 'हरचन्द्र न्यायवागीश' महाशय के पास पहुँचे, जिनकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी। वहाँ 'पञ्च लक्षणी' से 'सामान्य निरुक्ति' पर्यन्त न्यायशास्त्र के ग्रन्थ प्राचीन रीति से पढ़कर घर आये।

विवाह और अध्ययनान्त

यद्यपि इनकी विवाह करने की इच्छा न थी तथापि माता पिता आदि बन्धुजनों के आग्रह से उनके सन्तोष के लिये, तथा अपने साङ्ग, द्वितीयाश्रम में प्रवेश होने के लिये श्रीमती 'तरङ्गिणी' देवी के साथ विवाह किया। साक्षाल्लक्ष्मी स्वरूपा, पतिव्रता स्त्री के संयोग से शिरोमणि महाशय का उत्तम भाग्य मणि-कांचन के संयोग के समान और दिन दिन उज्ज्वल होने लगा। पतिव्रता के प्रताप से इनकी भाग्यलक्ष्मी दिन दिन बढ़ने लगी। पढ़ने के लिये न्यायशास्त्र के मुख्य पीठ 'नवद्वीप' में जाकर वहाँ के प्रसिद्ध पंडितवर नवीन न्याय के अन्तिम रचयिता* 'गोलोकनाथ न्यायरत्न' महाशय

* इन्होंने सम्पूर्ण गदाधरी पर गालोकी नाम की टीका लिखी है। सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू यूनिवर्सिटी के सहायक—
महाराज दरभंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास 'विवेचना' ग्रन्थ पढ़ने लगे, परन्तु चार महीने बाद इन्हें वहाँ से घर लौट आना पड़ा, क्योंकि वह पण्डितराज कालधर्म से स्वर्गारूढ़ हो गये। तब कुछ दिनों तक इनका पढ़ना बन्द रहा किन्तु कुछ दिनों बाद फिर उसी नवद्वीप में श्रोत्रिय "पण्डित प्रसन्नचन्द्र* तर्करत्न" महाशय से अवशिष्टन्यायशास्त्र पढ़कर 'शिरोमणि' पद से भूषित हो शिरोमणि महाशय अपने घर आये। बङ्ग देश के व्यवहारानुसार अपने घर पाठशाला (चतुष्पाठी) खोल कर उसमें विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे।

काशीगमन और प्रसिद्धि

इस तरह पढ़ाते हुए तीन ही वर्ष शिरोमणि महाशय को बीते थे कि एकाएक बड़े भाई प्रसन्न चन्द्र* महाशय का अकाल मृत्यु होने से, तथा माता का गङ्गातट पर स्वर्गलाभ हो जाने के कारण ये कुछ व्याकुल से हुए। तथापि धीरता धारण कर अपनी माता का और्ध्वदैहिक कर्म (अन्तिम संस्कार) किया। इसके अनन्तर इन्होंने मोक्षपुरी काशीधाम देखने की इच्छा से रामलाल भट्टाचार्य तथा एक उत्कल देशीय छात्र के साथ घर से प्रस्थान किया। कुछ दूर तक पैदल तथा कुछ दूर रेलगाड़ी से चलते हुए शिरोमणि महाशय आनन्द-कानन (वाराणसी) काशी में पहुँचे। वहाँ किसी भाटिया के घर में निवास करते हुए इस रीति से विद्यार्थियों को पढ़ाया कि जिससे थोड़े ही दिनों में इनका विमल यश काशी के चारों तरफ़ फैल गया, और ये काशी के प्रसिद्ध बड़े बड़े पण्डितों में गिने जाने लगे।

राजकीय पद-प्राप्ति

इनकी यहाँ तक प्रसिद्धि हुई कि, उस समय के 'राजकीय संस्कृत-प्रधान-पाठशाला' (क्वीन्स् कालेज) के प्रधानाध्यापक प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डितवर महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री, सी. आई.ई. भी शिरोमणि महाशय के गुणों से अत्यन्त आकृष्ट हुए और उन दिनों में अर्थात् १९२५ विक्रम वर्ष में उपर्युक्त पाठशाला में एक नैयायिक का स्थान ख़ाली था, उस स्थान पर बापूदेव शास्त्री जी ने शिरोमणि महाशय को स्वयं बुला कर तीन मास के लिये नियुक्त किया। उस स्थान का मासिक वेतन केवल पैंतीस रुपये था, परन्तु 'शिरोमणि महाशय' के गौरव के लिये चालीस रुपया कर दिया गया। थोड़े ही दिनों में इन्होंने अपने पाण्डित्य तथा गुणों से काशी के सम्पूर्ण पंडित, विद्यार्थी, तथा पाठशालाध्यक्षों का अन्तःकरण अपनी तरफ इतना आकर्षण कर लिया, कि तीन महीने बीतते ही उस समय के 'काशीस्थ राजकीय संस्कृत पाठशाला' के प्रधान अधिष्ठाता (प्रिंसिपल) 'ग्रिफिथ' महोदय ने शिरोमणि महाशय ही को उस स्थान पर सर्वदा के नियुक्त कर दिया।

शिष्य-वर्ग

"महामहोपाध्याय" सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीराम मिश्र शास्त्री*, काशीस्थ राजकीय संस्कृत पाठ-

* ये फ़ारसी अङ्गरेजी आदि के बड़े विद्वान् थे। एल-एल. बी. की परीक्षा में पास होते ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। लेखक

* ये दर्शन शास्त्र के अद्वितीय पंडित थे क्वीन्सकालेज में ३० वर्ष नौकरी करने के बाद थोड़े ही दिनों में इनका देहान्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाला के 'शारदाभवन' (लाइब्रेरी) के प्रधानाध्यक्ष वर्तमान (लाइब्रेरियन) पं० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी, पण्डितवर मनीषानन्द स्वामी, "महामहोपाध्याय" पण्डित श्रीयादवेश्वर "तर्करत्न" श्रीमान् प्रमथनाथ "तर्कभूषण", श्रीमान् आद्याचरण "न्यायरत्न," श्रीहरिनाथ "वेदान्तवागीश," श्रीसुरेन्द्र लाला गोस्वामी, बटुकनाथ शास्त्री "तर्कतीर्थ," * वामाचरण भट्टाचार्य, कलिकत्ता के संस्कृत कालेज के वेदान्ताध्यापक महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री द्राविड, आदि शिरोमणिमहाशय के प्रधान छात्र हैं। इस तरह शिष्यों को न्याय-वेदान्त-मीमांसा-सांख्य-योग-पूर्वमीमांसादिदर्शनों को लेकर धर्मशास्त्र तक सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ाते हुए काशी में प्रायः सभी के लिये शिरोमणिमहाशय, 'भट्टाचार्य' नाम से एक ही, अपने समय में भूषित और प्रसिद्ध हुए। व्याकरण से लेकर दुरूह न्याय विवेचनान्त सभी विषयों में इनकी समान गति थी। इनको, पढ़ाते समय हाथ में पुस्तक लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। निरन्तर अध्यापन से ही शिरोमणि महाशय में ऐसी शक्ति होगयी थी।

"महामहोपाध्याय" की उपाधि

ईसवी सन् १८९६ में शिरोमणि महाशय को 'गवर्नमेन्ट' की तरफ़ से सम्मानपूर्वक 'महामहोपाध्याय' की उपाधि, वस्त्र, मेडिल आदि चिह्न सहित समर्पण की गई।

महाशय का महाशयत्व

केवल विद्या से ही कैलासचन्द्र भट्टाचार्य महाशय नहीं थे, किन्तु दीनों पर निःसीम दया, दान, तथा विनयादि गुणों से भी ये महाशय थे। अब तक उनके घर को काशी वासी लोग महाशय ही के नाम से पुकारते हैं। 'विद्या ददाति विनयं' इस वाक्य का सच्चा दृष्टान्त आज तक यदि देखने में आया तो शिरोमणि महाशय में ही। इन्होंने मन से भी कभी किसी का अनिष्ट न विचारा या किसी ने कभी इन्हें क्रोध या शोक युक्त न देखा।

राजकीय पद की अस्थिरता

यह पाठशाला के 'भूषण' सम्पूर्ण पण्डितों के 'शिरोमणि' हैं, ऐसा निश्चय कर आधुनिक, राजकीय संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यक्ष (प्रिंसिपल) आर्थर वेनिस् [Arthur Venis] महोदय ने अध्यापक पद का* पूर्णकाल होने पर भी, तथा स्वयं शिरोमणि महाशय के वार्धक्य के कारण अध्यापक के पद का त्याग करने में प्रवृत्त रहते हुवे भी बड़े प्रबन्ध से इन्हें आग्रह तथा सम्मान पूर्वक गवर्नमेन्ट से आज्ञा लेकर कुछ काल तक फिर भी प्रधानाध्यापक के पद पर रहने दिया। कई वर्षों के बाद वाइसराय (गवर्नर जेनरल) लार्ड कर्ज़न ने अपने अध्यक्षताकाल में शिरोमणि महाशय के पद पर विचार किया, और उन्हें इतने काल तक राजकीयशासन-प्रणाली के विरुद्ध गवर्नमेन्ट पोस्ट पर रखने का कारण पूछा।

* ये शिरोमणि महाशय के पद पर अब योग्य नैयायिक हैं। लेखक

* ५५ वर्ष के बाद गवर्नमेन्ट के पद पर [illegible] नहीं रह सकता। सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं लेफ्टिनेंन्ट गवर्नर छोटे लाट श्रीमान् लाटूस महोदय ने काशी में आकर वाइसराय श्रीमान् लार्ड कर्ज़न को शिरोमणि महाशय के चिरकाल राजकीय पद पर रहने का कारण, तथा उनका पांडित्य और गुण बतला कर, यह वाइसराय से आज्ञा करा दी, कि "जबलों ये पाठशाला में आवेंगे तब तक इनका अधिकार रहैगा"।

शोक और पद-त्याग

अध्यक्ष के प्रबन्ध से अब तक इन्होंने पद नहीं छोड़ा, पर एकाएक ई० १९०७ सन में पौत्र, तथा बड़े पुत्र* राजवल्लभ भट्टाचार्य की अकाल मृत्यु से विह्वल हो शिरोमणि महाशय ने छुट्टी ली क्योंकि इन दिनों में शरीर भी बहुत अस्वस्थ रहता था।

ग्रन्थ-निर्माण

शिरोमणि महाशय ने न्याय-दर्शन 'वात्स्यायनभाष्य' की एक टीका और कई देवताओं के स्तोत्र भी बनाये। पर ये अभी तक सब ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उन्हें प्रकाशित करने का प्रबन्ध हो रहा है।

कलियुग के ब्रह्मर्षि

इस लेख के लेखक का इतना सामर्थ्य नहीं है कि यह शिरोमणि महाशय के गुणों को यथावत् लिख सके, पर जब यह उनकी उस गंभीर तथा शान्त मूर्ति और छात्रों पर असाधारण स्नेह का स्मरण करता है तो मन में दृढ़ निश्चय होता है कि वे कोई कलियुग के ब्रह्मर्षि थे। जब यह १३ वर्ष का था, तब पूज्य पिता के स्वर्गलाभ होने के बाद (जो उनके शिष्य वर्गों में से थे) कालेज में महाशय के पास "मुक्तावली" पढ़ने जाने लगा। वे जिसतरह पढ़ाते थे यह भी उसके बाद उन्हीं के शिष्य परम्परा में कई अध्यापकों से पढ़ा तथा कई अध्यापकों की पढ़ाई देखी। पर उनकी वृत्ति, पढ़ाने के समय जो होती थी किसी में न पाई। केवल पढ़ाने ही के समय नहीं सर्वदा शिरोमणि महशय की वृत्ति शान्तियुक्त रहती थी, तब उन्हें कलियुग के ब्रह्मर्षि मानने में कोई सन्देह नहीं है। अलौकिक प्रतिभा के बलसे, तथा असाधारण पक्षपातरहित करुणा से, शिरोमणि महाशय ने अपना गौरव बढ़ाया। नहीं तो काशी से नगर में वंगदेशीय को इतनी प्रतिष्ठा मिलना कठिन था। केवल वंगदेश ही नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल इन्होंने अपने जन्म और कर्म से अलंकृत किया।

शान्तिलाभ

दुरात्मा काल भारतमाता की उन्नति न सहन कर सका। गत १८३० शकवर्ष ई० १९०८ सन में चैत्रमास की तृतीया के दिन सायं काल के समय ७६ छहत्तर वर्ष की अवस्था में 'शिरोमणि महाशय' भारत भूमि को निविड अन्धकार से आच्छादित करते हुए, दीन गीर्वाणवाणी को माता के समान विलाप युक्त करते हुए, भारत माता के अंक को शून्य करते हुए तारक ब्रह्मनाम का स्मरण करते करते काशीश्वर भगवान् शिव जी की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुए। जहाँ जहाँ विद्या, गुण तथा गुणियों का आदर होता है, वहां वहां शिरोमणि महाशय का शोक सभी लोगों

* अब शिरोमणि महाशय के मुकुन्दवल्लभ, आशुतोष, सदानन्द, नित्यानन्द, नाम के चार पुत्र और एक कन्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अनुभूत होगा। अन्त में यही हम भी भगवान् उमापति से प्रार्थना करते हैं, कि हमें भी पूज्य-पाद गुरुवर्य श्रीकैलासचन्द्र शिरोमणि महाशय के चरणारविन्द के ध्यान से धन्यता प्राप्त हो। इतिशम्।

दुण्ढिराज शास्त्री

पुरुषार्थ

(गताङ्क से आगे)

गताङ्क में कहा जा चुका है कि पुरुषार्थ विषय में लौकिक और परीक्षकों के अनेक मत हैं। जिन के कारण तटस्थजीव पथिक बड़े जंजाल में पड़े हैं। अब वही मतभेद क्रम से आपके सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं। एक, एकाग्र मति कहते हैं कि पुरुषार्थ एक ही है। दूसरे अद्वितीय बुद्धि, पुरुषार्थ को द्वित्व संख्या में ही निबद्ध करने के निमित्त कटिबद्ध हैं। तीसरे तीव्र-प्रज्ञ, पुरुषार्थ की संख्या में तीन पर्य्यन्त का अत्यन्त आग्रह करते हैं। चौथे विचारचतुर, चार पुरुषार्थ होने के निश्चल पक्ष को लिये हुए हैं। जैसे कि पुरुषार्थ की संख्या में लौकिक तथा परीक्षकों के विविध विकल्प आपके कर्णगोचर हो चुके हैं वैसेही पुरुषार्थ साधन विषय में भी लौकिक और परीक्षकों के पूर्व से कहीं अधिक विकल्प हैं। जिन का यहां उल्लेख अत्यावश्यक न जानकर नहीं किया जाता। पूर्वोक्त पुरुषार्थ भेदों के भिन्न भिन्न विस्तृत निरूपण में यह विकल्प भी स्पष्ट दिखलाए जायँगे। जब तक कि पूर्व-पश्चिम, दिन-रात्रि, भूमि-आकाश, और देव-राक्षस आदि के सदृश परस्पर विरुद्ध इन पुरुषार्थ और साधन विषय के विकल्पों को दूर करके किसी एक पक्ष की प्रामाणिकता निश्चित न कर ली जाय तब "संशयात्मा विनश्यति" इस श्रीभगवान् के वचनानुसार पूर्वोक्त विकल्प-ग्रस्त जीवों को अनेक अव्यस्त साधनों में चिरकाल कष्टभागी होने भी पुरुषार्थभ्रष्ट हो जाना निश्चित सा है। प्रकार से फल-साधन-अंश में उक्त विकल्प निर्णय पर्यन्तगामी न किये जाएँ तो अल्पहो महाअनिष्टकर हैं। अतः इनमें से कौन पक्ष और कौन मिथ्या है? यह जिज्ञासा आप विवेचननिपुण समस्त ही मानवों के मन में सम काल ही अवश्य उत्कट रूप से उदय हो फिर आपका यह भी अवश्य कर्तव्य होगा आप उस जिज्ञासा को यथार्थ ज्ञान प्राप्त सफलता की सीमा तक पहुँचाएँ।

यथार्थ ज्ञान रूप फल-प्राप्ति से जिज्ञासा स करने को ज्यों ही आप कटिबद्ध हूजियेगा आपको "यथार्थ ज्ञान का स्वरूप और उसके तथा यथार्थ ज्ञान के साधन और उनके भेद, ही साथ मिथ्याज्ञान और उसके भेद, तथा ज्ञान-साधन और उनके भेद, अथवा संक्षेप कहिये कि ज्ञान का स्वरूप और उसके भेद ज्ञान के साधन और उनके भेद" इत्यादि अपरि दुर्गम विषय-वन के मध्य में होकर जाने मननकान्तार में चिरकाल भटके बिना अपने पू दूरस्थ दुर्लभ अभीष्ट स्थान तक पहुँचना मनोमोदक मात्र ही जान पड़ेगा। ऐसी (जब कि आपको इष्ट स्थान प्राप्ति के निमित्त बड़े विषम मार्ग का पथिक होना अनिवार्य यही करना उचित होगा कि आप कुछ ऐसे प्रदर्शकों की शरण लेकर अपना दुख रोवें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मार्ग की दाँव घातों से यथाविधि परिचित हों और साथ ही साथ सत्य-कथन भी हों। यदि आपको या मुझे सौ दो सौ कोस की यात्रा करनी पड़ जाए तो उस मार्ग के ज्ञाता इष्टमित्रों से अनेक वार पूँछ गच्छ कर मार्ग की यथार्थता से सम्यक् परिचित होकर ही घर से चलना समुचित समझा जायगा। इसी दृष्टान्त से वह विस्तृत यात्रा भी आपको आप्त, मार्गप्रदर्शकों के कथनानुसार ही करनी चाहिए। यह निःसन्देह श्रेयस्कर बात है।

अब आप ऐसे मार्ग-प्रदर्शकों को ढूँढने के लिये घर से बाहर निकलिये तो अनेक आप्तमानी "हम पथ-प्रदर्शक हैं, हम पथ-प्रदर्शक हैं" ऐसा कहते हुए मिलेंगे। उनमें यदि कोई सच्चे आप्त और सच्चे पथप्रदर्शक भी हों, तो बतलाइये तो सही, आपके पास ऐसी कौन सी कसौटी है? जो सहज ही में आपको बुरे भले के भेद को स्पष्ट कर दिखाये।

बस, फिर आपको सबकी बात क्रम से सुन कर अपनी बुद्धि के अनुसार ही सार निकालना अपना कर्तव्य दृष्टिगोचर होगा। अब आप, अपने मन में समझ लीजिये, कि हमें पूर्वोक्त विषय का श्रोता बनना है। हमें सबकी बात सुन कर यह निर्णय करना है कि अभीष्ट स्थान को पहुँचने के लिये कौन मार्ग उत्तम और सत्य तथा युक्ति युक्त है। उसी मार्ग से चल कर हम यथार्थ पुरुषार्थ ज्ञानरूप स्थान तक पहुँच कर यथार्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति के साधनों में तत्पर होकर यथार्थ पुरुषार्थ लाभ करें और अमूल्य मानुष देह में आकर अतिमूल्य समय मिथ्या पुरुषार्थ तथा मिथ्या साधनों में न खोएँ। यही अन्य समस्त जीवों का कर्तव्य है। ये ही पार-इच्छु तटस्थ जीव पथिकों के मानससागर की अनेक कल्लोल-मालायें हैं, जो पूर्वोक्त विकल्प हैं। इसी मानससागर में विकल्प के समान आकार निश्चयात्मिका बुद्धि नौका है जो पार करने वाली है और सद्गुरु इस नौका के कर्णधार हैं।

गताङ्क के जलप्रधान रूपक में जो बुद्धि, नौका रूप से वर्णन की गई है, वर्तमान अङ्क के स्थल प्रधान रूपक में वही बुद्धि इष्टस्थान रूप से वर्णन की गई है। वही सब मनुष्यों को अभिलषित है। अतः आप, मनुज मात्र के प्रतिनिधि बन कर पूछ सकते हैं कि करुणामय मार्गप्रदर्शको! आप सब इस विषय में कृपा कर हमें मार्गोपदेश कीजिये। जिससे हमको यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो। हमने भगवद्गीता में सुना है कि (तद्विद्धि, प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः) उस ज्ञान को प्रणाम, प्रश्न, सेवा आदि से जानों ऐसा करने पर ज्ञानी तत्त्वदर्शी तुमको ज्ञान उपदेश करेंगे। अतः हमारा सप्रणाम आप लोगों से प्रश्न है।

यह सुनते ही समस्त उपदेशकमण्डल एक स्वर से यही उत्तर आपको देगा कि श्रोतृगण! यह प्रश्न बड़ा गूढ़ है। यह तत्त्व बड़ा दुर्बोध है। तथापि हम तुमको पात्र और जिज्ञासु जान कर इसका उत्तर दिए बिना न रह सकेंगे। सावधानता से सुनिए—

यह जैसा गूढ़ विषय है इसका परिचय आपको हम पुरातन एक श्लोक से भी प्रथम ही कराए देते हैं। इसकी गम्भीरता में प्राचीनों की यह सम्मति है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैषाऽप्यावि गुरोर्मतं, न विदितं कौमारिलं दर्शनम्,
तत्त्वज्ञानमहो न शारिकगिरां वाचस्पतेः का कथा ?
सूक्तं नापि महोदधेरधिगतं माहाव्रती नेक्षिता,
सूक्ष्मावस्तुविचारणान्नृपशुभिः स्वस्थैःकथं स्थीयते ॥

अर्थ – जिन्होंने *गुरु मत को नहीं सुना तथा †कुमारिल भट्टाचार्य के दर्शन को नहीं जाना, शारिका (गुरु मत में मीमांसा की टीका विशेष) का जिनको तत्वज्ञान नहीं है, वाचस्पति (षट्शास्त्र के व्याख्याता) की तो कथा ही क्या है – अर्थात् वाचस्पति मिश्र कृत षट्शास्त्रों के व्याख्यान का भी जिनको ज्ञान नहीं है, महाभाष्य के सूक्तों को भी जो नहीं जानते, माहाव्रती (शैवों का ग्रन्थ) जिन्होंने नहीं देखा उनको वस्तुविचार कठिन है मनुष्यपशु क्या निश्चिन्त बैठे हैं ?

(यहाँ पूर्वपक्ष पूर्वरूप अन्य दर्शन भी ऊपर से समझ लेने चाहिए) ऐसे गूढ विषय पर जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा है और यदि हम लोग सब मिल कर तो दूर, भिन्न भिन्न एक एक भी अपने अपने समस्त आशयों को यथाविधि प्रकट करना चाहें तो बहुत समय की आवश्यकता है। सबों के अनन्त वाग्जाल का पार तो पुरुषायुष में भी पाना असम्भव सा जान पड़ता है। क्योंकि हमारे ही तो उपदेश लोक में शास्त्र या दर्शन शब्द से पुकारे जाते हैं। जिन सबके यथार्थ कथन और ज्ञान करने को वर्षशत भी न्यून हैं, यह कहना कुछ अत्युक्ति नहीं है। और यदि हम समस्त अपने अपने समग्रभावों को विस्तृतरूप में वर्णन करें तो दीन "पुरुषार्थ" शीर्षक लेख के लेखक की लेख आयु भर भी इस लेख को समाप्त न कर पा और उसका यह पुरुषार्थ अपुरुषार्थ रूप में परि णत होजाय। और न हमारा गुप्तवाणीमर्म समग्र रूप से किसी ऐसे जैसे लेखक की लेखनी का विषय हो सकता है। तथापि अल्प बुद्धि लोगों को समझाने के लिये इस लेख के लेखक की लेखनी रूप जिह्वा द्वारा जो संक्षिप्त वर्णन हम करें वह भी आप लोगों के निमित्त सम्भवतः पर्याप्त होगा यह कह कर उपदेशकमण्डल मौन अवलम्बन करेगा।

कुछ काल के अनन्तर क्रमप्राप्त पण्डितम्मन्य नास्तिक-शिरोमणि बृहस्पति के शिष्य, कलिकाल के परममित्र, अज्ञान के आज्ञाकारी, अल्पज्ञों के आचार्य, क्षीणपुण्यों के पथ-प्रदर्शक, अधन्यों के मूर्धन्य, रुचिरवाक्य, चार्वाक, अपनी सरसवाणी से आप लोगों के मन को रञ्जन करते हुवे अभि मन्तव्य प्रकाश करने के लिये मौन के बदले मुखरता धारण करेंगे, जिनका प्रथम ही सूक्त यह होगा–

"यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥"

अर्थ--जब तक जीवे सुख से जीवे चाहे ऋण करना पड़े परन्तु दूध अवश्य पीवे। भस्म हुवे का फिर जन्म कैसा--अर्थात् मरकर दूसरे शरीर में पापों के फल होते हैं इस भय से ऋण करने न चूके।

क्योंकि इन्द्रिय और विषय के संयोग* से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। और

* मीमांसा के एक व्याख्याता थे। † मीमांसा के द्वितीय व्याख्याता का नाम है।

* सम्बन्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक यथार्थज्ञान है। जैसा कि नेत्रों के और घट के सम्बन्ध से उत्पन्न "यह घट है" ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष कहाता है और यथार्थ होता है। इन्द्रिय इस ज्ञान के करण* हैं इस लिए वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाते हैं, यही एक प्रमाण है। अन्य आचार्यों के माने हुवे अनुमान आदि प्रमाण और अनुमिति आदि ज्ञान उनकी कपोलकल्पना मात्र हैं। वास्तव में उनका कोई स्वरूप नहीं है। उन कल्पित प्रमाणों से सिद्ध की गयी वस्तु भी "यादृशोयज्ञस्तादृशोबलिः" जैसा यज्ञ वैसी ही बलि, इस कहावत के अनुसार असार हैं। तात्पर्य यह है कि मिथ्या प्रमाण वेदादि को अवलम्बन करके जो ईश्वर, पुण्य, पाप, देहसे अतिरिक्त आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक, मोक्ष इत्यादि आस्तिकों का जो महानआडम्बर है वह साधक प्रमाणों के ही मिथ्या होने से वञ्चना मात्र है, वास्तव नहीं है। जैसा कि आचार्य का वचन है

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम् ।
बुद्धिपौरुष हीनानां जीविकेति बृहस्पतिः ॥

अर्थ—अग्निहोत्रादि कर्मकाण्ड, और उसके प्रतिपादन करने वाले तीनों वेद, ज्ञान प्राप्ति के निमित्त सन्यास आश्रम में तीन दण्डों का ग्रहण, भस्म और त्रिपुण्ड्र, ऊर्ध्वपुण्ड्र, आदि का लगाना, यह सब बुद्धि और बल से हीन पुरुषों ने सुख से धन प्राप्ति के निमित्त अपनी जीविका बना ली है। यह आचार्य बृहस्पति का मत है। कर्ता, शरीर और कर्म यज्ञादि द्रव्य अग्नि में डाले हुवे घृत, चरु आदि तीनों का जब प्रत्यक्ष सिद्ध नाश हो चुका तो फिर भी यदि स्वर्गादि फल हों तो जले कटे वृक्षों पर फल क्यों नहीं आते, उन पर भी आने चाहियें। मृतक पुरुषों को यदि श्राद्धादि पहुँचते हैं तो पथिकों को मार्ग-भोजन बाँधने का कष्ट क्यों सहाया जाता है। उसी प्रकार उनको भी घर ब्राह्मण भोजन करा देने से क्यों नहीं विदेश में तृप्त किया जा सकता? यदि यज्ञ में मृत-पशु स्वर्ग जाता है तो यजमान उसके बदले अपने पिता को मार कर स्वर्ग क्यों नहीं पहुँचाता? अतः किसी कवि का यह श्लोक हमारे चित्त को अति तुष्टि देता है।

ग्रावोन्मज्जनवत् यज्ञफलेऽपि श्रुतिसत्यता ।
का श्रद्धा तत्र धी वृद्धाः कामाध्वा यत् खिलीकृतः ॥

अर्थ—हे बुद्धिवृद्ध* आस्तिको यज्ञों के फल में वेदों की सत्यता "पत्थर तरते हैं" इस वाक्य के समान है (अर्थात् जैसे "पत्थर तरते हैं" यह वाक्य प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हो सकता ऐसे ही प्रत्यक्षविरुद्ध आत्मा को नित्य और परलोक गामी कहकर यज्ञ फल को मरने के बाद बतलाने वाले वेदवाक्य भी वञ्चक वाक्यों के सदृश अप्रमाण ही हैं) उनमें आप लोगों की ऐसी क्या श्रद्धा है जो काम के मार्ग को प्रत्यक्ष विषय भोगादि त्यागकर नष्ट करते हो?

परन्तु अनेक वाचाल आस्तिक मिलकर हम पर नास्तिकता का अपयश लगाकर अपने को खूब पुजवाते हैं और पामर लोग उनके आशा-मोदक समान परलोकफलों के धोके में आकर इस लोक के सुखों को भी त्यागकर उभयभ्रष्ट हो बैठते हैं। उन पर हमको बड़ी करुणा आती है। अथवा ऐसी वञ्चना करने वाले भी उभयभ्रष्ट ही समझने चाहियें क्योंकि वह भी दूसरों के दिखलाने के निमित्त अनेक तप, व्रत आदि आकाश-

* उस मात्र के कारण।

*यह उपहास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्प के तुल्य पारलौकिक साधनों में ही धन संग्रह कर अनेक कामभोग के अमूल्य समय को नष्ट कर बैठते हैं, ऐसे जीवों पर ही कृपादृष्टि करके किसी कारुणिक ने कहा है—

यन्नास्त्येव तदस्ति वस्त्विति मृषाजल्पद्भिरेवास्तिकैः,
वाचालैर्बहुभिस्तुवत्यवचसोनिन्द्याः कृता नास्तिकाः।
हंहो पश्यत तत्वतो यदि पुनश्छिन्नादितो वर्ष्मणो,
दृष्टः किं परिणामरूपितचितेर्जीवः पृथक्कैरपि।

अर्थ—जो वस्तु हैं ही नहीं उनको मिथ्या ही प्रतिपादन करने वाले बहुत से वाचाल आस्तिकों ने सत्यवादी नास्तिकों को निन्दित कर दिया है। भाई, विचार दृष्टि से तो देखो कि नष्ट हुवे इस शरीर से भूत परिणाम चेतना को छोड़कर अन्य-नित्य चेतन जीव कभी किसी ने निकलते देखा भी है?

और देखिए, शरीरों के समान आकार होने पर वर्णभेद कैसा? सभी स्त्रियों के समान होने पर अपनी पराई का भेद प्रमाणशून्य है। समान धर्मों में, अपने पराये की चिन्ता वृथा है। यह कर्तव्य है यह अकर्तव्य है, ऐसी चिन्ता करना केवल पुरुषार्थहीनों का काम है। जैसी स्वर्गादि-कल्पना है वैसी मोक्ष में भी अनेक कपोलकल्पना आस्तिकों ने की हैं।

उनका मिथ्यात्व आस्तिकों के शिरोरत्न, कविकुलगुरु, महाकवि कालिदास के ही एक श्लोक से स्पष्ट है। इसको, कुछ कहने की आव-श्यकता ही न पड़ी—

अविदितसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चित्
जडमतिरिह कश्चिन्मोक्षमित्याचचक्षे।
मम तु मतमनंगस्मेरतारुण्यघूर्ण-
न्मदकलमदिराक्षीनीविमोक्षो हि मोक्षः।

जिसमें सुखदुःख का ज्ञान नहीं है ऐसे निर्गुण किसी वस्तु को कोई मन्दमति मोक्ष कहते थे, मेरा मत यह है कि काम से खिली, तरुणता से घूमती, मद से अव्यक्त शब्द करती, सुलोचना स्त्री के नीचे के वस्त्र की ग्रन्थि का मोक्ष (खोलना) ही मोक्ष है। इति

जो रीतियाँ वैदिकों के निराकरण की हैं उन ही से जैन बौद्ध आदि की भी निःसार समझ लेनी चाहिये, वे भी अप्रमाण अनुमान के ही बल पर लम्बी चौड़ी मारते हैं। यह न समझते कि प्रत्यक्ष के अवलम्ब से ही तो अनुमिति आदि प्रतिष्ठित होती हैं। वे यदि प्रत्यक्ष विरुद्ध चलें तो वैयाकरणों की सन्निपातपरिभाषा कहाँ जायगी? वह परिभाषा यह है।

"योयमाश्रित्योत्पद्यते स तं प्रति सन्निपातः"

जो जिसके आश्रय से उत्पन्न होता है वह उसके प्रति सन्निपात है।

सन्निपातजक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य

सन्निपातविधि अपने उपजीव्य (जिसके आश्रय उत्पन्न हुआ) के विघात में हेतु नहीं होता।

यदि शब्दशास्त्र की परिभाषा को अर्थशास्त्र के विषय में उपन्यस्त करना आप लोग हास्यमात्र ही समझें तो भी यह प्रमाणशास्त्र की दूसरी बात और सुन लीजिये।

* व्याप्ति ज्ञान अनुमिति का हेतु है। व्याप्ति ज्ञान हेतु साध्य † के साहचर्य ‡ को

* एक ज्ञान का नाम है जिससे कोई बात सिद्ध की जाय। † जो बात सिद्ध की जाय। ‡ नियम से एकत्र रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वह साहचर्य रसोई आदि सपक्षों* में हेतु साध्य (धूम अग्नि आदि) का प्रत्यक्ष सिद्ध है ऐसा तार्किकम्मन्य कहते हैं।

परन्तु हमारा कहना यहाँ इतना है कि धूम अग्नि आदि हेतु साध्यों का प्रत्यक्ष होता है यह कहना तो ठीक है परन्तु उनके साहचर्य (साथ रहने) का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। क्योंकि साहचर्य तार्किक को भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में अभिमत हैं। और प्रत्यक्ष ज्ञान वर्तमान विषय का होता है इसलिये जब व्याप्ति ज्ञान ही व्योमबल्ली† के समान असम्भव है तो उसके सहारे से जीने वाले अनुमिति आदि ज्ञान ख़रगोश के सींग नहीं तो और क्या हैं? और उनसे सिद्ध की गयी वस्तु गौके एक खुर‡ के सदृश सम्भवरहित नहीं तो क्या है? इसलिये अनुमान आदि वादियों की वञ्चना में आप लोग न आइये। और प्रत्यक्षसिद्ध हमारे सिद्धान्तों को अमूल्य समझिये, और परीक्षा कर लीजिए। एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। एक प्रत्यक्ष ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। प्रत्यक्ष देखे धन और भोग ही संसार में पुरुषार्थ (फल) हैं। अर्थ और काम को सिद्ध करने वाली दण्डनीति (वर्तमान राजक़ानून) और कृषिशिल्प आदि विद्या और वैद्यक, पाक आदि विद्या ही विद्या हैं।

उनमें लिखे साधनों से वित्त और भोग अच्छी रीति से लब्ध हो सकते हैं। राजा ही ईश्वर है। यदि धर्म कोई वस्तु है तो राजा की आज्ञापालन का ही नाम है। मोक्ष कोई पदार्थ है तो मृत्यु को ही समझिये। पृथिवी, जल, तेज, वायु, चार भूतों के देह रूप परिणाम में जो अपूर्व चेतन शक्ति उत्पन्न होती है, जैसे भिन्न भिन्न औषधों के परिणामरूप मद्य में मादक शक्ति, उस ही को जीव कहते हैं। जैसे कुछ दिनों बाद अनेक हेतुओं से मद्य में मादकता नहीं रहती तब कहते हैं कि यह मद्य पुराना होकर उतर गया। ऐसे ही देह की चेतनशक्ति पुरानी पड़कर नष्ट हो जाती है, तब कहते हैं कि मर गया। और कोई नित्य जीव शरीरों में आने जाने वाला नहीं है। विषयों के सुख को ही चाहें तो स्वर्ग भी कह सकते हैं। और कोई पदार्थ नहीं। इसी हमारे शास्त्र को लोकायत भी कहते हैं। यह आचार्य बृहस्पति जी का उपदेश है। इस पर चलते हुवे आयु भर कष्ट नहीं होता। सुख से अर्थ, काम, दोनों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। परलोक-बन्धनों को मिथ्या समझकर इस दर्शन के अनुयायी का काल धर्म और मोक्ष के साधनों में वृथा नहीं जाता। सब विषयों के भोग में पुरुष का स्वेच्छाचार होता है। किसी भी रोक टोक के न होने से अत्यन्त स्वतन्त्रता मिलती है। इसीसे बहुधा संसारी पुरुष इसको अतिमान्य दृष्टि से देखते हैं। वाह रे हमारे दर्शन! और हम और हमारे अनुयायी जन धन्य! धन्य!!

(अपूर्ण)

वासुदेव उपाध्याय

* दृष्टान्त को कहते हैं जो अन्वय की विधि से हो।
† आकाशलता। ‡ जुड़े खुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलसहित

हिन्दी-कुमार-सम्भव

(गताङ्क से आगे)

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वा-
देकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः ।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं
जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥ ३६ ॥

गजों की सूड़ें भी, विदित जग में रूप जिन का,
उमा की जांघों से, परुष (१) अपनी खाल समझ ।
बड़ी लज्जा-युक्ता, न तब तुलना थीं कर सकीं,
हुआ मौनी केला, शिशिर(२) अपनेको समझके ॥३६॥

एतावता नन्वनुमेयशोभि
काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चा-
दनन्यनारीकमनीयमङ्कम् ॥ ३७ ॥

इसीसे गौरी की, अनुमित, नितम्बस्थल-छवि,
अहो ! जो गोदी में, मुदित शिव ने धारण करी ।
न गोदी की इन्की, इतर ललना(३)तृट्(४) कर सकीं
(दशा, ये, पीछे की, परिणयन से वर्णन करी) ॥३७॥

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं
रराज तन्वी नवलोमराजिः ।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य
तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ॥ ३८ ॥

उमा की नाभी के, बिल-बिच, नया रोम-निकर
गभीरा (१) थी नाभी, बहुत पतले रोम, उसमें
उमाकी काञ्ची(२)का, असित-मणि(३), नीवी तज
खड़ा लेके कान्ती, इस तरह से शोभित हुआ ॥३८॥

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या
बलित्रयं चारु बभार बाला ।
आरोहणार्थं नवयौवनेन
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ३९ ॥

उमा ने कुक्षी से, त्रिवलि, रुचिरा, धारण करी
सुबाला थी तन्वी, तब उदर था, सूक्ष्म, उसका
जवानी नव्या से, मदन चढ़ने को स्थित हुई-
दिखाई देती थी, त्रिवलि, सच, सीढ़ी सम हुई ॥३९॥

अन्योऽन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः
स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य
मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ ४० ॥

कुचा, दोनों, उस्की, इस तरह थीं वर्धित हुई
बसींडों का तागा, भि न बिच उनों के घुस सका
कुचाओं के उस्की, तब अति हि थे, श्याम मुख
उमा की आंखें भी, सुसरसिज४ जैसी रुचिर५ थीं

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ
बाहू तदीयाविति मे वितर्कः ।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य
यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥ ४१ ॥

१ परुष = सख्त । २ शिशिर = शीतल । ३ इतर ललना = और स्त्रियां । ४ तृट् = इच्छा ।

१ गभीरा = गहरी । २ काञ्ची = तगड़ी । ३ असित मणि = नीलमणि । ४ सुसरसिज = अच्छा कमल । ५ रुचिर = मनोहर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजायें, गौरीकी, सिरस-कुसुमों(१)से मृदुल(२)थीं,
अहो ! शङ्का ये है, मदन-हर(३) से, राख, मदन(४)
हुवा था, तौभी हा!!, गिरिश-गल-फाँसी(५), मदन ने
उमा के हाथों से, रचित(६), पहिनाई सचमुच ॥४१॥

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य
मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव
साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥ ४२ ॥

गला, गौरी का, मौक्तिक-निकर(७)से शोभितहुवा,
गले से उस्के, मौक्तिक-निकर भी शोभित हुवा ।
अहा ! भूषा भूष्या, इस तरह, दोनों बन गये,
कुचों से ऊँचा कण्ठ, परिधृत मोती नितल थे ॥४२॥

प्रभात

[१]

तिमिर-निकर सारा सूर्य्य ने है हटाया,
गगन-मलिनता को तेज ने है घटाया ।
दिनकर-किरणों की लालिमा छा रही है,
सुरभि, सुखद, प्यारी वायु भी आरही है ॥

[२]

खग, मृग, सब जागे मोद में डोलते हैं,
शिशुजन अनुरागे गोद में बोलते हैं ।
तजकर सुखशय्या लोग जागे सभी हैं,
पर अलसजनों की नींद भारी अभी हैं ॥

[३]

निज-शयन-सुखी हो आलसी सो रहे हैं ।
यह समय निराला वे वृथा खो रहे हैं ।
अनुपम यह निद्रा आज भी है न छूटी ।
यदपि सब हमारी सम्पादाशक्ति लूटी ।

[४]

जगकर अब देखो ! बन्द थे नेत्र खोलो !
निजभवन निहारो ! चोट भी तो टटोलो !
तुम सब जन सोये, अर्थ-सर्वस्व खोये ।
अतिशय दुखवोये, क्या हुआ आज रोये ॥

[५]

अब जगकर देखो ! क्या रहा क्या गया है ?
सब कुछ पहिचानो क्या पुराना नया है ?
समय वह कहां है ? नींद में जो विगोया,
उठकर अब भी तो ढूंढ़ लो माल खोया ।

[६]

अह ! इस जगती में आपकी क्या कला थी !
त्रिभुवनभर में हा ! कीर्ति क्या उज्ज्वला थी !
विचलित रहते थे द्वीप देखे प्रताप,
इस समय हुए हैं मन्द से मन्द आप ॥

[७]

सजग सब हुए हैं दिव्य चैतन्य पाके,
अब कुछ घटते हैं भाव भारी निशा के ।
फिर सब वह आभा आसकेगी तुम्हारी,
मति, अचल, अवस्था पा सकेगी तुम्हारी ।

[८]

अटल-पथ तुम्हारा हो वही धर्म्म-धारा ।
त्रिभुवनपति से हो प्रेम का भाव न्यारा ॥
हित कर, जननी का, कीर्ति को भी रमावो ।
कुछ कर दिखलावो, पुण्य भारी कमावो ।

---

१ सिरसकुसुम = सिरस के फूल । २ मृदुल = कोमल । ३ मदनहर = शिवजी । ४ मदन = कामदेव । ५ गिरिश-गल-फाँसी = शिवजी के गले में फाँसी । ६ रचित = बनी हुवी । ७ मौक्तिक-निकर = मोतियों का हार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९]

प्रति दिन यह जाता है चलाही प्रभात,
पर हम सब भूले भावना बीच तात ! ।
निज पथ सब छोड़े जा रहे हैं अकेले,
यदपि दुखसहस्रों मार्ग में व्यग्र झेले ॥

[१०]

लखकर सब बातें स्वान्त* के नेत्र सेही,
सुधर सब सके हैं लोक में दिव्य देही ।
बहुमत रहने से क्या कभी सिद्धि होती,
दिन दिन विभिदा + की क्रूरतावृद्धि होती॥

[११]

सुकृत कर दिखाना सत्य आदर्श मानो,
अनुदिन जननी का कर्म उद्धार जानो ।
जिस विधि यह फैले नागरी मातृभाषा,
सफलित तब होवे चित्त की चारु आशा ॥

[१२]

यदि मनुज हुए हैं विश्व कल्याण चाहें,
प्रतिदिन शुभवर्ती नित्य चर्य्या निबाहें ।
दिनकर ! करता हूं नम्रता से प्रणाम,
दिन भर शुभ कार्यों में रहें निर्विराम ॥

महेश्वरप्रसाद शास्त्री

विविध विषय

१–मिस्टर दादा भाई नौरोजी

भारत के हितचिन्तकों में आपका नम्बर सब से पहिला है। आप सबसे पहिले कांग्रसी हैं। गत २८ जनवरी (सन १९१६) को बम्बई यूनि वर्सिटी ने अपना विशेष कान्वोकेशन करके आपको एल. डी. (डाक्टर आव् ला) की आनरेरी डिग्री से आपको सम्मानित किया है। उस दिन यूनिवर्सिटी के भवन में बड़ी धूमधाम थी। बम्बई के प्रायः सभी योग्य पुरुष वहां उपस्थित थे। चांसलर (अध्यक्ष) और वाइस चांसलर (उपाध्यक्ष) के आने से दस मिनिट पहले मिस्टर दादा भाई यूनिवर्सिटी के भवन में आये थे। आपकी पुत्री और आपके जामाता मिस्टर वाचा आपके साथ थे। सब ने उठकर आपका स्वागत किया। वाइस चांसलर और चांसलर के आने पर दोनों ने मिस्टर दादा भाई की प्रशंसा में एक एक वक्तृता हुवीं। इसके बाद आपको डिग्री दी गई। डिग्री देते समय यूनिवर्सिटी के चांसलर गवर्नर बंबई ने कहा था कि यूनिवर्सिटी का, आप और सर फ़ीरोज़ शाह मेहता, दोनों को एक साथ डिग्री देने का विचार था। शोक है कि मेहता महाशय को मृत्यु के प्रबल प्रहार ने हमसे अलग कर दिया है। अस्तु ! मैं आपका धन्यवाद करता हूं कि आपका शुभ नाम यूनिवर्सिटी के मानरेरी ग्रेजुएटों की सूची में आया है। इसके बाद कान्वोकेशन समाप्त हो गया।

निःसन्देह मिस्टर दादा भाई का यह सम्मान सारे भारतवासियों का सम्मान है। और इससे यह प्रकट होता है कि गवर्नमेंट, पबलिक के सच्चे सेवकों की सेवा की भी प्रतिष्ठा करने के लिए तैयार रहती है। इस संख्या में किसी दूसरी जगह आपका दर्शनीय चित्र दिया जाता है।

---

* हृदय

\+ भेदावस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२-एक युरोपियन की लाश जलाई गई।

हिन्दु-शास्त्रों के नियम इतने अटल हैं कि उन्हें प्रकृति के नियम कहना चाहिये। संसार की सभी सभ्य जातियाँ, धीरे धीरे इन नियमों को पसन्द करने लगी हैं। हिन्दुओं में मुरदे की लाश जलाई जाती है। और ईसाई तथा मुसलमानों में गाड़ी जाती है। कहना न होगा कि वैद्यक और डाक्टरी के मतानुसार भी गाड़ने की अपेक्षा जलाना कहीं अच्छा है।

हर्ष का विषय है कि अब योरप में भी किसी किसी मुरदे की लाश जलाई जाने लगी है। सुनते हैं कि लण्डन में तो मुरदे की लाश जलाने का एक मशीन से काम लिया जाता है। अभी ११ जनवरी (सन १९१६) को ढाका (बेंगाल) में एक अंग्रेज़ आफ़िसर का (जो आई. सी. एस. थे) देहान्त हो गया। आप तीन साल से हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट की नौकरी कर रहे थे और बड़े ही सरलस्वभाव थे। आपने मरने से पहिले यह वसीयत की थी कि मेरी लाश जलाई जाय। सचमुच स्वर्गीय की विज्ञता का इससे समुचित परिचय मिलता है!

*

३-हमारे ग्रेजुएट।

सभ्य जनता के सामने बहुत दिनों से यह कठिन प्रश्न उठ रहा है कि पढ़ लिख कर सैकड़ों नहीं हज़ारों की संख्या में पास होने वाले ग्रेजुएट लोग क्या करें। सब बेचारों को तो ३०-४० की नौकरी भी मिलना मुश्किल हो रही है। यह दूसरी बात है कि कोई भाग्यवान् उन्हीं में से डिप्टी कलक्टर बन जाय। गतवर्ष कलिकाता में एक ७५) रुपये की जगह के लिये एक आदमी की ज़रूरत थी। एतदर्थ गवर्नमेंट की तरफ़ से १ पत्र में विज्ञापन दिया गया। कहते हैं कि साढ़े तीन सौ प्रार्थनापत्र, एतदर्थ ग्रेजुएटों के आये। यह तो रही पहली बात। अभी हाल ही की बात है कि महाराज दरभंगा ने मद्रास के एक पत्र में एक सरकारी प्राईवेट सेक्रेटरी के लिये विज्ञापन दिया था। उस पद का वेतन १२०) रुपया से लेकर १५० रुपया तक है। मालूम हुवा है कि उसके लिये भी तीन सौ प्रार्थना-पत्र आये थे। जिनमें से दो सौ प्रार्थना-पत्र वकीलों के थे! भारत की बेकारी और निर्धनता का यह बड़ा अच्छा प्रमाण है। हमारे नेताओं को इस तरफ़ ध्यान दे कर रोटियों के इस कठिन प्रश्न को हल करना चाहिये। बहुत से सज्जन इस बात का उत्तर "व्यापार करो" इन दो शब्दों में दे दिया करते हैं। पर व्यापार भी तो धन के विना नहीं हो सकता!

*

४-विकालत में तीस की संख्या उड़ादी गई।

अभी दो तीन वर्ष से पञ्जाब चीफ़कोर्ट ने यह नियम किया था कि पञ्जाब यूनिवर्सिटी से एल-एल. बी. (L L. B.) की परीक्षा में जितने भी परीक्षार्थी प्रति वर्ष पास होंगे उनमें से प्रथम के केवल तीस ही को विकालत करने की आज्ञा दी जायगी। इस अनुचित और कड़े नियम के विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समाचार-पत्रों द्वारा आन्दोलन किया गया और चीफ़कोर्ट के जजों का ध्यान इस तरफ़ दिलाया गया। मनोरमा की तीसरी ध्वनि में "कुमुद" महाशय ने भी अपनी "वेकली" में शायद इसी नियम से तप्त होकर इस बात का अनौचित्य-प्रदर्शन किया है।

ख़ुशी की बात है कि चीफ़कोर्ट ने अब यह प्रकाशित किया है कि इस प्रश्न पर बहुत ध्यान देने से उन्होंने यह फ़ैसला किया है कि यह नियम सर्व साधारण में न केवल अप्रिय ही है प्रत्युत इसे कार्यरूप में परिणत करना एक प्रकार की सख़्ती और अन्याय है। इसलिये इस नियम-वर्तिता को अलग किया जाता है।

चीफ़ कोर्ट के सुयोग्य जजों का यह न्याय-युक्त फ़ैसला सुनकर आशा है कि ग्रेजुएट महाशय बड़े प्रसन्न होंगे।

*

५—हिन्दुयूनिवर्सिटी का बुनियादी पत्थर

हर्ष का विषय है कि गत ४ फ़र्वरी को, भारत के न्यायप्रिय वाइसराय श्रीमान् लार्ड हार्डिङ्ग महोदय के करकमलों से हिन्दु यूनिवर्सिटी का बुनियादी पत्थर बड़े समारोह के साथ रक्खा गया। भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े आफ़िसर और राजे महाराजे, उस अवसर पर उपस्थित थे। महाराज दरभंगा ने वाइसराय की सेवा में उपस्थित किये जाने वाले अभिनन्दन-पत्र को, यूनिवर्सिटी कमिटी के प्रधान की हैसियत से पढ़ा, और एक बहुत ही ख़ूबसूरत सन्दूक़ची में बन्द करके आपको भेंट किया। अभिनन्दन-पत्र में आपका धन्यवाद करने के बाद बतलाया गया था कि आप ही की सहानुभूति और समर्थन से हिन्दुओं की ये आशायें पूरी हुवी हैं।

वाइसराय बहादुर ने अभिनन्दन-पत्र सुन कर उत्तररूपेण अपनी वक्तृता में कहा था कि मुझे आज तक इतने बड़े उत्सव में कभी वक्तृता करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुवा, जैसा कि यह आज का उत्सव है। इसमें एक गवर्नर, तीन लेफ़्टिनेंट गवर्नर, कई बड़े बड़े रईस और बड़े बड़े विद्वान् सम्मिलित हैं। यद्यपि भारत में, पहले वर्तमान रीति की यूनिवर्सिटियां न थीं। तथापि वहां यूनिवर्सिटियाँ थीं अवश्य। जिनमें से एक में कई हज़ार विद्यार्थी पढ़ा करते थे। अध्यापकों और विद्यार्थियों में हार्दिक प्रेम था। इस यूनिवर्सिटी के विषय में जो कुछ हो चुका है इससे बहुत ज़्यादा करने की ज़रूरत है। हिन्दुओं को चाहिये कि वे, इसकी न केवल रुपये ही से सहायता करें, प्रत्युत इसमें, जहाँ तक भी हो सके सुयोग्य अध्यापक हों, जो सारे देशों से इकट्ठे किये जायें। यतः यूनिवर्सिटी का शिक्षा-सम्बन्धी कार्य अच्छी रीति से चल सके।

इसके पश्चात् महाराज बीकानेर ने, हिन्दू अधीशों तथा हिन्दु जाति की तरफ़ से आपको धन्यवाद किया।

उत्सव में कई विद्वानों और विदुषियों के लेक्चर हुवे।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६-दिगम्बर जैन का ख़ास अंक

सूरत से "दिगम्बर जैन" नामक, जैनियों का एक मासिक पत्र निकलता है। उसी का यह "ख़ास अङ्क" हमारे पास समालोचना के लिये आया है।

प्रस्तुत अङ्क में मोटे और चिकने काग़ज़ के १६० पृष्ठ हैं। एक रंगीन और ३१ सादे चित्र हैं। गुजराती, हिन्दी और अंगरेज़ी के कुल ३६ गद्य पद्य लेख हैं। कोई कोई लेख जैनियों ही के नहीं, सब के पढ़ने योग्य है। श्रीयुत घोशाल बाबु का "गोम्मट सार" वाला लेख अच्छा हुवा है। इस अङ्क के साथ ही साथ हमें एक जैन-तिथि-दर्पण मिला है जो आर्ट पेपर पर बहुत ही ख़ूबसूरत छपा हुआ है, और जिस पर सेठ हुकुमचन्द का बड़ा ही मनोहर एक चित्र है। यह और "ख़ास अङ्क" दिगम्बर जैन के ग्राहकों को मुफ़्त मिलता है। इसका वार्षिक मूल्य १॥।) है और यह, मैनेजर "दिगम्बर जैन" सूरत के पते से मिल सकता है। जैनियों को इसे ख़रीद कर अवश्य पढ़ना चाहिये। इसके सुयोग्य सम्पादक, श्रीयुत मूलचन्द किसनदास कापड़िया महाशय का निवेदन, हिन्दीभाषियों के ध्यान देने योग्य है—

"यद्यपि 'दिगम्बर जैन' गुजरात प्रान्त से प्रकट होता है और हमारी मातृभाषा भी गुजराती है तो भी हमने चार वर्ष से इस पत्र में हिन्दी भाषा के लेख लिखने और प्रकट करने की कोशिश की है जिससे हमको और हमारे गुजरात दक्षिण के पाठकों को हिन्दी भाषा का परिचय होता जाता है। हम इतना अवश्य कहेंगे कि हमारी मातृभाषा गुजराती होने से हिन्दी के लेखों लिखने और प्रकट करने में भाषाशुद्धि और प्रुफ संशोधन में कुछ त्रुटियां रही होंगी, जिसकी ओर आप ध्यान न देकर इस लेखों में से सार ग्रहण करके हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे। ऐसी हमें पूर्ण उम्मेद हैं। गत वर्ष से इस अंक में हिन्दी लेखों की विशेषता की गई है और आगामी अंकों में भी हिन्दीभाषा के लेख विशेष रूप से प्रकट होते रहेंगे और गुजराती लेखों भी बहुत करके देवनागरी लिपि में छपते रहेंगे क्योंकि 'दिगम्बर जैन' की ग्राहक संख्या सारे हिन्दुस्थान भर में बढ़ती जाती हैं इस लिये देश की सर्वसामान्य हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को प्राधान्य पद देना हमारा कर्तव्य है। इस वर्ष के ग्राहकों को भी हिन्दी-गुजराती भाषा की २, ३ रु. के मूल्य की ५, ७ पुस्तकें उपहार में मिलेंगी जिस में हिन्दी भाषा की पुस्तकें ही विशेष होंगी।"

*

७ – पण्डित केशवराम जी

पण्डित केशवराम जी का कुछ वृत्तान्त (मनोरमा की दूसरी ध्वनि में) गौड़ स्वामी जी के जीवनचरित में प्रसंग वश लिखा गया था कि गौड़ स्वामी जी ने बचपन में आप से सारस्वत, चन्द्रिका और श्रीमद्भागवतादि पढ़े थे। इस विषय में जम्बू से, रघुनाथ पाठशाला के साहित्य-शास्त्राध्यापक पण्डित रामप्रपन्न शास्त्री काव्यतीर्थ का हमारे पास एक पत्र आया है। आप उक्त पण्डित जी के प्रपौत्र हैं। आप लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पण्डित केशवराम जी, सारस्वत, चन्द्रिका नहीं पढ़ाते थे। उन दिनों पञ्जाब में पाणिनि व्याकरण का प्रचार न था। आप ही ने उसे यहां प्रसिद्ध किया था। आप २० वर्ष से अधिक, काशी में भवदेव मिश्र जी से पढ़े थे। आपके सत्ताकाल में बहुत सी सम्पत्ति हो गयी थी। दो ग्राम और बहुत सी भूमि थी। परंच वह अंग्रेज़ी अमलदारी में ज़ब्त हो गई"।

शास्त्रीजी के हम एतदर्थ कृतज्ञ हैं। इससे यह समझना चाहिये, कि गौड़ स्वामी जी ने पण्डित केशवराम जी से सारस्वत, चन्द्रिका नहीं, कौमुदी पढ़ी थी।

८—कौंसिल का चुनाव

वोटरों को ख़ूब सोच समझ कर वोट देने की ज़रूरत है

यू. पी. की तरफ़ से कौन्सिल के नये मेम्बरों का चुनाव, अब मार्च में होनेवाला है। होनेवाले मेम्बरों की बड़े ज़ोर के साथ कोशिश और तैयारियाँ हो रही हैं। एक जगह के लिये कई कई उम्मीदवार खड़े हुवे हैं। कमिश्नरी बरेली के सुयोग्य मेंबर आनरेबल बाबू व्रजनन्दनप्रसाद एम. ए. की मेम्बरी की मियाद ख़तम होनेवाली है। आपकी जगह के लिये, जहाँ तक हमें मालूम हुवा है, चार सज्जन उम्मीदवारी के लिये खड़े हुवे हैं।

(१) राय व्रजलाल साहिब भदवार आनरेरी, मजिस्ट्रेट

(२) बाबू प्रियानाथ बैनर्जी वकील

(३) "ख़ान बहादुर" मुंशी असग़रअली खाँ

(४) पण्डित राधाकृष्णदास वकील

राय साहिब के विषय में, हमें अभी तक कुछ नहीं मालूम हुवा। हमने इससे पहिले कभी आपका नाम ही नहीं सुना। इसलिये नहीं कहा जा सकता कि आपकी क्या अवस्था है, किं वा कैसी योग्यता है?

हमें आश्चर्य है कि बैनर्जी इलाहाबाद में रहते हुवे भी क्यों बरेली की तरफ़ से खड़े हुवे? जो जो रहता है उसे वहीं खड़ा होना चाहिये। यह हमारी समझ में नहीं आता कि इलाहाबाद में रहनेवाला पुरुष, बरेली-प्रान्त-वासी पुरुष की अपेक्षा, बरेली प्रान्त की अधिक हित-चिन्तन कर सके। बैनरजी हमें क्षमा करें, बरेली की एक बार की नाकामयाबी ने क्या आपको यह बात नहीं सुझाई कि बरेली से आपका कामयाब होना ज़रा कठिन है! एक और बात है, हमने सुना है कि आपकी अवस्था साठ वर्ष के लगभग है और अभी तक आप विकालत में लिप्त हो रहे हैं। इस वर्ष की अवस्था में, दूसरे काम में लिप्त होते हुवे मेम्बरी का भारी बोझ सँभालना कठिन ही नहीं नितान्त असम्भव है।

"ख़ान बहादुर" मुंशी असग़रअली खाँ इस समय, बरेली म्यूनिसिपेलिटी के चेअरमेन हैं। यह सर्व प्रसिद्ध बात है कि चेअरमेन को बहुत ज़्यादा काम करना पड़ता है। और ऐसा सुना जाता है कि आपका तो स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। इसी कारण से शायद आपने विकालत भी छोड़ दी है। ऐसी दशा में यह मन्तक़ समझ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता कि आप स्वास्थ्य अच्छा न रहने पर भी क्यों उम्मीदवारी के लिये खड़े हुवे हैं? आपको अपने नाम के पहिले "आनरेबिल" लिखाने की भी इच्छा नहीं हो सकती, यतः आप पहिले भी कौन्सिल के मेम्बर हैं।

पण्डित राधाकृष्णदास वकील, मुरादाबाद के लब्धप्रतिष्ठ एक वकील हैं। मुरादाबाद के वकीलों के प्रथम नम्बर में आपकी गिनती है, जो आपकी योग्यता का समुज्ज्वल प्रमाण है। आप की अवस्था लगभग ४०—४५ वर्ष के है। जिस पर नातजुर्बेकारी और शिथिलेन्द्रियता की आपत्ति नहीं आ सकती। पब्लिक के कामों में आपकी बड़ी दिलचस्पी है। "लीडर" के पाठक, हमारे इस कथन के साक्षी हैं कि इंगलिश (जिसकी कौंसिल में बड़ी जरूरत है) आपकी इतनी अच्छी है कि ज़िले में नहीं, कमिश्नरी में भी शायद ही १—२व्यक्तियों की हो। यथेष्ट धन, आप विकालत में पैदा कर चुके हैं। अतः अब आपको कमाने की ज़्यादा लालसा नहीं। जन-सेवा ही को आप अपना कर्तव्य समझते हैं। और इसी ध्यान से आप मेम्बरी के लिये खड़े हुवे हैं।

जनता को ख़ूब देख भाल कर अपनी राय देना चाहिये। ऐसा न हो कि वह, ज़ाहिरी ख़ुशामदों में ठगी जाय। उसे राय नहीं, तीन साल के लिये अपने भाविभाग्य का समर्पण करना है। उसे इस चुनाव से अपनी योग्यता का भी परिचय देना है। अच्छा यह है कि बैनर्जी और रायसाहब बाबू छैलविहारीलाल की तरह से पण्डितजी के हक़ में दस्तबरदार हो जायें। अन्यथा कई हिन्दू और एक मुसलमान की स्थिति में जो हुवा करता है, वही होगा इति।

पुस्तक-परिचय

१ – हिन्दी महाभारत।

आकार छोटा, पृष्ठ संख्या ५+५+४१८। मूल्य बारह आने। लेखक, पण्डित रामनरेश त्रिपाठी। सम्पादक और प्रकाशक पण्डित रामजीलाल शर्मा। मिलने का पता, हिन्दी प्रेस, प्रयाग। इस पुस्तक को महाभारत का छायानुवाद कहना चाहिये। पुस्तक की भाषा और लिखने की शैली बड़ी मनोहारिणी है। इसके लेखक अनुभवी मालूम होते हैं। प्रत्येक भारतवासी को अपना गौरव जानने के लिये, अपने बड़ों का गौरव जानने के लिये, एक मात्र महाभारत ही अवलम्बन है। जो कुछ भी है, महाभारत ही भारत का प्राचीन इतिहास है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते या संस्कृत जानते हुवे भी निर्धनता के कारण २०—२५ रुपया ख़र्च नहीं कर सकते, उन्हें इस हिन्दी महाभारत के सुलभ संस्करण को ख़रीद कर अवश्य देखना चाहिये।

पुस्तक में कहीं कहीं प्रेससम्बन्धिनी त्रुटियाँ रह गयीं हैं। और भूमिका में (पांचवें पृष्ठ पर) "प्राचीन परिष्कृत पन्था" यह पद ज़रा खटकता है। हमारी राय में यहां "प्राचीन परिष्कृत पथ" होना चाहिये था। आशा है कि दूसरे संस्करण में इस भूल को ठीक कर दिया जायगा। अस्तु। पुस्तक की छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ और पृष्ठसंख्या को देखते हुवे ।।।) मूल्य बहुत ही कम है। पण्डित रामजीलाल जी का उत्साह सराहनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनेरम-श्लोक

अग्निदाहे न मे दुःखं, छेदे न निकषे न वा।
यत्तदेव महद्दुःखं गुञ्जया सह तोलनम् ॥ १ ॥

स्वर्ण की उक्ति—आग में तपाने से मुझे दुःख नहीं, टुकड़े टुकड़े हो जाने को भी मैं दुःख नहीं मानता, और न ही मुझे कसौटी पर घिसने से दुःख है। दुःख है मुझे केवल इस बात का, कि चौंटली से मेरी बराबरी की जाती है—उससे मुझे तोला जाता है ॥ १ ॥

रत्नाकरे परिहृता वसतिः किमन्यत् ?
अङ्कीकृतः कठिन-बेधन-दुखभारः।
वक्षोज-कुम्भ-परिरम्भण-लोलुपेन
किं किं न तेन विहितं बत मौक्तिकेन ? ॥२॥

समुद्र जैसे विशाल स्थान में यह रहा करता था, वह छोड़ दिया। बुरी तरह बिंधने के भी दुःख को इसने सहन कर लिया। हाय! हाय!! वक्षःस्थल पर रमण करने की लालसा से इस मोती ने क्या कुछ नहीं किया ? ॥ २ ॥

गङ्गाशरण गुप्त

मनोरमा और लोकमत

"रहबर" मुरादाबाद—

मनोरमा। यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि हिन्दी भाषा के योग्यतापूर्वक सम्पादित मासिक पत्रों की संख्या बढ़ती जारही है। सरस्वती, गृहलक्ष्मी आदि कई पत्र हिन्दी में बढ़िया हैं, जिनका कम से कम उर्दू में तो कोई पल्ला ले नहीं सकता है। अब ईश्वर ने हमारे जिले को भी मातृ-भाषा हिन्दी की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर दिया। यह देख कर बड़ी प्रसन्नता हुवी।

"मनोरमा" हमारे ज़िले के थाना (?) धनौरा बड़े क़स्बे और मंडी से प्रकाशित होता है। हमारे पास इसका दूसरा नम्बर समालोचनार्थ पहुंचा है। हम साहसपूर्वक कह सकते हैं कि काग़ज़, टाइप, और छपाई के विचार से भारत के किसी भी मासिक पत्र से कम नहीं। इसके सम्पादक पण्डित प्यारेलाल जी दीक्षित और लाला रामकिशोर जी गुप्त अलङ्कारशास्त्री भी अनुभवी पुरुष हैं। इसलिये पत्र में जो न्यूनता होगी उसके पूर्ण किये जाने की आशा है। इस संख्या में पांच रंगीन और तीन सादे चित्र हैं। रंगीन चित्र बड़े बढ़िया और देखने योग्य है। दो अपूर्ण लेखों के अतिरिक्त, पांच गद्य और तीन पद्य के पूरे लेख इसमें हैं, जिनमें "जयपराजय" वाला लेख पढ़ कर आप अति प्रसन्न हो सकते हैं। इन सब के पीछे विविध विषयों पर टीका-टिप्पणी भी दी गयीं हैं। ऐसे सुन्दर पत्र का मूल्य वार्षिक ३) रुपया अधिक नहीं कहा जा सकता। हिन्दी प्रेमी यदि एक संख्या देखना चाहें तो छः आने भेजने पर मिल सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-समाचार, देहली—

मनोरमा। पाठकों को याद होगा कि इस मासिक पत्रिका के प्रकाशित होने से प्रथम ही इसका समाचार आप तक पहुँचाया गया था। अन्ततोगत्वा यह पत्रिका प्रकाशित हो गई। इसके सम्पादक श्रीयुत प्यारेलाल दीक्षित और श्रीरामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री) हैं। आकार भी सरखती से कम नहीं है। पृष्ठसंख्या भी ८० के लगभग है। मूल्य ३) वार्षिक। इस पत्रिका का दूसरा अंक हमारे सामने है प्रथम तो रंगीन चित्र ही बड़ा चित्ताकर्षक है जिसमें ११ महिपालों का एक साथ चित्र दिया गया है। हमारे सम्राट जार्ज पंचम मध्य में स्थित हैं इसमें दो चित्र सादे हैं परन्तु मनोहरता में वह भी कुछ कम नहीं हैं। अब रहा लेखों का लेखा उसके लेखे से भी यह पत्रिका पढ़ने योग्य है इस पत्रिका में "कादम्बरी" और "कुमारसम्भव" इत्यादि संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी परिमार्जित भाषा में प्रकाशित किया जा रहा है। एक लेख "गौड़ स्वामी" पर दिया हुआ है जिसमें उनके जीवन-चरित्र पर अच्छा प्रकाश डाला गया है पत्रिका होनहार मालूम होती है मनोरमा को उच्च कोटि की पत्रिका बनाने में सम्पादकप्रवरों को कुछ परिश्रम से काम लेना पड़ेगा हिन्दी की उन्नति में यह पत्रिका भी आशा है किसी से पीछे नहीं रहेगी। मनेजर मनोरमा कार्यालय मंडी धनौरा युक्तप्रान्त से प्राप्य।

*

अभ्युदय, प्रयाग—

'मनोरमा'—यह नवीन मासिक पत्रिका मंडी धनौरा (जि. मुरादाबाद) से पं. प्यारेलाल दीक्षित और श्रीयुत रामकिशोर गुप्त के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने लगी है। अभी तक इसका दूसरा और तीसरा अङ्क हमें मिला है। 'हिन्दी-कादम्बरी' और 'हिन्दी कुमारसम्भव' के सिवा, जो क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं, अन्य लेख विशेष महत्त्व के नहीं मालूम होते। इसका एक नियम है कि 'राजनैतिक लेख नहीं छापे जायँगे।' दोनों अंकों में चित्रशाला प्रेस के छपे २ रङ्गीन चित्र और कुछ सादे चित्र भी हैं। हम 'मनोरमा' की उन्नति के अभिलाषी हैं। आकार 'मर्यादा' का सा मूल्य ३) वार्षिक।

*

कलकत्ता-समाचार, कलकत्ता—

मनोरमा। इस नाम की एक मासिक पत्रिका कोई तीन मास से प्रकाशित हो रही है। इसका सम्पादन-कार्य्य श्रीयुक्त प्यारेलाल दीक्षित और श्रीयुक्त रामकिशोर गुप्त अलङ्कारशास्त्री द्वारा होता है। आकार इसका मर्य्यादा का सा है। वार्षिक मूल्य ३) रुपया है और प्रति संख्या का ।≠) लिया जाता है। प्रत्येक मास की संख्या में चित्र भी दिये जाते हैं। मनोरमा में हमने जो चित्र देखे हैं वह मनोरम होने पर भी रुचिकर नहीं। जहाँ तक हो सके साहित्य-क्षेत्र में वही चित्र और भाव उपस्थित किये जाने चाहियें, जिनसे लोगों का मनोरञ्जन होने के साथ ही उन्हें कुछ शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मिले। हम आशा करते हैं, कि मनोरमा के सम्पादक इन विषयों पर विचार करेंगे। हम हृदय से इस मासिक पत्रिका का स्वागत करते हैं और दिन दिन इसकी उन्नति देखने के अभिलाषी हैं। यह पत्रिका प्रयाग के हिन्दी प्रेस में मुद्रित और युक्त प्रदेश—मुरादाबाद-धनौरा के पं० प्यारेलाल दीक्षित द्वारा प्रकाशित होती है।

*

शुभचिन्तक, रीवां —

मनोरमा—यह भी एक मासिक पत्रिका है। इसके प्रत्येक अङ्क में एक रङ्गीन और सादे कई एक चित्र रहते हैं। हिन्दी कादम्बरी और हिन्दी कुमार सम्भव क्रमशः इसमें प्रकाशित होते हैं और बहुत से गद्य पद्य मय लेख साहित्य विषयक रहते हैं। यह पत्रिका यद्यपि लेखों की प्रौढ़ता, काग़ज़ की उत्तमता, चित्रों की सुन्दरता और छपाई की सफ़ाई आदि सभी लिहाज़ से सचमुच मनोरमा है और विषययोजना भी इसमें यथेष्ट रहती है। परन्तु विषय के गाम्भीर्य को और कलेवर वृद्धि की ओर थोड़ा ध्यान और देने की आवश्यकता है। पं० प्यारेलाल दीक्षित और बाबू रामकिशोर गुप्त अलङ्कार शास्त्री बड़ी ही योग्यता से इसका सम्पादन करते हैं। हम इस पत्रिका की उन्नति दिल चाहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) रु० मिलने का मनोरमा कार्यालय मण्डी धनौरा ज़िला मुरादाबाद है।

*

डिस्ट्रिक्ट गज़ट, मुरादाबाद—

मनोरमा। यह एक हिन्दी ज़बान का माहवार रिसाला है। जो इस ज़िले के क़स्बे धनौरा से माहवार शाया होता है। संस्कृत के फ़ाज़िल पण्डित प्यारेलाल साहब दीक्षित और उनके क़ाबिल शागिर्द पण्डित रामकिशोर साहब अलंकारशास्त्री, इसके एडीटर हैं। ज़बान साफ़ और आमफ़हम है। परचे ज़ेरे तनक़ीद मज़ामीन, मुफ़ीद आम और क़ाबिलाना मज़ें तसावीर हैं। ख़सूसन आलाहज़रत मुल्के मुअज़्ज़म की रंगीन तसवीर क़ाबिल दीद है। बेशक ऐसा उमदा और बातसवीर परचा जल्द तैयार नहीं होसकता। लेकिन इस पर क़ीमत रुपया सालाना और एक परचे की छः आने तुलबाए मदारिस और रउसाय से इस रिसाले की सरपरस्ती के वास्ते सिफ़ारिश करते हैं।

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORAMA REG. No. A. 755.

अलङ्कार १] फाल्गुन १९७२ [ध्वनि ५

मनोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

*

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कार शास्त्री)

*

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

[१] वसन्तवर्णन [लेखक, कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय १६६

[२] हिन्दीकादम्बरी १७१

[३] पार्वती-परिणय के प्रणेता [लेखक श्री-हरिहरसुरूप शास्त्री, विद्याभूषण ... १७३

[४] वसन्त [लेखक कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य ... १८०

[५] हिन्दी-कुमारसम्भव १८१

[६] उन्मत्त की उन्मत्तता [ले० "उन्मत्त" १८२

[७] द्रौपदी-वस्त्र-हरण [लेखक कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य, आशुकवि १८३

[८] पुरुषार्थ (दार्शनिकों की होली) [लेखक कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय... १८५

[९] चन्द्रोदय-वर्णन [लेखक न्यायोपाध्याय पण्डित दुण्ढिराज शास्त्री, काव्यतीर्थ १९६

[१०] नारीधर्म १९७

[११] विविध विषय १९८

[१२] सामयिक साहित्य २०२

[१३] पुस्तक-परिचय २०३

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने बढ़ाने तथा प्रकाशित करने न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता समालोचनार्थ पुस्तकें, बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य व प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरमा कार्यालय मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहियें।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं लिये जायेंगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायें और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करें तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥)	प्रतिमास
१ पृष्ठ या आधेकालम की छपाई	५)	,,
आधा पृष्ठ या १ कालम की ,,	३)	,,
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२)	,,
१ पृष्ठ या चौथाई कालम की ,,	१॥)	,,

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को मनोरमा विना मूल्य दी जायगी। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरम कार्यालय, मंडी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76287

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी और संस्कृत के अद्वितीय प्रेमी—

श्रीमान् अलवर नरेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लक्ष्मी आर्ट, भायखला, बम्बई.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | फाल्गुन १९७२ | ध्वनि ५

वसन्त-वर्णन

(वसन्त-तिलका)

कामैक-बन्धु, कुसुमाकर, गन्धसिन्धु।
आया, वसन्त, यह, धूम, दिगन्त में, है ॥
थे, शीत-भीत, जन, जो, मनमें, दुखारी।
सारे, हुए, सुखित, सो, ऋतु-राज, देखे ॥१॥

आदित्य, मन्द-रुचि, हो, तज, दक्षिणा को।
यात्रा, करी, सहज, सम्मुख, उत्तरा के ॥
आयास, साँस-सम, मारुत, दक्षिणा का।
सौरभ्य*-भार-वश, मन्द, चलै, थकासा ॥ २ ॥

सम्पत्ति, नीति-गुण-हीन, महीप की, ज्यों।
होने लगी, हसित, रात्रि-तनू, शनै, त्यों, ॥
भानु, प्रसार, कर, सानु, उरोज† पै, से।
प्रालेय-अञ्चल, उघारत, उत्तरा का ॥ ३ ॥

था, जो, प्रसिद्ध, जगमें, स्मर, पञ्चबाण।
सो, हो गया, सुरभि*-बीच, अनन्त-बाण ॥
जो पुष्प-चाप, कहलात, वसन्त†-बन्धु।
सो, आज, लोह-धनु, ले, तनु, बेधता है ॥४॥

श्रीखण्ड-गन्ध-धर, फुल्ल-लवङ्ग-सङ्गी।
एला-लता-रज विधूलित-सर्व-अङ्ग ॥
सु-स्पर्श, मन्द-गति, दक्षिण, वात, मोहै।
संसक्त-सर्प-विष-सा, विरही, जनों को ॥ ५ ॥

बल्ली, नवीन-दल, कोमल, पुष्प-वाली।
शाखी-शिखा, नव-प्रसून पलाश-शाली ॥
आली !, विलोक, अलि-आवलि‡ के, विलास।
आशा, न, होत, किसके, हिय, पी-मिले की ॥६॥

---

* सुगन्ध। † स्तन।

* वसन्त। † काम। ‡ अलिआवालि = भ्रमर-पंक्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूले, रसाल-तरु, नूतन-पत्र-शाली ।
कूजैं, द्विरेफ़*, उनपै, मकरन्द-लोभी ॥
चारों दिशा, रज, उड़ै, प्रिय, नासिका का ।
लागै, मनोज्ञ, कल, कूजित, कोकिलों का ॥७॥

फूला, अशोक, लख, शोक, मिटै, जनों का ।
शोभा, लगै, सुभग, पुष्पित-शेवती की ॥
प्यारा, लगै, तिलक†, मध्य, वन-स्थली के ।
जैसे, दिपै, तिलक, आनन, कामिनी के ॥८॥

आधे-खिले, कुसुम, लोहित, केसुओं के ।
सोहैं, हरे-दलन में, वन-भूमि, ऐसे ॥
जैसे, लसैं, हस्ति-पक्ष, शुकावली के ।
चञ्चू-समूह, कुछ, भाषण को, पसारे ॥९॥

फूले, रसाल-तरु को, सरसा, सुमृद्धी ।
आलिङ्गती, कुसुमिता, अतिमुक्त-बल्ली ॥
बेला-कली, लख, वसन्त, खिली, अनन्त ।
राजै, वनान्त-बिच, कान्त, नितान्त, चम्पा ॥१०॥

निःशङ्क, भृङ्ग, रस, चाखत, केतकी का ।
माने, न, नैक, मन, कण्टक-वेध-दुःख ॥
जो, दुःख से, न, डरते, सुख-पात्र, वे, हों,
ऐसा, मनो, मनुज को, उपदेश, देता ॥ ११ ॥

दूती, अनङ्ग-नृप की, मधु की, वयस्या ।
उत्फुल्ल, आम्र-तरु को, अवलोक, हृष्टा ॥
हूकैं, मनोहर, भरै, वन, कोकिला, जो ।
सूखैं, उनैं, सुन, हिए, विरही-जनों के ॥ १२ ॥

पीकै, अनन्त, मकरन्द, अमन्द-मत्त ।
जो, भृङ्ग-पुञ्ज‡ कल, गुञ्जत, मञ्जु,‖ कुञ्ज ॥
सो, नाचती, मुदित, हो, मधु के, मिले से ।
राजै, सुशिञ्जित,/ मनो, वन-देवता का, ॥१३॥

नाना, लता, तरु, सुम-व्यपदेश+ से, च ।
उत्फुल-पद्म-मिष से, सर, वन्य-भूमि ॥

फूले-गुलाब-छल से, शत, नेत्र, धारे ।
अन्योन्य की, छवि, सुविस्मय से, लखैं, हैं ॥१४॥

चम्पा, सुगन्ध, शुभ-रूप, पराग-शोभी ।
त्यागा*, न, सोहत, मधुव्रत-मण्डली से ॥
जैसे, धनाढ्य, अनुदार, सुरूप-वेष ।
राजै, न, याचक-विहीन, खड़ा, अकेला ॥१५॥

शाखी, सपुष्प, सब, पुष्प, स-भृङ्ग, सारे ।
भृङ्गावली, सकल, है, कल-शब्द-वाली ॥
हैं, चित्त-हारि, जन के, कल-शब्द, सर्व ।
हैं, चित्त, मोद-युत, भूतल में, सभी के ॥१६॥

निर्गन्ध, नी-रस, सु-रूप, पलाश-पुष्प ।
सेवै, न, भृङ्ग, मकरन्द-रसज्ञ, कोई ॥
जैसे, तजैं, सुमति, मूर्ख, महीप-सूनु ।
जैसे, विहङ्ग, फल-हीन, तजैं, तरू को ॥१७॥

स्त्री-कर्ण-भूषण-समान, सुवर्ण-कान्ति ।
राजै, न गन्ध-गुण हीन, कनेर-पुष्प ॥
जैसे, सु-रूप, मुख, वर्जित, प्रज्ञरों से ।
विज्ञान, हीन, शमसे, न, रुचै, यथा, वा ॥१८॥

मल्ली, हँसी, मन, हरै, जनका, विलोके ।
चारों, दिशा, पटल, पाटलि§ के, खिले हैं, ॥
फूले, तमाल- तरुका, स्मर-वृद्धि-हेतु ।
कस्तूरिका-तुलित, गन्ध, वहै, वनो में ॥१९॥

क्या, क्या, कहूँ, सफलता, स्मर के, शरों की ।
नारी, मनुष्य, पशु, पक्षि, करे, विमूढ ॥
ये, ना, विचित्र, कुछ, अद्भुत, एक, अन्य ।
फुल्ला, लता, लिपटती, निकट द्रुमों को ॥२०॥

वासुदेव उपाध्याय

---

* भौंरे । † एक पुष्प का नाम है । ‡ भ्रमर-समुदाय । ‖ मञ्जु = उत्तम । / सुशिञ्जित = भूषणों का शब्द । + सुमव्यपदेश = फूलों का बहाना ।

* चम्पे पर भ्रमर नहीं बैठता, यह कवि तुलसीदास के कथनानुसार लिखा है । श्रीहर्ष तो इस पर भी भ्रमर वर्णन करते हैं । लेखक

§ पुष्प का नाम है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-कादम्बरी।

(५)

भील ने, मरे हुवे मेरे पिता को ज़मीन पर डाल दिया। उस समय, उनकी गर्दन शिथिल थी—चञ्चलता उससे विदा हो गई थी और मुँह भी नीचे को था। उस समय मैंने भी अपनी गर्दन को उनके चरणों के बीच में दे रक्खा था। और मैं चुपचाप उनकी गोद में छिपा हुवा, उन्हीं के साथ गिर गया। मेरा कुछ पुण्य बाक़ी था—मेरे किसी पुण्य का उदय था। अतः मैंने, वायु की अधीनता से इकट्ठे हुवे बहुत से सूखे पत्तों के ढेर के ऊपर, अपने को पड़ा हुवा देखा। अतएव मेरे हाथ-पैरों में कोई चोट भी नहीं आई।

मैं झट से एक दुष्ट के समान, मृतक पिता को छोड़ कर, पास ही के एक बहुत बड़े तमाल के वृक्ष की जड़ में घुस गया। मेरे घुसने तक वह भील, उस वृक्ष की शिखर से नहीं उतर सका था। नीचे पड़े हुवे पत्तों का और मेरा, एक ही सा रंग ढंग था। अतएव मेरी साफ़ साफ़ दीखती हुवी आकृति भी नहीं पहचानी जाती थी।

उस समय मुझे प्राणों को छोड़ देना उचित था—पिता को मरते हुवे देख कर मुझे भी मर ही जाना अच्छा था। परन्तु मैं बालक था, इस लिए कालान्तर में होने वाले— पहिले बीचे हुवे, स्नेह के आनन्द को नहीं जानता था, मैं यह न जानता था कि मेरे पिता ने किन किन क्लेशों का अनुभव करके, मेरे खाने पीने और सोने बैठने में कैसी प्रीति की है। जन्म से पैदा हुवे भय से ही केवल मैं पीड्यमान था। सचमुच मैंने उस समय, कुछ ही निकले हुवे पंखों से कुछ सहारा लेते हुवे, इधर उधर पृथिवी पर गिरते पड़ते, अपनेको यमराज के मुखविवर से—मुँह से, निकला हुवा समझा था।

जिस तमालवृक्ष की जड़ में मैं घुसा था उसके पत्तों का, भीलों की स्त्रियाँ अपने कर्णपूरों की रचना में उपयोग किया करती थीं। उस के पत्तों की आकृति, कर्णपूर जैसी थी, अतएव वे स्त्रियाँ उन पत्तों से कर्णपूरों का काम लिया करती थीं। वह (वृक्ष) बलदेवजी के वस्त्र की नीली नीली कान्ति से, कृष्ण की कान्ति को हँसता हुआ जैसा मालूम होता था। उसकी कान्ति ने कृष्णकान्ति को पाजी बना रक्खा था। उसके पत्ते यमुना के निर्मल जल के टुकड़ों से रचे हुवे जैसे मालूम होते थे। बात यह है कि उसके पत्ते इतने नीले थे कि उनमें सहसा यह भान होता था कि कहीं ये, नीलरूपा यमुना के जल के टुकड़े तो नहीं हैं!! और उसके पत्ते, वन-गजों के मद से भी सेचन किये गये थे—उन पत्तों पर वन के हाथियों का मद भी छिड़का हुवा था। वह वृक्ष, अपनी नीलिमा से विन्ध्याटवी के केश-पाश की शोभा को भी धारण किये हुवे था—उसके पत्ते बहुत काले थे अतः उनमें विन्ध्यावटी के केश-कलाप की छवि जैसी छवि दीखती थी। दिन में भी उसकी टहनियों का बीच अन्धकारित रहता था—दिन में उसकी लताओं में अन्धेरा मालूम होता था। उसकी जड़ में सूर्य की किरणें भी प्रवेश नहीं कर सकती थीं—उसकी जड़ में सूर्य की किरणों का चान्दना तक नहीं पहुँचता था। उसकी जड़ अति गहन थी। वह वृक्ष, मेरी रक्षा करने के कारण, मुझे दूसरे पिता के समान मालूम हुवा।

भील, उस वृक्ष से उतर कर उसी समय, पृथ्वी पर तित्तर बित्तर पड़े हुवे तोतों के बच्चों को एक एक करके चुग कर, पर्णपुट में रख कर, लतारूपी फाँसी से बाँध कर बड़ी शीघ्रता से चलता हुवा, जिस मार्ग से उसका सेनापति गया था, उसी मार्ग से उसी दिशा को चला गया।

उस समय, मुझे भय से उत्पन्न हुवी, सारे के सारे अङ्गों को दुःख देनेवाली, बड़े ज़ोर की प्यास ने पराधीन कर रक्खा था—मुझे बड़े ज़ोर की प्यास सता रही थी। भील के चले जाने पर मुझे अपने जीवन की आशा हो आई थी सही, पर पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मृत्यु के ताज़े शोक से मेरा हृदय सङ्कुचित हो रहा था। मैं उस वृक्ष के कुछ ऊपर से गिरा था अतएव मेरा शरीर भी कुछ थक गया था। "वह दुष्टात्मा इस समय दूर निकल गया" यह मन में विचार कर मैंने अपनी गर्दन को कुछ उठाया और भय से चकित दृष्टि से दिशाओं को देखकर तिनके के भी हिलने पर "वही दुष्टात्मा फिर लौट आया" यह पद पद पर उसी की सम्भावना करते हुवे उस तमाल के वृक्ष की जड़ से निकल कर जल के पास जाने का प्रयत्न किया। मेरे पंख न निकले थे। अतएव मेरा चरण-सञ्चार भी कुछ अधिक स्थिर न था—मेरे पैर चलते हुवे डगमगाते थे। और बार बार मुंह के बल गिर पड़ता था। पर मैं पृथ्वी पर तिरछे गिरते हुवे अपने आत्मा को एक करवट से सँभाल लेता था।

पृथ्वी पर चलने के परिश्रम से मैं आतुर था। मुझे चलने का अभ्यास न था। अतएव एक पैर ही आगे को रख कर मैं बहुत देर तक ऊपर को मुंह किये हुए लम्बे लम्बे श्वास लेता था—मुझे बहुत परिश्रम मालूम होता था। चलते हुवे मैं धूल से धूसरित होगया था। ऐसी दशा में चित्त में यह विचार हुवा कि बड़ी बड़ी बुरी दशाओं में भी प्राणियों की प्रवृत्तियाँ संसार में जीवन से निस्पृह नहीं होतीं—आपत्तियाँ पड़ने पर भी अपना जीना ही संसार में श्रेयस्कर समझा जाता है। सारे के सारे प्राणियों को ही इस संसार में प्राणों से प्यारा कोई दूसरा नहीं है। यतः सुगृहीतनामधेय अपने पिता के मर जाने पर भी अभी मैं जीता हूँ। मेरी इन्द्रियाँ भी वैसी की वैसी ही हैं। इनमें भी तो कोई विकार नहीं आया! मुझ निर्दयी, दुःस्वभाव और कृतघ्न को बारम्बार धिक्कार है! हाय! हाय!! पिता की मृत्यु के शोक को सहता हुआ भी मैं जीता हूँ। उनके उपकार की भी अपेक्षा नहीं करता! निःसन्देह मेरा हृदय बड़ा कठोर है।

मेरी माता के स्वर्गवास होजाने पर भी, उससे पैदा हुवे शोक को रोक कर, मेरे जन्म-दिन से ही, बूढ़े होते हुवे भी मेरे पिता ने, भूख, प्यास और नींद को शान्त करनेवाले उपायों के सामने, मेरे प्रेम के कारण, मेरी वृद्धि करनेवाले बड़े बड़े क्लेशों की कुछ भी परवाह न करते हुवे, जिस तरह मुझको पाला-पोषा उसे मैं एक दम ही भूल गया। ये प्राण, बड़े निर्दयी हैं, जो गुप्त स्थान में गये हुवे, उपकारी पिता का अब भी अनुसरण नहीं करते! ओहो, यह सत्य है कि किसको जीवनाशा दुष्ट नहीं बना देती? सबही को यह दुष्टा अपने अधीन कर लेती है। मेरी यह तो दशा है—शोक समुद्र में गोते खा रहा हूँ, पर जल-तृष्णा मुझे दुःखी किये देती है। मैं समझता हूँ कि पिता के मरने शोक की कुछ भी परवाह न करनेवाले मेरा यह जलपान का रुह्जान केवल धृष्टतामात्र ही कहा जा सकता है। अभी तडाग का तट दूर है। कहीं कि जलदेवताओं का नूपुर-शब्द जैसा, कलहंस का यह शब्द अभी दूर ही सुनाई दे रहा है। सारस का भी शब्द अभी साफ़ साफ़ सुनाई नहीं देता और कमलों का गन्ध, दूर से दिशा-मुखों में विचरण करने से विरला हुवा हुवा इधर उधर ही बह लगा रहा है। दिन की यह दुःखदायिनी दशा है—ठीक दुपहरी होगई है। आकाश में ठीक मध्यगत सूर्यनारायण अविच्छिन्न चमकीली धूप को अपनी किरणों से अग्नि की चिनगारी जैसी छोड़ रहे हैं और अधिक प्यास पैदा कर रहे हैं। इधर गर्म गरम रेती से पृथ्वी भी दुर्गम हो रही है और बड़े ज़ोर की प्यास से दुःखित हुवे मेरे अवयव (हाथ पैर आदिक) कुछ भी दूर चलने को समर्थ नहीं हैं। मैं प्रबल प्यास के कारण एक क़दम भी नहीं चल सकता। मेरा आत्मा भी मेरे वश में नहीं। हृदय फटा जाता है। आँखों के सामने अन्धेरा आ रहा है। मेरी प्रार्थना है कि यद्यपि इस समय मैं मृत्यु का अनिच्छु हूँ तथापि दुष्ट ब्रह्मा, इस दशा में मुझे मार ही डाले तो अच्छा है।

(असमाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती-परिणय के प्रणेता।*

संस्कृत के नाटकों में "पार्वती-परिणय" का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। भगवान् भूतभावन का पार्वती के साथ किस भांति परिणय हुआ—यही कथा इस नाटक में सीधे सादे शब्दों में अभिनयरूप से दरसाई गई है।

इसका कर्त्ता कौन है? और किस समय हुआ? यह विषय विवादशून्य नहीं है। कर्ता के विषय में भारी मतभेद है। बहुतों का सिद्धान्त है कि, हर्षचरित और कादम्बरी के प्रणेता बाणभट्ट ही इसके भी प्रणेता हैं, बहुतेरे इसके विरुद्ध वामन भट्टबाण को उक्त रूपक का रचयिता ठहराते हैं।

प्राचीन भट्टबाण के कर्तृत्व सिद्ध करने के लिये नीचे लिखी युक्तियाँ दी जाती हैं—"अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः" यह पार्वती-परिणय की प्रस्तावना में लिखा है, और हर्षचरित के पाठकों से यह बात छुप नहीं सकती कि, भट्टबाण वत्सवंश में उत्पन्न हुए थे। दूसरा प्रमाण यह है कि, बाणकृत ग्रन्थों के वाक्यों से इस नाटक की एकवाक्यता है, यथा—

"कुचयुगलं परिणद्धं यया यया वृद्धिमेतितन्वङ्ग्याः।
वरचिन्ताहृतमनसस्तथा तथा कार्श्यमेति मे गात्रम्।

यह पार्वती-परिणय में हिमाचल का वाक्य है। इसी आशय का एक श्लोक हर्षचरित में भी लिखा मिलता है।

"उद्वेगमहावर्त्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले,
सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्द्धमाना सुता पितरम्।"
"सौभाग्यमयीवसालभङ्गिका, सौन्दर्यदेवतेव विग्रहिणी"

इत्यादि वाक्य-शैली से भी पता चलता है कि, इस नाटक के कर्त्ता प्राचीन भट्टबाण ही हैं। क्यों कि आर्थिक और शाब्दिक एकता से भी एक-कर्तृत्व का प्रायः पता चल जाता है। देखिए, महाकवि कालिदास-कृत ग्रन्थों में भी कितनी एक-वाक्यता है—

"आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां।
सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥

यह मेघ-सन्देश में लिखा है। इसी आशय के वाक्य विक्रमोर्वशी और शाकुन्तल में मिलते हैं, यथा—'शपथं खल्वाशाबन्धेनात्मानन्धारयितुम्, गुरु-अम्विविरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि'। रीतिवृत्ति आदि का विसंवाद या बेमेल होना एक-कर्तृकता का विघातक नहीं हो सकता। हाँ, विषय की भिन्नता, रसकी भिन्नता और पूर्वापर सम्बन्ध के गठन से जो भिन्नता प्रबन्धों में आजाती है वह दुर्निवार है, और वह इसमें भी है। इस नाटक के प्राचीन बाण-कर्तृत्व में एक यह भी प्रमाण है कि, वत्सान्वयजलधि का कौस्तुभरूप और कोई बाण नहीं हुआ। अतः यही युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि, उक्त नाटक का प्रणेता भट्टबाण ही है।

किन्तु, प्राचीन भट्टबाण इसके कर्ता नहीं, बल्कि वामन भट्टबाण हैं—यह पक्ष भी निष्प्रमाण ही नहीं है। यदि प्राचीन भट्टबाण ने इस नाटक को रचा होता तो रूपक के लक्षणों को लिखते समय कोई आलङ्कारिक तो इसका नाम लिखता। दशरूपक और साहित्यदर्पण तक में इस नाटक का नाम भी नहीं, अन्यान्य अलंकार-ग्रन्थों में किसी भी आलंकारिक ने इसका एक भी पद्य उद्धृत करके उदाहरण नहीं दिया। महाकवि भट्टबाण के प्रणेता होने पर, इस नाटक का नाम तक न लिया जाना, चाहे किसी कारण से सयौक्तिक भी हो, किन्तु सहृदयों को अखरे बिना न रहेगा। एकवाक्यता का होना समानकर्ता की भाँति भिन्न कर्ताओं में भी देखा गया है, अतः यह हेतु न किसी पक्ष का बाधक है और न साधक ही है। प्राचीन बाण के कर्ता होने में यों भी सन्देह है कि, यह नाटक किसी भाँति भी उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। न तो इसमें कथा सुन्दर रीति से गढ़ी गई है, न रस की परिपुष्टि ही है, और न उतनी

*श्रीवाणी-विलास प्रेस, श्रीरङ्गम् में मुद्रित 'पार्वती-परिणय' नाटक की भूमिका के आधार पर लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन करने की चतुरता ही है कि जिसके मनन करने से आनन्दाप्लुत होकर भूरि भूरि प्रशंसा करनी पड़े। महाकवि की कृति का कोई भी लक्षण इसमें नहीं दीख पड़ता। जिस भाँति इस नाटक में वस्तु-विन्यासादि हुआ है उसे देखते यही कहना पड़ेगा कि, जिस सिद्धहस्त लेखनीधर ने कादम्बरी, हर्षचरित, और चण्डीशतक में अपनी असाधारण योग्यता, अपूर्व प्रतिभा और अद्वितीय वर्णन-शैली से आकाश-पाताल एक कर दिया है, कवियों को हतोत्साह कर डाला है, संस्कृत-माता को अलंकृत किया है,—वह कदापि पार्वती-परिणय सदृश सामान्य नाटक का प्रणेता नहीं हो सकता—श्रद्धाजड भी यह बात माने बिना न रहेगा। इस नाटक और कादम्बरी की शैली तथा रस चर्वणा में ज़मीन आस्मान का फ़र्क है। जिस प्रतिभाशाली लेखक ने कादम्बरी आदि रमणीमणियों का वर्णन किया है, क्या पार्वती का बखान करते समय—यदि वही है तो—उसकी शक्ति नष्ट हो गई थी? या माता सरस्वती का शाप हो गया था? छोटा मोटा नहीं, इनमें बहुत भारी अन्तर है, जो बड़ा प्रयास करने पर भी छिपाया नहीं जा सकता। अतएव यही समझ में आता है कि, 'अभिनव बाण' उपाधि से अलंकृत, वत्स-वंश-सम्भूत, 'वीरनारायण-चरित' नामक गद्य-काव्य और अन्यान्य 'शब्द-रत्नाकर निघण्टु' आदि ग्रन्थों का रचयिता, श्रीवामन भट्टबाण ही उक्त नाटक का प्रणेता है। उसके वत्स-वंशी होने का प्रमाण लीजिए। शब्दरत्नाकर निघण्टु ग्रन्थ के आरम्भ में ये श्लोक लिखे मिलते हैं—

"सोमाङ्गमुत्तंसयते, वामाङ्गमवरुन्धते,
नमः परस्मै देवाय तेजोभिः पश्यते त्रिभिः।
वरदाग्निचितः पौत्रः पुत्रः कोवटि यज्वनः,
जागर्ति वामनो बाणो वत्सवंशशिखामणिः।"

चतुर्थ अध्याय की समाप्ति में लिखा है—

"इतिवत्सकुलवामनभट्टबाणविरचिते शब्दरत्नाकरे अध्यायश्चतुर्थः।" "तेजोभिःपश्यते त्रिभिः"

इस वाक्य का प्रकृत नाटक के "तेजस्त्रयेण मह विहितेक्षणश्रीः" इस वाक्य के साथ मिला कर देखिए। शृङ्गार-भूषण-भाण में यह श्लो लिखा है—

"सौभाग्यस्य निधिः, श्रुतस्य वसति, विद्यावधूनांवो लक्ष्म्याः केलिगृहं, प्रसूतिभवनं शीलस्य, कीर्तेः पदं। निःसामान्यविकासया कवितया जागर्ति वत्सान्वयः, श्रीमान् वामनभट्टबाणसुकविः साहित्यचूडामणिः।"

वीरनारायणचरित में वामन भट्ट बाण विषय में बहुत कुछ लिखा मिलता है। देखिये—

"प्रति कविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणम सहृदयलोकसुहृन्धुर्जयति श्रीबाणभट्टकविराजः। जयति कविभट्टबाणे दधति कविम्मन्यभावमो प्रद्योतयति रवौ द्यां खद्योताख्या न किन्तु कीरमो गाथास्ताथागतावोदधति वितथतां तार्किकास्तत्वविद सत्राः सत्रासमाढ्ं फणिमणितजुषो वः कृतं प्रक्रियाभि भरना साहित्यसीमा.....भुवने वामने भट्टबाणे, त्यस्मिन् कवीन्द्रे जहित जहित भोः! कद्वदा विद्वदास अयमभिनवबाणः काव्यमत्यद्भुतार्थम्।

भुवनमहितभूमानायको वेमभूपः।
त्रिभुवनमहनीयख्यातिमानेषयोगः।
.....॥
.....नृपाणां दुर्मदपरिपन्थिशिखरदम्भोलि,
सर्वज्ञचक्रवर्ती पेद्दकोमटो वेमभूपतिर्जयति।

इन प्रमाणों से तथा इसी प्रकार के और प्रमाणों से वत्सान्वयजलधि का कौस्तुभरूप ही पार्वती-परिणय का प्रणेता प्रतीत होता प्राचीन भट्ट बाण की यह कृति नहीं हो सकती यह बात भली भाँति सिद्ध की जा चुकी वामन बाण के अतिरिक्त और कोई बाण भी नहीं, परन्तु किसी अन्य बाण के न सुनने ही आग्रहवश होकर, वामन बाण को प्रकृत का कर्ता नहीं ठहराते हैं। किन्तु एक पुराण पण्डित की सम्मति हमें यह सिद्धान्त स्थिर के लिये बाध्य करती है। केरलीय 'विज्ञान-चि मणि' नाम की संस्कृत-पत्रिका में पं० रामपार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केरलीय ने रस-विमर्श विषयक किसी लेख में लिखा था—

"अतो वामनाचार्यमहाकवेः कृतिषु राक्षसादिभ्यो रसोदर्कतया रसमण्डपशब्देन भूरिशो व्यवहारं प्राप्तवति, पार्वतीपरिणय इति कविसङ्केतेन कैश्चिदभिधीयमानेऽस्मिन्नाटके इहोदाहृत श्लोक इव तत्र तत्र नीरसत्वाऽपत्तिः। तत्तत्प्रदेशस्यसाहित्यवाचस्पतिमिश्रोक्तिव्याकोपावसरश्च।"

यह एक बहुदर्शी विद्वान् की राय है। ऐसा ज्ञात होता है कि, बहुत समय बीत जाने पर वामन बाण को न जानने के कारण और प्राचीन बाण की चर्चा अधिक होने के कारण, अबहुदर्शी लोगों ने वामन पद को हटाकर केवल 'बाण' कहना शुरू कर दिया। बस, इसी कारण से प्रकृत नाटक का प्राचीन बाणकृत होने का प्रवाद दृढ़ होता चला गया। इस भाँति निरूपण करने पर यही सिद्धान्त निकलता है कि, इसका कर्ता प्राचीन भट्ट बाण नहीं किन्तु वामन भट्टबाण ही है।

अब यह विचार करना है कि, यह कविवर कब और किस देश में उत्पन्न हुए। यद्यपि संस्कृत के दुर्भाग्य से प्राचीन कवियों में जीवन लिखने की प्रथा नहीं थी। जिसके कारण बड़े बड़े प्रभावशाली विद्वानों के आदर्श चरित्र पाठकों को आज तक विस्पष्ट रूप से पढ़ने के लिए नहीं मिले हैं, और इसी गिनती में हमारे वामन बाण भी हैं। किन्तु फिर भी हम यथाशक्य उनके जीवन का पता चलाते हैं।

वीरनारायण-चरित के देखने से जान पड़ता है कि यह कवि तैलङ्ग देश में उत्पन्न हुआ, और अद्ङ्कि नाम की नगरी के अधिपति श्रीवेम भूपाल का प्रीतिपात्र था। देखिये वीरनारायण-चरित में इस विषय में क्या लिखा मिलता है—

".....कामाभिधानो नराधिपः। तेन खलु कामपालनिभेन कामभूपालेन पालितः समधिककृष्णागोदवरीस्रोतःसमुदायनदीमातृकायमाणत्रिलिङ्गो नाम जनपदः। यत्रास्ति अद्ङ्कि नामधेया नगरी। तस्यां पुरि निवसन् पुरन्दरप्रतिमः पूरितार्थिजनकामः कामनृपतिरेकनगरीनिर्विशेषमखिलपदशेषमवनिचक्रम्। तस्मात् प्रससार महीतले महाञ्च वंशः। तत्र च मालवकुलापमृत्युर्गूर्जरज्वरः, सिन्धुराजराजयक्ष्मा बद्धहृदयशङ्कू राजा प्रोल्लभूपतिर्नाम। तस्माच्च भुवनमहितकीर्तेः प्रोलभूपालादजायन्त माचनरेन्द्र इति, वेमभूप इति, दोड्डनरपतिरिति, अन्नभूप इति, मल्ल महीपाल इति पञ्च कुमाराः।...

तस्य च माचभूपतेरजनिषतान्वय इवाबह्वतेजसः रट्टिप्रोत इति, कोभटीन्द्र इति, नागरेन्द्र इति त्रिदशसदृशास्त्रयो नन्दनाः। ततः क्रमेण गुणज्येष्ठो विशेषतः पालयिता बभूव धरण्याः वेद्दकोभटीन्द्र इति राजराजप्रभावो राजा। तस्याभूदनन्ताम्बा नाम महिषी। सा बहूनि दिनानि सुतमुखालोकनसुखस्य दूरे बभूव। ततो वेमभूपनामानं सुतमसूत सा देवी। ततः पञ्चमंवर्षमवतरति कुमारे भूयोऽपि देवी गर्भे देवकीव पुण्डरीकाक्षमधत्त, माचभूपालं द्वितीयं कुमारम्। पृथ्वीपतिः सार्वभौमः वेद्दकोभटीन्द्रोऽपि अखिलभुवनभारभरणशिक्षितमालोक्य तस्मिन्नेवाससज्ज धुरन्धरण्याः।"

पेद्द कोभटीन्द्र के पुत्र इस वेमभूप का ही 'वीरनारायण' यह दूसरा नाम है। इसी से चरित-वर्णनात्मक वामन बाण के गद्य-काव्य का नाम 'वीरनारायणचरित' प्रसिद्ध हो गया है। अमरुक शतक की व्याख्या के अन्त में भी लिखा मिलता है कि—'इतिश्रीवीरनारायणसकलविद्याविशारदपेद्दकोभटिवेमभूपालविरचिता शृङ्गारदीपिकाख्या व्याख्या समाप्ता।'

वेमभूपाल या वीरनारायण के समय के निर्णय हो जाने पर वामन बाण के जीवनकाल का भी बहुत कुछ पता चल जायगा। इसलिए इस विषय में कुछ खोज की जाती है। वेमभूपाल के चरित्र की आलोचना करने से पहले, अमरुक-व्याख्या, वीरनारायण-चरित और ताम्रशासन आदि द्वारा ज्ञात हुए, उसके वंश-वृत्तान्त को वंश-वृक्ष रूप में नीचे लिखा जाता है। जिससे वेमभूपाल और उस के आश्रित वामन बाण के समय का सहज ही में पता चल जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

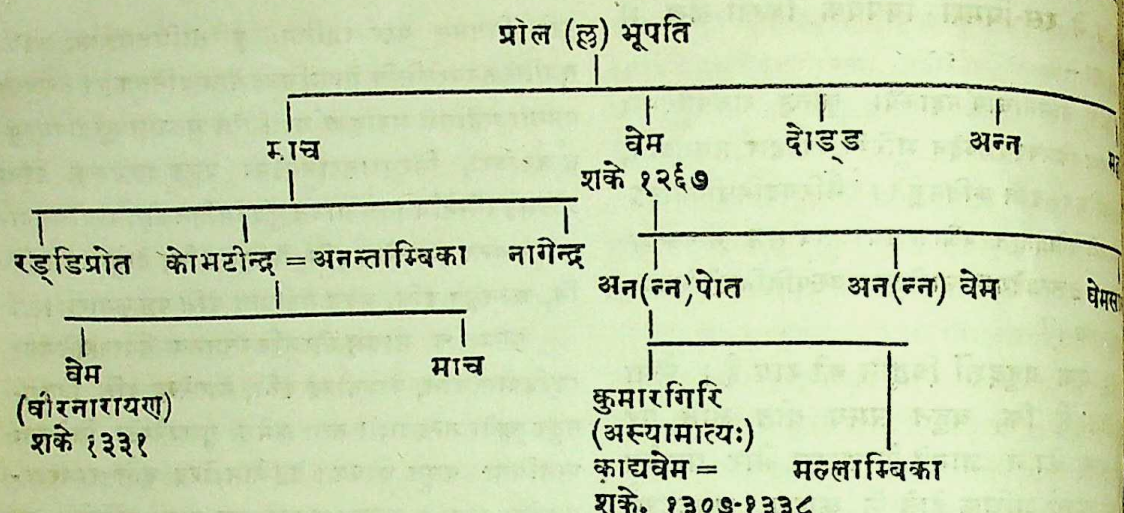

इस वंशवृक्ष के लिखने में जिन प्रमाणों की सहायता मिली है, वे ये हैं। अमरुक व्याख्या में लिखा है—

"राज्यं वेमस्स चिरमकरोत्प्राज्यहेमाद्रिदानो।
भूमीदेवैर्भुवमुरुभुजो भुक्तशेषामभुङ्क्त।
श्रीशैलागात्प्रभवति पथि प्राप्तपातालगङ्गा-
सोपानानि प्रथमपदवीमारुरुक्षुश्चकार।
माचक्षोणिपतिर्महेद्रविभवो वेमक्षितीशात्मजो-
हेमाद्रेः सदृशोऽभूत्स गुणैस्तस्य त्रयो नन्दनाः।
कीर्त्याजाग्रतिरेडि(ड्डि)पोतनृपतिःश्रीकोभटीन्द्रस्ततो
नागेन्द्रमापतिरित्युपात्तवपुषो धार्मिकामा इव।
वेमाधिपोमाचविभुश्च नन्दनौ श्रीकोभटीन्द्रस्य गुणैकसंश्रयौ
भूलोकमेकोदर जन्मवाञ्छया भूयोऽवतीर्णाविव रामलक्ष्मणौ।
सवेमभूपः सकलासु विद्यास्वतिप्रगल्भो जगनव्वगण्डः *
कदाचिदास्थानगतःकवीनाम् काव्यामृतास्वादनतत्परोऽभूत्॥

वीरनारायण-चरित में जो कुछ है सो पहले ही लिख दिया गया है। श्रीकुमारगिरि भूप के अमात्य श्रीकाटयवेम की धर्मपत्नी मल्लाम्बिका के बनवाये हुए मार्कण्डेय शिवालय के अग्रहार प्रशस्ति-प्रतिपादक ताम्रपत्रों में इस प्रकार लिखा है—

१ "पुंसस्तस्य पुरातनस्य चरणाम्भोजातजातं कुलं
स्वल्पाचारविधानतोऽपि विमलं शुद्धस्वभावादिदम्।
आसीत्किञ्च कलौ युगे नृपतयः प्रायेण यत्रोदिताः,
तेजःशौर्यपराक्रमप्रभृतिभिर्युक्ता गुणैः प्राभवन्।
तत्र पंट कुलं नाम प्रभूतं बहुशाखिनि,
तराविव फलं रम्य—वृत्तं सरसमुज्ज्वलम्।
तत्रासीद्वेमभूपालः कुलेविबुधरञ्जकः
पयोधाविवसन्तानोराजरत्नोद्भवाकरे।
श्रीमान्वेममहीपतिः सविदधे पातालगंगातटे
श्रीशैलेजगनोब्बगंड विरुदस्तोपानवीथींशुभाम्।
यासौ दीव्यति दिव्यसोमनगरारोहोद्यतानां नृणां
निश्रेणिः परिकल्पितेव नितरामाब्रह्मकल्पस्थिरा।
... ...
अनवोतप्रभुस्तस्मादजायत भुजायतः।
महासेवो महादेवादिवारातिकुलान्तकः।
... ...
कुमारगिरिभूपोऽभूदनवोतविभोः सुतः।
... ...
आसीदमात्यरत्नं काटयवेम प्रभुस्तस्य।
... ...
अभूत् काटयवेमस्य जाया मल्लाम्बिका सती।
अशेषगुणसम्पूर्णा पातिव्रत्यधुरंधरा।

* विरुद नाम प्रतीत होता है।

१ एपिग्राफिका इण्डिका—४. ३२१—३२५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[राजद्राजमहेन्द्रनामनगरे गोदावरीतीरगं
मार्कण्डेयशिवालयं पतिहिता मल्लाम्बिका धार्मिका।
कृत्वा शुद्धसुवर्णरत्नखचितं ब्रह्मप्रतिष्ठास्तया,
सत्राण्यध्वनि च प्रपाविजयतेनेकांस्तटाकानपि।
श्रीशाके गुणरामविश्वगणिते कार्तिक्यहेद्दे खरे,
प्रादात्काटयवेमयस्स्ववनिता मल्लाम्बिका नामतः।
ग्रामं मल्लवरं नृसिंहविदुषे काण्वद्विजायादरात्
आचन्द्रार्कमुदर्कलालसमतिः सैश्वर्यभोगाण्ठकम् "]

इस ताम्रशासन से ज्ञात हुआ कि जिस भाँति पोल नृपति का वीरनारायण वेम प्रपौत्र है उसी भाँति कुमारगिरि भी है, तो दोनों का समकालिक या तुल्यशताब्दिक होना नितान्त असम्भव नहीं है। और जब यह बात है तो कुमारगिरि के मन्त्री काटयवेम की पत्नी मल्लाम्बिका के ताम्रशासन में जो समय लिखा है वह ठीक है, और वही लगभग वीरनारायणवेम का—जिसका वामनबाण ने वर्णन किया है—समय है। प्रकृत ताम्रपत्र में लिखा है—" गुणरामविश्वगणिते—शाके" जिसकी संख्या १३३३ होती है। और यह शक शालीवाहन का है, न कि विक्रमादित्य का, क्योंकि दक्षिण में विक्रमाब्द व्यवहार कम है। शालीवाहन शक के साथ अठत्तर वर्ष और मिलाने से क्रिस्ताब्द की पूर्ति होती है, तो इस भाँति प्रकृत ताम्रशासन का समय ईसा की (१३३३+७८=१४११) १५वीं सदी के पूर्वार्द्ध का भी पहला भाग ठहरता है। यही समय कुछ आगे पीछे, कुमार गिरिराज, वीरनारायणवेम और उसके आश्रित वामनबाण का प्रतीत होता है।

प्रोल भूपति के पौत्र श्रीअन्नवेम भूप के दो ताम्रशासन और हैं, जिनसे इस विषय में और भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है, अतः उद्धृत किये जाते हैं। पहला यों है—

"*... ... ...।
तस्मिन्नभूदिन्दुरिवाम्बुराशौ प्रोलक्षितीशो जगदेकपालः।
... ...।
तस्य पुण्योदयाज्जातस्सुपुत्रः प्रोलभूपतेः।
वेमावनीश्वरोनाम पुण्यश्लोको नृपाग्रणीः।
... ...।
सोपानानि विधाय वेमनृपतिः पातालगङ्गापये
स्तम्भत्रं निजधर्मशासनविधेः श्रीशैलमेवानयत्।
... ...।
आसोदप्रतिमप्रतापमहिमा हेमाद्रिदानव्रती
वीरश्रीपतिरन्नपोतनृपतिर्वेमक्षितीशात्मजः।
... ...।
तस्यानुजन्मा जगतोऽवगंडः कीर्तिप्रियो भूपतिरन्नवेमः।
... ...।
शाकाब्दे गगनाभ्रविश्वगणिते सिद्धार्थि संवत्सरे,
माघे कृष्णचतुर्दशीशिवतिथौ वीरान्नवेमप्रभुः।
प्रादादिम्मडिलङ्कसंज्ञमतुलं कृत्वाऽग्रहारोत्तमं
ग्रामं लोहितगोत्रजाय विदुषे श्री-इम्मडीन्द्राय सः।
नीतो मन्त्रीश्वरो विद्यागोष्ठीषु विबुधाग्रणीः।
मित्रं हितोपदेशेषु भूभुजामिम्मडीश्वरः।"

उक्त शक वर्षों के साथ अठत्तर वर्ष जोड़ देने से (१३७०+७८=१४४८) ईसा की १५ वीं सदी के पूर्वार्द्ध का अवसान समय, प्रोलपौत्र श्रीअन्नवेम के शासन-पत्र का काल निश्चित होता है, शाखान्तर से प्रोल भूपति के प्रपौत्र वीरनारायणवेम और उसके आश्रित वामनबाण का समय, पहले लिखे ताम्रशासन के सिद्धान्तानुसार इस शासन से और भी दृढ़ होजाता है। दूसरा शासनपत्र भी लीजिये—

"[1]... ... ...।
अभूत्तस्यां जातौ गुणगणनिधिः प्रोलनृपतिः.....।
तस्माज्जज्ञे वेमभूपः प्रतापी.....।
मेरुमन्दरकैलासानारुरुक्षुर्महामतिः।
सोपानपङ्क्तिं श्रीशैले व्यतनोद्वेमभूपतिः।
[तस्य शासितुरुभौ बभूवतू रामलक्ष्मणनिभौ तनूभवौ,
अन्नवोतनृपतिः प्रतापवानन्नवेमनृपतिश्च जित्वरः।

* एपिग्राफिका इण्डिका—३-६०-६३।

१ एपिग्राफिका इण्डिका—३-२८८-२९१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितुरनन्तरमग्रयगुणोऽग्रजः समधिगत्य स राज्यमकंटकम् ।
वसुमतीमखिलां परिपालयन् सुचरितैः समवेष्टमहद्यशः ।
... ... ।]
तदनन्तरमन्नवेमभूपः, पितृसिंहासनमुन्नतोऽधिरूढः ।
... ... ।
तस्यान्नवेमचन्द्रस्य लक्ष्मीरिव सहोदरी,
श्रीनल्लनूङ्कभूपस्य महिषी विष्णुतेजसः ।
वेमसानीति विख्याता सप्तसन्तानशालिनी,
नित्यं हेमाद्रिकल्पोक्त-दानव्रतविधायिनी ।
शाकाब्दे रसरत्नभानु(१२९६)गणिते ग्रस्तेविधौ राहुणा,
कार्तिक्यां विजयेश्वरस्य पुरतः श्रीगौतमीरोधसि ।
विप्रेभ्यः परमन्नवेमनृपतिः श्रीवेमसान्याः स्वसुः
पुण्यायं नडुपूरसंज्ञमददाद् ग्रामं स कोणस्यले
साष्टैरवयं साष्टभोगं दत्तोविंशतिभागवान्,
तस्या नाम्नाऽग्रहारोयं भाति वेमपुराह्वयः ॥"

इस ताम्रशासन का समय, पूर्वोक्त रीति से ईसा की १४ वीं सदी के उत्तरार्द्ध का मध्यम काल (१२९६+७८=१३७४) ठहरता है। जो हो, पर सब ताम्रशासनादि की आलोचना करने पर वीर-नारायणवेम और तदाश्रित वामनबाण का समय १४ वीं शताब्दी का उत्तर भाग अथवा १५ वीं का पूर्वार्ध—यही निर्णीत होता है।

"विद्यारण्यगुरून् सार्वभौमाद्यखिलसत्कवीन्,
नमस्कृत्याय बाणेन क्रियते शब्दचन्द्रिका ।
स्वर्गे सारस्वतपुरी भोगभूमिस्तु सैरिकः,
गीर्वाणनगरी वीर साधारण पुरीति च ।"

ये 'शब्द-चन्द्रिका' के आरम्भिक श्लोक हैं। इनसे पता चलता है कि विद्यारण्य का शिष्य कोई बाण था, सम्भवतः यही बाण होगा। क्योंकि विजयनगर के महाराज के मन्त्री श्रीसायणमाधवाचार्य थे और सन्यासाश्रम में उनका नाम विद्यारण्यस्वामी था। विजयनगर वेम भूपाल की नगरी के समीप है ही। "तस्य पुनरचिन्तनीयमनवधिकानन्दसुन्दरमनादिनिधनमनञ्जनमगुणमक्रियमात्मानमवाङ्मनसगोचरं चक्षुषा साक्षात् कुर्वतः समुपसंहृताखिलद्वैतकल्पनाविकल्पस्य" इस लेख से भी यही मालूम होता है कि यह कवि अवश्य ही अद्वैत के आचार्य श्रीविद्यारण्य स्वामी का शिष्य था। और श्रीसायणमाधवाचार्य का समय ताम्रशासनादि* द्वारा, चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग या पन्द्रहवीं का आदि भाग निश्चित होता है। सो यदि यही बाण श्री विद्यारण्य स्वामी का शिष्य है, तो इसके समय का जो निश्चय किया गया है वह इस प्रमाण से और भी दृढ़ हो जाता है। उपरोक्त ताम्रशासनों से जो समय निर्धारित हो सका है, वह लिख दिया गया है, सम्भव है कि, और कोई पक्ष साधु हो किन्तु यथामति सिद्धान्त लिख दिया गया। इतनी लिखा पढ़ी का यह सार निकला कि पार्वतीपरिणय के कर्ता वामनबाण हैं और वेमभूपाल के समकालीन थे। अब नाटक की

समालोचना

करनी बाकी है। इस रूपक में शिवपुराण की पार्वती-परिणय की कथा को आधार रखा गया है। महाकवि कालिदास ने भी कुमारसम्भव उसी के आश्रय पर बनाया है। जिस भाँति कालिदास शिवपुराण की आर्थिक और शाब्दिक छाया लेकर प्रवृत्त हुआ है, † ठीक इसी भाँति वामनबाण भी शिवपुराण की तरह, कुमारसम्भव का सर्वथा अनुसरण करता है। शिवपुराण में कथारस का जो सोता बह रहा है, जो कथा पुरुष हैं, जो प्रश्नोत्तर की चतुराई प्रकट की गई है, और जो कुछ वर्णन करने की निपुणता है, सभी खूबियें प्रायः इस कवि ने भी अपने रूपक में दिखलाई हैं। रूपक के लक्षणानुसार कुछ विशेष अन्तर लाने की कवि ने चेष्टा नहीं की। वस्तुघटना में कुछ भी चमत्कार प्रकट नहीं किया गया, पात्रों की आपस की बातचीत निःसार कही जाने के योग्य हैं, रस की मात्रा में ज़रा भी न्यू

* एपिग्राफिका इण्डिका ३-१२०-१२४

† श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति लिखित कुमारसम्भव का उपोद्घात देखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्वता नहीं दीख पड़ती, और नहीं वर्णन करने में अल्प भी कल्पना-शिल्प काम में लाया गया है। इन सब बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए, ख़ाली इति-वृत्तया कहानी लिखने के लिए ही कवि ने मानों लेखनी उठाई है—इतनी रसोपेक्षा देख कर प्रत्येक सहृदय को खिन्न होना पड़ेगा। क्योंकि, पौराणिक की भाँति केवल कथा-मात्र लिख देने से रूपककर्त्ता का काम सान्त नहीं हो जाता, उसे कुछ विच्छित्ति, लोकोत्तर चमत्कार लाना पड़ता है। अन्यथा पुराण से ही वह काम निकल सकता है। ध्वनिकार ने भी लिखा है—"कविना प्रबन्धमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्। तत्रेतिवृत्ते यदि रसाननुगुणां स्थितिं पश्येत्ताँ भङ्क्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुणं कथान्तरमुत्पादयेत्। नहि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वहणेन किंचित्प्रयोजनम्। इतिहासादेव तत्सिद्धेः।"

अत्यन्त खेद है कि, इतना अधिकार पाकर भी वामनबाण ने उसका उपयोग नहीं किया। पाँचवें अङ्क में पार्वती का शृङ्गार-वर्णन भी मनको उल्लसित, पुलकित करनेवाला नहीं बन पड़ा है। कहीं कुछ वर्णन है सो भी दूसरों की छाया पर किया गया है। पहले अंक में हिमवान् मेना के समक्ष कन्या-पार्वती का इन शब्दों में वर्णन करते हैं—

"आभोगशालिकुचकुड्मलमायताक्ष्या
वक्षोऽवकाशमभिवाञ्छति सन्निरोद्धुम्।
अप्यस्ति नास्ति वचसां विषयेऽवलग्ने
तन्वी समुल्लसति काचन रोमरेखा॥
'कुचयुगलं परिणद्धं' यथा यथा वृद्धिमेति तन्वङ्ग्याः...
... ...

क्या उक्त श्लोक के उच्चारणमात्र से पाठकों के चित्त में अपूर्व शान्ति और व्रीड़ा का उदय न होगा? पुत्री के विषय में पिता का इस प्रकार का वर्णन सर्वथा अनुचित कहे जाने योग्य है। दूसरे अङ्क में देवगुरु बृहस्पति भी महेन्द्र के समक्ष ऐसी ही कच्ची बात कह बैठे हैं, देखिए—

"आतेचनकतनुश्रीरन्तःकरणस्य किमपि 'संवननम्',
सा खलु गिरिराजसुता 'सम्मोहनमस्त्रमेव' पुष्पेषोः"

यहाँ भी कवि ने मुँह की खाई है। लोकमाता के विषय में ऐसा वर्णन गुरुद्वारा कराते उसका हृदय तनिक भी न काँपा! इतना ही नहीं पार्वती के मुख से—आत्मगत नहीं, प्रकाश—पाँचवें अंक में यह भी कहलाया है कि "अज्जकखु मे मणोरह कप्पद्दुमो फलं दंसेइ।" यद्यपि अभीष्ट अनुरूप वर की प्राप्ति से पार्वती बहुत ही आनन्दित हुई, पर इस भाँति गुरुजनों की साक्षी में उनका कहना सर्वथा अयौक्तिक और असमञ्जस प्रतीत होता है। ख़ैर, यह सब होकर भी इस नाटक का पद-लालित्य और बन्धन की सुकुमारता रसिकों का मनहरन किये बिना नहीं रहती—यह निर्भय होकर कहना पड़ता है।

एक बात और है, यदि वामनभट्टबाण ही पार्वती-परिणय का रचयिता निश्चित है, तो हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि, वामनबाण ने ही "रघुनाथ-चरित" की रचना की। उसके प्रारम्भ में निम्न श्लोक लिखे मिलते हैं—

"दम्पत्योर्जगताम्पत्योरपत्यं श्रेयसेऽस्तु वः,
विघ्नसन्तमसं भिन्ते यद्वन्तद्युतिचन्द्रिका।
... ...
आनन्देन्दुसमुद्भूता कवेरमृतशीतला,
कस्य वा न सुखं कुर्यात् कविता काऽपि कौमुदी?
वन्द्यः कस्य न वाल्मीकिर्यस्य वाङ्मञ्जरीकणान्—
आदाय, कवयोऽद्यापि निक्षिपन्ति स्वसूक्तिषु॥
कः कालिदासकविना कृतं कर्म करिष्यति?
हनूमल्लङ्घितं कोऽन्यो लंघेत पुनरर्णवम्?
'बाण' सत्कविगीर्वाण-मनुबध्नाति कः कविः?
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिं वा तमोमणिः?"

श्रीहरिहरसुरूप शर्म्मा
(शास्त्री, विद्याभूषण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्त

अहा ! छा रही है छटा क्या निराली ।
द्रुमों के दलों में* लखो लोल लाली ॥
गिरे पीत हो, पत्र सारे पुराने ।
नये पल्लवों को लगे वृक्ष पाने ॥ १ ॥
वियोगी हुए, पत्र भी आज पीले ।
छुटे साथियों से हुए भाग्य ढीले ॥
गिरे भूमि पै सूखते जा रहे हैं ।
वियुक्ता दशा की व्यथा पा रहे हैं ॥२॥
नये पल्लवों से हुई भार वाली ।
झुकी जा रही है लता वृक्ष डाली ॥
नहीं स्थान कोई बचा आज ख़ाली ।
जहाँ हो न लाली नई पल्लवाली ॥ ३ ॥
चढ़ी हैं द्रुमों पै बढ़ी हैं लतायें ।
बिना देखने के छटा क्या बतायें ?
खिले पुष्प हैं, है झुकी भृङ्गमाला ।
सभी ठाट ठाटा किसी ने निराला ॥ ४ ॥
सजी पुष्प से शोभती वाटिकायें ।
वसन्त-प्रभा को यहीं ये टिकायें ॥
छटा लोक को रम्य लीला दिखायें ।
वसन्त प्रभा देखने लोग जायें ॥ ५ ॥
बढ़ी वेग से ये नई कलियाँ हैं ।
लखो क्या छटा छा रही वल्लियाँ हैं ॥
उड़ी गन्ध से पूर्ण हैं ये दिशायें ।
दिनों से रसीली हुई हैं निशायें ॥ ६ ॥
कहीं कोकिलों की सुनो रम्य ताने ।
कहीं षट्पदों† के मनो राग गाने ॥
खिले हैं कहीं कुन्द गेंदा चमेली ।
कहीं मोहती है लता ही अकेली ॥ ७ ॥
कली है खिली गन्ध भारी प्रचारी ।
प्रभा है मिली देखलो दिव्य न्यारी ॥
मिलिन्दावली भी भली भा रही है ।
मरन्दा मृतार्थी यहीं आ रही है ॥ ८ ॥

जहाँ सृष्टि में दृष्टि जाती हमारी ।
वहाँ दीखती हैं छटा दिव्य न्यारी ॥
कहीं देखते हैं खिलीं फूल क्यारी ।
लुभातो कहीं हैं भली फूलवारी ॥ ९ ॥
जहाँ देखते हैं नया रंग छाया ।
किसी ने जगत् को भला है सजाया ॥
सबों के लिए काल आनन्ददायी ।
वसन्त-प्रभा के लिए है बधाई ॥ १० ॥
बढ़ी आ रही है मिलें लोग होली ।
लगाके गले से करेंगे ठठोली ॥
चलेंगे पिचक्के भरे लाल झोली ।
छनेगी कहीं भाँग की ख़ूब गोली ॥ ११ ॥
भरे भेद भारी सदा को भुलायें ।
मिलें प्रेम से द्वेष को भूल जायें ॥
सभी एकता के खरे तान गावें ।
प्रसन्नानना मातृ-भूमी बनावें ॥ १२ ॥
वसन्तप्रभा सी प्रभो ! शक्ति देदो ।
पदाम्भोज की हे हरे ! भक्ति देदो ॥
निरुद्योगिता को तजें साहसी हों ।
सभी सिद्धियाँ सम्पदा सी बसी हों ॥ १३ ॥
प्रभो ! देश की दुर्दशा ये हटा दो ।
कड़े कष्ट मेरे प्रभो ! ये हटा दो ॥
प्रभो ! आप हैं एक त्राता हमारे ।
तुम्हीं विश्व में सौख्यदाता हमारे ॥ १४ ॥
नया तेज हो, रक्तधारा नई हो ।
नया भाव हो, प्रेमधारा नई हो ॥
नया देश हो, मातृ-भाषा नयी हो ।
नया कार्य हो, दिव्य आशा नयी हो ॥ १५ ॥
तुम्हीं से प्रभो ! प्रार्थनायें करूँगा ।
तुम्हीं से पिता ! याचनायें करूँगा ॥
तुम्हीं नाथ ! सर्वस्व ही हो हमारे ।
तुम्हीं नाथ हो प्राण के प्राणप्यारे ॥ १६ ॥

महेश्वरप्रसाद शास्त्री

* वृक्षों के पत्तों में । † भ्रमर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलसहित

हिन्दीकुमारसम्भव

(गताङ्क से आगे)

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते
पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखन्तु प्रतिपद्य लोला
द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥ ४३ ॥

शशी में जा शोभा, न रख सकती, पद्म गुण को,
सुपद्मों में जाके, विधु-गुण अहो ! दूर तजती ।
उमा के, शोभा ने, सुभग-मुख को प्राप्त करके,
किया था, दोनों के, रुचिर-गुण का धारण भला (१) ४३

पुष्पं प्रबालोपहितं यदि स्या-
न्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।
ततोऽनुकुर्य्याद्विशदस्य तस्या-
स्ताम्रौष्ठपर्य्यस्तरुचः स्मितस्य ॥४४॥

नये पत्तों में जो, यदि निहित(२) हो, श्वेतकुसुम,(३)
भले मूंगे में या, उपनिहित(२) मोती रुचिर हो ।
कहीं तब गौरी की, कुछ कुछ करे, हास्यतुलना,
पर होठों लों थी, प्रसृत-छवि(४) उसके हसन की ४४

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव
प्रजल्पितायामभिजातवाचि ।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥ ४५ ॥

उमा की वाणी भी, अमृत-रस जैसी जब कभी –
पड़े थी कानों में, मधुर-रव युक्ता,(१) मनुज के ।
दिखाई देती थी, तब पिक(२) भि, मेरी सम कटु,
अहो गौरी वाणी ! पिक-रव भि पाजी बन गया ४५

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेष-
मधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।
तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्य-
स्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ॥४६॥

हिलाता है जिस्को, प्रति दिन, बड़ा तीक्ष्ण पवन,
अहो ! ऐसे पङ्के-रुह-सम,(३) सविक्षेप, लखना(४)॥
उमा ने सीखा था, मृगि-निकर(५) से खूब बढ़िया,
उमा से या सीखा, मृगि-निकर ने विस्मय-कर ।४६।

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव
कान्तिभ्रुवोरायतलेखयोर्या ।
तां वीक्ष्य लोलां चतुरामनंगः
स्वचापसौन्दर्य्यमदं मुमोच ॥ ४७ ॥

सलाई से स्याही, भर, रचित, जैसी प्रियतम-
भ्रुवों की शोभा को, मदन, उसकी देख करके ।
तजे था शोभा का, निज-धनुष की गर्व झगड़ा,
सुदीर्घा थीं भौंएं, सुभगपन उन्का विकट था ॥४७॥

---

१ बात यह है कि कमल, दिन में खिलता है, रात में नहीं । ऐसी दशा में, शोभा, एक ही साथ, कमल और चन्द्रमा, दोनों के गुणों को नहीं पा सकती । परन्तु पार्वती के सुन्दर मुख को प्राप्त करके उसने, कमल और चन्द्रमा, दोनों के गुणों को प्राप्त कर लिया था ।

२ निहित, २ उपनिहित } = रक्खा ।

३ श्वेत कुसुम = सुफेद फूल ।

४ प्रसृत-छवि = फैली हुई कान्ति ।

१ मधुररवयुक्ता = मीठे स्वर युक्त ।

२ पिक = कोयल ।

३ पङ्केरुह सम = कमल के समान ।

४ लखना = देखना ।

५ मृगि-निकर = हरिणीसमुदाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मत्त की उन्मत्तता।

सम्पादकजी! मनोरमा द्वारा कादम्बरी के रसपान करने से बहुत से लोग उन्मत्त हो गये हैं। उन्हीं में से एक यह "उन्मत्त" भी है। उन्मत्त की बातें और उन्मत्त के विचार, उन्मत्तता से शून्य होने में बड़ी बुराई है। इसका ध्यान रखियेगा?

सर अलीइमाम साहब ने एक युरोपियन लेडी के साथ विवाह किया है। एतदर्थ आपको बधाई है!

महात्मा, जो कहदें और जो करदें वही थोड़ा है। एक महात्मा ने, बेचारे, हिन्दी-समाचार के सम्पादक को पण्डित दीनदयालुजी का पुत्र बतला दिया है। हमें तो इस विषय में टीका टिप्पणी करने का कुछ अधिकार नहीं। यतः महात्माओं को कुछ भी अकर्त्तव्य और अवक्तव्य नहीं होता। और यदि अपनी उन्मत्तता से हमने कुछ कह भी दिया, तो झटसे हमें—

अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं,
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।

यह कह कर फटकार दिया जायगा।

प्रेस के भूत, अब बड़ा ग़ज़ब करने लगे हैं। अभी तक वे, मात्रा और अक्षरविन्यास ही का व्यत्यय किया करते थे। किन्तु अब वे लेखकों का काम भी करने लगे हैं। हिन्दी के एक प्रकाण्ड लेखक, लिखना चाहते थे, "इस अनुवाद के लेखक" और प्रेस के भूतों ने टाइप लगा दिया "इस अनुवाद के अनुवादक"। अब आइन्दा लेखकों को चाहिये कि वे अपनी भूल (चाहे वह कैसी भी क्यों न हो) प्रेस के भूतों के सर मँढ़ दिया करें। उन बेचारों को यह सब स्वीकार है।

हिन्दी के धुरीण, आज कल इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि हिन्दी-कविता, संस्कृत के छन्दों में होने की बड़ी आवश्यकता है। पर उन्हें इस बात की मालूम नहीं कि एक हिन्दी-पत्र के सम्पादक, इसके विरुद्ध हैं। आप संस्कृत छन्दों में हिन्दी-कविता को, संस्कृतज्ञ पण्डितों ही के लिये रुचिकर बतलाते हैं। धन्य! धन्य!!

ऋ० कु० जी! कृपया हमें भी तो बतला दीजिये कि कादम्बरी का प्रत्यक्षर अनुवाद कहाँ और किस भाषा में प्रकाशित हुवा है? क्षमा करना, लिखते हुवे आपका और तरफ़ ध्यान रहा होगा। कादम्बरी का नहीं, महाभारत का कई जगह छपा है। आप १५—१६ वर्ष की होजाने पर भी अपनी पताका को मनोरमा नहीं बना सके, इसका हार्दिक दुःख है। १५-१६ वर्ष की के भी क्या यथेष्ट ग्राहक नहीं?

समालोचकों के लिये यह गुर की बात है। समालोच्य पुस्तक को वे स्वयं न देखें, और उसे कोई दूसरा समालोचक लिख देवे, वैसा ही लिख कर इस झंझट से बरी हो जायें। यही समालोचना का तत्त्व है।

प्रबोध जी! कुछ दिनों समालोचना लिखने का अभ्यास कीजियेगा। देखिये, आपने समालोच्य पत्रिका का मूल्य, अपने पाठकों को न बतलाया! यह बहुत बड़ी कमी है। समालोचक की लेखनी से परस्पर विरुद्ध बातें भी न निकलनी चाहियें। इससे समालोचकम्मन्य का समालोचकत्व समालुञ्चन हो जाता है। एक जगह आप लिखते हैं—"पत्रका (?) उद्देश्य (?) मनोरञ्जन ही प्रतीत होता है"। और कुछ ही आगे चल कर आप फ़र्माते हैं—हमारी समझमें तो (इस पत्रिका की) कोई आवश्यकता नहीं"। प्रश्न यह है कि पत्रिका का जब उद्देश्य मनोरञ्जन है, तब आवश्यकता क्यों नहीं? और लीजिये, आप लिखते हैं "सारे चित्र एक ही प्रकार के हैं। एक में एक विरहिणी स्त्री दिखलाई गई है—एक में स्त्रियों की वन-क्रीडा है।" ठीक है, स्त्रियों की वन-क्रीडा और विरहिणी का एक सा ही चित्र बनता है। अब फ़ोटोग्राफ़र वन-क्रीडा के ही चित्र को, विरहिणी के चित्र में बेचा करेंगे। और हाँ, आपने तो चित्र पर तो रोशनी डाली ही नहीं। उसमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्रक के सामने चाण्डाली एक स्त्री ही खड़ी है। उसे भी एकही प्रकार में शामिल कर लेते तो अच्छा था। आप लिखते हैं—"कहानी में और सब कुछ ठीक है, केवल एक बात हमें समझ नहीं आई (?) कहानी के परिणाम में यह दिखलाया गया है कि पुरुषों में स्त्रियों से अधिक सहनशक्ति और अधिक बल है। वे स्त्रियों के लिये अधिक सह सकते हैं। यह सरासर भूल है। संसार में अपनी स्त्रियों के मरने पर कितने पुरुष चितारूढ़ हुए हैं? कितने पुरुषों ने अपनी वियुक्त स्त्रियों के वियोग में प्राण छोड़े हैं? हमारा प्रश्न है कि वियोगी या वियोगिनी बन कर प्राण छोड़ देना अधिक सहनशक्ति है या जीते हुवे, वियोग के दुःखों को सहन करना! नैषध देखने का कभी मौक़ा पड़ जाय, तो इस विषय में यह श्लोक, विशेष ध्यान देने योग्य है—

दहनजा न पृथुर्दवथुव्यथा,
विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः,
प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुराः॥ *

आप नाराज़ न हों तो आपसे एक और बात पूँछना है। क्या स्वतन्त्र लेख का, प्रत्यक्षर अनुवाद, हमपल्ला हो सकता है? हो सकता है तो इसी पुस्तक का कृपया लिखकर दिखलाइये? अन्यथा सरस्वती की छछूँदर और मर्यादा के दिल हिला-देनेवाले लेखों को पढ़ते हुवे ही अपने को धन्य समझते रहियेगा?

बहुत से अविचारशील पाठक, और पत्र-पत्रिकाओं की सरस्वती से तुलना करते हुवे, बेचारियों को न्यूना बतला दिया करते हैं। उन्हें यह तो मालूम ही नहीं, कि सरस्वती १६ वर्ष की हो चुकी है!

हिन्दी में अब बरसाती कीड़ों की तरह से तुच्छ सेवक बहुत हो गये हैं। पाठकों को ऐसे तुच्छों के गुच्छों से ख़बरदार रहना चाहिये।

"हुवे" "हुये" आदि लिपिशैली इस समय घृणित समझी जाती है। पर "टिकेगी" "गयी" "उद्धताई" आदि नहीं!

"ज्ञानशक्ति" का कहना है कि "ब्रम्हचारी" के सम्पादक दो मनुष्य हैं। महात्माजी ने अबकी बार ११ स्नातकों को अपने पीछे उपाधि लगाने की आज्ञा दी है।

अन्त में हमारा एक निवेदन है कि समालोचकसमाज, हमारे इस लेख की समालोचना करता हुवा, इस बात का ध्यान रक्खे कि लेख छोटा है। अतः उसे इसकी पृष्ठ-संख्या न लिखना चाहिये, प्रत्युत इसकी पंक्तिसंख्या या अक्षर-संख्या लिखना चाहिये। यतः लेख का गौरव और ढकी मुसलमानी बनी रहे, अन्यथा हम उसे यदि उन्मत्त कह कर अपने में मिलालें तो वह बुरा न माने। इति

'उन्मत्त'

द्रौपदी-वस्त्र-हरण

(गीतिका)

[१]

जब पांडकों का भाग्य-रवि, देदीप्त हो बढ़ने लगा।
पाकर पराक्रम की प्रभा, उद्योग से चढ़ने लगा॥
बलवीर्य, प्रभुता, मान्यता, संसार में कुल छा गई।
तब कौरवों के चित्त में, उत्थित हुई चिन्ता नई॥

[२]

सबने परस्पर मन्त्रणा कर, पांडवों से मेल कर।
निश्चित किया उनको हराना, द्यूत माया खेलकर॥
मण्डप सजाया, की सभा, सम्भार सब प्रस्तुत हुए।
फिर द्यूतविद्या के विशारद, लोग एकत्रित हुए॥

---

* विरह में जलने की अपेक्षा, आग में जलने से कम तकलीफ़ होती है। यदि ऐसा न होता, तो बहुत सी स्त्रियाँ, अपने मृत-पति की उपासना करने के लिये चिता-रूढ़ न हुवा करतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

कर्ण, शकुनी आदि भारी द्यूतकारी थे वहाँ।
सबको निमन्त्रित था किया, बैठी सभा भारी वहाँ॥
तब पांडवों को भी बुलाया, द्रौपदी के संग में।
सब सम्मिलित होने लगे, उस द्यूत के नवरंग में॥

[४]

छल कौरवों का पांडवों को, ज्ञात था कुछ भी नहीं
क्या दुर्जनों से साधुता, है हो सकी कुछ भी कहीं?
जन दुर्जनों के जाल में, फँसते बड़े मतिमान हैं।
प्रभुता गँवाते शीघ्र ही, पाते बड़ा अपमान हैं॥

[५]

था द्यूतविद्या में निपुण, शकुनी भरा छलछन्द से।
आकर जमाकर मण्डली, बैठा परम आनन्द से॥
दोनों दलों के सभ्य जन, आकर वहां पर थे जमा।
आरम्भ क्रीड़ा का हुआ, उत्साह सब में था रमा॥

[७]

शकुनी विजय पाता रहा, पाशा उसीका आ पड़ा।
थे पांडुसुत ही हारते, दुर्भाग्य का संकट बड़ा॥
जो कुछ धरा था दाँव पर, सब हारते ही हा! गये।
सब पांडवों की सम्पदा, कुरुवंशवाले पा गये॥

[५]

रत्न, हीरक, स्वर्ण, मुक्ता, और सब कुछ हार के।
कोष सारा भूमि वैभव, द्यूतमुख में डार के॥
निज दास-दासी आदि सब, क्षणमात्र में अर्पण किया।
निजभाग्य का विध्वंसकर रिपुपक्ष का तर्पण किया॥

[८]

जब भाग्य ही प्रतिकूल हो तब यत्न सारे व्यर्थ हैं।
पलटा सकें जो भाग्य को, ऐसे न लोग समर्थ हैं॥
जब पांडवों के भाग्य ने, धोखा दिया संसार में।
क्योंकर रमा उनके करों में, हा! विवश होके रमे?

[९]

सर्वस्व अपना खो चुके, सब भाइयों को हार कर।
तब द्रौपदी को रख दिया, उस द्यूत की ही दाँव पर॥
हा! भाग्य की अन्तिम कला, वह द्रौपदी भी जा रही
निज वैरियों के बीच में, पड़कर बड़ी घबरा रही॥

[१०]

कर से पकड़ वेणी, अहो! यह दुष्ट दुश्शासन खड़ा
कर दूसरा कटि वस्त्र पर, है खींचता बाधक बड़ा।
फिर द्रौपदी भी हाथ से, निजवस्त्र को पकड़े हुए
हैं देखते सब सभ्य जन, हा! आसपास खड़े हुए।

[११]

कटि पर धरे निज क्रूर कर, यह दुष्टदुर्योधन खड़ा
हे मित्र देखो चित्र को, निज चित्त को करके कड़ा।
वे सभ्य सारे क्या करें?, देखो नतानन हो रहे
कुरुवंशवाले बीज विपदा का यहाँ पर बो रहे।

[१२]

अह! दिव्य आनन द्रौपदी का, अश्रुधारा धो रही
उसका हृदय है जानता, कितनी विकलता हो रही।
कोई सहायक है नहीं, वह व्यग्र होके रो रही
संकट बड़ा है आज उसको, धीरता भी खो रही।

[१३]

आवेश करुणायुक्त हो, है देखती गुरु-लोक को
इस दुष्ट को अब रोक लो, देखो हमारे शोक को।
हा! द्रौपदी की दुर्दशा का, दुःख किसको था नहीं
पर कौरवों के चित्त में, आनन्द छाया था कहीं।

[१४]

अति दुःख से सन्तप्त हो, सब ओर उसने देखकर
कोई सहायक है नहीं, यह बात मन में लेखकर
जगदीश जगदाधार को, वह द्रौपदी ध्याती हुई
रोने लगी असहाय हो, उनकी शरण जाती हुई।

[१५]

हे हे मुरारे! कैटभारे! श्रीपते! तुम हो कहां
लज्जा हमारी जा रही, तुम शीघ्र ही आवो यहां
तुम बिन हमारी लाज का, बचना प्रभो अब दूर है
यह दुष्ट दुश्शासन हुआ, मेरे लिये अति शूर है।

[१६]

निज-भक्त-दुख को देखके, द्रवता हृदय परमेश का
आता हृदय में ध्यान है, निज सेवकों के क्लेश का।
द्रौपदी का है नहीं कोई सहायक हाय क्यों?
उसका सहायक मैं बनूं होगी भला असहाय क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

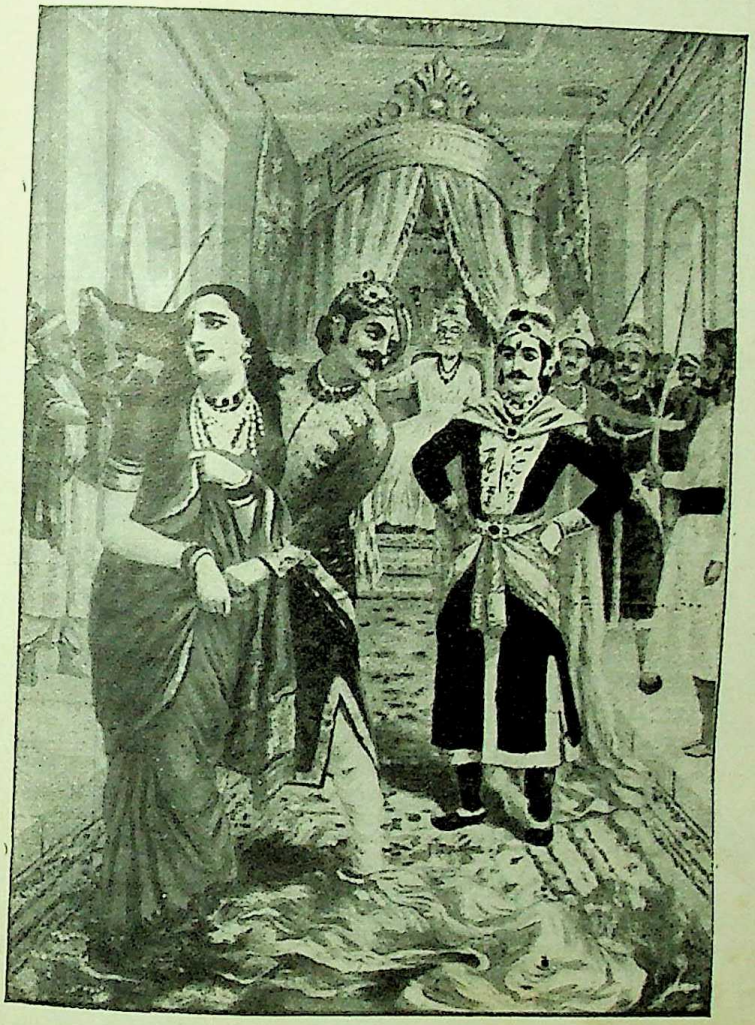

द्रौपदी-वस्त्र-हरण ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७]

ऐसा हृदय में ठान के असहाय दासी जानके।
उसके बढ़ाया चीर को कर्त्तव्य अपना मान के॥
थी युक्ति भारी ईशकी साढ़ी बड़ी बढ़ने लगी।
ज्योंज्यों अधिक खींची गईत्यों त्यों अधिककढ़ने लगी

[१८]

वह दुष्ट दुश्शासन थका पर चीर छूटा ही नहीं।
चीर पर फिर चीर का वह तार टूटा ही नहीं॥
अगणितगजोंकाबलघटा भुजबलशिथिलसबहोगया
लज्जित दुशासन भी हुआ वह दर्प सारा खो गया॥

[१९]

मित्रो! यही इस चित्र में,जो भाव थे लख लीजिये।
घटना-घटा की घोरता को चित्त में रख लीजिए॥
अन्त में जगदीश ही हैं, काम आते मानलो।
भक्त सच्चा चाहिये, विश्वास उसका जान लो।

ग़ज़ल

[१]

कहाँ हो? विश्वके स्वामी! बचावो लाज जाती है।
दुशासन कर रहा नङ्गी, हमें लज्जा जलाती है॥
हमारे शीश से साढ़ी, सरक कर गिर पड़ी भूपर।
खुला जूड़ा खिंची बेणी, न कोई युक्ति भाती है॥

[२]

दुशासन क्रूरकर्मा से, नहीं वश हाय चलता है।
जला जाता हृदय मेरा, बिदरती हाय! छाती है॥
नहीं कोई शरण मेरा, बचाये जो कि अब मुझको।
तुम्हारी एक आशा है, विकल आँसू बहाती है॥

[३]

सभा ने मौन धारा है, नहीं कोई सहारा है।
बँधे सच्ची प्रतिज्ञा में, न वीरों की बसाती है॥
अहा! अब हाथ कटि पर है,खुला जाता वसन मेरा।
कहाँ हो शीघ्रही आवो? तुम्हें दासी बुलाती है॥

[४]

नहीं कोई सहायक है, तुम्हीं हो एक जगदीश्वर!
उबारो नाथ अब मुझको, तुम्हीं को दीन ध्याती है॥
मुरारे! कैटभारे! हे हमारे प्राण के प्यारे!।
विकल है, अश्रुधारा की, तुम्हें माला पिन्हाती है॥

[५]

मृगी सी व्याध-फन्दे में, फँसी हूँ दुष्ट लोगों के।
कहाँ है मृत्यु जो अब तक, नहीं मुझको दबाती है॥
बढ़ाया चीर मोहन ने, घटाया दुःख दासी का।
दया, घनघोर दुःखों में, उसी की काम आती है॥

महेश्वरप्रसाद शास्त्री

पुरुषार्थ

गताङ्क से आगे

(दार्शनिकों की होली)

महाशयगण! चारुवाक्य, चार्वाक के इन वाक्यों के कहते कहते ही आपका मन भी यही साक्षिता देने लगेगा कि जो कुछ कहा सब ठीक ही मालूम होता है। यह भी आप समझ ही लेंगे कि इसी मत का नाम पुरुषार्थ द्वित्ववाद है, जो पुरुषार्थ की संख्या विषय के विकल्पों में से एक है। इधर ज्योंही चार्वाक चुप हुए त्योंही उनकी बातों को सुन कर चौकन्ने हो सर्वदार्शनिक नास्तिकता और आस्तिकता का परस्पर विरोध भूलकर सब एक मति से इस नास्तिक-शिरोमणि की दुर्दशा बनाने के लिए कटिबद्ध हो कर आपके सामने आते दिखाई देंगे। चार्वाक की अनिष्ट बातों को सुनकर, सब के नेत्रों में लाली और मुख में हँसी, तथा मन में अपने अपने तर्क-युक्तियों का भरोसा झलकता होगा। होली का अच्छा आनन्द का समय होगा। अब आप इन सब दार्शनिकों के आनन्द को मनचाहा लूटियेगा। यह अद्भुत प्रहसन मेरी समझ में आपके प्रसन्न करने के लिए होलिका-समय में बहुत ही उपयोगी होगा। इस प्रहसन को पढ़ते हुए आपको तो अकेले क्या चाहे लिखते हुए लेखक को काल न मालूम पड़े!

सब दार्शनिक—(आपस में) भाइयो! यद्यपि हमारा तुम्हारा बहुत से अंशों में विरोध है तथापि सब हिन्दुनामधारी हैं और होली त्योहार सभी हिन्दुओं को मानना चाहिये। यह हमारे वृद्धों ने सालभर में हास्यविनोद का एक मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन बड़े विचार से स्थापित किया है। हिन्दुओं के अतिरिक्त ईसाई, मुसलमानों में भी सालभर में एक दिन ऐसा रक्खा गया है जिसमें चित्त के प्रफुल्लित करने को हास्यविनोद आदि, मित्रमण्डली में बैठ कर, बहुधा पुरुष करते हैं। सो आओ, आज इस चार्वाक की हँसी उड़ावें। यह हम सबसे ही अलग अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाता रहता है। आज इसके पाण्डित्य के गर्व पर धूल डालकर धुलैड़ी उत्सव मनाएँ। या यों कहिये कि आज इस विधर्म्मी के दर्प को तर्करूप प्रज्वलित अग्नि में होम करके धर्म के मार्ग का शोधन करें और साथ ही साथ वाग्विनोद भी। (सामने देखकर) यह चार्वाक कुछ भोले पुरुषों को खड़ा हुआ बहका रहा है। चलो आज इसका काला मुँह करके इसे होली का भड़वा बनावें (सब मिल कर 'रङ्ग है रङ्ग है' कहते हुए पास आकर चार्वाक को घेर कर खड़े हो गये)।

चार्वाक—यह कैसा "रङ्ग है" "रङ्ग है" का रौला है? आप लोग पण्डित होकर आज कैसे उन्मत्त से बने हुए हैं? जो राजमार्गों पर कोलाहल करने से कुछ भी सङ्कोच नहीं करते?

दार्शनिक मण्डल—(हँसकर) सङ्कोच करने में तो आप ही का पाण्डित्य प्रसिद्ध है। हम तो विकास करने वाले हैं। ऐसा ही करने की इच्छा से आये हैं, यदि भाग्यवश कर पाएँ तो।

चार्वाक—(कुढ़कर) कैसी अश्लील बातें करते हो जी! कुछ पण्डिताई का तो ध्यान करो। आपके मुख से ऐसी बातें शोभा नहीं पातीं।

दार्शनिक-मण्डल—(श्लोकबद्ध)

ते नितरामश्लीला भणन्ति ये भाणमेतमश्लीलम्।
अधिकृत्य फाल्गुनकथामश्लीलं भूषणन जानन्ति* ॥ इति

चार्वाक—(कुछ हँसकर) तो क्या आज प्र... ता का ही व्यवहार करना ठान लिया है?

दार्शनिक मण्डल—(श्लोक बद्ध) अत्रहास्य... शैग्राम्यत्वं गुणताङ्गतम्* क्या आपने यह नहीं सु...

चार्वाक—(खूब हँसकर) ठीक ठीक, अ... समझा, जिनके मत में लिङ्ग-परामर्श † भी प्र... माना जाता है, जो व्यभिचार ‡ के विचार... चतुराई समझते हैं, उन्हें क्या होली और क्या दिवाली! उनसे तो लज्जा भी लजाती है। ... है अनुमानवादियो! क्या समस्त जारकर्म ... ही लोगों के बाँट में आ गया है?

मीमांसक—(मुसकराकर) हमारे यह ... व्याप्ति और पक्षधर्मता || दोनों मिलकर अनुमि... उत्पन्न करते हैं। लिङ्गपरामर्शकों में हम नहीं ...

नैयायिक—(कुछ हँसते हुए) हमारे लि... परामर्श का माहात्म्य बड़ा विचित्र है। इससे पु... पाप और ईश्वर आदि इन्द्रियों से दूर पदार्थों ... ज्ञान होता है। आप भी यदि एकबार हमारा लि... परामर्श करें तो नास्तिकता को त्यागकर आस्ति... हो जायँ और आपको ईश्वर का दर्शन हो।

जैन—(खिलखिला कर आपस में) वाह! वाह... क्या मीठी हँसी है। (चार्वाक के प्रति) कुछ विच... कर तो बोले होते!। यदि अनुमानवादी, व्यभिच... को विधिपूर्वक विचार के व्यभिचाररहित हेतुओं ... परलोक, पुण्य, पाप, आदि पदार्थों का प्रतिपाद... न करते, तो तुम जैसे व्यभिचारकर्ता, संसार की मर्यादाओं को भ्रष्ट करने में पूर्ण कृतकृत्य ... बैठते! हमारे व्यभिचारविचार का ही यह फल ...

* वे लोग स्वयं अतिनिर्लज्ज हैं जो इस बात को निर्लज्ज कहते हैं। फाल्गुन होली-समय पर निर्लज्जता भूषण है, जो इतना भी नहीं जानते। इति श्लोकार्थः।

* यहाँ हास्यरस में गवांरपन गुण है, दोष नहीं इति पदार्थः।

† लिङ्गपरामर्श, व्याप्तिविशिष्ट हेतु के पक्ष में ... के ज्ञान को कहते हैं।

‡ व्यभिचार, साध्य के अभाव स्थल में हेतु के ... को कहते हैं।

|| पक्ष में हेतु के रहने को पक्षधर्मता कहते हैं। ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो परलोक में दुःखदाता पापकर्म समझकर अनन्त लोग व्यभिचार को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। प्रत्यक्षवादी के मत में तो कन्या और भगिनी से भी व्यभिचार करना पाप नहीं। छीः छीः ऐसा मत !!

वैशेषिक—(ताली बजाकर चार्वाक से) मित्र चार्वाक ! क्या तुम अनुमान को प्रमाण नहीं मानते ! नहीं मानते तो क्यों ? यदि विना ही किसी हेतु के अनुमान प्रमाण नहीं-ऐसी आपकी प्रतिज्ञा है, तो निर्हेतुक प्रतिज्ञा पर कोई विश्वास नहीं करता ! यदि हम कहें कि तुम सात जन्म से हमारे दास हो तो क्या तुम इस प्रतिज्ञा को विना किसी हेतु के सत्य मान लोगे ? और हमारे दास हो जाओगे ? यदि कहो कि हेतुरहित प्रतिज्ञा प्रमाण नहीं, तो तुमको भी "अनुमान प्रमाण नहीं" इस प्रतिज्ञा में कोई हेतु देना चाहिए । जब तुम प्रतिज्ञा को हेतु से सिद्ध करने लगोगे तबही तुमने अनुमान को प्रमाण मान लिया समझो। क्योंकि हेतु से प्रतिज्ञा की सिद्धि को ही अनुमिति कहते हैं। तब तो तुम्हारा यह कथन कि अनुमान प्रमाण नहीं "मम मुखे जिह्वा नास्ति" * की समान व्याघात दोष से दुष्ट हुआ।

बौद्ध—(ऊँचे स्वर से हंस कर, चार्वाक के प्रति) महापण्डित ! तुम जो कहते हो कि व्याप्ति प्रत्यक्ष सिद्ध न होने से अनुमिति निर्मूल है, ऐसा कहना भूल है और केवल बुद्धि की स्थूलता का सूचक है। अथवा यह देह की स्थूलता देख कर बुद्धि की स्थूलता का भी अनुमान सहजसिद्ध है। जब स्वेच्छासिद्ध उपायों से धन कमा कर स्वेच्छा-भोगों से और परलोक के साधनों के क्लेश न सहने से यह देह चारों दिशा और भूमि, आकाश के मध्य को निरवकाश कर रहा है तो अवश्य उसके साथ बुद्धि की स्थूलता भी वैसे ही सम्भव है। यदि इस स्थूल बुद्धि में कहीं कुछ सूक्ष्म स्थान विचार को दो, तो हम व्याप्ति ज्ञान के प्रत्यक्ष उपाय सहित अनुमिति को सिद्ध करते हैं। सुनिए, अभियुक्तों की कारिका के तीन पाद।

"कार्यकारणभावाद् वा स्वभावाद्वा नियामकात्। अविनाभावनियमः इति"

इसका सारांश यह है कि कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध और स्वभाव इन दो नियामकों से व्याप्ति ज्ञान सहज है। जैसे धूम-अग्नि का कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध है इस कारण कार्य धूम कारण अग्नि के विना हो नहीं सकता, तब धूम स्थल में अग्नि का होना अति आवश्यक हुआ। इस रीति से कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध से व्याप्ति-ज्ञान होना सम्भव है। और व्याप्ति से अनुमिति होना युक्त है। यदि कोई कहे कि धूम अग्नि के परस्पर कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध में ही क्या प्रमाण है ? तो उत्तर यह है कि प्रत्यक्ष ही से धूम अग्नि का कार्यकारणभाव जाना जाता है। जैसे कि "कार्य धूम का उत्पत्ति से पूर्व दर्शन न होना, और कारण अग्नि के दर्शन होने पर ही दर्शन होना, तथा फिर कारण अग्नि के दर्शन न होने पर दर्शन न होना" यह पाँच दर्शन और अदर्शनों की परम्परा धूम अग्नि का कार्यकारणभाव सम्बन्ध द्योतन करती है। क्योंकि "कार्य का उत्पत्ति से पूर्व अदर्शन और कारण के दर्शन होने पर ही दर्शन और फिर कारण का अदर्शन होने पर अदर्शन" इसी पाँच प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष की परम्परा से सर्वत्र कार्यकारण-भाव सम्बन्ध निश्चित किया जाता है। जैसे कसौटी से सुवर्ण। (सोच कर) यहाँ पर यदि तुमको फिर भी कुछ शङ्का रह जाय तो उसे हम व्याघात से दूर कर सकते हैं । क्योंकि शङ्का की अवधि व्याघातपर्यन्त ही है, आगे शङ्का को अवकाश नहीं है। वह व्याघात इसी रीति से समझिये, कि यदि धूम अग्नि का कार्य न होता तो धूम की आवश्यकता वाले धूम बनाने को अग्नि-ग्रहण न करते। और देखने में आता है कि मच्छर आदि के निवारण को जिनको धूम की आवश्यकता है वह अग्नि ग्रहण करके उचित रीति से धूम उत्पन्न करते हैं

* मेरे मुख में जिह्वा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। जैसे घड़े की आवश्यकता वाले कुम्हार, घड़े के कारण चक्र, दण्ड आदि को लेकर ही घड़े बनाते हैं और घड़े के अकारण दधि, दुग्ध आदि, घड़े बनाने को नहीं ग्रहण करते, ऐसे ही धूम की आवश्यकता वाले धूम बनाने को अग्नि ही ग्रहण करते हैं। जल आदि नहीं ग्रहण करते। इससे जान पड़ता है कि जैसे चक्र, दण्ड आदि घड़े के कारण हैं ऐसे ही अग्नि धूम का कारण है। और जैसे घड़ा, दण्ड, चक्र आदि का कार्य है, ऐसे ही धूम अग्नि का कार्य है, तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष के पञ्चक निश्चित और व्याघात से निःशङ्क, धूम-अग्नि का कार्यकारणभाव प्रथम व्याप्ति का नियामक है।

अब दूसरा व्याप्ति-ज्ञान का नियामक सुनिए। उसका नाम स्वभाव है। भिन्न होने पर भी भिन्न न रहने को यहाँ पर स्वभाव कहा है। उदाहरण "यह वृक्ष आम है" यहाँ पर वृक्ष और आम एक दूसरे से भिन्न हैं। आमपन वृक्ष से भिन्न पाषाण आदि में नहीं रहता। किन्तु वृक्षों में से ही एक का नाम आम है। इस प्रतीति से सिद्ध वृक्ष और आम का स्वभाव आम में वृक्ष की व्याप्ति ग्रहण कराता है। जैसे जो आम होगा वह वृक्ष अवश्य होगा। यदि इस व्याप्ति में किसी को व्यभिचार (आम होने पर भी वृक्ष न होना) की शङ्का हो तो उसके विरुद्ध पक्ष में बाधक अनुकूल तर्क से दूर कर लेना चाहिए। वह तर्क यह है कि यदि आम वृक्ष न हो तो आम ही न हो, क्योंकि विशेष सामान्य से रहित हो तो वह स्वयं ही न हो और वृक्ष सामान्य का आम, एक विशेष है। इस प्रकार स्वभावव्याप्ति का दूसरा नियामक है। इन दोनों नियामकों से व्याप्तिज्ञान और व्याप्ति से अनुमिति होना निर्बाध है, यही व्याप्ति-ज्ञान अनुमिति का करण होने से अनुमान कहाता है। यह अनुमान प्रत्यक्ष से अतिरिक्त दूसरा प्रमाण है। इसी से शरीर से भिन्न, आत्मा, पुण्य, पाप और परलोक आदि अतीन्द्रिय वस्तु का ज्ञान होता है। उस ज्ञान को अनुमिति कहते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमिति यथार्थ ज्ञान हैं। "यह घड़ा है" इत्यादि ज्ञान प्रत्यक्ष है और धूम को देखकर पर्वत आदि में अप्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान अनुमिति कहा जाता है। एवं अर्थ मानसिद्ध धर्म और मोक्ष तथा प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थ और काम से, अतिरिक्त पुरुषार्थ है। इस प्रकार अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष, यह चार* पुरुषार्थ हैं।

सर्वदार्शनिक—(बौद्धवैशेषिकों के प्रति) तुम वृथा कल्लर में बीज बो रहे हो? कहाँ इन चार्वाक महाराज की स्थूल देहाकार बुद्धि? और कहाँ सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म प्रमाणशास्त्र के विचार। इनकी बुद्धि सुकुमार होने के कारण अर्थ, काम प्रधान काव्य, नाटक आदि में ही प्रागल्भ सही पर तर्क-कर्कश-बुद्धियों के जानने योग्य, प्रमाण शास्त्र में कुण्ठित है और बिना प्रमाणशास्त्र के परिश्रम किए, धर्म, मोक्ष का सूक्ष्म स्वरूप मालूम नहीं हो सकता। हाँ, हम सब लोग आपके उत्तम विचारों पर निशङ्क, सहर्ष, अनुमतिसूचक "आम्" शब्द उच्चारण करते हैं।

चार्वाक—(चिड़कर परन्तु ऊपर से कुछ हँसते हुए) तो क्या आज आप सब लोगों ने मिलकर मेरा पीछा लेना ही निश्चित कर लिया है? तो परस्पर विरुद्ध भी सब एकमत होकर गीदड़ कुत्तों की तरह से टूटे हो।

सब दार्शनिक—(खूब खिलखिलाकर हँसते हुए, कानों पर हाथ रखकर) "शान्तंपापम्। शान्तं पापम्"। हममें से कौन अभागी, आपका पीछा लिया चाहता है। ज़रा उसका नाम तो बताइये। क्षमा करना, यह पशुधर्म से भी गर्हित कर्म तो ही लोग कर सकते हैं, जो धर्म को कुछ न मान

* चार्वाक के अतिरिक्त, सब वादियों के मत चार ही पुरुषार्थ हैं। यह पुरुषार्थ संख्या का विकल्प है। परन्तु इन ही में से कुछ, किसी सूक्ष्म से, एक पुरुषार्थ और तीन पुरुषार्थ के पक्ष में भी है यह बात आगे स्पष्ट होगी। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हों, जैसे आप और आपके दर्शन-अनुयायी । (यह सुनकर सब समीप के लोग भी भाड़ में अजुवार की खील की समान खिल पड़ेंगे । होंट छीदे होने पर उनके मुख में दाँत खिले बिनोले के डोढ़े में कपास के टींट की समान चमकने लगेंगे)

चार्वाक—(क्रुद्ध होकर) ऐसी वक्रोक्तियों को मैं खूब समझता हूँ । आप तो आप में से कोई मेरे आगे, जो अनुमान से भी अतीन्द्रिय पदार्थों को सिद्ध कर सकने को समर्थ हो ! देखें, किस को तार्किकता का घमण्ड है ?

साङ्ख्य—(उत्तर देने को सन्नद्ध बौद्ध वैशेषिक जैन नैयायिकों को रोककर) आप बहुत कुछ परिश्रम कर चुके हैं । अब इस वाचाल से कुछ मुझे मग़ज़पच्ची करने दीजिए । (चार्वाक से) अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि के निमित्त ही तो अनुमान प्रमाण माना जाता है । जो इन्द्रियों के विषय पदार्थ हैं वे तो प्रत्यक्ष से ही जाने जा सकते थे, फिर अनुमान यदि अतीन्द्रिय पदार्थों को सिद्ध न करे तो उसका मानना ही व्यर्थ पड़ेगा । जैसा कि ईश्वर ने कृष्ण की कारिका में कहा है—

"सामान्यतस्तुदृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्" इति

अर्थ—अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान सामान्य तो दृष्ट नाम के अनुमान से होता है ।*

योगी—(धीरता से समझा कर, चार्वाक से) भाई ! देखो ! भूमि अङ्कुरादि पदार्थ, अवयववाले होने से कार्य हैं, घटादि की सदृश और कार्य होने से कर्तावाले हैं, पटादि की सदृश, ऐसे जीवों से रचने के अयोग्य और अपूर्व वस्तुओं की रचना में निपुण सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् हम जैसे अल्पज्ञ, अल्पशक्ति पुरुषों से भिन्न, ईश्वर कोई अतीन्द्रिय पदार्थ अनुमानसिद्ध है । और जड़ भौतिक देहों की प्रवृत्ति रथादि की प्रवृत्ति समान अपने से भिन्न किसी चेतन के हेतु से होती है । इससे शरीर से चेतन जीव भिन्न है और एक अनेक आदि विलक्षण विशेषणयुक्त होने से जीव ईश्वर भी परस्पर भिन्न हैं । यह नैयायिक वैशेषिकों का कथन हमको भी माननीय है और तुमको भी दुराग्रह त्याग कर मानना चाहिए । देखो, हमारे आचार्य का सूत्र—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः इति ।

चार्वाक—(घुड़घुड़ा कर) तो शरीर से भिन्न जीव और ईश्वर में जैसे अनुमान दिए ऐसे पुण्य पाप में भी तो कोई अनुमान दिखाओ ?

मीमांसक—(मुसकरा कर) यदि प्रत्येक पदार्थ की सिद्धि में भिन्न भिन्न अनुमान दिए जावें तो बहुत काल चाहिए । आप पराजय मान कर, शिष्य बुद्धि से पुस्तक, प्रसाद आगे रख कर पढ़ना चाहें तो यह भी सब सम्भव है । जो विषय लम्पटता को त्यागकर विरक्त बन, धर्म बुद्धि से शास्त्र अध्ययन करते हैं और पूर्ण गुरु-भक्त होते हैं उनको अतीन्द्रिय पदार्थों का ठीक ज्ञान होता है न कि आपसे लम्पटों को । जैसा कि श्रुति कहती है—

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः*" इति ।

यद्यपि "न चान्यायेन पृच्छतः" इस स्मृति ने विधि रहित पूछनेवाले को उपदेश देना निषेध किया है । तथापि हम प्रतिवादी रूप से इसका उत्तर दिए बिना न रहेंगे । अन्यथा तुम वाम-बुद्धि यही समझ लोगे कि यह उत्तर न दे सकने पर बनावटी बातें ही मारते हैं । ध्यान देकर पुण्य, पाप का सप्रमाण निरूपण सुनो । जैसे राजसेवा से अच्छे धन, मान की प्राप्ति और हिंसा, चोरी से वध बन्धन की प्राप्ति प्रत्यक्ष देखी गई है, ऐसे ही जितने शुभ, अशुभ भोग हैं वे सब बुरे भले कर्मों का फल हैं । यह अटल नियम है । इसी नियमानुसार उत्पन्न होते ही बालकों को जो शुभ, अशुभ

* कई प्रकार के अनुमानों में से सांख्यशास्त्र में एक प्रकार के अनुमान का नाम है ।

*ईश्वर और गुरु में जिसकी समान भक्ति है उस महात्मा को अतीन्द्रिय वस्तु का ज्ञान होता है । इति अर्थः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग दुग्धपान, उदर-पीड़ा आदि होते हैं, वे भी किसी कर्म का फल कहने होंगे। वे कर्म, भोगकाल से पूर्व होने आवश्यक हैं। इसलिये तुम्हें पूर्व जन्म मानना पड़ेगा। क्योंकि इस जन्म में तो उस बालक ने अब तक कोई शुभ, अशुभ कर्म किया ही नहीं जिस कर्म का फल उस भोग को मानें जो जन्म से प्रारम्भ हो गया है। पूर्व जन्म में किए कृषि आदि लौकिक कर्म्मों का फल तो वर्तमान जन्म की समान उसी देह में हो लिया है, यह बात निर्विवाद है। तब आपको ऐसा मानना पड़ेगा कि पूर्व जन्म में कृषि आदि से विलक्षण जन्मान्तर में फलदाता कोई अलौकिक कर्म, इस जीव के अवश्य थे और निषिद्ध लौकिक कर्म भी फल दे चुकनेवालों से शेष अवश्य थे,। जिनका यह फल जन्म से आरम्भ हो गया। इसी रीति से इस जन्म के लौकिक कृषि आदि कर्म्मों का फल तो यहाँ मिल ही लेगा। रहे फल दे चुकनेवालों से शेष निषिद्ध और विहित कर्म, उनका फल यहाँ (इस जन्म में) हुआ नहीं और कर्म फल दिए बिना नष्ट होता नहीं। इसलिये उन कर्म्मों के फल भोगने को आगे भी अवश्य जन्म लेना होगा और इस जन्म के कर्म्मानुसार वहाँ भी जन्मते ही फल होना प्रारम्भ हो जायगा। इस प्रकार जन्म-परम्परा और कर्म-परंपरा, अनादिसिद्ध हुई और यही जन्म-परम्परा अनादि संसार कहाती है। और कर्म-परम्परा उसका अनादि बीज है। उत्पन्न हो कर तीसरे क्षण में स्वयं नाशवान् कर्म कैसे जन्मान्तर में फल दे सकता है? इसका उत्तर यह है कि कर्म अपने नाशकाल से पूर्व क्षण में एक अपूर्व उत्पन्न कर जाते हैं। वह अपूर्व पुण्य पाप भेद से दो प्रकार का है। शुभ कर्मों से पुण्य और अशुभों से पाप उत्पन्न होता है। वे पुण्य पाप दोनों उसी आत्मा में रहते हैं जिसने वह कर्म किया है और फल बिना दिए अनेक जन्मों तक भी नष्ट नहीं होते। यही पुण्य पाप प्रत्येक जीवके भिन्न भिन्न हैं। इस कारण ही संसार विचित्र है।

चार्वाक—(उछल कर) संसार की विचित्रता तो स्वभाव* सिद्ध है जैसे अग्नि की उष्णता और जल की शीतलता। अदृष्ट इसका हेतु नहीं हो सकता।

मीमांसक—(हँस कर) जहाँ कोई और गति न हो सके वहाँ पर संसार की विचित्रता हम स्वभावसिद्ध मानते हैं। परन्तु जीवों के फल भोग की विचित्रता में अदृष्ट (पुण्य-पाप) हेतु हो सकता है। इस कारण उसको स्वभावसिद्ध मानना ठीक नहीं। अतः जीवों के विचित्र फल भोग से विचित्र अदृष्ट (पुण्य-पाप) अनुमान से जाने जाते हैं। यह हमने सर्वसम्मति से पुण्य-पाप के होने में अनुमान प्रमाण दिया है। वेद-सम्मत धर्म का विशेष स्वरूप और धर्म साधारण को छोड़ कर वैदिक धर्म मात्र पर जो तुम्हारे आक्षेप हैं उनको हम अपने मतनिरूपण के समय खण्डन करेंगे। क्योंकि यहाँ तक तो हम वैदिक अवैदिक सब एक हैं। आगे की बात यहाँ छोड़ बैठने में हमें आपसे विरोध की शङ्का है।

चार्वाक—(संकुचित हो कर) यदि ये पाप पुण्य हैं तो सिंहों के सामने गीदड़ों की तरह दुबके क्यों रहे हो? मनुष्यों के प्रत्यक्ष क्यों नहीं हो जाते।

मीमांसक—(नाक भौं सकोड़ कर) भाई तो तुम जैसा बुद्धि-शत्रु ढूँढ़ने पर भी मिलना दुर्लभ है। देखो, जो वस्तु एक प्रमाण का विषय है वह दूसरे प्रमाण का विषय न भी हो तो कुछ थोड़ी बुद्धि रखनेवाले भी उस एक प्रमाण ही विश्वास पर उसको मान लेते हैं, जैसे नासिका गन्ध-ज्ञान होने पर भी अन्य इन्द्रियों से गन्ध ज्ञान न होने पर भी कोई बुद्धिमान् गन्ध के होने में सन्देह नहीं करता। जैसे एक नासिका से जाना गया गन्ध, नेत्रादि अन्य इन्द्रियों से नहीं जाना जाता तो उसका संसार में अभाव नहीं हो जाता। ऐसे ही एक प्रमाण अनुमान से जाने गए पुण्य

* प्रति वस्तु के नियत धर्म को स्वभाव कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप यदि अन्य प्रमाण प्रत्यक्ष से न भी जाने जावें तो भी उनका अभाव नहीं हो सकता । ज़रा इतना तो बुद्धि को ज़ोर दो कि यदि पुण्य पाप प्रत्यक्ष से दीखने योग्य वस्तु होती तो हम अनुमान में इतना परिश्रम क्यों उठाते ? यदि हाथी नेत्रों से देख लिया जाय तो फिर उसका चिंघाड़ से अनुमान करने का कष्ट उठाना कौन चतुराई है ? अनुमान जैसे दूसरा प्रमाण है यह सब बौद्ध वैशेषिक दिखला ही चुके हैं । फिर से हमारा कहना वृथा है ।

चार्वाक—(खिलखिलाकर गर्व से) वाह रे मीमांसक पण्डित ! और धन्यवाद तुम्हारे पाण्डित्य को । यह सब बातें तो तभी ठीक हो सकती हैं जब प्रथम देह से भिन्न, नित्य, देहान्तर में जानेवाला, पुण्य, पाप का आश्रय आत्मा सिद्ध हो जाय । उसके बिना सिद्ध हुए तुम्हारा यह सब वाणीआडम्बर शरद मेघ के गर्जन की समान वृथा है । इस विषय में नैयायिक, वैशेषिक और योगी की कुछ कुनकुन मैं सुन भी चुका हूँ । परन्तु इतने मात्र से मेरी कुछ तुष्टि नहीं हुई । जब तक आमना सामना करके मैं शङ्का-समाधान न करलूँ तब तक मुझे सन्तोष न होगा । पर हाँ, तुम्हें खीर, पूरी, हलुआ, मोदक और दक्षिणा तो मूर्ख मनुष्यों से तभी लब्ध हो सकती है जब ऐसी लम्बी-चौड़ी और विना शिर पैर की गप्पें हांकी, क्योंकि आजकल "पण्डित वही जो गाल बजावा" की कहावत लोक में चरितार्थ हो रही है ।

वेदान्ती—(यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता से) यह भार मैंने अपने शिर ले लिया है । आत्मविषय में जो कुछ पूछना हो मुझसे पूछिए ? ।

चार्वाक—(अकड़ते हुए) आइये ! लगते हाथों आपके भी दाने देख लेवें । "चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः" इस बृहस्पति के सूत्र-अनुसार हम चैतन्य को देह-धर्म और चैतन्यविशिष्ट देह को आत्मा कहते हैं । और "मैं स्थूल हूँ, मैं गौर हूँ" इत्यादि प्रत्यक्ष 'मैं' शब्द का अर्थ आत्मा, स्थूलता और गौरता आदि धर्मोंवाला जान पड़ता है । यह सब धर्म देह में प्रत्यक्ष हैं । इसलिये देह के आत्मा होने में प्रत्यक्ष प्रमाण है । उसका जन्म और नाश भी प्रत्यक्ष सिद्ध है । तब पुण्य, पाप का आश्रय, नित्य, देहान्तरगामी आत्मा, देह से भिन्न बतलाना, आपका निरा सफ़ेद झूँठ है । कहीं इस वावदूकता का भी ठिकाना है ? । इसलिये खान, पान के सुख को स्वर्ग जैसे नरक भी रोगादिजन्य दुःख को ही कहते हैं । जिन स्वर्ग, नरक की रुचि और भीति दिलाकर तुम से दम्भी जगत् में ठगाई फैलाकर सज्जनों का धन हरने में दिन के चोर की समानता कर रहे हैं ।

वेदान्ती—(अत्यन्त अवज्ञापूर्वक हँसकर) अरे ! क्या बकरे जैसी "में में" लगाई है । आँख खोलो ! आज सिंह से काम पड़ा है । क्या तुमने यह नहीं सुना !

तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी* ॥

मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों पर प्रहार करनेवाले केसरी के सम्मुख जो क्षणमात्र भी बकरा "में में" कर सकै यह दीन जानकर उसी की कृपादृष्टि का फल है । आओ ! यदि शब्द सुनकर जीवित रह सके, तो आज तुम्हारेही साथ खेलेंगे । (गर्जकर) बौद्ध वैशेषिकों ने युक्तिपूर्वक, अनुमान प्रमाण की स्थापना की है । और नैयायिक, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, सांख्य, मीमांसक और योगी ने उसके आलम्बन से, देह से भिन्न जीव सिद्ध किया है । और उन्हीं में से जैन बौद्धों को छोड़कर अन्यों ने उसी अनुमान के बल से जीवों से भिन्न, ईश्वर सिद्ध कर दिखाया है । ईश्वरविषय में मीमांसकों के एकदेशी गुरुमतानुयायी और साँख्य भी जैनबौद्धों के समान कान पर हाथ धर गए हैं ।

---

* वन में गीदड़ों की समान अन्य शास्त्र तभी तक गर्जते हैं जब तक वेदान्त-सिंह नहीं गर्जता । इति मनोरमार्थः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसकों ने अनुमान के सहारे से पुण्य, पाप का होना स्थिर किया है। सांख्य, प्रकृति पुरुष का विवेक करता हुआ अनुमान ही को आगे किए हुए है। जैन, बौद्धों ने भी अनुमान ही के भरोसे पर बहुत से धर्म्माभास निरूपण किए हैं। हम भी सर्वांश में नहीं तो बहुत से अंशों में इनसे सहमत हैं। हम भी वैशेषिक तथा बौद्धों से कहीं बढ़ी चढ़ी युक्तियों से तुमको अनुमान का प्रामाण्य सिद्ध करके दिखला सकते हैं। और अनुमान से, देह से भिन्न पुण्य, पाप का आश्रय परलोकगामी नित्य,आत्मा सिद्ध कर सकते हैं। परन्तु तुम जैसे दुर्बलों के पराजय को इतना बड़ा प्रयास करना सिरस के पुष्प को काटने के लिये खड्ग ग्रहण करना है। अतः आज तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष ही को प्रधान रूप से प्रमाणकोटि में रखकर स्वपक्ष मण्डन और तुम्हारा मत-खण्डन करते हैं। सुनो! "मैं हूँ" यह ज्ञान सभी को है। अतः "मैं" पद का अर्थ आत्मा, सभी को प्रत्यक्ष है। आत्मा के होने में "मैं हूँ या नहीं" ऐसा सन्देह किसीको उदय नहीं होता। और "मैं नहीं हूँ" ऐसा भ्रम भी किसी को नहीं देखा गया। अतः आत्मा का होना, निःसन्देह और भ्रमरहित है।

सर्वज्ञानं धर्म्मिणि अभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्य्ययः *

इस न्याय के अनुसार विवाद, केवल इस बात का है कि उस आत्मा का स्वरूप क्या है? इस विषय में तुम बौद्ध, जैन, वैशेषिक, नैयायिक, साँख्य, योग, मीमांसक, और हम सब भिन्न मार्गों पर चलपड़े हैं। किसी एक दो की एकता होने पर भी सबों की एकता इस विषय में अत्यन्त दुर्लभ देखी गई है। जिसमें सबसे पूर्व और स्थूल पक्ष तुम्हारा है,जो स्थूल शरीर को ही आत्मा माने बैठे हो। इस विषय में "मैं स्थूल हूँ" "मैं गौर हूँ" इत्यादि प्रत्यक्ष जो तुमने प्रमाण दिए हैं वे "मेरा शरीर है" "मेरे शरीर में ज्वर है" इत्यादि प्रत्यक्षों के विरुद्ध होने से भ्रम है। अतः प्र नहीं हो सकते। "मेरा शरीर है" इत्यादि प्र बोधक शब्द प्रयोग-रूप व्यवहार में "मैं" श आगे षष्ठी और शरीरके आगे प्रथमाविभक्ति आ और शरीर का सम्बन्ध द्योतन करती है। सा दो पदार्थों में रहनेवाली वस्तु है। इससे स्प कि "मैं" पद का अर्थ आत्मा देह से कोई भि वस्तु है जिसका यह शरीर सम्बन्धी है "पर पदेशाच्च" यह कपिलसूत्र भी इस विषय में ह पूर्णरूप से सहमत है।

चार्वाक—(बड़े घमण्ड से अकड़ते हुए) गौर हूँ "मैं स्थूल हूँ" यह देह, आत्मा का बोधक ज्ञान यथार्थ है। और मेरा शरीर है इत्य भेदबोधक ज्ञान और व्यवहार भ्रम है। प ही क्यों न मान लिया जाय। एक होने पर भी व्यवहार लक्षण, या भ्रम से देखा जाता है "राहु का शिर" यहाँ पर शिर और राहु* एक पर भी भ्रम या लक्षणा से भेदव्यवहार देखा है। ऐसेही "मेरा शरीर है" इत्यादि ज्ञानों से आत्मा की एकता निश्चित होने पर भी भ्र लाक्षणिक हो सकता है।

वेदान्ती—(हँसकर) नहीं, नहीं, यह आ बड़ी भूल है। सारी बुद्धि तो आपने अनर्थ से सञ्चय और भोगलम्पटता में खो दी, अब गम्भीर बातें समझने को कहीं से उधारी ही आओ। खैर,सुनिए। यदि शरीर ही आत्मा हो बालकपन की देखी वस्तु बुढ़ापे में याद न करती क्योंकि अत्यन्त विलक्षण होने से बाल और वृद्धता के शरीर, गौ, अश्व के शरीरों समान भिन्न हैं। तुम्हारे मत में वही आत्मा तब बाल्य अवस्था का शरीर रूप आत्मा अब हो गया। बुढ़ापे के आत्मा ने, जो अभी उ

* सब ज्ञान धर्मी में यथार्थ होते हैं। परन्तु धर्म में भ्रम भी होते हैं। अर्थात् भ्रम धर्म में होता है धर्म्मी में नहीं।

* राहु ग्रह केतु का शिर मात्र है। यह ज्योतिष और पुराण-इतिहासों में प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है, बालपन की वस्तु देखी नहीं, दूसरे के देखे को दूसरा याद नहीं कर सकता। यह एक दोष हुआ। अब दूसरा लीजिये। स्वप्न में शरीर का भान नहीं होता और आत्मा का भान वहाँ भी होता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। इससे आत्मा का भेद शरीर से स्पष्ट है। क्योंकि यदि देह ही आत्मा हो तो स्वप्न में देह का भान न होने पर आत्मा का भी भान न होना चाहिये था। तीसरे जागते समय का शरीर स्वप्न के शरीर से और स्वप्न का शरीर जाग्रत के शरीर से भिन्न देखा जाता है। क्योंकि कितने ही दरिद्र अपने को स्वप्न में राजा देखते हैं और रूपहीन तथा विकल अंग दिव्य रूप और सकलअंग हो जाते हैं और जागने पर फिर जैसे के तैसे होकर खेद प्रकट करते हैं। कभी कभी मनुष्य, स्वप्न में सिंह, वराह आदि पशुपक्षी शरीर में अपने को देखता है। परन्तु आत्मा को देहों को भिन्न देखता हुआ भी भिन्न नहीं देखता क्योंकि प्रत्येक पुरुष का ऐसा अनुभव है कि जो मैं कल दिन में जागता था वह मैं रात्रि में सोकर स्वप्न में सिंह बनकर विन्ध्याचल के शिखर पर फिर कर आज फिर जागकर फिर प्रातःकाल मनुष्य का मनुष्य हूँ, और उसको बड़ा आश्चर्य होता है। यदि शरीर आत्मा होता तो जाग्रत और स्वप्न में देह-भेद के साथ आत्म भेद भी होना था और स्वप्न की स्मृति न होनी चाहिये थी। इस लिये जो दो भिन्न पदार्थों में रहनेवाला हो और स्वयं भिन्न न हो, वह उन भिन्नों से भिन्न होता है जैसे भिन्न भिन्न दानों में रहनेवाला, और स्वयं भिन्न न होने वाला, माला का सूत्र (धागा) उन भिन्न भिन्न दानों से भिन्न है। एवं जाग्रत और स्वप्न के भिन्न भिन्न देहों में रह कर स्वयं अभिन्न आत्मा उन भिन्न भिन्न देहों से भिन्न है। इन पुष्ट प्रमाणों से जब देह और आत्मा भिन्न सिद्ध हुए तो "मेरा शरीर है," यह भेदबोधक प्रत्यक्ष व्यवहार निर्बाध होने से भ्रम नहीं हो सकता। प्रत्युत इन पुष्ट प्रमाणों से विरुद्ध और पूर्वोक्त दोषों से दुष्ट, एकत्वबोधक "मैं स्थूल हूँ" यह प्रत्यक्ष ही भ्रम है। जैसे जाग्रत देह को त्याग कर वह आत्मा स्वप्न शरीर में चला जाता है और स्वप्नशरीर से जाग्रत शरीर में चला आता है, और नाश आदि विकारों को नहीं प्राप्त होता ऐसे ही इस देह को त्याग कर दूसरे देह में चला जाता है, और नाश से दूर रहता है। इस लिये वह नित्य सिद्ध हुआ।

इस आत्मा के पूर्व शरीर-त्याग को ही मरण कहते हैं और नवीन शरीर-ग्रहण को जन्म कहते हैं। इस रीति से आत्मा, देहान्तरगामी और लोकान्तरगामी सिद्ध हुआ। यही आत्मा मीमांसक के सिद्ध किए पुण्य, पापों का आश्रय है। उस ही की चेतनता से यह शरीर सजीव दशा में जड़ होने पर भी चेतन जान पड़ता है। उसीके त्यागने पर जड़ का जड़ रह जाता है।

चार्वाक—(विस्मय में होकर उदासी से नीचा मुख किए) आप कहते हैं कि शरीर से भिन्न आत्मा की चेतनता से यह शरीर चेतन सा जान पड़ता है तो यह तो कहिए कि देहाकार भूतों का धर्म चैतन्य और उससे युक्त देह आत्मा है! जैसा कि आचार्य का सूत्र है कि "चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः" इस सिद्धान्त में क्या हानि है? और उलटा देह से पृथक् आत्मा मानने के गौरव का बचाव है और चार पुरुषार्थों के गौरव से बच कर दो पुरुषार्थ मानने में बड़ा लाघव और लाभ है।

वेदान्ती—(हँस कर) भाई! तुम तो बड़े ही कूढ़मग़ज़ हो, जो वस्तु प्रमाणसिद्ध है उसके मानने में गौरव-दोष नहीं होता और न उसको न मानना लाघव गुण होता है और उलटा न्यूनता दोष है। यदि हम प्रत्यक्षसिद्ध तुमको मिटा कर भू-भार का लाघव करने लगें तो क्या तुमको अङ्गीकार होगा? और तुम वृथा जन्म लेकर भूमि-भार का गौरव कर रहे हो, क्या यह प्रमाणसिद्ध गौरव तुम्हें अङ्गीकार नहीं है? इस कारण वस्तु सिद्धि में प्रमाण अपेक्षित है। गौरव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाघव नहीं देखा जाता। हाँ प्रमाणसिद्ध लाघव और निष्प्रमाण गौरव हम भी ग्राह्य और त्याज्य मानते हैं। रही तुम्हारे सूत्रसिद्ध देहात्मवाद की बात, उसको हम बहुत सी रीतियों से खण्डन कर चुके हैं। और कुछ युक्तियाँ तुम्हारे मत में हों तो उनको लाइये उनका भी तियापांचा करें।

चार्वाक—(बड़े गर्व से ऐंठते हुए) सुनिए! जो जिसके होने पर होता है और न होने पर नहीं होता, वह उसका धर्म माना जाता है जैसे अग्नि की उष्णता और जल की शीतलता, अग्नि, जल के होने पर होती है और न होने पर नहीं होती तो वे दोनों उन दोनों का धर्म है। ऐसे ही शरीर के होने पर होनेवाला और न होने पर न होने वाला, चैतन्य देहधर्म है यह सिद्ध हुआ। इसी न्याय से प्रयत्न, प्राण, चेष्टा, स्मृति, इच्छा आदि जो आत्मा के धर्म हैं, वह भी सब देह के ही हैं।

वेदान्ती—तो फिर देह-धर्म चैतन्यादि रूपादि देहधर्मों की समान दूसरों को प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता?

चार्वाक—(झुँझला कर) आप तो बड़े ही चुलबुले हैं। आगे को कहने तक भी नहीं देते, सुनिए। देह-धर्म दो प्रकार के हैं! एक आभ्यन्तर, और दूसरे बाह्य। आभ्यन्तर चैतन्य, इच्छा आदि दूसरों को प्रत्यक्ष नहीं होते और बाह्य रूपादि दूसरों को प्रत्यक्ष होते हैं। इसमें किसी का क्या बिगड़ता है? जो आप इतने उछले।

वेदान्ती—(मुसकरा कर शान्ति से) आपके इस कथन से तो यह जान पड़ता है कि जब किसी का बिगाड़ हो, तो उछलना ठीक है। नहीं तो नहीं, यह आपका सिद्धान्त है। धन्य है! क्यों न देहात्मवाद ऐसे रागद्वेषादि-मूलक कुसिद्धान्तों से भूषित हो! जिसके सञ्चालक आप जैसे हों।

चार्वाक—(लज्जित होकर) क्या वक्रोक्तियों से किसी भले आदमी की हँसी उड़ाना आपके सिद्धान्त-अनुसार है? आपको यह भी पता है कि यह वक्रोक्ति काव्यों में ही अलंकार मानी जाती है। शास्त्र में इसको छल कह गोतमजी ने निग्रहस्थान में पढ़ा है। अतः आप शास्त्रार्थ में, निग्रहस्थान आगए जान पड़ते हैं। जो प्रश्न का उत्तर देकर यह ठठोलबाज़ी लगाई है (क्रुद्ध होकर) फिर से ख़बरदार।

वेदान्ती—(मन्द मुसकान से) यह आपका जानता होगा कि निग्रहस्थान में आप हैं या हूँ। छाती पर हाथ रखकर देखिए, वह बछड़े कूद रहे हैं! नारायण! नारायण! भले मनुष्यों हँसी उड़ाना तो हमारे सिद्धान्त के प्रतिकूल परन्तु यह तो कहिए क्या आप अपने ही मुख भला बना चाहते हैं। अथवा आपके मत को करते हुए श्रीभगवान्‌जी ने भी गीता में जैसे जनों को "आत्मसम्भाविताः" ऐसा विशेषण दिया है। सो आपने प्रत्यक्ष कर दिखाया।

चार्वाक—(क्रोध से चिनचिनाकर) हाँ, है। जब आप से उत्तर नहीं दिया जाता तो आप ऐसे भाँडपन से भी गए।

वेदान्ती—(शान्ति से) महानुभाव! क्रुद्ध हूजिए! मैं उत्तर देने को सन्नद्ध हूँ। जो "जिसके रहने पर रहे और न रहने पर न रहे वह उसका धर्म होता है" इस नियम से ही तो आप चैतन्य को देहधर्म सिद्ध करना चाहते हैं न, सो प्रथम तो यह नियम ही अशुद्ध है। क्योंकि दीपक प्रकाश होने पर होनेवाला और न होने पर न होने वाला चक्षु से घटादि प्रत्यक्ष क्या दीपादि प्रकाश का धर्म हो सकता है? कदापि नहीं। यदि यह नियम को सत्य भी मान लें तब भी आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता दीखता, क्योंकि देह के होने पर ही चैतन्य का होना यह बात तो सब शरीरों में प्रत्यक्ष से देखी गई है, परन्तु देह के न होने पर चैतन्य का न होना इसमें अभी सन्देह है। क्योंकि नित्य आत्मवादी तो देह के न होने पर भी चैतन्य का होना मानते हैं और तुम न होना मानते हो। सन्दिग्ध वस्तु को निश्चयरूप से कह देना कि देह के न होने पर चैतन्य नहीं होता, यह आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचित साहस है। और सुनिए! जो रूपादि देह धर्म हैं वे देहस्थिति पर्यन्त रहनेवाले देखे गए हैं। परन्तु चैतन्य, मृतक दशा में देह के होने पर भी नहीं रहता। इस कारण रूपादि, देहधर्मों से विलक्षण चैतन्य रूपादि की समान देहधर्म नहीं हो सकता। और देखिए, चार भूतों के अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं, यह आपकी प्रतिज्ञा है। जब चार भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति आप मानेंगे तो पाँचवाँ चैतन्य पदार्थ, सिद्ध होगा और प्रतिज्ञाहानि अथवा प्रतिज्ञान्तर दोष अनिवारणीय होगा।

चार्वाक—(हँसी उड़ा कर) वाह जो वाह! खूब कही। आप तो हमारे कहने को समझे भी नहीं। हमारा आशय यह है कि चैतन्य रूपादि की सदृश एक देह का ही धर्म है और धर्म धर्मी को हम नैयायिकों की समान भिन्न नहीं मानते। किन्तु तुम्हारे समान अभिन्न मानते हैं। अतः देहाकार भूतों से उत्पन्न भी चैतन्य रूपादि की समान भूतों से भिन्न पदार्थ नहीं है। फिर कैसी प्रतिज्ञाहानि और कैसा प्रतिज्ञान्तर? हज़रत! कहीं स्वप्नावस्था में तो नहीं पहुँच गए?

वेदान्ती—(मनमें) रस्सी तो जल गई परन्तु बल नहीं जले। (चार्वाक से) भाई! मेरी खोपड़ी तो ख़ाली हो गई किन्तु तुमको बोध न हुआ। लो, अब झगड़ा ही समाप्त किये डालता हूँ। यदि चैतन्य रूपादि की समान भूतों से अभिन्न देहाकार भूतों का धर्म है तो वह रूपादि और भूतों की समान जड़ होना चाहिए। और ऐसा मानने पर उसको रूपादि की समान अपना पराया भान भी न होना चाहिए। तब तो सब जगत ही अन्धा हो जायगा। पर हाँ, आपको इससे क्या? धन्य है अज्ञान महाराज को, जिसके वश होकर, आप स्वयं अन्धे बन, जगत भर की आँखों में धूल डाल रहे हैं। धूल आपकी चतुराई पर। यह एक महादोष देहात्मवादी राक्षसों के वध को रामबाण है। इतना सुनकर सब दार्शनिक मिलकर चार्वाक की ताली पीट देंगे। पराजय की लज्जा से चार्वाक का मुख नीचा और काला हो जायगा, जैसे किसी धूर्त ने, होली का नव्वाब बनाने को तैल और कज्जल मिलाकर चिकना रोग़न कर दिया हो। पैरों के अँगूठे भूमि कुरेदने लगेंगे। जो कुछ उनके कथन का आप लोगों पर प्रभाव होना था वह आप लोगों के मन से गुलाल सा उड़ जाएगा। वीर चार्वाक भी वहाँ से अपनासा मुँह ले अबीर से उड़ जाएँगे। हाँ, उनके भागते समय इतनी बात विशेष होगी कि आए थे घोड़े की सवारी से परन्तु, चलतीबार वही सवारी उनकी होगी कि जो प्रायः धूर्तजन होली के नव्वाबों को अर्पण किया करते हैं। उस सवारी का नाम कुछ ऐसा ही वेढङ्गा है जो मुझे इस समय याद नहीं आता। अजी वह! घोड़े से दूसरा जानवर होता है न! तात्पर्य यह कि जीत की इच्छा से आए और हार कर जाएँगे। सब दार्शनिक मिलकर चार्वाक के सिद्धान्तरूप चरु को ज्ञानरूप अग्नि में होम करके जगत् का कल्याणकारी होली-उत्सव मनावेंगे। यह होली आप नई न समझें, यह भारतवर्ष की प्रति वर्ष होने वाली बहुत पुरानी प्रथा है। जले बले चार्वाक-सिद्धान्तों की भस्म उड़ाकर फिर सब दार्शनिक सुख से धुलैड़ी-उत्सव भी मनाए विना न रहेंगे। विजयरूप विजया का नशा सबके नेत्रों में लाली और मन में मोद एवं मुख में हँसी से झलक रहा होगा। यह प्रथा भी कुछ आधुनिक नहीं है। पहिले जो दार्शनिकों ने होली-उत्सव पर चार्वाक के सिद्धान्तरूप चरु का होमज्ञान अग्नि में किया था उनके जलने से उठा हुआ धूम दक्षिण वायु से प्रेरित हुआ दार्शनिकों के भय से भारतवर्ष में स्थिति न पाकर आस पास के म्लेच्छ-देशों को विष-धूम की समान दृष्टिगत होते ही अन्धा कर देने में पूर्ण समर्थ हुआ, जो अब तक भी चार्वाक के सिद्धान्तों को शिर नमाते हैं। पूर्व दार्शनिकों का धुलैड़ी में उड़ाया हुआ वही चार्वाक-सिद्धान्त-भस्म, अनुकूल काल और दक्षिण वायु का धकेला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष से बाहर हो आस पास के म्लेच्छ देशों के शिरोमुकुट पर अज्ञान-नरपति के शासन समान, मान्यरूप से स्थित हुआ और अब तक है, भाग्यवश अथवा समय और वायु के चक्करदार गमन से जले बले उन सिद्धान्तों का कुछ दुर्गन्धमात्र किसी २ दुर्बल मस्तिष्क में जो प्रवेश हो गया था वही आज, कलि काल के कराल शासन में, विकराल रूप धारण करके उपेक्षित तुच्छ रोग की समान भारतवर्ष को सन्निपातरूप में परिणत हो गया है। जिसने भारतवर्ष के अङ्ग अङ्ग शिथिलकर उसको पुरुषार्थहीन और मृतप्राय दशा में प्राप्त कर दिया है। अब न तो वे दार्शनिकरूप वैद्य देखने में आते हैं जो इस असाध्य रोग को नाश करने में पटु हों। और हैं भी तो उनके बताए पथ्य और औषध पर रोगी का किञ्चित् विश्वास नहीं है। फिर वैद्य होकर भी क्या करें? अब तो भारतवर्ष डाक्टर और तबीबों का तावेदार हो गया। इसलिए इस चिन्ता को परेश्वर के ऊपर ही छोड़कर आओ! भाई! आज सब मिल कर पुरातन होली और धूलैड़ी-उत्सव मनाएँ और अपने तथा मित्रों के चित्त को प्रफुल्ल करें और जहाँ पर अनेक साँग, चंबोले और हास्य-विनोद, नृत्य-बाजा आदि के साथ आप हर साल होली मनाते थे, वहाँ आज आपके प्रसन्न करने को दार्शनिकों की होली नाम का प्रहसन बड़े श्रम से बनाकर आपकी भेट किया जाता है जिसके पढ़ने से हास्य का हास्य और शिक्षा की शिक्षा दोनों लाभ साथ ही साथ होते हैं और धर्म पर विश्वास-वृद्धि होती है। एकाग्र चित्त से इसके पढ़नेवाले को चार्वाक मत-मलेरिया का कभी भय नहीं होता। पढ़नेवालों की तो क्या कहूँ जिस किसी के कान में यह लेखरूप मन्त्र पढ़कर फूँक भी मार दी जाए उसका भीचार्वाक मतमहाभूत चढ़ा हुआ थोड़ी ही देर में दूर हो जाए। क्योंकि होली दिवाली को जपे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। और वे ऐसे भूतात्मवादी भूतों को ब्रह्मास्त्र जैसे लगते हैं।

यहाँ पर पाठकगण इतना ध्यान और रखें कि जो चार्वाक के आक्षेप, समस्त वैदिक आदिकों पर हो सकते थे उनका उत्तर इन मिश्रित दार्शनिकों के द्वारा दिला दिया गया है और जो आक्षेप किसी एक मत पर चार्वाक ने किए हैं उनका उत्तर उसी मत के निरूपण में दिया जाएगा। क्योंकि यहाँ पर अपने अपने मतों का विशेष निरूपण करने से दार्शनिक-मण्डली में परस्पर फूट फड़ने का भय था। क्योंकि इनमें से तो एक दूसरे के सिद्धान्त को नहीं सह सकता और फूट पड़ने पर हर एक को अपना घर बचाने की ही सूझती। ऐसी दशा में चार्वाक का पक्ष जब असाध्य नहीं तो चिरकाल साध्य तो हो ही जाता। अतः, जो आक्षेप चार्वाक की ओर से किए हैं, किसी एक आधे का उत्तर न देख कर आप लोग लेख को न्यून या असङ्गत न समझ लें यही प्रार्थना है।

(असमाप्त)

वासुदेव उपाध्याय

चन्द्रोदयवर्णन

किमु गगनसरों में पुण्डरीक प्रकाशै।
सरस-मुखलता का, पुष्प सम्फुल्ल (१) राजै।
रतिरमण (२) शरों का, शाण (३) पाषाण हैवा।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ १॥
विधिरथ विहरे (४) वा, व्योम-गङ्गा-जलों में।
हठ मदन-पती ने, चक्र छोड़ा वियत (५) में॥
किमु विविध-विलासा,-गार (६) शृङ्गार दीपा।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ २॥
लख लख मणि किंवा विष्णुपादाब्ज राजै।
रजनिमुख विराजै, बिन्दु से चन्दनों के॥
त्रिदशपति-दिशा का, चारुताटङ्क शोभै।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ ३॥

---

१ खिला हुआ, २ कामदेव, ३ कसौटी का पत्थर, ४ शोभै, ५ आकाश, ६ शयनगृह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसिज रति से वा, खेल खेलै रती से ।
लसत उलझ आया, कन्दुक श्रीकरों से ॥
स्फटिक-कलश-सन्धया, मूर्तिका उल्लसे वा ।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा ॥ ४ ॥

मदन नृपति का वा, कण्ठमाला पदक (१) है ।
अनुपम-छवि उसके, छत्र की वा विराजै ॥
रुचिर-मुकुर (२) किंवा, काम प्यारी रती का ।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ ५ ॥

सुभग यह शशी के, कान्ति का गुच्छ राजै ।
हँसत रति समय् में, शक्र (३) दिक्कामिनी वा ॥
चमकत कमला की, आननेन्दु-द्युती वा ।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ ६ ॥

अहिपति-मणि-शोभा, वा हज़ारों फणों की ।
करत कुतुक से वा, काम-केली सुधांशू ॥
समझ यह हटावै, भानु दीपप्रियाशा ।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा ॥७॥

रति-कुशल-विधू वा, रक्त आता निकट् में ।
ललित-मुख निशाका, चूमने लोल तारा ॥
न च तिमिर दुकूल (४)-प्रेम से भ्रष्ट जाना ।
ललित-उदय पावै, इन्दु का बिम्ब किंवा॥ ८ ॥

दुण्ढिराज शास्त्री

नारी-धर्म

सती साध्वी स्त्री को चाहिये कि वह, पति को देवता के समान समझे । पति के चित्त की वृत्ति के अनुकूल रहे । पति ही के कथनानुसार घर के काम धन्धे किये जायें । अपनी ननद और भावजों के साथ उसे अच्छा बर्ताव करना चाहिये । भोजन आदि बनाने में उसे बहुतही निपुण होना चाहिये । यतः यह उसका मुख्य कर्म्म है । कुलटा, दूती और साधिनियों को कभी पास न बिठलाना चाहिये । पास बिठलाना तो दूर रहा, उनसे बात-चीत भी न करना चाहिये ।

पति की रुचि-अनुसार भोजन बनाना चहिये । पति को जैसी नमक, मिर्च खाने की आदत हो उतना ही डालना चाहिये । पति के घर आने पर यह पूँछ लेवे कि क्या करना चहिये ? और स्वयं पति के चरणों को धोवे । दासी के हवाले यह काम न करना चाहिये ।

पति, यदि फ़िज़ूल ख़र्च हो, तो एकान्त में बड़ी नम्रता के साथ, उसे समझाना चाहिये । पर समझाने का ढंग ऐसा न हो, जिससे वह यह समझे कि यह मुझे उपदेश कर रही है । अपने सम्बन्धियों के यहाँ विवाह आदि उत्सवों में, पति की आज्ञा प्राप्त करके जाना उचित है । पति के सो जाने पीछे सोना, और उठने से पहिले उठना चाहिये । रसोई के स्थान को बहुत साफ़ रखना चाहिये । पति से यदि कोई अपराध हो जाय, तो उससे ताने तिशन से कुछ न कहना चाहिये । प्रत्युत शुद्ध भाव से उसे जतला देना चाहिये । क्रोध कभी न आना चाहिये और न ही पति को कभी रूखी चितवन से देखना चाहिये । यतः ऐसी बातें वैराग्यजनक होती हैं । दरवाज़े पर कभी न खड़ा होना चाहिये । किसी के साथ (आज-कल की तरह) सैर सपाटे को न जाना चाहिये और नहीं पति से भिन्न किसीसे सलाह, मशवरा करना चाहिये । निर्जन स्थान में कभी न खड़ा होना चाहिये । घर की अटारी पर भी अकेली खड़ी रहने में बड़ी बड़ी हानियाँ हैं ।

शरीर साफ़ रखना चहिये । आँखों में अंजन और दाँतों में मञ्जन नित्य प्रति लगाना चाहिये । ख़ुशबू का भी व्यवहार करना चाहिये । वस्त्र, घटिया भले ही हों पर बहुत साफ़ और परिमित पहिनने चाहियें । पास हों तो बहुत नहीं, १-२ भूषण भी पहिनना चाहिये । पर यह ध्यान रहे कि पति यदि निर्धन हो तो उसे इसके लिये तंग भी

---

१ हार का सुमेरु, २ दर्पण, ३ पूर्वदिशारूप स्त्री, ४ अंधकाररूप वस्त्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न करना चाहिये। ऐसी दशा में काँच की दो चूड़ियाँ ही बहुत हैं। निर्धन की स्त्री का "आहार-हारं मनुते कुलाङ्गना" वाली कहावत ही को चरितार्थ करना श्रेयस्कर है।

पति के एकादशी आदि व्रत करने पर स्वयं भी व्रत करे। किसी कारण से पति यदि मना करे तो बहुत ही फ़ैशन के साथ, "आपको मुझे इस मामले में निषेध न करना चाहिये" इस प्रकार भक्ति का अभिनय करती हुवी, न करे। गृहस्थ की आवश्यक सामग्री इकट्ठा करने या कराने में सचेष्ट रहना चाहिये। पति के धन के विषय में कि हमारे स्वामी के पास इतना धन है या यहाँ रक्खा रहता है, किसीसे कुछ बात न कहे और पति से जो सलाह हो, उसका किसी से प्रकाशन भी न करे। अपनी वार्षिक आमदनी का हिसाब लगाकर उसी के अनुसार ख़र्च करना श्रेष्ठ है।

समय मिलने पर सीना, पिरोना, कातना और पीसना भी चाहिये। इसमें बड़े बड़े लाभ हैं। पति के फटे पुराने कपड़े अपने नौकरों को दे देने चाहियें। इसमें अपना कुछ हरज नहीं और उन बेचारों का काम चलजाता है। अपने सास, सुसर और जेठ आदिकों के सामने न बोलना चाहिये और न हँसना चाहिये। अपनी देवरानी, जिठानियों से ईर्ष्या, द्वेष कदापि न करना चाहिये।

पति, यदि परदेश गया हो तो व्रत आदि करते रहना चाहिये। श्रृङ्गार न करना चाहिये। सास के पास अपनी चारपाई बिछानी चाहिये। उन्हीं की आज्ञानुसार काम करना चाहिये। अपने बाप के यहाँ ज़्यादा रहना अच्छा नहीं। पति जब परदेश से आये, तो उसकी देवता की तरह से पूजा करनी चाहिये *।

---

* श्रीवात्स्यायन मुनिप्रणीत "कामसूत्र" के आधार पर।

सम्पादक

विविध विषय

१—एक संस्कृत के पण्डित की आवश्यकता

पञ्जाब यूनिवर्सिटी ने प्रकाशित किया है कि उसे ओरिण्टियल कालिज के लिये एक संस्कृत के प्रोफ़ेसर की ज़रूरत है जो संस्कृत में ग्रेजुएट हो और शास्त्री से कम योग्यता न रखता हो, एवं जिसने युरोपीय रीति से शिक्षा प्राप्त की हो। प्रोफ़ेसर को उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा देनी होगी और संस्कृत-साहित्य के इतिहास-विवेचन में उसे, विद्यार्थियों को सहायता देनी होगी। यदि कोई अभिलषित उम्मीदवार मिल गया तो उसे पाँच साल के लिये नियत किया जायगा और पाँच सौ रुपया ५००) मासिक वेतन दिया जायगा। ऐसा न मिलने पर जो विद्वान नियत किया जायगा, उसे उसकी योग्यतानुसार वेतन दिया जायगा। हमारी समझ में नहीं आता कि जब तक योरप में शिक्षा प्राप्त न की हो, कोई मनुष्य संस्कृत का, उस संस्कृत का जिसका भारतवर्ष घर बतलाया जाता है, योग्य पण्डित नहीं समझा जासकता। यह तो एक ऐसी बात है कि कोई बंगाली, अपनी मातृभाषा बँगला को पढ़ने के लिये, नहीं नहीं उसमें पूरा योग्य बनने के लिये, यू. पी. में आये, और तब कहीं बँगला का अच्छा पण्डित समझा जाय। हाँ, इस बात के मानने में किसी भी समझदार को इन्कार नहीं हो सकता कि योरप के कई देशों में संस्कृत के अच्छे अच्छे विद्वान् हैं परन्तु इससे यह मान लेना कि भारत में शिक्षा प्राप्त करनेवालों को अच्छी संस्कृत नहीं आसकती, हम मानने के लिये तैयार नहीं हैं। काशी और नवद्वीप को छोड़ कर भी यहाँ ऐसे ऐसे पण्डित मिल सकते हैं जो यद्यपि अंग्रेज़ी न जानते हों पर मोक्षमूलर को बरसों पढ़ा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंगलिश भाषा से अभिज्ञ भी संस्कृत के पण्डित मिल सकते हैं। परन्तु हमारी राय में संस्कृत में अधिक योग्य वही होंगे, जिन्हों ने किसी कालिज में नहीं, पाठशाला में किसी पुराने ढंग के पण्डित के पास पढ़ा होगा।

देखें, यह पद, किसे गौरवान्वित बनाता है?

*

२ - एक नरेश का अनुकरणीय हिन्दी-प्रेम

कई वर्ष हुवे, महाराज अलवर ने अपने राज्य में यह आज्ञा प्रचारित की थी कि उनके राज्य के सारे महकमों में उर्दू की जगह हिन्दी लिपि लिखी जाया करे। हमें यह मालूम करके बड़ा ही हर्ष हुआ है कि आपने अब हाल ही में यह और आज्ञा दी है कि रियासत के सरकारी काग़ज़ात में फ़ारसी और अरबी शब्दों के स्थान में भी हिन्दी और संस्कृत के शब्द लिखे जाया करें। जो राजकीय कर्मचारी इस आज्ञा के विरुद्ध चलेगा वह दंड का अधिकारी होगा। राज्य की तरफ़ से एक कोष भी तैयार हुवा है, जो सब महकमों को दिया गया है। इससे सहायता लेकर आपकी आज्ञा का पालन किया जाता है। एक और आज्ञा आप ने यह दी है कि आपको सरकारी काग़ज़ात में 'हुज़ूर पुरनूर दाम इक़बालहु' के स्थान में "धर्मावतार" लिखा जाय। महाराज बहादुर, हिन्दी की तरह संस्कृत के भी बड़े प्रेमी हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि अन्य राजे, महाराजे, ताल्लुक़ेदार और रईस भी आपकी तरह से अपने मातृभाषा-प्रेम का परिचय दें।

*

३ - भारतमित्र

सहयोगी "भारतमित्र" हिन्दी के पत्रों में अपने पुरानेपन पर जितना नाज़ करे, थोड़ा है। पर शोक है कि उसकी सरणि, कभी कभी न्याय-पथ से गिर जाती है। वह जिसके विरुद्ध होजाता है, चाहे वह अच्छा भी क्यों न हो उसे बुरा सिद्ध करने में सचेष्ट होजाता है। निःसन्देह सम्पादन-कला को यह बट्टा लगानेवाली बात है। न्याय-मूर्त्ति, परमास्तिक महाराज दरभंगा के विषय में जो कुछ दैनिक भारतमित्र में लिखा गया है उसका युक्तियुक्त मुँहतोड़ उत्तर सहयोगी पाटलिपुत्र के सुयोग्य सम्पादक ने 'दैनिक भारतमित्र का कुविचार" शीर्षक एक लेख से दिया है। उसे हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे देते हैं।

"देखते हैं भारतमित्र दिनोंदिन दरभङ्गा-महाराज के विरुद्ध हो उन्हें नाना प्रकार से अपमानित करने का कलुषित कार्य करने में ज़रा भी आगा पीछा नहीं सोच रहा है। दरभंगा-नरेश विहार-सरकार की शासनसभा के सदस्य होते भी, इधर कई महीनों से जो धर्म और राजभक्ति के महत्त्व को जनसाधारण के सामने विशेषरूप से उपस्थित कर रहे हैं, यह भारतमित्र नामधारी "भारतमित्र" को असह्य हो उठा है। सरकारी पैसा खाकर श्रीसनातनधर्म और राजभक्ति का विशेषरूप से प्रचार करना भारतमित्र ऐसे सुयोग्य पत्र की राय में उचित नहीं। "भारतमित्र" अपने को श्रीसनातनधर्मानुयायी और परम-राजभक्त मानता है तो फिर समझ में नहीं आता कि वह क्यों उक्त परमावश्यक कार्य की उपेक्षा किया करता है?

दरभंगानरेश विद्या, बुद्धि और चरित्रबल में एक आदर्श नृपति हैं। सरकारी पैसा लेकर वे वही कार्य किया करते हैं जैसा कि कोई भी एक धार्मिक मनुष्य इस पद पर रहते हुए अपने कर्तव्य कर्म को करता। यदि हम भूलते न हों तो कह सकते हैं जिस समय इस पद को दरभंगा-नरेश ने ग्रहण किया था उसी समय आपने श्रीसनातनधर्म और हिन्दू-विश्वविद्यालय आदि के परम पवित्र कार्यों के करने के लिये विहार-सरकार से अभिवचन ले लिया था। ऐसी अवस्था में विहार-सरकार की शासनसभा के सदस्य रहते हुए भी आपने जो पवित्र कार्य किये हैं और करेंगे वे सब ही स्तुत्य और महत्त्वसूचक कहे जा सकते हैं। "भारतमित्र" अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा बुद्धिमान् मान बैठा है, उसकी विद्याबुद्धि के आगे इस समय देश के धार्मिक और शान्त प्रकृति के मनुष्य तृणवत् हैं, पर "भारतमित्र" को इस बात का सम्यक् प्रकार से ज्ञान होना चाहिये कि वह किस आदर्श पुरुष और देशनायक के प्रति कैसे गर्हित विचार निन्द्यभाषा में प्रकट कर रहा है। किसी पत्र को हाथ में लेते समय सम्पादक को देश, राजा, राजपुरुष और देशनायक के प्रति कैसा विचार और व्यवहार करना चाहिये, इसका भली भाँति ज्ञानसम्पादन कर लेना परमावश्यक है। पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि 'भारतमित्र'-सम्पादक ने उक्त ज्ञान के रहते हुए भी किसी विशेष कारण की वजह से जो आक्रमण दरभंगा-नरेश पर करना प्रारम्भ किया है वह सब ही अंशों में गर्हित और निन्दनीय है। गत फाल्गुन कृष्ण ८ के "दैनिक भारत मित्र" में जो नोट्स दरभंगा-महाराज के विरुद्ध लिखे गये हैं, वे कहाँ तक सत्य हैं, यही दिखाना आज के लेख का मुख्यांश है।

उक्त नोट को "दैनिक भारतमित्र" ने अपने मत की पुष्टता के लिये "बंगाली" से लेकर छापने की धृष्टता की है। "भारतमित्र" और "बंगाली" इस समय किसी कारणवश दरभंगा महाराज से रुष्ट हो एक ही सुर में सुर मिला बेसमय की रागनी अलापने में ही अपने को धन्य धन्य मानने लगे हैं। यदि ऐसा न होता तो "भारतमित्र' कदापि यह नहीं लिखता कि "दरभंगा महाराज की वर्तमान अवैध कार्यावली के सम्बन्ध में हमने जो टिप्पणियाँ लिखी थीं, उनका समर्थन बा० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के "बंगाली" पत्र ने किया है।" मालूम होता है कि पहले सबजेक्टकमिटी में दरभंगा-नरेश के विरुद्ध प्रस्ताव करने की सलाह कर ली गई थी तभी तो प्रस्तावक और समर्थक लोग प्लाट-फार्म पर आ अपनी अपनी बेसुरी रागनी अलापने लगे हैं। दैनिक भारतमित्र अपनी सम्मति की पुष्टता में लिखता है कि "समस्त भारत का एक धर्म नहीं है, इस दशा में सरकार का अपने एक कर्मचारी को जो ४०००) मासिक वेतन पाता है विशिष्ट धर्म के प्रचार की अनुमति देना स्व० महारानी विक्टोरिया का धर्म-सम्बन्धी अभयवाणी का विरुद्धाचरण करना है।" भारतमित्र को भी अजीब समझ है। यदि उसे मालूम होता कि जिस श्रीसनातनधर्म का महत्त्व दरभंगा महाराज दिखलाया करते हैं उसमें अन्य धर्मावलम्बी भी मिलाये जाते, तो वह शायद उक्त वचन को किसी अवस्था में नहीं लिखता। स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का विरुद्धाचरण तब होता जब श्रीसनातनधर्म अन्य धर्मावलम्बियों को अपने में सम्मिलित कर लिया करता, श्रीसनातनधर्म का महत्त्व वचन है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" ऐसी अवस्था में श्रीसनातनधर्म से किसी भी अन्य धर्म की हानि हो नहीं सकती, सब ही धर्म अपने-अपने महत्व को—बिना किसी दूसरे धर्म की निन्दा किये दिखलाने में पूरे स्वतन्त्र हैं, अतः श्रीसनातनधर्म के उपदेश से राजकीय घोषणापत्र की किसी अवस्था में भी उपेक्षा और विरुद्धाचरण की बात कदापि नहीं उठाई जा सकती। अतएव बिहार सरकार पर जो दोषारोप "बांगाली" करता है वह किसी अवस्था में मानने लायक़ नहीं। सहयोगी को इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि यदि सरकारद्वारा कोई धर्म पोषा जा सकता है तो वह श्रीसनातनधर्म ही, क्योंकि श्रीसनातनधर्म के सिद्धान्त अन्य सब ही धर्मों को प्रेमपूरित नेत्र से देखता हुआ उनके मतानुयायियों को अपने अपने धर्म में ही श्रद्धा भक्ति रखने का परम पवित्र उपदेश देता है। "बंगाली" जिस "नाना संप्रदायों में विभक्त, विविधमतों के कर्मक्षेत्र, अनेक पन्थों की लीलाभूमि" की बात कहता है, वह सब ही धर्म प्रायः श्रीसनातनधर्म के अंगरूप हैं, अतः भारतभूमि के लिये श्रीसनातनधर्म का प्रचार किसी भी अवस्था में अयोग्य हो नहीं सकता। "बंगाली" और "भारतमित्र" को इस बात के लिखते समय ज़रा सोच समझ से काम लेना था कि "भारत में दरभंगा महाराज का प्रिय धर्म ही सरकार की अप्रत्यक्ष सहयोगिता और सहानुभूति क्यों प्राप्त करेगा?" जिस सनातनधर्म के अनुयायी दरभंगा नरेश हैं उस धर्म का माननेवाला क्या "भारतमित्र" और "बंगाली" नहीं है? मालूम होता है सहयोगियों के विचार अब सीधे स्वर्ग की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे हैं। जिस बात के लिये सारा देश लालायित है, जिस धर्म की उपादेयता विधर्मी लोग तक माना करते हैं यदि उस सर्वप्रधान भारतव्यापी धर्म को भारत सरकार "सहयोगिता और सहानुभूति" की दृष्टि से देखे तो इसमें "बंगाली और दैनिक भारतमित्र" के जलने की कौन सी बात है? भारत सरकार का तो यह कर्तव्य कर्म है कि जिस धर्म से अन्य धर्म की हानि न हो उस धर्म से "सहयोगिता और सहानुभूति" का व्यवहार करे। यदि भारत सरकार इस ओर दृष्टि देगी तभी "सरकारी प्रतिज्ञाभङ्ग" न हो कर पालन किया जायगा।

हमारा सहयोगी जिसे "तेलिया पण्डा" कहता है वह क्या सच ही तेलिया है? इसे हम यहाँ नहीं कह सकते। ऐसे ही गर्हित शब्दों का प्रयोग करना हमारी समझ में "बंगाली" और "भारतमित्र" सरीखे पत्र को शोभा नहीं देता। हमारा सहयोगी विहार का हित-साधन करता हुआ लिखता है कि "दरभंगा महाराज जैसा ४०००) मासिक वेतन पानेवाला कर्मचारी नियुक्त करना विहार उड़ीसे को दरिद्र सरकार को नहीं शोहता।" वह कैसी सुन्दर राय है? सहयोगी की इस राय को विहार एवं उड़ीसा सरकार यदि झट मान ले तो फिर विहार की भलाई में कोर हो कसर क्या रह जायगा? सरकारी रुपये जो ४०००) मासिक व्यय होते हैं वह भी बच जायँगे और सरकार एक देशी कर्मचारी को उच्च पद पर रखने की झंझट से भी रहित हो जायगी? आज यदि ऐंगलो इण्डियन पत्र यह बात कहते तो उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना कि उक्त दोनों सहयोगियों के मुख से सुन कर हुआ है। उक्त पत्रों ने तो जटपटांग बात कहने में ऐंगलो-इण्डियन पत्रों को भी मात कर दिया है। हमारे सहयोगियों ने लिखा है कि "इस पद को वैतरणी पार कर देने ही में कौन सी हानि है?" सही है, उपयुक्त राय है, यदि कोई किसी के विरुद्ध हो, उसकी नजर में वह अच्छा काम न करता हो तो उसके पद को ही वैतरणी पार कर देना चाहिये। पाठक! कहिये सहयोगियों की कैसी दूरदर्शिनी सुखद सम्मति है? सहयोगियो! ऐसी राय देने के लिये तुम्हें शतशः धन्यवाद है।"

४—समस्या-पूर्त्ति।

श्रीवेंकटेश्वर समाचार पत्र के जनवरी के किसी अङ्क में साहित्य-समिति इन्दौर की तरफ़ से एक समस्या निकली थी। जो एक कवित्त का अर्धपाद रूप थी। यथा—

"हिन्दी नहिं जाने उसे हिन्दू मत जानिये?"

इसकी पूर्त्ति करके, जिस प्रकार इस नोट के लेखक ने भेजी थी। मनोरमा-पाठकों के विनोदार्थ नीचे लिखी जाती है।

[१]

हिन्दी, हिन्द-भाषा सब भाषा बीच भासमान,
हिन्दी मातृभूमी की दूजी बहिन मानिये,
हिन्दी की सुगन्ध थी पसन्द विकटोरिया को,
वाके पुत्र-पौत्र मन-मानी यह छानिये।
सीधी पढ़न में अरु सीढ़ी धर्म शिक्षन की,
पान बीड़ी जैसी मुख-मध्य नित आनिये,
संशय नशानी हिन्दुपन की निशानी,
जौन हिन्दी नहि जाने उसे हिन्दू मत जानिये॥

[२]

हिन्दी इन्दुलेखादेश शिवकी सुचूडामणि,
इष्टकल्पवल्ली, ऐसा भाव मन आनिये,
गन्दी भिन्न भाषा भाष मन्दमति बन बैठे,
बन्दकर फन्द ताको जी से बिसरानिये,
आगरी गुणों में लिपि नागरी लिखन सीखो,
हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मनवइये मानिये,
खाय खाय शपथ लाख, भाषो सभा में, जौन
हिन्दी नहि जाने उसे हिन्दू मत जानिये॥

वासुदेव उपाध्याय

५—माननीय पण्डित राधाकृष्ण दास

आप मुरादाबाद के एक प्रसिद्ध और सिद्ध-हस्त वकील हैं। अबकी बार आप, युक्तप्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर चुने गये हैं। अब तीन वर्ष तक बरेली की क़िस्मत आप ही के हाथ में रहेगी। ईश्वर करे, देश-सेवा की इस कठिन परीक्षा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप उत्तीर्ण हों। और लोगों को अपने अनुभव का परिचय करायें। हम आपको इस अवसर पर सहर्ष बधाई देते हैं।

सामयिक साहित्य

गढ़वाली

गढ़वाल-प्रान्त का यह एक साप्ताहिक पत्र है। इसका सम्पादन बड़ी योग्यता के साथ होता है। सम्पादकीय लेख महत्त्वपूर्ण होते हैं। टिप्पणियाँ ज़ोरदार होती हैं। गढ़वाली, गढ़वालप्रान्त की बड़ी सेवा कर रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २॥) है। परन्तु विद्यार्थियों और अल्प आयवालों से २) ही लिये जाते हैं। मिलने का पता—मैनेजर, गढ़वाली देहरादून है।

*

जैनहितैषी

दिगम्बर जैन समाज का यह मासिक पत्र है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० नाथूराम जी प्रेमी इस का सम्पादन करते हैं। इसमें चित्र भी रहते हैं। महावीर भगवान का चित्र बड़ा बढ़िया है। समालोच्य जनवरी के अंक में सैयद अमीरअली की "मेरा प्यारा हिन्दुस्तान" वाली कविता, पढ़ने लायक़ हुई है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। मिलने का पता—मैनेजर जैनहितैषी, हीराबाग़, पोस्ट गिरगाँव, मुम्बई।

*

गौड़हितकारी का महोत्सवाङ्क

यह गौड़ ब्राह्मणों का जातीय मासिक पत्र है। गौड़सभा के महोत्सव पर उसी का यह महोत्सवांक निकाला गया है। इसका सम्पादन योग्यता-पूर्वक होता है। प्रत्येक पढ़े लिखे गौड़ को इसे ख़रीदना चाहिये। प्रस्तुत अङ्क में महासभा से सम्बन्ध रखनेवाले लेखों के सिवा, "ब्राह्मण और रसोईगीरी" वाला लेख अच्छा हुआ है। हम इसकी उन्नति हृदय से चाहते हैं। वार्षिक मूल्य [illegible]

मिलने का पता—

मैनेजर गौड़हितकारी, मैनपुरी।

*

निबन्धमाला

भरतपुर से यह निकलती है। अभी तक इसके दो अंक हमें मिले हैं। वार्षिक मूल्य २) रुपया है। इसके लेख विद्वत्तापूर्ण हैं। पहली संख्या में संपादक महाशय का कोई भी लेख नहीं है। हाँ, पं० चन्द्रशेखर जी का लेख महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक चित्र भी रहता है। पण्डित जगन्नाथदास अधिकारी इसके सम्पादक हैं। हम इसकी उन्नति के अभिलाषी हैं।

मिलने का पता—

मैनेजर, निबन्धमाला, विरक्त मन्दिर, भरतपुर

*

नज़ारा

उर्दू का यह मासिक पत्र है। लाला लालचन्द फ़लक इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं। फ़लक महाशय की सामयिक कविता, महाकवि अकबर की तरह से बड़ी ओजस्विनी होती है। गद्य के भी आप अच्छे लेखक हैं। अभी तक इसके तीन अंक प्रकाशित हुए हैं। मार्च के अङ्क में, महाराजा सर कृष्णप्रसाद शाद की वस्तुतः "मानी खेज़ ग़ज़ल" हुई है। वार्षिक मूल्य ३)।

मिलने का पता—

लालचन्द फ़लक, दफ़्तर नज़ारा, लाहौर।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

१—न्यायतत्त्वबोधिनी

आकार बड़ा, पृष्ठसंख्या १७१ मूल्य १)। यह न्याय-सूत्रों का संक्षिप्त भाषानुवाद है। ऊपर सूत्र हैं और नीचे हिन्दी। इसे स्वर्गीय पण्डित शालग्रामजी शास्त्री ने लिखा था। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। न्याय जैसा कठिन विषय, होते हुवे भी भाषा कुछ कठिन नहीं है। संस्कृत ही नहीं, हिन्दी जानने वाले भी, न्याय के तत्त्वों को इसके द्वारा समझ सकते हैं। लिखने की शैली बड़ी अच्छी है। न्याय-सूत्रों का हिन्दी में हमने ऐसा अच्छा अनुवाद अब तक नहीं देखा। पुस्तक का काग़ज़ मोटा और छपाई बहुत साफ़ है। पण्डित ब्रह्मदत्त मिश्र, बी. ए., गवर्नमेंट हाईस्कूल, अजमेर के पते से यह पुस्तक मिल सकती है।

*

२—वासुदेवविजयं काव्यम्।

आकार मँझोला, पृष्ठ संख्या ३१०, मूल्य २)। संस्कृत में महाकवि वासुदेव का 'वासुदेवविजय', एक अच्छा काव्य है। उसी को जम्बू की रघुनाथ पाठशाला के साहित्यशास्त्राध्यापक, पण्डित रामप्रपन्न शास्त्री, काव्यतीर्थ ने स्वरचित कैशवी व्याख्या से अलङ्कृत करके छपाया है। व्याख्या बड़ी सरल है। विद्यार्थियों के लिये लाभदायक है। प्राज्ञ परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों को तो इसे अवश्य ही ख़रीदना चाहिये। यतः व्याख्या में कोश और व्याकरण को अधिकता के साथ लिया गया है। व्याख्याकार महाशय ने भूमिका में लिखा है कि ओरिएंटियल कालिज के मुख्याध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित शिवदत्तजी ने इसका संशोधन किया है। यह और भी अच्छा हुआ। आप एक सिद्धहस्त संशोधक हैं। यही कारण है कि पुस्तक में प्रेस-सम्बन्धिनी बहुत ही कम त्रुटियाँ रही हैं। व्याख्याकार महाशय से यह पुस्तक मिल सकती है।

*

३—आदर्श वीरांगना

आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ५२, मूल्य ≈)। लेखक पण्डित सूर्यनारायण त्रिपाठी। सदर बाज़ार जबलपुर के पते से लेखक ही से प्राप्य। यह रानी दुर्गावती का जीवनचरित है, जिसे लेखक ने east And west नामक मासिक पत्र के एक निबन्ध के आधार पर लिखा है। रानी दुर्गावती, सोलहवीं शताब्दी की एक वीर नारी थी। वह जबलपुर के पास ही गढ़ा के राजा दलपतशाहकी स्त्री और महोबा के राजा शालिवाहन की पुत्री थी। उसी की प्रस्तुत पुस्तक में संक्षिप्त जीवनी लिखी गई है। पुस्तक वीररस-पूर्ण है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है। पुस्तक की भाषा, साधारणतया अच्छी है।

*

४—आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या।

योरप के लुईकुहनी साहिब एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। जलचिकित्सा के आप आविष्कारक हैं। इसी विषय की आपने "The new Science of healing" नामक पुस्तक लिखकर जनता का बड़ा उपकार किया है। इसमें रोगों की चिकित्सा, पञ्चभूत द्वारा ही प्रतिपादन की गई है और विशेषतया सारे के सारे रोगों पर जल ही से काम लिया गया है। इस चिकित्सा में यह आवश्यक लाभ है कि रोग के निदान की आवश्यकता नहीं और वह भय जो मिथ्या निदान के द्वारा मिथ्या चिकित्सा से होता है, इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त नहीं। यह पुस्तक ५० बार जर्मनी भाषा में छप चुकी है। और संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसके अनुवाद हुवे हैं। इन बातों से यह सहज ही में मालूम हो जाता है कि पुस्तक बड़ी उपादेय है। "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" उसी पुस्तक का हिन्दी-भाषानुवाद है। अनुवादक हैं, मुरादाबाद के श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी. ए., एल-एल. बी., वकील हाईकोर्ट। अनुवाद बड़ी खोज के साथ लिखा गया है। भाषा बहुत सरल है। हिन्दी में साधारण योग्यता रखनेवाला भी इसे अच्छी तरह समझ सकता है। श्रोत्रिय जी ने इस पुस्तक का अनुवाद पहले उर्दू भाषा में किया था। आप हिन्दी के भी बड़े हितैषी हैं। उसे उन्नत बनाने में आप सदा सप्रयत्न रहा करते हैं। यही कारण है कि आपने हिन्दी में अनुवाद किया। पुस्तक का आकार बड़ा है। पृष्ठसंख्या ५०० के लगभग है। मूल्य विना जिल्दवाली का ३) और सजिल्द का ३।) है। पुस्तक को दो दर्शनीय चित्रों से भी अलंकृत किया गया है। एक तो कुहनी साहिब का चित्र है और दूसरा माननीय सर जेम्स म्यस्टन लेफ़्टिनेंट गवरनर संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध का। आप ही के करकमलों में, आपकी आज्ञा लेकर यह पुस्तक समर्पण की गई है। पं० रामगोपाल शर्मा, मुहल्ला किसरोल कूंचा शुकलान, मुरादाबाद के पते से यह पुस्तक मिल सकती है।

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORAMA REG. No. A. 755.

अलङ्कार १] चैत्र १९७२-१९७३ [ध्वनि ६

मनोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलङ्कार शास्त्री)

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

[१] नवीन संवत्सर [लेखक, श्रीयुत गोपीनाथ २०५

[२] हिन्दी-कादम्बरी २०६

[३] वीर वाणी [ले० कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य २०७

[४] नास्तिकवाद का मूल इतिवृत्त [ले० न्यायोपाध्याय पण्डित दुण्ढिराज शास्त्री काव्यतीर्थ ... २०८

[५] समस्यापूर्त्ति [ले० कविवर पण्डित वासुदेव उपाध्याय ... २१२

[६] महावीर अर्जुन (२) ... २१३

[७] पण्डित शालग्रामजी शास्त्री [ले० साहित्योपाध्याय पण्डित शिवदत्त त्रिपाठी काव्यतीर्थ ... २२०

[८] प्रकृति [ले० लाला लालचन्द फ़लक २२५

[९] भारतवासी दुर्बल क्यों हुए जाते हैं ? [ले० पण्डित लक्ष्मीनारायण शुक्ल २२६

[१०] विविध विषय ... २२८

[११] साहित्य-चर्चा २३१

[१२] मनोरम श्लोक ... २३२

[१३] धन्यवाद २३२

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य ... और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढ़ाने तथा प्रकाशित करने, न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें ... बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम, कार्यालय मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहिये।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं ... जायंगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायं और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता पूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥)	प्रतिमास
१ पृष्ठ या आधेकालम की छपाई	५)	,,
आधा पृष्ठ या १ कालम की ,,	३)	,,
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२)	,,
½ पृष्ठ या चौथाई कालम की ,,	१॥)	,,

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरम कार्यालय, मंडी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माइसोर-आधीश

आप हिन्दु-यूनिवर्सिटी के चाँसलर बनाये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | चैत्र १९७२-१९७३ | ध्वनि ६

नवीन संवत्सर

वर्ष नूतन हो हमें कल्याणकारी सर्वथा।
शान्तिकर हो, विघ्नहर हो, प्रेमधर हो, सर्वदा ॥१॥
वृष्टि होवे निज समय पर, सस्य-मय भूमी बने।
विश्वमंडल में विभो! नर, एक ना भूखों मरे ॥ २ ॥
औषधें बलयुक्त हों, सुन्दर, सुखारी, गुणमयी।
रोग जावे देश से, औ स्वस्थता हो सब कहीं ॥३॥
दुग्ध की नदियाँ बहें, जन पुष्ट होवें पान कर।
आनन्द होवें हम सभी, सुख के तराने गान कर ॥४॥
शक्तिशाली देश हो, वरदान ऐसा दीजिये।
दीनता को दीनबन्धो! दूर अब तो कीजिये ॥ ५ ॥

"रत्नगर्भा" भूमि को अब, सार्थक कर दीजिये।
हे विभो! अब तो इसे, रत्नों स ही भर दीजिये ॥६॥
नाश हो अज्ञान तम का, ज्ञान के आलोक से।
उच्च हो जीवन हमारा, धर्म के संयोग से ॥ ७ ॥
दुर्विचारों को तजें, उत्तम हमारे भाव हों।
देशसेवा के लिये, अर्पण हमारे प्राण हों ॥ ८ ॥
न्यायपोषित कर्म हों, अन्याय-जड़ का मर्म हो।
द्वेष निकले देश से, सच्चा हमारा धर्म हो ॥ ९ ॥
देखते नववर्ष को, आशा भरे निज नेत्र हैं।
फिर निराशा हो न भगवन्! बस विनय यह एक है ॥१०॥

गोपीनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-कादम्बरी

[६]

और सुनिये, मेरे, यह विचार करते करते एक और घटना हुई। उस तालाब के पास ही तपोवन में जाबालि नामक एक बड़ा तपस्वी मुनि रहा करता था। हारीत नामक उसका पुत्र, उसी तालाब में स्नान करने की इच्छा से उस समय वहाँ आया। उसकी अवस्था तो थोड़ी ही सी थी, परञ्च सारी की सारी विद्याओं में, वह सनत्कुमार जैसा शुद्धचित्त था—सब विद्याओं में उसका निर्मल चित्त लगता था।

उसी मार्ग से और भी सवयस्क, ऋषियों के बालक उसके पीछे पीछे आरहे थे। अपनी तेजस्विता के कारण वह (हारीत) दूसरा अग्नि जैसा मालूम होता था। अतएव उसकी मूर्त्ति दुर्दर्शनीय थी—उसकी ओर टिकटिकी लगाकर नहीं देखा जा सकता था। वह, निकलते हुवे सूर्य-मण्डल से निकला हुवा जैसा मालूम होता था। बात यह है कि सूर्य की किरणों जैसी, उसके शरीर से तेज की किरणें निकलती थीं, अतएव वह, सूर्य-मण्डल से खींचा गया जैसा मालूम होता था। उसके शरीर के अवयव (हाथ, पैर आदि) तो इतने चमकीले थे कि बिजलियों से बनाये हुवे मालूम होते थे। और उसका शरीर, बाहर से सोने के गरम पानी से लिप्त हुवा जैसा मालूम होता था। बात यह है कि उसका शरीर इतना दमकता था कि मानों, सोने का झोल फेर दिया है। उसकी चमचमाती हुई, देह-प्रभा, पीली और बड़ी निर्मल थी। अतएव वह, नई-धूपवाले दिन के समान, दौंवाले वन को प्रकाश करता हुवा जैसा मालूम होता था, और वह, कन्धों तक लटकी हुई, जटाओं से युक्त था—उसके सिर पर बड़ी लम्बी लम्बी लटायें थीं। वे लटायें बहुत से तीर्थों में स्नान करने के कारण पवित्र थीं और तपाये हुवे लोहे के समान लोयरी थीं।

वह, अपना शिखा-कलाप—चुट्टा, बाँधे हुवे था और खाण्डव-वन को जलाने की इच्छा से कपट-पटु वेष बनाये हुवे, अग्नि जैसा मालूम होता था। बात यह है कि एक बार अग्नि-देव ने, किसी अपराध पर, ब्राह्मण का वेश बनाकर सारे के सारे खाण्डव-वन को जला डाला था। उस समय उन्हें वेष, अग्नि को धारण करना पड़ा था, उस वेष में भी वह हारीत, तुलना रखता था।

वह, मणियों की बनी हुई, दाहिने कान में लटकी हुई, अक्षमाला से शोभायमान था—अर्थात् दाहिने कान में एक छोटी सी रुद्राक्ष की माला पहिने हुवे था। वह माला, तपोवन की अधिष्ठात्री देवी के नूपुर जैसी प्रतीत होती थी, और धर्म की आज्ञा का कङ्कण जैसा मालूम होती थी, एवं संसार के सारे पदार्थों के उपभोग की निवृत्ति के लिये धारण की गई, मालूम होती थी।

वह, ललाटपट्ट (माथे) पर धारण किये गये, त्रिसत्य* जैसे भस्म के त्रिपुण्ड्र से भी अलंकृत था—वह, अपने माथे पर त्रिपुण्ड्र चढ़ाये हुवे था, मानो, त्रिपुण्ड्र के बहाने से वह, मानसिक, वाचनिक और कायिक, तीनों सत्यों का धारण किये हुवे था। और उसके बायें हाथ की हथेली स्फटिक मणियों के कमण्डलु से व्याप्त थी—अर्थात् बायें हाथ में एक कमण्डलु लिये हुवे था। वह कमण्डलु, आकाश में जाने के लिये, ऊपर को मुख किये हुवे, बलाका जैसा मालूम होता था। बात यह है कि कमण्डलु, बड़ी स्वच्छ स्फटिक मणियों का बना हुवा था, बलाका भी कुछ कम स्वच्छ नहीं होती, उसकी आकृति भी कमण्डलु से मिलती जुलती होती है। और आकाश में उड़ने के लिये, बैठी हुई तो वह निःसन्देह, कमण्डलु जैसी मालूम होती है, अतएव कमण्डलु, बलाका सा मालूम होता था। उस कमण्डलु की गर्दन उठी हुई थी, अतएव वह, स्वर्ग के मार्ग को दिखाता हुवा जैसा मालूम होता था—वह, ऊपर को

* मानसिक, वाचनिक और कायिक सत्य, त्रिसत्य कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्दन उठाकर बतला रहा था कि यही स्वर्ग का मार्ग है।

उसका देह, कन्धे पर लटके हुवे, काले काले मृग-चर्म्म से व्याप्त था—वह, काली मृग-छाला भी धारण किये हुवे था। उस मृग-चर्म की छवि, ऊपर से काली और भीतर से पाण्डु रङ्गवाली थी। अतएव वह, तप की तृष्णा से पान किये गये, भीतर प्रवेश करते हुवे, धूम-पटल (धुवाँ) जैसा मालूम होता था। वह हारीत, यज्ञोपवीत से भी बड़ा ही अच्छा मालूम होता था। वह यज्ञोपवीत, उसके बाँयें कन्धे पर लटका हुआ था, और इतना पतला तथा स्वच्छ, प्रतीत होता था कि नये बसींडों के तागों से बना हुवा है। और अपनी लघुता से तो वह, चञ्चल-वायुद्वारा, मांस-रहित, छीदी छादी पाँसुवों की हड्डियों को गिनता हुवा मालूम होता था।

उसका दाहिना हाथ, पलाश-दण्ड से व्याप्त था—वह, दाहिने हाथ में एक ढाक का दण्ड लिये हुवे था। उस दण्ड का अगला हिस्सा, देवताओं की पूजा के लिये, लिये गये फूलों से भरे हुवे, दौने से सनाथ था—दण्ड के अगले हिस्से में फूलों का दौना बँधा हुआ था।

उसके पीछे पीछे, तपोवन का ही एक हिरन आ रहा था। वह हिरन, सींगों से, उखाड़ी हुई, स्नान के लिये मृत्तिका धारण किये हुवे था—उसके सींगों पर मिट्टी लगी हुई थी। उस हिरन का मुनियों के साथ गाढ़ परिचय था, अतएव वह, मुनियों द्वारा, नीवार (वन की मूँजी) की मुट्ठियों से खूब मोटा ताज़ा किया गया था। उस समय, उसकी चञ्चल दृष्टि, कुशा, पुष्प और लताओं से खेद को प्राप्त हो गई थी—वह हिरन, फूल, कुश और लताओं को देख कर चौकन्ना हो रहा था।

उस मुनि-पुत्र का शरीर, वृक्ष के समान, कोमल वल्कल से आच्छादित था—वह, वल्कल ही का वस्त्र धारण किये हुवे था। और वह, पर्वत से भी तुलना रखता था। पर्वत, समेखल (निकट के पर्वत सहित) होता है। वह भी समेखल (तगड़ी सहित) था—मूँज की तगड़ी पहिने हुवे था। वह, राहु से भी समता रखता था। राहु असकृत (निरन्तर) सोम (चन्द्रमा) का स्वाद लेनेवाला—ग्रास करनेवाला है। वह भी असकृत (बहुत से) सोम (सोम नामक यज्ञों) का करनेवाला था। और वह, कमल-समुदाय से भी तुलना रखता था। कमल समुदाय, सूर्य-मरीचि-प (सूर्य-किरणों का पान करनेवाला) होता है। वह भी, सूर्य-मरीचि-प (सूर्य-किरणों की धूप के भय से रक्षा करनेवाला) था—धूप से अपनी रक्षा करता था।

अपूर्ण

वीर-वाणी

अरी ! चण्ड काली कराली कहाँ हो ?
निशुम्भार्दिनी शक्तिवाली कहाँ हो ?
कहाँ शूल है ? वो कहाँ खड्गधारा ?
कहाँ प्रास या कुन्त भी है करारा ? ॥१॥

तुम्हीं देवि ! हो सर्वथा शक्तिदात्री।
तुम्हीं सत्यश्रद्धावती दिव्यधात्री ॥
किये हैं तुम्हीं ने सदा से सहाय।
करो अम्ब कल्याणकारी उपाय ॥ २ ॥

बड़े वीर के वृन्द जो जङ्ग में हैं।
धनी वीरता के रँगे रंग में हैं ॥
उन्हें देवि ! दो शक्ति होवें विजेता।
बड़ों का सहारा महोत्साह देता ॥ ३ ॥

बढ़ो वीर बाँके ! लड़ाके ! हटा दो।
छली जर्मनी की घटा को घटा दो।
सदा सत्य से नीति से जीत होगी।
बनोगे विजेता यशोभागभोगी ॥ ४ ॥

हमारे बड़ों ने लड़ी है लड़ाई।
विजेता हुए लोक में कीर्ति पाई ॥
उन्हीं के बना रक्त से है शरीर।
उन्हीं की दया से हुये आप वीर ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चूको, बढ़ो, वीरता को न छोड़ो।
मरो, या कटो, धीरता को न तोड़ो।
महादर्प को जर्मनों के उड़ा दो।
जुटो जोर छक्के क्षणों में छुड़ा दो। ॥६॥
सदा देह ये रत्न पाना नहीं है।
इसे स्वर्ग को साथ जाना नहीं है॥
रहेगी नहीं नित्य है क्षीयमाण।
तजेंगे कभी देह का प्रेम प्राण॥ ७॥
मरो, या कटो, प्राण छूटें भला है।
तभी विश्व में कीर्ति भी निर्मला है॥
वही मृत्यु है जो कि संग्राम में हो।
वही प्रेम है जो कि श्रीराम में हो॥ ८॥
तुम्हें, स्वर्ग में, अप्सरायें विलोक।
गले से लगा के करेंगी विशोक॥
वहाँ सूर्य के लोक में मोद पाके।
रहो नित्य आनन्द की गोद जाके॥ ९॥
कलों में, छलों में, बलों में, बढ़े हैं।
घुसे भूमि में व्योम में भी चढ़े हैं॥
नहीं, किन्तु संख्या बढ़ी और भारी।
कहीं, मित्र-सेना, बढ़ी है हमारी॥ १०॥
सुनो भारतीयो! यशोधाम वीरो!
बढ़ो, जर्मनों का घना वृन्द चीरो।
हामान्य श्रीजार्ज के कार्य लागो।
लहो स्वर्गमाया मनोमोह त्यागो। ॥११॥
प्रजा का यही धर्म है मुख्य भारी।
सदा भूप के सौख्य से हो सुखारी॥
तजें प्राण सर्वस्व सम्पत्ति खोवें।
भले भूप के किन्तु कल्याण होवें॥ १२॥
सुनी राम की वीरता की कहानी।
महाभारती भी भलीभाँति जानी॥
नहीं है शरीरी अभी कीर्ति छाई।
उन्होंने बड़ी वीरता थी दिखाई॥ १३॥
तुम्हीं देश का शीश ऊँचा करोगे।
दिखा वीरता दुःख सारे हरोगे॥
यशोवाद की छा रहेगी पताका।
गड़ा स्तम्भ होगा कहीं वीरता का॥१४॥
सुनो, आर्यसन्तान की लाज रक्खो?
बना "जार्ज" के ताज का साज रक्खो।
इसीसे सदा राजसत्ता बढ़ेगी।
कला उच्चता पै तुम्हारी चढ़ेगी॥ १५॥
यही वृद्ध माता तुम्हें है सिखाती।
यही मार्ग उद्योग का है दिखाती॥
फटे जर्मनों की कड़ी आज छाती।
बड़े वीर बांके बनें पक्षपाती॥ १६॥
उड़े युद्ध में वीरता की कमाई।
रमा की कला भी रहेगी रमाई॥
करो प्राण का मोह क्यों आज मित्र!
मिला योग है युद्ध वाला विचित्र॥१७॥
अहा! फ्रांस की भूमि में आर्यवीर।
बड़ी वीरता से तजेंगे शरीर॥
हठी वैरियों को हरा के हटेंगे।
सभी जर्मनों को कटा के कटेंगे॥ १८॥
प्रभो! विश्वदर्शिन्! यही इष्ट पूर्ण।
करो वैरियों का महादर्प चूर्ण॥
महाराज! "श्रीजार्ज" का राज्य राजै।
हमारे लिये सौख्य सर्वस्व साजै॥ १९॥

महेश्वरप्रसाद शा

नास्तिकवाद का मूल इतिवृत्त

१—नास्तिक

नास्तिक का क्या लक्षण है? इस प्रश्न पर बहुत से मतभेद पाये जाते हैं। व्याकरण आचार्य श्रीपाणिनि मुनि नास्तिक शब्द की व्युत्पत्ति यूँ बतलाते हैं—

"अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः॥" ४.४.६०

इसका काशिकाकार ने ऐसा अर्थ किया है

"प्रमथासमर्थेभ्यः अस्ति-नास्ति-दिष्ट इत्येतेभ्यः स्येतिषष्ट्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः।

अर्थात् अस्ति-नास्ति-दिष्ट आदि शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। एवं च जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह आस्तिक, और जिसे बुद्धि नहीं है वह नास्तिक कहलाता है। केवल बुद्धि की सत्ता ही में यह प्रत्यय नहीं होता किन्तु परलोक की सत्ता के विषय में भी जिसे बुद्धि हो उसे आस्तिक और तद्विपरीत को नास्तिक कहना चाहिये। यह नाम शक्ति के स्वभाव से लब्ध होता है। अन्य व्याख्याता इस व्याख्या को न मानते हों यह बात भी नहीं है। अतः यही सिद्धान्त है कि जो परलोक-सद्भाव नहीं मानता वही नास्तिक है। मनुजी ने तो—

"योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः" २.११॥*

ऐसा कहते हुए 'वेद को अप्रमाण माननेवाले" पुरुष को नास्तिक कहा है। अतः उन्होंने 'वेदाप्रामाण्यवादी नास्तिकः' ऐसा नास्तिक का लक्षण किया है। कोई कोई 'ईश्वरनास्तित्ववादी नास्तिकः' अर्थात् जो ईश्वर को नहीं मानता उसे नास्तिक कहते हैं। उनके मत से तो सांख्य और मीमांसा-दर्शन पर भी नास्तिकदर्शनता का वज्रपात होगा। क्योंकि उक्त दोनों दर्शनकारों ने ईश्वर नहीं माना है, इसलिये, कोई भी आस्तिकम्मन्य ऐसा नहीं कह सकता।

अन्य आचार्य लोग, उक्त सब बातों का संग्रह कर स्वयं भी कुछ निवेश करते हुए इस तरह निष्कृष्ट नास्तिक लक्षण करते हैं—

"नास्ति परलोकः तत्साधनमदृष्टं,तत्साक्षी ईश्वरो
नेति मतिर्यस्य स नास्तिकः"

अर्थात् 'परलोक तथा उसका साधन-अदृष्ट, एवं तत्साक्षिभूत ईश्वर भी कोई पदार्थ नहीं है।' ऐसी बुद्धि वाला पुरुष नास्तिक शब्द वाच्य है। अतः एकदेशीय मत वाले भी ऐसा कहते हैं—

"परलोकतत्साधनाभाववादी, ईश्वरासद्भाववादी च नास्तिकः" इति।

उपरोक्त मतों पर विचार करने से यह मालूम होता है, कि पूर्वकाल में कर्मविधि का बहुत प्रचार होने से, तथा उनमें से बहुतों का फल केवल परलोकलभ्य होने से, उस समय परलोक में लोगों का विश्वास रहना अत्यन्त आवश्यक था अन्यथा कर्मानुष्ठान ही असम्भव था। परन्तु कालान्तर में अनुष्ठित अनेक कर्मों से इस लोक में वस्तुतः किसी फल के न दिखाई देने से, या अन्य कारण से, जिन लोगों की कर्म-विधि में श्रद्धा नष्ट हुई है, उन लोगों का क्रम से अलभ्य दर्शन फलप्राप्तिस्थानरूप परलोक में भी विश्वास न रहना असंभव नहीं है। जब कि बहुत परिश्रमों से साध्य योगादि कर्मों का वर्तमान में फल देखने की आकांक्षा रखने वाले उपरोक्त लोगों का मनोरथ सिद्ध नहीं होता, और उधर प्रतिपक्षी लोग, "कर्मफल देने में परलोक ही समर्थ है" इस प्रकार चिल्ला रहे हैं, तब आधुनिक पूर्वोक्त लोग कहते हैं कि जब परलोक ही कोई चीज़ नहीं है तब फल कैसा? और उनका यही सिद्धान्त भी है। तो ऐसी दशा में "नास्ति परलोकमतिर्यस्येति" कहना ठीक ही जान पड़ता है। एवं च 'नास्तिको वेदनिन्दक' इत्यादि मनुकृत नास्तिक-लक्षण भी युक्त ही है। क्योंकि जिन्होंने परलोक को तिरस्कारा वे परलोकप्रतिपादक वेद के निन्दक हैं यह कहना ही क्या है।*

'ईश्वरासद्भाववादी नास्तिकः' इत्यादि पूर्वोक्त लक्षण अर्वाचीन मालूम होता है। क्योंकि अध्वर मीमांसकानुष्ठित कर्मों में, ईश्वरप्रवेश का अवकाश नहीं है। साम्प्रत काल में उन उन यागादि कर्मों में ईश्वर-पूजन भी अर्वाचीनों ने कदाचित्

* मनुसंहिता में ३। १५०,८। २२, ३-६ इत्यादि स्थानों में भी नास्तिक शब्द का प्रयोग है। ले०

* मैत्र्युपनिषद् में लिखित विषय की तुलना करना चाहिये, ७।१०.

वक्ष्यामि जाजले वृत्तिं नास्ति ब्राह्मण नास्तिकः।
न यज्ञं च विनिन्दामि यज्ञवित्तु सुदुर्लभः॥" इति
महा० १२।२६६।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविष्ट कर दिया हो इस विषय का विशेष प्रपञ्च व्यर्थ है इसलिये इसे छोड़ आगे बढ़ते हैं। काल की गति से यही नास्तिक शब्द प्रत्येक धर्मानुरागियों ने अपने प्रतिपक्षभूत सम्प्रदायों पर लगाया है यह स्पष्ट है।

'लिङ्गार्चनपराः शैवाः नास्तिकाः सम्प्रकीर्तिताः ॥'

ऐसा माध्व लोग कहते हैं और—

तप्तमुद्राङ्कितततनुर्नास्तिकं धर्ममाश्रितः।
पशुतुल्यः सविज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥'

ऐसा शैव लोग भी कहने से नहीं चूकते। इसी तरह बहुत लोग प्रवाद करते हैं। परन्तु इस पर विवेचना करने से यह बात सहज ही में मालूम हो जाती है कि इन बातों का मूल कारण पारस्परिक द्वेष है। नास्तिक शब्द के प्रपञ्च द्वारा जो कुछ साधारणतः नास्तिकमत पर आक्षेप किया गया उसे आगे यथास्थान विस्तार से लिखा जायगा।

२—लौकायतिक।

लौकायतिक यह नास्तिकों का दूसरा नाम है। लोकायतमधीते वेद वेति [ठक् प्रत्यये] अर्थात् लोकायत शब्द से अध्ययन या जानने के अर्थ में ठक् प्रत्यय करने से लौकायतिक सिद्ध होता है। यद्यपि पाणिनि ने कण्ठतः इस शब्द की व्युत्पत्ति नहीं लिखी, तौ भी क्रतूक्यादि सूत्रान्ताट्ठक् ४.२.६. इस सूत्र से अपेक्षित क्रतूक्यादिगण में लोकायत शब्द का पाठ होने से वही व्युत्पत्ति इस शब्द में भी अभिप्रेत है।

३—लोकायतिक।

कहीं कहीं लौकायतिक के स्थान में लोकायतिक भी है। जैसे वेदान्त-दर्शन शारीरिकभाष्य में 'लोकायतिकानामपि चेतन एव देहः' २.२.२ इस सूत्र में। एवं "लौकायतिका देहव्यतिरिक्तस्यात्मनोऽभावं मन्यमाना,, ३.३.५३ इसी प्रकार महाभारत में भी है यथा—

नानाशास्त्रेषु मुख्यैश्च शुश्राव स्वनमीरितम्।
लोकायतिकमुख्यैश्च समन्तादनुनादितम् ॥ १.७७.४६

४—लोकायत

कहीं कहीं तो नास्तिक के पर्याय में 'लोकायत' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे वेदान्तसूत्र की रामतीर्थ कृत टीका (Colonel G.A.Jacob इनसे संशोधित पुस्तक में [पृ० १४१] लोकायतानां चार्वाकविशेषाणां मतभेदानाहेति। आचार्य श्रेष्ठ हरिभद्रसूरि भी स्वरचित "षड्दर्शन समुच्चय" में ८० श्लोक में ऐसा लिखते हैं—

लोकायता वदन्त्येवं नास्ति देवो न निर्वृतिः।
धर्माधर्मौ न विद्येते न फलं पुण्यपापयोः ॥ इति।

लोकायता—नास्तिका ऐसा उसकी टीका में भी लिखा है। इसी तरह श्रीहर्ष ने भी नैषधचरित में लिखा है १७।६४।

५—लोकायत शब्द का अर्थ।

लोकेषु—लोगों में, आयत—विस्तीर्ण-फैला हुआ, दर्शन या शास्त्र विशेष का नाम 'लोकायत' है। वह दर्शन या शास्त्र चार्वाक का है, ऐसा बहुत लोग मानते हैं। इसी से माधवीय सर्वदर्शनसंग्रह में लिखा है कि सर्व प्राणिमात्र—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?।

अर्थात् आमरणान्त सुख से जीवें मृत्यु से कभी न कभी होने ही को है। भस्मीभूत शरीर का पुनः आगमन कहाँ ? इसी गाथा के अनुसार नीतिशास्त्र, और कामशास्त्र को मानने वाले अर्थ काम दोनों ही को पुरुषार्थ समझकर परलोक को न मानते हुए चार्वाकमतावलंबी हो, ऐसे दिखाई देते हैं। इसी से इस चार्वाक मत का 'लोकायत' यह सार्थक नाम पड़ा है। अमर टीकाकार ने भी लिखा है—लोकायतं चार्वाकशास्त्रमिति" उसी के सम्बन्ध से उसके अनुगामी लोग लोकायित—लौकायितिक—वा लोकायतिक कहे जाते हैं।

ऐसा रहते भी लोकायत शब्द केवल चार्वाक शास्त्र या उस मतमात्र का बोध नहीं देता, किन्तु

Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारणतः तर्कशास्त्र भी इसका अर्थ है इसी से शब्दकल्पद्रुमकार ने लोकायतिक शब्द का तार्किकरूप अर्थान्तर दिखाकर उसपर हरिवंश का प्रमाण भी दिया है—

ऐक्यनामात्मसंयोगसमवायविशारदैः ।
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वनमीरितम् ॥ २४९।३०।
इति ।

तथा—

क्वचिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणान् तात सेवते ।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ॥

इस रामायण-श्लोक की तिलक नामक टीका में "लोकायतिक-चार्वाकमतावलम्बी प्रत्यक्ष ही को प्रमाण माननेवाले" ऐसा टीकाकार ने लिखा है। और लोगों ने लोकायतिक-शुष्कतर्कवादूकों के लिये लिखा है। इस उपरोक्त श्लोक में भी लोकायतिक पद से शुष्कतर्कवादी ही लेना चाहिये, इस बात को अग्रिम श्लोक प्रमाणित करता है—

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः ।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्तिते ॥ ३९ इति ।

इसे बौद्ध-साहित्य भी समर्थन करता है। उसमें लोकायत शब्द से वितण्डाशास्त्र लिया गया है। क्योंकि अभिधानप्रदीपिका में लिखा है—

"वितण्डाशास्त्रं विज्ञेयं यत्तल्लोकायतिकमिति" ।११२।*

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पहिले लोकायतिक शब्द शुष्कतर्कवादूकों में ही प्रयुक्त था, बाद साम्य से नास्तिकों में भी। क्रमशः यह शब्द दोनों का बोधक हुआ।

मैं समझता हूँ कि यही लोकायतापरनामक वितण्डाशास्त्र है। इसी को हेतुशास्त्र कहते हैं और धार्मिक लोग इसी की निन्दा करते हैं। यह निन्दा 'हेतुकान्, तर्कवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्' इत्यादि वाक्यों से प्रसिद्ध भी है। कहीं कहीं तो अच्छी युक्तियों से व्यवहार करनेवाले को भी हेतुशास्त्रवादी कहते हैं। यथा—

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रयिणः पूर्वे, परिषत् स्यात् दशावरेति ॥
मनु. १२।२११।९।

६—बार्हस्पत्य में बृहस्पति

बार्हस्पत्य नास्तिक का दूसरा नाम है। यह बात हेमचन्द्र ने कही है।

"बार्हस्पत्यस्तु नास्तिकः"

बृहस्पति ने नास्तिकवाद का उद्भावन किया यह सर्व प्रसिद्ध है। इसी से माधवाचार्य, नास्तिकशिरोमणि चार्वाक को बृहस्पतिमतानुसार ऐसा विशेषण देते हैं। दूसरे भी बहुत से तीर्थंकर जगह जगह पर नास्तिकवाद के उल्लेख में बृहस्पति के वचन या मत का उदाहरण देते हैं। यह समूल मैत्र्युपनिषद् में पाई जाती है। बृहस्पति, दैत्यों को नास्तिकवाद का उपदेश करते हैं जिसे पाठकों को हम थोड़े में दिग्दर्शन कराये देते हैं—

*बृहस्पतिर्वैशुक्रोभूत्वेन्द्रस्याभयाय, असुरेभ्यःक्षयायेमां विद्यामसृजत्। तया शिवं अशिवमित्युद्दिशंति,

---

* 'वितण्डसत्यं विज्ञेयं यन्तं लोकायतं इति'। यह मूल है।

*इन सब श्रुतियों का यह तात्पर्य है कि बृहस्पति ने दैत्यों के क्षय के लिये और इन्द्रादि देवताओं के अभय के लिये अविद्या उत्पन्न की जिससे लोक में वेदादि शास्त्र-हिंसक नास्तिक मत उत्पन्न हुआ, छान्दोग्य में भी ८।८ असुरों का देहात्मवाद है। उसमें ब्रह्मापर नामक प्रजापति दाता हैं। उस आख्यान का यह सार है—कि देवताओं में इन्द्र तथा असुरों में विरोचन, ये दोनों आत्मतत्व जानने की इच्छा से हाथ में कुश ग्रहण किये हुए प्रजापति के पास जाकर बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहे। तब प्रजापति ने पानी में प्रतिबिम्ब दिखा कर उन दोनों को "यही आत्मा है" ऐसा उपदेश किया। वे दोनों भी अपने को कृतार्थ समझ कर चल दिये। प्रजापति ने, ये दोनों भोगासक्ति में इस बातको कदाचित् भूल जायँगे, इस शङ्का से चित के दुःख को दूर करने की इच्छा करते हुए (उन दोनों के दूर जाने पर भी वे जिसमें सुन सकें) ज़ोर से इस प्रकार कहा—"ये दोनों इन्द्र और विरोचन [illegible] आत्मा को न जान कर विपरीत ज्ञानयुक्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशिवं शिवमिति । वेदादिशास्त्रहिंसकधर्माभिध्यानमस्त्विति वदंति। अतोनैनामधीयेत अन्यथैषा वन्ध्यैवैषा, रतिमात्रं फलमस्यावृत्तच्युतस्येव नारम्भणीयेत्येवं ह्याह—

दूरमेते वीपरीते विषूची, अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सितं नाचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्ते॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

अविद्यायामन्तरे वेष्ट्यमानाः
स्वयन्धीराः पंडितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनेव नीयमानायथान्धाः॥ इति।

महाकवि मोक्षमूलर ने लिखा है कि प्रजापति के समान देवता द्वारा दैत्यों का वञ्चन अनुचित है, इसलिये अर्वाचीन उपनिषद् में असुरों के अविद्यादाता बृहस्पति कहे हैं। मैत्र्युपनिषद् छान्दोग्य से अर्वाचीन है यह स्पष्ट ही है। ऐसे तो बृहस्पति बहुत से शास्त्र में पाये जाते हैं। जिनमें से एक वह हैं जिनका धर्मशास्त्र है। दूसरे देवताओं के गुरु प्रसिद्ध बृहस्पति महाभारत में अहिंसापाश्रय धर्म के उपदेष्टा हैं। जो उपदेश बौद्ध के समान है। और भी एक बृहस्पति हैं जो महाभारत में उशना के साथ वञ्चनाशास्त्र कार कहे गये हैं और जिन्होंने स्त्रीबुद्धि के अनुसार अर्थशास्त्र बनाया है। ऋग्वेद में बृहस्पति के नाम से दो ऋषि प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक आंगिरस (१०. ७१) दूसरे लौक्य (१०. ७२) इस लौक्य के लौकायतिक में कोई संबन्ध है या नहीं यह विचारणीय है। उनके सूक्तों में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता जिससे नास्तिक का गन्ध भी मालूम पड़े। बृहस्पति नाम की एक देवता भी ऋग्वेद में पाई जाती है ८।६७।१५। यदि खोज किया जाय तो मेरी समझ से और भी बृहस्पति शास्त्र में मिलेंगे। इसलिये इस बात का निर्णय करना कठिन है कि कौन बृहस्पति नास्तिक मत के प्रचारक हैं? महाभारत में १३।३६।८ वञ्चनाशास्त्रकार जो कहे गये हैं वह कदाचित् इस पद के भाजन हों, या मैत्र्युपनिषद् में लिखे बृहस्पति ही नास्तिकाचार्य हों, ऐसा कहना बुरा न होगा।

जो देवताओं के आचार्य और पुरोहित थे उनके नाम से नास्तिकवाद का प्रचार होना बड़ा ही आश्चर्यकारक है। नहीं मालूम होता कि इसमें उपनिषद्कारों का क्या आशय है?

(अवशिष्ट आगे)

दुण्ढिराज शास्त्री

घर जा रहे हैं? देवता और दैत्यों में जितने ऐसे आत्मज्ञानी होंगे वे नष्ट हो जायँगे। बाद अपने (इस बात को न सुन) घर पहुँच विरोचन ने दैत्यों को इस तरह देहात्मोपनिषद् कहा—हे दैत्यों! इस लोक में आत्मा ही पूज्य और सेवनीय है। आत्मा ही की सेवा से मनुष्य को इस लोक तथा परलोक की प्राप्ति होती है"। इति। इसी के अनुसार यह सम्प्रदाय आज तक चला आता है। लोक में भी उसी को शिष्ट लोग आसुर कहते हैं जो दान-श्रद्धा-हीन तथा अयजनस्वभाव हो। लेखक

समस्या-पूर्ति

कई वर्ष हुवे रियासत साहनपुर में रईस साहब के यहाँ किसी अनुष्ठान के निमित्त अनेक प्रसिद्ध पण्डित उपस्थित हुए थे। मुझे भी निमन्त्रण-पत्र आने के कारण वहाँ जाना पड़ा था। सब पण्डितों ने मिलकर मेरी कवित्वशक्ति का परिचय लेने के लिये स्वर्गीय पं० बदरीदत्त जी (जो मेरे श्वशुर होते थे) के द्वारा एक समस्यापूरण करने को मुझे दिलाई। जो परमेश्वर की कृपा से चार रोज में मैंने पूर्ण की थी। आज वह पुरातन समस्यापूर्ति वाग्विलास आप लोगों की सेवा में समर्पण करके मैं अपने को सफलपरिश्रम बनाना चाहता हूँ। आशा है कि रसिक जनों की सौम्य दृष्टि पड़ने पर यह नीरस काव्य भी सरस ही प्रतीत होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगेगा। समस्या थी संस्कृत में मालिनी छन्द का एक पाद-रूप, यथा—

"प्रविशति जलमध्ये शीतभीता मृगाक्षी" इति

इसका अर्थ यह है कि शीत से भीत, कोई मृगलोचना जल में प्रवेश करती है। अन्य समस्याओं की अपेक्षा इस समस्या में इतनी और भी विलक्षणता थी कि शीत से भीत का जल में प्रवेश असङ्गत है। इस असङ्गत को ही सङ्गत करके दिखलाना कवि के शिर पर कठिन भार था। इस समस्या की पूर्त्ति-रूप चार श्लोक जिनके अन्त का पाद यही एक है, ये थे—

अतिशिशिरसमीरे, वातिवीतोत्तरीया,
दरधुतकरिशुण्डादण्डरम्योरुयुग्मा ॥ २ ॥
उषसि विहितमाघस्नानहेतोः कथञ्चित्,
"प्रविशति जलमध्ये शीतभीता मृगाक्षी" ॥

अर्थ—अति शीतल वायु चलते हुए दुपट्टा उतार कर हाथी की सूँड की समान रम्यजघन जिसके कुछ भय से काँप रहे हैं ऐसी मृगनयना प्रातःकाल में शास्त्रविहित माघस्नान के हेतु शीत से भीत होने पर भी कष्ट से जल में घुसती है ॥ १ ॥

मधुरमधुरगीतं, वेणुगीतं निशम्य,
स्मृतहरिचरणाब्जा मार्गमन्वेषयन्ती।
शशिकरधवलायां रेणुबुद्ध्या रजन्याम्,
"प्रविशति जलमध्ये शीतभीता मृगाक्षी" ॥

अर्थ—कोई मृगनयना गोपी, वन में कृष्ण की बाँसुरी का मधुर मधुर गाया हुवा गीत सुन कर, श्रीकृष्ण के चरण-कमलों को याद करके, मिलने की इच्छा से उनका मार्ग ढूँढती हुई, शरद की चाँदनी रात्रि में शीत से भीत होने पर भी रेणु समझ कर जल में घुसती है। तात्पर्य यह है कि जल और रेणु, चाँदनी में समान जान पड़ते हैं अतः गोपी को भ्रम हुआ है ॥ २ ॥

विहरति यमुनायां, कालियं जेतुकामे,
व्रजयुवतिसमूहोन्वेष्टुमभ्याजगाम।
समभवदलमेका नैव गन्तुं यथा न।
"प्रविशति जलमध्ये शीतभीता मृगाक्षी" ॥

अर्थ—कालिया नाग को जीतने की इच्छावाले, कृष्ण के यमुना में विहार करने पर, गोपी-गण, भगवान् को न देख, ढूँढने को वृज के बाहर आया। परन्तु कृष्ण के पास जाने को एक भी गोपी समर्थ न हुई। जैसे शीत से भीत मृगलोचना जल में प्रवेश नहीं करती। यहाँ तृतीय पाद के अन्त में नकार लगाकर चौथे से अन्वय करके यथा के प्रयोग से उपमान खण्डरूप बना दिया है ॥ ३ ॥

गतवति ऋतुराजे, वर्द्धमाने निदाघे,
कर-निहित-मृणाली, काम-केलिं विधाय।
अरुजलयुतवक्त्राम्भोरुहासाऽपराह्णे,
"प्रविशति जलमध्येऽशीतभीता मृगाक्षी" ॥

अर्थ—वसन्त समाप्त होने पर और ग्रीष्म के प्रौढ होने पर हाथ में कमल-नाल लिए कामक्रीड़ा करके, पसीने से युक्त मुखरूप कमलवाली, वह मृगाक्षी, मध्याह्न के अनन्तर, अशीत (गर्मी) से भीत हो जल में प्रविष्ट होती है। यहाँ पदच्छेद में अशीत पद निकाला है ॥ ४ ॥ इति *

वासुदेव उपाध्याय

महावीर अर्जुन

इन्द्र के कथनानुसार अर्जुन, विधिवत् एक पैर से खड़े होकर, शिवजी की आराधना करने लगे। इसी तरह करते करते, इन्हें बहुत दिन बीत गये। वन-वासी तपस्वी, इन्हें देख कर बड़े चकराये। वे यह न पहिचान सके कि यह अपूर्व तेज वाला कौन है? विवश बेचारे, शिवजी के पास आये और प्रणाम करके चुप चाप बैठ गये। थोड़ी देर के बाद कहने लगे—महाराज! सूर्य के तेज को भी तिरस्कार करने वाला, एक बहुत ही

* कहीं कहीं अध्याहार क्लिष्टतादि दोष भासमान भी समस्याविषय में अदोष है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिष्ठ पुरुष, आज कल वन में तप कर रहा है। उसका वेष, बड़ा विचित्र है। वह, धनुष और तलवार ले रहा है। कवच, पहिन रहा है। जटा भी धारण किये हुवे है। मृग-चर्म भी उसके पास है। आश्चर्य इस बात का है कि मुनियों से विरुद्ध वेष, उसे कुछ बुरा नहीं लगता, उल्टा उसे सजा रहा है। वह, अपूर्व शक्तिवाला है। उसके चलते समय, पृथ्वी चलती सी मालूम पड़ती है। हमें उसकी बातों से यह प्रकट होता है कि वह, थोड़े ही दिनों में सारे संसार को अपने वश में कर लेगा। और न मालूम वह, सारे लोकों को जीतना चाहता है किंवा संहार करना चाहता है। उसके मन की वही जाने। हम तो उसकी रुचि को पहिचान नहीं सके।

अब आप क्यों चुप हैं? कृपया बतलादीजिये न, कि यह क्या मामला है? यह कहकर मुनि-समाज, मौन होगया और शिवजी कहने लगे—

उसे केवल पुरुष ही पुरुष मत समझो! वह, विष्णु का अंशभूत है। और अपने प्रबलशत्रुवों को परास्त करने के लिये, मेरी उपासना कर रहा है।

ओहो!! तपश्चर्या करते हुवे अर्जुन को कोई देवता समझ कर, मूकासुर उसे मारने के लिये आरहा है। चलो तुम भी चलो!! उसके बल को देखना! अहा! गुहा में भी मूकासुर, अर्जुन को क़ाबू में नहीं कर सका। अतः अब यह वराह का रूप धारण कर, इसे पराजित करना चाहता है। अच्छा, अर्जुन का बल देखने के लिये, अब हम एक और ही चाल खेलते हैं। हम भी एक भील का वेष बनाये लेते हैं। अब हम और अर्जुन दोनों एक श्रेणी के शिकारी का काम करेंगे। एक ही शिकार पर जब दो शिकारी हों और एक शिकारी का निशाना उसपर ठीक बैठ जाये, तो दूसरे शिकारी को स्वतः ही उससे स्पर्धा होजाया करती है। तप करने से अर्जुन यद्यपि बहुत कृश होगया है तथापि तुम लोग इसके स्वाभाविक पराक्रम को देखना!

मुनियों से यह कह कर, अनेक रूप-धारी सर्व-शक्तिमान् शिवजी ने किरात-नृपति का वेष आ की आन में धारण कर लिया। और अपने प्रम गण तथा मुनियों को महाराज ने अपनी सेना बना ली।

ऐसा कर लेने पर शिवजी अपनी, भील रूपिणी सेनासहित, वहाँ पर्वत पर शिकार के बहाने घूमने लगे। डर के कारण सिंह, पक्षी और मृगों के यूथ के यूथ शब्द करते हुवे भागने लगे। मानो, वह, पर्वत भी भय से चीख़ने सा लगा। आश्चर्य है कि उस समय, एक ही मार्ग में भागते हुवे, सिंहों ने मृगों पर आक्रमण नहीं किया। प हाँ, उन बेचारों को तो अपनी ही जान के लाले पड़ रहे थे। ठीक है, आपत्ति के समय, प्राणी अपने स्वाभाविक वैर को भी भूल जाया करते हैं। इसी तरह, उस पर्वत के सारे प्राणियों के दिल हिलाते हुवे, शिवजी महाराज अपनी सेनासहित अर्जुन की विश्राम-कुटी पर पहुँच गये।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने, वराहरूपधारी एक दानव को, अर्जुन की तरफ़ आता देखा। यह देख कर उन्होंने, अपनी सेना को तो गंगा के पास छोड़ दिया। और थोड़े से भीलों को लेकर छुपे छुपे उसके पीछे पीछे चले गये। इधर अर्जुन ने वराह को आते देखा। वराह के बड़े बड़े लम्बे दाँत थे, और रूंगटे खड़े हो रहे थे। उसे देखकर अर्जुन ने अपने मन में विचार किया—

युद्ध के लिये, मुझे बुलाता सा हुवा, यह अकेला ही मेरे सामने आरहा है। देखने में यह बड़ा बलवान् मालूम होता है। यहाँ आश्रमों में तो, मुनियों के सत्संग से कहिये या तप के प्रभाव से, सिंहादिकों ने भी हिंसा छोड़ रक्खी है। फिर यह क्या भेद है? कि यह मेरे सामने को चला आरहा है। सम्भवतः कोई दैत्य, अपनी माया फैला रहा हो! मेरे पास हथियार हैं, इस लिये इसे मेरे सामने न आना चाहिये परन्तु मैं देखता हूँ कि यह मेरे सामने ही को आरहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आही! नहीं, मुझे दीखता है कि यह मुझे मारना चाहता है। मेरा चित्त ही इस विषय में प्रमाण है कि वह, इसे देख कर क्षुभित होता है। यह विचार तो कोरा विचार ही विचार है कि मैं मुनि हूँ। अतः मैंने जब इसका कोई अपराध ही नहीं किया, तो मुझे क्या भय? यतः ऐसी बातें, मङ्गल-कारिणी नहीं हुवा करतीं। दुरात्माओं को कुछ भी अकार्य नहीं होता। वे न मालूम ज़रा ही देर में क्या कुछ कर डालें? और हम अपने मुनित्व ही के गण्डे पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। परिणाम यह ही कि वह अपना अभीष्ट कर गुज़रे। मेरी राय में वैसे इसे कुछ तुच्छ भी न समझना चाहिये। अवश्य यह कोई दैत्य या निशाचर है। कारण, वन के प्राणी में इतना बल ही नहीं हो सकता। और यह तो पर्वत को भी कँपा रहा हो, ऐसा मालूम होता है। इसीने अपनी माया से एक दूसरा शिकारी भी ला खड़ा किया है। वन-जन्तुओं के नाद को भी सम्भवतः यही करा रहा है। अथवा यह कोई, दुर्योधन ही का तो पिट्ठू नहीं है।

कोई भी हो, मुझे इसको मार डालना चाहिये। यतः शत्रु का मारना भी एक बहुत बड़ा लाभ बतलाया करते हैं। मुझे इस बात की ज़रा भी परवाह न करनी चाहिये कि हिंसा, तप के प्रतिकूल होगी। यतः व्यासजी ने मुझे यह उपदेश दिया था कि "विजय के लिये तप करो? वह, इसके मारे विना होना असम्भव है। विना मारे यह कुछ न कुछ झगड़ा करता ही रहेगा।

यह विचार कर, अर्जुन ने धनुष उठाया और बाण चढ़ाया। इनके बाण चढ़ाने पर सारे पर्वत पर हलचल मच गई। शिवजी ने भी इन्हें बाण चढ़ाते हुवे देखा। इधर से शिवजी ने बाण चढ़ाया। उनका धनुष, विलक्षण ही था। साँप से आपने, धनुष की प्रत्यंचा का काम लिया। साँप का मुख ही उस धनुष में ग्रन्थि थी। और आग ही उस विकट धनुष के बाण थे।

वराह के एक तरफ़ गुप्तरूपेण शिवजी, और एक तरफ़ अर्जुन हो गये। दोनों के बीच में आकर बेचारे वराह की कचाई आ गई। इतने ही में शिवजी का बिजली की तरह से वराह पर बाण छूटा। बाण का छूटना था कि सारे आकाश में आग सी लग गई। और साँप बेचारों के, यह समझकर कि कहीं गरुड तो नहीं आ गया! दिल हिल गये। इधर, बाण वराह का काम तमाम करके ज़मीन में धँस गया। साथ ही साथ—उसी समय—एक आध सेकेण्ड बाद, वराह पर अर्जुन का चमचमाता हुवा बाण छूटा। उसने भी ज़रा देर आकाश में आग सी लगा कर, निर्यियासु-प्राण वराह पर प्रहार किया। वराह, यके बाद दीगरे—लगातार, दो बाण खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

अर्जुन के पास यद्यपि और भी बहुत से बाण थे, तथापि वह, उस बाण को लेने के लिये, झपट कर वराह के पास आये। और मन ही मन में प्रसन्न होते हुवे, बड़े शौक़ के साथ उसे देखने लगे। इतने ही में इन्होंने एक बड़े ही ख़ूबसूरत वनचर को देखा। उस (वनचर) ने बड़ी नम्रता के साथ, इन्हें प्रणाम किया और वह, यूं कहने लगा श्रीमन्! आपकी आकृति ही यह बतला रही है कि आप शान्त, विनययुक्त एवं प्रबल प्रतापी हैं। सचमुच, वैसे तो आप मुनि हैं पर अपने तेज से राजाओं को भी मात कर रहे हैं। निःसन्देह आपके लिये मुक्ति कुछ दूर नहीं है। पर क्षमा करना! यह बड़ा ही अनुचित है कि आप हमारे स्वामी के इस वराह-भेदी बाण को चुरायें। मन्वादि राजाओं की बातें क्या आपको याद है? बतलाइये तो, यदि आप ही उनपर नहीं चलेंगे, तो फिर ऐसा वैसा कौन चल सकता है? हाँ, यह अवश्य है कि इस बाण की आकृति, आप ही के बाण के सी है। और उसी भूल में आप ऐसा कर बैठे हैं। आप सहृदय हैं, अतः पहले तो आपको इसी से शरमाना चाहिये था कि दूसरे के मारे हुवे शिकार में आपसे बाण छोड़ने का अनुचित साहस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। और उसपर यह, कि आप दूसरे के बाण को भी लेना चाह रहे हैं। (हँसता हुआ) आपका यह साहस, धन्यवाद के योग्य है।

हमारे स्वामी तो इतने सुशील हैं कि वह दूसरों के दोष की तरह, अपने गुण को प्रकट करना ही नहीं जानते। मुझे भी यह आपसे कार्य-वश ही कहना पड़ा है। वस्तुतः हमारे स्वामी, यदि इस वराह पर प्रहार न करते तो आपकी यह क्या दशा करता, सो तो मैं कह भी नहीं सकता! एक और बात है। हमारे स्वामी के विना, एक ही बाण से इस वराह का मार देना ज़रा टेढ़ी खीर है। मेरी राय में आप इस सच्ची बात को स्वीकार करलें कि वराह के मारने वाले हमारे स्वामी ही हैं। और उनके इस बाण को देदें। निष्कारण ही उन्हें, आपको शत्रु न बना लेना चाहिये। प्रत्युत उन्हें, आपको मित्र बनाने की ज़रूरत है। आप कह सकते हैं कि अच्छा, 'मारने वाले तुम्हारे स्वामी ही मान लिये जायें, तब भी उन्हें मित्र बनाने की ऐसी कौनसी ज़रूरत है? नहीं, यह बात नहीं है, मित्र का मिलना बड़ा दुर्लभ है। पुरुष को उसकी बड़ी ही ज़रूरत है। निःसहाय पुरुष की लक्ष्मी और पृथ्वी को, बलवान् शत्रु प्रायः छीन लिया करते हैं। "मैं तो मुमुक्षु हूँ। अतः मुझे मित्र की क्या आवश्यकता है?" यह विचार भी आपका ठीक नहीं है। विजयार्थ ही तो आप यह तपश्चर्या कर रहे हैं! अन्यथा, मुमुक्षु पुरुष, शस्त्र ग्रहण नहीं किया करते। मेरा विश्वास है कि आप हमारे स्वामी को मित्र बनाकर इस तप-श्चर्या का सारा फल प्राप्त कर लेंगे। मैं आपसे उनके इस बाण को जो माँग रहा हूँ इससे आप कहीं यह न समझ लें कि वह निर्धन हैं। उनके पास असंख्य, रत्न और हाथी घोड़े हैं। यह तो मैं इसलिए लेता हूँ कि उन्हें न्यायप्रतिकूल बातें ज़रा अच्छी नहीं लगा करतीं। और आप इन बातों से उन्हें कहीं लोभी भी न समझ लें। धन तो क्या, वह याचक के लिए प्राण तक देने को तैयार हैं। अब आप मुझे उनके इस बाण को दीजिये। इसके देने ही से राम और सुग्रीव की तरह से आपकी मित्रता हो जायगी। और यदि आप बाणों ही का संग्रह करना चाहते हैं तो हमारे स्वामी ही से क्यों नहीं ले लेते! उनके पास बाणों की कमी नहीं है। और वह, आप जैसे मित्र को सब कुछ देने के लिये तैयार होंगे। यही नहीं, वह, बाण-विद्या के भी बड़े अच्छे ज्ञाता हैं। आपने उनके शिकार पर जो अनुचित प्रहार किया है उसे वह क्षमा कर देंगे। बुरा न मानना!

आप के इस वेष के, ये बातें सर्वथा विरुद्ध हैं। मैं पूँछता हूँ कि आपने इसपर क्यों बाण किया? यह माना, कि यह आप ही की तरफ़ को आरहा था। आने देते! क्या हरज था? इसे मार दे देते न कि इसपर बाण छोड़ बैठते!

अच्छा, बस, सार बात यह है कि आप सज्जन हैं। अतः आप अपनी इस चञ्चलता को छोड़ दें। बार बार अब ऐसे कौन क्षमा करेगा? सम्भवतः किसी को ग़ुस्सा भी आ जाय। यह न समझना कि एक भील, मेरा कर ही क्या सकता है? उन्हें आप एक साधारण भील न समझें। इन्द्रदेव ने पृथ्वी की रक्षा करने के लिये बड़ी प्रार्थना करके उन्हें यहाँ पर्वत पर भेज दिया है। आपका अपराध क्षमा कर दिया गया। अब आप बाण दे देवें। वह देखिये, सामने वृक्षों की आड़ में खड़े हैं।

महावीर अर्जुन को किरात की बातें सुनकर बड़ा क्रोध आया। पर यह, उसे मन ही मन में छिपाकर यूं कहने लगे—

किरात! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। वस्तुतः तुम्हारी उक्ति में इतना रस है कि वह, मित्र को मित्र, शत्रुवों को भी प्रसन्न कर सकती है। विद्वानों की मनोगत बात को योग्य रीति से कह देना कोई सहल काम नहीं है। हर्ष है कि तुम उसमें यथाशक्ति कृतकार्य हुवे हो। वैसे तो तुम वन के रहनेवाले हो, पर सचमुच, उक्तिवैचित्र्य में तुमने नागरिकों को भी मात कर दिया!! तुमने यद्यपि ये सारी बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनी बातें स्वार्थवश कही हैं, पर बाह्य, दृष्टि से यह ऐसी नहीं मालूम होतीं। बाह्यदृष्टि से यह न्यायोचित सी ही जँचती हैं। मुझे आश्चर्य है कि तुम जैसे योग्य भृत्य ने अपने स्वामी को, इस अनुचित मार्ग पर चलते हुवे क्यों नहीं रोका! आखिर तुम्हारा भी तो यह कर्तव्य था कि तुम उन्हें रोकते। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि बाण दोनों के छूटे। एक बाण लापते है और एक यह मौजूद है। उचित तो यह था कि उस लापते बाण को ढूँढ़ा जाता। सज्जनों का यह काम नहीं है कि निरर्थक ही किसी को दोष लगाया जाय। यह चुरानेवाला वाक्य, तुम्हारा बड़ा ही अनुचित है। मुझे अग्नि देव ने ही इतने बाण दे दिये हैं कि किरात बेचारा तो दूर रहा, देवताओं तक के बाणों की मैं इच्छा नहीं करता। तुम जो मुझे मन्वादि राजाओं का स्मरण कराते हो। तुमने स्वयं ही उनका स्मरण क्यों नहीं किया! मुझे विना सोचे समझे ही तुम ने कैसे चोर बतलाया? सज्जन पुरुष तो सदा गुण-गायक ही हुवा करते हैं।

यह बात तो तुम्हारी केवल हँसी ही दिलाने वाली है कि "यह उनका शिकार था।" वनवासी जन्तु किसी एक के शिकार नहीं होते! जिसने मार लिया, उसी का शिकार है। इस वराह में "यह मेरा शिकार है" इस अभिमान को तुम्हारे स्वामी को छोड़ देना चाहिये। "किसी को भी मार्ग मत देना?" यह महर्षि व्यास ने मुझे उपदेश दिया था। और फिर यह तो मुझे उलटा मारना चाहता था। इसे मैंने मार दिया तो क्या बुरा किया? यह तो तुम भी देख ही रहे थे कि दोनों के एक ही साथ बाण लगे हैं। फिर इसमें क्या प्रमाण है कि तुम्हारे स्वामी के बाण ने इसे मारा, या मेरे बाण ने? तुम्हारी यह बात, बिलकुल झूँठी है कि तुम्हारे स्वामी ने मुझे बचाने के लिये, वराह पर प्रहार किया। वह व्याध हैं, अतः व्याधों का यह स्वभाव ही होता है कि शिकार खेलते फिरा करें। हाँ, मेरे पास यदि हथियार न होते तब तो मैं यह बात बड़ी खुशी से मान लेता कि मेरे बचाने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया। मैं पूछता हूँ कि जब मेरे पास अपनी रक्षा के लिये स्वयं ही हथियार थे, तब उन्हें इस कृपा के दिखाने की क्या ज़रूरत थी? तुमने जो यह बात कही है कि "उनसे आपको बाण माँग लेना चाहिये" यह बड़ा ही अनुचित कहा! मनस्वियों को ऐसी बातें न कहनी चाहियें। हम (क्षत्रिय) लोग तो ज़बरदस्ती छीना करते हैं। माँगने में हमारी प्रवृत्ति नहीं होती। हम माँगना और मरना बराबर समझते हैं।

मैं तो यह समझता हूँ कि बैठे बिठाये फ़िज़ूल ही तुम्हारे स्वामी, राड़ बाँधना चाहते हैं। अच्छा है, यह कोई नई बात नहीं है। "विनाश-काले विपरीत-बुद्धिः" हो ही जाया करती है। मुझे आश्चर्य है कि तुम्हारे स्वामी ने मुझसे अकेला बाण ही क्यों माँगा! तलवार, धनुष और कवच सब चीज़ें माँगना चाहिये थीं। जिससे उनका कुछ काम तो सिद्ध हो जाता। यदि वह स्वयं बलवान् हैं तो माँगने की क्या ज़रूरत है! उन्हें बल से छीन लेना चाहिये। वीरम्मन्यों को माँगना कुछ अच्छा नहीं लगता! तुमने उन्हें मेरा मित्र होने योग्य कैसे बतला दिया? जो तप करते हुवे, मुझसे निरर्थक ही स्पर्धा करते हैं। देख जलनेवाले पुरुष, मित्र बनाने योग्य नहीं होते। दूसरे कहाँ मैं, और कहाँ वह। मैं जाति का क्षत्रिय हूँ और वह व्याध। मेरी उनकी मित्रता कैसी? नीचों की ऊँचों से मित्रता नहीं हुवा करती। हाथी, गीदड़ों को अपना मित्र नहीं बनाया करते। इसलिये मुझे इस मित्रता से क्षमा करो? यह और बतलाये देता हूँ कि मैं तुम्हारे स्वामी को व्याध समझ कर उनके इस अनुचित आक्षेप करने को क्षमा करता हूँ। सचमुच यदि वह अब भी बाण लेने की इच्छा करेंगे तो ज़हरीले साँप के मुँह में से मणि निकालनेवाले पुरुष की जैसी दशा हो जायगी।

अर्जुन से इस प्रकार फटकारा हुवा दूत, अपने नृपति के पास आया। उन्हें भी यह बात असह्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम हुवी। सेना को आज्ञा दी गई। सेना भी समुद्र की तरङ्गों की तरह से नाद करती हुवी अर्जुन की तरफ़ को चल दी। बड़ा भीषण युद्ध हुवा। बाणों की ख़ूब वर्षा हुवी। किरात बेचारे बड़े जी तोड़ कर लड़े। पर उनका महावीर अर्जुन के बाणों ने दिल हिला दिया। अतः डर कर भागने लगे। यह देख कर स्वामिकार्तिकजी का चित्त कुछ दुःखी हुवा। और वह प्रमथादिकों से यूँ कहने लगे—

तुम लोग तो सुरत और समर को एकसा समझनेवाले थे! फिर यह क्या बात है? जो अपने उस प्रथित यश को यूँ डुबो रहे हो! देखो तो, तुम्हें देख कर तुम्हारे यह खड्ग भी हँस रहे हैं। यह, राक्षस, दैत्य अथवा कोई हाथी तो है ही नहीं, एक साधारण मनुष्य है। फिर क्यों डरते हो? क्या तुम स्त्रियों की तरह से यह समझते हो कि हम अनाथ हो गये। इसलिये भागते हैं। वह देखो! तुम्हारे पीछे शिवजी खड़े हैं। बड़े बड़े युद्धों में तुमने अपने प्रशस्य वीरत्व का परिचय दिया है। फिर अपने उस पौरुष को क्यों वृथा ही खोते हो?

इस प्रकार स्वामिकार्तिक के निषेध करने पर, शिवजी गणों को रोक कर, मुसकराते हुवे ठहर गये। उन्होंने भी गणों का ढारस बँधाया। तब कहीं बेचारे वे ठहरे। इसके बाद शिवजी ने बाण छोड़ने प्रारम्भ किये। सारा पर्वत जलने लगा। दोनों (अर्जुन और शिवजी) अपना युद्ध-कौशल दिखाने लगे। शिवजी ने अपने प्रबल बाणों से सूर्य के मार्ग को भी रोक दिया। इधर अर्जुन के बाण उनकी काट करने लगे।

युद्ध करते करते अर्जुन का पाला ज़रा दब सा गया। पर यह घबराये नहीं। हिम्मत बाँधे लड़ते ही रहे। लड़ते लड़ते जब यह थक गये तो उन्हें गुस्सा आ गया और इनकी आँख, नाक और मुँह से आग सी निकलने लगी। शिवजी को, इन्हें मारना तो था ही नहीं, वे तो इनका पराक्रम देखना, नहीं नहीं दिखलाना, चाहते थे। अतः वे, बड़ी योग्यता के साथ, केवल अपना युद्ध-कौशल ही दिखाते रहे। उन्होंने एक भी प्रहार न किया। इन बातों से शिवजी ने मुनि को यह अच्छी तरह दिखला दिया कि अर्जुन विष्णु का अंशावतार है। इधर अर्जुन, शिवजी के युद्ध कौशल को देखकर मन ही मन में विचार करने लगे। यह क्या कारण है? जो मेरा आग्नेय अस्त्र अपना काम नहीं करता। आश्चर्य है कि इस युद्ध में, मृत्यु भी अपना मुँह नहीं फैलाता! और मैं और मेरी युद्ध-शक्ति भी इस युद्ध में कुछ हीन सी मालूम होती है। यह क्या भेद है, कुछ समझ नहीं आता। यह कोई माया तो नहीं है! मैं इस समय, स्वप्न तो नहीं देख रहा! अथवा क्या मेरा शौर्य नष्ट हो गया? या सचमुच मैं अर्जुन नहीं हूँ! अन्यथा यह क्या बात है? जो मेरे अमोघ बाण, इस साधारण से किरात पर काम नहीं देते। इसकी चेष्टायें—इसके व्यापार यह बतला रहे हैं कि यह किरात नहीं है। तरकश में से बाण खींचता हुआ और बाण छोड़ने के लिये मुट्ठी बाँधता हुआ, यह मालूम ही नहीं होता और बाण छूट जाता है। दूसरे की गुफ़ा में घुसकर बाण करना, वस्तुतः बड़ा मुश्किल है। मेरी राय में इसे भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे बली भी नहीं कर सकते। और फिर एक साधारण किरात तो क्या ही क्या सकता है। अतः यह कोई देवता है। अब मुझे, दिव्य-अस्त्रों से इसकी ख़बर लेना चाहिये।

यह सोचकर इन्होंने प्रस्वापन (सुलानेवाला) अस्त्र फेंका। सारे में अन्धकार छा गया। शिवजी की सेना यह देखकर काँप उठी। कितनों ही ने आँखें मींच लीं। कितने ही डर से, हथियार छोड़ कर, वृक्षों के गुद्दों से लिपट गये।

अब शिवजी के तेज का उदय हुआ। उन्होंने अर्जुनकृत सारे अन्धकार को मिटा दिया। अन्धकार को मिटा देख, प्रमथ गणों के जी में जी आया। अर्जुन ने अपने प्रस्वापन-अस्त्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

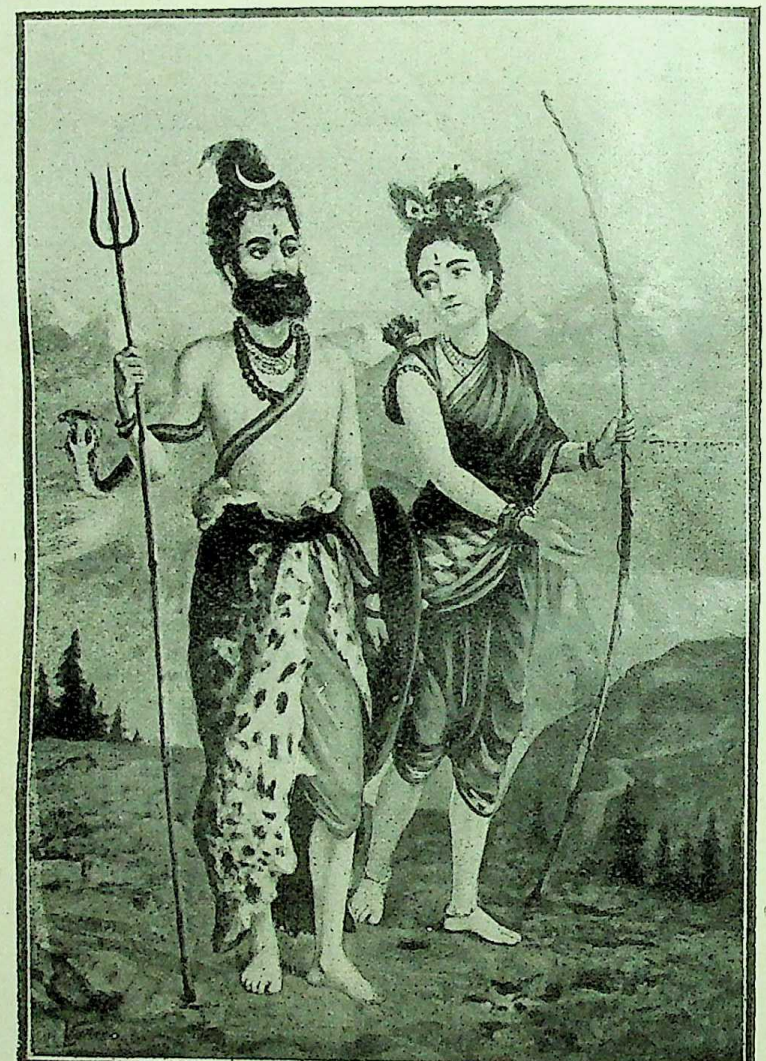

शिवजी और महावीर अर्जुन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख, अपनी सर्प-पाश फेंकी। उसने भी कुछ देर अपना मनमाना चमत्कार दिखलाया। पर शिवजी ने उसका भी गरुड़-समूह से नाश कर दिया। सर्पावली, शान्त हो जाने पर, अर्जुन ने अपना आग्नेय अस्त्र सँभाला। जिधर तिधर आग के अंगार उड़ने लगे। और वह स्थान टेसू का कुसुमित-वन जैसा मालूम होने लगा। यह देखकर शिवजी ने वारुण अस्त्र का प्रयोग किया। उसने अर्जुन के आग्नेय अस्त्र को शान्त कर डाला। किंबहुना, जिस अस्त्र को अर्जुन ने चलाया उसी को शिवजी ने अपनी कुशलता से शान्त कर दिया।

अर्जुन का यह देखकर जी फीका पड़ गया। इनके पास अब अस्त्र भी न रहे। अतः इन्होंने बाण चलाना प्रारम्भ किया। क्रोध के मारे इनकी आखें लाल हो गईं और माथे पर तीन सलवटें पड़ गईं। जिस बाण को भी इन्होंने छोड़ा उसे ही शिवजी ने काट दिया सही, पर इनकी बाण-वर्षा से, शिवजी की सेना चीखने लगी।

शिवजी ने यह देखकर एक ऐसा तीव्र बाण छोड़ा कि अर्जुन के हाथ से धनुष और बाण भी गिर गया।

धनुष-बाण गिर जाने पर अर्जुन से जब कुछ न बन पड़ा तो यह पत्थर फेंकने लगे। पत्थरों के अभाव में इन्होंने वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर फेंकना प्रारम्भ किया। उन्हें भी फेंकते फेंकते जब यह हार गये, तो क्रुद्ध होकर, शिवजी के वक्षस्थल में घूँसे मारने लगे। उस समय, यह ठीक ऐसे मालूम होते थे, जैसे कोई छोटा सा बच्चा, अपने बाप को मार रहा हो। शिवजी अपने प्यारे बेटे के इस अविनय को भी सहन कर गये।

अब इन प्रबल योद्धाओं का मुष्टियुद्ध होना प्रारम्भ हुआ। शिवजी भी अपने धनुष बाण को छोड़कर, अर्जुन की तरह से घूँसेबाज़ी करने पर उतारू हो गये। शिवजी के घूँसों से अर्जुन के शरीर में ज़रा भी व्यथा न हुई। उलटा उनसे वह सुखानुभव करने लगे।

इससे यह न समझना चाहिये कि अर्जुन के घूँसे नाममात्र ही को लगे थे। नहीं, इनके घूँसे इतने लगे थे और इतने ज़ोर से लगे थे कि शिवजी का वक्षस्थल, इनके ख़ून से रंग गया था।

शिवजी, अर्जुन का अतुलनीय पराक्रम देख प्रसन्न हो गये। इतने ही में महावीर अर्जुन ने, अचानक, भस्मी रमाये हुए, मस्तक में चन्द्रलेखा वाले और हाथ में त्रिशूल लिये हुवे, शिवजी को देखा। देखकर इन्होंने प्रणाम किया। साथ ही साथ यह अपने शरीर को फिर वैसे ही, धनुष, कवच आदि से सज्जित देखकर बड़े विस्मित हुवे।

आकाश से फूलों की वर्षा हुवी। मेघ, पृथिवी पर छिड़काव करने लगे। बिना बजाये ही नक्कारे की ध्वनि होने लगी। इन्द्रादि देवताओं की वहाँ भीड़ सी लग गई। यह सब कुछ, अर्जुन की श्रद्धा और शिवजी की प्रसन्नता का प्रसाद था। उस समय "अर्जुन तुम धन्य हो!" का नाद होने लगा। अर्जुन ने सबको प्रणाम किया। और यह शिवजी की यूँ स्तुति करने लगे।

हे अजित! आपसे दयालु, जिसके रक्षक हों, निःसन्देह उसका मृत्यु भी कुछ नहीं कर सकता। वह अमर है। और अपनी रक्षा करने में वह स्वतः ही समर्थ हो जाता है। हे कारुणिक! आप भक्ति-गम्य हैं। और हे ईश! जब तक मनुष्य आपको प्रणाम नहीं करता आपत्तियाँ उसे घेरे रहती हैं। आपके सहायक होने पर उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं। आपका केवल स्मरण ही मुक्ति का निदान है। हे देव! आपकी माया को कोई नहीं जान सकता। यह आप ही को समर्थ है कि मेरे इतने बड़े अपराध को आपने क्षमा कर दिया। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे, वह अस्त्र-विद्या प्रदान करें। यतः परमास्तिक महाराज युधिष्ठर का विजय हो—हम लोग अपने दुष्ट शत्रुओं को परास्त कर सकें।

इस प्रकार कहते हुवे अर्जुन को, शिवजी ने बड़ी सान्त्वना दी। अपना पाशुपत अस्त्र दिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धनुर्वेद सिखलाया। शिवजी के पाशुपत अस्त्र देने पर भी उनकी अनुमति से और देवताओं ने भी इन्हें अस्त्र दिये। अस्त्र देते समय, उन्होंने, इनके शौर्य और भक्ति की बड़ी प्रशंसा की। शिव जी कहने लगे—

अच्छा अब तुम जाओ! और अपने शत्रुवों को परास्त करो!

शिवजी की आज्ञा पाकर महावीर अर्जुन अपने स्थान को वापस लौट आये। आकर इन्हों ने महाराज युधिष्ठिर को सादर प्रणाम किया*।

व्रज जय रिपुलोकं, पादपद्मानतः सन्,
गदित इति शिवेन, श्लाघितो देवसंघैः।
निज गृहमथ गत्वा, सादरं पाण्डुपुत्रो,
धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम॥

पंडित शालग्रामजी शास्त्री

श्रीविश्वनाथपुरी से संस्कृत-विद्या की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा समाप्त करके अनेक विद्वानों ने भारतवर्ष में जो संस्कृत का प्रचार किया है उनमें से इन दिनों अजमेर में संस्कृत की उन्नति करनेवाले गवर्नमेण्ट-कालेज के संस्कृत प्रोफ़ेसर पण्डितरत्न मिश्र शालग्रामजी शास्त्री का स्थान विशेष महत्त्व का है। आपने बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन कर राजसेवा करते हुये भी जीवन को परोपकार में व्यतीत किया। इसलिये ऐसे सत्पुरुष की संक्षिप्त जीवनी लिखना अपना कर्तव्य समझ, मनोरमा-पाठकों के अवलोकनार्थ, सादर समर्पित करता हूँ।

श्रीमती गंगाजी के तट के समीप ही फरुखाबाद नामक एक नगर है। वहाँ सनाढ्य ब्राह्मणों में संस्कृत-विद्या के लिये मिश्रों का घराना बड़ा प्रसिद्ध है। मिश्र अनन्तरामजी उसी वंश में जन्मे थे। इनका साधुसन्तों से बड़ा प्रेम रहता था। एक समय नेपाल से कोई साधु आया। उसकी इन्होंने बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। जब वह जाने लगा तब मिश्र अनन्तरामजी से कहने लगा कि मिश्र जी! तुमने हमारी बहुत टहल की है। यदि तुमें कोई प्रार्थना हो तो हम उसके लिये परमेश्वर से प्रार्थना करें। इस बात को सुनकर पहिले तो मिश्रजी कुछ हिचकिचाये परन्तु अन्त में हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि महाराज! मेरे ४—५ बाल बच्चे हुए, उनमें से एक भी दो या चार मास से अधिक नहीं जिया। मुझको इसकी आप लोगों के सत्संग से अधिक चिन्ता नहीं पर मेरी धर्मपत्नी रात दिन इस चिन्ता में निमग्न रहती है। महात्मा इस बात को सुन कर बोले कि भैया सिद्धि का देने वाला तो परमेश्वर है। पर हम गुरु-कृपा से एक शालग्रामजी की मूर्ति तुम्हें दिये जाते हैं। तुम प्रभात ही स्नान पूजन करके एक गायत्री मंत्र द्वारा सहस्र तुलसीदल चढ़ाया करो! और संध्या को घृत का दीपक जोड़ कर पाठ गोपाल सहस्र नाम के भगवान् को सुनाया करो और मुख्य विधि अनुष्ठान की परनिन्दा परान्नभोजन और परस्त्री का सर्वथा त्याग। यदि इस प्रकार अखण्डअनुष्ठान एक सहस्र दिन तक चलता रहा तो अवश्य तुम्हारा मनोरथ सफल होगा और एक बड़ा सुशील पुत्र तुम्हारे घर में जन्म लेगा।

इधर तो मिश्रजी ने इस बात को सादर स्वीकार कर वंशरक्षा के निमित्त कठिन परिश्रम करना आरम्भ किया और उधर श्रीमती कमला देवी ने भी "देवकीसुत! गोविन्द! वासुदेव! जगत्पते! देहि मे तनयं कृष्ण! त्वामहं शरणं गता" इस मन्त्र की सायंकाल और प्रातः काल ग्यारह ग्यारह माला फेरना आरम्भ किया। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुषों को दो ही वर्ष हुए थे कि ईश्वरेच्छा से मिश्रजी की धर्मपत्नी गर्भवती हुई और विक्रम संवत् १९०० भाद्रपद शुक्ला अष्टमी बुधवार को सूर्योदय के समय पुत्ररत्न का जन्म हुआ।

---

* किरातार्जुनीय महाकाव्य के आधार पर लिखित। सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटुम्ब में उस दिन बड़ा हर्ष मनाया गया और जब नामकरण-संस्कार का समय हुआ तब सब लोगों ने मिश्रजी से कहा कि शालग्रामजी की सेवा से यह पुत्र हुआ है, अतः इसका नाम शालग्राम ही रक्खो ! इसपर मिश्रजी ने वही नाम रक्खा और यही नाम परमेश्वर की कृपा से यथा नाम तथा गुण चरितार्थ हुआ।

पाँचवें वर्ष इनका विद्यारंभ हुआ। पहिले तो इनके पिता इनको घर पर ही पढ़ाते रहे। जब ये ७-८ वर्ष के हुए तो इनकी बुद्धि देख सुयोग्य पाठक पण्डित टीकारामजी की पाठशाला में इन्हें प्रविष्ट कराया गया। वहाँ पर पहले इनको सारस्वत पूर्वार्द्ध, अमरकोश तथा शीघ्रबोध पढ़ाया गया। ३-४ वर्ष के अनन्तर इनकी बुद्धि अच्छी हो चली थी, अतः इन्हें रघुवंश, कुमारसम्भव और लघुकौमुदी पढ़ाई गई। इनमें इन्हें गुरु कृपा से अच्छा बोध हो गया। गुरुजी को इनकी तीव्र-बुद्धि का परिचय इनके आने से कुछ ही समय पीछे मिल गया था। इससे शीघ्र ही ये गुरुजी के प्रिय छात्र बन गये। जैसे ये तीव्र-बुद्धि थे वैसे ही गुरु-भक्त भी थे। गुरु के घर काम-काज और उनकी सेवा-शुश्रूषा, दूसरे छात्रों की अपेक्षा, ये अधिक मन लगाकर करते थे। होते होते पाठशाला में सुयोग्य छात्र गिने जाने लगे।

कुछ दिन पीछे संवत् १९१५ में पाठशाला के एक सहपाठी ने इनको उत्तेजित किया कि यद्यपि गुरुदेव अपने को तन-मन से पढ़ाते हैं पर अपना, यहाँ घर होने से बहुत सा समय घर के झंझटों में व्यतीत होता है, अतः यदि काशी चले चलें तो निःसन्देह छओं शास्त्रों में अच्छी व्युत्पत्ति हो जायगी।

ईश्वरेच्छा से यह बात छात्र शालग्राम को भी अच्छी लगी और चुपके से घर में से २०) रुपये और एक चाँदी की कँधनी लेकर दोनों काशी की ओर विदा हुये १०—१२ घंटे तक दोनों ही के माता पिता को इसकी सूचना नहीं मिली। सुना है कि घर में उस दिन चूल्हा भी नहीं चिता था।

उधर मार्ग में दोनों छात्र अनेक कष्ट सहते हुवे विश्वनाथ-पुरी में पहुँचे। वहाँ जाकर पहले तो श्रीगंगाजी में स्नान किया, और पीछे विश्वनाथ, अन्नपूर्णा तथा कालभैरव के दर्शन कर सुयोग्य अध्यापक की खोज में निकले।

बहुत समय से काशी में ब्राह्मणों के दो दल चले आते हैं। पहला उत्तरीयों का और दूसरा दक्षिणीयों का (पंचगौड़ तथा पंचद्राविड़)।

यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध ही है कि प्रत्येक मनुष्य बहुधा अपने देशवासियों का पक्ष करता है। बस, इसी प्रथा के अनुसार दाक्षिणात्य लोग पढ़ने पढ़ाने, सभा किंवा दान-दक्षिणा में स्वपक्षवालों ही की उन्नति में विशेष चित्त देते हैं और उधर पंचगौड़ अपने देशबान्धवों की सार-सम्हाल में अधिक चित्त देते हैं।

वहाँ जाकर दोनों छात्रों ने विचार किया कि यों तो विद्या का पार नहीं है। परन्तु अपने को तो ऐसे विद्वानों के पास जाकर अध्ययन करना चाहिये जो कालेजों में पढ़ाते हों। इसमें विशेषता यह है कि ऐसे अध्यापक शिष्य के समय को शुष्क शास्त्रार्थ में नहीं व्यतीत करते। ऐसा सोच-विचार कर काशी के धुरन्धर विद्वान् तथा महामहोपाध्यायों के मुकुटमणि १०८ श्रीराजारामजी शास्त्री की सेवा में पहुँचे। उन्होंने इनका अभिप्राय जान पहिले तो कुछ प्रश्न किये, फिर जब यथोचित उत्तर पाया तो प्रसन्न होकर पढ़ाना स्वीकार किया और इनके लिये यथाशक्ति अन्न-वस्त्र का भी प्रबंध कर दिया।

दूसरे छात्र पातीराम तो मान्यवर महोदय १०८ श्रीमहामहोपाध्याय बापूदेवजी शास्त्री से गणित-शास्त्र पढ़ने लगे और विद्यार्थी शालग्राम पहले शास्त्रीजी के आप्त शिष्यों से और कुछ समय उपरान्त विद्वद्रत्न श्रीमान् राजारामजी शास्त्री से व्याकरण पढ़ने लगे। कितने ही अंशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में महामहोपाध्याय श्रीमान् बालशास्त्री के साथ ही इनका अध्ययन होता रहा।

इनकी चातुरी और गुरु-भक्ति इससे स्पष्ट विदित होती है कि पंचगौड़ों में बहुत विरले ही छात्र दाक्षिणात्यों के ऐसे कृपा-पात्र बने हों। फिर थोड़े दिनों के उपरान्त श्रीमान् राजारामजी शास्त्री ही की कृपा से किसी अँगरेज़ महाशय को इन्हें संस्कृत पढ़ाने का कार्य मिला, जिसके कारण इनको सहज ही में उच्च कोटि के ग्रन्थ पढ़ने पढ़ाने का भी सौभाग्य प्राप्त होगया।

इनकी योग्यता पर मुग्ध होकर पञ्चगौड़-मण्डली के नेता विद्वद्रत्न श्रीसखाराम भट्टजी व पण्डित वस्तीरामजी प्रभृति विद्वानों की सम्मति से काशी के अग्रगण्य विद्वान् वैयाकरण-केसरी श्रीभैरव मिश्र जी * (शब्देन्दुशेखर पर भैरवी टीका के रचयिता) के घराने में इनका विवाह हुआ। और बहुत सा धन तथा संकटा देवी के पास एक स्थान इनको दहेज में मिला।

संस्कृत-कालेज में व्याकरण और न्यायशास्त्र की शिक्षा पाने के अनन्तर लोकोपयोगी ज्योतिष-शास्त्र को अन्यान्य विद्वानों के घर पर जाकर इन्होंने पढ़ा। फिर सांख्य, योग और वेदान्त शास्त्र काशी के कीर्तिस्तम्भस्वरूप स्वामी विशुद्धानन्दजी से पढ़कर बनारस के प्रतिष्ठित पण्डितों के पीछे उत्तराधिकारी बनने की योग्यता प्राप्त कर ली।

उन्हीं दिनों बंगाल के प्रसिद्ध पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा अक्षतयोनि बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह का पक्ष उठा। जिसके उचित उत्तर के लिये पूज्यपाद श्रीराजारामजी शास्त्री की अनुमति से उनके सुयोग्य शिष्य पंडितकुल-तिलक श्रीमान् बालशास्त्रीजी ने एक ही पुरुष का कुलीनता के कारण बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह करने की कुप्रथा को अनुचित कहते हुये श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणों से उच्च वर्णों के लिये विधवाविवाह को सर्वथा दूषित ठहराया, जिसका नाम 'विधवोद्वाह-शंका-समाधि' है।

फिर सन् १८७० के लगभग पूने में भी पुनर्विवाह का मामला छिड़ा। जिसके मुखिया पंडित विष्णुरामजी थे। जब यह विवाद अधिकता से चला तो वहाँ के निवासियों ने काशी के पंडितों से सहायता मांगी। इस पर पंडितवर श्रीराजाराम जी शास्त्री ने पंडित शालग्रामजी मिश्र तथा ढुंढिराज शास्त्री को पूने में शास्त्रार्थ के लिये भेजा।

---

* इन्हीं भैरव मिश्र के पूर्वज एक भवदेव मिश्र महावैयाकरण हो चुके हैं, जिनके लिये एक किंवदन्ती है कि एक समय भवदेव मिश्र किसी सभा में गये थे। वहाँ उन्होंने सुना कि पूने में पेशवा की राजसभा में दहिने हाथ की ओर वैयाकरण का और बायें हाथ की ओर नैयायिक का आसन रहता था, परंच आज से शास्त्रार्थ में हारने के कारण उनका आसन पलट दिया गया। बस, इतनी सुनते ही मिश्रजी के रोम रोम में आग लग गई और वे शीघ्र ही विद्यार्थी द्वारा अपने घर समाचार भिजवा कर संकटादेवी तथा विश्वनाथ के दर्शन कर अनेक कष्ट पाते पाते पूना पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने राजसभा में जाने के अनेक उपाय किये परन्तु सब निष्फल गये। उन्होंने सोचा कि बिना चमत्कार दिखाये तो काशी लौटने में अधिक उपहास होगा। ऐसा सोच किसी चपरासी से मिले और बोले कि तुम थोड़े समय के लिये अपने वस्त्र हम को देदो तो राजसभा में हो आवें। वहाँ से जो पारितोषिक मिलेगा उसमें से तुम्हारा भी सत्कार करेंगे। चपरासी ने सहर्ष अपने वस्त्र दे दिये, जिन्हें धारण कर मिश्रजी राजसभा में जा खड़े हुये। जब शास्त्रार्थ छिड़ा तो बहुत देर तक तो ये चुपचाप सुनते रहे किन्तु ज्यों ही व्याकरण की कोटि गिरने लगी त्यों ही गर्जनापूर्वक अपना पांडित्य दिखाने लगे। उनके धाराप्रवाह संस्कृत-भाषण से सारी सभा चकित सी हो गयी। शास्त्र का गौरव बढ़ाया। वहाँ से राजसम्मान सूचक वस्त्र-आभूषण तथा सवारी आदि पारितोषिक प्राप्त करके सहर्ष काशीपुरी को लौटे और वहाँ व्याकरण का सिक्का जमा आये। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने वहाँ जाकर शास्त्रार्थ में विरोधियों को परास्त करके यह भी दिखलाया कि आप लोग जिन जिन स्मृतियों के वाक्य अपने पक्ष की पुष्टि में देते हैं वे वचन तो पैशाचिक विवाहों के लिये हैं। ब्राह्म आदि उत्तम श्रेणी के विवाहों में तो एक-पतिव्रत की ही आज्ञा है। रहा विधवाओं की शोचनीय दशा का विचार, सो उसके लिये भारतवर्ष के सभी प्रान्तवालों का दोष है जो पंचायत द्वारा बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय तथा पुत्र होते हुये भी कलहकारक विवाह को नहीं उठा कर, बेचारे निरपराध शास्त्रों पर आक्षेप आने का अवसर देते हैं।

इस प्रकार शास्त्रार्थ में जय प्राप्त कर बनारस आये। उसी समय बड़े बड़े पंडितों ने सभा करके इनको शास्त्री की पदवी का बड़ा सुन्दर सम्मान-पत्र दिया और उसी महीने के "पंडित" पत्र में सम्पूर्ण वृत्तान्त छपाकर इनके पाण्डित्य को प्रकाशित किया। फिर पंडितवर राजारामजी शास्त्री की कृपा से इन का बनारस के प्रिंसिपल मान्यवर ग्रिफ़िथ साहिब से परिचय होगया तो इन्होंने मालतीमाधव नामक संस्कृत-नाटक का गद्यपद्यात्मक भाषानुवाद करके छपाया, जिसे देखकर साहब बहादुर का विचार इन्हें कीन्स कालेज में लेने का हो गया, पर ईश्वर की इच्छा तो इनको अजमेर भिजवा कर मरुस्थल में कल्पवृक्ष स्थापन करने की थी।

सन् १८७५ ई० में जब राजकुमारों के हितार्थ अजमेर में मेओकालिज की स्थापना हुवी तो उसमें पंडितरत्न देवदत्त तिवारीजी के प्रधान शिष्य महामहोपाध्याय पण्डित शिवनारायणजी शास्त्री नियुक्त हुये। तब गवर्नमेन्ट कालेज में संस्कृत के अध्यापक की आवश्यकता हुई और उस स्थान के लिये प्रिंसिपल जे. गोलडिंग महाशय ने बनारस कालिज के प्रिंसिपल महाशय से एक सुयोग्य पाठक माँगा तो साहब ने इनको उस योग्य जान कर पद पर नियुक्त करके भेजा।

इस पद को पाकर इन्होंने बड़ी योग्यता से काम किया जिससे कालेजवालों का परीक्षा-फल बहुत अच्छा होने लगा।

थोड़े ही दिनों में इनकी ख्याति चारों तरफ़ फैल गई। कालेज के अतिरिक्त बहुत से छात्र आकर सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थ घर पर पढ़ने लगे।

अजमेर, मेरवाड़ा के कमिश्नर मिस्टर सांडर्स तथा मिस्टर एफ. एल. रीड महोदयों ने इनकी पढ़ाने की शैली तथा इनके आचरण की बहुत प्रशंसा की थी और वर्त्तमान प्रिंसिपल मिस्टर इ. एफ. हेरिस तो इनके कार्य्य से बहुत ही सन्तुष्ट रहते थे। एक बार श्रीमान् मान्यवर महोदय लार्ड लिटन के दर्बार के अवसर पर आपको विशेष योग्यता और सरकार की अच्छी सेवा का प्रशंसा-पत्र भी मिला था।

शास्त्रीजी को संस्कृत पढ़ाने का व्यसन बनारस से ही था। जबसे आप यहाँ आये उसी प्रकार निरन्तर २ घंटे घर पर छात्रों को संस्कृत पढ़ाते थे। इनको लोभ तो छू तक नहीं गया था। एक बार अजमेर के जुडिशल असिस्टेन्ट कमिश्नर पंडित सूर्यनारायणजी ने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की और ४०) मासिक भी देना चाहा। पंडितजी ने बुद्धिमानी से उत्तर दिया कि "उस समय तो घर पर छात्र पढ़ने को आते हैं आप कोई दूसरा समय नियत कीजिये, मैं इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूँ।" जज साहब भी इस उत्तर से प्रसन्न हुये और कहने लगे कि प्राचीन समय में निस्वार्थ पंडित लोग इसी प्रकार विद्या पढ़ाया करते थे। और बड़े बड़े शहरों में गुरुकुल होते थे। शास्त्रीजी पूर्ण धैर्यवान् भी थे। जब ये बनारस से आये, कुछ दिनों बाद ही इनकी स्त्री और दो बच्चों की मृत्यु हो गयी। परन्तु इन्होंने धैर्य धारण कर ईश्वर से शान्ति के निमित्त प्रार्थना की। शास्त्री जी प्रायः सभी संप्रदायों, संस्थाओं में बुलाये जाया करते थे और कहा करते थे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शत्रोरपि गुणाः ग्राह्याः दोषास्त्याज्या गुरोरपि। अर्थात् शत्रु के भी गुण लेने चाहियें और गुरु के भी दोष छोड़ने चाहियें। सो इस प्रथा के अनुसार सब ही के यहाँ जाते और उत्तम बात मानते थे। उनकी सम्मति थी कि कोई भी संप्रदाय सदा एक सी धारा पर, नहीं रहती, ऐसा विचार कर दूसरों की निन्दा नहीं करना चाहिये।

उनका यह कथन था कि हमारे पूर्वज आचार्यों ने, सबका हित होता रहे, इस विचार से अलग अलग वर्णों के अलग अलग मार्ग बनाये हैं परन्तु जब से अविद्या का अंधकार फैला तभी से वे सब अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझते हुए आपस में लड़ने लगे। वस्तुतः विविध देवपूजा भी भिन्न नहीं, एक ही है और साधारण जनों के हितार्थ भाषा द्वारा योग्य तथा वेदान्त आदि का ज्ञान फैलानेवाले गुरु नानक आदि महात्माओं का भी सिद्धान्त एक सा ही है। आप कई वर्ष सद्धर्मामृतवर्षिणी सभा अजमेर के सभापति भी रहे थे। कभी कभी आप आर्यसमाज के व्याख्यानों में भी जाते थे और ध्यान का अंश राधास्वामी मत का ठीक बतलाया करते थे।

आप कहा करते थे कि सनातन धर्म जो सहस्रों वर्षों से चला आता है अब वृद्ध हो गया है। शंकराचार्य और पूर्वजों के समान आधुनिक अच्छे अच्छे विद्वान् और राजा महाराजों को उचित है कि इसको समयोचित उत्तमोत्तम ओषधियाँ खिलाकर पुनः युवा बनावें।

कचहरियों में हिन्दी का प्रचार हो जाय तो सर्वसाधारण का बड़ा हित हो। इस विचार से आपने एक बार नगरवासियों को एकत्रित करा कर व्याख्यान भी दिया था। परन्तु उन दिनों लोगों के ध्यान में यह बात नहीं आई और अब ईश्वरेच्छा से स्वतः ही सब लोग कहते हैं कि उर्दू से हिन्दी का पढ़ना लिखना सहज है। आज कल अजमेर में कचहरी की कार्यवाही का हिन्दी में प्रचार करनेवाले श्रीयुत चाँदकरणजी शारदा बी. ए., एल. एल. बी. का उत्साह प्रशंसा के योग्य है।

सन् १८९५ में अजमेर के बैरिस्टर फ़तहचन्द जी महोदय का विचार हुआ कि यहाँ के विद्यार्थी बी० ए० पास करने को आगरे आदि दूरवर्ती नगरों में जाते हैं इससे व्यय भी अधिक होता है। यदि कालेज में बी० ए० तक का प्रबन्ध हो जाय तो सर्वसाधारण का बड़ा उपकार हो। इस बात को उचित समझ मान्यवर पण्डित अमोलकचन्द जी लेट हेडमास्टर गवर्नमेंट कालेज अजमेर तथा शास्त्रीजी आदि महानुभावों के उद्योग से तथा गवर्नमेंट की कृपा से बी०ए० कक्षा खुल गई जिससे छात्रों को बड़ा लाभ पहुँचा।

शास्त्रीजी संस्कृत की उन्नति के लिये निरन्तर उद्योग करते थे। उन्हीं जैसे उत्तम पुरुषों के उद्योग से संवत् १९४८ में समस्त ब्राह्मणों की हितैषिणी सभा स्थापित हुई और इन्होंने सामवेदी तथा यजुर्वेदी सन्ध्या रचकर अमूल्य वितरण कराई। फिर सर्वसाधारण के हितार्थ संस्कृत पाठशाला स्थापित करवाई जिससे अनेक छात्र उत्तीर्ण हुए। उनमें विशेष योग्य पण्डित रामप्रताप जी शास्त्री हैं जो अब नागपुर-कालेज के असिस्टेण्ट संस्कृत प्रोफ़ेसरी के पद को सुशोभित करते हैं। शास्त्रीजी द्वारा स्थापित यह पाठशाला अब तक विद्यमान है जिसको कुछ समय तक आयुर्वेद-पञ्चानन पण्डित गंगाप्रसादजी त्रिपाठी ने निभाया, फिर शास्त्रीजी की अनुमति से शाहपुरा के भूतपूर्व दीवान मान्यवर महोदय बाबू रामजीवनजी भार्गव ने विशेष सहायता देकर हरीभरी बनाये रक्खी और अब उनके सुयोग्य पुत्र राय साहब मुंशी जगतनारायण (लेट सरसूबा उज्जैन) जी की विशेष सहायता से चल रही है।

शास्त्रीजी की दिनचर्या भी नियमबद्ध थी। वे प्रभात को ४ बजे उठकर हाथ मुँह धो स्नान करते थे। फिर ९ बजे भोजन के उपरान्त थोड़ा विश्राम कर कालेज जाते थे। फिर वहाँ से लौटकर विद्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थियों को व्याकरण आदि पढ़ाते थे। फिर सायं सन्ध्या कर सितार आदि वादित्रों द्वारा हरिस्मरण करते थे। जल्दी सोना और ब्राह्ममुहूर्त में उठना आपका स्वभाव था। आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता था। आपको ज्वर आदि रोग भी बहुत कम होते थे।

यद्यपि शास्त्रीजी परदेशी थे परन्तु परोपकारिता का गुण होने से इन्होंने यहाँ वालों को विद्या पढ़ाई और सब ही कार्य्यों में यथाशक्ति सहायता पहुँचाई इसलिए अजमेरनिवासी सब ही इनका आदर करते थे। आजकल अजमेर में जितने, छोटी बड़ी पाठशाला में, पंडित हैं वे सब प्रायः शास्त्रीजी के शिष्यों में से हैं। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक हाई स्कूल के हैडपण्डित श्रीनंदकिशोरजी, हितैषिणी संस्कृत पाठशाला के प्रथमाध्यापक त्रिपाठी जयनारायणजी तथा पण्डित रामचन्द्रजी, शास्त्रीजी के मुख्य शिष्यों में से हैं। आपने अपना समय हरिभक्ति, अध्यापन और परोपकार में लगाया, इस कारण बहुत थोड़ा समय बचता था तो भी आपने न्यायदर्शन का अनुवाद (न्यायतत्त्वबोधिनी) मालतीमाधव (भाषा) श्रीपुष्कर-माहात्म्य (भाषा) और सामवेदी संध्या ये ४ पुस्तकें रच कर विद्या की वृद्धि की। अन्त में सन् १९०१ की दिसम्बर को २५ तारीख को आपको ज्वर आया। उसी व्याधि से २७ तारीख की रात्रि को ईश्वर का स्मरण करते हुए इस नश्वर कलेवर को त्याग वैकुण्ठ धाम का मार्ग लिया। आपके अन्तिम वाक्य ये थे-हे जगदीश्वर! ऐसे सांसारिक कष्टों को भोगता हुआ भी जीव तेरा स्मरण नहीं करता यह बड़े आश्चर्य का विषय है?

शास्त्रीजी के दो पुत्र और दो पौत्र हैं। बड़े पं० देवदत्तजी मिश्र जो बनारस की नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यालय में कार्यकर्ता रह चुके हैं। और छोटे पुत्र पण्डित ब्रह्मदत्त मिश्र बी. ए. गवर्नमेंट हाई स्कूल अजमेर में इंलिश-टीचर हैं। ईश्वर ऐसे सत्पुरुषों की संतानों को सदैव आनन्दित रक्खे। यही मेरी जगदीश्वर से वार वार प्रार्थना है। (१)

शिवदत्त त्रिपाठी

प्रकृति

(लेखक, लाला लालचन्द फ़लक)

आग में पड़ कर भी सोने की दमक जाती नहीं।
काट देने से भी हीरे की चमक जाती नहीं॥
सिल प घिस देने से भी जाती नहीं चन्दन की बू।*
फूल की मिट्टी में मिलकर भी महक जाती नहीं॥
टूट कर आता नहीं कुछ लाल की रंगत में फ़र्क़।
तोड़ देने पर भी मोती की उलक जाती नहीं॥
रञ्ज में आता नहीं नेकों की पेशानी प बल।
धूप की तेज़ी में सबज़े की लहक जाती नहीं॥
ख़ौफ़ो ख़तरे में बदल सकती नहीं मरदों की ख़ू।†
बादलों में घिरके बिजली की कड़क जाती नहीं॥
साहिबे हिम्मत नहीं दबता मुख़ालिफ़‡ से कभी।
ज़ोर से आँधी के आतिश की भड़क जाती नहीं॥
मुल्क की उलफ़त का जज़बा दिल से मिटसकता नहीं।
क़ौम की ख़िदमत की ख़्वाहिश अय फ़लक जाती नहीं।

"नज़ारा"

---

(१) त्रिपाठीजीने चरित के साथ ही साथ, शास्त्रीजी का एक चित्र भी भेजने की कृपा की है। परन्तु वह चित्र इतना साफ़ नहीं है, जिसका ब्लाक बनाया जा सके। अतः विवशतया चित्र नहीं प्रकाशित किया जा सका।

सम्पादक

* बू = सुगन्धि।
† ख़ू = प्रकृति।
‡ मुख़ालिफ़ = प्रतिपक्षी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवासी निर्बल क्यों हुए जाते हैं ?

प्राचीन काल में बल और शरीर की सुडौलता और मास्तिष्कशक्ति की प्रबलता की ओर लोगों का बड़ा ध्यान रहता था। प्रायः भारत के प्रसिद्ध राजों, महाराजों, तथा ऋषियों, महर्षियों, के पवित्र स्थानों पर, बड़े बड़े वीर, बली और विद्वानों का समागम होता रहता था। जिन महापुरुषों को अपने अपने वीर प्राक्रम और अलौकिक बल पर भरोसा होता था, वे ही वैज्ञानिक और युद्ध-विशारद अपने अपने बल और विज्ञान का परिचय देने के लिये एकत्रित हुआ करते थे।

भारत के वीर नृपतिगणों का चुनाव होता था। बड़े बड़े देशाधिपति, अपने अपने राज्यों के कल्याण के हेतु अच्छे अच्छे तपोनिधि, तेजोधारी, वीरपुरुषों का निर्वाचन कर लिया करते थे। यही हमारे पूर्वजों की प्रदर्शनी थी। आज कल अनेक प्रकार के यूरोपीय अस्त्र-शस्त्रों के आविर्भाव हो जाने से रणभूमि में शारीरिक बल की कम आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक सैनिकों की बन्दूक की मार वा विषैली गैसों के प्रचार और द्रव्य की थैलियों की भरमार पर ही सारी योग्यता और युद्ध की हार-जीत निर्भर है।

इसी तरह अनेक प्रकार के यंत्र निकलने से मनुष्यों को शारीरिक श्रम, कम करना पड़ता है। मनुष्य के सांसारिक मार्ग में प्रायः पद पद पर कलें और मशीनें काम कर रही हैं। यहाँ तक कि दो चार कोस की यात्रा करने को भी, भारतवासी रेलवे की सहायता ताका करते हैं। शारीरिक उन्नति की आवश्यकता कम होती चली जाती है।

स्मरण रहे कि जब किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती तब उसका मान भी कम होने लगता है। शारीरिक बल की क्षीणता और क्षय होने के प्रधान कारणों में से एक यह बात भी है।

इधर भारत के नेता इस ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं देते। बलक्षीणता का रोग दिन प्रति दिन बढ़ता चला जा रहा है। शोक! नेरान की नेरान बलहीन और कुरूप होती चली जाती है। यदि हमारे पूर्वजों के अद्भुत प्राक्रम और चित्र, चरित्रों से समता की जाय तो यह कदापि प्रतीत न होगा कि हम आधुनिक हिन्दू उन्हीं वीर आर्य्य-पुरुषों के वंशज हैं।

राम और कृष्ण, भीष्म और द्रोण से महापुरुषों के नाम लेवाओ! देखिये, हर एक पुत्र अपने पिता के समान होता है, आपका साहसहीन, निर्बली, तेजोहीन चेहरा, पीला, सूखा बदन, हाड़ पिंजर, इस बात के साक्षी हैं कि आप उन आर्य्य पुरुषों की सन्तान और वंश से नहीं।

शारीरिक उन्नति केवल उचित रीति से व्यायाम करने और ब्रह्मचर्य्य-व्रत को पालन करने से होती है। मनुष्यमात्र के लिए, ब्रह्मचर्य और व्यायाम, बल-वृद्धि की उन्नति को, परमावश्यक है। प्रोफ़ेसर राममूर्ति इस नवीन काल में जगत्प्रसिद्ध प्रमाण हैं। प्रकृति का नियम है कि जो इन्द्रियाँ काम में नहीं लाई जातीं, वे धीरे धीरे निर्बल होती चली जाती हैं। यहाँ तक कि शून्य होकर बिलकुल लुप्त हो जाया करती हैं। अर्थात् यही कारण भारत के बल और प्रताप के नष्ट हो जाने का हुआ है।

व्यायाम करने से केवल इतना ही नहीं होता कि तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है, या ताक़त ही बढ़ती है। बल्कि इन बातों के सिवाय शरीर की तमाम इन्द्रियों को किसी न किसी रूप से सहायता मिलती है। शरीर की कान्ति दमकती रहती है, जिस्म के पुट्ठे हड्डियों से मिले रहते हैं।

फेफड़ों (Lugs) की गति बढ़ जाने से शरीर के हर हिस्से में प्राणवायु (आक्सिजन) का प्रवेश होता है। और आक्सिजन के मेल से स्वच्छ रुधिर बना करता है। फिर शरीर का कोई भाग भी ऐसा नहीं रह जाता, जहाँ नये रुधिर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचार न हुआ हो। तमाम शरीर में एक प्रकार की शक्ति और फुर्ती (Activity) आ जाती है।

मस्तिष्क (Brain) को भी नया और पवित्र रुधिर मिलता है। कलेजा (Liver) आक्सिजन की अधिकता से अच्छा रुधिर पैदा करता है। और खूब पित्त (Bile) बनाता है। पेट की चाल भी खूब बढ़ जाती है। उसके अन्तर्गत जितने रस की आवश्यकता होती है खूब उत्पन्न होते हैं। और इस प्रकार पाचन-शक्ति भी बढ़ी चढ़ी रहती है, जो कि जीवन का मूल कारण है।

ब्रह्मचर्य की दीक्षा और शिक्षा।

वह दीक्षा, जिसमें हिन्दू ब्रह्मचारी अपनी बाल्यावस्था में अपने गुरु के घर रहा करता था, प्राचीन शिक्षापद्धति की मनोरम और अनोखी बातों में से एक है।

वह होनहार ब्रह्मचारी, प्रति दिवस प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर पवित्र जल से स्नान कर, अपने इष्टदेव की वन्दना करता, अपने ऋषि और पितरों के निमित्त तर्पण करता, व्यायाम और प्राणायाम करता हुआ अग्निहोत्र, देवपूजन, समिधादान किया करता था।

इस प्रकार हिन्दू ब्रह्मचारी को पहिले समय में सीधा सादा विनीत जीवन, भारतोद्धार के लिये, धर्मपूर्वक बिताना पड़ता था। जिसकी रक्षा बड़ी सावधानी से, उन मार्ग पर ले जानेवाले प्रभावों से की जाती। वह जीवन नितान्त विद्योपार्जन और हिन्दू धर्म्म की बलवृद्धि के निमित्त अर्पण था। गुरु-निर्दिष्ट धर्म्मों को अनन्य ध्यान से करना होता था।

नाच-तमाशे के रंग-ढंगों से वर्ज कर, आर्य-धर्म-ब्रह्मचारियों की सर्वथा रक्षा की जाती थी।

उन्हें कोट, बूट, सूट, और हैट का शौक़ न था। उनको केवल फ़ैशन में रुपया फूँकने की फ़ुर्सत और आवश्यकता न थी। वे मसनद, पलंग और मसहरी के पाबन्द न थे। उन्हें मेज़ टेबिल, चेअर और कुर्सी की ज़रूरत न थी। उन को लाखों रुपये की इमारत में रहना भी स्वीकार न था।

बड़े बड़े धनाधिप राजे महाराजों के राजकुमार और ऋषिकुमार, निर्जन वनों में ऋषियों की पर्णकुटियों में वास करते, वृक्षों के पत्ते बिछाकर कुशासन पर शयन किया करते, जंगलों के कन्द-मूल, फल, फूल, आहार करके केवल भिक्षावृत्ति से विद्या-अध्ययन किया करते थे।

भारत के प्राचीन धर्म-इतिहासों से पता लगता है कि ऐसे ही पवित्र रहन सहन के सुन्दर नियमों से, भारतवर्ष के शिक्षा-सम्बन्धी बालकों के जीवन से भारत का उद्धार हुआ है।

जिस देश के माता पिता स्वयं ही अपनी अपनी सन्तानों की रक्षा और परवाह न करके प्राचीन आर्यवीरों की बाल्य अवस्था और उनके ब्रह्मचर्य्य के जीवन को देख कर भी उपदेश न करें तो इस समय का और किसी का क्या दोष ?

हिन्दू जाति अपनी सन्तानों की आयन्दा ज़िंदगी आप बरबाद कर रही है। जिस देश के बालक और बालिकायें अपने माँ बाप की लापरवाही, मूर्खता और दरिद्रता के कारण कुत्ते की मौत मरते हों, जिस देश के दौलतमंद लोग अपने बच्चों को नुमाइशी सिन्दूरिया आम की भाँति निर्गुण और जाहिल रखना फ़ख़र समझते हों। जहाँ के राजे महाराजे और बाज़े शिक्षित लोग भी अपनी ख़ुदग़र्ज़ी, आलस्य और स्वार्थ में पड़कर यह कह उठें कि देश का सुधार हमारी शक्ति से बाहर है, उस देश का ईश्वर ही मालिक है।

इस लिये हमारे शिक्षित वा अशिक्षित देशवासियों का कर्तव्य है, कि वह इस विचार की उत्तमता और दूरंदेशी तथा सादगी पर पूरे तौर से ध्यान दें।

देश की सारी सभा-समाजों को चाहिये कि वह ऐसे देशहितकारी विचारों का आदर करें और इस ख़याल की पुष्टि करने के लिये अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनी सन्तानों को ब्रह्मचर्य और व्यायाम की, नित्य नियम से शिक्षा दें या दिलावें। केवल काग़ज़ी प्रस्ताव पास करने से कुछ नहीं होगा।

लक्ष्मीनारायण शुक्ल

विविध विषय।

१ – क्या सारे भारतीय मुसलमानों की मातृभाषा उर्दू है?

बेंगाल के मुसलमानों की शिक्षा-समिति का वार्षिकोत्सव, बर्दवान में सानन्द समाप्त हो गया। मौलवी अब्दुलकरीम, उत्सव के सभापति बनाये गये थे। आपने अपनी वक्तृता में कहा—

"मुझे अन्देशा है कि बेंगाल के मुसलमानों की तालीम की तरक़्क़ी इस वजह से रुक गई कि उन्होंने बद-क़िस्मती से उस ज़बान का सही इन्तख़ाब नहीं किया, जिसके ज़रिये से तालीम दी जाती है। मैं यह पहिले ही बयान कर चुका हूँ कि मैं एक ज़माने में इस अमर के मुताल्लिक़ किसक़दर सर गर्म रहा था कि बंगाल के मुसलमान लड़कों की इब्तदाई तालीम देने का ज़रिया उर्दू को क़रार दिया जाय। लेकिन मैंने बाद में वग़ूँ कर अपनी राय बदल ली। बंगाल के ज़्यादातर मुसलमानों की मादरी ज़बान (सिवाय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद के थोड़े मुसलमानों के) बंगाली है। और उर्दू तमाम अग़राज़ वो मक़ासिद के लिहाज़ से इनके लिये एक ग़ैर मुल्की ज़बान है।"

मौलवी अब्दुलकरीम की इस उचित सम्मति से फिर एक बार यह प्रश्न उठता है कि क्या सारे भारतीय मुसलमानों की मातृ-भाषा उर्दू है? हमारा विश्वास है कि इस प्रश्न का उचित उत्तर, न्याय प्रिय मुसलमान भी ठण्डे दिल से नहीं देंगे। हम कह सकते हैं कि संयुक्त प्रान्त और इसके आस पास के इलाक़ों के मुसलमानों को छोड़ कर भारत के बाक़ी मुसलमान यह कहने के लिए कदापि उचित वक्ता नहीं ठहराये जा सकते कि उनकी मातृ भाषा उर्दू है।

*

२—काग़ज़ की गरानी

सामयिक युद्ध जब प्रारम्भ ही हुवा था। तब सभी भाषाओं की समाचार-पत्र-पत्रिकाओं का बरसाती कीड़ों की तरह से जितना प्रादुर्भाव हुवा उसे सभी विचारशील पाठक जानते हैं। बहुत से नये पत्र जारी हुए, और अनेक साप्ताहिक, दैनिक रूप में निकलने लगे। समाचार-पत्रों के स्वामी अपनी इस बेतरह बढ़ती को देख कर ख़ुश थे। उन्हें यह मालूम न था कि यह बढ़ती थोड़े ही दिनों में इससे कई गुने घाटे में परिणत होजायगी।

काग़ज़ का भाव इतना मँहगा होगया है कि छोटे मोटे नहीं, बड़े बड़े पत्रों का जीवन सङ्कट में है। जो काग़ज़ पहिले ५) रुपया रिम आता था, वह अब १२) और १३) रुपया रिम भी मुश्किल से मिलता है। काग़ज़ की तेज़ी से प्रेसों के भी ढाँचे ढीले होगये। शायद ही कोई पत्र-पत्रिका ऐसी हो जिसने अब पहिले काग़ज़ की अपेक्षा घटिया (परन्तु, दामों में बढ़िया काग़ज़) काम में लाना न प्रारम्भ कर दिया हो, या अपने कलेवर में कमी न करदी हो। कई पत्रों ने तो काग़ज़ घटिया लगाते हुवे भी अपना मूल्य बढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है। लण्डन के एक पत्र ने तो अपना मूल्य दूना कर दिया और तब भी बेचारे घाटे में हैं। जो पत्र बहुत चिकना और मोटा काग़ज़ लगाया करते थे आज वही इस काग़ज़ की गरानी के कारण पीले हो गये हैं। और कुछ दिनों युद्ध और रहा तो इसमें भी सन्देह है कि पीला काग़ज़ भी मिल सकेगा या नहीं। यही काग़ज़ का अभाव, पत्र-पत्रिकाओं के ठीक समय पर निकलने का भी प्रतिबन्धक हो रहा है, एक बात और है, जो पत्र-सञ्चालकों को विह्वल बना रही है। वह ग्राहक-संख्या की वृद्धि का अभाव है। क्या ही अच्छा हो, यदि सब पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक, पाठक और प्रेमी, नये ग्राहक बनाकर इस आड़े समय में पत्र-सञ्चालकों की सहायता करें। अस्तु। "मनोरमा" पर भी इस काग़ज़ की गरानी का प्रभाव पड़ा है। अतः यह भी "साधवो येन गच्छन्ति तद् गच्छन्नैव दोषभाक्" के अनुसार कुछ दिनों के लिये अपने कलेवर को कम करती है।

*

३—सनातनधर्म-कालिज

निःसन्देह लाहौर में डी. ए. वी. कालिज़ (D. A. V. College) बड़ा काम कर रहा है। यहीं, ख़ुशी की बात है कि भारततर्ष के एक मात्र व्याख्याता, व्या० वा० पण्डित दीनदयालुजी के उद्योग और महाराज काशमीर एवं महाराज दरभंगा तथा अन्यान्य धनिकों की सहायता से, सनातनधर्म-कालिज की और स्थापना हो गई है। यू. पी. की अपेक्षा पञ्जाब प्रान्त ने शिक्षा-विषय में बड़ी उन्नति की है। कलकत्ता, बम्बई को छोड़ कर भारत का कोई भी शहर ऐसा नहीं, जिसमें लाहौर की बराबर कालिज हों। अकेले लाहौर में ७—८ कालिज हैं। प्रस्तुत सनातनधर्म कालिज के नेताओं का कहना है कि इस कालिज में आँगल भाषा के साथ ही साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाया करेगी। यह बड़ी अच्छी बात है। पण्डित दीनदयालुजी की राय है कि इस कालिज का नाम "चेम्सफ़ोर्ड सनातनधर्म कालिज" रक्खा जाय। और यह राय ठीक भी है। किन्तु श्रीमती एनीबेसेंट इस बात से विरुद्ध हैं, आपको यह नामकरण पसन्द नहीं। आपका कथन है कि सनातनधर्मियों के कालिज के नाम में पहिले ही एक ईसाई का नाम आना ठीक नहीं।

कालिज को अपने में मिलाने के लिए पञ्जाब यूनिवर्सिटी ने स्वीकृति देदी है। सनातनधर्म महासम्मेलन के प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत होते देख बड़ी प्रसन्नता होती है। हम कालिज के नेताओं को बधाई देते हैं!

*

४—हिन्दु-विश्वविद्यालय का लेख

हिन्दु-विश्वविद्यालय की भित्तिप्रतिष्ठा के समय जो शिला-न्यास किया गया है, उसपर निम्न लिखित श्लोक अङ्कित है—

ॐ

काशी-विश्वविद्यालय।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया-
न्यासं काश्यां हयगनवमहीसम्मिते विक्रमाब्दे।
प्राणं धर्मं परिफलयितुं विश्वविद्यालयस्या-
भर्तुस्तस्य प्रतिनिधिवरो लार्ड हार्डिङ्ग्सुकीर्त्तिः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिला लेख के नीचे एक ताँबे के डिब्बे में, भारतसरकार और कितने ही देशीराज्यों के सिक्के, हिन्दुविश्वविद्यालय समिति के कुछ काग़ज़ात और निम्न लिखित ताम्रपत्र लेख, रक्खे गये हैं—

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीड़ितम्।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम्॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिषु।
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गङ्गातीरे महोदयाः॥
शुभेच्छाः पुण्यसम्पन्नाः संजाता जगदात्मनः।
संगमय्याय पाश्चात्याः प्राञ्चश्चापि प्रजा निजाः॥
तच्छ्रेष्ठानां विधायैकमत्यं सुमतिलक्षणम्।
विश्वनाथपुरे विश्वजनीनो विश्वभावनः॥
निमित्तमात्रमत्राभूत् समीहायाः परेशितुः।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः॥
निधाय वाङ्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम्।
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नन्तरात्मनः॥
बीकानेरनृपो वीरो गङ्गासिंहो महामनाः।
श्रीरमेश्वरसिंहश्च दरभङ्गामहीपतिः॥
प्रधानः कार्यकारिण्याः सभाया मानवर्धनः।
सुधी सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः॥
गुरुदासादित्यरामौ वासन्ती वाग्मिनी तथा।
तथा रासविहारी च मुख्या ये देशवत्सलाः॥
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे।
विक्टोरिया महाराज्ञाः पौत्र एड्वर्डदेहजे॥
सम्राजि पञ्चमे ज्यार्जे भारतं परिशासति।
मेवारकाशीकाश्मीरमयसूराल्वराधिपान्॥
कोटाजयपुरेन्दौरजोधपुरादिभूमिपान्।
तथा कपूर्थलानाभाग्वालेरादिनरेश्वरान्॥
ईरयित्वा सहायार्थं सज्जनानवरांस्तथा।
गर्भस्य सर्वधर्म्माणां रक्षायै प्रचयाय च॥
प्रचाराय स्वलीलानां स एवैकः परः प्रभुः।
लार्डहार्डिङ्ग्सुविख्यातं सम्राट्प्रतिनिधिं वरम्।
धीरं वीरं प्रजाबन्धुं जनानां हृदयंगतम्।
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत्।
संप्राप्ते नेत्रभूभृद्ग्रहधरणिमिते वैक्रमेऽब्दे च माघे
माघेपक्षे चशुक्ले प्रतिपदि चतिथावह्नि शुक्रेक्षणेऽह्नि
श्रीकाश्यां श्रीलसम्राट्प्रतिनिधिकरतो
यच्छिलान्यास आसीद्
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स
महाविश्वविद्यालयोऽयम्॥

सरस्वती श्रुतिमहतो महीयताम्
ततः स्तुता ज्ञानसुधा निपीयताम्।
सदा मतिः शुभचरिते विधीयताम्
रतिः परा परमगुरौ प्रचीयताम्॥

*

५—जंगी क़ैदियों की डाक का प्रबन्ध

अभी हाल ही में एक इण्डिया आर्मी आर्डर में टर्की के अन्दर जंगी क़ैदियों के साथ पत्रव्यवहार करने की रीति सर्वसाधारण के सूचना के लिये छपी हैं। वे नीचे प्रकाशित की जाती हैं—

क्या भेजा जा सकता है?

पोस्ट कार्ड, ग़ैर रजिस्ट्री हुई चिट्ठियाँ और पार्सल, तथा मनी आर्डर बृटिश और हिन्दुस्तानी जंगी क़ैदियों को टर्की में बिना डाकमहसूल के भेजे जा सकते हैं। अख़बार या अख़बारों के कटे हुए टुकड़े चिट्ठी या पार्सल द्वारा, कदापि न भेजने चाहिये। जंगी क़ैदियों को चिट्ठी या पार्सल में किसी प्रकार का सिक्का भेजने की भी सख़्त मनाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेन्सर का प्रबन्ध

हिन्दुस्तानी जंगी क़ैदियों की चिट्ठियाँ आदि बम्बई में सेन्सर होती (देखी जाती) हैं।

जिस लिफ़ाफ़े में चिट्ठी डाली जाय उसपर उपरोक्त रीति से जंगी क़ैदी का पूरा पता लिख कर उसे खुला रहने दिया जाय और एक दूसरे लिफ़ाफ़े में डाल कर ऊपर "ऑन प्रिज़नर ऑफ़ वार सर्विस" लिख दिया जाय। इस ऊपर के लिफ़ाफ़े पर "पोस्ट सेन्सर बम्बई" लिखा हुआ हो।

चिट्ठियाँ

चिट्ठी-पत्री में निज के और कुटुम्ब के समाचार और मामले की ज़रूरी बातें ही लिखी हों। समुद्री, ख़ुश्की के या मुल्की समाचार फ़ौजों के आने जाने तथा मुल्की व फ़ौजी प्रबन्ध आदि का ज़िक्र करने की आज्ञा नहीं है।

पोस्ट कार्ड भेजना अच्छा होगा, क्योंकि पोस्ट कार्डों के रुकने की बहुत कम सम्भावना है।

यदि चिट्ठी भेजी जाय तो उसका मज़मून मामूली नोट पेपर (चिट्ठी के काग़ज़) के ताव के दोनों तरफ़ से ज़्यादा न हो और उसमें सिवाय नोट पेपर के ताव के और कुछ न होना चाहिये। जो कुछ लिखा जाय उसे काटा न जाय।

चिट्ठी पत्री के लिये लिफ़ाफ़े और पोस्ट कार्ड ही काम में आ सकते हैं, बाक़ी चीज़ें पार्सल में जानी चाहियें। चिट्ठियों में पेकेट नहीं भेजे जा सकते।

पार्सल पोस्ट

जंगी क़ैदियों को जानेवाले जिन पार्सलों पर पता और मुकाम लिखा हुआ नहीं होगा वह स्वीकार नहीं किये जायँगे। पता छपा हुआ हो या कम से कम दो जगह पार्सल के ऊपर साफ़ साफ़ लिख दिया जाय। भेजनेवाले का नाम और पता भी पार्सल के ऊपर छपा हुआ हो या स्याही से साफ़ साफ़ लिख दिया जाय। पार्सल बड़ी सावधानी के साथ ऐसी रीति से मज़बूत करके बन्द किये जायँ कि सेन्सर (देखनेवाले आफ़िसर) आसानी से देख सकें। पार्सल के अन्दर चिट्ठी बन्द न करनी चाहिये।

रजिस्ट्री और बीमे

चिट्ठियाँ रजिस्ट्री या बीमा नहीं करानी चाहियें और न पार्सलों का ही बीमा कराया जाय।

मनी आर्डर

जंगी क़ैदियों को मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजा जा सकता है। यह मनीआर्डर बिना कमीशन (डाक महसूल) के भेजे जा सकेंगे। मनी आर्डर की रक़म पौंडों वग़ैरह में लिखी होनी चाहिये और विलायती मनी आर्डर के फ़ार्म पर लिखना चाहिये। पानेवाले का पता और देश आदि उपर्युक्त रीति से लिखना चाहिये।

"जयाजी प्रताप"

*

साहित्य-चर्चा

१—कार्य-विवरण

आकार मंझोला, पृष्ठ संख्या ८२। व्याख्यानवाचस्पति पण्डित दीनदयालुजी के अनवरत परिश्रम से, गतवर्ष से अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासम्मेलन की स्थापना हुई है। इसका पहिला अधिवेशन गतवर्ष कुम्भ के अवसर पर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में हुवा था। उसी का यह विस्तृत कार्यविवरण है। बड़े बड़े उपयोगी प्रस्ताव पास किये गये हैं। हमारी आन्तरिक इच्छा यह है कि ये सारे प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत हों। इसका सम्पादन, पण्डित श्रीहरिहर-सुरूप शास्त्री, "विद्याभूषण" ने किया है। आप उक्त सम्मेलन के संयुक्त मन्त्री हैं। पुस्तक मन्त्री सनातन धर्म महासम्मेलन कार्यालय से शायद मुफ़्त मिलती है।

*

२—प्रभाकर

यह एक नया मासिक पत्र है। अभी तक इसका हमें माघ शुक्ल वसन्तपञ्चमी वाला एक ही अंक मिला है। प्रस्तुत अंक के १६ पृष्ठों में साधारण लेख और कवितायें हैं तथा १० पृष्ठों में विज्ञापन हैं। वार्षिक मूल्य १।) है। मिलने का पता—मैनेजर प्रभाकर, पोस्ट बिशुनपुर ज़ि० गोरखपुर।

मनोरम श्लोक।

[१]

काकुत्स्थस्य दशाननो न कृतवान् दारापहारं यदि,
क्वाम्भोधिः क्व च सेतुबन्धघटना क्वोत्तीर्य लङ्काजयः।
पार्थस्यापि पराभवं यदि रिपुर्नाधात्क्व तादृक्तपो
नीयन्ते रिपुभिः समुन्नति-पदं प्रायः परं मानिनः॥

प्रायः देखा गया है कि शत्रु ही, वीर पुरुष की बड़ाई के कारण हुआ करते हैं। देखिये, रावण, यदि रामचन्द्रजीकी स्त्री को न चुराता, तो समुद्र का पुल कैसे बन्धता और लङ्का कैसे जीती जाती? इसी तरह अर्जुन को यदि शत्रु की तरफ़ से अवहेलनायें न सहनी पड़तीं तो हिमालय पर इतने दिनों कैसे कठिन तपश्चर्या होती? और कैसे उन लोगों का विजय होता?॥

गङ्गाशरण गुप्त

[२]

इयं सन्ध्या सम्प्रत्यहमुपगतो हन्त! मलयात्
तवैकान्ते वासः, करुणवति! नेष्यामि रजनीम्।
समीरेणैवोक्ता नव विकसिता चूतलतिका
धुनाना मूर्द्धानन्नहि नहि नहीत्येव कुरुते॥ १॥

घनाक्षरी—

सांझ का समय है, सूर्य जाते अस्ताचल को है,
आता हूँ मलय से, शिथिल गति मेरी है।
वास है एकान्त, और रहती अकेलि ही हो,
करुणा कटाक्ष करो, रजनी घनेरी है।
कहीं पर खिली हुई, बाल चूतलतिका से।
पवन पथिक की, विनय बहुतेरी है।
शिर को हिलाती हुई, लतिका ललामा मानो,
नहीं नहीं करती मदन मान घेरी है॥ २॥

"कविकुमार" शास्त्री

*

धन्यवाद

गत ध्वनि में, हमने मनोरमा-पाठकों की सेवा में १—१ नवीन ग्राहक बनाने के लिये निवेदन किया था। हर्ष का विषय है, कि कुछ सज्जनों ने इस पर ध्यान दिया है। आशा है कि इसी तरह और पाठक भी, अपनी उदारता और हिन्दी-हितैषिता का परिचय कराते हुवे मनोरमा का १—१ ग्राहक बनाने की कृपा करेंगे।

जिन सज्जनों ने मनोरमा के ग्राहक बनाये हैं उनका सधन्यवाद शुभ नाम नीचे प्रकाशित किया जाता है।

१—बाबू रामगोपाल विद्यार्थी, छिंदवाड़ा
२—लाला रामकिशन रईस, धनौरा
३—पण्डित किशोरीदत्तजी मुरादाबाद
४—पं० सत्यनारायण पाण्डेयजी, जौनपुर
५—पं० बालमुकुन्द
६—पं० किशोरीलाल

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad.)
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

MANORAMA REG. No. A. 755.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सम्पादक— प्यारेलाल दीक्षित
और
रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"
(प्रश्नोपनिषद्)

लेख-सूची

(१) शुक और रम्भा [लेखक कविवर पं० वासुदेव उपाध्याय... ... २३३
(२) हिन्दी-कादम्बरी २३४
(३) दमयन्ती का स्वयंवर ... २४०
(४) वीर-वाणी [लेखक लाला लालचन्द "फ़लक" २४७
(५) नास्तिकवाद का मूल इतिवृत्त (२) [लेखक न्यायोपाधयाय पण्डित दुण्ढिराज शास्त्री काव्यतीर्थ ... २४७
(६) नर-शरीर [लेखक कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य २५०
(७) मुन्नी (कहानी) [लेखक, "कुमुद" २५१
(८) ज्योत्स्ना-पञ्चक [लेखक, "भगवन्त" २५७
(९) साहस [ले० श्रीयुत लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी ... २५८
(१०) विविध विषय २५९
(११) साहित्य-चर्चा २६२
(१२) मनोरम श्लोक [लेखक बाबू गंगाशरण गुप्त... ... ... २६३
(१३) मनोरमा और लोकमत ... २६३

वार्षिक मूल्य ३)] मनोरम-कार्यालय, मरडा धनौरा डा. पो. से प्रकाशित [प्रतिसंख्या ।-)
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षचरित-भाषा

[लेखक—मनोरमा-सम्पादक पण्डित प्यारेलाल दीक्षित]

संस्कृत-साहित्य में महाकवि बाणभट्ट का कैसा आदर है ? यह यहाँ बतलाने की ज़रूरत नहीं है। कहना यहाँ केवल यह है कि उन्हीं के संस्कृत हर्ष-चरित का प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी-छायानुवाद है। बाण की समास-बहुला भाषा का हिन्दी में अनुवाद करना सहज काम नहीं है। थोड़े से शब्दों में बड़े बड़े लम्बे समासों का भाव लिखना तो और भी कठिन है। इसके सिवा हिन्दी में आज तक इसका दूसरा अनुवाद नहीं हुवा, यह हमारे उपर्युक्त कथन का प्रमाण है। भारत की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकण्ठ होकर इस अनुवाद की प्रशंसा की है। आनरेबल पण्डित मदनमोहनजी मालवीय की सेवा में पुस्तक समर्पण की गई है। पुस्तक के आदि में आपका एक हाफ़टोन चित्र भी लगाया गया है। इससे पुस्तक का महत्त्व और उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इतने बड़े और कठिन ग्रन्थ का स्वाद आप यदि अपनी मनोहारिणी मातृभाषा में चखना चाहते हों, आप यदि पुराने कवियों की लिखने की शैली मालूम करना चाहते हों, या आप विशारद परीक्षा में सम्मिलित होने वाले हों तो हमारा निवेदन है कि इसे अवश्य मँगाइये। मूल्य ॥) मनोरमा के ग्राहकों से ।) मात्र ही लिया जायगा।

मैनेजर—मनोरमा-कार्यालय,

मंडी धनौरा, यू. पी.

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य ३) और एक संख्या का ।=) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढ़ाने तथा प्रकाशित करने, न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरम, कार्यालय मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहियें।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं छापे जायँगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥) प्रतिमास
१ पृष्ठ या आधेकालम की छपाई	५) "
आधा पृष्ठ या १ कालम की ,,	३) "
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२) "
⅛ पृष्ठ या चौथाई कालम की ,,	१॥) "

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरम-कार्यालय,

मंडी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
70287

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

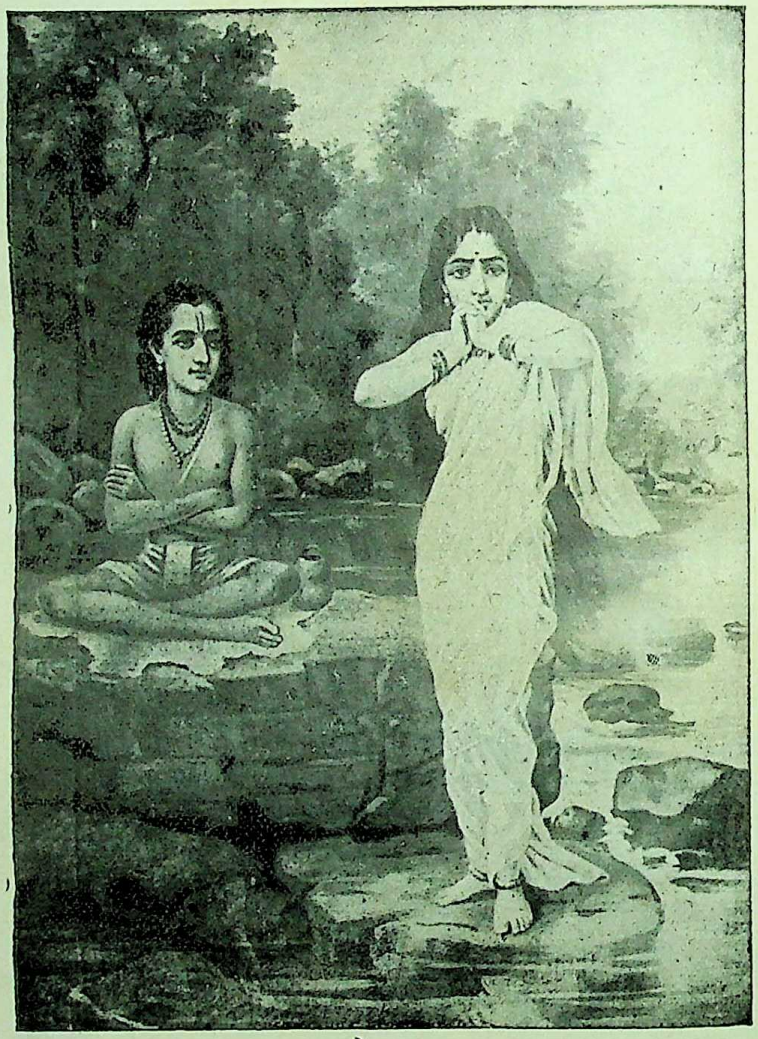

शुक और रम्भा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | वैशाख १९७३ | ध्वनि ७

शुक और रम्भा

(शार्दूलविक्रीडित)

वेद-व्यास-मुनीश के, सुत, शुक,
ब्रह्म-ज्ञ, वैराग्यवान् ।
धारे १ नैष्ठिकता, अखण्ड-तप से,
सेवैं, २ रमा-कान्त को ॥
सो, ३आखण्डल, देख के, मन, डरा,
एकान्त में, अप्सरा ।
रम्भा, नाम, बुलाय, शासन, किया,
आरम्भ का, विघ्न के ॥ १ ॥
है, इन्द्रासन, लेन का, भय, मुझे,
रम्भोरु, ! रम्भे ! सुनो ! ।

शैल-प्रान्त-वनान्त में, तप, करै,
एकान्त में, ४ व्यासज ॥
उसका, विघ्न, करो, हरो, भय, डरो,
ना, पाप, औ, शाप से ।
लेके, सङ्ग वसन्त, मोह, मुनि को,
तारुण्य का, लाभ लो ॥ २ ॥
रम्भा, पाकर, इन्द्र-शासन, चली,
प्रारम्भ को, विघ्न के ।
भेजा, पूर्व, वसन्त, मध्य, वन के,
जिसमें, तपैं, श्रीशुक ॥
सारी, श्वेत, नवीन, कोमल, करी,
सारे, खुले, बाल, हैं ।

---

१ नैष्ठिकता = सदा ब्रह्मचर्य ।
२ रमाकान्त = विष्णु-भगवान् ।
३ आखण्डल = इन्द्र ।
४ व्यासज = शुक ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ सारी-सुन्दरि, सार, सृष्टि, भर का,
सारा, दृगों, कज्जल ॥ ३ ॥
जोड़े, दो, कर, पास, लाय, मुख के,
२ वक्षोज, दर्शावती ।
थोड़ी सी, मुसकाय, आय, मुनि के,
आगे, खड़ी, नम्र, हो ॥
नाना, हास, विलास, भाव, रचती,
वक्रोक्ति से, बोलती ।
पूरी, हाव, कटाक्ष-पात, करती,
मोहै, मुनी की, मति ॥ ४ ॥
यूँ, रम्भा, करके, प्रयत्न, अपने,
सारे, थकी, अन्त में ।
प्यारे, श्री-भगवान् के, शुक, चले,
ना, ध्यान से, नैक, भी ॥
आँधी, यद्यपि, तोड़ के, द्रुमन को,
स्वस्थान से, टारती ।
तासे, कौन, लखा, तथापि, जग में,
शैलेन्द्र का, काँपना ॥ ५ ॥

वासुदेव उपाध्याय

हिन्दी-कादम्बरी ।

[७]

वह जाबालि-तनय, नदी के किनारे का वृक्ष, जैसा भी प्रतीत होता था । नदी के किनारे वाले वृक्ष की जटायें, (डाढ़ी) निरन्तर जल से धुलने के कारण, साफ़ रहती हैं । उसकी भी जटा, सतत (तीनों काल) जल-क्षालन—स्नान करने से साफ़ रहती थीं । वह, हाथी के बच्चे से भी बराबरी रखता था । हाथी के बच्चे के दाँत, खिले हुवे कुमुद के पत्तों के टुकड़ों के समान, सुफ़ेद होते हैं । उसके भी दाँत, ठीक वैसे ही सुफ़ेद थे ।

वह, अश्वत्थामा से भी तुलना रखता था । अश्वत्थामा, कृप (कृपाचार्य) के अनुगत था । उनकी आज्ञा पालन करने वाला था । वह भी कृप (दया) के अनुगत था—पीछे पीछे चलने वाला था—बड़ा दयालु था । वह, नक्षत्र-समुदाय, जैसा भी मालूम होता था । नक्षत्र-समुदाय, चित्र (चित्रा नक्षत्र) मृग (मृगशिर) कृत्तिका और अश्लेषा नक्षत्र से शोभायमान रहता है । वह भी चित्र-मृग (काले हिरन) की कृत्तिका (चर्म्म) के संसर्ग से शोभायमान था—काली काली मृगछाला, धारण किये हुवे, बड़ा अच्छा मालूम होता था । वह, गर्मी के दिन से भी तुलना रखता था । गर्मी का दिन, बड़ी दोषा (रात) को क्षपित (दूर) किये हुये होता है—गर्मी के दिनों में रात छोटी होती हैं । वह भी बहु (बहुत से) दोषों को क्षपित (नष्ट) किये हुये था—उसमें रागादि दोष नाममात्र को भी न थे । वह, वर्षा ऋतु, जैसा भी मालूम होता था । वर्षा ऋतु, रजःप्रसर (धूलि-समुदाय) को शान्त किये हुये होता है, वर्षा ऋतु में धूल का उड़ना बन्द हो जाता है । वह भी रजःप्रसर (रजोगुण की वृत्तियों)* को शान्त किये हुये था—रोके हुये था ।

वह, वरुण से भी बराबरी का दावा रखता था । वरुण, उद (जलों) में वास (अपना निवास-स्थान) बनाये हुये है । वरुण-देवता जलों में रहा करता है । वह भी, उदवास (उद-वास नामक व्रत) किये हुये था । उसने उद-वास व्रत किया था ।

वह, विष्णु भगवान जैसा प्रतीत होता है । विष्णु, नरक (नरकासुर) के भय को मिटाये हुये है—नरकासुर को मार कर सानन्द शयन करता है । वह भी, नरक का भय मिटाये हुये था । उसने अपने शुभकर्म्मों से दुर्गति की भीति को पहले ही

---

१ सारी सुन्दरि = सर्वाङ्गसुन्दरी । २ वक्षोज = स्तन ।

* लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्म्मणामशमः स्पृहा । रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ कृष्णोक्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से दूर कर दिया था। वह, किसी अंश में प्रदोष का आरम्भ जैसा भी मालूम होता था। प्रदोषारम्भ में, सन्ध्या से तारक (तारे) पीले पड़ जाते हैं। उसकी भी आँखों के तारक (पुतलियाँ) पीले* थे। वह प्रातःकाल जैसा भी कहा जा सकता था। प्रातःकाल बालातप (निकलते हुये सूरज की धूप) से कपिल (पीला और लाल लाल) रहता है। वह भी बालातप (नई धूप) का विकास जैसा कपिल (पिङ्गल) था।

वह जाबालि-तनय, सूरज का रथ, जैसा शोभायमान था। सूरज के रथ में अक्ष-चक्र (नाह और चक्र) दृढ़ता के साथ नियमित हैं-जुके हुये हैं। उसके अक्ष (इन्द्रियों) का चक्र (समुदाय) दृढ़ता से नियमित थे—उसकी इन्द्रियों के कल पुर्ज़े बड़ी मज़बूती के साथ आपस में मिले हुये थे। वह, महाराजा से भी बराबरी करता था। महाराजा, निगूढ़-मन्त्र (गुप्त-सम्मति) और साधन (सेना आदि से) विग्रह (शत्रुओं से किये हुये क्लेशों) को क्षपित (दूर) किये हुये होता है—महाराजा, गुप्त विचार और अच्छी अच्छी सेनाओं से अपने शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं। वह भी, निगूढ़ (छिपकर) मन्त्र-साधन (मन्त्रों के साधन या देवताओं के पूजन) से विग्रह (शरीर) को क्षपित (दुर्बल) किये हुये था—उसका शरीर एकान्त में नितान्त देवताराधन से बड़ा दुर्बल होगया था।

वह, समुद्र से भी बराबरी करता था। समुद्र में कराल (बड़े कुटिल) शङ्ख मण्डल (१६ चक्रवाले भँवर) और आवर्त (साधारण भँवर) हुवा करते हैं। उसके मस्तक में कराल (विकट) शङ्ख मण्डल (शङ्खाकार) आर्तव (चक्र) से गढ़ा सा मालूम होता था—उसके मस्तक में तपस्वियों वाला, शङ्ख का भँवर था।

उस जाबालि-तनय ने, भगीरथ से भी बराबरी की थी। भगीरथ ने, गङ्गा महारानी का अवतार (जन्म या आगमन) देखा था। उसने गङ्गा महारानी का अवतार (घाट) देखा था—वह घाट पर गङ्गा-स्नान किया करता था। वह, भौंरे से भी तुलना रखता था। भौंरा पुष्कर-वन के वास (स्थित) का बार बार अनुभव करने वाला होता है—भौंरा बहुधा कमलों में रहा करता है। वह भी, बारंबार, पुष्कर (जल वाले) वन में स्थिति का अनुभव किया करता था-वह, जल वाले, स्थानों को ही अपनी स्थिति के योग्य समझा करता था। वह, वनचर था—वनों में घूमने वाला था। तदपि महालय (महलों) में प्रवेश किये हुये था—महलों का रहने वाला था। महालय (मोक्ष स्थान) में प्रवेश किये हुये था—मोक्ष की धुन में लगा हुवा था। वह, असंयत (इन्द्रियों के न जीतने वाला) था। तदपि मोक्षार्थी था। बात यह है कि वह असंयत था—सांसारिक झगड़ों से छुटकारा पाये हुये था। अतएव निःसन्देह मोक्षार्थी था। वह, सामप्रयोग (सान्त्वना करने) में लगा रहता था—वह सान्त्वनिक बातें ख़ूब जानता था। तदपि दण्ड (राज-कर) को निरन्तर अवलम्बित किये हुवे था। वह राजकर देना अपना कर्तव्य समझता था।

बात यह है कि वह, साम (साम-वेद) के प्रयोगों का करनेवाला था। अतएव दण्ड (यष्टि) निरन्तर अवलम्बन किये हुये था—हर समय, अपने हाथ में छड़ी रक्खा करता था। वह, सुप्त (सोता हुवा) भी प्रबुद्ध था—जागता रहता था। बात यह है कि वह, सु (अच्छी) प्ता (जटा) वाला था। प्रबुद्ध था—बड़ा विद्वान् था। वह, दोनों आँखों वाला होते हुवे भी, परित्यक्त-वाम-लोचन था—उसके बाईं आँख न थी। बात यह है कि वह, दोनों आँखोंवाला अवश्य था परन्तु वामा (स्त्रियों) में लोचन (देखना) त्यागे हुये था। वह, ब्रह्मचारी होने के कारण स्त्री-प्रेक्षण नहीं किया करता था। या यूँ कहना चाहिये कि वह, वाम (बाम) लोचन (दृष्टि) को छोड़े हुये था—वह,

* चन्द्रोऽपिचक्रवर्तीस्यात्पीततारकनेत्रकः। सामुद्रिक-

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुरी दृष्टि से किसी को नहीं देखता था। ऐसा जाबालि-तनय उसी तड़ाग में स्नान करने की इच्छा से आया।

प्रायः अकारण ही प्रीति करनेवाले, साधुओं के चित्त, अति करुणा से आर्द्र हुवा ही करते हैं। यतः वह जाबालि-पुत्र, उस कष्ट-कारिणी, दशा में पड़े हुये, मुझे देखकर एकाएक कृपालु हो गया। और पास ही खड़े हुये, एक ऋषि कुमार से कहने लगा। यह, सामने तोते का बच्चा, बिना पंख निकले हुये ही इस वृक्ष की चोटी से गिर गया है? या यह, किसी शिकरे के मुँह से निकल कर गिर पड़ा है? इसे, गिरे बहुत देर हुयी मालूम होती है। अतएव इस तोते का, जीवन भी कुछ थोड़ा ही शेष है। यह, अपनी आँखें मूँद रहा है। बार बार मुँह के बल गिर रहा है और लम्बे २ साँस ले रहा है। एवम् अपनी चोंच, खोल रहा है। यह, अपनी गर्दन को भी नहीं सँभाल सकता। इसलिये आओ। जब तक इसके प्राण पखेरू इसे न छोड़ें उससे पहले ही पहिले इसे लेलो और इसको जल के पास पहुँचवाओ।

जाबालि-पुत्र ने, यह कह कर मुझे उस तड़ाग के किनारे मँगवा लिया। उस समय, ऋषि-पुत्र ने, जल के पास जाकर अपने दण्ड, कमण्डलु तो एक तरफ़ रख दिये और निश्चेष्ट मुझे उठाकर और मेरे मुँह को ऊँचा करके, स्वयम् अपनी अँगुली से कुछ एक जल की बूँदें पिलायीं।

जाबालि-पुत्र ने, जल-कणों से मेरा सेचन किया—मेरे ऊपर जल छिड़का। उस समय मेरी कुछ जान में जान आयी। इसके बाद उसने, किनारे पर ही पैदा होनेवाले, कमलिनी के नये पत्तों की, जल से ठंडी ठंडी, छाया में मुझे रखकर स्वधर्मानुकूल स्नान किया। स्नानान्त में, उसने, बहुत से प्राणायामों से अपने आत्मा को पवित्र किया और बड़े बड़े पवित्र, अघमर्षण मन्त्रों का जप किया।

वह, ऊपर को मुँह किये हुये, तत्क्षण ही तोड़े हुये, लाल लाल कमलों से, कमलिनी के पत्र पुट द्वारा ही (कमलिनी के अर्घे से) सूर्य भगवान् को अर्घ देकर खड़ा हो गया। और उसने, बहुत साफ़ धुले हुये, सुफ़ेद बक्कलों को धारण किया। उस समय, वह, चाँदनी सहित सायङ्काल जैसा मालूम होता था। उसने अपनी हथेली की फटकार से जटाओं को भी साफ़ कर लिया था—या यूँ कहना चाहिये कि हथेली की फटकार से, उसकी जटाओं की उलझन दूर हो गयी थी। तत्काल ही स्नान करने से, गीली गीली जटाओं वाला, वही, सारे का सारा मुनि-कुमार-समुदाय, उसके पीछे पीछे चल रहा था। ऐसी छविवाला, जाबालि-पुत्र मुझे लेकर अपने आश्रम के सामने को ही सहज सहज चल दिया।

थोड़ी ही दूर चलकर, मैंने उस आश्रम को देखा। वह, आश्रम बहुत से वनों से व्याप्त था—उसके चारों तरफ़ वन थे। वे वन, हर तरफ़ हाथों से तोड़ने योग्य, फूल, फल, वाले; ताड़, तिलक, + तमाल, हिन्ताल, * और मौलसिरी के वृक्षों से परिवर्धित थे। उनमें ताड़ आदिक के बहुत से वृक्ष थे। उन वनों में, इलायचियों की लताओं से, नारियलों की लतायें आकुलित थीं—उनमें इलायची और नारियल की लतायें बड़ी घमाघमी के साथ थीं।

वहाँ के वनों में, लोध, लवली" और लौंगों के पत्ते बड़े चञ्चल मालूम होते थे। और वहाँ आमों का धूलि-समुदाय, उल्लास को प्राप्त हो रहा था—वहाँ आमों की केसर ख़ूब झड़ झड़ कर गिरती थी। उन वनों के, बड़े सुगन्धित आम, भौंरों की झङ्कार से स्वयम् शब्दायमान थे। उन वनों में, बहुत से उन्मत्त कोकिलों के समुदाय का कल

+ तिलवा। *यह वृक्ष ताड़ की तरह का होता है लेकिन यह ताड़ से आकार में कुछ छोटा होता है।
" लवली एक लता का नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल शब्द हो रहा था। वे वन, खिली हुई, मालती के धूलि-समुदाय से धूसरित हो रहे थे और वहाँ के वनों में सुपारी के लतारूपी हिंडोलों पर वन-देवता अधिरूढ़ थे।

वे वन, वायु से निरन्तर हिलाये हुये, अति-श्वेत, पुष्प-समुदाय को बखेर रहे थे—उन वनों में, बड़े सुफ़ेद फूल बिखरे हुए पड़े थे। वह कुसुम-समुदाय तारों की वर्षा जैसा, अधर्मनाश का सूचक था—तारों की वर्षा-तुल्य, वह कुसुम-समुदाय यह बतला रहा था कि इन वनों में अधर्म का नाम मात्र भी नहीं दिखाई पड़ता। उन वनों में वृक्ष भी एक दूसरे से मिले हुए थे—बड़े घिनके थे।

उस आश्रम का, पिछला हिस्सा, दण्डक वन की स्थल-भूमियों से बड़ा अच्छा मालूम होता था। वे भूमि, निर्भय घूमते हुए, काले काले सैकड़ों हिरनों से शबल थीं—दूर से चितकबरी मालूम होती थीं। और खिली हुयी, कमलिनियों से लाल लाल थीं। माया के मृग, मारीच नाम वाले राक्षस ने, वहाँ, उगी हुई, लताओं के पत्तों को काटा था और वहाँ, रामचन्द्र के धनुष के अग्रभाग से कन्द उखाड़े गये थे। अतएव वहाँ, खड्डे पड़े हुये मालूम होते थे। उन स्थल भूमियों का, भूमितल, ऊँचा नीचा मालूम होता था।

उस आश्रम का किनारा, चारों तरफ़ से प्रवेश करते हुए, मुनियों से भरपूर था। वे मुनि, समिधा, कुशा, फूल, और मिट्टी लिये हुये थे। और वेद का पाठ करते हुए, उनके शिष्य, उनके पीछे पीछे थे। उस आश्रम में उत्सुक मयूर-समुदाय, जल में कलश भरने के शब्द को सुन रहा था।

वह आश्रम, निरन्तर घृत की आहुतियों से प्रसन्न हुये, शरीरसहित ही स्वर्ग लेजाने की इच्छा करते हुए, अग्नियों द्वारा, हिलती जुलती धुवें की पंक्ति के बहाने से बना हुवा, स्वर्ग के मार्ग में जाने के लिये, सोपानसेतु जैसा मालूम होता था।

वह आश्रम, बावड़ियों से आवेष्टित था—उस आश्रम के चारों ओर बड़ी अच्छी अच्छी बावड़ियाँ थीं। वे बावड़ियाँ, उस आश्रम के निकटवर्तिनी थीं। अतएव तपस्वियों के सम्पर्क से मलिनता त्यागे हुए मालूम होती थीं। उनकी तरंग-पंक्तियों में, सूर्य-बिम्ब की पंक्तियाँ प्रतिबिम्बित मालूम होती थीं—उनमें उनका प्रतिबिम्ब पड़ता था। अतएव वे बावड़ियाँ, तपस्वियों के दर्शन करने के लिये आयी हुई, सप्तऋषियों की पंक्ति से विलोड्यमान जैसी मालूम होती थीं। और रात्रियों में, खिले हुये, कुमुदों को, ऋषियों को उपासना करने के लिये आये हुये, तारों के समान, धारण करती हुई मालूम होती थीं।

वह आश्रम, वायु से झुकी हुयी, शिखावाली, वन-लताओं से प्रणाम करता हुआ जैसा मालूम होता था। निरन्तर पुष्पों को त्यागे हुये, वृक्षों द्वारा वह आश्रम, पूज्यमान मालूम होता था। पत्तों ही की अञ्जली बनाये हुये, गुद्दों से वह आश्रम, उपास्यमान मालूम होता था। उस आश्रम की कुटियों के सहनों में सूखे हुये, श्यामक फैले हुए पड़े थे। और वहाँ आँवला, लवली, बेरी, केला, कटहल, बढ़हल, आम और हैड़ के फलों को इकट्ठा किया जाता था—वहाँ, ऋषिजन, इन वृक्षों के फलों को अपने खाने के लिये चुग चुगकर इकट्ठा किया करते थे। ब्रह्मचारी, बड़े ऊँचे स्वर से वेद का पाठ कर रहे थे। तोतों ने, वषट्कार शब्द के सुननेमात्र से वषट्कार शब्द को सीख लिया था। अतएव वे, उससे वाचाल थे—उसका उच्चारण कर रहे थे। बहुत सी मैना, ऊँचे स्वर से वेद का पाठ कर रही थीं। वन के मुर्ग़े वहाँ, वैश्व-देव की हन्तकार का भक्षण किया करते थे। उस आश्रम में पास की बावड़ी के मनोहर हंसों के बच्चे, मुनियों के अन्न की बलि, खाया करते हैं। हिर-नियों की जिह्वारूपी पत्तों से, मुनियों के बालक, वहाँ चाटे जा रहे थे—वहाँ हिरनियाँ मुनियों के बच्चों को अपनी कोमल जिह्वा से चाट रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होम में, आधे जले हुये, कुश, समिधा, और फूल "सिम सिम" जैसा शब्द कर रहे थे। पत्थर पर टूट कर गिरे हुये, नारियलों के रस से शिला-तल चिकना हो रहा था। और भूमितल, तत्काल निचुड़े हुये, बक्कलों के रस से पाटल हो रहा था। लाल चन्दन से बनाये हुए सूर्य-मण्डल पर, कनेर के फूल रक्खे जा रहे थे। बात यह है कि वहाँ ऋषि लोग, सूर्य भगवान का पूजन किया करते थे। अतएव वे लाल चन्दन से सूर्य नारायण की मूर्ति बनाते थे। और उसपर कनेर के फूल चढ़ाया करते थे।

इधर उधर बखेरी गयी, राख की लकीर से, वहाँ मुनि जनों के भोजन के भूमि-भाग का निषेध किया जा रहा था। वहाँ राख की लकीर खींचने से, मुनियों के चौके में, इतर-पुरुष के जाने का निषेध, साफ़ साफ़ प्रकट हो रहा था। पालतू बन्दर और लंगूर, बूढ़े और अन्धे तपस्वियों को, अपने हाथ के सहारे से वहाँ भीतर बाहर लेजा रहे थे। वह आश्रम, सरस्वती की भुज-लताओं से गिरे हुये, शंखों के कङ्कण जैसे हाथियों के बच्चों से आधे खाये हुये, बसीडों के टुकड़ों से चित्रित रहता है। हिरन, ऋषि-जनों के लिये वहाँ, अनेक प्रकार के कन्द मूलों को सींगों के अग्रभाग से खोदते हैं। जल से सूँड़ों को भरे हुये, वन के हाथी वहाँ वृक्षों के थाँवलों को भर देते हैं। और ऋषियों के बालक वन-सूकरों की दाढ़ों के बीच में लगे हुये, बसीडों को खींचा करते हैं। मुनियों से परिचित मोर, अपने पंखों की हवा से, मुनियों के होम के लिये वहाँ आग जलाया करते हैं। वहाँ यज्ञ में चरु का मनोहर गन्ध निकलता रहता है। और आधे पके हुये, पुरोडाश की सुगन्धि से आमोदित रहता है। यही नहीं! घी की अविछिन्न-धाराओं के हवन द्वारा, अग्नि के शब्द से वह आश्रम शब्दायमान रहता है।

वहाँ अतिथिगणों की भी ख़ूब सेवा की जाती है। पितर और देवताओं का पूजन किया जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की विधिपूर्वक पूजा होती रहती है। वहाँ पितरों के निमित्त श्राद्ध होते रहते हैं। और यज्ञ-विद्या का वहाँ, अर्थ द्वारा निरूपण होता रहता है। धर्म-शास्त्र का आलोचन भी होता रहता है। अनेक पुस्तकों का वहाँ पाठ होता है। सारे के सारे शास्त्रों के अर्थ का भी विचार वहाँ किया जाता है। नई नई पर्णकुटियाँ बनती रहती हैं। और पर्णकुटियों के सहन लिपे पुते रहते हैं। कुटियों के भीतरी हिस्से बहुत साफ़ सुथरे रहते हैं।

वहाँ, मुनियों का ध्यान लगा रहता है। वे लोग मन्त्रों का साधन करते रहते हैं। योग का अभ्यास होता रहता है। वन-देवताओं के लिए, बलि समर्पण की जाती है। मूँज के तागड़ वहाँ तैयार रहते हैं। बक्कल धुलते रहते हैं। समिधायें इकट्ठी हैं। और काले काले मृग-चर्म्म भी, परिष्कृत रहते हैं। गवेधुक (एक प्रकार का कन्द) वहाँ ग्रहण किया जाता है—उसका भक्षण किया जाता है। वहाँ, सूखे हुए, कमलगट्टे भी हैं। और रुद्राक्ष की मालाओं का गुन्थन हुआ करता है। बहुत से वेत के दण्डे वहाँ रक्खे रहते हैं। सन्यासियों का भी वहाँ, अच्छा सत्कार हुआ करता है। कमण्डलु जल से भरे रहते हैं।

वह आश्रम, कलियुग के लिए तो अदृष्ट-पूर्व समझना चाहिए। कलि महाराज वहाँ प्रवेश नहीं कर सके। झूँठ को तो वहाँ जगह भी नहीं मिलती। कामदेव महाराज के धनुष की टङ्कार को भी वहाँ कोई नहीं सुनता!

वह आश्रम, ब्रह्मा जैसा, त्रि-भुवन-वन्दित है तीनों लोकों में श्रेष्ठ है। उसकी विष्णु से भी बराबरी की जासकती है। विष्णु नर-सिंह (नृसिंह) और वराहरूप (सूकरावतार) को प्रकट करने वाले हुए। वह आश्रम भी नर (मनुष्यों के लिए) हरि (सिंह) और वराह (सूकर) को प्रकट करने वाला है—वहाँ सिंह और सूकरों का समुदाय भी रहा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आश्रम, सांख्यदर्शन जैसा भी मालूम होता है। सांख्यदर्शन, कपिलमुनि से, अधिष्ठित है—कपिल मुनि का बनाया हुवा है। वह आश्रम भी कपिला (गौओं) से अधिष्ठित (सेवित) है—वहाँ गायें निवास किया करती हैं।

वह आश्रम, मथुरा के उपवन से भी तुलना रखता है। मथुरा के उपवन में बलावलीढ़ (बड़ा बली) अतएव दर्पित (अहङ्कारी) धेनुक (धेनुकासुर) रहा करता था। उस आश्रम में भी बलावलीढ़ा (बड़ी बलवाली) दर्पिता (मतवाली) धेनुका (गायें) रहा करती हैं।

वह आश्रम उदयन राजा के समान मालूम होता है। उदयन राजा ने, वत्स (वत्स नाम वाले राजा) के कुल (वंश) को आनन्दित कर रक्खा था—उसका पालन किया था। उस आश्रम ने भी वत्स (बछड़ों) के कुल (समुदाय) को आनन्दित कर रक्खा है—वहाँ की कोमल दूर्वा चुग चुग कर, बछड़े मत्त रहा करते हैं।

उस आश्रम को किन्नर-राज्य के समय की भी तुलना दी जा सकती है। किन्नर राज्य के समय, मुनिजनों ने अपने हाथों से कलशोंद्वारा द्रुम (द्रुमनामक राजा) का अभिषेचन किया था। उस आश्रम में भी मुनि-जन अपने हाथों से, जल कलश भर भर कर द्रुम (वृक्षों) का सेचन किया करते हैं—उनको जल दिया करते हैं।

वह, आश्रम, ग्रीष्म का अन्त जैसा, मालूम होता है। ग्रीष्म के अन्त में जल-प्रपात (जल की वर्षा) निकट ही रहता है—ज्येष्ठ मास के अनन्तर वर्षा होनी आरम्भ हो जाती है। उस आश्रम के भी निकट जल-प्रपात (झरने) गिरते हैं।

वह, वर्षा-काल से भी तुलना रखता है। वर्षा-काल में गहन (अगाध) वन (जल) में हरि (विष्णु) सुख से शयन करते हैं—वर्षाकाल में विष्णु भगवान् समुद्र के बीचोंबीच आनन्दपूर्वक शयन किया करते हैं। उस आश्रम में भी वन की गहनों (गुफ़ाओं) में हरि (सिंह) सुख से सोते हैं—वहाँ की वन-गुफ़ाओं में सिंह पैर फैला कर सानन्द सोया करते हैं।

वह आश्रम, हनुमान् से भी बराबरी किया करता है। हनुमान् ने पत्थरों के टुकड़ों को फेंक फेंक कर मारने से, अक्ष (अक्षकुमार) के अस्थि-सञ्चय (हड्डियों) का चूर्ण कर डाला था—अक्षकुमार की हड्डी हड्डी का चकनाचूर कर डाला था। वहाँ भी, पत्थरों के टुकड़ों की बौछार से अक्ष (बहेड़ों) के अस्थि-सञ्चय (गुठलियों) का चूरा चूरा हुआ रहता है।

वह आश्रम, खाण्डव-वन को नाश करने के लिये, कमर कसे हुये, अर्जुन जैसा भी प्रतीत होता है। अर्जुन ने, खाण्डव वन को जलाने के लिये, अग्नि-कार्य्य प्रारम्भ किया था—वहाँ आग देना प्रारम्भ कर दिया था। उस आश्रम में भी अग्नि-कार्य्य (होम) आरम्भ हो रहा था।

वह आश्रम, सुरभि (सुगन्धित) विलेपन (अङ्गराग) का धारण करनेवाला है—बड़े सुगन्धित कस्तूर्य्यादि द्रव्यों को रखनेवाला है। तदपि उससे, हर समय हवन के धुवों की ही सुगन्धि निकलती रहती है। बात यह है कि उस आश्रम की धरा (पृथिवी) सुरभि (गौओं) के विलेपन (गोबर) वाली है—उस आश्रम की भूमि में गौओं के गोबर की विशेषता है। अतएव वह आश्रम, होमों के धुओं को प्रकट करता रहता है।

वह आश्रम, मातङ्ग-कुल (चण्डालों) से अध्यासित है—सेवित है तदपि पवित्र है। बात यह है कि वह मातङ्ग-कुल (हाथियों) से सेवित है और पवित्र है।

उस आश्रम में सैकड़ों धूमकेतु (पूँछड़िया तारे) उल्लसित रहते हैं—निकलते रहते हैं। तदपि वहाँ, उपद्रव शान्त रहते हैं। बात यह है कि वहाँ धूमकेतु (अग्नियों) का उल्लास रहता है—वहाँ सैकड़ों प्रकार के अग्नियों का, होमार्थ उल्लास होता रहता है। अतएव वहाँ, उपद्रव शान्त रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आश्रम, परिपूर्ण (पूरे) द्विज-पति-मण्डल (चन्द्रमण्डल) के सहित है। तदपि वहाँ पास ही के वृक्षों में अँधेरा रहा करता है। बात यह है कि वह आश्रम, परिपूर्ण (ज्ञान के भरे हुये) द्विज-पति-मण्डल (ब्राह्मण समुदाय) सहित है—वहाँ बड़े ज्ञानी ब्राह्मण रहा करते हैं। वह, कोई दूसरा स्वर्ग जैसा, चित्ताकर्षक है। मैंने ऐसे गुणोंवाले आश्रम को देखा।

असमाप्त

दमयन्ती का स्वयंवर*

विदर्भराज, दमयन्ती के स्वयंवर की तैयारी करने लगे। सब राजाओं के पास स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये समाचार भेज दिया गया।

इसी अवसर पर नारद मुनि ने, इन्द्र से मिलने के लिये, स्वर्ग को प्रयाण किया, विमान (जिसे आजकल के शब्दों में हवाई जहाज़ कह लीजिये) द्वारा तो आकाश-मार्ग में प्रायः सब मुनि लोग जाया ही करते हैं, पर नारद मुनि ने, अपने योग बल से, विमान ही के विना प्रयाण किया।

आकाश का बहुत सा मार्ग तय करके, नारद जी, इन्द्र के दरवाज़े पर पहुँच गये। इन्द्र ने आप का बड़े आदर के साथ आतिथ्य किया। कुशलादि प्रश्नों के अनन्तर, इन्द्र कहने लगे—महाराज! क्या आज कल नृप-वंशों ने वीरों का जनना छोड़ दिया है? जो यहाँ स्वर्गलोक में, मर्त्यलोक के राजा, अब बिलकुल ही नहीं आते†। सच जानिये, मुझे तो इसी कारण से यह इन्द्रासन बुरा मालूम हो रहा है। बतलाइये तो, इसका कारण क्या है?

नारद कहने लगे—

इन्द्र! तुम धन्य हो। न मालूम कितने परिश्रम से, ज्योतिष्टोमादि सैकड़ों यज्ञ करके तो, तुमने यह अलभ्य इन्द्रासन पाया है। और इसपर भी अतिथियों के आतिथ्य के मुक़ाबिले में तुम इसे कुछ नहीं समझते। निःसन्देह तुम्हारी यह बड़ी अच्छी राय है कि इन स्वर्ग-सुखों को मैं अकेला ही नहीं, और लोग भी प्राप्त करें तो अच्छा है। हाँ, तुमने जो यह पूछा है कि "क्या आज कल नृपवंशों ने वीरों का जनना छोड़ दिया है?" नहीं, यह बात नहीं है। अब भी पृथ्वी पर बड़े बड़े वीर हैं। पर उन्हें स्वर्ग आने के लिये एक कारण प्रतिबन्धक हो रहा है। उसी कारण से वे बेचारे, क्षत हो जाने पर भी, उसी की लालसा से जी रहे हैं। वह कारण, भीमराज की कुमारी दमयन्ती है। अब उसका स्वयंवर रचा जा रहा है। पृथ्वी के सभी प्रतापी और शूरवीर राजे महाराजे, उसमें सम्मिलित होने के लिये विदर्भ देश को जा रहे हैं। हमने यह भी सुना है कि दमयन्ती का किसी युवा पुरुष पर जी भी आ गया है। ठहरो! ठहरो!! यह बात हमसे न पूँछना? तुम्हारे होठों की फड़फड़ाहट से यह मालूम हो रहा है कि तुम हम से यह पूँछना चाहते हो कि "वह युवा कौन है?" हम इसका उत्तर न देंगे, यह नहीं, किन्तु हम इस का उत्तर दे नहीं सकते। इसीलिये हमने तुम्हें बीच में रोक दिया है। यतः दमयन्ती ने मन के भीतर, लज्जारूपिणी कन्दरा में, उस युवा को छिपा रक्खा है। किन्तु है यह प्रसिद्ध बात कि दमयन्ती, एक योग्य पुरुष के विरह में पीली हो गई है। उसके पिता को भी इस बात का पता लग गया है। यही कारण है कि अब स्वयंवर रचाया गया है। स्वयंवर में राजाओं को बुलाने के लिए, मन्मथ महाराज से दूत का काम लिया गया है। सारे के सारे राजा, स्वयंवर में आने के लिये इतने उत्सुक

---

* कथानक मालूम करने के लिये दूसरी और तीसरी ध्वनि देखनी चाहिये।

† हिन्दू शास्त्रों के अनुसार युद्ध में जो मारा जाता है वह सीधा स्वर्ग को जाता है। गीता में श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते हैं—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृत-निश्चयः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि वे स्वयंवर तक संग्राम को दूर ही से हला-हल की तरह से त्याग रहे हैं। यही कारण है कि संग्राम न होने के कारण, वे लोग यहाँ स्वर्गलोक में नहीं आने पाते। आजकल वे, दमयन्ती का प्राप्त करना ही परमपुरुषार्थ मान रहे हैं। उनके विचार में दमयन्ती के सामने, देवकन्यायें तुच्छ हैं। सच पूछो, तो हमारे यहाँ आने का भी यही कारण है। दमयन्ती पर वे राजा, आजकल बुरी तरह लट्टू हो रहे हैं और युद्ध को वे लोग, बिल-कुल छोड़ बैठे हैं। युद्ध के बिना देखे हमारे जी को सन्तोष न हुवा और यही असन्तोष हमें तुम्हारे पास खींच लाया। हम यह जानते हैं कि तुम्हारे मुक़ाबिले में कोई नहीं ठहर सकता। तुमने युद्ध की जो यह बात छेड़ी थी इसी प्रसंग में प्रेमवश हमने ऐसा कह दिया है।

नारदजी के इतना कह चुकने पर इन्द्र कहने लगे—

महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं। मुझे तो अपने छोटे भाई दनुजारि* के होते, स्वप्न में भी युद्ध की बात नहीं सूझती! सच जानिये, मेरे वज्र को तो उसने कुण्ठित सा कर दिया है। यतः वह उससे मुझे कभी काम ही नहीं लेने देता।

युद्ध-रसिक नारद मुनि, इन्द्र की यह निर्वि-वाद बातें सुनकर बड़े चकराये और कहने लगे—

इन्द्र! इसी लिये तो हम यहाँ स्वर्ग में आये, कि भूलोक में तो कोई लड़ता नहीं, चलो, वहीं युद्ध देखेंगे, और तुम यहाँ ऐसी सूखी सूखी बातें करते हो। अच्छा, अब तुम हमें भूलोक जाने दो। वहीं युद्ध देखेंगे। दमयन्ती के स्वयंवर में अनेक राजे आयेंगे, और दमयन्ती के पाने की इच्छा से अवश्य उनमें परस्पर विवाद होगा। अच्छा, हम जाते हैं।

नारदजी के मना करने पर भी सभ्यता के अनुरोध से इन्द्र, कुछ दूर—दो चार क़दम—उनके पीछे पीछे आये।

इधर नारद जी भूलोक को आये, और उधर मन्मथ महाराज ने इन्द्रदेव को दमयन्ती का स्वयंवर देखने के लिए उत्सुक बना दिया। इन्द्राणी को यह बात मालूम होने पर बड़ा दुःख हुआ। बेचारी अप्सराओं को भी अपनी रोज़ी में सन्देह हो गया। बहुत सी मुँह चढ़ी अप्सरायें तो सखियों के बहाने से इन्द्र को साफ़ साफ़ सुनाने लगीं। एक ने तो यहाँ तक साफ़ कह दिया—

सखि! हाँ, तुम्हें मनुष्यों के देखने में ऐसे ही भाग लगे हैं। तुम उन बेचारों से घृणा करती हो। यह ठीक नहीं है। तुम्हें यह मालूम नहीं कि स्वयं इन्द्र महाराज, दमयन्ती से विवाह करने के लिये भूलोक को तशरीफ़ ले जा रहे हैं।

यही नहीं, इन्द्रदेव की इस विचार के कारण, स्वर्लोक में बड़ी निन्दा हुई। पर उन्हें तो नशा ही दूसरा चढ़ रहा था। ऐसी ऐसी निन्दाओं से वह उतरने वाला न था।

और सुनिये, वरुण, अग्नि और यम, न मालूम कब से दमयन्ती के लिये जीभ निकाले बैठे थे कि ज्योंही उन्होंने यह सुना कि इन्द्र महाराज, दम-यन्ती के लिए भूलोक को जा रहे हैं, झट से उन के पीछे पीछे भूलोक को सब चल दिये। वे चाहते ही यह थे कि देवलोक से इस बात का कोई अगुवा हो जाय, तो हमें भी दमयन्ती के स्वयंवर में अपनी क़िस्मत आज़माई का मौक़ा मिल जाय। उन्होंने भी "गतानुगतिको लोकः" वाले न्याय की, अपने मतलब के लिये, शरण ली।

अब सब देवताओं ने अपने अलग अलग, कौटिल्य-जाल फैलाने प्रारम्भ किये। सबने दम-यन्ती के पास अपनी अपनी विश्वासपात्रा दूतियाँ भेजीं और दमयन्ती के पिता भीमराज के पास उपहार भेजे।

* दनुजारि, इन्द्र के छोटे भाई का नाम है और यह उपेन्द्र कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता, मनुष्यों को चाहें और उनकी ख़ुशामद करें। यह सब कुछ मन्मथ महाराज की करामात है! निपट गँवार और मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी जिस स्वर्ग की इच्छा करता है इन्द्रादिक देवता, आज उसी स्वर्ग से भूलोक को आ रहे हैं। यह बात किसे आश्चर्य-कर नहीं, इसका समाधान यूँ तो हो सकता है कि स्वर्ग, किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। जिसका जी जहाँ लग जाय, उसे वही स्वर्ग है। मानो, भूलोक को ही स्वर्ग समझ कर देवता, वहाँ आने पर उतारू हुवे थे।

चलते चलते देवसमाज, जब पृथ्वी पर आ गया तब उसने अचानक एक शब्द सुना, विचार किया कि मेघ गर्ज रहे हैं। परन्तु थोड़ी ही सी देर बाद, एक रथ दिखाई दिया, और रथ में बैठे हुवे नल को देख कर सबने अपना संशय दूर किया।

उधर वरुण महाराज, नल की तरुणता को देखकर जड़ हो गये। यम, इसके रूपसौन्दर्य का अवलोकन कर, काले पड़ गये। यही कारण है कि उन्हें अब भी प्रायः "काल" के नाम से पुकारते हैं। ईर्ष्या के मारे अग्नि, अपने गुणों को, अपने ही में, कार्य-रूप में परिणत करने लगे—स्वयं ही जलने लगे। यही नहीं, कौशिक (इन्द्रदेव) भी अपने को कौशिक (उल्लू) समझने लगे।

इस प्रकार, नल को देख कर चारों देवताओं के होश उड़ गये। और चारों के चारों आपस में कानाफूसी करने लगे कि कहीं यह वही नल तो नहीं है!! थोड़ी देर ऐसे ही आपस में विचार होने पर, निम्न लिखित कारणों से सबने निश्चय किया कि यह वही नल है—

१—दमयन्ती के स्वयंवर का समय है।

२—कुण्डिनपुर वाले मार्ग ही पर इसका रथ जा रहा है।

३—यह बड़ा रूपवान् है।

यम विचार करने लगे—दमयन्ती तो मुझे वरे यान वरे। मेरी कदापि प्रियतमा नहीं होसकती। वह यदि मुझे वर ले, तो मैं यह समझ कर कि वह गुणज्ञा नहीं है, यतः उसने, मेरे से ख़ूबसूरत नल के होते हुवे भी मुझे वरा, अपनी प्राणेश्वरी नहीं बना सकता। और यदि उसने मुझे न वरा, तब भी मुझे वह मिल नहीं सकती, इस लिये प्राणेश्वरी नहीं बना सकता।

वरुण सोचने लगे—दमयन्ती ने यदि नल को न देखा, तब तो शायद वह मुझे वर लेगी, अन्यथा नहीं।

अग्निदेव के मन में एक अद्भुत ही विचार हुवा। आप सोचने लगे—दमयन्ती ने यदि नल को वर लिया, तो मुझे तो कहीं मुँह दिखाने को भी जगह न रहेगी।

इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ़, निराश हुई देवमण्डली, परस्पर मुँह ताकने लगी। इन्द्रदेव ने तीनों की यह दशा देख कर कपट की ठहराई। आपने नल से यूँ कहना प्रारम्भ किया।

तुम प्रसन्न तो हो? हमारा अनुमान है कि तुम नल हो। क्योंकि तुम्हारे में, अपने पिता वीरसेन के, जो हमारे बड़े भारी मित्र थे, कई चिन्ह मिलते हैं। अब तुम कहाँ जारहे हो? यह तुमसे पूँछना उचित नहीं, यतः जिस कारण से हमने पृथ्वी की यात्रा की है। वह हमें अब शुभ मालूम होने लगी है। तुम भी उस यात्रा के अधबीच में आगये हो। और अपने (प्रश्नकर्त्ता के) अभीष्ट मार्ग को जाते हुवे से कोई यह पूँछा भी नहीं करता कि तुम कहाँ जारहे हो? (यमादि की तरफ़ को इशारा करते हुवे) ये दण्ड-धारी यम हैं, ये ज्वाला-जाल-जटिल अग्निदेव हैं। ये जल के स्वामी वरुण हैं और मैं इन्द्र हूँ। सम्भवतः तुम्हारा यह प्रश्न होगा कि आप लोगों के यहाँ आने का कारण क्या है? सुनो! हम सब लोग तुम्हारे पास याचक बन कर आये हैं। थकान ज़रा दूर होजाय, तो अभी कहे देते हैं। यह कह कर इन्द्रदेव चुप होगये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र के इस इन्द्रजाल को न समझते हुवे, नल का अजीब हाल हुवा। यह सोचने लगा—

यह बड़ी गहरी और पेचदार बात है कि देवताओं को भी कोई वस्तु दुर्लभ हो और मैं उसे सुलभ कर सकूँ। अच्छा जब ये मुझसे याचना ही करने चले हैं तो इन्हें क्या चीज़ देकर मैं इनके और अपने मन को प्रसन्न करूँ। इस समय मुझे दमयन्ती से प्यारी कोई चीज़ नहीं है। धन तो धन उसे मैं प्राणों से भी अधिक समझता हूँ। एक जी चाहता है कि उसे ही देदूँ। पर हाँ उसके देने का मुझे क्या अधिकार? यह देना तो सचमुच शेख़-चिल्ली वाला देना होजायगा। फिर इनके जी की बात कैसे जान ली जाय कि ये क्या माँगना चाहते हैं? और इनके बिना माँगे कैसे कोई चीज़ इन्हें देदी जाय? मुझे धिक्कार है कि मैंने याचक के प्रति इतनी देर लगाई। कम से कम इनसे पूछ तो लूँ कि ये क्या चाहते हैं? प्रणामपूर्वक नल कहने लगा—

कार्य और कारण में कुछ ज़्यादा अन्तर नहीं है। यही कारण है कि अमृत-भक्षी आपको देखते हुवे, मुझे यह मालूम होता है कि मेरे नेत्र अमृत में स्नान कर रहे हैं। निःसन्देह मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। जो आप जैसे महात्माओं के दर्शनों का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुवा। मैं जानना चाहता हूँ कि वह क्या चीज़ है? जिसे आप मुझसे चाहते हैं। यतः मैं बहुत ही शीघ्र उसे आपके शुभ-चरणों में समर्पण करके कृतकृत्य बनूँ।

इन्द्र, अपनी अंगुलि ठहरती देख मन ही मन बड़े प्रसन्न हुवे। अब उन्हें यह स्वार्थ की सूझी कि इन सबमें (अग्नि, वरुण और यम में) नल, मेरा ही काम करे। और इसके लिये इससे, इनके सामने साफ़ साफ़ भी न कहना पड़े। क्योंकि ऐसा होने से आपस ही में चल जायगी, और क्या असम्भव है कि इनके विरुद्ध हो जाने पर कार्य सिद्धि में कुछ बाधा पड़ जाय। अतः उन्होंने एक ऐसी श्लेषोक्ति कही जिसके दो अर्थ होते हैं* पहिला यह कि "दमयन्ती के साथ मैं विवाह करना चाहता हूँ। इस काम में तुम मेरा दूत-कार्य करो"? दूसरा यह कि "दमयन्ती के साथ हम सब विवाह करना चाहते हैं। इस काम में तुम हमारा दूत-कार्य करो"? हम तुम्हारा यह उत्तर सुनने के लिये तैयार नहीं हैं कि मैं इस काम को कर नहीं सकता। यतः हम तुम्हारे गुणों को भली भाँति जानते हैं। तुम यदि हमारे इस काम में सहायता न दोगे, तो सच जानो, हमारा यह काम होना भी मुश्किल है।

इन्द्र के इस इन्द्रजाल को नल पहिचान गया, और इसने भी अपने उत्तर में इन्द्र ही के कपट-पाटव का अवलम्बन किया। यह कहने लगा—

यह मेरे ही जन्मान्तर के पापों का फल है, जो आप जैसे देवताओं की बातों में दख़ल देने की इच्छा होती है। सुनिये—आपका काम तो पुण्यात्मा पुरुष ही कर सकता है। मेरा जैसा पापी नहीं। आप सर्वान्तर्यामी हैं सही, पर मेरा जी चाहता है कि मैं भी आपसे साफ़ साफ़ मना कर दूँ। दमयन्ती के इच्छुक को आप जैसे सर्वज्ञ, उसीके पास दूत-कार्य करने के लिये भेज रहे हैं। यह युक्ति मेरी समझ ही में नहीं आती! (हँसते हुवे) जिसके साथ मैं विवाह करने के लिये जा रहा हूँ उसीके पास दूत बनकर जाऊँ, यह कैसे हो सकता है? शोक है कि आपको मेरे जैसे तुच्छ पुरुष को ठगते हुए घृणा नहीं होती! जिसके विरह में मैं बावला सा फिरा करता हूँ, आप ही बतलाइये, कि उसके सामने मुझसे कैसे गोप्य बातें छिप सकेंगी? अच्छा, इन बातों को भी जाने दीजिये, मैं यदि आपके कहने से चला ही गया, तो दमयन्ती तक

---

* पाणिपीडनमहं दमयन्त्याः,।
कामयेमहिमहीमिहिकांशो।
दूत्यमत्र कुरु नः स्मर भीतिं,
निर्जित-स्मर! चिरस्य निरस्य॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच कैसे सकता हूँ? वहाँ तो दरवाज़े पर ही पहरेदार बैठे होंगे! इससे आप मेरी कहीं कायरता न समझ लें! मैं उन पहरेदारों को मारकर भी वहाँ जा सकता हूँ। पर जिसने पहरेदारों को मार डाला हो, उस ख़ूनी के सामने दमयन्ती कैसे आ जायगी?

आप जैसे मुझसे याचना कर रहे हैं, मैं भी इसी तरह आपसे याचना करता हूँ कि आप मेरे लिये ऐसा कीजिये, जिससे दमयन्ती मुझे वर ले। आप कहेंगे कि क्षत्रिय को माँगना उचित नहीं। सो, इस बात को मैं न मानूँगा। देवता, जिसे माँगने पर जब मुंह धोये बैठे हैं, तब उसके माँगने में मुझे ही क्या डर है? इस याचन-विधि में, मैं आप ही को गुरु बनाना अच्छा समझता हूँ। आप की पूजा कर मैंने दमयन्ती को आपसे माँगा था। मैं कह सकता हूँ कि आपको कुछ लज्जा नहीं, जो आप अब उसे, मुझसे एक प्रकार से माँग रहे हैं ऐसी दशा में, जब आप ही को लज्जा नहीं, तो मुझे भी यदि न हो, तो मैं समझता हूँ कि कुछ ज़्यादा बुरी बात न समझी जायगी।

एक और बात है। दमयन्ती, मुझे पहिले ही से स्वीकार कर चुकी है। आप लोगों को वह कदापि स्वीकार न करेगी। वहाँ जाने पर और कुछ न होगा, मुझे देख कर वह शरमा जायगी। अतः मुझसे यह दूत-कार्य्य न कराइए। अच्छा यह होगा कि आप इस काम पर और किसी योग्य व्यक्ति को नियत करें। आपने विवशतया यदि मुझे भेज भी दिया तो हँसी के सिवा और कुछ न होगा।

अपनी बात बिगड़ते देख, इन्द्र, नल की खुशामदें करने लगे। इन्द्र ही नहीं, तीनों देवताओं को भी अपने मतलब के लिये, नल का भाट बनना पड़ा। अग्निदेव कहने लगे—

नल! तुम देखते नहीं, कल्प वृक्ष के स्वामी, इन्द्र महाराज, तुमसे याचना कर रहे हैं। भला बतलाओ तो, पृथ्वी पर यह कभी और किसी के पास भी गये हैं! यम, कहने लगे—

नल! याचक लोग, कामधेनु (जो पशु है) और सुमेरु पर्वत (जो पत्थर जैसा कठिन है) से भी कभी निष्फल—ख़ाली हाथों, नहीं आये। तुममें ये दोनों बातें (पशुता और कठिनता) न होने पर भी, आश्चर्य है, कि तुम आज याचकों को यूँ ही निष्फल लौटाना चाहते हो!

वरुण कहने लगे—

जिनसे सारा संसार याचना किया करता है, आज वही तुमसे याचना कर रहे हैं। यह कितनी बड़ी बात है! अतः न केवल हमारे मनोरथ ही को पूर्ण करो, प्रत्युत अपनी कीर्ति को भी दिगन्त-व्यापिनी बनाओ। तुम्हें इस बात की तो ज़रा भी परवाह न करना चाहिये, कि मेरे जाने पर काम न होगा।

आख़िर, देवताओं की "मान न मान मैं तेरा मेहमान" वाली ख़ुशामदी बातें सुनकर, नल को ज़बरदस्ती, उनकी बात माननी पड़ी।

इन्द्र, बड़े प्रसन्न हुवे। आपने नल को एक ऐसी विद्या सिखलादी, जिससे नल, सबको देख ले, और नल को कोई भी न देख सके।

नल, इस प्रकार दूत बन कर, सीधा कुण्डिनपुर की तरफ़ को चल दिया। चारों देवता, नल की ओर, आँखें फाड़ फाड़ कर देखते रहे और इस प्रतीक्षा में वे वहीं ठहरे रहे, कि कब नल आये और कब हम अपना अभिलषित समाचार सुनें।

इधर चलते चलते, नल का रथ कुण्डिनपुर पहुँचा। कुण्डिनपुर के मार्ग को देखकर इसे सहसा कलेजा थाम कर रह जाना पड़ा। इसके मन में यह विचार आते ही कि "दमयन्ती इसी मार्ग में कभी कभी घूमती होगी" धक धक होने लगी और यह बड़ी स्नेह-पूर्ण-दृष्टि से उस मार्ग को देखने लगा।

रथ से उतर कर यह शहर में घुसा। राज-भवन को देख कर यह एक दम चौकन्ना हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसके मन में कई विचार हुवे। राज-द्वार पर हथियार बन्द खड़े हुवे द्वारपालों को देख कर यह मुसकराया कि ये मेरा क्या कर सकते हैं? इस बात से इसके जो में लज्जा आई कि मैं यहाँ चोर की तरह से घूम रहा हूँ। और इससे कुछ सन्तोष भी हुवा कि दमयन्ती यहाँ देखने को मिलेगी। पर इस बात का विचार करते ही यह बात काफ़ूर की तरह से उड़ गई कि मैं यहाँ दूत बन कर आया हूँ।

इसी प्रकार विचार करते करते नल ने भवन में प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर इसका अजीब हाल हुवा। कहीं किसी बाला का उघड़ा हुवा अङ्ग देखकर इसने आँखें मींच लीं, * कहीं किसी सुन्दरी का सहसा स्पर्श होने से यह झिझक उठा। इन्द्रदत्त विद्या के प्रभाव से, सबको देखते हुवे भी यह अदृश्य तो था ही, अतःपुर में कहीं कहीं इसे गेंद भी खानी पड़ी। आकस्मिक कहीं कहीं सुन्दिरियों का आलिङ्गन भी इसे करना पड़ा। कहीं कहीं तो इसने नाटक के एकटर (Actor) का काम किया। कभी यह प्रकट हो जाता और कभी फिर वही अदृश्य। प्रकट होने की दशा में जो सुन्दरी इसे जहाँ देख लेती, फिर इसे देखने की लालसा से वह किसी न किसी बहाने से कई कई फेरे वहाँ लगाती। इतने ही में वहाँ सुन्दरी-समाज का एक हल्ला सा मच गया, कोई कहने लगी—मेरी अभी यहाँ एक आदमी से टक्कर सी लगी थी। कोई कहने लगी—मैंने यहाँ अभी एक पुरुष की छाया सी देखी थी। एक बोली—मैंने अभी एक आदमी का यहाँ बोल सा सुना था।

और सुनिये, दमयन्ती, अपनी माता को प्रणाम करके आ रही थी कि नल से अचानक भेंट होगई। पर नल, दमयन्ती को ठीक ठीक न पहिचान सका। इधर दमयन्ती, नल के अदृश्य होने के कारण इसे न देख सकी। एक बार तो नल की दमयन्ती से टक्कर भी लग गई, पर इसके अदृश्य होने के कारण, दमयन्ती ने उसे भ्रान्ति ही समझी। इधर देखता हुवा भी नल, यह निर्णय न कर सका कि यह दमयन्ती ही है।

दमयन्ती भी, इसी प्रकार भ्रान्ति से नल ही की सम्भावना करती हुई, अपने प्राइवेट निवास स्थान में चली गई। इसका वह स्थान बड़ा रमणीय था, वहीं बैठ कर यह कभी कभी नल के विरह से दुखी होकर, अपने नाखूनों से नल का चित्र खींचा करती थी। वहीं बैठकर इसने अग्नि, वरुण और यम की दूतियों को फटकार बतलाई थी। इन्द्र की दूती से तो उसके ज़्यादा झक झक करने पर यहाँ तक कह दिया था कि अब ज़्यादा बकोगी तो तुम्हें स्वर्ग की सैर करादी जायगी। इस प्रकार अन्तःपुर की सैर करता हुवा नल, दमयन्ती के सम्मुख उपस्थित हुवा। इसे देखकर यह बेतरह मुग्ध होगया। दमयन्ती के प्रत्येक अंग की सुन्दरता का मन ही मन में अभिनन्दन करते हुवे, इसके हृदय में, जिन भावों का उदय हुवा, उनका वर्णन महाकवि ही कर सकते हैं।

दमयन्ती के रूपलावण्य की शोभा देखता हुआ, यह देर तक वहाँ खड़ा रहा। तदनन्तर उचित अवसर देख, अपना दूत-कार्य्य करने के लिये यह प्रकट होगया।

नल के, अकस्मात् प्रकट होने पर दमयन्ती और इसकी सखियों ने इसे बड़ी अन्दाज़ से देखा। किसी किसी सुन्दरी ने नल को देख कर लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया। किसी किसी ने इसके रूपलावाण्य के समुद्र में गोते लगाने प्रारम्भ कर दिये। किसी किसी ने सचमुच इसे कामदेव ही समझा, और कोई कोई तो इसे देखकर मदान्ध भी होगई। नल के रूपलावण्य ने सबको चौकन्ना बना दिया। किसी भी सखी को यह पूछने का साहस तक न हुवा कि आप कौन हैं? और कहाँ से आये हैं? उनसे उस समय केवल यही हो सका कि अभ्युत्थान की इच्छा से वे सब अपने

* "न नग्नां स्त्रियमीक्षेत" स्मृतिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आसनों से उठ खड़ी हुवीं। दमयन्ती ने देखा कि इसकी सारी सखियाँ, परपुरुष के प्रवेश से डर कर अवाक् होगई हैं। अतः स्वयं इसी ने मुख नीचा करके यूँ कहना प्रारम्भ किया—

महानुभाव ! ऋषियों ने यह नियम बना दिया है कि अतिथि आने पर यदि और कुछ न बन पड़े तो प्रेम-पूर्ण अक्षरों की रस-धारा ही को मधुपर्क बना लेना चाहिये। उस समय यदि पाद्य और अर्घ्य के लिये जल न मिल सके तो आनन्दाश्रुवों से ही उस विधि का सम्पादन कर देना चाहिये और अतिथि को देख कर फ़ौरन् ही अपने आसन से खड़े हो जाना चाहिये। यही कारण है कि मैंने पहिले ही आप के लिये अपना आसन छोड़ दिया है। मैं यह जानती हूँ कि यह आसन आपके बैठने योग्य नहीं, तथापि मेरी प्रार्थना पर बहुत नहीं तो थोड़ी ही देर के लिये कृपया आप इसे अलंकृत करें ! निःसन्देह आपके ये चरण, शिरीष-कलिकाओं का भी गर्व, खर्व करने वाले हैं। बतलाइये तो, कि आपका कृपा-शून्य मन, कब तक इन्हें इसी तरह खड़े रख कर क्लेशित करना चाहता है ? वसन्त बीत जाने पर जो दशा वन की होती है, वही दशा आज आपने किस देश की कर डाली ? आपके मुख से उच्चारण किये जाने के कारण, कृतार्थ होने वाले, आपके नाम के अक्षर क्या मैं सुन सकती हूँ ? इस सुरक्षित रनवास में, आपके प्रवेश को मैं समुद्र को पार करजाना समझती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े साहस का क्या प्रयोजन है ? आपके यहाँ तक आजाने के लिये मैं अपने नेत्रों के कृत-पुण्यों का फल समझती हूँ। यतः आप पर द्वारपालों की दृष्टि नहीं पड़ी। आपकी आकृति, सर्वथा लोकोत्तरातिरमणीया है। द्वारपालों को अन्धा कर देने की शक्ति भी आपमें बड़ी ही अद्भुत है। इससे जान पड़ता है कि आप किसी देवता-घराने के हैं। कामदेव, आप नहीं हो सकते, क्योंकि वह मूर्त्ति-हीन है। अश्विनीकुमार भी आप नहीं होसकते, क्योंकि वे कभी अद्वितीय नहीं रहते। अपने दर्शनों से सारे के सारे संसार को तप्त करने वाले, आप जैसे पीयूष-मयूख (चन्द्र) को उत्पन्न करके किस वंश ने समुद्र के साथ स्पर्धा करने की ठानी है ? मैं समझती हूँ कि कामदेव ही ने दूसरा जन्म लेकर, इस दृश्यमान सुन्दर शरीर को प्राप्त किया है। इसी लिये—अपने वर्त्तमान शरीर से सुन्दर शरीर पाने ही के लिये, शायद उसने, शिवजी के तृतीय नेत्ररूपी अग्नि-कुण्ड में अपने शरीर की आहुति देदी होगी।

नास्तिकों की तरह पुराणों की यह बात तो मुझे भी पुरानी ही मालूम होती है कि शिवजी के अनङ्ग कर देने के कारण, कामदेव, दृश्य (नयनगोचर) नहीं है। मुझे तो यह नई बात पसन्द है कि आप ही के शरीर में सारी शोभा होने के कारण, कामदेव, दृश्य (देखने लायक़) नहीं है। आप यदि मनुष्य हैं, तो यह पृथ्वी कृतार्थ है। और यदि आप देवता हैं, तो देव-लोक की प्रशंसा नहीं की जा सकती ! आपने अपने जन्म से यदि नाग-कुल को अलंकृत किया है, तो नीचे—पाताल में—होने पर भी वह सब लोकों के ऊपर समझा जाने योग्य है। मैं अब तक यह कोरी बात ही बात समझती रही कि अगस्त्य ने समुद्र का आचमन कर लिया था। पर अब आपको देखकर मेरी यह शङ्का दूर होगई। यतः गाम्भीर्य और महत्वरूपी समुद्र को तो आप ही हड़प किये बैठे हैं ! निःसन्देह, नल का जैसा आपका रूप-लावण्य है। या तो बतलाइये इस भूमण्डल में किस पुरुष ने इतना अधिक पुण्य किया है ? जिसे कृतकृत्य करने के उद्देश से, आप अपने पैरों को चलने का कष्ट दे रहे हैं। ऐसे ही न मालूम कितने सन्देह, मेरे चित्त में उत्पन्न हो रहे हैं। कृपया बतला दीजिये, कि किस धन्य के आप अतिथि हैं ? आपकी सुन्दर रूप सृष्टि का दर्शन करके, मेरे नेत्रों ने तो अपने जन्म का फल पा ही लिया। पर क्या कानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यूँ ही अमृत-रस के आस्वादन से वञ्चित रखि-
येगा ? वह आपकी वाणी का प्रसाद चाहते हैं ।
(अपूर्ण)

वीर-वाणी

(अभिमन्यु की—अपनी माता के प्रति)

[लेखक लाला लालचन्द फ़लक]

इजाज़त दे, मुझे माता ! कि रणभूमि में जाऊँ मैं ।
भुजाबल और शक्ति, युद्ध में जाकर दिखाऊँ मैं ॥
लगाऊँ ख़ूद* सिरपर, बाज़ुओं पर बाँधलूँ जोशन,
ज़रेबकतर से सारा, तन बदन अपना सजाऊँ मैं ॥
कमर में तेग़ लटकाऊँ, तो तरकश पुश्त पर डालूँ ।
ग्राँ हाथों में लेकर तीर चिल्ले पर चढ़ाऊँ मैं ॥
गदा लेकर मैं गरजूँ, सिंह-सम मैदान में जाकर ।
लगाऊँ चोट ऐसी होश शत्रू के भुलाऊँ मैं ॥
जिगर थर्राय दुशमन का, रिपू का तन बदन काँपे ।
अगर त्यूरी बदल कर, आहिनी ख़ञ्जर उठाऊँ मैं ॥
गिरा देती है फल, वृक्षों के नीचे जिस तरह आँधी ।
ज़मीं पर इस तरह से, दुशमनों के सर गिराऊँ मैं ॥
जिसते ज़िसे जिसफुरती से वन में तितलियाँ उड़तीं ।
उसी फुरती से रण में, कौरवों के सर उड़ाऊँ मैं ॥
तुम्हारे दूध की तासीर, माता ! रण में दिखलाऊँ ।
पिता से ज़ोर का गौरव, ज़माने पर बिठाऊँ मैं ॥
दिखाकर ग़ैर को नीचा, विजय का शंख जब फूँकूँ ।
ज़मीं क्या चीज़ है? माता! फ़लक का दिल हिलाऊँ मैं॥

"नज़ारा"

नास्तिकवाद का मूल-इतिवृत्त ।

(२)

७–चार्वाक ।

चार्वाक के नाम से प्रसिद्ध दर्शन ही नास्तिक-दर्शन के नाम से सुप्रसिद्ध है । क्योंकि माधवाचार्य ने सर्वदर्शनसङ्ग्रह में लिखा है—

"बृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिकशिरोमणिना चार्वाकेण" इति

इस तरह स्थल स्थल में बहुत लोगों ने चार्वाक के नाम से नास्तिक मत का उदाहरण दिया है । यहाँ विचार यह करना है कि यह चार्वाक कौन है ? चार्वाक शब्द की व्युत्पत्ति यूँ की जाती है –

चारुः आपातमनोरमो वाक्यो वचः यस्येति पृषोदरादित्वात् साधुरयं शब्द इति ।

अर्थात् जिसका वाक्य लोक-चित्ताकर्षक हो वह चार्वाक कहलाता है । कोई कोई ऐसी व्युत्पत्ति भी करते हैं कि चार्वः बुद्धः (बुद्ध) तत्सम्बन्धाच्चार्वाकः उसके सम्बन्ध से चार्वाक ऐसा भी अर्थ हो सकता है पर यह चिन्तनीय है * ।

महाभारत में, कोई चार्वाक नाम का राक्षस कहा है । जैसे –

निःशब्दे च स्थिते तत्र ततो विप्रजने पुनः ।
राजानं ब्राह्मणच्छद्मा चार्वाको राक्षसोऽब्रवीत् ॥
तत्र दुर्योधनसखा भिक्षुरूपेण संवृतः ।
साक्षः शिखी त्रिदण्डी च धृष्टो विगतसाध्वसः ॥
इति ।

यही राक्षस युधिष्ठिर को दुर्वाक्य कहता हुवा अन्य ब्राह्मणों से मारा गया है, जैसे –

ततस्ते ब्राह्मणास्सर्वे हुङ्कारैः क्रोधमूर्च्छिताः ।
निर्भर्त्सयन्तः शुचयो निर्जघ्नुः पापराक्षसम् ॥ इति
महाभारत १३.३८. २२. २३

इस राक्षस का पूर्वजन्मवृत्तान्त वहीं इस तरह लिखा है –

---

*.ख़ूद = लोहे की टोपी ।

* क्रमिक में देखिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरा कृतयुगे राजंश्चार्वाको नाम राक्षसः।
तपस्तेपे महाबाहो! बदर्यां बहुवार्षिकम्॥
वरेण छन्द्यमानश्च ब्रह्मणा च पुनः पुनः।
अभयं सर्वभूतेभ्यो वरयामास भारत!॥
द्विजावमानादन्यत्र प्रादाद्वरमनुत्तमम्।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददौ तस्मै जगत्पतिः॥
स तु लब्धवरः पापो देवानमितविक्रमः।
राक्षसस्तपयामास तीव्रकर्मा महाबलः॥
ततो देवाः समेताश्च ब्रह्माणमिदमब्रुवन्।
वधाय रक्षसस्तस्य बलविप्रकृतास्तदा॥
तानुवाच ततो देवो विहितस्तत्र वै मया।
य एतस्य भविता मृत्युरचिरेणेति भारत॥
राजा दुर्योधनो नाम सखास्य भविता नृषु।
तस्य स्नेहावबद्धोऽसौ ब्राह्मणानवमंस्यते॥
तत्रैनं रुषिता विप्रा विप्रकारप्रधर्षिताः।
धक्ष्यन्ति वाग्बलाः पापं ततो नाशं गमिष्यति।
स एष निहतः शेते ब्रह्मदण्डेन राक्षसः।
चार्वाको नृपतिश्रेष्ठ! माशुचो भरतर्षभ॥
महा. १२. ३९. ३—१९

इसमें यद्यपि चार्वाक का नास्तिक नाम से परिचय नहीं दिया है तो भी ब्राह्मणों का उसपर रोष स्पष्ट ही मालूम पड़ता है। इसका कारण भी उसके द्वारा ब्राह्मणों का किया हुआ अपमान ही है। महाभारत में कई स्थानों में नास्तिकवाद का उल्लेख पाया जाता है पर वहाँ चार्वाक का नाम नहीं पाया जाता। चार्वाक ही वैदिक ब्राह्मणों का प्रधान प्रतिपक्षी था इसलिये उसे राक्षस नाम से वर्णन करना संगत हो सकता है।

वेणीसंहार नाटक में इसी चार्वाक का कुछ अन्य रूप से भट्ट नारायण ने वर्णन किया है, पर इसमें भी इसका नास्तिकत्व नहीं उपलब्ध होता। न्यायकुसुमांजली में क्षणभङ्गवादी बौद्ध ही को चार्वाक कहा है। प्रकाशकार का भी यही मत है। पर वस्तुतः चार्वाक बौद्ध नहीं है क्योंकि दोनों मत भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। यही चार्वाक नास्तिकों का शिरोमणि है। स्वयं नास्तिकवाद का रचयिता नहीं है। क्योंकि इसने बृहस्पति मत का अनुसरण किया। यह सविस्तर पहिले कहा जा चुका है।

८—पाषण्ड* पाखण्डी, पाखण्डक और पाषण्डिक

काव्यवेत्ता लोग जानते ही हैं कि नास्तिकों ही के लिये पाषण्ड शब्द का व्यवहार प्रसिद्ध है क्योंकि नैषधीय चरित्र में कोई नास्तिकवादी को 'पाषण्डपाश' कहा गया है। बौद्धों में भी इस शब्द का प्रयोग सर्वत्र देखने में आता है। आर्हत को भी इस शब्द ने नहीं छोड़ा। तात्पर्य यह है कि जो जिस मत का विरोधी होता है वही उससे पाखण्ड शब्द से व्यवहृत होता है। कहीं कहीं पाखण्ड के अर्थ में पाखण्डी, पाषण्डक और पाषण्डिक शब्द भी आते हैं।

९—पाखण्ड शब्द में बौद्ध और जैनमत

बौद्ध मत में पाखण्ड शब्द का बहुत व्यवहार मिलता है। पर बौद्ध लोग अपने को पाखण्डी नहीं कहते। किन्तु वे भी उस काल के बौद्धमत के विरुद्धमतावलम्बियों को नास्तिक कहते हैं। उनके साहित्य में ९६ पाखण्डों का उल्लेख किया है। उसमें कुटीशकादि नाम के ३४, और दूसरे ६२—जिनके मत ब्रह्मजाल सूत्र में उद्धृत हैं आर्हत लोग पाखण्डियों के (३६३) भेद कहते हैं। ये भी अपने को पाखण्डि सुनना नहीं चाहते।

१०—नास्तिकवाद का मूल।

यह नास्तिकवाद कब और कहाँ उत्पन्न हुआ? इस बात पर विचार करने से यह कहना पड़ता है कि पाणिनि ने नास्तिक शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते हुए अपने से नास्तिकों को प्राचीन ही दिखाया है। महाभारत में स्थल स्थल पर, तथा रामायण के अयोध्याकाण्ड में जहाँ 'जाबालि मुनि ने धर्मोपदेशयुक्त वाक्य राम से कहे हैं' वहाँ भी

* पाखण्ड शब्द की व्युत्पत्ति यों है—पापं खण्डयति दर्शनादिना ददाति इति (विष्णु पु० ३। १८ पृथोदरादि०) यद्वा पाति दुष्कृतेभ्यः (पा + क्विप्) पा वेदधर्मान् खण्डयतीति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्तिक का उल्लेख है। मैत्र्युपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद् में भी इनका वर्णन पाया जाता है? एवं कठोपनिषद् में भी कहा है –

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके" १।१।२०।

इत्यादि वाक्यों से उस समय नास्तिकवाद खूब फैला हुआ था यह स्पष्ट प्रतीत होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों के समय में नास्तिकवाद अवश्य था। अब मन्त्रभाग में देखना चाहिये कि उनमें भी इस विषय में कुछ लिखा है या नहीं? और नास्तिक्य की उत्पत्ति का क्या कारण है? स्तुतिरूप मंत्रों में यह बात देखने में आती है कि मुनि लोगों ने देवताओं से बहुत से द्रव्य माँगे हैं। कुछ भी हो, जब इनकी प्रार्थना पूरी हुई है तब इन लोगों को अद्भुत शक्ति तथा दृढ़ विश्वास, मंत्रों में हुआ और इसी से वेद में प्रामाण्य-बुद्धि हुई। परंतु जैसे ही वेद में एक तरफ़ प्रामाण्य-बुद्धि हुई, दूसरी तरफ़ संदेह भी हुआ। स्तुति करने पर प्रार्थना पूरी न होने से ही स्तोताओं को मन्त्र रूप स्तुति में सन्देह (अप्रामाण्य-बुद्धि) हुई। लोक में भी यह बात स्पष्ट देखने में आती है कि कोई कोई देवताओं से मनोरथ-सिद्धि होने पर लोग उस देवता को मानते हैं। मनोरथ पूरा न होने से कहते हैं कि इसमें क्या है। आगे लिखे मंत्रार्थ हमारी उक्ति को दृढ़ करते हैं, जैसे –

"हे संग्राम में जीतने की इच्छा करनेवालो! तुम लोग इन्द्र के लिये सत्यभूत यज्ञ करो। यदि "इन्द्र है" यह बात सच हो। नेमर्षि भार्गव बोले, इन्द्र कोई नहीं है, किसने इन्द्र को देखा है? किस की हम स्तुति करें? इसलिये "इन्द्र है" यह कहना प्रवाद मात्र है सच नहीं।"

यजमान के इस वाद को सुनकर इन्द्र ने जो कहा वह भी उसी सूक्त में है – ऋग्वेद ८–१०० "हे स्तोता! यह मैं हूँ, तुम्हारे पास हूँ देखो। मैं सब भुवनों को व्याप्त करता हूँ। मुझे सब सत्य प्रदेष्टा विद्वान् स्तोत्र से बढ़ाते हैं और मैं ही क्रुद्ध होकर सब भुवनों को दुःख देता हूँ।"

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि इन्द्र के सद्भाव में किसी किसी को उस समय संशय हुआ। वैदिक देवताओं में इन्द्र का उच्च पद है। पर इसमें विचिकित्सा होती है कि वह वस्तुतः है या नहीं? स्थानान्तर में श्रद्धोत्पादक भी वाक्य देखने में आते हैं –

"स योहा इन्द्रः सर्वस्य शोधकेन बलेन महतः संग्रामान् जनार्थं करोति यदेन्द्रो हननसाधनं वज्रं मेघेषु निहन्ति तदानन्तरमेव दीप्तिमति तस्मिन् जनाः श्रद्दधति" ॥ ऋग्वेद १। ५५। ५।

इसी तरह के इन्द्र के विश्वासोत्पादक अनेक वाक्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। तात्पर्य * यह है कि मंत्र-समय में ही देवों में संशय हुआ और इसीसे तद्वाचक मंत्रों में भी अविश्वास होना असम्भव नहीं है। ब्राह्मण-समय में संशय-बुद्धि प्रथम ही कह चुके हैं। सूत्र-समय में तो स्पष्ट ही है कि उस समय ऐसे भी लोग थे जिन्होंने सर्वथा मंत्रों में अनर्थ ही की घोषणा की है। और उनके मत को खण्डन करने के लिये भी प्रतिपक्षियों ने थोड़ी चेष्टा नहीं की। केवल परारोपित दोषों को दूर करने ही की उनकी चेष्टा नहीं थी किन्तु अपने पक्ष के मण्डन की भी चेष्टा थी। इसीसे यास्कीय निरुक्त † में मन्त्रों का आनर्थक्य कहते हुए कौत्स मुनि यास्क से पराभूत हुए थे।

ढुण्ढिराज शास्त्री

---

* ऋग्वेद १–१०४.६, १: १०२.२ में विस्तार है।

† अथायदिमन्तररेण मन्त्रेषु वर्थप्रत्ययो न विद्यते... यदि मन्त्रार्थप्रत्ययाय, अनर्थकं भवतीति कौत्सः, अनर्थकाहि मन्त्राः.....इत्यादि निरुक्त है। पु. प. १. ५-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर-शरीर

अगण्य पुण्यराशि की प्रभा, मनुष्य-देह, है।
यशश्शरीर है यही यही विभूति-गेह है॥
यही अमूल्य रत्न है इसे वृथा न जान लो।
यही समर्थ शक्ति है इसे प्रमाण मानलो॥ १॥

न भोग भोग के इसे वृथा व्यथा उठाइये।
परोपकार धारके मनुष्यता दिखाइये॥
अनेक जीव जन्तु जो समस्त विश्व में भ्रमें।
मनुष्य श्रेष्ठ योनि है विवेक में सदा रमें॥२॥

न बार बार देहरत्न-प्राप्ति का उपाय है।
इसे न तुच्छ जान लो यही सदा सहाय है॥
समस्त सिद्धि के लिये यही सुयोग्य तालिका।
य ही त्रिलोकसार है यही करालकालिका॥३॥

समुद्र-बीच व्योम में इसी शरीर से किये-
गये, अनेक कार्य हैं सुगूढ़ यत्न हैं किये॥
इसी शरीर से कभी जगत्पिता समीप है।
यही शरीर विश्व के प्रकाश का प्रदीप है॥४॥

यही विचार के कभी न तात! मोह जोड़िये।
विवेक दिव्य देह का कभी न आप छोड़िये॥
सदैव सत्य कर्म से न चित्त आप मोड़िये।
स्वजन्मभूमिभक्ति को कदापि नैव तोड़िये॥५॥

न जन्मभूमि के समान माननीय और है।
न जन्मभूमि के समान विश्व बीच ठौर है॥
समस्त जन्म जो हमें निजान्न-पान दे रही।
कभी उसे न भूलिये सुधा स्वजन्म की मही॥६॥

विना स्वमातृभक्ति के मनुष्य-जीवनी वृथा।
सुदेह कीर्ति के विना विलीन है बनी वृथा॥
मनुष्य-जन्म है मिला स्वजन्मभूमि के लिये।
परन्तु कार्य कौन से हितार्थ हैं भले किये?॥७॥

रसाद्यनेक वस्तु से अनन्त कन्द-मूल से।
सुपेय वारि-राशि से सुगन्ध-युक्त फूल से॥
अनन्त सौख्य दे रही स्वजन्म लाभ की धरा।
सुखार्थ सिद्ध साज है पदार्थ है सभी भरा॥८॥

प्रभात की प्रभा लखो कराल नींद छोड़ दो।
विभेद भाव तोड़ दो प्रधान प्रेम जोड़ दो॥
स्वजातिभेद, धर्मभेद, कर्मभेद की प्रथा।
स्वदेश के हितार्थ है कदापि है नहीं वृथा॥९॥

स्वदेश के सुधार का यथार्थ में विचार हो।
तजें कुरीतियाँ सभी स्वजाति का सुधार हो।
मिटै विभिन्न भावना समस्त प्रेम-सार हो।
प्रकाश की प्रभा जगे कहीं न अन्धकार हो॥१०॥

विना अनेक कष्ट के न कीर्ति-कामना करो।
स्वदेश के हितार्थ ही सदैव भावना भरो॥
विनिद्र आँख खोलिये वृथा अहो! पड़े हुए।
जगा रहे तुम्हें उठो! स्वबन्धु हैं खड़े हुए॥११॥

इसी कराल नींद में समस्त सौख्य खो गये।
अनेक रत्न सम्पदा प्रताप तेज सो गये॥
भला विचार कीजिये कि शक्तियाँ कहाँ गईं?
अशक्त क्यों हुए समृद्ध-सिद्धियाँ कहाँ गईं?॥१२॥

मनुष्य के शरीर का विचार, लाज, क्यों न हो!
मनुष्यता समान माननीय साज क्यों न हो॥
मनुष्य हैं परन्तु जो मनुष्यता दिखा सकें।
यशोदयी बने यहाँ परत्र स्वर्ग पा सकें॥१३॥

यही प्रयत्न चाहिये यही विचार चाहिये।
यही सुधार चाहिये यही प्रबन्ध चाहिये॥
मनुष्य-जन्म सिद्ध हो यशश्शरीर वृद्ध हो।
स्वधर्म भी प्रवृद्ध हो स्वदेश भी समृद्ध हो॥१४॥

प्रभो! जगद्गते! हरे! पितासमान मान्य हो।
अशेष विश्वचक्र में, तुम्हीं बड़े वदान्य हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हताश देश की दशा विलोक कीजिये दया ।
पुनः सचेत देश हो सशक्त हो बने नया ॥१५॥

करें मनुष्यता प्रभो ! स्वजन्मभूमि के लिये ।
मरें, न भीतिभीत हो स्वजन्मभूमि के लिये ॥

करें प्रयत्न जो बनें उपाय हो सकें किये ।
हरें विपत्तियाँ सभी तभी यथार्थ में जिये ॥१६॥

गज़ल

अबतो दया दिखा दो, करुणा के करने वाले !
दुख की घटा हटा दो, ब्रज में विरहने वाले !

स्वामिन् ! हरे ! मुरारे !, हे नाथ ! कैटभारे ! ।
करते विधान वन में, यति ध्यान धरने वाले ॥

सबके हितू तुम्हीं हो, बढ़कर प्रभो तुम्हीं हो ।
सेवक सभी तुम्हारे, सद्भाव भरने वाले ॥

अब वो दया कहाँ है, वह प्रेमपूर्ण लीला ।
उसकी झलक दिखादो, अवतार धरने वाले ॥

इतना हमें भुलाया, कितना हमें रुलाया ।
कितनी कराल माया, भव भाव भरने वाले ॥

इस देश की दशा पर, हे नाथ ! ध्यान देकर ।
पुरुषार्थ कर्म देदो, सबमें विचरने वाले ॥

सबसे बली तुम्हीं हो, है अप्रमेय सत्ता ।
अब तो हमें उबारो, यम से न डरने वाले ॥

चरणारविन्द-सेवा-मकरन्द-नन्दितात्मा ।
मन हो मिलिन्द सब के, तुमसे न टरने वाले ॥

घनश्याम ! शीघ्र करदो, वर्षा दया-सुधा की ।
करुणा कटाक्ष वरदो, दुख दूर करने वाले ॥

"कविकुमार"
महेश्वरप्रसाद शास्त्री

मुन्नी ।

"कन्द में ज़हर मिला था, हमें मालूम न था"

ज्योति बीमार पड़ा है । वैद्यों ने रोग, असाध्य बतला दिया है । ज्योति की परम-हितैषिणी मौसी, इसके सरहाने खड़ी है ।

मौसी—ज्योति ! अब सो रहो । बहुत रात बीत गई ।

ज्योति—इसका सन्देह मत करो । मैं अब दो एक ही दिन का मेहमान हूँ । मैं यह सोच रहा था कि मुन्नी (ज्योति की स्त्री) को उसके पिता के यहाँ भेज दिया जाय । यतः वह जी की बड़ी कच्ची है । उसे बीमार के पास ज़्यादा देर तक न रहना चाहिये ।

मौसी—उसकी बातें तो सुनो, भला, वह तुम्हें इस दशा में कैसे छोड़ कर जा सकती है ?

ज्योति—क्या उसे यह मालूम हो गया, कि वैद्यों ने मुझे क्या बतलाया है ?

मौसी—बेटा ! उसे क्या स्वयं नहीं दीखता ? कल जब उसके बाप के यहाँ जाने का ज़िक्र हो रहा था, तो रो रोकर उसने अपनी आँखें सुजा ली थीं ।

(पाठकों को यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मौसी ने, मुन्नी की वास्तविक बात का एकदम परिवर्तन करके, ज्योति से कहा था । मुन्नी अपने पिता के घर जाने को तुली बैठी थी और मौसी ने उसे जाने से रोका था) मुन्नी यह सुनकर, सहसा रो पड़ी । ज्योति अपने पलंग पर उठ बैठा और उसने तकिये के सहारे, बैठ कर कहा—

मौसी—यह खिड़की ज़रा खोल दो और लेम्प यहाँ से उठा ले जाओ । ज्योति ने रात के अन्धेरे में अपने सामने मुन्नी को देखा । उस की आँखों में आँसू डबडबाये हुए थे ।

ज्योति—मौसी ! तुम तो कहा करती थीं कि मुन्नी बड़ी सरला है । इस घर में इसका जी क्यों नहीं लगता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसी—हाँ, भैया! मैं भूलती थी। परीक्षा ही से पुरुष की पहिचान होती है।

ज्योति—मौसी!

मौसी—अब सो रहो।

ज्योति—घबराओ नहीं, मुझे कुछ सोचने दो।

मौसी—बेटा! अब सो रहो!

ज्योति—मौसी! घबराओ नहीं, मुझे कुछ सोचने दो।

मौसी—तथास्तु।

ज्योति—जब पहिले मैं यह समझा करता था कि मुन्नी का इस घर में जी नहीं लगता, तो मन ही मन कुढ़ कर इस बात को मैं सहन कर लेता था सही, पर तुम.....

मौसी—नहीं, मुझ से तो यह नहीं सहा जाता था।

ज्योति—तुम जानती हो, कि हमारे हृदय, कुछ मिट्टी के ढेले तो हैं ही नहीं जिन्हें उठाने के साथ ही उनपर अपना कोई अधिकार जमा ले। आख़िर, हम भी तो ग्रेजुएट हैं।

मौसी—हाँ, ज्योति, तुम ठीक कहते हो।

ज्योति—इसलिये, मैंने उसके इस बेहूदा अहंकार की कुछ परवाह न की।

मौसी बेचारी ने एक ठंडी साँस ली और चुप हो गई। उसने बहुतेरा चाहा, मिन्नत समाजत भी की कि मुन्नी, किसी तरह अपने रोगी पति की सेवा करे। पर नई रोशनी के साँचे में ढली, मुन्नी को थियेटरों में ही जाने से फ़ुरसत न मिलती थी। इधर, जब कभी मौसी, ज्योति को पंखा करने के लिये आती, तो वह उसे लौटा देता। वह अपनी, ठनी-बनी वामा ही पर लट्टू था। मौसी ने, बहुत कुछ समझाया कि इस मूर्ख स्त्री के हाथ में रुपया पैसा मत दे। इसे ख़ज़ाञ्ची मत बना। पर ज्योतिर्हीन, ज्योति के हृदय में मुन्नी की प्रतिष्ठा एक आदर्श देवी के बराबर थी। उस के लिये यह विचार करना कठिन था कि उसके भाग्य में अपनी स्त्री की तरफ़ से प्रेम नहीं लिखा। वह बराबर उस देवी की पूजा करता रहा और फल का अभिलाषी बना रहा।

मौसी ने समझा कि ज्योति सो रहा है, पर ज्योति, सहसा कहने लगा—

तुम समझती थी कि मैं मुन्नी से ख़ुश नहीं और इस बात पर तुम रुष्ट भी रहती थीं।

मौसी ने सहज सहज, ज्योति के मस्तक पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरा पर ज्योति की आँखों के आँसू, अन्धेरे में न दीखते थे।

ज्योति—मौसी! मैं यह सोच रहा था कि मुन्नी अभी बच्ची है। हाय! मेरे पीछे वह कैसे संभल सकेगी। उसे बेहूदे अहंकार ने, बिलकुल ही निकम्मी बना दिया है।

मौसी—बेटा! वह बच्ची नहीं है। स्यानी है। तुम उसका कुछ फ़िक्र मत करो।

ज्योति—क्या टाइम है?

मौसी—कोई नौ बजे होंगे।

ज्योति—अभी तो कुछ भी रात नहीं गई। मैं तो समझा था कि रात के २-३ बज चुके होंगे। मेरे लिये तो सूरज छिपते ही आधी रात हो जाती है। तुम क्यों मुझे जल्दी सुला देना चाहती हो?

मौसी—तुम जानते हो कि कल रात तुम कितनी देर तक बातें करते करते जागते रहे थे। इस लिये, आज तुम्हें जल्दी सो जाना चाहिए।

ज्योति—क्या मुन्नी सोगई?

मौसी—नहीं, वह, तुम्हारे लिये भोजन बना रही है।

ज्योति—(आश्चर्य से) हाँ, सच!

मौसी—तुम्हारा भोजन वही तो बनाती है।

ज्योति—मैं समझता था कि मुन्नी भोजन नहीं बना सकती।

मौसी—स्त्रियों को यह काम सीखते देर नहीं लगती। यह तो उनका अपना काम है।

ज्योति—सुबह का भोजन बड़ा ही मज़ेदार था।

मौसी! मैं समझा कि वह तुमने बनाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर लाइड जार्ज।

लार्ड किचनर के स्थान पर आप युद्धसचिव बनाये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसी-नहीं, यह बात नहीं है। मुन्नी, मुझे तुम्हारा कोई काम ही नहीं करने देती। वह तुम्हारे सारे कपड़े स्वयं धोती है। वह जानती है कि कोई मैली चीज़ तुम्हारे पास न रहनी चाहिये। तुम यदि अपनी बैठक देखते तो तुम्हें मालूम होता कि उसे उसने कितना सजा रक्खा है। पर भैया! वह इतनी सरलप्रकृति है कि मैं यदि उसे, तुम्हारे कमरे में आने दूँ तो सच जानो, ग़म के मारे उसके प्राण निकल जायें। परन्तु वह हरदम, यही चाहती है कि तुम्हारे पास रहे।

ज्योति-तो क्या उसकी प्रकृति ही.....

मौसी-वैद्य ने कहा है कि वह दिल की बहुत कमज़ोर है। रोगी के पास न आये। उसी का नहीं, रोगी का भी इसमें भारी अनिष्ट है।

ज्योति-मौसी! तुम उसे यहां आने से कैसे रोकती हो?

मौसी-वह मेरी आज्ञाकारिणी है। तिस पर भी मुझे हर घड़ी तुम्हारे स्वास्थ्य की, उसे सूचना देनी पड़ती है।

ज्योति-मुन्नी, यदि जागती हो, तो उसे थोड़ी देर के लिये यहाँ.....

मौसी-मैं अभी जाकर उसे बुलाती हूँ।

ज्योति-मैं उसे ज़्यादा देर तक न रोकूँगा। केवल एक बात उससे कहनी है।

मौसी ने आः भरी, और मुन्नी को बुलाने के लिये निकली। ज्योति की नाड़ी तेज़ चलने लगी। वह अच्छी तरह जानता था कि उसे इस जीवन में मुन्नी से बातें करने का आनन्दानुभव कदापि न होगा। पर उसके जीवन की घड़ियाँ भी अब गिनी चुनी ही बाक़ी थीं।

(२)

मौसी-बच्ची! यह क्या, तुम कहां जाने की तैयारियां कर रही हो!

मुन्नी-मैं अपने पीहर सीतारामपुर जा रही हूँ।

मौसी-नहीं, किस के साथ जाओगी?

मुन्नी-अनाथ के साथ।

मौसी-बच्ची आज नहीं, फिर किसी दिन चली जाना।

मुन्नी-रेल का कमरा रिज़र्व्ड कराया जा चुका है। इसलिये विवश हूँ।

मौसी-यह कितना बड़ी बात है। यह हानि, आसानी के साथ सही जा सकती है। आज पड़वा भी है। कल चली जाना।

मुन्नी—मैं आपकी इन पड़वा, दोयज की क़ायल नहीं, यह पुराने आदमियों के ढकोसले हैं। मेरी राय में तो, क्या पड़वा और क्या दोयज, सभी ईश्वर के दिन हैं। इसलिये मैं आज ही चली जाऊँ तो क्या हरज है?

मौसी-ज्योति, तेरे साथ बातें करनी चाहता है।

मुन्नी-बेहतर, अभी कुछ समय है। मैं अभी उनसे जाकर मिलती हूँ।

मौसी-उससे यह न कहना, कि मैं अभी जारही हूँ।

मुन्नी-बहुत अच्छा, मैं उनसे न कहूँगी, पर मैं वहाँ उनके पास, ज़्यादा देर तक न बैठ सकूँगी क्योंकि कल मेरी बहिन का अन्नप्राशन है और मुझे ज़रूर ही वहाँ जाना है।

मौसी-बच्ची! मेरी बात सुन, थोड़ी देर के लिये, अपने चञ्चल मन को धैर्य दे और उसके पास जा बैठ। उसे यह न मालूम होजाय कि तुझे जाने की जल्दी है।

मुन्नी-मैं क्या कर सकती हूँ। गाड़ी तो मेरी प्रतीक्षा करने से रही। १० मिनिट में अनाथ, वापस आजायगा। आप कहें तो, इतनी देर तक मैं उनके पास बैठ सकती हूँ।

मौसी-नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा। ऐसी अवस्था में मैं तुझे वहाँ भेजना उचित नहीं समझती। कमबख़्त! जिसके हृदय को तू आज दुखी कर रही है जल्दी ही वह, इस संसार से बिदा होने वाला है। मैं तुझे बतलाये देती हूँ कि आज के दिन को तू मरते दम तक

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खेगी। हरे! हरे!! किस दिन तुझे समझ आयेगी?

मुन्नी-मौसी! मुझे वृथा क्यों कोसती हो!

मौसी—(हृदय से ज्योति का सम्बोधन करके) अय मेरे प्यारे बेटे! मेरी आँखों के तारे!! तू क्यों इतने दिनों से दम तोड़ रहा है? आः!! मेरे बस की बात नहीं।

थोड़ी देर के बाद मौसी, इस आशा से कि ज्योति अब सोगया होगा, ज्योति के कमरे में वापस आई। परन्तु उसके कमरे में घुसते ही ज्योति ने करवट ली। मौसी ने कहा-देखो तो, वह क्या कर बैठी है?

ज्योति—क्या हुआ? क्या मुन्नी नहीं आई? मौसी! तुमने इतनी देर क्यों लगाई?

मौसी-बेटे! तुम्हारा दूध, उससे बिखर गया था। वह रो रही थी। मैंने उसे तसल्ली देने के लिये कहा कि दूध तो और बहुतेरा रक्खा है। पर उसने तुम्हारे पीने के लिये दूध औटाया था। इसलिये रो रही थी। बड़ी मुशकिल से उसे चुप किया है और अब सुलाकर आई हूँ। इसलिए, मैं आज उसे यहाँ नहीं लाई।

यद्यपि ज्योति, मुन्नी के न आने से कुछ दुःखित हुआ पर उसे, उसके इस बिचार ने बड़ी तुष्टि प्रदान की कि मुन्नी, उसका दूध, बिखर जाने के कारण बड़ी रोई थी।

ज्योति—मौसी!

मौसी—हाँ, बेटा।

ज्योति-मुझे पूरा पूरा विश्वास है, कि मेरा जीवन अब बहुत थोड़ा बाक़ी है। हो, मुझे कुछ चिन्ता नहीं। मेरे लिये तुम चिन्ता न करना!

मौसी—नहीं, मैं तुम्हारे लिये चिन्ता न करूँगी। मैं नित्य प्रति गीता का पाठ किया करती हूँ।

ज्योति—मैं भी सत्य कहता हूँ कि मौत, मुझे अच्छी मालूम होती है। यतः मौत भी ज़िन्दगी की सीढ़ी है।

(३)

"यस्येश्वरेण यदलेखि ललाटपट्टे,
तत्स्यादयोग्यमपि योग्यमपास्य तस्य।"

ज्योति—मौसी! इस समय, मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरे जीवन की नौका, जिस रस्सी के साथ किनारे से बँधी थी वह रस्सी, अब कट चुकी है। पर मौसी! मैंने मुन्नी को आज दो दिन से एक बार भी नहीं देखा।

मौसी—ज्योति! लो, एक और सरहाना अपने नीचे करलो।

ज्योति—मैंने कल अपना वसीयतनामा लिख दिया। मुझे याद नहीं, कि मैंने तुम्हें वह दिखलाया या नहीं।

मौसी—मुझे दिखलाने की ज़रूरत नहीं है।

ज्योति—जब माताजी का देहान्त हुआ तो मेरी कोई भी जायजाद न थी। तुमने ही मुझे पाला पोसा। इसी लिये मैं कह रहा था कि.....

मौसी—फ़िज़ूल, वाहियात, मेरे पास तो केवल यह मकान और थोड़ी सी जायदाद थी। बाक़ी सब तुमने कमाया।

ज्योति—परन्तु यह मकान.....

मौसी—यह कुछ भी नहीं।

ज्योति—मुझे विश्वास है कि मुन्नी तुमसे प्रेम करती होगी।

मौसी—हाँ, हाँ, ज्योति, वह मुझे मालूम है। अब तुम सो रहो।

ज्योति—यद्यपि मैंने अपनी सारी जायदाद मुन्नी के नाम कर दी है। पर मालिक, उसकी तुम ही रहोगी। वह, तुम्हारी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करेगी। जो कुछ मेरे पास है सब तुम्हारी ही बदौलत है। वसीयतनामे को देखकर यह न समझना कि.....

मौसी—ज्योति! तुम क्यों इतना फ़िक्र कर रहे हो। क्या तुम समझ सकते हो कि मैं एक मिनिट के लिये भी यह बात अपने दिल पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाऊँगी कि तुमने अपनी चीज़, मुन्नी को दे दी। मैं ऐसी कमीनी नहीं।

ज्योति—तुम्हारे लिये भी.....

मौसी—देखो ज्योति, मैं रुष्ट हो जाऊँगी। क्या तुम रुपये से मुझे धैर्य दिलाने की अनुचित चेष्टा करते हो?

ज्योति—हा! मैं तुम्हें रुपये से बढ़कर कुछ देने के योग्य होता!

मौसी—ज्योति! तुम इससे बढ़ कर दे चुके हो। प्यारे! तुमने मेरे उजड़े घर को बसाया। मालूम नहीं कि कितने जन्मों के शुभकर्मों का फलरूप तुम मुझे प्राप्त हुए हो। तुमने मुझे सब कुछ दिया है। मुझे अब किसी चीज़ की इच्छा नहीं। मैं बड़ी प्रसन्न हूँ। तुम सब कुछ मुन्नी के नाम लिख दो।

ज्योति—मैं जानता हूँ कि तुम्हें अब जीवन के भोगों की कोई इच्छा नहीं रही है पर मुन्नी अभी बालक है। उसे.....

मौसी—नहीं, ऐसा मत कहो। तुम अपनी जायदाद उसके नाम कर देना चाहते हो तो अच्छी बात है पर भोग के विषय में.....

ज्योति—मैं कहता हूँ कि यदि वह भोगना चाहे, तो इसमें क्या हरज है?

मौसी—नहीं, नहीं, यह सर्वथा असम्भव है। तुम्हारे अभाव में वह कुछ न भोग सकेगी। उसे कुछ अच्छा न लगेगा।

ज्योति, चुप हो गया। वह निर्णय न कर सका कि उसके मरने पर, संसार मुन्नी के लिये अन्धेरमय हो जायगा।

ज्योति—मौसी! मुझे थोड़ा सा अनार का रस देदो। मुझे प्यास लगी है। क्या कल मुन्नी, मेरे पास आई थी?

मौसी—हाँ, वह आई थी, पर तुम सो रहे थे। वह बहुत देर तुम्हारे सरहाने बैठी पंखा करती रही और फिर तुम्हारे कपड़े धोने के लिये चली गई।

ज्योति—कैसे आश्चर्य की बात है कि मैं ठीक उसी समय, यह स्वप्न देख रहा था कि मुन्नी, भीतर आने के लिये दरवाज़े को धकेल रही है और दरवाज़ा नहीं खुलता। मौसी! तुम ज़बरदस्ती करती हो। तुम्हें उसे यह देखने की आज्ञा देना चाहिये, कि मैं मर रहा हूँ। अन्यथा मेरी मृत्यु का उसे बड़ा दुःख होगा।

मौसी—बेटा! मुझे दुशाला, अपने पैरों पर उढ़ाने दो। ये ठंडे हो रहे हैं।

ज्योति—नहीं, मौसी! मुझसे दुशाले का भारी बोझा न संभल सकेगा।

मौसी—क्या तुम्हें मालूम है कि मुन्नी ने यह दुशाला, तुम्हारे लिये रातों रात जाग कर तैयार किया है! यह अभी कल ही तैयार हुआ है।

यह सुन कर ज्योति ने दुशाला, अपने हाथों में ले लिया। दुशाले की कोमलता में उसे स्वयं मुन्नी की कोमलता अनुभूत होती थी। मौसी ने जब वह दुशाला उसके पैरों पर उढ़ाया, तब उसे ऐसा मालूम हुआ कि मुन्नी, कई रात से उसके पैर दबा रही है।

ज्योति—मौसी, मैं तो समझता था कि मुन्नी, बुन्ना नहीं जानती और नहीं वह बुन्ना पसन्द करती है।

मौसी—किसी चीज़ के सीखने में समझदार को देर नहीं लगती। मैंने बुन्ना उसे स्वयं सिखाया है।

ज्योति—क्या डाक्टर नीचे है?

मौसी—हाँ, डाक्टर तो नहीं, वैद्य है। आज रात को वह यहीं ठहरेगा।

ज्योति—उससे कह दो कि मुझे सोने की दवा देना बिलकुल बेकार है। वास्तविक आराम तो उससे होता नहीं, उलटा दर्द बढ़ जाता है। अतः मुझे जागने दे। मौसी! क्या तुम्हें मालूम है कि मेरा विवाह, वैशाख की पूर्णिमा की रात को हुआ था। कल वही दिन होगा। और उसी रात के तारे आकाश में चमकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद मुन्नी, इस बात को भूल गई हो। मैं आज उसे इसी बात की याद दिलाना चाहता हूँ। उसे मेरे पास दो मिनट के लिये बुला दो। तुम चुप क्यों हो! मौसी! इस तरह न रोओ। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। आज मेरा हृदय, बड़ा प्रसन्न हो रहा है। जीवन भर में कभी ऐसा प्रसन्न नहीं हुआ। इसलिये मैं मुन्नी से मिलना चाहता हूँ। मौसी! मुझसे तुम्हारा रोना नहीं सहा जाता।

मौसी-ज्योति! मैं समझती थी कि मेरे सारे आँसू समाप्त हो चुके हैं। पर मैं देखती हूँ कि अभी ये बहुत से बाक़ी हैं। मैं इन्हें ज़्यादा देर तक नहीं रोक सकती।

ज्योति—मुन्नी को बुलाओ। मैं उसे विवाह की रात की याद दिलाऊँगा। यतः वह कल .....

मौसी—अच्छा, मैं जाती हूँ। शम्भु (नौकर) दरवाज़े पर खड़ा रहेगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो उसे बुला लेना।

मौसी, मुन्नी के सोने के कमरे की तरफ़ गई और फ़र्श पर बैठ कर कहने लगी। कम्बख़्त, आजा! जिसने तुझे अपना सर्वस्व दे दिया है, उसकी अन्तिम प्रार्थना को पूरा कर। मरनेवाले को न मार।

ज्योति, पैर की आहट सुन कर पुकार उठा, "मुन्नी"!

"मैं शम्भू हूँ, क्या आपने मुझे याद किया है?"

"अपनी स्वामिनी से कहो कि वह यहाँ आये"

"किस से कहूँ!"

"अपनी स्वामिनी से"

"वह अभी तक वापस नहीं आईं"

"वापस!! कहाँ से?"

"सीतारामपुर से"

"वह कब गई?"

"तीन दिन हुए"

यह सुन कर ज्योति, सन्नाटे में हो गया। उसका सिर चकराने लगा। जिन तकियों के सहारे वह आराम कर रहा था उनसे नीचे होकर उसने दुशाले को पाऊँ से परे फेंक दिया।

बहुत देर पीछे मौसी जब वापस आई तो ज्योति ने मुन्नी का नाम न लिया। मौसी समझ गई कि वह मुन्नी के विषय में वास्तविक बात जान चुका है।

इतने ही में सहसा ज्योति ने कहा—क्या मैंने तुम्हें वह स्वप्न बतलाया था, जो मैंने उस रात को देखा था?

मौसी—कौन सा स्वप्न?

ज्योति—वह, जिसमें मुन्नी दरवाज़े को धक्के रही थी और दरवाज़ा न खुलता था। वह उसे खोल न सकी और बाहर खड़ी रही। अब मैं जानता हूँ कि मुन्नी को आख़िरी दम तक मेरे दरवाज़े के बाहर रहना पड़ेगा।

मौसी चुप रही। उसने समझ लिया कि जो सब्ज़ बाग़ वह ज्योति के लिये तैयार कर रही थी उसका परदा खुल गया। जब विपत्ति आये तो उचित यही है कि उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया जाय।

ज्योति—जो हार्दिक प्रेम तुमने मुझ से किया है, जन्मान्तर में भी वह मेरे साथ जायगा। इस जन्म में मैंने तुम्हारा यह प्रेम, अगले जन्म तक साथ ले जाने के लिये भर लिया है। मेरा विश्वास है कि अगले जन्म में तुम मेरे घर में पुत्री होगी और मैं बड़े प्रेम के साथ तुम्हें पालूँगा।

मौसी—ज्योति! इससे क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है कि अगले जन्म में भी मैं पुत्री ही बनूँगी। तुम यह प्रार्थना क्यों नहीं करते कि मैं पुत्र होकर, तुम्हारे घर में जन्म लूँ।

ज्योति—न न पुत्र नहीं, तुम मेरे घर में अति सुन्दर रूप धारण करके पुत्री बनोगी। मेरे सामने वह चित्र खिंच रहा है कि किस तरह मैं तुम्हें कपड़े पिन्हाऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसी—ज्योति ! इतनी बातें न करो ? अब सो रहो ।

ज्योति—मैं तुम्हारा नाम "लक्ष्मी" रक्खूँगा ।

मौसी—यह तो पुराने फ़ैशन का नाम है ।

ज्योति—हाँ, पर तुम भी तो मेरी पुराने फ़ैशन ही की मौसी हो । मेरे घर में उसी पुराने फ़ैशन में जन्म लेना ।

मौसी—मेरी यह इच्छा नहीं होसकती कि मैं पुत्री बन कर तुम्हारे घर में जन्म लूँ और फ़िज़ूल तुम्हारे ऊपर दरिद्र का बोझ डालूँ ।

ज्योति—मौसी ! तुम मुझे कमज़ोर समझती हो और मेरी तकलीफ़ बचाना चाहती हो ।

मौसी—ज्योति, मैं स्त्री हूं । और स्त्री जाति की निर्बलतायें, मुझमें भी हैं । मेरी सदैव यह वाञ्छा रही है कि तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने दूँ । पर शोक है कि मैं उसमें कृतकृत्य न हो सकी ।

ज्योति—मौसी ! इस जीवन में जो शिक्षा मैंने प्राप्त की, उसे जीवन में ढालने का अवकाश मुझे न मिला । मैं पढ़ तो गया पर गुना नहीं । अच्छा है, इस जन्म में न सही, अगले जन्म में यह शिक्षा, मेरे काम आ जायगी । मैं फिर जनता को जतला दूँगा कि एक आदमी क्या कुछ कर सकता है । मैंने सीख लिया है कि केवल अपने ही खाने पीने की चिन्ता में संलग्न रहना नितान्त भ्रम है । वह कौन है ? मौसी ! वह कौन है ??

मौसी—कहाँ ! वहाँ तो कोई भी नहीं ।*

"कुमुद"

ज्योत्स्ना-पञ्चक

तारे लखो नभ में विकसे, पसरी, ससि की जग में उजियारी ।
भानु सरोवर में सरसीरुह, सुन्दर स्वर्न सजे चितहारी ॥
वा कोउ चन्द्रमुखी ललना, लिय, सङ्ग सहेलि-समूह, पधारी ।
तेज-पियूस, कोउ ऋसि, वा बरसावत, आवत है सुखकारी ॥ १ ॥

सीतलता, सुचि, सुन्दरता, मनमोहन प्रतिमा कोउ सोहै ।
वा ऋतुराज-सखा-रति को पति, सैन्य समेत, मही मन मोहै ॥
श्रेष्ठ प्रजापति बुद्धि बताइबे, शान्ति निधान, अहो ! यह को है ?
वा मन-भावन सावन की, मघवा, बरसा-बरसावन सोहै ॥ २ ॥

ऋक्ष अहो ! इतके उतकों, उचकें चमकें दमकें दुतिवारे ।
मानहुँ अप्सरा नृत्य करें, हुलसें पुलकें लखके जग सारे ॥
वा निसि-रानि के सद्गुन को गनहै यहि जान गनना करि हारे ।
वा ससि के जयमाल के हैं, मनिका छहरे नभ माहिं पियारे ॥ ३ ॥

चाँदनि कैसो प्रकाश करे, छति पै रजके कन दीसत आहा ।
भारत-भूमि हृदय कर उज्ज्वल, आनि मचावत भारि उछाहा ॥

---

* प्रकाश में प्रकाशित महाकवि रवीन्द्रनाथ की एक शिक्षाप्रद कहानी के आधार पर लिखित । लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नासत हैं जगतीतल को तपतें, उपज्यो, छिन में सब दाहा।
सो प्रिय-आरत-भारत-क्लेसनु निश्चय नासिहै नित्य न काहा ॥ ४ ॥
हे ससि ! चोर डरात तुम्हें अस, भाजत हैं व्यभिचारि घनेरे।
ऐसि दया करिये जिहिं ते सब, दुष्ट भजें लखि भारत-चेरे ॥
पाप अनैक्य असौच अबोध, सुदूर रहें डरते सब केरे।
मानत ना भगवन्त हियो बिन, हिन्द ससान्ति सपण्डित हेरे ॥ ५ ॥

"भगवन्त"

साहस

जब बैरी चढ़कर आता है। जी देख उसे घबराता है।
जब बन्धु साथ तज जाता है। कोइ एक नहीं अपनाता है ॥
तब तूही मज़ा लखाता है। जिय को ढारस बँधवाता है ॥ १ ॥
जब शस्त्र पास नहिं रहता है। सुख, विपद चिन्ह बन जाता है।
बन, कनक-महल हो जाता है। तन, ज्वाला-दुःख फँसाता है ॥
तब तूही प्राण बचाता है। विचलित जी को बहलाता है ॥ २ ॥
जब दुःख-घटा, घिर आती है। अरु शोक-वृष्टि, बरसाती है।
नभ-बिजली, चमक दिखाती है। बुद्धीन्द्रिय भी थक जाती है ॥
बन छाता तू आजाता है। इस विपद् स तुही बचाता है ॥ ३ ॥
यह भीरू-चित्त विचरता है। यह, छोड़ साथ भी देता है।
वर उपवन, वन, बन जाता है। काँटा नव-कुसुम लखाता है ॥
तब दया तुझी को आती है। लख, कायरता भग जाती है ॥ ४ ॥
चित-चिन्ता-चिता धधकती है। जब रक्त-आहुती होती है ॥
जिय, स्वाहा, आह निकलती है। मृति-राह-देह यह तकती है ॥
तब रक्षक बन आ जाता है। सब वेदी नाश मिलाता है ॥ ५ ॥
अरिमण्डल हाँ जब आता है। कायरता, रूप दिखाता है।
भय, अपना भाव दिखता है। पद रुकने से हट जाता है ॥
तब प्राण ! साथ तू देता है। चट, नाश उन्हों का करता है ॥ ६ ॥
यह जगत सुःख लय पाते हैं। दुख के सब ठाव लखाते हैं
शुभ-भवन, कुवन, बन जाते हैं। तन वस्त्रशाल होजाते हैं ॥
तब तुही दया कर आता है। सब तन के ताप मिटाता है ॥ ७ ॥

लक्ष्मीनारायण, दीनदयाल अवस्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

१—सामयिक युद्ध से श्रीमान् भारतेश्वर की सहानुभूति।

श्रीमान् भारतेश्वर ने १५ लाख रुपया, सामयिक युद्ध को दिया है। एतदर्थ आपके प्राइवेट कोषाध्यक्ष ने मिस्टर ऐसक्विथ को इस मतलब का तार भेजा है कि "मुझे महाराज ने आपको यह सूचना देने के लिये, आज्ञा दी है कि महाराज की तरफ़ से एक लाख पाउन्ड अर्थात् १५ लाख रुपया सरकारी ख़ज़ाने को दिया जाय। महाराज की इच्छा है कि इस रुपये को, गवर्नमेंट जिस काम में उचित समझे, ख़र्च किया जाय"।

इससे यह स्पष्ट है कि श्रीमान् भारतेश्वर को सामयिक युद्ध से कितनी सहानुभूति है। और जब हमारे राजा को इतनी सहानुभूति है तो हमारी सहानुभूति की तो कोई सीमा ही न रहना चाहिये। हमारा कर्त्तव्य है कि हम भी यथाशक्य चन्दा देकर अपनी सहानुभूति प्रकाश करें।

*

२—गहना पहिनने वाले बच्चों का स्कूल में दाख़िला बन्द।

यू० पी० के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने यह प्रकाशित किया है कि बच्चों को घरों से गहने पहिना कर स्कूलों में भेजा जाता है, इस बुरी रीति को दूर करने के लिये, स्कूलों के हेडमास्टरों को अधिकार दिया जाता है कि "वे गहना पहिनने वाले बच्चों का स्कूलों में दाख़िला बन्द करदें"।

हमारे प्रान्त के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर, सर जेम्स मेस्टन साहिब बहादुर की गवर्नमेंट का यह दूसरा काम है जो बच्चों को गहने पहिनाने की रीति को दूर करने के लिये किया गया है। निःसन्देह यह बड़ा प्रशस्य विचार है। यतः गहना पहिननेवाले बच्चों का जीवन प्रायः सङ्कटमय देखा गया है। हमारे उपदेशकों को भी इस तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिये।

३—योरप में संस्कृत।

मिस्टर मेक्डालन, आक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत के अध्यापक हैं। कहा जाता है कि आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। आपने "टाइम्स" द्वारा यह प्रस्ताव किया है कि "संस्कृत भाषा का अध्ययन करने की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि जिस विशाल देश पर हम राज्य कर रहे हैं उसकी प्राचीन भाषा से अभिज्ञ होना हमारा कर्त्तव्य ही नहीं, प्रत्युत उस देश पर शासन करने के लिये ज़रूरी भी है। आपका कथन है कि युरोपियनों को संस्कृत की शिक्षा देने के लिये काशी में एक महाविद्यालय खोलना चाहिये। इँगलेण्ड में संस्कृत के केवल ५ ही प्रोफ़ेसर हैं। इस विचार से भी प्रोफ़ेसरों की संख्या में वृद्धि होना अत्यावश्यक है"।

इसी दूते पर पञ्जाब यूनिवर्सिटी शायद, एक ऐसे संस्कृत के प्रोफ़ेसर को अपने ओरियंटल-कालिज में नियत किया चाहती है जिसने यूरोपीय रीति से शिक्षा प्राप्त की हो! धन्य!!

*

४—उपाधि-वर्षा।

३ जून को सम्राट् की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में, उपाधि-वर्षा हो गई। वर्षा अच्छी हुई है। कितने ही नगण्य, मान्य सज्जनों का सम्मान हुवा, कितनों ही की आशायें पूरी हुईं और कितने ही बेचारे हाथ मलते के मलते रह गये। प्राचीन प्रथा के अनुसार, प्रजा के प्रति-निधियों को बहुत ही कम, और वेतन-भोगी सरकारी आफ़िसरों के लिये अत्यधिकता से, उपाधियों का उपयोग किया गया है। यू० पी०, जिसे अपने अधिकार में काशी होने का भी सौभाग्य प्राप्त है, के किसी पण्डित को महामहोपाध्याय की उपाधि नहीं दी गई है। हाँ, कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्य, श्रीयुत गणनाथ सेन आदि महाशय, इस उपाधि से विभूषित किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के हितैषी, कुर्री सुदौली के नामी ताल्लुक़ेदार, आनरेबल राजा रामपाल सिंह, के० सी० आई० ई० बनाये गये हैं, जो सर्वथा इस उपाधि के अधिकारी हैं। लाहौर के रईस आनरेबल लाला रामशरणदास को सी० आई० ई० की उपाधि मिली है, जो सर्वथा आपके अनुरूप है। और भी कई सज्जनों को उपाधि-विभूषित करके, निःसन्देह गवर्नमेंट ने अपनी प्रदत्त उपाधियों का सदुपयोग किया है। "हितकारिणी" के सुयोग्य सम्पादक पण्डित रघुवरप्रसादद्विवेदी बी० ए० "रायबहादुर" बनाये गये हैं। बाह्यदृष्टि से हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक-समाज के लिये, यह अवश्य गर्व की बात हो सकती है, पर वास्तविक नहीं, यतः आपको "हितकारिणी" का अच्छा सम्पादन होने के कारण नहीं, किन्तु हितकारिणी हाई स्कूल के हेडमास्टर की हैसियत से काम अच्छा होने के कारण यह पद मिला है। अस्तु, जो कुछ हुआ है, उसपर हम प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

हमारे ज़िले से भी चौधरी धर्मसिंह और डाक्टर गोविन्दप्रसाद, "रायसाहिब" के पद से सम्मानित किये गये हैं। आप भी बड़े नेक आदमी हैं।

*

५—काग़ज़ की गरानी का प्रभाव।

काग़ज़ की गरानी, प्रति दिन बढ़ती जा रही है। लण्डन से एक पत्र निकालने का विचार किया गया है। जो मिस्टर लाइड जार्ज के विचारों का प्रचार करेगा। पचासी हज़ार ग्राहक, अपना वार्षिक मूल्य दे चुके, इनके सिवा, जनता, इस पत्र की धड़ाधड़ ग्राहक बन रही है। परन्तु अभी तक, पत्र की पहिली संख्या भी नहीं निकली। इसका कारण काग़ज़ की गरानी का प्रभाव बतलाया जाता है।

*

६—राज-भक्ति-प्रकाश

कटरा नील, देहली से, महामहोपाध्याय पं० बाँकेरायजी नवल गोस्वामी ने, राज-भक्ति-प्रकाश नामक पुस्तक, समालोचनार्थ, हमारे पास भेजी है। पुस्तक का आकार मंझोला, और पृष्ठसंख्या ६१ है। काग़ज़ और टाइटिलपेज बहुत ही बढ़िया है। हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों में तो शायद ही किसी पुस्तक में इतना बढ़िया काग़ज़ लगाया गया हो। पुस्तक में बड़ी योग्यता के साथ, यह दिखलाया गया है, कि हिन्दू, राजभक्ति को आज से नहीं सदा से मानते आये हैं, वे, राजा को ईश्वर समान पूज्य समझते हैं। एतदर्थ तुलसीकृत रामायण से लेकर वेदों तक के प्रमाण, विद्वान् लेखक महाशय ने बड़े परिश्रम से खोज कर, पुस्तक में संग्रह किये हैं। साथ ही साथ नीचे बड़ी रोचक इङ्गलिश में, उद्धृत वाक्यों का अनुवाद भी लिखा गया है। "राज-भक्ति-प्रकाश" सन् १९११ के कारोनेशन दरबार के अवसर पर, पण्डितजी ने छपाया था। तभी १६ दिसम्बर (सन् १९११) को देहली में आपने श्रीमान् भारत-सम्राट् और सम्राज्ञी की सेवा में इसे समर्पण किया था। हर्ष का विषय है कि सम्राट् और सम्राज्ञी ने इसपर प्रसन्नता प्रकट की। प्रस्तुत पुस्तक, राजभक्ति प्रकाश का यत्र तत्र परिवर्धित पाँचवाँ एडीशन है। पुस्तक के आदि में सम्राट् और सम्राज्ञी का एक बड़ा ही मनोहर और दर्शनीय चित्र है। प्रकृत विषय के सिवा, अन्त में, प्रभु-प्रार्थना, सम्राट् के आशीर्वाद आदि, स्वरचित कुछ श्लोक भी हैं।

पण्डितजी की कविता, बड़ी सरल और भावमयी होती है, उसे पढ़ते पढ़ते, सचमुच महाकवि कालिदास की कविता का जैसा आनन्द आता है। नमूना लीजिये—

चित्र के नीचे एक श्लोक इस प्रकार है—

इंग्लेण्डीय-नरेश-शासन-विधौ, यस्माद् दिनादागता,
भाग्याद् भारत-भूरिह क्षिति-भुजां, नैवाभवद्दर्शनम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासी-लार्ड किचनर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्वा दर्शनमाशु येन प्रकृति-व्रातः कृतार्थीकृतः,
सोयं पंचमजार्जभूपतिलको, जीयात् समानां शतम् ॥

सच्ची बात का कितनी संस्कृत में वर्णन किया गया है! १६ दिसम्बर सन् १९११ को सम्राट् की सेवा में प्रस्तुत किये जानेवाले पद्यों में से, एक पद्य देखिये—

पंचप्राणसमानुप्राणितजनं, पंचानलाप्तप्रभम्,
पंचांगेन नयेन शासित-भुवं, पंचप्रमाणोचितम्।
पंचांबुस्यप्रवर्तितोत्सव-विधिं, पंचाधिदेवोपमम्,
पंचोपासनदैवतं समवतु, श्रीजार्जपंचाभिधम् ॥

कितनी सरल और पाण्डित्य-पूर्ण रचना है!

पण्डितजी की इस अनुकरणीय-कृति की "पानियर" आदि प्रतिष्ठित पत्रों ने बड़ी प्रशंसा की है और आपकी इस अनुपम राजभक्ति पर वाइसराय आदि भारत के बड़े बड़े अफ़सरों ने आपको बधाइयाँ दी हैं। राज-भक्ति-प्रकाश की कई हज़ार कापियाँ स्वयं गवर्नमेण्ट ने युद्ध-स्थल को भेजी हैं। वास्तव में यह पुस्तक है भी इसी योग्य। इस अमूल्य पुस्तक को पण्डितजी अमूल्य ही देते हैं।

*

७—भारत के विषय में लार्ड हार्डिंग के विचार

लार्ड हार्डिंग ने भारत के प्रति अपनी उदारता का पुनः परिचय दिया है। लन्दन में "न्यूयार्क-टाइम्स" के संवाददाता से भाषण करते हुए आपने भारतीय नरेशों, प्रजा और शिक्षित लोगों के सम्बन्ध में अपने उदार विचारों के प्रकट करने की कृपा की। लेजिस्लेटिव कौंसिल में भारतीय मेम्बरों के ज़िम्मेदारी के भाव व्यक्त करने और भाषण-शैली, की भी उन्होंने प्रशंसा की और कहा कि विगत वर्षों की अपेक्षा अब राजनैतिक दशा में वहाँ बहुत उन्नति हो गई है। और जिन राजनीतिज्ञों का ध्येय स्वराज्य है वे नरमी और विनीत भाव से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। ये सब उन्नतियाँ लार्ड मिन्टो और लार्ड मार्ली के सुधारों से वहाँ पर हुई हैं। आपने यह भी आशा प्रकट की कि सम्भव है युद्ध के बाद भारत को प्रान्तीय स्वराज्य के अधिकार दिये जावें। आप से जैसी उच्च आशायें भारतवासियों को थीं वैसी ही आप प्रकट कर रहे हैं।

"जयाजी प्रताप"

*

८—शोक-समाचार

लार्ड किचनर का आकस्मिक देहावसान

बड़े ही दुःख की बात है कि गत ५ जून को रात के ८ बजे, लार्ड किचनर का आकस्मिक देहान्त हो गया। "हैम्पशायर" जहाज़द्वारा आप किसी कारण से रूस जा रहे थे कि रास्ते में आपका जहाज़, सुरंग या तारपीडो से डुबो दिया गया। उस समय, हवा बड़ी तेज़ चल रही थी, अतः उचित सहायता का प्रयत्न करने पर भी, बहुत कम मनुष्य बच सके हैं।

लार्ड महाशय, सैनिक-विद्या के विशारद थे। आपकी अवस्था कोई ६६ वर्ष के लगभग थी। पर आप बाल-ब्रह्मचारी रहे। यह आपकी वीरता और इन्द्रिय-संयमता का समुज्ज्वल प्रमाण है। बुद्धि के आप इतने विलक्षण थे कि पहिले ही पहिले—२१ साल की अवस्था में आप सेना में एक साधारण सिपाही की हैसियत से भरती हुवे थे और बाद में यहाँ तक उन्नति प्राप्त की, कि सेना के आप कमान्डरइनचीफ़, बनाये गये। कोई सिपाही कमाण्डरइनचीफ़ बना हो, लार्ड किचनर को छोड़ कर दूसरा उदाहरण हमें ऐसा नहीं मिलता। आप बड़े अनुभवी सैनिक अफ़सर थे। मिश्र के मामले को सुलझाना आप ही का काम था। उसके विजय के पश्चात् ही आपको लार्ड की उपाधि से विभूषित किया गया था। यही नहीं, बोअर-विजय के उपलक्ष्य में सात लाख रुपया भी आपको इनाम मिला था। सात वर्ष आप भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कमाण्डरइनचीफ़ रहे। लार्ड कर्ज़न उस समय भारत के वाइसराय थे। इनसे आपकी ज़रा कम बनती थी। वीरता के साथ ही साथ, आपकी राजनैतिक-योग्यता भी कहीं बढ़ी चढ़ी थी। भारत से जाकर आप दो वर्ष इङ्गलेण्ड रहे। उस समय यह अफ़वाह उड़ी थी कि आप भारत के वाइसराय बनाये जायँगे। परन्तु आपको भारत का नहीं, मिश्र का शासन-भार सौंपा गया। और स्वनामधन्य लार्ड हार्डिङ्ग भारत के वाइसराय बनाये गये। अभी थोड़े दिन की बात है कि लार्ड हार्डिङ्ग के स्थान पर, वाइसराय चुनने के लिये, जब इङ्गलैंडीय पत्रों में छेड़छाड़ शुरू हुवी थी, तब आप का भी नाम इस पद के लिये लिया गया था। अस्तु! ये बातें, आपकी राजनैतिक योग्यता, मालूम करने के लिये समुचित सहायक हैं।

भारतीय सेना को बुलाकर आपने उसका मान बढ़ाया। आपही के उद्योग से सहज ही सहज में इंगलैंड में भी ५० लाख सेना तैयार होगई। ऐसे वीर और रण-पण्डित की आकस्मिक मृत्यु पर साम्राज्य भर में शोक मनाया गया और मनाया जारहा है। भारत का शायद ही कोई ऐसा शहर या क़स्बा हो, जहाँ इस भीष्मपितामह तुल्य योद्धा की मृत्यु पर शोक-प्रकाश न किया गया हो। वस्तुतः इस रण-पण्डित की आकस्मिक मृत्यु से ब्रिटिश-साम्राज्य को अपरिमित हानि हुई है। परन्तु यह जानकर कुछ सन्तोष होता है, कि आपकी जगह पर मिस्टर लाइड जार्ज, युद्धसचिव नियत किये गये हैं। आप भी बड़े ही अनुभवी राजनीतिज्ञ, और रणकुशल हैं।

*

८—इस फ़स्ल में जो भेजिये, बस आम भेजिये।

[ले० "खान बहादुर" अकबर हुसेन ख़ाँ "अकबर"]

नामा कोइ न यार का पैग़ाम भेजिये।
इस फ़स्ल में जो भेजिये, बस आम भेजिये॥
ऐसे ज़रूर हों कि उन्हें रख के खा सकूँ।
पुख़्ता अगर हों बीस तो दस ख़ाम भेजिये॥
मालूम ही है आपको बन्दे का ऐड्रस।
सीधे इलाहाबाद मेरे नाम भेजिये॥
ऐसा न हो कि आप यह लिक्खें जवाब में।
तामील होगी, पहिले मगर दाम भेजिये॥

"देश"

साहित्य-चर्चा

१—विद्यार्थी

प्रयाग से निकलने वाले विद्यार्थी पत्र ने दो ही तीन वर्ष में अच्छी उन्नति करली है। यह हिन्दी का एक मासिक पत्र है। कभी एक, कभी दो, चित्र भी प्रतिमास, इसमें रहा करते हैं। ग्राहकों को उपहार भी यह प्रतिवर्ष देता है। इसका सम्पादन, हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित रामजीलालजी शर्मा बड़े परिश्रम से करते हैं। विद्यार्थी को सचमुच आपने बालकों के उपयोगी बना दिया है। समालोच्य अंक में, जो तीसरे भाग का पहिला अंक है, ब्रह्मचर्याश्रम वाला रंगीन चित्र बड़ा मनोहर है। सभी लेख और कवितायें, पढ़ने योग्य हैं। विद्यार्थी में गुप्त जी की कविता देखकर आश्चर्य हुवा। उपाध्याय जी की अविनय वाली कविता विद्यार्थियों के विशेष ध्यान देने योग्य है। वार्षिक मूल्य १) मिलने का पता—हिन्दी प्रेस, प्रयाग।

*

सनाढ्योपकारक।

यह सनाढ्य-महामण्डल का पाक्षिक मुख-पत्र है। २३ वर्ष से यह निकलता है। इसके अवैतनिक सम्पादक पण्डित व्रजविहारीलाल शर्मा, बी. ए., एल. एल. बी. बड़े योग्य और अनुभवी पुरुष हैं। अतः आप ज़रा और ध्यान से इसका सम्पादन करें तो पत्र की बड़ी उन्नति हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक पढ़े लिखे सनाढ्य ब्राह्मण को, अपने इस जातीय पत्र का अवश्य ग्राहक बनना चाहिये। वार्षिक मूल्य २) मिलने का पता—श्री सनाढ्य महामण्डल बेलनगंज, आगरा।

*

३—श्रीवैष्णव।

समस्त भारतवर्षीय श्रीवैष्णव सभा का यह मासिक मुखपत्र है। अभी इसकी पहिली ही संख्या प्रकाशित हुई है। अधिकारी श्रीजगन्नाथदास विशारद और पं० नारायणदत्त शर्मा इसके सम्पादक हैं। पत्र का विषय नाम ही से स्पष्ट है। वार्षिक मूल्य २)। मिलने का पता, व्यवस्थापक "श्रीवैष्णव" अजमेर।

*

४—भारतीय विद्यार्थी-विनोद।

आकार छोटा, पृष्ठसंख्या ८८, मूल्य ।≈) परन्तु "विद्यार्थी" मासिक पत्र के ग्राहकों को उपहार में बिना मूल्य दिया गया था। लेखक, श्रीयुत भगवानदास माहेश्वरी केला, प्रकाशक, पं० रामजीलाल-शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग। विद्यार्थियों के यह बड़े काम की पुस्तक है। भाषा, गणित, विज्ञान आदि विषयों पर बड़े अच्छे और उपयोगी निबन्ध लिखे गये हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की और बहुत आवश्यकता है। केलाजी का परिश्रम सराहनीय है। प्रकाशक से प्राप्य।

मनोरम-श्लोक

अंगं भूषण-निकरो भूषयतीत्येष लौकिको वादः।
अंगानि भूषणानां कामपि सुषमामजीजनंस्तस्याः॥

(स्त्री-सौन्दर्य-वर्णन) संसार कहता है कि उसके अङ्ग को भूषणों ने ख़ूबसूरत बना रक्खा है। मैं कहता हूँ कि भूषणों ने नहीं, उसके अङ्गों ने ही भूषणों में एक विलक्षण ख़ूबसूरती पैदा करदी है।

गंगाशरण गुप्त

मनोरमा और लोकमत।

वैद्य, मुरादाबाद—

मनोरमा—यह एक नवीन मासिक पत्रिका है। मंडी धनौरा जि० मुरादाबाद से अभी हाल ही सुन्दर वेशभूषा के साथ निकलनी शुरू हुई है। साँची बड़ी, पृष्ठ संख्या ३३, सचित्र। वार्षिक मूल्य ३) रु०। इस पत्रिका के अब तक ३ अंक निकल चुके हैं। दूसरी संख्या में भारतेश्वर पञ्चम जार्ज का अन्य प्रधान पदाधिकारियों के साथ एक बढ़िया चित्र दिया गया है। लेख भी साधारणतः अच्छे हैं। संपादक पंडित प्यारेलाल दीक्षित और लाला रामकिशोर गुप्त 'अलंकारशास्त्री' हैं। इसीलिए शायद इस पत्रिका में भाग और संख्या के स्थान में अलंकार और ध्वनि शब्दों का व्यवहार किया गया है। हिंदीप्रेमियों को इस पत्रिका को आश्रय देना चाहिए।

शारदा, प्रयाग—

मनोरमा—हिन्दीभाषामयी मासिकपत्रिका त्रयोङ्काः अद्य यावदधिगताः, संस्कृतज्ञेषु हिन्दीभाषाप्रचाराय पत्रिकेयं जन्मासादितवती। अतएव च कादम्बरीकुमारसम्भवादीनां भाषान्तरः प्रकाश्यते। अनेन व्यापारेण संस्कृतज्ञेषु हिन्दीभाषां प्रचारयितुं शक्येत न वेति काल एव प्रमाणयिष्यति। अस्या भाषा कुत्रचित् प्रादेशिकतां बिभर्ति, राष्ट्रभाषायां प्रादेशिकत्वं नोचितमिति नो बुद्धिः।

सुन्दरा मुद्रणशैली, सम्पादकरुच्यनुसारीणि चित्राणि प्रतिमासं प्रकाश्यन्ते। पत्रिकामिमामनुवाच्य कामं प्रसन्नोऽस्मि। मूल्यं ३) त्रयम्। मण्डी धनौरा, मुरादाबाद इत्यतो लभ्यते।

सुधानिधि, प्रयाग—

मनोरमा—मण्डी धनौरा (यू. पी.) से यह नया मासिक पत्र निकलने लगा है। आकार प्रकार उत्तम है और इस सचित्र पत्र के लेख भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम कोटि के हैं। किन्तु भाषाशैली में कुछ सुधार की आवश्यकता है। "हुये" "हुवे" आदि लिपिशैली इस समय घृणित समझी जाती है। डबल क्राउन अठपेजी ५ फ़ार्मों की मासिक पुस्तक का वार्षिक मूल्य ३) है।

दिगम्बर जैन, सूरत—

मनोरमा—मंडी धनौरा (यू. पी.) से प्रकट होती हुई यह नवीन सचित्र मासिक पत्रिका है जिसके संपादक प्यारेलाल दीक्षित और रामकिशोर गुप्त अलंकारशास्त्री हैं। छपाई सफ़ाई अच्छी और हर एक अंक में रंगीन चित्र भी रहता है। पत्रिका के अनेक लेख पढ़ने योग्य होते हैं।

ब्राह्मण-सर्वस्व, इटावा—

मनोरमा—नई मासिक पत्रिका है, मण्डी धनौरा जि० मुरादाबाद से प्रकाशित होती है। सम्पादक हैं पंडित प्यारेलाल दीक्षित और रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)। तीन अंक इसके अब तक निकले हैं, रंग रूप भी इसका अच्छा है और लेख भी साधारणतः अच्छे हैं, पहिले अङ्क में इस पत्रिका के निकलने का उद्देश्य सम्पादक ने यह बतलाया है 'संस्कृत के विद्वानों में हिन्दी का प्रचार करते हुए हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करना"। उद्देश स्तुत्य है इसमें सन्देह नहीं, इसी उद्देश के अनुसार इसमें हिन्दी कादम्बरी और कुमारसम्भव के श्लोकों का हिन्दी पद्यानुवाद निकल रहा है, प्रति अङ्क में कई कई चित्र भी रहते हैं, टाइटिल का काग़ज़ भी दुरंगा है, हमारी समझ में इन सब बातों में यदि अधिक व्यय न किया जाकर इसके पाठ्य विषय में ही अधिक पेज बढ़ा दिये जायँ तो मनोरमा विशेष मनोरम हो सकेगी इसका जीवन चिरस्थायी हो इसी उद्देश्य से हमारा यह निवेदन है, वार्षिक मूल्य ३) और मिलने का पता मैनेजर मनोरम कार्यालय मण्डी धनौरा यू० पी०

हिन्दी-समाचार, देहली—

मनोरमा—मंडी धनौरा, ज़िला मुरादाबाद से उपर्युक्त नामकी जो पत्रिका प्रकाशित होती है उसकी ३—४ संख्या हमारे सामने हैं। मनोरमा यों तो वास्तव में ही मनोरम है परन्तु यदि हिन्दी भाषाभाषी उसकी ग्राहकसंख्या बढ़ाने में कटिबद्ध हों तो यह मासिक पत्रिका और भी उन्नति कर सकती है। चित्र, कागज, छपाई इत्यादि के लेखे से मनोरमा किसी से कम नहीं है। लेख भी उपयोगी और सारगर्भित होते हैं। तीसरे अंक में दमयन्ती का एक रंगीन चित्र दिया गया है जो अति चित्ताकर्षक है। हम इस पत्रिका के सम्पादकप्रवर पंडित प्यारेलाल दीक्षित और लाला रामकिशोर गुप्त के परिश्रम और साहस की प्रशंसा करते हैं जो इस समय में जब काग़ज़ का नितान्त अभाव हो रहा है ऐसी सर्वांगसुन्दर पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं। मूल्य ३) वार्षिक। पता धनौरा मंडी—मुरादाबाद।

गौड़-हितकारी, मैनपुरी—

मनोरमा—मासिक पत्र मंडी धनौरा यू० पी० वार्षिक मू० ३) रु०।

मर्यादा के आकार और रूप रंग के सदृश यह नवीन मासिक पत्रिका गत कार्तिक मास से निकलना प्रारम्भ हुई है प्रतिमास इसमें सबसे पहिले एक रङ्गीन चित्र और कई एक सादे चित्र होते हैं। लेखों की शैली अच्छी है। "हिन्दी कादम्बरी" और "हिन्दी कुमार सम्भव" यह दो लेख क्रमशः प्रत्येक मास में प्रकाशित हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिमास कोई न कोई एक जीवन चरित, मनोहर कवितायें, मनोहर श्लोक तथा उत्तम उत्तम दो या तीन लेख और भी रहते हैं। काग़ज़ की उत्तमता, चित्रों की सुन्दरता और लेखों की मनोरमता में यह पत्रिका सच मुच मनोरमा है। इत्यादि

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad.)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक—
प्यारेलाल दीक्षित
और
रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

वार्षिक मूल्य ३)] मनोरम-कार्यालय, मण्डी धनौरा यू.पी. से प्रकाशित [प्रतिसंख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

[१] प्रार्थना [लेखक, "एक देशभक्त" २६५
[२] हिन्दी-कादम्बरी २६६
[३] मेरा हृदय (गल्प) [ले० "कुमुद" २६६
[४] युद्ध का शिक्षाप्रणाली पर प्रभाव [ले० प्रोफ़ेसर महेशचरणसिंह एम. एस-सी. २७२
[५] भरत-बाल्य-क्रीड़ा [ले० कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य २७४
[६] बाल [लेखक, "दास" ... २७५
[७] दुःख [ले० श्रीयुत लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी २७६
[८] तू और मैं [लेखक, "दास" ... २७६
[९] आपत्ति और उसको दुर करने के उपाय [ले० पण्डित ब्रह्मदत्त मिश्र बी. ए. २७७
[१०] दमयन्ती का स्वयंवर (२) ... २७८
[११] राजर्षि जनक का पत्र (महाराज दशरथ के नाम) [लेखक, पण्डित मूलचन्द्र शर्मा २८६
[१२] वेद में युद्ध-विद्या [ले० पण्डित श्री हरिहरसुरूप शर्मा शास्त्री विद्याभूषण २८७
[१३] विविधि विषय २९०
[१४] साहित्य-चर्चा २९४
[१५] मनोरमा और लोकमत ... २९६

शीघ्र ज़रूरत है।

"मनोरमा" का प्रचार करने के लिये दो भ्रमणकारी एजंटों की शीघ्र आवश्यकता है। वेतन ३०) से ५०) तक एजंट सम्बन्धिनी योग्यतानुसार और मार्गव्यय दिया जायगा। केवल अनुभवी सज्जनों को प्रार्थना-पत्र भेजना चाहिये।

पता—

मैनेजर "मनोरमा" मंडी धनौरा, यू.पी.

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य ३) और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढाने तथा प्रकाशित करने, न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र 'मैनेजर मनोरम कार्यालय, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहिएं।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरम में राजनैतिक लेख नहीं छापे जायँगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता पूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥) प्रतिमास
१ पृष्ठ या आधेकालम की छपाई	५) "
आधा पृष्ठ या १ कालम की "	३) "
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२) "
१/८ पृष्ठ या चौथाई कालम की,	१॥) "

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरम-कार्यालय,
मंडी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप को इस वर्ष लखनऊ में होने वाली कांग्रेस को प्रधान बनाए जाने की तजवीज़ हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | कार्तिक १९७३ | ध्वनि ८

प्रार्थना

१—दीजै श्रद्धा शुचि सुख युता,
शौर्य सम्मान दीजै।
दीजै स्वामी ! विनय ऋजुता,
शील सद्ज्ञान दीजै॥
हे विश्वात्मा ! धन बल धरा
धाम आराम दीजै।
दीजै दीजै मनुज-हित में
चित्त-विश्राम दीजै॥

२—विद्या दीजै, बुद्धि विज्ञान दीजै
लक्ष्मी दीजै धर्म का ध्यान दीजै।
दीजै स्वामी ! शान्ति स्वातन्त्र्य दीजै
दीजै दीजै मोक्ष का मन्त्र दीजै॥

३—दीजै दीजै देश को मान दीजै
ज्ञानी मानी वीर सन्तान दीजै।
दीजै स्वामी ! आयु आरोग्य दीजै
आर्यों को भू-युद्ध के योग्य कीजै॥

४—कीजै स्वामी सौख्य का दान कीजै
कीजै कीजै प्रार्थना कान कीजै।
कीजै कीजै जाति-उत्थान कीजै
हे विश्वात्मा ! देश-कल्याण कीजै॥

५—दीजै दीजै बाहु में शक्ति दीजै
दीजै दीजै मातृ-भूभक्ति दीजै।
दीजै दीजै बन्धु-वात्सल्य दीजै
हे हे स्वामी ! जन्म-साफल्य दीजै॥

६—छीजै हिंसा कपट-पटुता
ताप सन्ताप छीजै।
छीजै कुत्सा कलह कटुता
राष्ट्र का पाप छीजै॥
छीजै ईर्ष्या मद मलिनता
बन्धु-विद्रोह छीजै।
छीजै तन्द्रा अनृत शठता
मूढ़ता मोह छीजै॥

एक देश-भक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-कादम्बरी

(८)

अब उस आश्रम का माहात्म्य सुनिये—

होम के धुवों में ही वहाँ मलिनता (कालापन) है, आचार में किसी तरह की मलिनता नहीं है। तोतों के ही मुख पर वहाँ लाली है, क्रोध में किसी का मुँह लाल नहीं होता। कुशाओं के अगले हिस्सों में वहाँ तीक्ष्णता है, स्वभावों में नहीं। केलों के पत्तों में ही वहाँ चञ्चलता है मुनियों के चित्तों में चञ्चलता नहीं। कोयलों की आँखों में ही वहाँ राग (लाली) दीख पड़ती है, दूसरों की स्त्रियों में राग (अभिलाष) नहीं है। कमण्डलुओं में ही वहाँ कण्ठ-ग्रह (गले का पकड़ना) दीख पड़ता है, मैथुन में वहाँ गला नहीं पकड़ा जाता। बात यह है कि मुनि लोग मैथुन नहीं किया करते। अतएव स्त्रियों का गले से चिपटना भी वे नहीं जानते। व्रतों में ही वहाँ मेखला-बन्ध होता है, ईर्ष्या से उत्पन्न हुये, झगड़ों में वहाँ बेड़ी नहीं डाली जाती। वहाँ, होम के लिये पाली हुई गौओं के स्तन दूध दूने के लिये छुये जाते हैं, कामिनियों के स्तनों को वहाँ कोई नहीं छूता। मुर्गों में ही पक्षपात (पंखों का गिरना) होता है, विद्या-विवाद में वहाँ कोई पक्षपात नहीं करता। अग्नि की परिक्रमा में ही वहाँ भ्रान्ति (घूमना) होती है, शास्त्रों में नहीं। भारत की कथाओं में ही वहाँ वसु-संकीर्तन (पितृगणों का कीर्तन) होता है, तृष्णाओं में वसु-संकीर्तन (धन की प्रशंसा) नहीं होती। रुद्राक्ष की मालाओं में वहाँ गणना पाई जाती है, शरीरों में गणना (आदर) नहीं देखी जाती। यज्ञ दीक्षा द्वारा वहाँ मुनि-बाल-नाश (मुनियों का केशकर्तन) हुआ करता है, मृत्यु द्वारा मुनि-बाल-नाश (मुनियों के बच्चों का मृत्यु) नहीं होता।

रामायण द्वारा ही वहाँ रामानुराग (रामचन्द्र में प्रेम) हुआ करता है। यौवन द्वारा रामानुराग (स्त्रियों में अनुराग) नहीं होता। मुद्गरों में ही वहाँ मुँह पर सलवटें पड़ जाती हैं, धनाभिमान से नहीं। महाभारत की कथा में ही वहाँ शकुनि-वध (दुर्य्योधन के मामा का वध) सुना जाता है, वैसे शकुनि-वध (पक्षि-वध) नहीं होता, वहाँ शिकार नहीं खेला जाता। पुराण में ही वहाँ वायु-प्रलाप (वायु का कथन) सुना जाता है। बात यह है कि वहाँ वायुपुराण में ही "वायुरुवाच" यह सुना जाता है, कोई मनुष्य वहाँ वायु प्रलाप (वायु के विकार से बकवास) करता हुवा नहीं दीख पड़ता। बुढ़ापे में ही वहाँ द्विजपतन (दाँतों का गिरना) होता है, अपने आचार से द्विज-पतन (ब्राह्मणों का पतन नहीं होता। वहाँ के ब्राह्मण स्वधर्मनिष्ठ हैं। उपवन में होने वाले, चन्दन के वृक्षों में ही वहाँ जाड्य (शीतलता) है, आश्रम के रहने वाले, मुनियों में जाड्य (मूर्खता) नहीं है। अग्नियों में ही वहाँ भूतिमत्ता है, वहाँ के अग्नि ही राख वाले हैं, मुनियों में भूतिमत्ता (धनिकता) नहीं है। हिरनों को ही वहाँ गाना सुनने का व्यसन है, मुनियों को नहीं। मोरों के नाच में ही वहाँ पक्ष-पात (पंखों का पतन) होता है, मुनियों का नाच में पक्षपात नहीं। नाच देखना वे अच्छा नहीं समझते। साँपों के ही वहाँ भोग (फन) होता है, मुनियों को भोग (कान्तादिक सुख) नहीं है। बन्दरों की ही वहाँ श्री-फल (बेल) में इच्छा पाई जाती है, मुनियों की वहाँ श्री-फल (धन के कार्य्यों) में इच्छा नहीं पाई जाती। वृक्षों की जड़ों की ही वहाँ अधोगति है, वे ही नीचे को सरकती हैं, वहाँ के निवासियों की अधोगति नहीं होती। उन्हें शुभ कर्म्मों के प्रताप से नरक के दर्शन नहीं होते।

मैंने, उस आश्रम के बीच के हिस्से को अलंकृत करते हुये, अशोक के वृक्ष की छाया में बैठे हुये, जावालि मुनि को देखा—

उस वृक्ष के पत्ते, रची हुयी महँदी जैसे लाल २ हैं। मुनि जन, उसकी शाखाओं में अपनी काली मृग छाला और तूंबी लटका देते हैं। उनसे वे शाखायें सनाथ रहती हैं। तपस्वियों की कन्यायें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस वृक्ष के थाँवले के ऊपर हल्दी का थापा लगाया करती हैं। और हिरनों के बच्चे उस थाँवले का जल पिया करते हैं। मुनियों के छोटे छोटे बालक, कुशा, चीर, और रस्सियों को लपेटा करते हैं। उस वृक्ष के नीचे की पृथिवी, ताज़े गोबर के लीपने से पवित्र रहती है। तत्क्षण ही बनाई हुई, फूलों की मालाओं से वह वृक्ष, बड़ा रमणीय मालूम होता है। वह ऊँचाई में यद्यपि बहुत बड़ा नहीं है परञ्च आकार प्रकार से उसका भीतरी हिस्सा बड़ा विस्तृत है।

जावालि के चारों तरफ़, बड़े तपस्वी महर्षि बैठे हुए थे। उस समय वह जावालि, समुद्रों से संसार जैसा, कुल-पर्वतों से सुमेरु जैसा, याज्ञिक अग्नियों से यज्ञ जैसा, सूर्यों से कल्प का अन्तिम दिन जैसा और काल के अवयवों से काल जैसा मालूम हो रहा था।

वह (जावालि) जरावस्था से अपने शरीर को सुफ़ेद बनाए हुये था—बुढ़ापे से उसके केश आदि सुफेद पड़ गये थे। वह जरावस्था भी कठिन शाप के भय से शरीर को कँपाती हुई केशों को पकड़नेवाली, किसी मनस्विनी के समान मालूम होती थी। बात यह है कि रति-कलह में पति की अप्रसन्नता के भय से, स्त्री का शरीर तो काँपता है, परञ्च वह रति-कलह में मग्न होकर पति के केश पकड़ लेती है। जरावस्था भी शरीर को कँपाती और केशों को पकड़ लेती है—सुफ़ेद कर डालती है।

वह (जरावस्था) क्रुद्धा स्त्री जैसी भी मालूम होती थी। क्रुद्धा स्त्री क्रोध से भ्रू-भङ्ग किये (भौं चढ़ाये) हुये होती है। जरावस्था से भी भ्रू-भङ्ग (भौंओं में विकृति, माथे में सलवटें) पड़ जाती है। जरावस्था को उन्मत्त स्त्री से भी तुलना दी जा सकती है। उन्मत्त स्त्री की गति, अस्तव्यस्त हो जाती है—वह अपने पैरों से सीधी नहीं चल सकती। बुढ़ापे से भी, मनुष्य को चलना फिरना दुर्वार हो जाता है। भूषित स्त्री से भी जरावस्था बड़ी बरी करती है। भूषित स्त्री माथे में तिलक प्रकट किये हुये होती है—माथे में तिलक लगाये रहती है। वह भी देह में तिलक (बूँदें) प्रकट किये हुये होती है—वृद्धावस्था में शरीर में काली काली बूँदें हो जाती हैं। जरावस्था, व्रतधारिणी से भी उपमा रखती है। व्रतधारिणी, भस्म से श्वेत मालूम होती है—शरीर पर राख लपेटे रहती है। जरावस्था देह को राख जैसा सुफ़ेद कर देती है—बुढ़ापे में शरीर सुफ़ेद हो जाता है। यही दशा जावालि की थी।

वह जावालि, अपने तप से, सारे के सारे मुनि-समुदाय को जीत कर फर्राती हुई पताका जैसी, बड़ी लम्बी लम्बी जटाओं से बड़ा अच्छा मालूम होता था। वे जटायें, लोयरी थीं और स्वर्ग के चढ़ने के लिये, स्वीकार की गई पवित्र रस्सी जैसी मालूम होतीं थीं। वे जटायें, पुण्य रूपी वृक्ष की निकली हुई कुसुम-मञ्जरी जैसी भी मालूम होती थीं। वह जावालि, ललाटपट्ट से भी बड़ा अच्छा मालूम होता था। उसके ललाट-पट्ट में भस्म से तीन रेखायें हो रही थीं—वह त्रिपुण्ड्र लगाये हुये था। वह ललाट-पट्ट, एक नीचे और एक बीच में, त्रिपथगा के तीन सोत वाले, हिमालय के शिलातल से तुलना रखता था।

जावालि-दृष्टि, अपनी भ्रू लताओं से अवलम्ब्यमान थी—उनका सहारा लिये हुये थी। वे भ्रू लतायें, नीचे को मुख किये हुए चन्द्रकला की आकृति जैसी मालूम होती थीं और कुछ लटकी हुई, माथे की त्रिवलि से शिथिल हो रही थीं। जावालि के शरीर का अगला हिस्सा, उसकी दाँतों की किरणों से सुफ़ेद हो रहा था। मन्त्रों के निरन्तर अभ्यास से उसके होठ का पुट, खुल जाता था। अतएव वे किरणें, निकलते हुए बड़े पवित्र, सत्य के अङ्कुर जैसी मालूम होती थीं। वे किरणें, इन्द्रियों की निर्मल वृत्ति जैसी और करुणा-रस के प्रवाह समान भी मालूम होती थीं। बात यह है कि करुणा-रस के प्रवाह और स्वच्छ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तियें को कवि लोग स्वच्छ बतलाया करते हैं। वे भी बड़ी श्वेत थीं अतएव इनकी उपमा समुचित घटती थी।

दाँतों की किरणों को दिखाता हुआ, वह जावालि गंगा-प्रवाह को निकालता हुआ महर्षि जन्हु जैसा मालूम होता था। वह जावालि, निरन्तर सोमपान की उद्गारों की सुगन्धि के साँसों से खींचे गये, और मूर्तिमान शाप के अक्षर जैसे, मुँह के पास ही सदा घूँमनेवाले, देदीप्यमान भौंरों सहित मुख को धारण कर रहा था। बात यह है कि जावालि ने सोमरस का विशेष पान किया था। अतएव उसके मुख से ऐसा उत्कट गन्ध निकलता था कि जिससे मूर्ति धारण किये हुए, काले काले शाप के अक्षरों के समान, भौंरे उसके मुँह को किसी समय भी नहीं छोड़ते थे। वह जावालि बड़ा कृश था। अतएव उसके गण्डस्थलों में गढ़े पड़े हुये थे। नाक और ठोड़ी बड़ी ऊँची मालूम होती थी। आँखों की पुतलियाँ कुछ क्रूर मालूम होती थीं और उनके परवाल गिर गये थे। अत एव वे छीदे छीदे मालूम होते थे। आगे को निकले हुये रोमाञ्चों ने उसके कानों को ढक रक्खा था। उसकी डाढ़ी भी इतनी लम्बी थी कि उसकी नाभि तक पड़ती थी।

उस जावालि का गंगा-प्रवाह जैसा निर्मल शरीर था। कन्धे पर यज्ञोपवीत लटका हुआ था और अस्थि-पञ्जर (हड्डियाँ) ऊँचा और छीदा मालूम होता था। अतएव वायु-वश से पैदा हुई छोटी छोटी तरंग-रचनावाले, और बहते हुए बसींडों वाले गंगा-प्रवाह से तुलना रखता था। उसकी गर्दन, बड़े चञ्चल, इन्द्रियरूपी घोड़ों को रोकने के लिये, लम्बी लगाम जैसी गले की नसों से निरन्तर बँधी हुई थी। वह जावालि स्फटिक मणि के टुकड़ों से बनी हुई और बड़े सुफेद मोटे मोटे मोतियों से गुँथी हुई, सरस्वती का हार जैसी, रुद्राक्ष की माला को घुमाता हुआ, दूसरा धुरू जैसा मालूम होता था। वह माला, चलती हुई अँगुलियों के रंध्रों में आई हुई थी—उनके बीच में चक्कर खा रही थी। धुरू के भी चारों तरफ तारे घूमते रहते हैं। बात यह है कि जावालि की माला के दाने, तारे जैसे चमकीले और गोल थे और स्वयम् जावालि, धुरू जैसा स्थिर था। ऊपर को पकड़ती हुई, बहुत सी नसों से वह जावालि, पकी हुई लताओं से बूढ़ा कल्प-वृक्ष जैसा निरन्तर आवेष्टित था। वह जावालि, दुपट्टे के समान बक्कल से आच्छादित था—बक्कल का दुपट्टा ओढ़े हुए था। वह बक्कल इतना सुफेद था कि चन्द्रमा की किरणों से निर्मल बना हुआ जैसा मालूम होता था। यही नहीं वह अमृत के झागों से या जावालि के तपश्चर्य्यादि गुण रूपी तन्तुओं से बनाया हुआ जैसा मालूम होता था, वह बक्कल मानसरोवर के जैसे जल से धुला हुआ था। अत एव अति पवित्र था और वह दुपट्टा इकट्ठा हुआ, बहुत सारे बुढ़ापे के समान मालूम होता था। गंगा जल से भरे हुये पास ही तिपाई पर रक्खे हुए, स्फटिक-मणि जटित कमण्डलु से वह जावालि, राज हंस से, खिले हुये कमलों का ढेर जैसा शोभायमान था।

जावालि, अपनी स्थिरता, गम्भीरता, तेजस्विता, शमता, और निर्मलता से पर्वत, समुद्र, सूर्य्य, चन्द्रमा और आकाश का विभाग सा करता हुआ मालूम होता था। बात यह है कि जावालि इतना स्थिरचित्त, गम्भीर, तेजस्वी, शान्तिमान और स्वच्छ मालूम होता था कि उसने ही पर्वत आदिकों को कुछ थोड़ी सी स्थिरतादिक देदी है।

वह गरुड़ से बराबरी करता था। गरुड़ ने अपने प्रताप से द्विजों (पक्षियों) में आधिपत्य प्राप्त किया है। उसने भी अपने प्रताप से द्विजों (ब्राह्मणों) में आधिपत्य प्राप्त कर रक्खा था। जावालि, ब्रह्मा जैसा भी है। ब्रह्मा, ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों के गुरु हैं, प्रवर्तक हैं। वह भी अपने आश्रम में गुरु है, श्रेष्ठ है। वह पुराने चन्दन के वृक्षसे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना रखता था। चन्दन के वृक्ष पर साँपों की काँचली रूपिणी सुफेद २ जटायें रहती हैं। उसके भी साँप की काँचली जैसी सुफेद २ जटायें थीं।

जावालि, बृहस्पति से भी तुलना रखता था। बृहस्पति ने आजन्म कच (कच नाम वाले अपने पुत्र) को संवर्धित किया था। उसने भी आजन्म कच (अपने केशों) को संवर्धित किया था, बढ़ाया था। वह दिन जैसा भी मालूम होता था। दिन का मुख, निकलते हुये सूर्य-बिम्ब से चमकदार होता है। उसका भी मुख, सूर्य-बिम्ब जैसा चमकीला था। वह शरद ऋतु से भी बराबरी करता था। शरद ऋतु में वर्ष (वर्षा) क्षीण हो जाती है। उसके भी वर्ष क्षीण हो गये थे, वह बूढ़ा हो आया था। वह, शान्तनु जैसा भी था। शान्तनु को सत्यव्रत (अपना पुत्र भीष्म) पियारा था। उसे भी सत्यव्रत (सत्य रूपा अनुष्ठान) पियारा था।

जावालि ने पार्वती की हथेली से भी बराबरी की थी। पार्वती की हथेली, रुद्राक्ष (शिव के तीसरे नेत्र) रूपी बलय के ग्रहण (छिपाने) में चतुर थी। बात यह है कि पार्वती ने शिव के साथ रमण करते हुये, चन्द्रकला की चाँदनी से कुछ लज्जा की और उसकी चाँदनी को वैसे अनिवार्य्य समझ कर, शिव के तीसरे नेत्र को अपनी हथेली से ढक लिया था। अतएव पार्वती की हथेली शिव के नेत्र-पिधान में कुशल थी। वह भी रुद्राक्ष की माला के ग्रहण करने में कुशल था, उसने माला घुमाने का बड़ा अभ्यास किया था। वह शिशिर समय के सूर्य्य से भी तुलना रखता था। शिशिर-सूर्य्य, उत्तरा (उत्तर दिशा) से संग किये हुये होता है। शिशिर ऋतु में सूर्यनारायण उत्तरायण हो जाते हैं। वह भी उत्तरा-संग किये हुये था, ऊपर दुपट्टा ओढ़े हुए था। वह समुद्र का अग्नि जैसा भी मालूम होता था। समुद्र का अग्नि निरन्तर पय (जल) ही का भक्षण करने वाला होता है। वह भी पय (दूध) ही का भक्षण करने वाला था, दूधाहारी था। वह, शून्य नगर के समान भी मालूम होता था। शून्य-नगर में, दीन (शोभा शून्य) अनाथ और विपन्न (टूटे फूटे) शरण (मकान) होते हैं। वह भी दीन, अनाथ और विपन्न (दुखियों) का शरण था, रक्षक था। उसको शिव की भी तुलना दी जा सकती है। शिव का शरीर, भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट है, भस्म के समान पाण्डुर है और उमा (पार्वती) से आश्लिष्ट है। उसका भी शरीर, भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्ट था, भस्म के समान, पाण्डु (बूढ़े होने के कारण सुफेद २) रोमों से आश्लिष्ट था—व्याप्त था, उसके शरीर पर सुफेद २ बाल थे। ऐसे जावालि को मैंने देखा।

(अपूर्ण)

मेरा हृदय

किमकारि न कार्पण्यं, कस्यालङ्घि न देहली ?
अस्य पापोदरस्यार्थे, किमनाटि न नाटकम् ?

मेरा हृदय कहाँ गया? उसे किसने चुरा लिया? हा! जहाँ मेरा हृदय था, वहाँ तो नहीं है। जहाँ मैंने अपने हृदय को रख छोड़ा था, वहाँ उसका कुछ पता नहीं! उसके ढूँढ़ने में ज़मीन आस्मान एक कर डाला, पर मेरे हृदय या उसके चोर का कहीं पता नहीं मिला, हाय! क्या करूँ!! मेरे एक लँगोटिया मित्र बोले—"देखो, रसोई घर में जाकर देखो, सम्भव है, तुम्हारा हृदय वहाँ पड़ा हो।

यह मैं मानता हूँ कि रसोईघर में मेरा हृदय, पड़ा रहा करता था। जहाँ खीर, पूरी, हलवे की सुगन्धि उड़ती थी। रसिक बाबू के घर की मिसरानी देखने में तो सचमुच सूपनखा की सहोदरी थी और उसकी अवस्था भी कुछ कम साठ वर्ष की होगी, पर वह रसोई अच्छी बनाती थी और परोसती भी दिल खोल कर थी। यही कारण है कि मेरा हृदय, उसे चाहने लगा। इस नेक काम में रोक केवल यही हुई कि मिसरानी, पहले ही मर चुकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र की आज्ञानुसार मैंने रसोईघर में अपने हृदय को ढूँढ़ा, पर वहाँ कुछ भी पता न चला।

मित्र ने दुबारा कहा-"अच्छा अब ज़रा श्यामा ग्वालिन के यहाँ तो जाकर ढूँढ़ो। शायद वह तुम्हारा हृदय ले गई हो।"

श्यामा के साथ मेरा कुछ सम्बन्ध ज़रूर है। परन्तु वह सम्बन्ध शृङ्गार रस का नहीं, गोरस का है। श्यामा, देखने में गुदगुदी, गोलगोल, अवस्था कोई पचास के लगभग, दाँतों में मिस्सी, माँग में सिन्दूर, नाक में छोटी सी नथ, और सिर पर दूध भरी मटकी लिये, रस भरी हँसी बरसाती, रास्ते में चली जाती थी, और मैं पीछे पीछे उस का मज़ा बटोर कर झोली में भरता जाता था। यह देखकर संसार के बदमाश लोग, मेरी निन्दा करने लगे। मुझे इस निन्दा से कुछ दुःख हो या न हो। पर श्यामा के लिए मुझे इस निन्दा से बड़ा दुःख है। अतः मेरी समझ में श्यामा सती साध्वी पतिव्रता स्त्री है।

यह बात भी मैं चार आदमियों के सामने नहीं कह सकता। एक बार मैंने यह बात कही, तो महल्ले के एक बदचलन लड़के ने इसका भी उलटा अर्थ निकाला। उसने कहा—श्यामा, साधु ग्वाले की स्त्री है, इसलिये उसे आप साध्वी कह सकते हैं, वह विधवा होने पर भी पति से ख़ाली नहीं, इसलिये उसे आप पतिव्रता स्त्री कह सकते हैं। अरे !! राम राम !!!

जब लिखने बैठा हूँ, तो साफ़ साफ़ लिखूँगा। मेरे हृदय में श्यामा का प्रेम कुछ न कुछ अवश्य है। इसके कई कारण हैं। प्रथम यह कि वह दूध देती है, जो सस्ता होता है, और जिसमें पानी की एक बूँद भी नहीं मिली होती। दूसरे वह कभी कभी, दूध, दही और मक्खन मुझे मुफ़्त दे जाती है। तीसरे, तुम्हें मालूम ही है कि मैं लेखक भी अच्छा ख़ासा बन गया हूँ। कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मुझ से लेख के लिये नित्य प्रति प्रार्थना किया करते हैं। श्यामा को भी यह बात मालूम है। एक दिन उसने मुझसे कहा कि चौबे जी, तुम्हारे पास वह काग़ज़ों की पोटली कैसी है? मैंने पूछा कि क्या तुम सुनोगी? इसके बाद मैंने अपने कई लेख, उसे पढ़ कर सुनाये, उसने उन्हें सुना और ख़ूब जी लगा कर सुना। भला, इस सुनने से कौन सहृदय बेदाम का गुलाम न बन जायगा! श्यामा की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ। उसने मेरे कहने से थोड़ी भंग पीना भी शुरू कर दी है। इन्हीं कारणों से मेरा हृदय, कभी कभी, श्यामा के घर के आस पास चक्कर लगाया करता था, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ। पर केवल उसके आस पास ही नहीं, उसके यहाँ जिस दालान में मङ्गला गाय बँधी रहती है, वहाँ भी मेरा हृदय, बराबर ताँक झाँक करता रहता है। मैं जैसा श्यामा को चाहता हूँ, वैसे ही मङ्गला को भी। एक, दूध, दही और मक्खन पैदा करती है, दूसरी मुझे देती है। गंगा, विष्णु के चरणों में पैदा हुई है, पर उसको यहाँ तक लाये हैं राजा भगीरथ। मङ्गला को मैं विष्णु और श्यामा को राजा भगीरथ समझता हूँ। वास्तव में एक गोरस और दूसरी शृङ्गाररस की नदी है और मैं दोनों के पास बेदाम बिक चुका हूँ। परन्तु आज कल ढूँढ़ने से मालूम हुआ कि मेरा हृदय, श्यामा के छपरखट अर्थात् गोशाला में नहीं है। फिर मेरा हृदय कहाँ गया?

रोते रोते घर से बाहर निकला, देखा एक सुन्दरी, पानी की कलसी, कमर पर रक्खे लिये जा रही है। उसके मुखड़े पर निगाह पड़ी तो काली काली कमान सी भौंएँ और काली काली आँखों की पुतलियाँ, ग़ज़ब ढा रही थीं। क़दम क़दम पर चलते हुए मालूम होता था कि वह हृदय की हड्डियाँ तोड़ती चली जा रही है। उसे देख कर मुझे विश्वास होगया कि निःसन्देह, इसी ने मेरा हृदय चुराया है।

मैं उसके साथ हो लिया। उसने घूम कर और निगाह फेर कर, क्रोधपूर्वक कहा—"क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या जी! तुम मेरे साथ क्यों आ रहे हो?" मैंने कहा—तुमने मेरा हृदय चुराया है।

सुन्दरी ने बड़ी तनक के साथ उत्तर दिया कि "मैंने तुम्हारा हृदय नहीं चुराया" और साथ ही साथ उसने मुझे गुस्से में २—४ गालियाँ भी दीं।

उस दिन से फिर मुझे कहीं हृदय के ढूँढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ी। मन ही मन में मैंने समझ लिया कि मेरा हृदय इस संसार में कहीं किसी वस्तु में नहीं है। हँसी दिल्लगी मुझे प्यारी थी। उसमें मेरा हृदय प्रायः रहा करता था, पर अब वहाँ भी नहीं है। धन कमाने में तो मेरा जी कभी था ही नहीं, और अब भी नहीं है। फिर बतलाओ, मेरा हृदय गया कहाँ?

हाँ, अब समझा! क्षुद्रहृदय मनुष्यों के लिए हृदय का बन्धन ज़रूर चाहिये। नहीं तो उनका हृदय उड़ जाता है। संसार में हम क्या करने को आते हैं, यह मैं अच्छी तरह नहीं बतला सकता। हाँ, इतना अवश्य प्रतीत होता है कि हम हृदय को बन्धन ही में डालने के लिए आये हैं। मैं सदा अपना ही रहा। पराया कभी नहीं हुआ। यही कारण है कि इसमें मुझे चैन नहीं, सुख नहीं, और कुछ भी नहीं। जो लोग प्रकृति से सुखाकांक्षी होते हैं वे विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, और अपनी स्त्री एवं बच्चों को अपना हृदय, अर्पण कर देते हैं। यही कारण है कि वे सुखी हैं अन्यथा वे किसी तरह सुखी नहीं हो सकते। मैंने बहुत खोज करके देखा है, कि दूसरों के लिए आत्मविस्मरण होने के सिवा सच्ची सुख-प्राप्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। धन, यश और इच्छायें ज़रूर सुख हैं, पर वे स्थिर नहीं, वे सब पहिले पहिले कुछ सुख देते हैं। दूसरी बार उतना सुख नहीं देते, तीसरी बार और भी कम सुख होता है। यही नहीं, शनैःशनैः अभ्यास होजाने पर उनमें कुछ भी सुख नहीं रहता। सुख तो रहता ही नहीं, उलटे दुःख के दो कारण हो जाते हैं। एक तो जिस चीज़ का अभ्यास हो जाता है, उसके होने से कुछ सुख अनुभूत नहीं होता, पर न होने से बड़ा कष्ट होता है। दूसरे, कभी पूरी न होने वाली अभिलाषा के बढ़ते रहने से दुःख ही दुःख होता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि पृथ्वी पर जितने पदार्थ हैं सब असन्तोष-जनक है। विद्या से भी सन्तोष नहीं होता, हाँ उससे धन और प्रतिष्ठा की प्राप्ति अवश्य होजाती है। सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता। क्या आपने किसी को यह कहते सुना है कि मैं धन उपार्जन करके या प्रतिष्ठा प्राप्त करके सुखी हुआ हूँ? मैं कह सकता हूँ कि कभी किसी ने ऐसी बात न सुनी होगी। फिर बतलाइये तो, इस अनित्य धन और प्रतिष्ठा के व्यर्थ होने का और क्या प्रमाण हो सकता है? आश्चर्य तो यह है कि ऐसे प्रबल प्रमाण के होते हुए भी धन और प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य, उतावला और दीवाना हो रहा है। इसका कारण और कुछ नहीं, केवल सामयिक पोली शिक्षा है। माता के दूध के साथ ही साथ, बच्चे के हृदय में यह बात बैठ जाती है, कि जो कुछ है, धन और प्रतिष्ठा है, यही संसार का सार है। बच्चा देखता है कि रात दिन उस के माता पिता, भाई बहिन रिश्तेदार और पड़ौसी, हाय धन! प्रतिष्ठा! करते करते मरे जारहे हैं। नहीं मालूम, इनकी सोसाइटी कब सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग ढूँढ़ेगी? जितने वैज्ञानिक, साइन्स के प्रोफेसर, सृष्टि का तत्त्व जानने की डींग मारनेवाले हैं, सब मिल कर देखें कि दूसरों को सुखी बनाने के सिवा अपने सुखी होने का कोई मार्ग है? मैं कहता हूँ कि नहीं है। मैं मर जल कर राख हो जाऊँगा। मेरा नाम तक इस संसार से उठ जायगा। परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि भविष्यत् में होने वाली सन्तान मेरी इस सचाई के सामने सिर झुकायेगी। सच्ची सुखप्राप्ति का मूल कारण दूसरे को सुखी करना है। आज जैसे, सब लोग धन और प्रतिष्ठा आदि के लिए पागल बने फिरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वैसे ही एक दिन ये सारी सोसाइटियाँ, दूसरे को सुखी बनाने के लिए पागल हुई फिरेंगी। मैं मर कर मिट्टी में मिल जाऊँगा। किन्तु मेरी यह आशा एक दिन रंग लायेगी और ज़रूर रंग लायेगी। पर कितने दिनों में? हाय कौन बतलायगा! कितने दिनों में!!! बात पुरानी है। ढाई हज़ार वर्ष पहिले एक महात्मा, इसी बात को बतला गये हैं! और भी कई धार्मिक लीडरों ने इसी बात के राग अलापे हैं। पर संसार के लोग नहीं सीखते। सबको एक मात्र लौकिक उन्नति की पड़ी है। जिसे देखिये, लौकिक उन्नति के तराने गाने में मस्त है। इधर जबसे युरोपियन सभ्यता का रिवाज हुआ तबसे इस मामले में और भी गड़बड़ी मच गई। हर जगह धन और प्रतिष्ठा ही के मन्त्र जपे जारहे हैं। देखो व्यापार कितना उन्नत है। देखो रेलवे का ज़ाल कहाँ तक फैला हुआ है। देखते हो, टेलीग्राफ़ क्या चीज़ है? देखता हूँ, पर मेरा प्रश्न यह है कि तुम्हारे टेलीग्राफ़ और रेलवे से मेरे हृदय के सुख में कितनी वृद्धि होगी? मेरे खोये हुए हृदय को क्या ये चीज़ें ढूँढ़ कर ला दे सकती हैं।

क्या अँग्रेज़ी और क्या हिन्दी एवं क्या उर्दु, जो मासिक पत्र, पत्रिका, साप्ताहिक और दैनिक अख़बार, बड़ी बड़ी गम्भीर स्पीच, हम देखते सुनते हैं। उसीमें हमें लौकिक उन्नति का विवरण मिलता है। बम भोलानाथ! लौकिक उन्नति देवी की पूजा करो! रुपयों की ढेरी पर ढेरी चढ़ाओ! जो कुछ है वह सोलह आने का रुपया है। रुपया भक्ति है। रुपया मुक्ति है। रुपया उन्नति है। रुपया सद्गति है। रुपया धर्म है। रुपया कर्म्म है। उस मार्ग पर न चलना, देश का रुपया घटेगा। उस मार्ग पर चलो, देश का रुपया बढ़ेगा। रुपया बढ़ाओ! रुपया रेलवे और टेलीग्राफ से बरसता है। उन्हीं के मन्दिरों में जाकर सिर झुकाओ! ऐसा करो, जिसमें रुपया बढ़े। रुपयों की झनझनाहट से भारतवर्ष भर उठे। और हृदय! हृदय और क्या चीज़ है! रुपया ही हृदय है। रुपये की पूजा करो! हृदय मिल जायगा। इस पूजा के उत्सव में अंग्रेज़ी के पत्र, नक्कारे और ढोल बजाते हैं। हिन्दी, उर्दु के पत्र, झाँझ पीटते हैं। पूजा होजाने पर हृदय की भेंट चढ़ाई जाती है।

भाई! पूजा करो! कोई हानि नहीं, पर मुझे दो बातें तो समझा दो? तुम्हारी इस लौकिक उन्नति से कितने दुराचारी, सदाचारी हुए हैं! कितने अधर्मी, धर्मात्मा हुए हैं?? कितने अशुद्ध, पवित्र हुए हैं??? एक भी नहीं। यदि मेरा यह कहना ठीक है, तो मुझे तुम्हारी इस उन्नति से क्या लाभ है?*

"कुमुद"

युद्ध का शिक्षा-प्रणाली पर प्रभाव

संसार के युद्धों से स्वतन्त्र देशों की शिक्षा प्रणाली पर सदैव से बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसलिये आज के भयंकर युद्ध का प्रभाव भी शिक्षा शैली पर पड़ने लगा है। हमारी दौड़ थोड़ी बहुत अँगरेज़ी साहित्य तक है और हम उसी का अवलोकन पत्रों द्वारा करते रहते हैं, अतः हम इस लेख में यह दिखलाने का यत्न करेंगे कि इंग्लिस्तान में शिक्षा-विभाग ने युद्ध से क्या क्या बातें सीखी हैं और उनका परिणाम शिक्षा-पद्धति पर क्या होगा।

वस्तुतः प्रत्येक समाज और जाति, अपनी अपनी शिक्षा का ज्वलन्त प्रमाण हैं। युद्ध का परिणाम केवल हार जीत ही की सूचना नहीं देता, प्रत्युत प्रत्येक युद्ध से विजित और विजेता के जातीय शिक्षा-सम्बन्धी गुण और दोषों का भी पूरा पूरा पता लग जाता है। सार्वदेशिक युद्ध में प्रायः सारी जाति का बल, विद्या, बुद्धि और पराक्रम लगता है, इसीलिये युद्धों में दिखाये हुए गुण और

* बङ्किम बाबू के एक शिक्षाप्रद गल्प के आधार पर लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोष, जातीय गुण और दोष कहे जा सकते हैं। युद्ध के पश्चात् स्वतंत्र और बुद्धिमती जातियाँ, अपने अपने गुण और दोषों का हिसाब करती हैं और अन्त में जो फ़ैसला होता है वह शिक्षा देनेवाले अध्यापकों तथा अन्य अधिकारियों को बतलाया जाता है, यतः वे उन गुण-दोषों के बढ़ाने घटाने का शिक्षा द्वारा प्रयत्न करें। दो वर्ष की लड़ाई से जो गुण दो लड़नेवाले युरोपियनों ने अपने वा शत्रु के अनुभव किये हैं उसपर जरमनी, फ्रांस और इंग्लैंड में आन्दोलन होरहा है और इंग्लैन्ड में तो प्रति सप्ताह शिक्षकों को सूचित करने के लिये टाइम्स में लेख प्रकाशित होते हैं, जो यह बतलाते हैं कि युद्ध के सबकों को दृष्टि में रखते हुये भविष्य के लिये शिक्षा-सम्बन्धी क्या सुधार होना चाहिये ?

इस महायुद्ध में आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक योग्यताओं की परीक्षा हुई है जैसे सदा होता है और इसके परिणाम के अनुसार ही भविष्य जातीय-जीवन के लिये तैयारी करनी होगी। इंग्लिस्तान का इतिहास बतलाता है कि जब आंग्ल देश रूम के अधीन था तब शिक्षा का ढंग दूसरा था, परन्तु राजा अलफ्रेड के समय से डैनिश युद्धों का परिणाम देखकर शिक्षा का ढंग फिर बदला गया। नारमन के हमलों ने शिक्षा पर प्रभाव डाला। राजरानी एलिजेबेथ के समय में भी शिक्षा, यूरोपीय मानसिक तथा धार्मिक विप्लव से, अत्यन्त प्रभावित हुई परन्तु शिक्षाप्रणाली में एक नई ईजाद हुई अथवा उपनिवेशसंबन्धिनी शिक्षा का प्रचार, सामुद्रिक युद्धों का ही परिणाम था। क्रामवेल की लड़ाइयों से अंग्रेज़ जाति ने यह शिक्षा ग्रहण की कि ग़रीब तथा अधम श्रेणियों के मनुष्यों को शिक्षा देने की कैसी आवश्यकता है, और तब ही से कैम्बरिज और आक्सफ़ोर्ड के दरवाज़े सर्व साधारण के लिये खोले गये और शिक्षाप्रणाली का लक्ष ही बहुत कुछ बदल गया। फ्रान्स की क्रान्ति ने जनता के अधिकारों का डंका बजा दिया जिसका प्रभाव इंग्लेन्ड पर यह पड़ा कि वहाँ "रविवारविद्यालय" खोले गये और शिक्षा-प्रणाली में बहुत कुछ परिवर्तन होगया। आमीस की संधि के बाद ही आंग्ल देश में बाध्य शिक्षा (कम्पलसरी इजूकेशन) का बीज बोया गया और कारख़ानों में काम करनेवालों को मालिकों के अत्याचारों से बचाने के नियम बनाये गये। क्रीमियन युद्ध के पश्चात् ही पता लगा कि मध्यम श्रेणी के लोगों को विश्वविद्यालय में भेजने की कितनी आवश्यकता है। क्रीमिया के युद्ध ही ने इँग्लिस्तान में स्त्रीशिक्षा का सरकारी नियम द्वारा प्रचार कराया और आख़िरी बोअर युद्ध ने तो इँग्लिस्तान की शिक्षा-पद्धति को बहुत ही कुछ बदल दिया। कहा जाता है कि ग्रामीणशिक्षा-समिति, और दूसरे दरजे के विद्यालयों का सुधार इसी बोअर युद्ध की बदौलत हुआ है। युद्ध के लिये रंगरूटों का न मिलना और जमादारों के व्यर्थ घूमने ने शिक्षा-विभाग पर वह प्रभाव डाला है कि जिसने इस अन्तर में बृटिश जाति को यहां तक तैयार कर दिया है कि आज वह बाध्य-युद्ध-सेवा के लिये बिना कान हिलाये तैयार होगई। इसी युद्ध ने इस जाति को आँखें खोलीं और दिखलाया कि कारख़ाने में काम करनेवाले बच्चे कैसी दुरवस्था और निर्बलता के शिकार हो रहे हैं। तभी तो १८९९ में विल्यम राबसन ने यह नियम पास कराया कि कारख़ानों में लड़के १२ वर्ष से नीचे काम न करें। और फिर १९०३ में कारख़ाने का नया क़ानून पास हुआ जिसने १४ साल तक के लड़के को पूरा मज़दूर बनाने से रोक दिया, चिल्ड्रन ऐक्ट भी इसी १९०३ में पास हुआ जिसके द्वारा १४ वर्ष के लड़के को मज़दूर बनाने तथा लड़कों पर सौदा बेंचने से रोक दिया गया। बोअर युद्ध ने भली भाँति बतला दिया था कि जाति के बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये और उनको शारीरिक दुर्बलता से बचाने के लिये यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है कि प्रत्येक स्कूल में लड़कों की शारीरिक जाँच मुफ़्त की जाया करे क्योंकि कमज़ोर विद्यार्थी उत्तम सैनिक कदापि नहीं बन सकते, इस युद्ध ने जातीय स्वास्थ्य की आवश्यकता यहाँ तक निश्चय करादी कि १९०६ में एजुकेशन एक्ट ने शिक्षा-विभाग पर यह ज़ोर डाला कि वह निर्धन बच्चों को भोजन भी दिया करै और फिर १९०९ में न्यू मैन की समिति ने शिक्षा-पद्धति को और भी बदल दिया। अब यूरोपियन महाभारत ने फिर दिखला दिया है कि इंग्लिस्तान में स्वास्थ्य की अवस्था अब भी ठीक नहीं हुई, गंदगी और बीमारी ने शहर की कचबच में रहने वालों का पीछा नहीं छोड़ा है और देहात के लड़कों की शिक्षा का प्रबंध संतोषजनक नहीं है और जब तक ये अवस्थायें शिक्षा द्वारा दुरुस्त न की जायेंगी उस समय तक शिक्षाप्रणाली कृतकार्य नहीं समझी जायगी। इँग्लिस्तान में यह आन्दोलन हो रहा है कि बालकों को मज़दूरी करने से सर्वथा रोक दिया जाये और लड़कों को कम से कम १५ वर्ष तक शिक्षा देना बाध्य किया जाना चाहिये। इस समय इंग्लिस्तान में ११ वर्ष तक शिक्षा दी जाती है। अब यह तजवीज़ है कि ११ वर्ष के बाद ४ वर्ष और भी शिक्षा दी जाय और यह शिक्षा केवल कलाकौशल की शिक्षा हो क्योंकि इसी शिक्षा में इंग्लैंड पीछे है और बिना इसके जातीय विकास तथा जातीय दक्षता का स्थिर रहना सर्वथा असंभव है, और यह नियम निश्चित है कि जो जाति अपने को परस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकती वह शनैः शनैः नाश को प्राप्त होजाती है। इंग्लैन्ड उन्नति के शिखर पर है। वहाँ विचार होते ही कार्य होता है। अभी आन्दोलन समाप्त भी नहीं हुआ, नहीं अभी युद्ध समाप्त हुआ है, फिर भी शिक्षाविभाग ने अपनी शैली बदलनी आरंभ करदी है। सबूत के लिये गिल्ड का कैटा भाग साथी है। मैंने उसका १९१६, १७ का प्रास्पेक्टस देखा, यह पिछले प्रास्पेक्टस से कई दरजे बढ़ा चढ़ा है। अब जो विषय के लिये विषय रक्खे गये हैं उनमें कोरी किताबी शिक्षा के बदले सब कुछ क्रियात्मक बनाया गया है। इसीसे पता लगता है कि बुद्धिमान् लोग कैसी जल्दी परवर्तित अवस्थाओं से परिणाम निकाल कर कार्यशैली बदल लेते हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या हमने भी कोई शिक्षा इस महायुद्ध से ग्रहण की? यदि स्वयम् कोई परिणाम नहीं निकाल सके तो क्या दूसरे के सीखे पाठों से कुछ लाभ उठा सकते हैं? क्या हमने भी अपने लिये कोई शिक्षा-संबंधी परिणाम निकाला है? और क्या हम जहाँ तक शिक्षा हमारे हाथ में है उसमें कोई परिवर्तन कर सकते हैं?

महेशचरणसिंह एम. एस-सी.

भरत-बाल्य-क्रीड़ा

था एक अद्भुत महा कमनीय रूप।
दुष्यन्त नामक बली प्रथनीय भूप॥
सौन्दर्य के सदृश था सुकृती प्रतापी।
थी कीर्तिकल्पलतिका कुल विश्वव्यापी॥१॥
था नीति में निपुण धर्मक्रियाधिकारी।
पाली प्रजा विनय से सब थी सुखारी॥
मानो, महेन्द्र जगतीतल में वही था।
अद्वैत कौशल कला बल में वही था॥२॥
था एक काल मृगयार्थ गया नृपाल।
साजे शरासन तथा कर वाल ढाल॥
थे साथ में चतुर चञ्चल अश्ववार।
था भी स्वयं नृप तुरंगम पै सवार॥३॥
जाके विनोद मृगयार्थ वनस्थली में।
घेरे मृगादिक कहीं सबने गली में॥
यूँहीं वहाँ विचरते मृग मारते थे।
शोभा सलील वन बीच निहारते थे॥४॥
देखा मनोज्ञ शुभ आश्रम कण्व जी का।
देवेन्द्र का विभव था सब देख फीका॥
अत्यन्त सुन्दर लतावलि सृष्टि देखी।
साक्षात् सुधा रसमयी शुचि वृष्टि देखी॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

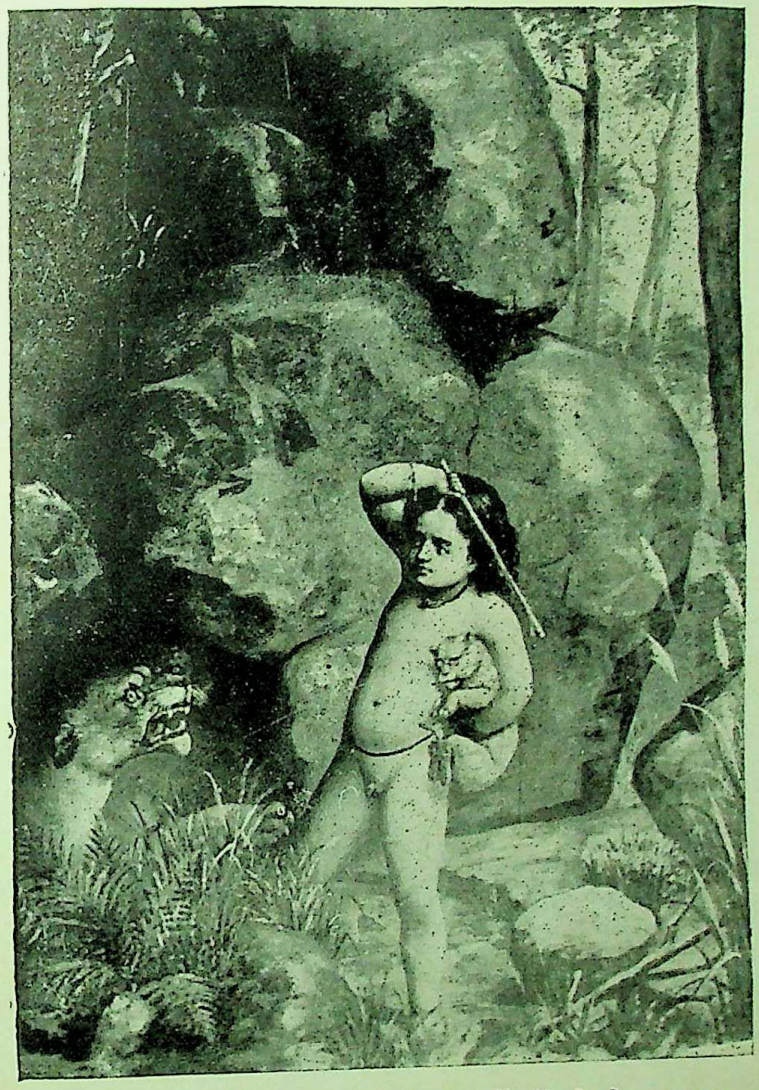

" भरत " यह है जो बचपन में सदा सिंहों से खेला था ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रानना रुचिर चञ्चल चित्त वारी ।
देखी वहां नृपति ने सुकुमार नारी ॥
श्रीकण्व की गुणवती वह थी तनूजा ।
सौन्दर्य राशि विधि ने बहुवार पूजा ॥ ६ ॥
सत्प्रेम उद्भव भरी वह दिव्य जोड़ी ।
थी प्रीतिरीति परिपावन भी न थोड़ी ॥
गन्धर्वरीति अवलम्बन से विवाह ।
था हो गया सकल पूरित चित्तचाह ॥ ७ ॥
कन्या ललाम लहके सुकृती नृपाल ।
सानन्द संगत हुए अतिही निहाल ॥
जाके समोद नगरी निज सौख्य सोये ।
आनन्द के सहित वैभव बीज बोये ॥ ८ ॥
जो चित्र चित्रित विचित्र यहां दिखाता ।
दुष्यन्त का तनय है यह सौख्यदाता ॥
है नामभी भरत भूरि प्रभावशाली ।
है वीरता प्रकट भव्य महा निराली ॥ ९ ॥
ऐश्वर्य वीर्य परिचर्यित आर्यदेश ।
विख्यात है भरत आश्रय से विशेष ॥
है दिव्यदर्शन यही भरताभिधेय ।
सत्कीर्ति भारतभरी सब भांति गेय ॥ १० ॥
झाड़ी घनी सुगिरिगह्वर वृक्ष भारी ।
एकान्त शान्त बनबीच विहारकारी ॥
थे खेलते भरतजी निज बाल्य काल ।
साक्षात् प्रतापइव निर्भय थे त्रिकाल ॥ ११ ॥
देखो प्रतापनिधि का बढ़के प्रताप ।
कैसी रही बदन पै छवि रम्य व्याप ॥
निर्भीकता परमवीर दिखा रहे हैं ।
तेजोनिधान बलदर्प दिखारहे हैं ॥ १२ ॥
सिंही सरोस मुख बाकर देखती है ।
क्या डाकिनी कुटिल कैतव लेखती है ॥
है कक्ष में दब रहा उसका किशोर ।
है क्रोध से दलित शोक किये कठोर ॥ १३ ॥
निस्तब्ध शान्त वन में भरतादिवीर ।
उद्युक्तदृष्टि भयहीन अदम्य धीर ॥
देखा कराल करके कुटिलाग्रदृष्टि ।
थी हो रही नयन से अति क्रोध वृष्टि ॥ १४ ॥
सिंही प्रताप लखके चुप हो रही है ।
उद्दण्डता प्रबलता सब खोरही है ॥
है खीस काढ़ सहमी बल से डरी है ।
है आज संकट उसे दुख से भरी है ॥ १५ ॥
है वीर जन्म कमनीय महानुभाव ।
साक्षात् स्वरूपधर है यह क्या प्रभाव ॥
है सिंह के तनुज के सह खेल खेले ।
निर्भीक नित्य अटते वन में अकेले ॥ १६ ॥
है तीव्र तेज मुखमण्डल भासमान ।
उद्दीप्तदेह अजरामर के सामान ॥
जो तुच्छ जान कर के इस सिंहनी के ।
हैं होगये अटल ग्राहक गाढ़ जी के ॥ १७ ॥
होते प्रताप परिपूर्ण मनुष्य जो हैं ।
वे बाल्य काल गुण गौरव मान मोहैं ॥
जैसे कि बालरवि की किरणें अनेक ।
जाती महोच्च गिरिपै कर कर्म टेक ॥ १८ ॥
उद्दण्ड वीर कमनीय शरीरधारी ।
क्या देरहे ? सदुपदेश सुधारकारी ॥
निर्भीकता सहल हो न डरो किसी को ।
कर्तव्य में रत रहो कर पुष्ट जी को ॥ १९ ॥
वे थे यहीं पर कभी भरतादि बाल ।
हैं स्वप्न के सदृश हाय विशाल काल ॥
होवे कभी भरत के फिर भी समान ।
देवो यही द्रवित हो भगवान दान ॥ २० ॥

"कविकुमार" महेश्वरप्रसाद शास्त्री

बाल

टूटा शिर से प्यारा बाल ।
ठोकर खाता है मिट्टी में पड़ा हुआ बेहाल ।
तैल आदि से जिसे सँवारा सब कुछ चिंता त्याग ।
करी दुर्दशा उसी बाल की अरे ! काल चंडाल ॥
ऊँचा समझा था जिसको वह नीचे आया आज ।
पाकर मानव ! कभी उच्च पद, मती बजाओ गाज ॥
यही मिला आदर्श हमें अब सीखें भली प्रकार ।
धनपति बन कर गर्व न करना बनना है कंगाल ॥
टूटा शिर से प्यारा बाल ॥

'दास'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख

यदपि दुःख तुम यहां न होते
तो क्या सुख का होता भान ?
बिना तुम्हारे कभी न होता,
जग में सुख का कुछ भी मान ॥
तुम्हीं एक निःस्वार्थी होगे,
स्वयम् उठाकर अपना नाम।
अपना यश, गौरव, लय करके,
आते हो औरों के काम ॥ १ ॥
"जगत कसौटी तुम्हीं एक हो",
ना समझे, सम्पद् खोई !
बिना तुम्हारे हुवा न जग में,
बड़ भागी, सज्जन कोई।
यदि आते तुम स्वल्प काल को,
छटा खूब दिखलाते हो।
समय अल्प को कल्प बनाकर,
शिक्षा हमें बताते हो ॥ २ ॥
तुम यदि होते नहीं जगत में,
तो फिर क्यों करता कोइ काम।
बिना तुम्हारे हुवे मित्रवर !
क्या होता जग में कहिं नाम ?
जब, जब, जिसपर तुम आते हो,
उसको करते परम पुनीत।
नीति सिखाकर सबसे उत्तम,
बनते हो तुम उसके मीत ॥ ३ ॥
आवो ! आवो ! और प्रभा अब
भारत जन पर फैलावो।
छटा अनोखी बता, बताकर,
सबको चेताते जावो ॥
बिना तुम्हारे स्वागत के क्या
उन्नति का पथ पायेंगे।
नहीं, नहीं, बस नहीं है उत्तर,
माँखी सम मर जायेंगे ॥ ४ ॥
जिसने तेरा किया अनादर,
वेही नरहैं बड़ जाते।
देश वही, हैं पीछे रहते,
तुझे देख जो घबराते ॥
सुख से प्रथम मान कर तेरा,
जो तुझको अपनाता है।
वही जगत में मान सर्वदा
सब से उत्तम पाता है ॥ ५ ॥
सुख कुछ नहीं फल है तेरा
व्यर्थ हुआ है सुख का नाम।
जो वह नहीं कार्य-कर्ता है,
तो फिर उसका है क्या काम ?
दुख को आता देख, न, मित्रो
मन में अपने घबराना।
सुख से उत्तम मान के इसको
नित प्रति अपनाते जाना ॥ ६ ॥

लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी

तू और मैं

(१)

तू कौन है, मैं कौन हूँ, किस ठौर से आये हुए।
है कौन हम सब का पिता, किस मात के जाये हुए।
ये गूढ़ बाते हैं न कोई, ठीक कह सकता यहां,
जब विश्व त्यागो स्वप्नवत्, ये दृष्टि पड़ती हैं वहां।

(२)

मैं चाहता हूँ विश्व में, होऊँ सदा सबसे बड़ा।
तू चाहता है हो न कोई सामने तेरे खड़ा ॥
अनभिज्ञता की बात है, ये आज दिन हम बोलते।
मानव सभा पीयूष में, हम हैं हलाहल घोलते।

(३)

अब गर्व का पारा हमारा, एक सौ से भी बढ़ा।
विद्वेष का भी रंग मित्रो ! पूर्णतः हम पर चढ़ा।
निज उदर-पोषण, ही हमारा, हाय ! अब कर्तव्य है।
तुम दीन हो तो क्या करें ? तुम पर न मेरा लक्ष्य है।

(४)

अन्याय तो तुम मित्र ! हम पर, हर तरह से कर रहे।
बलवान मारे तब बिचारा, दीन क्या उससे कहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्बलों को दुःख देना, यह कहां तक ठीक है ?
अपने हितू हो को सताना, यह कहां की लीक है ?

(५)

मैं और तू का भेद सबविधि, आज ही से नाश हो।
प्रत्येक का निज भाइयों पर सब तरह निश्वास हो॥
संसार सारा है हमारा, यह सभी का ध्यान हो।
सम्पूर्ण भारत में न "तू" हो और "मैं" का मान हो॥

'दास'

आपत्ति और उसको दूर करने के उपाय

जीवन ऐसा गहन और परिवर्त्तन शील है एवं बाह्य प्रभावों से इतना पीड़ित है कि हम आपत्तियों और परिवर्तनों से बचने की आशा नहीं रख सकते। "चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च" यह नीति का वचन है। जीवन के दुख दो प्रकार के होते हैं। प्रथम तो वे दुख, जो असली हैं और केवल ऐसे ही मालूम होते हैं। दूसरी तरह के दुख परीक्षा, काल्पनिक और तुच्छ और अपने आप बनाये हुये हो सकते हैं। वे या तो दंड हैं या सुख ही दुख रूप में हैं।

प्रायः पीड़ा या तो दंड है या हमको चेतावनी देती है। यदि पीड़ा न होती तो हम प्रायः युवावस्था ही में मृत्यु के मुख में पड़ते। हम सबको कभी न कभी उन दुखों से पीड़ित होना पड़ा है जिनसे हमारा शरीर दुखित और व्यथित हुआ है, क्योंकि ऐसा कहा गया है कि "शरीरं व्याधिमन्दिरम्"। अनेक रीतियों से पीड़ा हमको चैतन्य करती है, और ओषधि लेने के लिये वाध्य करती है। व्यापार में भी छोटी छोटी हानियाँ हमको बुद्धिमानी सिखलाती हैं।

दूसरे दुख, केवल परीक्षा या अवसर मात्र हैं। ये कठिनाइयाँ, जो मूर्खों के लिये केवल आपत्तियाँ हैं, बुद्धिमानों के लिये उन्नति के अवसर हैं। धन और शक्ति भी लालच के कारण हैं। भारत वर्ष के अनेक नृपति गण अतुल धन और शक्ति से ही नाश को प्राप्त हो गये। रावण, दुर्योधन आदि इस बात के प्रमाण हैं। आपत्ति का एक उपयोग मित्रता की परीक्षा है। जो सच्चे मित्र है वे ऐसे समय में हमारा साथ देते हैं। जातीय विषयों में भी आपत्तियाँ लोगों में एकता प्रकट करती हैं, जिसका उदाहरण सिक्खों की वीरता और सहिष्णुता है। रात्रि जितनी ही अन्धकारमय होती है तारे उतने ही अधिक चमकते हैं। शहरों का धुँआँ और कोहरा दिन को अन्धकार युक्त कर देते हैं और उन लोगों के लिये जीवन उदासीनता युक्त बना देते हैं जिन्होंने अपने जीवन को सुखमय बनाना नहीं सीखा है। ये ही उन रम्य सूर्यास्त को बनाते हैं जिनसे प्रकृति के उपासक प्रसन्न होते हैं।

यह संसार ऐसा नहीं है जिसमें मनुष्य आसानी से निराश हो सके। आरम्भ में प्रत्येक कार्य्य में कठिनाइयाँ ही आती हैं। मिस्टर डिज़रेली की प्रथम वक्तृता पार्लियामेन्ट में बिल्कुल ख़राब थी परन्तु उन्होंने ही लगातार परिश्रम और धैर्य से वक्ताओं में बहुत ऊँचा आसन प्राप्त कर लिया। दूसरे दुख केवल काल्पनिक ही हैं या तुच्छ हैं। सबसे कठिन आपित्तियाँ वे हैं जो कभी आती ही नहीं। हम प्रायः अपने को उन बातों से दुखी कर लेते हैं जो यथार्थ में सर्वथा महत्त्व के योग्य नहीं है।

हम बहुत से दुख अपने लिये स्वयम् ही बना लेते हैं। जीवन की असली चिन्तायें और शोक, व्याधियाँ, अपराध और प्रियजनवियोग बहुत ही कम आते हैं। हम उस शीघ्रता, चिन्ता से ही दुखी होते हैं जो हम व्यर्थ अपने ऊपर लेते हैं। दूसरा उपाय जिससे बहुत से मनुष्य जीवन के दुखों को बढ़ा लेते हैं वह उन बातों में हस्तक्षेप करना है जिनसे उनका कोई संबंध नहीं है। एक बुद्धिमान् मनुष्य का कथन है कि बहुत से मनुष्य जो व्यापार में सफल नहीं हुए उसका यही कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि वे एक कमरे में चुपचाप नहीं बैठ सकते थे।

वे कष्ट, जो हमारी ही ग़लतियों से या पाप के दंड से प्राप्त हुये हैं उस श्रेणी के दुख हैं जो हमने ही अपने ऊपर लिये हैं और जिनके लिये हम को दोषारोपण करने का अधिकार नहीं है। दरिद्रता, बीमारी और पीड़ा, जीवन को दुखमय नहीं बनातीं परन्तु अभिमान, लालच, स्वार्थपरता और पाप ही से ऐसा होता है।

अन्त में बहुत से काल्पनिक दुख यथार्थ में सुख के ही भिन्न रूप हैं। यदि शोक, धैर्य के साथ सहन करलिया जाय तो हमको उच्च और उदार आशय का बना देता है। शीत ऋतु की सर्दी और बर्फ़ के समान हमारे शरीर को बल प्रदान करता है। सेनेका Seneca ने कहा है कि झगड़े से दूर होना ही आदर का विषय है परन्तु मूर्ख सदा दूसरों के बीच में व्यर्थ पड़ते हैं। यदि लोगों को तुम नहीं छेड़ोगे तो लोग तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। मनुष्य को कभी निराश नहीं होना चाहिये क्योंकि चाहें जो हो काल की गति तो निरन्तर रहती है, घोर दुख के दिन भी बीत ही जाते हैं।

धनी होकर दरिद्री होने का भय रखने की अपेक्षा बहुत से मनुष्य ग़रीब होना चाहेंगे। यदि उनको धनी होने की आशा हो। यदि आशा से हानि हो तो कायरता से भी ऐसा ही होगा। कभी तो हमको साहसी होना चाहिये और कभी सावधान रहना चाहिये। इसमें कठिनाई इस बात को जानने में है कि कौन सा अवसर प्राप्त हुआ है। यदि सन्देह में हो तो कुछ मत करो। कुछ न करना तो आसान है परन्तु किये हुये को बदलना कठिन है।

सौभाग्य का सहन करना दुर्भाग्य की अपेक्षा कठिन है। आपत्ति को सहन करने में केवल एक ही गुण (धैर्य) की आवश्यकता होती है। परन्तु ऐश्वर्य हमको नाश कर देगा, यदि हममें बुद्धिमानी, सावधानी, स्वार्थशून्यता और दान आदि अनेक गुण न हों। शेक्सपीयर ने लिखा है कि कायर मनुष्य मृत्यु को घोर कष्ट बार बार अनुभव करते हैं परन्तु वीर मनुष्य एक ही बार मृत्यु का अनुभव करते हैं। हमको यह जानने की कोशिश करनी चाहिये कि दुःख सहना और विचलित न होना महत्त्व का विषय है। आपत्ति की भट्ठी मनुष्य को शुद्ध कर देती है और उसके स्वभाव के अच्छे अंश को उस ख़राब अंश से अलग कर देती है जिससे पहिले वह आच्छादित हो गया था।

ब्रह्मदत्त मिश्र, बी. ए.

दमयन्ती का स्वयंवर

[२]

दमयन्ती के मुख से ऐसे मधुर वचन सुन कर नल, सुधा-रस में मज्जित होगया। इसने दमयन्ती के आसन पर तो बैठना उचित न समझा, पर दमयन्ती की प्रार्थना पर इसकी सखी के आसन पर यह बैठ गया। जैसे तैसे मनावेग को थाम कर इसने यूँ कहना प्रारम्भ किया—

दिशाओं के अधिपतियों की सभा से, मैं तुम्हारे ही पास, अतिथि होकर आया हूँ। बस, मेरा आतिथ्य हो चुका, अब और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। बैठ जाओ! आसन क्यों छोड़ दिया? दूत बन कर मैं जिस काम के लिये, तुम्हारे पास आया हूँ उसे ही यदि तुम सफल कर दोगी, तो मैं अपना बहुत बड़ा आतिथ्य समझूँगा। शरीर तो तुम्हारा सुखी है? चित्त तो तुम्हारा प्रसन्न है? हाँ, विलम्ब करने का यह समय नहीं, इसलिये जो कुछ मुझे निवेदन करना है उसे कृपया सावधान होकर सुनो—

जबसे तुम्हारी कुमारावस्था का प्रारम्भ हुआ है तभी से तुम्हारे गुणों ने इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम को, बेतरह अपने वश में कर लिया है। तुम्हारे बाल्य और यौवन की सन्धि से, सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विचार करके, उन दिक्पालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मन, प्रति दिन अधिकाधिक खिन्न हो रहा है। मैं तुम्हारे सामने इन्द्र का क्या हाल बयान करूँ। सूर्य, जिस समय पूर्व-दिशा में उदित होता है उस समय, उसका बिम्ब, चन्द्रमा का जैसा अरुण होता है। तुम्हारे वियोग में वह, सूर्य को भी सदृशता के कारण चन्द्रमा समझ कर, क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं! किस का अपराध और किस पर क्रोध!! पर वह करें क्या? वह तो इस समय, बिलकुल विवेक-हीन हो रहे हैं।

केवल तीन नेत्र-धारी शिव ने, कामदेव के साथ जो सुलूक किया था, उसी को वह, अब तक नहीं सँभाल सका। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि अब सहस्र-नेत्र-धारी इन्द्र, उसपर रुष्ट हो गये तो उस बेचारे की क्या दशा होगी? तुम शायद यह कह सकती हो कि स्वर्ग में क्या कोई ऐसा पण्डित नहीं, जो अपने उपदेश से इन्द्र को धैर्य प्रदान करे। बात तुम्हारी निर्मूल नहीं, पर, उपदेश सुने कौन? मन्मथ महाराज के धन्वा की अविरत टंकार ने उन्हें बहरा बना दिया है। अतएव, बृहस्पति की भी धैर्यविधायक वाणी, सर्वथा व्यर्थ हो रही है।

अग्नि-देव की भी हालत अच्छी नहीं है। उन्हें भी कामदेव ने, तुम्हारा दास बनने की आज्ञा दे दी है। दूसरों को जलाते समय, अब तक, अग्निदेव, यह न जानते थे कि उन बेचारों को जलने में कितनी तकलीफ़ होती है। पर, इस समय, तुम्हारी सहायता से अग्नि को जलाकर, कामदेव, उन्हें यहाँ तक विनीत बना रहा है, कि भविष्यत् में दूसरों को जलाने का उन्हें कदापि साहस न होगा। क्योंकि अब उन्हें स्वयं जलने की तकलीफ़, अच्छी तरह मालूम हो गई है। पौराणिक गाथा है कि शिवजी के तीसरे नेत्र में वास करने वाले अग्नि ने, कामदेव को, एक बार जला कर ख़ाक कर दिया था। यह बात कामदेव को अभी तक नहीं भूली है। अत एव, बदला लेने की इच्छा से, उसने भी, तुम्हारे नेत्रों का सहारा लिया है। उन्हीं के भीतर बैठा हुआ वह, अग्नि को जला रहा है। यद्यपि उसका यह जलाना, बहुत दिनों से जारी है तथापि वह, यही समझ रहा है कि अभी तक उस वैर-भाव का काफ़ी बदला तो नहीं लिया गया है। सोम (चन्द्रमा) से अग्नि, एक प्रकार से कुपित हो रहे हैं। उन्हें अब सोम के नाम ही से कुछ द्वेष सा हो गया है। यतः अब वह, हूयमान सोमलता को पीजाते हैं। यही नहीं, तुम्हारे कारण, कुसुमायुध के बाणों से, अग्नि, यहाँ तक पीडित हो गये हैं कि अपने भक्तों द्वारा चढ़ाये गये, कुसुमों से भी डर कर वह कोसों दूर भागते हैं।

सरोरुहों का सखा सूर्य, जिनसे पुत्रवान् है, और चन्दन के सुवास से सुगन्धित दक्षिण दिशा, जिनकी प्रेयसी है, उन यम ने भी, तुम्हारे निमित्त, स्मराग्निकुण्ड में, अपने धैर्य की आहुति दे डाली है। वह भी इस समय बड़ी विषमावस्था को प्राप्त हो रहे हैं। वरुण महाराज की तो कुछ पूँछो ही नहीं। उन बेचारों ने तो ऐसी घड़ी में तुम्हारे पास मन भेजा है, जिस घड़ी में जाकर मुसाफ़िर फिर घर को लौटता ही नहीं। महासागर, न मालूम कितने दिनों से वडवाग्नि की ज्वाला, सहन करता चला आ रहा है। वह अग्नि उसे विशेष दाहकारक नहीं जान पड़ता। पर अपने ही स्वामी वरुण का, कामाग्नि-सन्तप्त शरीर जल के भीतर धारण करने में वह, इस समय, सर्वथा असमर्थ हो रहा है!!

इस प्रकार, कामदेव ने चारों देवताओं को अन्धा बना रक्खा है। उन्हें, न मालूम कैसे यह मालूम हो गया कि कल तुम्हारा स्वयंवर होने वाला है। यह सुनते ही वे अपने स्थानों से भाग पड़े हैं। भूख, प्यास की भी सारी सुध बुध, उन्होंने भुलादी है। तुमसे निवेदन करने के लिये, उन्होंने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है। कृपया बतलाओ! कि उन्हें अपना मनोरथ सफल करने के लिये, अब कब तक ठहरना पड़ेगा? उन्होंने तुम्हें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने मन के भीतर तो, बहुत दिनों से रख ही लिया है। पर अब वे, अपने वक्षःस्थल को भी तुमसे अलङ्कृत करना चाहते हैं। तुम्हारे हृदय में यदि कुछ भी दया का अंश हो, तो शीघ्र ही स्वर्ग को सुशोभित करो। देर करने का समय नहीं है।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के अनुसार, तुम्हारी यदि अपनी जन्मभूमि भूलोक ही में प्रीति हो, अर्थात् तुम इसी कारण से स्वर्ग-लोक नापसन्द करती हो तो वे लोग, इस भूलोक ही को स्वर्ग बना देंगे। क्योंकि जहाँ देवता रहते हैं वही स्वर्ग है। फिर बतलाओ, क्या करोगी? तुम प्रति दिन, उन देवताओं की पूजा, कमल के फूलों से करती हो, पर वे ऐसी पूजा नहीं चाहते, उन्हें यह पसन्द नहीं। वे तो तुम्हें प्रसन्न करने के लिये, स्वयं ही अपना मस्तक, तुम्हारे सामने झुका रहे हैं। इसलिये प्राकृतिक फूलों से नहीं, अपने चरण-कमलों से, तुम उनकी पूजा करो! मैं चाहता हूँ कि मेरा यह दूत-कार्य सफल करो! और उन चारों में से जिसे जी चाहे एक को वर लो!

नल से देवताओं का सन्देश सुनते समय, दमयन्ती की भौंएँ टेढ़ी और आँखें लाल हो रही थीं। मानो इससे वह, यह जतला रही थी कि देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली अपनी अनिच्छा को साफ़ साफ़ कहकर, प्रगट करने के लिये, मैं उत्सुक हो रही हूँ।

पाठक यहाँ कह सकते हैं कि नल के सन्देश-वाक्य, यदि दमयन्ती को इतने बुरे मालूम होते थे, तो उसने नल को बीच ही में क्यों न रोक दिया? क्यों वह उसकी सारी बातें, अथ से इति तक, कान गलाये ध्यान से सुनती रही?

इसका कारण यह न था कि दमयन्ती, उस सन्देश को कोई गौरव की चीज़ समझती थी, नहीं वह उसकी दृष्टि में नितान्त हीन था। नल को जो उसने बीच ही में न रोका, इसका कारण यह था कि नल के सन्देश-कथन का प्रकार बड़ा ही अच्छा था। उसकी उक्तियाँ और युक्तियाँ, बड़ी ही मनोहारिणी और पेचदार थीं। अतएव, केवल उक्ति श्रवण के लोभ में पड़कर दमयन्ती, नल की बातें सुनती रही, सुना तो इसने सब कुछ परन्तु सुनने का कुछ भी असर इसपर न हुआ। नल के सन्देश को बिलकुलही अनसुना सा करके दमयन्ती यूँ कहने लगी—

दूत जी महराज! मैंने आपसे आपका वंश पूँछा और आपका नाम पूँछा, पर मेरे इन आवश्यक प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न देकर न मालूम आप क्या क्या अनाप शनाप कह गये! मुझे अपने कई प्रश्नों का उत्तर आप से पाना है। अतः इस विषय में आप मेरे ऋणी हैं। आपके लिये, क्या यह लज्जा की बात नहीं? अपना पहिला ऋण न चुका कर, किस नैतिक नियम के अनुसार, आप मुझसे उत्तर रूप में और कुछ चाहते हैं? आपके अमृत-तुल्य वचन सुन कर, निःसन्देह मेरे कान कृतार्थ हो गये, पर आपका और आपके वंश का नाम सुनने की इच्छा, उनकी अब तक शान्त नहीं हुई। उनकी यह श्रवणेच्छा, अब तक वैसी ही बनी हुई है। पानी के प्यासे की प्यास, पानी से ही दूर हो सकती है। घड़ों दूध अथवा सेरों शहद से नहीं। अतः तब न सही अब सही, उनकी इस इच्छा को सफल करने की उदारता दिखाइये। दमयन्ती, यह कह कर चुप हो गई और नल से यूँ कहना प्रारम्भ किया—

मैंने तुम्हारे दोनों प्रश्नों को अनावश्यक समझ उनका उत्तर नहीं दिया। अच्छा वक्ता वही है जो मतलब की बात भी कह दे और अपने कथन को व्यर्थ बढ़ावे भी नहीं। मेरा नाम क्या है और मेरा किस वंश में जन्म हुआ है, यह दोनों बातें ऐसी हैं, जिनका प्रकृत विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। हम दोनों जब एक दूसरे के सामने हैं तो नाम, धाम की क्या ज़रूरत है? इस विषय की बातचीत में पारस्परिक सम्बोधन के लिए, केवल "मैं" और "तुम" यही दो सर्वनाम काफ़ी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा, मान लो, यदि मेरा जन्म, किसी बुरे वंश में हुवा है, तो ऐसी दशा में उसका बतलाना कैसे उचित माना जा सकेगा ? और यदि मेरा वंश उज्ज्वल है तो भी उसका नाम लेना उचित नहीं। यतः ऐसे वंश में जन्म पाकर भी, यहाँ दूत बन कर आना, अपने उज्ज्वल वंश का उपहास करना है। यही समझ कर मैंने, तुम्हारे उन दोनों प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। तुम्हें भी इस मामले में फ़िज़ूल हठ न करना चाहिये। उचित यही है कि देवताओं के सन्देश का उत्तर दो।

अच्छा, तुम्हें यदि इतनी हठ ही है, तो मैं दो शब्द कह कर तुम्हारी इच्छा को पूर्ण ही किये देता हूँ। सुनो—मैं चन्द्रवंशी हूँ। अब तो तुम्हारी हठ पूरी हो गई ! अपना नाम, मैं अपने ही मुँह से नहीं बतला सकता, क्योंकि साधुजन, अपना नाम अपने ही मुँह से नहीं लिया करते। क्या तुम नहीं जानतीं कि स्मृति-कारों ने नियम ही ऐसा बना दिया है*। मेरा जी नहीं चाहता कि मैं, सर्वज्ञ महर्षियों के इस सदाचार का उल्लङ्घन करूँ, यतः सदाचार-भ्रष्ट पुरुष की बड़ी निन्दा होती है।

नल के चुप हो जाने पर दमयन्ती ने कहा—आप चन्द्रवंश के आभरण हैं, यह सुन लेने पर भी मेरा संशय दूर नहीं हुवा। किसी किसी विषय में तो आपने बड़ी बेढ़ब वाग्मिता दिखाई और किसी किसी में बिलकुल ही मौनावलम्बन कर लिया। आपकी यह विलक्षण-नीति मेरी समझ में नहीं आई ! जो कुछ मैं अब तक समझी वह यह है कि आप वञ्चना करने में बड़े चतुर हैं। अच्छी बात है। यदि आप अपना नाम नहीं बतलायेंगे, तो मैं भी आपके कथित सन्देश का उत्तर न दूँगी। पर-पुरुष के साथ, बातचीत करने का कुलाङ्गनाओं को अधिकार ही कहाँ है ? यह भी तो महर्षियों ही का बनाया हुवा नियम है * आप भी इसे जानते हैं या नहीं !!!

नल ने दमयन्ती के इस उत्तर का हृदय से अभिनन्दन किया। मन ही मन में इसने दमयन्ती के भाषण-प्रकार की प्रशंसा की। दमयन्ती की युक्तिभरी उक्तियों को सुन कर यह निरुत्तर हो गया। इसने मुसकरा कर केवल यही कहा कि शहद को भी मात कर देनेवाले ऐसे मीठे वचनों का तुम्हें सचमुच ही, पर-पुरुष के साथ प्रयोग न करना चाहिये।

बात ठीक थी। दमयन्ती के लिये नल, कुछ पर-पुरुष थोड़े ही था !

इसके अनन्तर नल कहने लगा—

दमयन्ति ! तुम मेरे इस इतने बड़े परिश्रम को यूँ ही विफल किये देती हो। चारों में से किसी एक दिक्पाल को अपनी कृपा का पात्र क्यों नहीं बना लेतीं ? अपनी इस मधुर-वाणी से तुम्हें देवताओं ही की उपासना करनी चाहिये। ऐसी रसीली वाणी से यदि तुम देवताओं के सन्देश का उत्तर देतीं, तो मेरे द्वारा कहे जाने पर वह, देवताओं के सारे सन्ताप को ज़रा सी देर में दूर कर देता। तुम्हारे उत्तर की उपेक्षा में मुझे यहाँ जितना अधिक विलम्ब हो रहा है, रुष्ट हुवा रतिपति, उतना ही अधिक, देवताओं को अपने तीव्र बाणों का निशाना बना रहा होगा ! मुझे धिक्कार है, जो दूत का काम करना भी मुझे न आया। यह काम बड़ी जल्दी का था, पर हाय ! इसमें व्यर्थ विलम्ब हो रहा है। इतना कह कर नल के चुप हो जाने पर, दमयन्ती ने मन ही मन में, देवताओं की इस मूर्खता पर बड़ा अफ़सोस

---

* आत्मनाम, गुरोर्नाम, नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः।
इति

* दुर्व्याहृतं, दुर्निरीक्षितं, मन्यतोमन्त्रणं, द्वारदेशावस्थानं, निरीक्षणं वा, निष्कुटेषु मन्त्रणं, विविक्तेषु चिरमवस्थानमिति वर्जयेत्। इति कामसूत्रम्।

नोच्चैर्देन्न पुरुषं न बहून् पत्युरप्रियम्। न केनचिद् विवदेच्च, अप्रजापविलापिनी। इति व्यासम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, जिन्होंने ऐसे सुन्दर पुरुष को एक स्त्री के पास दूत बना कर भेजा। और कुछ मुसकरा कर यूँ कहना प्रारम्भ किया—

आपके साथ व्यर्थ उपहास करना मेरी धृष्टता होगी। बार बार आपके सामने, निषेध-वाक्यों का प्रयोग करने में भी बड़ी बुराई है। और आप की बात का उत्तर न देना, आपका और साथ ही साथ देवताओं का अनादर करना है। अतः विवश होकर मुझे आपकी बातों का उत्तर देना पड़ता है। सुनिये—मैं मनुष्य-जन्म के कलङ्क से कलङ्कित हूँ। अतएव आश्चर्य है जो मेरे विषय में देवताओं के मुँह से ऐसी बात निकली। (हँसते हुवे) पर हाँ, मैं उनकी भक्त हूँ। भक्त पर भक्ति-वात्सल्य के कारण, स्वामी, अपनी प्रसन्नता प्रकट करते ही रहते हैं। अतएव, सम्भवतः दिगीश्वरों को अपनी प्रसन्नता मात्र प्रकट करने का यही एक ज़रिया सूझा हो। पर यह उचित नहीं। सुराङ्गनाओं के सङ्गम से शोभावान् इन्द्र की यह मनोवाञ्छा, कदापि उचित नहीं ठहराई जा सकती। हंसावलि ने जिस सरोवर की शोभा को बढ़ाया है, वह यदि किसी अन्य तुच्छ जलचारिणी चिड़िया की आकांक्षा करे तो उसकी ऐसी नीचातिनीच आकांक्षा, उसकी विडम्बना का कारण हुवे बिना नहीं रह सकती। आप ही बतलाइये, मानवी भी देवाङ्गनाओं के सामने कोई चीज़ है? निर्धन स्त्री के हाथ ही में पीतल के छल्ले कुछ अच्छे मालूम हो सकते हैं, पर धनिकों में पीतल की पूँछ कहाँ? ऐसे ही देवों में मानवी की क्या इज़्ज़त हो सकती है। देवताओं का जो भी और जैसे भी जी चाहे, वे कह सकते हैं, पर मैं उनकी एक भी बात सुनने के लिये बहरी बन रही हूँ। हाथी के विषय में हरिण-कन्या के मन का चलायमान होना बड़ा ही असङ्गत है!

इतना कह कर दमयन्ती ने सिर नीचा कर लिया और एक सखी के कान में कुछ कहा। तब सखी ने नल से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

महाशय! लज्जा और संकोच के कारण दमयन्ती इस विषय में अब और कुछ अधिक नहीं कह सकती। अतएव मेरे हृदय में घुसकर जो कुछ इसने कहा है, उसे आप यह समझते हुवे कि यही कह रही है, मेरे मुख से सुन लीजिये—

बहुत दिन हुवे, मैंने अपना चित्त, निषध-नरेश को दे डाला है। अतएव जिस बात को आप मुझसे चाहते हैं उसे कर सकना तो दूर रहा, उसकी चिन्तना तक करते मुझे डर लगता है। सती साध्वी स्त्रियों की मर्यादा, बड़ी ही कोमल होती है। मृणाल-तन्तु की तरह से ज़रा सा भी झटका लगने से वह टूट जाती है। मैंने स्वप्न में भी कभी नल को छोड़कर और किसी को सुना तक नहीं। देवता तो सर्वज्ञ हैं, फिर वे अपनी समस्त साक्षिणी बुद्धि से ही यह बात क्यों नहीं पूछ लेते? वे तो सदाचार-समुद्र के नाविक समझे जाते हैं। फिर वे, परस्त्री की क्यों इच्छा करते हैं? यह केवल उनका अनुग्रह है जो मुझ मानुषी पर भी वे अनुरक्त हैं। परन्तु यदि उन्हें मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो मुझे नल-प्रदान रूपी भिक्षा देकर ही वे क्यों अपना अनुग्रह प्रकट नहीं करते? सुनिये, मैंने तो यह दृढ़ प्रतिज्ञा करली है कि यदि नल ने किसी कारण से मेरा पाणि-ग्रहण न किया, तो मैं आग में जल कर भस्म हो जाऊँगी या फाँसी लगाकर प्राण छोड़ दूँगी अथवा जल में डूब कर मर जाऊँगा। नल की अप्राप्ति में, मैं अपने शरीर को अपना पूरा शत्रु समझकर उसके सर्वनाश-द्वारा, उसके शत्रु-भाव की समाप्ति किये विना न रहूँगी। आत्म-घात करना अवश्य बुरा है, यह मैं जानती हूँ। पर सती-धर्म की यदि रक्षा हो सके, तो आपत्ति-काल में निषिद्ध आचरण करना भी कुछ अनुचित नहीं। राज-पथ के कर्दम-मय हो जाने पर, बुद्धिमान् पुरुष, क्या अन्य मार्ग से नहीं आते जाते? मैं स्त्री हूँ और मूढ़ा हूँ। देवता पुरुष हैं और वाग्मी हैं। अतः मैं उनकी बातों का समुचित उत्तर देने के लिये, असमर्थ हूँ। आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ पर कृपा करें तो बात बन जाय। मैंने सूत्ररूपेण जो कुछ आपसे निवेदन किया है उसपर एक भाष्य की रचना करके आप उसे देवताओं को सुनायें। देखिये, कहीं काँट छाँट करके उसे और भी संक्षिप्त न बना दीजियेगा!

मधुर-भाषी नल को, यह सुनकर कुछ खिन्न होना पड़ा और इसने यूँ कटुवचन कहने प्रारम्भ किये—

दमयन्ति! मुझे तुम्हारी बातों पर आश्चर्य होता है। देवता, तुम्हें चाहते हैं, और तुम उनसे विमुख हो रही हो! क्या यह भी कहीं सुना है कि निर्धन के घर में निधि घुसने की चेष्टा करे और वह भीतर से किवाड़ बन्द करके उसे बाहर निकाल दे। तुम्हारा व्यवहार, इस समय, ठीक उसी तरह का हो रहा है। परम-सुन्दरी सुराङ्गनाओं के होते हुवे भी सुरेन्द्र का तुम पर अनुराग है। यह जानकर मैं तुम्हारा हृदय से आदर करता हूँ, पर तुम इस विषय में पराङ्मुखी होकर मेरे हार्दिक आदर को नष्ट कर रही हो। एक मानवी, देवता को नहीं चाहती, यह बिलकुल नई बात है। जो आज मैं तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ, यह तुम्हारा दुराग्रह मात्र है। शोक है कि सब प्रकार से तुम्हारा हित चाहनेवाला तुम्हारा पिता भी तुम्हारे इस दुराग्रह-दोष को दूर नहीं कर देता! तुम्हें इस बात का ध्यान न करना चाहिए कि मैं मानवी हूँ और वे देवता हैं, मेरा उनका क्या साथ? क्योंकि देवताओं ही की कृपा से तो मनुष्य, अमरत्व प्राप्त करता है। अतः उनके चाहने पर, तुम्हें अपने को मानवी समझना, तुम्हारा भ्रम है। रसायन से लोहे को सोना बना लेने पर फिर कोई भी उसे लोहा नहीं कहता! तुम तो विदुषी कहलाती हो, अतः सुरेन्द्र को छोड़ कर नल (तृणविशेष) सदृश नल के चाहने में क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? मेरे विचार से तुम उस ऊँट से भी मूर्ख हो, जो रसीले गन्ने को छोड़ कर जाँड खाने की इच्छा करता है। हाय! सारे सुरों के अधीश्वर के मुकाबिले में, तुम एक मनुष्य को अधिक समझ रही हो। इसे भावी की प्रबलता ही कहना चाहिए। देखो तो, इतना चौड़ा, मुँह छोड़ कर श्वासोच्छ्वास, नासिका की राह से आने जाने का श्रम उठाता है। यह भवितव्यता नहीं तो और क्या है?

दूसरे जन्म में जिस सुर-लोक की प्राप्ति के लिये, ऋषि लोग, अपने शरीर को तपस्या रूपी अग्नि में हुत कर देते हैं उस सुरलोक का स्वामी, स्वयं ही तुम्हें इसी जन्म में, अपने यहाँ ले जाने के लिये दीवाना हो रहा है। पर तुम उसकी एक नहीं सुनतीं! तुम्हारी इस मूढ़ता का भी कहीं ठिकाना है? नल के न मिलने पर मर जाने की जो तुमने प्रतिज्ञा की है वह भी तुम्हारी मूर्खता ही का बोधन कराती है। यदि तुम फाँसी लगाकर मर जाओगी, तो तुम्हें कुछ देर अवश्य, अन्तरिक्ष में चक्कर खाना पड़ेगा। अन्तरिक्ष में रहने वाले जीवों के स्वामी इन्द्र हैं। वे तुम्हें वहाँ गया पाकर क्यों छोड़ने लगे हैं? अतएव इस दशा में तुम्हें अवश्य ही उनकी होना पड़ेगा। नल के पाणिग्रहण न करने पर यदि तुम आग में कूदोगी, तो अग्नि पर मानो, तुम्हारी बड़ी दया होगी। चिरकाल से प्रार्थना करने पर भी जो तुम इस समय, उनके लिये दुर्लभ हो रही हो, वह तुम, स्वयं ही उनके लिये प्राप्त हो जाओगी। वह तो चाहते ही यह हैं। और तुम यदि जल में डूब मरोगी, तो वरुण महाराज के सौभाग्य का क्या ठिकाना है। मनमें तो तुम्हें वह, मुद्दत ये धारण कर ही रहे हैं। तुम्हारे बहिर्गत प्राणों को वक्षःस्थल पर धारण करके, वह ऐसी दशा में अवश्य ही कृतार्थ हो जायेंगे।

तुम विदुषी हो, अतएव इन सब परिणामों के बचने के इरादे से, सम्भव है कि कर्पूर-भक्षण आदि और किसी उपाय का अवलम्बन करो, पर वैसा करने से भी तुम्हारा मनोरथ सिद्ध न होगा। किसी भी कारण से हो, मृत्यु के उपरान्त, तुम्हें अवश्य ही यमराज का अतिथि होना पड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव अपने प्रिय अतिथि को स्वयं ही अपने घर आया पाकर, वह अवश्य ही अपना परम सौभाग्य समझेंगे। तुम्हारी पेचदार उक्तियों को, मैं ठीक ठीक नहीं समझ सका। देवताओं के विषय में तुम ने जो निषेधसूचक वाक्य कहे हैं वे कहीं स्वीकार-सूचक तो नहीं!! यतः तुम्हारी बात बात में वक्रता का होना स्वाभाविक ही है। ध्वनि-प्रधान उक्तियों की निषेध-विधि-रूप की बातें प्रसिद्ध ही हैं। और निःसन्देह, विदग्ध नारियों का मुख, उनका ख़ज़ाना है?

दमयन्ति! तुम्हारी सरस्वती के रस-प्रवाह के चक्र में पड़कर मैं कब तक चक्कर खाया करूं!! अपने लज्जा-भाव को ज़रा कम करके साफ़ साफ़ क्यों नहीं कह देतीं कि दिक्पाल को तुम कृतार्थ करना चाहती हो? तुम्हारी यह सीमातिक्रान्त शोभा, दो आँखों से अच्छी तरह, नहीं देखी जा सकती। इसे देखने के लिए, बहुत सी आँखें चाहियें। अतः मेरी राय में तो, सहस्रनेत्रधारी इन्द्र को छोड़कर, और कोई तुम्हारे योग्य वर नहीं। सम्भवतः क्षत्रिय-वंश में जन्म लेने के कारण, अग्निदेव पर तुम अनुरक्त हो। ऐसी दशा में, उस तेजस्वी देवता की प्राप्ति के लिए, तुम्हारा मनोरथ-वती होना भी सर्वथा उचित ही है। तुम धर्मशीला हो, अतएव यदि तुमने, धर्मराज, अपने हृदय के अतिथि बनाये हों तो उनका भी मैं अनुमोदन करता हूँ। यतः योग्य से योग्य का संगम ही अच्छा लगता है। निःसन्देह होकर तुम धर्मराज के साथ विहार करो! वहाँ रहने में एक विशेष लाभ, यह और है कि वहाँ मौत का डर नहीं है।

सिरस के फूलों के सदृश, अपना कोमल शरीर होने के कारण, तुम क्या सारे कोमल पदार्थों के राजा वरुण महाराज को चाहती हो? निशा ने भी इसी निमित्त निशाकर को अपना पति बनाया है। स्वर्ग छोड़कर रमापति भगवान् जिस समुद्र में विहार किया करते हैं, वहीं तुम भी जल के स्वामी वरुण महाराज के साथ विहार करो!

नल के इन वचनों में दमयन्ती के, देवता-सम्बन्धी अनुराग का मिथ्या आरोप था। अतएव यद्यपि वे, सर्वथा विडम्बनीय थे, तथापि नल के उक्ति प्रकार को यह बड़े आदर की चीज़ समझती थी। इस लिये कान सहित अपने एक कपोल को हाथ पर रक्खे हुए, चुपचाप बैठी सुनती रही। खुले हुए एक कान से नल की उक्तियाँ मात्र इसने सुनीं। दूसरे कान को हाथ से ढककर देवता-सम्बन्धी अपने अनुराग की बातें इसने अनसुनी कर दीं। कुछ देर तक सिर नीचा किये हुये, दमयन्ती सोचती रही। तदनन्तर लम्बी साँस लेकर, इसने इस प्रकार करुणारसपूर्ण कहना प्रारम्भ किया—

आपने देवसम्बन्धिनी जो बातें मुझसे कही हैं, सचमुच उन्होंने मेरे लिए सुइयों का काम किया। मेरे पापी कानों को उन्होंने छेदसा डाला। यमराज के तो आप दूत ही ठहरे, अतः आप से और क्या आशा की जा सकती है? आपके मुख से निकले हुए वचन, कीड़ों की तरह से मेरे कान में घुसकर, बुरी तरह मुझे पीड़ा पहुँचा रहे हैं।

इतना कहकर दमयन्ती ने अपनी सखी की तरफ़ को इशारा किया। इशारा पाकर सखी कहने लगी—महोदय! मेरी सखी दमयन्ती, इस समय अपनी एक जिह्वा से लज्जारूपिणी देवी की आराधना कर रही है। अतएव, इसे दृढ़ मौनव्रत धारण करना पड़ा है। इसकी दूसरी जिह्वा आप मुझे समझें, और मुझसे मेरी सखी का उत्तर सुनें! जो कुछ मैं कहती हूँ उसे आप इसी का कहा हुआ समझें। सुनिये—

कल स्वयंवर होनेवाला है। उसमें नल के कण्ठ में वरमाला, पहिनाने का मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। आज का दिन, मेरे इस काम में विघ्न डाल रहा है। यतः मेरे प्राण, कल के पहले से पहले ही निकल जाना चाहते हैं। उनसे एक दिन का विलम्ब भी नहीं सहा जाता। इसलिये कृपया आज आप यहीं ठहर जाइये। आपका दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

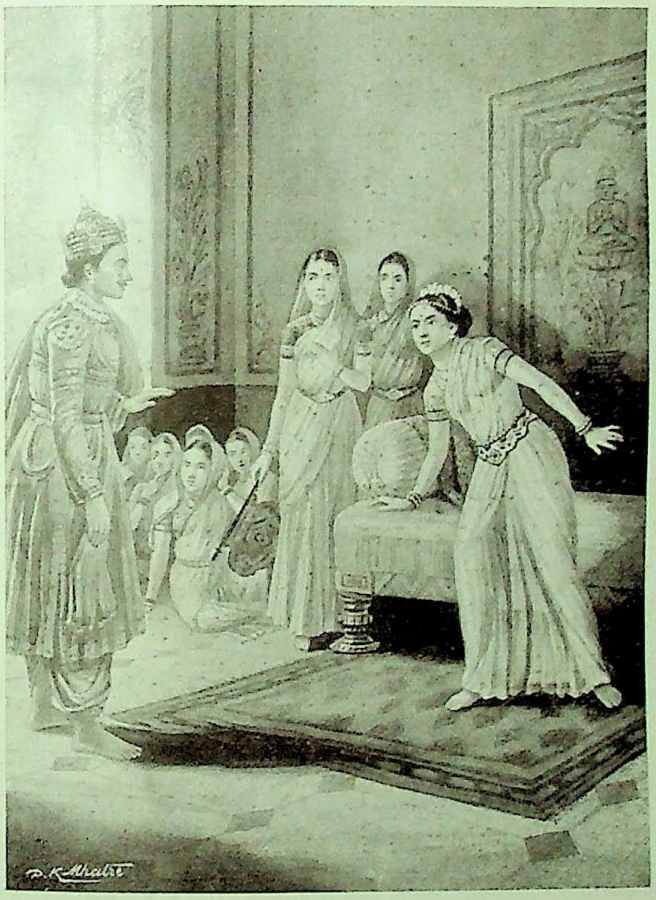

दूतरूपि नल और दमयन्ती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए मैं इस एक दिन को व्यतीत कर लूँगी। कारण यह है कि उस हंस ने अपने नाखूनों से, मेरे प्राणनाथ का जो चित्र खींचा था वह आप से मिलता जुलता है। निःसन्देह आपका रूप भी वैसा ही है। यही नहीं, यहाँ ठहरने में आपका भी फ़ायदा है। आपकी आँखें, आपके मुख की शोभा देखने में असमर्थ हैं। ब्रह्मा ने उन बेचारियों को उस शोभा के देखने से वञ्चित रक्खा है। अपना मुँह, अपनी ही आँखों से नहीं दीखा करता। अतः आप यदि ठहर जायँगे, तो कल आपकी आँखें अपने मुख की शोभा को नल के मुख पर देख कर अपना जन्म सफल कर लेंगी।

एक और बात है। मेरे पाणिग्रहण के समय, अग्नि देव तो वहाँ, साक्ष्यरूप से होंगे ही, अतः उनके सामने ही, प्राणनाथ नल से आप मैत्री भी कर लें। यह बड़ा अच्छा अवसर है। अग्नि के साक्ष्य में मैत्री करना बड़ा प्रशस्य बतलाया जाता है। हाय! समान रूप सौन्दर्य और वंश वाले पुरुष से भी आप मैत्री करना नहीं चाहते!! मैं हाथ जोड़ती हूँ। देवसम्बन्धिनी बातें करके अब आप मुझे और अधिक न सतायें। अब आप प्रसन्न हूजिये। और मैं आपकी प्रसन्नता इसी को समझूँगी कि इस विषय में आप कुछ भी बात न करें। देखिये, मेरी आँखों में लबालब आँसू भर रहे हैं। नल के सदृश रूपलावण्य होने पर भी आपको जब मैं पर-पुरुष होने के कारण, कटाक्ष-पूर्ण दृष्टि से नहीं देखती, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि मैं देवताओं को वर लूँ! जैसा कि मैं पहिले कह चुकी हूँ, मेरा निश्चय यह है कि मैं नल ही के साथ विवाह करूँ। अन्य के साथ नहीं। किसी भी कारण से नल के साथ विवाह न हो सकने पर, मैं सारी उम्र, पतिव्रता-व्रतरूपी अग्नि में अपने प्राण, फेंकने को, तृणवत् समझने के लिए तैयार बैठी हूँ। आप कहेंगे कि कामदेव बड़ा प्रबल है, कैसे तुमसे किसी के साथ विवाह किये विना, रहा जायगा? सुनिये, मेरी दृष्टि में कामदेव कुछ प्रबल नहीं। मैं उसे कुछ भी नहीं समझती। यतः वह बेचारा तो मुद्दत हुई, जल कर ख़ाक हो चुका है।

नल ने, दमयन्ती की ऐसी सुधामयी वाणी सुनकर, अपने आपको बहुत धिक्कारा। दमयन्ती ने तो इसे यमराज-दूत ही बनाया था, पर इसने अपने को सचमुच यमराज ही समझा। दमयन्ती की करुणोक्तियाँ सुनकर इनका हृदय बुरी तरह विदीर्ण हो गया था सही, पर इसने अपने दूत-धर्म से विरत होना उचित न समझा, भीतर ही भीतर ठंडी साँस लेकर, सहज सहज इसने यूँ कहना प्रारम्भ किया—

इन्द्र के आँगन ही में कल्पवृक्ष खड़ा है। अतः उन्हीं का उस पर पूर्णतया अधिकार है। उससे ही इन्द्र यदि कभी याचना कर बैठें कि तुम हमारे लिये दमयन्ती को लादो! तो तुम कैसे इन्द्र की प्रियतमा होने से बच सकोगी? कल्पवृक्ष से की गई याचना, कभी व्यर्थ नहीं हुआ करती।

अग्निदेव, तुम्हारे पाने की इच्छा से यदि सार्वकामिक यज्ञ करें, और अपनी ही आहवनीयादि मूर्त्तियों में हविष्य हवन करना प्रारम्भ कर दें, तो क्या होगा? अवश्य तुम्हें अग्नि की प्राणेश्वरी होना पड़ेगा। यह न समझना कि यह सब पोपलीला है, यतः वैदिक विधि कभी मिथ्या नहीं हो सकती!

दक्षिण दिशा में यमराज ही का राज्य है। उन्हीं के राज्य में महामुनि अगस्त्य रहते हैं। यदि उनसे यमराज, यह कह दें कि इस बार मैं तुमसे, अपना नियत कर नहीं चाहता, उसके बदले में तुम मुझे दमयन्ती को लादो, तो बतलाओ, तुम्हारी क्या दशा होगी?

वरुण महाराज के आश्रम में, यज्ञ के लिये, असंख्य कामधेनु गायें, निवास करती हैं। यदि वे उनमें से एक से भी तुम्हें पाने की याचना करें। तो तुम्हें उनके हस्तगत होने में कितनी देर लग सकती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा, ज़रा देर के लिये मान लो, कि यह सब कुछ न होगा, न सही! तुम जानती हो, कि इन्द्राणी के सान्निध्य के विना, स्वयंवर निर्विघ्न समाप्त नहीं हो सकता, अतएव यदि अपने पति इन्द्रदेव की आज्ञा से इन्द्राणी, तुम्हारे स्वयंवर में न आये, और उपस्थित राजाओं में विघ्न रूप युद्ध छिड़ जाय, तो क्या होगा ??? क्या तुम स्वयंवर के बहाने से राजाओं का युद्ध देखना चाहती हो? और यदि साक्षिकरण समय में, बहुत फूँकें मारने पर भी अग्नि न जले, या नल के साथ, पाणिग्रहण संस्कार होने से पहिले, यमराज, तुम्हारे या नल के किसी कुटुम्बी को मारदें, तो पातक हो जाने के कारण, बना बनाया भी स्वयंवर का सारा सामान बिगड़ जायगा!! विना जल के, दान का संकल्प नहीं होता, अतः कन्यादान के समय, वरुण महाराज ही यदि जल की धारा को रोक दें, तो कैसे तुम्हारे पिता, तुम्हें, नल को दे सकेंगे, ? यही नहीं, विघ्न करने के लिये, देवताओं के उतारू होने पर किस पुरुष की शक्ति है, जो हाथ में आई चीज़ को भी अपना सके! दमयन्ति! मैंने तुम्हारे हित के लिये, यह सब कुछ कहा है, मोह को त्याग कर अच्छी तरह सोच समझ लो कि किसमें तुम्हारा श्रेय है?

(असमाप्त)

राजर्षि जनक का पत्र

(महाराज दशरथ के नाम)

(१)

जयजय हे रघुवंश-मुकुट-मणि, सूरजकुलसिरताज!
जय गुणआगर, करुणासागर, श्रीदशरथ महराज!

(२)

मेरी प्रभुवर! विनती सुनिए, है कर जोर प्रणाम।
मुनि कौशिक सँग जनकपुरी में आये लछमन राम॥

(३)

रच्यो स्वयंवर देश देश के भूप बुलाय महान।
शम्भु-धनुष को जो तोड़े सोइ पावे कन्या दान॥

(४)

रामचन्द्र भंज्यो शंकर-धनु हँसिके छिन में नाथ।
भये सुखारी सब नर-नारी, मिथिला भई सनाथ॥

(५)

अमरभयो तव नाम नृपतिवर! रहि क्षत्रिनकी लाज।
तिहूँ लोक में सुयश भयो मम पूर्ण हुयो प्रण आज॥

(६)

सीता तब जयमाल राम के गल में दीनो डार।
हरषे सज्जन बिलखे दुर्जन भइ जग जयजयकार॥

(७)

मणि-माणिक, चन्दा-चकोर, विधि दीनो मेल मिलाय।
सरिता-सिन्धु, हंस-मुक्ताफल, भागहिं लीनों पाय॥

(८)

अब प्रभु! कृपा करो मिथिला पर, वेगि पधारो आय।
पलपल छिनछिन तुम विन भारी सज्जनमन अकुलाय॥

(९)

श्रोत्रिय वैदिक ब्राह्मण गण के बीच होय उद्वाह।
तीनों जग में जस सुभ फैले, लोग कहें वाह! वाह॥

(१०)

मेरी कीरति मान भुवन में होय, महामतिमान।
कहाँ सुन्दर वर श्रीरघुवर से, कहां आप महमान!

(११)

आओ, आओ, शीघ्र पधारो, कृपा करो भगवान।
सेवा अंगीकार करो, हो, पूरी मेरी आन॥

श्रीमूलचन्द्र शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में युद्ध-विद्या

वैदिक सूक्तों में, बहुत से युद्धों की चर्चा मिलती है। उनके देखने से पुराकालीन आर्यों की युद्धविद्या का ख़ासा परिचय मिल जाता है। उस समय के लड़ाके क्या क्या अस्त्र शस्त्र प्रयोग करते थे इस बात का भी पता उनके देखने से लगता है। निम्नोद्धृत सूक्त युद्धविद्याविषयक बहुत से तत्त्वों का द्योतक और मनोरम है, इसी कारण से मनोरमा के प्रिय पाठकों को भेट किया जाता है—

वर्म

"जीमूतस्येव भवति प्रतीकं, यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

संग्राम के लिये जिस समय, योद्धा या राजा, कवच धारण करके, मैदान में जाता है तो इसका रूप मेघ के समान दीख पड़ता है। हे राजन्! तू शत्रुओं से अक्षतदेह रहकर उनका नाश कर। तेरे कवच की महिमा तेरी रक्षा करे।

धनुः

"धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो* जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

हम अपने धनुष के द्वारा शत्रुओं की पृथिवी, संग्राम, और तीव्र शत्रुसेना को जीत जायँ, धनुष शत्रुओं की इच्छाओं का नाश करे, और धनुष से ही हम सब दिशाओं को जीत लें।

ज्या

"वक्षयन्ती † वेदा गनीगन्ति कर्णम् प्रियं सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥

संग्राम में पार पाड़नेवाली, धनुष पर विस्तृत यह ज्या, पति-आलिंगन करती हुई स्त्री की भाँति इषु का परिष्वङ्ग कर, योद्धा के कान के पास आ मानों प्रिय समाचार सुनाती है और फिर शब्द करती है।

धनुष्कोटि

* "ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥

जिस प्रकार समनस्का स्त्री पति को, और माता पुत्र को नहीं छोड़तीं, उसी भाँति धनुष्कोटि संग्राम के उपस्थान में योद्धा की रक्षा करें। और विसंवाद रहित होकर, अमित्रों का हनन करती हुई शत्रुओं को बींध डालें।

इषुधि

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चरवा कृणोति समनावगत्य। † इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥

इषुधि बहुत से बाणों का पिता होता है। (यह बाणों की रक्षा करता है अतः पिता कहलाता है) इषुधि के (इषुरूप) बहुत पुत्र होते हैं। संग्राम में बाणों को निकालते समय, इषुधि 'चिश्चा' शब्द करता है, और योद्धा के पीठ में बंधा रह, बाण दे, शब्द करती हुई शत्रुसेना को जीत लेता है।

सारथि और रथरश्मि

‡ "रथेतिष्ठन्नयति वाजिनः, पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः। अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

---

* निरुक्तम् ९।१८। 'समदः', समदो वात्तेः, संमदो वा मदतेरिति।

† नि० ९।१८ यास्कः—वक्षयन्तीवागच्छति कर्णं प्रियमिव सखायमिषुं परिष्वजमाना योषेव शिङ्क्ते शब्दं करोति वितताधि धनुषि ज्येयं समने संग्रामे पारयन्ती पारं नयन्तीति।

* नि० ९।३९। यास्कः—ते आचरन्ती समनसाविव योषे मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थ उपस्थाने परिध्यतां शत्रून् संविदाने आर्त्न्याविमे विघ्नवत्यावमित्रानिति।

† नि० ९।१३। यास्कः—'इषुधि' रिषूणान्निधानमिति।

‡ नि० ९।१६। यास्कः—रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरस्तात् सतो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः कल्याणसारथिरभीशूनां महिमानं पूजयत मनः पश्चात्सतोऽनुपयच्छन्ति रश्मय इति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारथिप्रवर, रथ पर बैठ कर, अपने पुरोवर्ती अश्वों को जिस ओर चलाना चाहता है, ले जाता है।

हे सज्जनो, घोड़ों की पीठ पर रहने वाली उन रश्मियों या लगाम की स्तुति करो जिनकी बदौलत सारथि, घोड़ों को यथेच्छ चला सकता है।

अश्व

"तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वारथेभिः सह वाजयन्तः। अत्र क्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूंरनपव्ययन्तः॥ ७॥

खुरों से धूल उड़ाते हुए और रथों के साथ तेज़ी दिखलाते हुए घोड़े, तीव्रघोष करते हैं, और रण से न भागकर शत्रुओं को दल कर मारते हैं।

रथ

"रथवाहनं हविरस्य नाम, यत्रायुधं निहितमस्य वर्म। तत्रारथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः॥८॥

जिस रथ में योद्धा के शरादिक और कवच रखे रहते हैं, वह रथरूप वाहन अथवा शत्रुओं को जीत कर उस द्वारा वाह्यमान धन अग्नि के हविकी भाँति वर्धक होता है। प्रसन्न मन होकर उस रथ का सर्वदा उपगमन करते हैं।

रथरक्षक

"स्वादुषं सदः पितरो वयोधाः, कृच्छ्रे श्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुबला अमृध्राः, * सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥ ९॥

"ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः † शिवे नोद्यावापृथिवी अनेहसा। पूषा नः पातु दुरिता हतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥ १०॥

रथ के पालन करनेवाले शत्रुओं के अन्न का क्षय करते हैं, दूसरों को अन्न देते हैं, आपत्काल में वे मनुष्यों से सेवित रहते हैं। वे, शक्ति और आयुधों से युक्त, दर्शनीय सेना से युक्त, बाण-धनु, अहिंस्य और प्राप्तवीर्य होते हैं।

हे सत्य की वृद्धि करने वाले, सोम के सम्पादन करने वाले ब्राह्मणो! और पितरो! हमारी रक्षा करो। निष्पाप आकाश और धरित्री, हमें सुखी रखें। पूषा देवता भी हमें दुष्कर्मों से बचावे। हमारा निन्दक शत्रु भी समर्थ न हो।

इषु

"सुपर्णवस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धः पतति प्रसूता। यत्रानरः संचविच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन्॥ ११॥

यह इषु सुन्दर शरों को धारण करती है, इसका अग्र भाग मृगशृङ्ग होता है (अथवा शत्रुओं को ढूँढ़ता है) और स्नायुओं से या ज्या से भली भाँति बाँध कर चलाई जाती है। जिस युद्ध में मनुष्य इकट्ठे या अलग अलग घूम रहे हैं, वहाँ इषु हमारा कल्याण करें।

"ऋजीते परिवृङ्घिनो अश्मा भवतु नस्तनूः। सोमो अधिब्रवीतु नो अदितिः शर्म यच्छतु॥१२॥

हे इषो! हमारी चहुँओर से वृद्धि कर। हमारा शरीर पत्थर के समान दृढ़ होवे। सोम हमारे लिये पक्षपात से बोले, और अदिति सुख दे।

अश्वकशा

*"आजङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसो, श्वान्त्सनत्सु चोदय॥ १३॥

हे अश्व के चलानेवाली कशे, जिस तेरे साहाय्य से प्रकृष्टज्ञान सारथि अश्वों के उरु और जघन स्थलों का ताड़न करते हैं, वह तू संग्राम में अश्वों को प्रेरित कर।

---

* नि० ३। २०। यास्कः—निरः सत इति प्राप्तस्य निरस्तीर्णम्भवति सतः संसृतम्भवति।

† नि० ११।१८। यास्कः—सोम्याः, सोमसम्पादिन [illegible]

* नि० ९। २०। यास्कः—आघ्नन्ति सान्वेषां सरसानि सक्थीनि, सक्थि सचतेरासक्तेऽस्मिन् [illegible] जघनानि चोपघ्नन्ति जघनं जघन्यतेरश्वाजनि प्रचेतसो [illegible] समत्सु समरणेषु संग्रामेषु चोदयेति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तघ्न (हस्तत्राण)*

† अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं, ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वतः ॥ १४ ॥

हस्तघ्न, ज्या के कारण से हुई हिंसा को निवारण करता हुआ, सर्प की भाँति पहुँचे को ढाँप देता है। और संपूर्ण ज्ञातव्य विषयों को जानता हुआ यह पुरुषार्थी योद्धा की चारों ओर से रक्षा करता है।

इषु

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्यर्यो यस्या अयोमुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥

जो इषु ज़हर बुझी हुई है, जिसका शिरोभाग कुमय है, और जिसका मुख अयोमय है; उस पर्जन्यकार्यभूता (शरकाण्ड पजन्य कार्य है) बृहती इषु देवी के लिये यह नमस्कार किया जाता है।

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्म संशिते।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कंचनोच्छिषः ॥ १६ ॥

हे मन्त्र से पैनाई हुई हिंसाकुशले! इषो! तू फेंकने पर इस स्थान से दूर चली जा, शत्रुओं के पास पहुँच कर एक एक को बीन ले। किसी को बाक़ी न छोड़।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु, विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

जिस युद्ध में बाण मुण्डित कुमारों की तरह गिरते हैं, वहाँ ब्रह्मणस्पति सदा हमें सुख दे और अदिति भी सुख दे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृते नानुवस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानुदेवा मदन्तु ॥ १८ ॥

हे योद्धः, तेरे मर्म स्थलों को वर्म से ढाँपता हूँ। अनन्तर सोम तुझे अमृत से आच्छादित करे और वरुण भी तुझे भारी सुख दे। देवता तुझे विजयी देख, साथ साथ प्रसन्न हों।

यो नः स्वो अरणो यश्चे निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥

जो मेरा स्वजन रममाण नहीं है, और जो दूर स्थित होकर हमें मारना चाहता है, सब देवता उसकी हिंसा करें। मन्त्र और शरों का निवारण करनेवाला मेरा वर्म है। ऋक् संहिता ६.७५।

गृह्य सूत्रकारों ने इस सूक्त के सबका तो नहीं, पर कुछ मन्त्रों का इस प्रकार विनियोग बतलाया है—

संग्राम उपस्थित होने पर पुरोहित राजा को "आत्वाहार्षमन्तरेधि....." (ऋग्वेद १०, १७३, १)* इस मन्त्र से युद्ध के लिये तय्यार करे। पीछे रथ स्यावस्थाय सूक्त के पहले मन्त्र से राजा को कवच, दूसरे से धनुष देकर, तीसरा पढ़े और चौथा स्वयं जपे। पाँचवें से उसे इषुधि प्रदान करे, और यथेष्ट दिशा की ओर रथ हँक जाने पर छठा मन्त्र जपे। सातवें से अश्वों को अनुमन्त्रित करे। आठवें को बाणों के देखते हुए राजा से पढ़वावे। चौदहवें को तल या हस्तघ्न

---

* "हस्तसमीपवर्त्तिनि प्रकोष्ठे स्थितः सन् ज्यया हन्यत इति हस्तघ्नः" इति सायणः। अस्यैव तलमित्यपरं नाम। आश्व० गृ० सू० ३। १२। २२।

† नि० ९।१५। यास्कः—अहिरिव भोगैः परिवेष्टयति बाहुं ज्याया वधात्परित्रायमाणो हस्तघ्नः सर्वाणि प्रज्ञानानि प्रजानन् पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वेति।

* इसका अर्थ यह है—हे राजन्, मैं तुझे (अपने राष्ट्र का स्वामी बनाने के लिये) लाया हूँ। सो तू हमारा स्वामी बन, ध्रुव हो, अर्थात् चञ्चलता को सर्व था त्याग कर राज्य-भार सँभाल, सब प्रजा तुमसे प्रसन्न हो। तेरे हाथों से राज्य नष्ट न हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँधते समय पढ़े।.....सोलहवें से राजा बाण छोड़े। जब योद्धा घमासान युद्ध करने लगें तब पुरोहित १७वें को स्वयं जपे, अथवा राजा से कहलावे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र में ३।२१।१—११;—१८-१९. आठवें मन्त्र के लिये लिखा है कि इसका अध्यायोपाकरण विसर्जन और मण्डलान्त्यहोम में विनियोग किया जाता है।

ऐसे ही ऐसे अनेक सूक्त वेदों में युद्धविद्या के द्योतक गवेषणा करने पर मिल सकते हैं, और उनके द्वारा वैदिक-युग के युद्ध विद्या के उपाकरणों और तत्कालीन प्रजा की सामरिक प्रवृत्ति का पता चल सकता है। ऐसे ही सूक्तों में से यह एक है।

उस समय जब कि देश भर में युद्ध की ही चर्चा ज़ोर मार रही है, तत्सम्बन्धी वैदिक सूक्त के पाठ से पाठकों का मनोरञ्जन और अभिज्ञता प्राप्त होना बहुत कुछ सम्भव है।

—श्रीहरिहरसुरूप शर्मा

विविध विषय

१—एक संस्कृतज्ञ युरोपियन का मान।

मिस्टर मेकडानल वोडन, आक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत के अध्यापक हैं। अभी हाल ही में आपको "केम्बल गोल्ड मेडल" मिला है। इस मेडल को स्वर्गीय "सर जेम्स मेकनेब केम्बल" ने उस विद्वान् को देना स्थिर किया था जो भारतीय कथा, कहानी और इतिहास आदि पर कोई नई पुस्तक लिखे। हरतीसरे साल, रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई शाखा की ओर से यह मेडल दिया जाता है।

यह समाचार सुनाते हुए, सहयोगी "जयाजी प्रताप" लिखता है—

"यूरोपीय विद्वान् तो परिश्रम करके हमारी देववाणी का अध्ययन करें और उस भाषा की उत्तम उत्तम पुस्तकों का अपनी मातृभाषा में अनुवाद करें, उसपर अनेक उपयोगी ग्रन्थ लिखें परन्तु जिनकी यह भाषा सर्वस्व है वे इसे पढ़ना और अध्ययन करना तो दूर रहा इस ओर आँख उठाकर भी न देखें कि उसकी क्या दशा होरही है। यूरोपियन लोगों की विद्यारसिकता और विद्याप्रेम का यह एक उज्ज्वल उदाहरण है कि वे विदेशीय प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं को अध्ययन करके हमारे लिये नई नई बातें खोज निकालते हैं।"

सहयोगी का भारतीयों के लिये यह उपालम्भ उचित है, पर सहयोगी को कदाचित् यह मालूम नहीं कि भारत के राजा और रईस संस्कृत के लिये क्या कर रहे हैं? वे संस्कृतज्ञों का मान करके उनका कितना उत्साह बढ़ा रहे हैं? जिस समाज के सामने रोटियों का कठिन प्रश्न उपस्थित है वह क्या कर सकता है, यह ध्यान देने की बात है।

*

२—हिन्दी-भाषा, राष्ट्र-भाषा है।

हिन्दी-भाषा, राष्ट्र-भाषा है। वह प्रान्तिकभाषा नहीं। यह सिद्धान्त अब दिन प्रतिदिन पुष्ट होता जाता है। शायद ही ऐसी कोई भाषा हो, जिसमें तुलसी, सूर की मनोहर कृतियों का अनुवाद न हुआ हो। अभी गत वर्ष बंगाल के महाकवि रवीन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ ठाकुर ने कबीर साहब के शब्दों का इँगलिश में एक प्रशस्य अनुवाद किया है। और तो और संस्कृत, जिसकी हिन्दी आत्मजा बतलाई जाती है, में भी हिन्दीलेखों के अनुवाद होने लगे हैं। माघ की 'मनोरमा' और चैत्र की 'शारदा' देखने से यह बात स्पष्ट होजाती है। हिन्दी का साहित्य अभी यथेच्छ उन्नत नहीं हुआ है, इसी लिये उसमें बहुधा उपन्यास, बंगला आदि से अनूदित किये जाते हैं, पर अब यह बात भी कम होती जाती है। हिन्दी में भी अब स्वतन्त्र उपन्यास लिखे जाने लगे हैं।

यह सब कुछ होने पर भी शोक है कि अदालतों में हिन्दी का जैसा प्रचार होना चाहिये वैसा नहीं हुवा। इस बात के दोषी, लीडर कहलाने वाले लीडर ठहराये जासकते हैं, जिन्हें इस दीना हीना हिन्दी का केवल वाचनिक ही ध्यान है। लीडर समुदाय दिल से चाहे तो इस विषय में बहुत कुछ उन्नति होसकती है। देखें, कहना और करना कब बराबर समझा जाता है।

*

३—रघुवंशीय राजमुकुट और राजसिंहासन।

"मनोरमा" की किसी पहली ध्वनि में इस बात का उल्लेख हो चुका है कि श्रीमान् अलवर-नरेश, हिन्दी और संस्कृत के कितने प्रेमी हैं। अब आप यह मालूम करना चाहते हैं कि रघुवंशीय पूर्वज राजाओं के राजमुकुट और राजसिंहासन किस नमूने के होते थे। एतदर्थ राज की तरफ़ से इस विषय का अनुसन्धान करने के लिये एक डेपुटेशन भी रवाना हुआ है। डेपुटेशन के अध्यक्ष अलवर राज्य के ताज़ीमी सरदार मुंशी जगमोहनलाल हैं। कई पंडित भी आपके साथ हैं। शोक है कि डेपुटेशन से अभी तक कहीं से संतोषप्रद उत्तर नहीं मिला है। जो महाशय, इस विषय में कोई उपयोगी बात बतलायेंगे, उनका उचित सत्कार भी किया जायगा।

भारत के विद्वानों से हम इस बात का अनुरोध करते हैं कि इस विषय पर वह अपनी अपनी सम्मति लिखें। मनोरमा उनका सहर्ष प्रकाशन करने के लिये तैयार है।

*

४—"रायबहादुर" नहीं "रायसाहब"

सातवीं ध्वनि में लिखा गया था कि हितकारिणी के सुयोग्य संपादक पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी "रायबहादुर" बनाये गये हैं। इसमें भ्रम हुआ। आप "रायबहादुर" नहीं "रायसाहब" बनाये गये हैं। ईश्वर करे हमारा यह भ्रम, भविष्य वाणी हो और आप "रायबहादुर" बनाये जायें। पाठकों को वहाँ कृपया ठीक कर लेना चाहिये।

*

५—मनोरमा का क्रम-परिवर्तन।

(चैत्र से वर्षारम्भ)

सब को मालूम है कि काग़ज़ की गरानी के कारण भारत ही में नहीं, इंग्लेंड में भी सैकड़ों पत्रों को बन्द होना पड़ा है। यह सुनकर अवश्य पाठकों को सन्ताप होगा कि 'सरस्वती से टक्कर लेनेवाली' काशी की नवजात "तरङ्गिणी" ने अपना एक वर्ष पूरा करके, कुछ दिनों के लिये विश्राम ले लिया है। एक "तरङ्गिणी" ही नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कई पत्र, पत्रिकायें, बन्द हो गई हैं। कई साप्ताहिक, पाक्षिक हो गये हैं।

"मनोरमा" माघ तक बराबर समय पर निकलती रही। माघ ही में इसने एक नहीं कई ऐसे अनिवार्य कारणों से टक्करें खाईं, जिससे इसे एकदम कई महीने के लिए रुक जाना पड़ा। इसी कारण से फाल्गुन की ध्वनि कहीं ज्येष्ठ में निकल सकी। हमारा विचार था कि हम आश्विन तक ४ महीने में ८ ध्वनियाँ जल्दी जल्दी निकाल सकेंगे। पर यह विचार निरा विचार ही रहा, ख़ैर जैसे तैसे ३ ध्वनियाँ एकदम यके बाद दीगरे निकाली गईं। श्रावण में कहीं जाकर वैशाख की ध्वनि निकली। ऐसी दशा में इसकी आश्विन तक १२ ध्वनियाँ पूरा कर देना असम्भव जान पड़ा। अतः यह निश्चय किया गया है कि चैत्र से मनोरमा का दूसरा वर्षारम्भ किया जाय, अर्थात् फाल्गुन तक १२ ध्वनियाँ, पाठकों, ग्राहकों और सहयोगियों की सेवा में पहुँच जायेंगी। आशा है कि आप लोगों को यह बात न खलेगी। विवशतया ही ऐसा किया गया है। अन्यथा—

सदाए लनतरानी सुनके अय इक़बाल! मैं चुप हूँ,
तक़ाज़ों की कहाँ ताक़त है मुझ फ़ुरक़त के मारे में।

*

६—सर जेम्स म्यस्टन का पत्र।

राजभक्ति का परिचय, सातवीं ध्वनि में पाठक प्राप्त कर चुके हैं। महामहोपाध्याय पण्डित बाँकेराय जी नवल गोस्वामी विद्यासागर महाराज ने पुस्तक की एक प्रति हमारे प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जेम्स म्यस्टन साहब बहादुर की सेवा में भी भेजी थी। पुस्तक का प्राप्तिसूचक पत्र, म्यस्टन महोदय ने जो पण्डितजी के पास भेजा है, उसकी नक़ल नीचे दी जाती है।

COPY

L. nant Govrs. Camp
U. P.
Nainital 27-8-1916

My Dear Mahamahopadhaya,

Will you please accept my thanks for your kindness in sending me a copy of your valuable work entitled "Rajbhakti Prakash". It is a most learned and useful work, likely to influence the mind of righteous Hidus and especially to lead younger men along the path of loyalty.

Belive me

Yours very truly
(Sd.) J. Meston

To M. M. P. B. R. N. G. V. S., DELHI.

*

७—लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।

"इस सादगी पै कौन न मरजाय अय ख़ुदा,
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।"

उर्दू के महाकवि ग़ालिब का यह एक प्रसिद्ध शेर है। अभी हाल ही में एक उर्दू के पत्र में कांग्रेस-सम्बन्धिनी एक ग़ज़ल प्रकाशित हुई है। देखिये, इस शेर को कितनी योग्यता के साथ उस ग़ज़ल में फिट किया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुकती किसी की आहे शरर बार भी नहीं,
है दर्द वह, कि क़ाबिले इज़हार भी नहीं।
मिल जाए "होमरूल" यह आसाँ है सहल है,
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं।
+ + +
जिसने बनाया सदर है "एनी बिसंट" को,
दीवाना गर नहीं है तो हुशियार भी नहीं।
ऐसा नफ़स तलब किये जाते हैं बज़्म में,
और मुद्दई हैं आप कि बीमार भी नहीं।
लीडर हमारी क़ौम में भी बेशुमार हैं,
ग़ैरों की रहबरी से हमें आर भी नहीं।
था अहलियत का राज़ किसी की है आश्कार,
लेकिन है लुत्फ़ यह इसे इक़रार भी नहीं।
इस सादगी पै कौन न मरजाय अय ख़ुदा,
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।"

इसी ढङ्ग की एक युद्धसम्बन्धिनी ग़ज़ल सन् १९१४ में लखनऊ के "हिन्दुस्तानी" में परलोकवासी मौलाना शिबली की प्रकाशित हुई थी। उसे भी पाठकों के मनोरञ्जनार्थ, यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है—

कि जर्मनी ने मुझ से कहा अज़रहे ग़रूर,
आसाँ नहीं है फ़तह तो दुश्वार भी नहीं।
फ्रांसिया की फ़ौज है दस लाख से भी कम,
और इस पै लुत्फ़ यह है कि तैयार भी नहीं।
+ + +
मैंने कहा ग़लत है तेरा दावए ग़रूर,
दीवाना तू नहीं है तो हुशियार भी नहीं।
हम लोग अहले हिन्द हैं जर्मन से दस गुने,
तुझको तमीज़ अन्द को बिसियार भी नहीं।
सुनता रहा वह ग़ौर से मेरा कलाम और,
फिर वह कहा जो लायके इज़हार भी नहीं।
"इस सादगी पै कौन न मरजाय अय ख़ुदा,
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।"

*

८—कुत्ते के लिये वसीयत।

विलायत में अभी हाल में ही एक विचित्र मुक़द्दमे का फ़ैसला हुआ है। मुक़द्दमा यह था कि एक लार्ड घराने की स्त्री का देहान्त हो गया। उस स्त्री के कोई सन्तति न थी। बहुत से सम्बन्धी इस ताक में थे कि इसके मरते ही कुल जायदाद हमारे हाथ लगेगी। परन्तु उस स्त्री ने अपनी जायदाद सम्बन्धियों को न देकर अपने प्यारे कुत्ते के नाम उसकी वसीयत कर दी। वसीयतनामे में वह लिख गई है कि मेरी सारी जायदाद इस कुत्ते को सुखपूर्वक रखने में ख़र्च की जाय। उस स्त्री के मर जाने पर सम्बन्धियों ने मामला अदालत में पहुँचाया। अदालत में कहा गया कि एक कुत्ता इतनी बड़ी जायदाद का न उपभोग कर सकता है और न हमारे रहते वह इस जायदाद के पाने का अधिकारी है। कुत्ते की ओर से भी लोग पैरोकार थे। उन्होंने अदालत में सबूत पेश किया कि वसीयतनामा के अनुसार कुत्ता जायदाद पाने का अधिकारी है। अदालत ने दोनों ओर के सबूत सुनकर वसीयतनामा के नियमानुसार कुत्ते को ही जायदाद का मालिक स्वीकार कर लिया। और आज्ञा दी कि कुत्ते को ख़ूब अच्छे अच्छे भोजन दिये जावें और ख़ूब ठाट बाट के साथ यह रक्खा जावे और यह जायदाद की आमदनी इसी के आराम में ख़र्च की जावे। किसी ने ठीक कहा है—

"भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्"

"जयाजीप्रताप"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-चर्चा

१—विलायती समाचार-पत्रों का इतिहास

पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य ।), बारिस्टर होते हुए भी, हिन्दी के कोरे हितैषी ही नहीं, प्रसिद्ध लेखक पण्डित प्यारेलाल जी मिश्र ने, इस शिक्षा-प्रद पुस्तक को लिखा है। विलायत रहते हुए, वहाँ के समाचार-पत्रों की स्थिति का जो आपको अनुभव हुवा, उसी का यह पुस्तक परिणाम है। विलायत के 'टाइम्स', 'डेलीमेल' आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों का इतिहास बड़ी अच्छी तरह लिखा गया है। इस बात पर भी पूरा प्रकाश डाला गया है कि उन पत्रों के सम्पादक, सहकारी सम्पादक और मैनेजर आदि कितनी और कैसी योग्यता के पुरुष होते हैं, और पत्र को सर्वप्रिय बनाने के लिये वे लोग किन किन रीतियों का अवलम्बन करते हैं। हिन्दी में अपने विषय की यह बिलकुल ही नई पुस्तक है। हिन्दी के साधारण पढ़े लिखे लोगों के सिवा हिन्दी-पत्रों के सम्पादक और प्रकाशक, इस पुस्तक से बड़ा लाभ उठा सकते हैं। अच्छा होता, यदि पण्डित जी साथ ही साथ मासिक पत्रों का इतिहास और रीति नीति भी लिख देते, इससे हम जैसे निगुरवों को भी कुछ लाभ हो जाता।

पुस्तक, छिन्दवाड़ा सी. पी. के पते से लेखक महाशय से मिलती है।

२—हिन्दी-समाचार

देहली से निकलने वाला हिन्दी का यह साप्ताहिक पत्र है। पंजाब में तो यह अकेला है ही, अपनी सराहनीय रीति नीति से भारत में भी यह अपने ढंग का अकेला ही साप्ताहिक पत्र है। इसके वर्तमान सम्पादक बड़े ही अनुभवी सज्जन हैं। इसकी रायें हमेशा ज़ोरदार और निर्भीक होती हैं। अभी देहली में सट्टे का बन्द कराना इसी का काम था। इसके स्वामी भी बड़े उदार मालूम होते हैं। प्रायः अब समाचार-पत्रों ने अपना अपना मूल्य बढ़ा लिया है। हिन्दी समाचार का मूल्य २॥) रु० आपने ऐसे समय में बढ़ाया नहीं, उल्टा घटा कर २) कर दिया है। ऐसा अच्छा और सस्ता पत्र सबको ख़रीदना चाहिए। मिलने का पता—मैनेजर, हिन्दी-समाचार, देहली।

*

३—ब्रह्मप्रेस, इटावा की पुस्तकें

इस प्रेस ने तीन पुस्तकें हमारे पास समालोचनार्थ भेजी हैं। तीनों पुस्तकों का आकार बड़ा, छपाई सफ़ाई और काग़ज़ बहुत अच्छा है।

पहिली पुस्तक का नाम है, 'पाराशर स्मृति'। यह धर्मशास्त्र का ग्रन्थ, पराशर मुनि का बनाया हुवा है। यह दो प्रकार का छप रहा है। एक का नाम बृहत्पाराशर है और दूसरे का लघुपाराशर। उसी लघु पाराशर का ब्राह्मणसर्वस्व मासिक पत्र के सुयोग्य सम्पादक पण्डित भीमसेन जी शर्मा ने हिन्दी-भाषानुवाद किया है। प्रस्तुत पुस्तक में ऊपर श्लोक और नीचे भाषा है। पण्डितजी संस्कृत-साहित्य के बड़े धुरन्धर विद्वान् हैं। वेदों

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रहस्य भली भाँति जानते हैं। धर्मशास्त्रीय अनेक पुस्तकों के अनुवादक हैं और निःसन्देह धर्मशास्त्र के ग्रन्थों के उत्कट समालोचक हैं। ऐसे विद्वानों से संस्कृतार्थ में त्रुटि रह जाना तो नितान्त असम्भव हो सा है। पर शोक है कि जैसे आप संस्कृत के विद्वान् हैं, वैसी आपको हिन्दी परिमार्जित नहीं होती। एक उदाहरण लीजिये। श्लोक इस प्रकार है—

सीदन्ति चाग्निहोत्राणि, गुरुपूजा प्रणश्यति ।
कुमार्यश्च प्रसूयन्ते, तस्मिन् कलियुगे सदा ॥१—३१

इसकी भाषा आपने यूँ लिखी है—

'अग्निहोत्र बन्द हो जाते गुरुपूजा नष्ट हो जाती है कुमारी कन्याओं के सन्तान होते ये काम सदैव प्रत्येक कलियुग में होते हैं।'

१०-१२ वर्ष से एक हिन्दी-पत्र के सम्पादन करने वाले की ऐसी बेतुकी हिन्दी देखकर आश्चर्य होता है!

ऐसी ही भाषा-सम्बन्धिनी कहीं कहीं पर बहुत कम त्रुटियाँ पुस्तक में रह गई हैं। तीसरी आवृत्ति में इनका सुधार हो जाना चाहिये। वैसे यह पुस्तक बड़े काम की है। "कलौ पाराशराः स्मृताः" के अनुसार, प्रत्येक गृहस्थी को अपना धर्म, कर्म और नियम जानने के लिये, इसे अपने पास रखनी चाहिये। हम अपने पाठकों से बड़े अनुरोध के साथ इस पुस्तक को ख़रीदने के लिये सिफ़ारिश करते हैं। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ॥) है।

दूसरी पुस्तक 'षोडश संस्कार विधि' है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३३६ और मूल्य २) है। इसके रचयिता भी पण्डित भीमसेन जी ही हैं। गर्भाधान से लेकर विवाह पर्यन्त, आपने १६ संस्कारों की विधि को बड़ी ख़ूबी के साथ लिखा है। यह पुस्तक पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार लिखी गई है। इसी ढंग की एक पुस्तक केवल संस्कृत में, "दशकर्म पद्धति" नयनीताल में भी छपी थी। अब भी शायद वह मिलती है। उसकी अपेक्षा पण्डित जी की यह कृति बड़ी अच्छी और काम की है। आपकी कर्मकाण्डविषयिणी विज्ञता का यह पुस्तक समुज्ज्वल प्रमाण है। परिश्रम को देखते हुए ऐसी काम की पुस्तक का २) मूल्य बहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कर्मकाण्डी पण्डितों का इस पुस्तक को अपने पास रखना बड़ा आवश्यक है।

तीसरी पुस्तक है 'उपनिषद् का उपदेश, (द्वितीय खण्ड) कुल मिला कर कोई ढ़ाईसौ २५० पृष्ठ हैं। मूल्य १) है। टाइटिल पेज, कलकत्ते का छपा हुवा बड़ा ही ख़ूबसूरत है। इस पुस्तक के मूल लेखक, श्रीकोकिलेश्वर भट्टाचार्य, एम, ए. हैं। उन्हीं की बंगला कृति का हिन्दीअनुवाद पं० नन्दकिशोर शुक्ल "वाणीभूषण" ने किया है। प्रस्तुत पुस्तक, कठ और मुण्डक उपनिषद् का सिद्धान्त है, और शङ्कर भाष्य से विचलित भी नहीं है। पुस्तक में पहिले ११८ पृष्ठों में अवतरणिका है जो वास्तव में बड़े मार्के की है, और मूल लेखक की बहुज्ञता का परिचय कराती है। हिन्दी भी सहज गम्य हुई है। केवल हिन्दी जानने वालों को भी उपनिषदों का रहस्य जानने के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है। इसका तीसरा खण्ड भी वाणीभूषण जी को शीघ्र ही लिख कर प्रकाशित करा देना चाहिये।

तीनों पुस्तकें, ब्रह्मप्रेस इटावा से मिलती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा और लोकमत

सनाढ्योपकारक, आगरा

मनोरमा—यह एक नवीन सचित्र मासिक पत्रिका मंडी धनौरा प्रान्त मुरादाबाद से प्रकाशित होने लगी है। इसकी कई संख्याएँ प्रकाशित भी हो गई हैं। इसका प्रत्येक अङ्क द्रष्टव्य और मनोरम है। छपाई, कागज़ इत्यादि भी अच्छा रहता है। प्रत्येक संख्या में चित्र अच्छे २ रङ्गीन व सादे दोनों प्रकार के प्रकाशित होते हैं। लेखों के विषय में भी कह सकते हैं कि इसके सब लेख पढ़ने योग्य और मनोरम होते हैं। इस पत्रिका में "कादम्बरी" तथा "कुमार-सम्भव" जो क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं, विशेषतया अच्छे हुए हैं। यह पत्रिका हिन्दी के प्रचार का भी पूर्णतया उद्योग कर रही है। वार्षिक मूल्य ३) है जो पत्रिका की उपयोगिता, सुन्दरता के देखते हुए अधिक नहीं ज्ञात होता। पत्रिका ग्राह्य है। आकार सरस्वती जैसा। पता—मैनेजर-कर्यालय, मण्डी धनौरा यू० पो०।

*

विद्यार्थी, प्रयाग—

मनोरमा

"विद्यार्थी" के वाचक 'मनोरमा' का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। चार संख्यायें निकलने पर यह पत्रिका किसी कारण से कुछ दिन के लिए रुक गई थी। पर अब फिर बड़ी तेज़ी से, उसी सज-धज के साथ, निकलने लगी है। ५, ६, ७ संख्यायें जल्दी जल्दी निकल चुकीं। दो तीन संख्यायें और जल्दी जल्दी निकल कर फिर यह पत्रिका अपने निश्चित समय पर मासि मासि निकला करेगी। इसके सुयोग्य सम्पादक इस पत्रिका को अपने उद्देश के अनुसार उन्नत बनाने में अच्छा उद्योग कर रहे हैं। इसके प्रायः सभी लेख सुपाठ्य और शिक्षाप्रद होते हैं। एक आख्यायिका भी प्रायः प्रति संख्या में रहती है। बड़ी मनोहर और शिक्षाप्रद होती है। सम्पादकीय विचार गम्भीर विचार-पूर्ण होते हैं। सम्पादन-कार्य बड़ी सावधानी से किया जाता है। हम इस पत्रिका की उन्नति चाहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) मिलने का पता—मैनेजर 'मनोरमा', मंडी धनौरा (मुरादाबाद) यू० पी०।

*

तरङ्गिणी, काशी—

मनोरमा

यह हालही में निकली हुई एक नवीन मासिक पत्रिका है। सम्पादक श्रीयुक्त प्यारेलाल दीक्षित और श्रीयुक्त रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री) द्वारा सम्पादित और उन्हीं द्वारा प्रकाशित होती है। मनोरमा डबल क्राउन १६ पेजी ६ फार्म सुन्दर छपाई से छपती है। इसमें आदि में एक रंगीन चित्र और बीच बीच में कई हाफ़टोन चित्र रहते हैं। पत्रिका अच्छी है। यदि इसी प्रकार उन्नति करती गई, तो शीघ्र ही हिन्दी-समाज में प्रतिष्ठित हो जायगी। वार्षिक मूल्य ३) और एक अङ्क का मूल्य ।=) है। मिलने का पता—मैनेजर, मनोरमा-कार्यालय, मण्डी धनौरा, यू. पी. है।

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.
Publisher—Pandit Pyarelal Dikshit, Dhanaura (Muradabad)
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

MANORAMA REG. NO. A. 755

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति, योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक—
प्यारेलाल दीक्षित
और
रामकिशोर गुप्त (अलङ्कारशास्त्री)

वार्षिक मूल्य ३)] मनोरम-कार्यालय, मण्डी धनौरा यू.पी. से प्रकाशित [प्रतिसंख्या ।-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

[१] विजय-प्रार्थना [लेखक, साहित्योपाध्याय पण्डित शिवदत्त त्रिपाठी, काव्यतीर्थ ४६७
[२] हिन्दी-कादम्बरी ४९८
[३] जमना [ले० पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बी. ए., एम. आर. ए. एस. ५००
[४] शिक्षा [ले० "दास" ... ५००
[५] परिवर्तन (गल्प) [ले० पण्डित ज्वालादत्त शर्मा ५००
[६] शराबी की स्त्री [ले० मुंशी मुहम्मद हुसेन "आरिफ़" एम. ए ... ५०४
[७] बालस्पृहा [ले० पण्डित सिद्धिनाथ मिश्र "मयङ्क" ५०६
[८] हिन्दी में शेक्सपियर [ले० पण्डित गोविन्दप्रसाद घिलड्याल, बी. ए. डिप्टी कलक्टर ५०६
[९] हरिश्चन्द्र-तारामती [ले० कविकुमार पण्डित महेश्वरप्रसाद मिश्र, शास्त्री, साहित्याचार्य ५१६
[१०] निर्मोही दीपक [ले० "दास" ... ५१७
[११] उच्च साहित्य [ले० "मर्मज्ञ" ... ५१८
[१२] नागरी [ले०पं०सिद्धिनाथ मिश्र "मयङ्क" ५१८
[१३] भारत की अर्थसमस्या [ले० पण्डित रामदेव तिवारी ५१९
[१४] परमेश ज्ञान [ले० पं० बालमुकुन्द शर्मा ५३०
[१५] विविध विषय ५३१
[१६] साहित्य-चर्चा ५३४

शीघ्र जरूरत है।

"मनोरमा" का प्रचार करने के लिये दो भ्रमणकारी एजंटों की शीघ्र आवश्यकता है। वेतन ३०) से ५०) तक एजंट सम्बन्धिनी योग्यतानुसार और मार्गव्यय दिया जायगा। केवल अनुभवी सज्जनों को प्रार्थना-पत्र भेजना चाहिये।

पता—

मैनेजर "मनोरमा" मंडी धनौरा, यू. पी.

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य ३) और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढ़ाने तथा प्रकाशित करने, न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से भेजने चाहियें। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर मनोरमा कार्यालय, मण्डी धनौरा, यू. पी." के पते से आने चाहिएं।

५—पत्रोत्तर के लिए टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं छापे जायँगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥)	प्रतिमास
१ पृष्ठ या आधे कालम की छपाई	५)	"
आधा पृष्ठ या कालम की ,,	३)	"
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२)	"
१/८ पृष्ठ या चौथाई कालम की	१॥)	"

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरमा-कार्यालय,

मंडी धनौरा, यू. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीकानेर-अधीश ।

आप ने अपने सारे राज्य में गोहत्या बन्द कर दी है ! धन्यवाद !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

अलङ्कार १ | पौष १९७३, जनवरी १९१७ | ध्वनि ९

विजय-प्रार्थना

हे दीनबन्धो ! जगदीश ! विष्णो !
श्रुत्वा त्वमस्मद् विनतिं कृपालो ।
शीघ्रं युरोपीयरणं निवार्य
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ १ ॥

न्यायाम्बुधे ! भारतयुद्धकाले
दत्ता जयश्रीः किल पाण्डवेभ्यः ।
एवं कृपानाथ ! रणेऽपि चास्मिन्
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ २ ॥

सर्वाः प्रजा भारतवर्षमध्ये
यस्य प्रभावेण सुखं लभन्ते ।
तस्मै प्रजापालकपंचमाय
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ ३ ॥

कोट्यर्धमात्रं धनमाब्दिकं यः
पदाभिषिक्ते व्यतरच्छिशुभ्यः ।
तस्मै सुविद्यारसिकाय राज्ञे
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ ४ ॥

शार्मण्यकरैः सह संपराये
निर्दोषफ्रांसस्य सहायको यः ।
तस्मै सुहृद्धर्मपरायणाय
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ ५ ॥

संग्रामभूमौ शरविद्धगात्रान्
संमान्य गौरांश्च तथैव कृष्णान् ।
यस्तुल्यभावं विदधाति तस्मै
श्रीजार्जभूपाय जयं प्रदेयाः ॥ ६ ॥

सर्वेषु देशेषु नराश्च नार्यः
कष्टं सहन्ते विविधैः प्रकारैः ।
तस्माज्जगन्नाथ ! रणस्य शान्तिं
कृत्वा नृपं जार्जनरेन्द्रमव्याः ॥ ७ ॥

गावः सुखेनात्र चरन्तु नित्यं
रोगाश्च शोकाश्च भवन्तु लुप्ताः ।
श्रीराजराजेश्वरजार्जराज्ये
सर्वाः प्रजाश्शान्तिसुखं लभन्ताम् ॥ ८ ॥

शिवदत्त त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-कादम्बरी।

(६)

जाबालि को देख कर मैं सोचने लगा, कि तप का भी कैसा माहात्म्य है! इस (जाबालि) की शान्त-मूर्ति भी, तपाये हुये, सुवर्ण के समान, निर्मल चमकती हुई बिजली जैसी, नेत्रों के तेज को चुंधियाये देती है! यह बड़ा प्रतापी है। अतएव इस की उदासीन मूर्ति भी, एक अपरिचित पुरुष को डराती सी है। हां! थोड़ा सा भी तप करनेवाले, तपस्वियों का, सूखे सूखे नल, काँस और फूलों पर पड़ा हुआ अग्नि जैसा, चञ्चलवृत्ति तेज, जब असह्य होता है, तो सारे के सारे जगत् ने जिनके चरणों की वन्दना की है, और बहुत से तप से, अपने पापों को जिन्हों ने नष्ट कर डाला है, यही नहीं जो अपने दिव्य नेत्र से, सारे जगत् को हथेली पर आँवले के समान, देखते हैं, और दूसरों के भी पापों को नाश करनेवाले हैं, ऐसे महापुरुषों का तो फिर भला कहना ही क्या है! महामुनियों का तो नाम लेना भी पुण्य है। और फिर उनके दर्शनों का तो कहना ही क्या है।

यह आश्रम भी धन्य है जहाँ का स्वामी ऐसा महात्मा है। या यह सारे का सारा भुवनतल ही पुण्यात्मा है जो इस, पृथिवी के ब्रह्मा ने इसे सेवन कर रक्खा है। मैं समझता हूँ कि ये मुनि भी अवश्य बड़े पुण्यशाली हैं, जो और सब काम काज छोड़े हुए, इसी के मुख के देखने से, निश्चल दृष्टि किये हुए, और पवित्र २ कथायें सुनते हुए, दूसरे ब्रह्मा के समान इस (जाबालि) की उपासना करते हैं।

यह सरस्वती भी धन्य है, जो इस (जाबालि) के मुख-कमल का सम्पर्क करती हुई, इसके मानस (हृदय) में राजहंसी जैसी निवास करती है। यही नहीं इसका हृदय बड़ा निर्मल है और करुणा रूपी जल का स्राव करता रहता है। इसके हृदय की गम्भीरता अगाध है, इसके मन की बात टटोलना बड़ी मुश्किल है। और सरस्वती के भी मनोहर द्विज (दाँत) ही कुटुम्ब हैं। चार मुख रूपी कमलों में रहनेवाले, चारों वेदों ने भी सम्भवतः कभी कमलों के मुंद जाने के भय से, यह दूसरा उचित स्थान प्राप्त कर लिया है।

नदियाँ, शरद् ऋतु को प्राप्त करके जैसी निर्मल हो जाती हैं वैसे ही इसे प्राप्त करके संसार में पुनरपि सारी की सारी विद्यायें निर्मल हो गईं। ये विद्यायें, कलिकालरूपी वर्षाकाल से कलुषित भी थीं।

निस्सन्देह, इस आश्रम में सर्वात्मभाव से रहते हुए, कलिकाल की करतूतों का तिरस्कार किये हुए धर्म भगवान्, सत्ययुग को कभी याद भी न करते होंगे। इस मुनि को इस पृथिवी पर बैठे हुये देखकर, इस समय आकाश भी सप्त ऋषियों के मण्डल की स्थिति का अहङ्कार नहीं कर सकता। अहो! यह वृद्धावस्था भी बड़ी धैर्यवती है, जो प्रलय-कालिक सूर्य की किरणों के समान दुर्निरीक्ष्य, और चन्द्रमा की किरणों जैसे सुफ़ेद सुफ़ेद बालों वाले, इस मुनि के जटासमुदाय में, शिव की जटाओं में गङ्गा के समान, और अग्नि की लपटों में दूध की आहुतियों के समान गिरती हुई ज़रा भी नहीं डरती! आश्रम को बहुत सारे घृत के धुओं से काला काला कर देने वाले भगवान् जाबालि के प्रताप से डरता हुआ जैसे सूर्य का किरणसमुदाय भी इस आश्रम को दूर से ही छोड़ देता है। आश्रम के घिनका होने के कारण घुसने नहीं पाता! यहाँ वायु से चञ्चल, अपनी लपटों को एक जगह किये हुए, और अञ्जलि बनाये हुए जैसे यज्ञ के अग्नि, मन्त्रों से पवित्र चरु को ग्रहण करते हैं।

दुकूलरूपी बक्कलों को हिलाता हुआ, आश्रम की लताओं के फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित हुआ और मन्द मन्द चलता हुआ यह वायु सशङ्क जैसा इस जाबालि के पास जा रहा है। सो कैसे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुधा पृथिव्यादि पंचभूतों का भी तेज असह्य होता है।

यह जाबालि सारे के सारे तेजस्वियों में मुख्य है। इस महात्मा मुनि के इस संसार में होने से, यह संसार दो सूर्य वाला जैसा सुशोभित हो रहा है। यह जाबालि दूसरा सूर्य मालूम हो रहा है। इसी के सहारे से यह पृथिवी भी निष्कम्पा है। इसने हिलना छोड़ दिया है।

यह मुनि करुणा-रस का प्रवाह है, संसार-रूपी सागर से पार होने के लिए सेतु है, क्षमारूपी जलों का आधार है, तृष्णारूपी लताओं के वन का कुठार है, सन्तोष रूपी अमृत रस का यह सागर है, मोक्ष मार्ग का उपदेशक है।

यह अशुभ ग्रहों का अस्ताचल है, उपशमरूपी वृक्ष की जड़ है, और अज्ञान रूपी पहिये की नाह है, धर्म रूपी ध्वजा का यह प्रासाद है, सारे के सारे विद्या रूपी अवतारों का तीर्थ है, लोभ रूपी समुद्र का यह बड़वानल है, शास्त्र रूपी रत्नों को कसौटी है, रागरूपी पत्तों के लिए यह दावाग्नि है, क्रोध रूपी सर्प का यह मन्त्र है, अज्ञानरूपी अंधेरे का सूर्य है, नरकों के द्वारों के लिए यह अर्गला है, आचारों का कुलभवन है, अहङ्कार की वृत्तियों के लिये यह ऊषर भूमि है, सन्मार्गों का प्रकाशक है, साधुता का उत्पत्तिस्थान है, उत्साह रूपी पहिये की यह पुट्ठी है, धीरता का यह आधार है, कलिकाल का शत्रु है, तप का ख़ज़ाना है, सत्य का सखा है, मृदुता का क्षेत्र है, और सुकृतसमूह का यह उत्पत्तिस्थल है।

यह ईर्ष्या को अवसर देनेवाला नहीं है, आपत्ति को भी यह शत्रु है, तिरस्कार की अभूमि है, अभिमान के प्रतिकूल है, दीनता को भी अच्छा नहीं समझता, और न क्रोध के अधीन रहता, सुखों से भी यह पराङ्मुख है।

इसी महात्मा की कृपा से, यह तपोवन वैर-रहित और मत्सर-शून्य रहता है। अहो! महात्माओं का कैसा प्रताप है जो यहाँ तपोवन में, अपने आत्मा को शान्त किये हुए पशु तक भी अपना स्वाभाविक विरोध छोड़ कर तपोवन के निवास का सुख अनुभव करते हैं? क्योंकि यह साँप, खिले हुए नील कमलों की रचना जैसे, उड़ते हुए मनोहर मनोहर सैकड़ों चन्दवाले, और हिरनों की आखों की कान्ति के समान, चितकबरे मोरों के समुदाय में, धूप से आहत हुआ, नई नई दूब के जंगल में कैसा बेधड़क घुसा जारहा है।

अजात-सटा वाले सिंहों के बच्चों के साथ परिचय उत्पन्न करने वाला, यह हिरन का बच्चा अपनी माता को छोड़ कर दूध की धार टपकाने वाले सिंही के थन को पीरहा है?

इधर यह बसीड़ों की शंका करनेवाले, हाथियों के बच्चों से चन्द्रमा की तरह सुफेद सुफेद सिंह की गर्दन के केश खींचे जारहे हैं, और यह सिंह भी आँखे बंद किये हुए खूब समझ रहा है।

इधर यहाँ चञ्चलता को त्यागे हुए, यह वानर-समुदाय न्हाये धोये मुनियों के बालकों से फल फूल ले रहा है और हाथी मदान्ध होते हुए भी दयालु हुए हुए अपने कपोलस्थलों की सेवा करनेवाले, मदजल के पान करने से स्थिर हुए भौरों को, अपने कानों की फटकार से दूर नहीं करते। अधिक क्या कहा जाय, इस महात्मा के आश्रम में, उड़ती हुई, तपस्वियों के अग्निहोत्र के धुवों की रेखाओं से, निरन्तर काले मृगचर्म के दुपट्टे की शोभा धारण किये हुए, फल मूल धारण करनेवाले ये निश्चेतन वृक्ष भी व्रत करने वालों के समान दीख रहे हैं।* जब निश्चेतनों की यह दशा है, तो सचेतन प्राणियों के विषय में क्या कहना अवशेष रह जाता है! (अपूर्ण)

---

*बात यह है कि अनुष्ठानी लोग काले मृगचर्म को धारण करते हैं और फलों का भक्षण करते हैं। वे वृक्ष भी यज्ञ के काले काले धुवों और फलों को धारण कर रहे थे। अतएव वे वृक्ष व्रती जैसे मालूम होते थे। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमना

जमना मन्द मन्द गति बहती।
विषम वियोग श्यामसुन्दर के, तलफ २ तन दहती।
आवैंगे बंसीधर व्रज में, यही सोचती रहती।
यही आश जिय ठान, रैन दिन तीन ताप है सहती।
भवबाधा हरने को प्यारी, राधा राधा कहती।
जमना०

—मन्नन द्विवेदी गजपुरी B. A., M. R. A. S.

शिक्षा

[१]

प्रभु के भजन बिन हे मनुज तू मोक्षपद नहिं पायगा
करले नमन जगदीश को तब हाथ में कुछ आयगा

[२]

नित तीर्थ, व्रत, तप, यज्ञ, करना दान देना विप्र को
सुनना कथा करना कथन सब प्रेम बिन मिट जायगा

[३]

विद्या न तेरी काम देगी द्रव्य से ना कुछ बने।
तू मर मिटेगा बल बिना जो ईश से हट जायगा॥

[४]

कोई सहायक हो न तेरा जो करे वो ही भरे।
नर पाप के हित यंत्रणा, धक्के नरक में खायगा॥

[५]

सब भोग इस संसार के हैं अल्पसुख यह मानिये।
जो पाप में इत लिप्त हैं, उत यम उन्हें समझायगा॥

[६]

इस हेतु कर सत्कर्म सबविधि कृत्य निज पालन करो
फिर दाम निज श्रम के सभी तू स्वर्ग में पा जायगा॥

[७]

तुम मत करो अपने लिये कुछ जो करो सबके लिये
इमि कार्य कर इस विश्व में तू जगहितू कहलायगा

[८]

सब देह तो मिटते अवश हैं,जीव सुख दुख भोगते
पर, ईश-पद-सेवन किये वह ब्रह्म में मिल जायगा॥

'दास'

परिवर्तन

[१]

पशु से मनुष्य बनता है—इसको चाहे सब न मानते हों तो भी मनुष्यों को पशुओं जैसा आचरण करते देखा जाता है। इस तरह की बातें प्राचीन और आधुनिक इतिहास में बहुतायत से मिलती हैं। रसूलपुर के ज़मीदार के लड़के चुन्नीलाल को देखकर हमें बराबर यह बात याद आ जाती थी। चुन्नीलाल की किशोरावस्था में ही उसके पिता का देहान्त हो जाने से वह प्रभूत धन का मालिक बन गया था। सुना जाता है कि चुन्नीलाल के पिता बड़े ही परोपकारी थे, बड़े ही कोमल प्रकृति के पुरुष थे। पर चुन्नीलाल को देखकर इस बात पर विश्वास न होता था।

हम वहाँ स्कूलमास्टर थे। ज़मीदार के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था, तो भी हम कभी कभी उससे मिलते थे, उसकी धूर्त्तता की बातें सुनते थे। कभी कभी उसके अत्याचार से पीड़ित प्रजा के आर्त्तनाद को सुनकर हमारा दिल हिल जाता था। कभी कभी वह हमसे कहता—"क्यों मास्टर! तुम्हारे कलकत्ते में अच्छी अच्छी स्त्रि"—

हम कान में अँगुली देकर वहाँ से उठ आते थे। चुन्नीलाल और उसके मुसाहिब ठट्ठा मार कर हँस पड़ते थे।

एक दिन शाम को हम उसके ठाकुरद्वारे से आरती लेकर वापिस आ रहे थे। अन्धेरे में मन्दिर के एक ओर चुन्नीलाल और उसके दो मित्र बातें कर रहे थे। एक आदमी ने कहा—आज ही रात में फ़तह किया ज़ाय तो अच्छा है।

चुन्नीलाल ने कहा—ना, साले को पहले बाहर भेज देना चाहिए। उसे मालूम हो गया तो काम नहीं बनेगा। गड़बड़ हो जायगी।

यह सुनकर हम काँप उठे। किस हतभाग्य के सर्वनाश का बन्दोबस्त हो रहा है। यह जानने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए हम आम के एक बड़े पेड़ के पीछे खड़े हो गये।

उसके मित्र ने कहा—अरे! वह गड़बड़ करके क्या कर सकता है? तुम भी तो ज़मीदार हो।

चुन्नीलाल ने कहा—भाई, बाहर का ढोंग तो अच्छा चाहिए। जो काम आसानी से हो सकता है उसके लिए—

उसके मुसाहब ने कहा—आसानी से फिर कब होगा? अब बहुत लोभ नहीं रोका जाता। अन्त में मैंने आज तुमसे कहा है। ऐसी सुन्दरी न मालूम कैसे विधवा हो गई?

हमारा सारा शरीर जल रहा था। अभागिनी को भगवान् किस लिए वैधव्ययन्त्रणा से दग्ध कर रहे हैं—इस विषय में इन पशुओं की तबीअत का हाल मालूम हुआ। उनके पशुत्व का अब एक और नया ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने जैसी भाषा में बातचीत करना आरम्भ किया उसका थोड़ा सा उल्लेख करने पर भी हम शिक्षा-विभाग में एक मिनट नहीं रह सकते। कोई आध घन्टे बाद हमें मालूम हो गया कि वे लोग चुन्नीलाल के एक ब्राह्मण कर्म्मचारी की विधवा बहन की वैधव्य-यन्त्रणा को दूर करने के साधु उद्देश से यहाँ इकट्ठे हुए हैं। उनकी इस बात को हमने उसी समय ब्राह्मण से जाकर कह दिया। बेचारा दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी विधवा बहन को कलकत्ते में किसी रिश्तेदार के यहाँ पहुँचा आया।

हमने मनके आवेग में आकर यह बात स्कूल के दो एक मास्टरों से भी कह दी। मालूम नहीं कि किसके द्वारा यह बात चुन्नीलाल के कान तक पहुँच गई। उसी समय उसने हमें बुलाया। लाल लाल आँखें करके उसने हमसे कहा—मास्टर! तुमने किससे बैर बाँधा है! जानते हो?

उसकी बात का जो उत्तर हमारे मुँह पर आगया था यदि हम उससे कह देते तो वह दुष्ट उसी समय हमारी स्त्री को विधवा कर देता। हमने अपनी ज़ुबान को रोक कर बहुत मुलायमी के साथ हँसते हुए कहा—चुन्नी बाबू! आप ज़मीदार हैं—

उसने सप्तम में सुर चढ़ा कर कहा—तेरे बाप का उसमें क्या है फिर?

उसकी ज़मींदारी के साथ हमारे पितृ-देव का अवश्य कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि सम्बन्ध होता तो प्रजा के लिए अच्छा होता। कुछ हो, हमने अपने को बहुत सम्हाल कर कहा—नहीं, कुछ भी नहीं। मैं यह कहना चाहता था कि आपका कर्तव्य अपनी प्रजा को सुख में रखना, अपनी ज़मींदारी में प्रतिष्ठा प्राप्त करना है, जिससे सब कोई—

उसने हमें बहुत बुरी भाषा में गाली दी और कहा—सात दिनों के बीच में ही तुझे यम के घर भेज दूँगा।

हमने कहा—ज़मींदारी ज़रूर आपकी है, पर राज्य तो अँगरेज़ सरकार का ही है।

यह सुन कर उसने हमें गाली दी, अँगरेज़ों को गाली दी, अन्त में अपने आपे को भी गाली दी। हमने मन मन संकल्प किया कि जितनी शीघ्र सम्भव होगा स्त्री और शिशु को घर पहुँचा देंगे और दूसरी जगह कहीं नौकरी तलाश करेंगे।

[२]

स्त्री की व्याकुलता से हम विचलित हो उठे। हमारी लड़की मणि की बीमारी इतनी बढ़ जायगी—पन्द्रह दिनों में हमें इस बात का सन्देह भी नहीं हुआ था। मणि का बुख़ार कम होता जाता था। माथे पर बूँद बूँद पसीना आने लगा था। डाक्टर के पास हम भागे हुए पहुँचे। वह बेचारा साधारण पढ़ा लिखा था—गाँव में थोड़ा बहुत पैदा कर लेता था। उसने कहा—ठीक नहीं है, शहर से हेम बाबू को बुला लाइए।

बक्स में सिर्फ़ तीन रुपये थे। हेम बाबू के बुलाने में कम से कम बीस रुपये ख़र्च होंगे। हमारी स्त्री निर्म्मला लड़की को गोद में लिए कातर दृष्टि से उसे देख रही थी। उसे हमारे दिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हाल मालूम न था। उसने कहा—तब वही बंदोबस्त करो। हेम बाबू को ही बुलाओ।

हमने कुछ सोच कर कहा—बुलाऊँ किस से, ख़ुद ही जाता हूँ। पर—निर्मला ने कहा—तीन मील पैदल तुमसे न जाया जायगा। कोई बैलगाड़ी-

हमने भौंहे सिकोड़ कर कहा—नहीं मैं चला जाऊँगा, किन्तु डाक्टर की पालकी का भाड़ा और उसकी फ़ीस—

निर्मला समझ गई। म्लान नेत्रों से उसने एक बार हमारी ओर देखा। इसके बाद उसने धीरे धीरे अपने हाथों में से कड़े निकाल कर हमारे हाथ में दे दिये और कहा—तो फिर क्या हर्ज है। इस समय तो—

हा अदृष्ट! बी० ए० पास करने पर हमने कितने सुख-स्वप्न देखे थे। विवाह के समय कितनी धूम धाम हुई थी। उस समय कौन जानता था कि हममें अपनी कन्या की प्राणरक्षा की भी सामर्थ्य न होगी, लिख पढ़कर और नीरोग शरीर रखते हुए भी हम स्त्री-धन से अपने मुमूर्षु शिशु की चिकित्सा का बन्दोबस्त करेंगे। इसके पहले ही हम मर जाते तो अच्छा था। हमारी आँखों से आँसू गिरने लगे। हा! ईश्वर!

निर्म्मला ने भी रोते हुए कहा—छिः रोते क्यों हो? तनख़्वाह आने पर फिर बनवा देना।

हमने कहा—डाक्टर से हमारा परिचय है। फ़ीस बाद को दे देंगे।

जेब में तीन रुपये डालकर हम चल दिये। हम सोचते जाते थे कि डाक्टर भद्रपुरुष है, शिक्षित है, हमारी कातर प्रार्थना ज़रूर स्वीकार कर लेगा। वेतन मिलने पर उसका ऋण ज़रूर चुका देंगे। शाम हुई जाती थी। स्तब्ध प्रकृति को देखकर हमें अपनी म्लानमुखी स्त्री के कातर मुँह का स्मरण हो जाता था। मणि, हमारी एक मात्र कन्या शिशु है। भगवान् ने इस रत्न को हम जैसे अधम के घर में क्यों अर्पण किया, मालूम नहीं।

[३]

डाक्टर बाबू शाम के बाद घर लौटे। बहुत से रोगी उनकी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। बड़े प्रेमभाव से धूम्रपान करते हुए उन्होंने दो दो बातें करके सबको बिदा किया। वहाँ दो आदमी रह गये, वे शायद उनके मित्र थे। हमारी ओर देखकर उन्हों ने कहा—

कहिए महाशय, क्या प्रयोजन है?

हमने कहा—मैं रसूलपुर स्कूल का हेडमास्टर हूँ।

हेमबाबू ने कहा—रसूलपुर—हाँ जिसमें पन्ना बाबू—

हमने कहा—जी हाँ, चुन्नीबाबू—

उन्होंने कहा—हाँ चुन्नीबाबू ही। ख़ूब मालदार आदमी है।

हमने कहा—हाँ मेरे एक डेढ़ वर्ष की कन्या है—

एक ख़ानसामा उनका जूता खोल रहा था। हेमबाबू ने ज़रा बिगड़ कर कहा—अरे धीरे धीरे खोल।

उनके दोनों मित्रों ने ख़ानसामा को फटकार बताई। ख़ानसामा ने कहा—आप चुप रहिए। वे लोग भी कब चुप रहनेवाले थे, कहने लगे—अरे छोटे मुँह बड़ी बात कहता है।

ख़ानसामा—छोटा आदमी हूँ तो किसी से कुछ माँगता भी तो नहीं।

उन्होंने भी जवाब दिया—अन्त में डाक्टर बाबू ने कहा—अरे सब चुप करो भाई। तब कहीं जाकर शान्ति स्थापित हुई।

इस गोलमाल में डाक्टरबाबू ने हमारी बात नहीं सुनी। उन्होंने कहा—हाँ तो आपका चुन्नी बाबू से क्या सम्बन्ध है?

हमने कहा—मेरा चुन्नीबाबू से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं उनके ग्राम के स्कूल में हेडमास्टर हूँ।

हेमबाबू ने कहा—ओ! आप उनके ग्राम में हेडमास्टर हैं। उनकी लड़की—हमने कहा—उन की लड़की नहीं—मेरी लड़की बीमार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीणनिराशा का चिह्न उसकी आँख के कोओं में थोड़ी देर के लिए खेल गया। हमने शुरू से आख़ीर तक मणि के रोग की कथा उन्हें कह सुनाई। उन्होंने सब कुछ सुनकर कहा—हाँ, तब तो इसी समय देखने की ज़रूरत है।

हमने कहा—एक निवेदन है। मैं मास्टर हूँ, चालीस रुपये मासिक वेतन मिलता है। आज २८ तारीख़ है। दूसरी तारीख़ को महीना मिलते ही मैं आपकी फ़ीस दे जाऊँगा।

कलकत्ते की सड़क पर शेर को देखकर भी लोग उसे इतने आश्चर्य्य से नहीं देखेंगे जिस आश्चर्य्य से भिषग्वर ने अपने मित्रों सहित हमें थोड़ी देर के लिए देखा। उसके बाद हमारी बात का उत्तर न देकर उन्होंने नौकर से कहा—अरे पानी लाओ।

हमने कहा—मैं हेडमास्टर हूँ—

डाक्टर ने कहा—यह कौन कहता है कि तुम चुंगी के जमादार हो।

हमने कहा—मैं शिक्षित हूँ—धोखा नहीं करूँगा।

उनके एक मित्र ने कहा—भाई ! क्यों उन्हें दिक़ करते हो। वे इस समय थके हुए आये हैं।

पत्थर पिघल जाता है पर मनुष्य का दिल नहीं पिघलता—और ख़ासकर वकील, डाक्टरों का। हमने बहुत कुछ कहा—अन्त में पाँव छुए। उत्तर में मिली सिर्फ़ उपेक्षा। स्त्री का वह पीला चेहरा याद पड़ा। म्लानमुखी स्त्री के दोनों कड़े सर्प बन कर हमें डसने लगे। हमने आँखें पोंछते पोंछते सोचा कि विकासवादी लोग मूर्ख हैं। पशु से कहीं मनुष्य बनता है ? उल्टा मनुष्य ही पशु बन जाता है।

[४]

गाँव के अन्धेरे रास्ते पर चला जाता था। कोई छः कोस रास्ता चल चुका था। निर्म्मला के गहने को लेकर शहर में से रुपये का इन्तज़ाम कर के डाक्टर को बुला ले जाऊँगा—इस तरह कोई छः कोस का और फेर पड़ेगा—पर यह सोच कर मैं कुछ भी नहीं घबराया। इतना समय नष्ट होगा, उसमें मणि की क्या हालत हो जायगी—यह सोच कर मैं ज़रूर घबराने लगा। और एक बाग पार करते ही ग्राम में पहुँच जाऊँगा। इसीलिए झपटा हुआ जा रहा था। अकस्मात् किसी ने पीछे से आकर ज़ोर से हाथ पकड़ लिया। फिर कर देखा तो चुन्नीलाल था।

उसके मुँह पर रक्तलोलुप शार्दूल जैसी निर्दयता झलक रही थी। उसे देख कर मैं काँप उठा। दिल कड़ा करके मैंने पूछा—क्यों चुन्नीलाल बाबू ?

दुष्ट चुन्नीलाल काँप रहा था। उसने कहा—आज यहीं—इष्ट देवता का स्मरण कर।

इष्ट देवता का हमने स्मरण किया। किन्तु और ही उद्देश से। मन मन कहा—मा, असुर-मर्दिनी, कब तक दुःख देगी। मा ! इस दुष्ट को इसी समय मारो। काँपते हुए कण्ठ से कहा—चुन्नी बाबू, सिर्फ़ आज का दिन दे दीजिये। आज क्षमा कर दीजिए।

चुन्नीलाल ने हँस दिया। बड़ी बुरी हँसी थी। उसने कहा—चुन्नीलाल क्षमा करना नहीं जानता।

हमने कहा—चुन्नीलाल तुम मनुष्य हो। मनुष्य के भीतर नारायण वास करते हैं। आज मुझे छोड़ दीजिए। फिर—

चुन्नीलाल ने शिर हिला दिया। उसके मुँह पर मानो विस्मय के भाव का उदय हुआ। उसने अन्यमनस्क होकर पूछा, क्यों ?

हमने कहा—हमारे साथ ही तो तुम्हारी शत्रुता है। तुम हमें ही तो मारना चाहते हो। हमारी स्त्री और कन्या के साथ तो तुम्हारी शत्रुता नहीं है। शिशु के जीवन से तो तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं है ?

उसके हाथ जल रहे थे, होठ काँप रहे थे। हमने कहा—चुन्नीलाल ! मैं पढ़ा लिखा हूँ। झूठ बोलना होता तो और भी कोई पेशा कर सकता था। दरिद्रता को प्रसन्न करके मास्टरी स्वीकार की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम जिस समय कहो उसी समय मैं तुम्हारे पास आ सकता हूँ। सिर्फ आज के लिए क्षमा करदो।

चुन्नीलाल ने फिर कहा – किस लिए ?

हमने उसे समझाना शुरू किया। हमने कहा – मुमकिन है इस समय भी मणि संसार से चलदी हो। चुन्नीलाल ! तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। है तो अचम्भा ही पर न मालूम भगवान् ने क्यों इस शिशु को ग़रीब के घर में –

अब हम आँसुओं के वेग को न रोक सके। पशु के चरणों पर हम गिर पड़े। शिर पर हाथ मार कर हमने कहा – हाय भगवन् ! क्यों तुमने हमारे घर में यह रत्न दिया।

चुन्नीलाल ने हमारा हाथ छोड़ दिया। उसने धीरे धीरे कहा – अच्छा बताओ, डाक्टर कितने रुपये माँगता है।

हमने कहा – कम से कम बीस रुपये। और कुछ नहीं चाहता। अब मार डालो, मारो अभी, मारो।

हमने उसके मुँह की तरफ़ देखा। जो कुछ देखा उस पर विश्वास नहीं हुआ। चुन्नीलाल रो रहा था। मैं खड़ा हो गया। चुन्नीलाल ने कहा – उस डाक्टर ने हमारी लड़की को मार डाला। तुम घर जाओ। मैं किसी अच्छे डाक्टर को बुला कर लाता हूँ।

हमने कहा – चुन्नी, भाई दिल्लगी करते हो।

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। वह वहाँ से बड़ी तेज़ी से चल दिया। मैं भी घर आगया। उस समय भी मणि सो रही थी। बाहर घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। देखा, चुन्नीलाल घोड़ा मारे शहर की तरफ़ को जा रहा है। एक घण्टे के बाद उसी घोड़े पर चढ़ कर अङ्गरेज़ डाक्टर ने आकर कहा – बच्चे के जीवन में कुछ ख़तरा नहीं है।

दूसरे दिन प्रातःकाल ज़मीदार ने अपने हाथ से बेदाने का रस लड़की के मुँह में चुआया।

पशुत्व से धीरे धीरे मनुष्यत्व का विकास होता हुआ हमने देखा। पर विकाशवाद का नियम हम अभी तक नहीं समझ सके हैं।*

ज्वालादत्त शर्म्मा।

शराबी की स्त्री।

[लेखक, मुंशी मुहम्मद हुसेन "आरिफ़" एम. ए. जज हाईकोर्ट, कश्मीर]

न मैं शाइर, न मुझको शायिरी याँ कुछ जतानी है।
मेरी फ़रियाद का बाइस फ़क़त सोज़े निहानी है।
तुम्हारे वास्ते अय नौजवानों ! इसमें हैं इबरत।
तवज्जह से सुनो, यह इक शराबी की कहानी है।
मुहब्बत का नहीं यह इक्तज़ा१ मैं नाम लूँ उसका
मगर बतलाऊँगा इतना कि वह इक ख़ानदानी है
शरीफ़ाना हैं अख़लाक़ उसके और तालीम है अच्छी
तबस्सुम२ लब प हरदम है, तबीयत में रवानी है
वफ़ा दिन में, हया आँखों में, पुतला है मरव्वत का
न पेशानी प बल हरगिज़, न दिल में बदगुमानी है
असर से सोहबते बद के वह पहुँचा, ऐसे जलसे में
कि जिसकी यह नई तहज़ीब३, बानी वो मुबानी है
खड़ी थी मेज़ पर वाँ, काँच के परदे में दुख़्तेरज़४
फ़रिङ्गस्तानी पैदाइश, वतन हिन्दोस्तानी है
वह भोलेपन से बैठा पूछ, "इस शीशे में क्या शै है"
कहा चुपके से यारों ने यह आबे ज़िन्दगानी है
यही शै है कि ज़ाहिद, जिसका जोया है बहिश्तों में
हमें वह याँ मयस्सर है, ख़ुदा की मेरहबानी है
सुना होगा कि काया को पलट अक्सीर देती है
यह अक्सीरे हक़ीक़ी है, वह फ़रज़ी और ज़ुबानी है
मुसख़्ख़िर५ करलिया है, इसने कुलआलम६ को अब ऐसा
कि अरसे से, इसी का दौरये, साहब क़िरानी है

---

*बाबू केशवचन्द्र एम० ए०, बी० एल० के एक मराठी का अनुवाद।

१ तक़ाज़ा। २ मुसकराना। ३ सभ्यता। ४ अंगूरी शराब। ५ अधीन। ६ संसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसे पीकर नहीं रहता है, बाक़ी फ़िक्रोग़म कोई
कि फ़िक्रोरंज के हक़ में यह तेग़े अस्फ़हानी है
गिलास इसका ज़रा भर कर, चढ़ाजाओ, अभी ग़टग़ट
तो फिर मालूम हो, तुमको कि क्या लुत्फ़े जवानी है
किसी ने सच कहा, इन्सान है. शैतान, इन्साँ का
बुरी संगत ही इस दुनिया में कुल जुर्मों की बानी है
ग़रज़ उस नौजवाँ ने अक़्लोइज़्ज़त को किया रुख़सत
कि दुश्मन अक़्लोइज़्ज़त की शराबे अरग़वानी है
यह पानी फेर देता है, हया वो शर्म पर पानी।
भसम करता है तनमन को ख़ुदा! कैसा यह पानी है
नहीं छुटती यह क़हवा, और तमाशा है कि होती है
यह उतनी दिलरुबातर जिस क़दर होती पुरानी है
मगर वह दिन था ऐसा सूम, उस बदबख़्त१ के हक़में
कि नाज़िल उस प आये दिन बलाए नागहानी है
पड़ा इक रात मोरी में उसे इक दोस्त ने देखा
वह मेख़्वारों२ की मेराज़३ और ग़ायत कामरानी४ है
उठाया उसने कुत्ते को खड़ा जो चाटता था क़ै
ज़रा झुककर जो मुंह देखा, तो देखा यार जानी है
उठाया पुश्त पर अपनी, और उसको घर में ला डाला
कहा, भावज! न करना ग़म, फ़क़त सरकी गिरानी है
कहा उसने नहीं मुझको, ज़रूरत कुछ बताने की
नया कब है यह अफ़साना, पुरानी यह कहानी है
कोई मुझसे ज़ियादा, इनको क्या जानेगा, अय भाई!
तेरी भावज ने इतने दिन, यूँ ही क्या ख़ाक छानी है
उतर डोली से जिस दिन से, क़दम रक्खा है इस घर में
यही देखा है, आँखों से मेरी बिपता पुरानी है॥
ताल्लुक़ बीबि वो शोहर का नाज़ुक वह बनाया है
नहीं आता ज़बाँ पर, दिल में जो दर्दे निहानी है॥
अभी कुछ रात बाक़ी थी, कि ली बदमस्त ने करवट
कहा झुंझला के सुनती या कि सोती अय फ़लानी है
रुलाया रात भर बच्चे को है तूने मेरी ज़िद से।
और अपने मुंह प किस नख़रे से, देखो, शालतानी है
भरी बैठी थी ग़ुस्से में, लगी वह फूट कर रोने।
कहा अय सङ्गदिल५ सख़्ती में तू भी शम्सेद६ सानी है

कहां आती है नींद उनको, कि जिनके पेट हों ख़ाली
न क्योंकर रोये वह बच्चा, कि जिसका रिज़्क़ पानी है
कई दिन से पड़ी बिलकुल नहीं गो आग चूल्हे में।
मगर फ़ाक़े की किस सामान से याँ मेहमानी है॥
बिलकता था पड़ा भूका, अभी सोया है यह थक कर
ज़रा सूरत तो देखो, कैसी प्यारी और निमानी है।
तुम्हे इस चांद से मुखड़े प क्यों आती नहीं उलफ़त
मुझे देखो कि मैं हूँ और रातों पास बानी है॥
कहाँ जाते रहे दावे, मुहब्बत के कभी जो थे।
यह आँखें चार करने में भी इतनी आना कानी है॥
न छोड़ा तुमने कपड़ा और कोई ज़ेवर मेरे तन पर।
कलालों की दुकानों पर बिकी सब जामदानी है।
जहेज़ और भात और साचक़१ के कुल असबाबसे बाक़ी
यह सिरपर शाल कहना२ और उँगलीमें निशानी है
जिठानी और हमसाई, यह कहती हैं मुझे हरदम,
ख़सम तेरा निखट्टू है, शराबी और ज़ानी३ है।
हैं आंखें ज़रदे यरक़ाँ से, हुआ है हाथ में राशा
गई है सूख गरदन और चेहरा ज़ाफ़रानी है।
ज़रूर इस मरदुवे की, हो गई फटकार वरना तू,
न लँगड़ी है, न लूली है, न बदसूरत न कानी है।
कोई गर दूसरी होती, कभी की मैके चल देती,
तेरी तक़दीर में लेकिन, मुसीबत ही उठानी है।
तेरे मैके को दे रक्खा है, सब कुछ हक़ तआला ने,
ख़ुदा की आज उनपर हर तरह से मेहरबानी है।
यह देती हूँ जवाब उनको मरूँगी उसके क़दमों में,
न रक्खूँगी क़दम बाहर कभी यह दिल में ठानी है
मेरी जानिब से जीते जी तआल्लुक़ यह न टूटेगा,
रहूँगी ताबये शोहर कि हुक्मे आस्मानी है।
करोगे याद तुम मेरी, वफ़ा को मेरी मैयत पर,
घड़ी वह भी यह देखोगे बहुत जल्दी ही आनी है।
नहीं बिगड़ा है कुछ अबभी करो तुम अज़्म मरदाना
मेरी जाँ और इस मासूम की जाँ गर बचानी है।
यह गरमीये मुहब्बत देख पत्थर भी पिघल जाता,
हरारत के असर से संग भी हो जाता पानी है।

१ मन्दभाग्य। २ शराब पीनेवाले। ३ सोढ़ी। ४ अभिलाषा पूर्ण करनेवाली। ५ पत्थरदिल। ६ सूर्य।

१ विवाह से एक दिन पहले दिया जाता है। २ पुराना। ३ व्यभिचारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसीना भी न आया, उसकी पेशानी प और बोला,
नसीहत से है ज़िद मुझको, न मानूँगा न मानी है
निकलजा तू अभी घरसे न मुझको मुह दिखाना फिर
तेरी हमदर्द दुनिया में फ़क़त तेरी जिठानी है।
कलेजा फट गया उसका सुनी जब गुफ़्तुगू उसकी,
कहा लो, गोद में बच्चे को यह मेरी निशानी है।
गिरी ग़श खाके ऐसी वह, न आँखें उसने फिर खोलीं
यह दुनिया और बखेड़ा इसका सब नाचीज़ फ़ानी है
समाँ यह देखकर उसपर हुआ "आरिफ़" असर ऐसा
किसब कुछछोड़कर अब शग्ल उसका नोहा ख़्वानी है

"हिंदुस्तान"

बालस्पृहा

[१]

होकर खड़ा सब भांति से निज मातृभू उद्धार के,
हे ईश ! तन धन ध्यान से निज देश के उपकार के
शुभकाम उन्नति और सुख कल्याणकारी सर्वदा,
आजन्म मैं करता रहूँगा बांधवों को हर्षदा ॥

[२]

प्रिय बन्धुओं के साथ कैसा प्रेम करना चाहिये,
आज्ञा बड़ों की किस तरह से शीश धरना चाहिये
किसभांति निजहित त्यागकर परस्वार्थ करना चाहिए
किसभाँति निजप्रणपाल कर यशभुवन करना चाहिए

[३]

आदर्श बस शुचि भीष्म अर्जुन का सदा शिरधारके
यम तुल्य भी यदि शत्रु होगा तो उसे ललकार के।
सम्मुख लड़ूँगा मैं सदा निज मानरक्षा के लिये,
आदर्श श्रीयुत वीरवर अभिमन्यु का चित में दिये ॥

[४]

आपत्ति कैसी ही पड़े पर धैर्य्य को जाने नहीं
दूँगा कभी मैं स्वप्न में कमहिम्मती आने नहीं।
आजन्म मैं निस्वार्थ हो हरकाल में निज चित दिये,
सह यत्न करता ही रहूँगा मातृवसुधा के लिए ॥

[५]

जो हैं प्रवासी बन्धु मेरे दुःख अतिशय पा रहे,
परतन्त्रता की रज्जु से बँध जन्म व्यर्थ बिता रहे।
पशु तुल्य करते काम फिर भी हाय भूखों मर रहे,
कर ध्यान प्यारे देश का रो हिलकियां जो भर रहे।

[६]

माता पिता भी जिन नरों के समझ कर तब काल का
दिन रात रोते हैं दुखित हो ध्यान कर निज लाल का
सौभाग्य से संयुक्त भी वैधव्यता सरसा रही,
हा! शोक जिनको नारियाँ दिनरात दुख को पा रहीं

[७]

आदर्श मोहनदास गाँधी का सुभग उनके लिए,
नित मान कर करता रहूँगा यत्न तन मन धन दिये।
हा ! मूर्खता की घोर अँधियारी निशा में सो रहे,
जो भारतीय मनुष्य हैं निज धर्म्म से च्युत हो रहे

[८]

कर्तव्य को भूले हुए हैं कूप के मेंढक बने
दिन रात बैठे धाम हैं आलस्य में रहते सने।
व्यापार हैं कहते किसे वे जानते यह भी नहीं,
है भूमि से होता प्रकट या वृक्ष में फलता कहीं।

[९]

यदि पूँछ दो उनसे कहीं अब शिल्प है किस लोक में
तो वे कहेंगे स्वर्ग में है, है नहीं इस लोक में।
उनके लिए हर भाँति के शुचि पाठशाले खोल के,
मैं मूर्खता दूँगा मिटा जय भारती की बोल के।

[१०]

करदूँ हरा यह देश विद्यामय सुधा से सींच के,
आदर्श श्रीयुत मालवीजी का हृदय पर खींच के।
हे ईश ! ऐसे बालकों की कामनायें पूर्ण हों,
इन दीन भारतवासियों की आपदायें चूर्ण हों।

सिद्धनाथ मिश्र "मयंक"

हिन्दी में शेक्सपियर

शेक्सपियर का परिचय।

अनेक विद्वानों का मत है कि शेक्सपियर संसार का सबसे बड़ा कवि है। अंग्रेज़ जाति को, इंगलिस्तान की भूमि स्ट्रैटफोर्ड अपौन ऐवन को इस कवि के पैदा करने का गौरव प्राप्त हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सन् १५६४ में इसका जन्म हुआ और यह १६१७ में स्वर्गवास सिधारा। यह एक साधारण नागरिक का लड़का था, और उसको कुछ अंग्रेजी, लैटिन व ग्रीक की शिक्षा मिली थी। उसकी और उसके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। इसलिए वह अपनी जन्मभूमि छोड़कर १५८६-८७ के लगभग लंदन में चला आया और वहाँ एक नाटकमंडली में भरती हो गया। वहाँ उसको नाटक और कविता करने की रुचि हुई।

शेक्सपियर के ग्रंथ

उसने कोई उनतालीस नाटक और छः फुटकर काव्य ग्रन्थ लिखे हैं, या उनमें से कुछ का संशोधन किया है। नाटक सुखांत, दुखांत और इतिहास संबंधी सब प्रकार के हैं। उसके नाटकों का संसार भर में बड़ा भारी आदर है।

शेक्सपियर का सम्मान।

पश्चिमी संसार में बाइबल के नीचे शेक्सपियर के ही ग्रन्थों का मान है। हमारे वेद की भाँति इसकी पंक्तियाँ और शब्द गिने गये हैं। शेक्सपियर के कोश, विश्वकोश और व्याकरण अलग ही हैं। और इसके ग्रन्थों की जितनी आलोचनायें और टीकायें छपी हैं उनकी बड़ी भारी संख्या है। शेक्सपियर के कई शब्दों पर विद्वानों का बहुत वादानुवाद हुआ है और कहीं २ वह बड़ा मनोरंजक लगता है। सैकड़ों शेक्सपियरी सभा समितियाँ वर्त्तमान हैं, जिनमें उसके ग्रन्थों का मनन और अध्ययन होता है। शेक्सपियर अद्भुत प्रतिभाशाली कवि और मानवी प्रकृति का अद्वितीय चित्रकार हो गया है।

शेक्सपियर का जीवन।

जैसे प्रत्येक मनुष्य के भाग्य में सुख दुख लिखे रहते हैं वैसा ही शेक्सपियर का जन्म भी बीता है। उसके जीवन की कई घटनाओं का पता हम को उसके लेखों से चलता है। उसने अपने से बड़ी अवस्था वाली स्त्री से ब्याह किया और इस कारण उसका घरेलू जीवन यथायोग्य आनन्दमय नहीं रहा।

संसार की भाषा और शेक्सपियर।

जगत की कोई ऐसी प्रतिष्ठित भाषा नहीं जिसमें शेक्सपियर के ग्रन्थों का अनुवाद न हो गया हो। हर्ष का विषय है कि उनका अब हिन्दी में भी मान होने लगा है। मैं समझता हूँ कि लेख के लिए इतनी ही भूमिका यथेष्ट है। और इसलिए अब मैं अपने मुख्य विषय की ओर झुकता हूँ।

हिन्दी में शेक्सपियर।

हिन्दी में शेक्सपियर के ग्रन्थों के चार विभाग हो सकते हैं—(१) कहानियाँ (२) उपन्यास (३) पूर्ण नाटक (४) थियेटरी नाटक। और इसी क्रम से मैं इनका वर्णन करूँगा।

(१) कहानियाँ।

जहाँ तक मुझे मालूम है, सबसे प्रथम, शेक्सपियर के कतिपय ग्रन्थों से परिचय कराने का सौभाग्य स्वर्गवासी लाला काशीनाथ खत्री सिरसा जिला इलाहाबाद ने प्राप्त किया है। अँगरेज़ी में लैम्ब्स टेल्स Lambs Tales नामी १ ग्रन्थ है उसमें शेक्सपियर के बीस नाटकों की कहानियाँ लिखी गयीं हैं। इन्हीं कहानियों का यह हिन्दी कलेवर है। लाला काशीनाथ ने उस समय यह और अन्य ग्रन्थ लिखे हैं जिस समय हिन्दी के इने गिने लिखने वाले थे, और उसका इतना प्रचार और आदर नहीं था जितना इस समय है। मुझे शोक है कि हिन्दी-कोविद-रत्नमाला में इस हिन्दी-सेवक को स्थान नहीं मिला है। इस पुस्तक को उसने दो भागों में प्रकाशित किया था और नाम जहाँ तक मुझे स्मरण है "शेक्सपियर के मनोहर नाटकों के अनुवाद" है।

प्रथम भाग।

इसमें निम्नलिखित नौ कहानियाँ हैं—(१) वेनिस के व्योपारी का वृत्तान्त Merchant of Venice (२) शरद ऋतु की कहानी Winters

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tale, (३) कर्कशा स्त्री को सुधारने की विधि The Traning of the Shrew. (४) दो बहन भाई के रूप में अद्भुत प्रकार से भ्रम पड़ जाना Twelfth Night (५) राजा सिम्बलाइन का वृत्तान्त Cymbeline (६) अन्त में जो हो सोई ठीक है All is well that ends well (७) ऐथन्स नगर के टिमोन नामी अमीर का वृत्तान्त Timon of Athens. (८) जैसे को तैसा Measure for Measure (९) राजा पेरेकिलस का वृत्तान्त Pericles, Prince of Tyre यह छोटी सांची की ६ + १७६ पृष्ठ की पुस्तक है। छपाई काग़ज़ अच्छे हैं–मूल्य १) है और स्वर्गवासी लाला जी के पुत्र बाबू केशवचन्द्र सिरसा जिला इलाहाबाद से मिलती है। यह पहले पहल सन् १८८२ में छपी थी और तब से इसके चार संस्करण हो गये हैं। इससे ही इस पुस्तक की सर्वप्रियता पायी जाती है। इसमें अँगरेज़ी नामों के स्थान पर हिन्दुस्तानी नाम दिये गये हैं।

दूसरा भाग।

इसमें निम्नलिखित ११ कहानियाँ हैं–(१०) विरोना नगर के दो सुजन The Two Gentlemen of Verona (११) हेमलेट-डेनमार्क देश का राजकुमार Hamlet, Prince of Denmark. (१२) व्यर्थ हौरा मचाना Much ado about Nothing. (१३) रोमियो और जूलियट दो मित्र Romeo and Juliet (१४) अद्भुत भ्रम जाल The Comedy of Errors. (१५) राजा लीयर का वृत्तान्त King Lear (१६) जैसा तुम्हें पसन्द आवे करो As you like it. (१७) मेकवेथ कपटी वधिक Macbeth. (१८) ग्रीष्म ऋतु की कहानी A Midsummer Night's Dream. (१९) ओथेलो कपट के बुरे परिणाम Othello (२०) प्रचण्ड पवन The Tempest. [यहाँ पर यह लिखना उचित जान पड़ता है कि आगे इस लेख में इन्हीं संख्याओं से काम लिया जावेगा।] यह पुस्तक पहले पहल सन् १८८४ में छपी थी। यह भी छोटी सांची की है और इसमें (६ + २७६) पृष्ठ हैं। इसकी छपाई और काग़ज़ अच्छे हैं और काग़ज़ की जिल्द बँधी हुई है। मूल्य इसका १।=) है। यह भी उपरोक्त प्रथम भाग के ही सदृश लिखी गई है, परन्तु इसमें अँग्रेज़ी नाम यथावत् रहने दिये गये हैं। और उपरोक्त पते से ही मिलती है। यह पुस्तक श्रीराजा सवाई मंगलसिंह बहादर अलवर नरेश को समर्पित हुई है। मुझे यह मालूम नहीं कि अब तक इसके कितने संस्करण हुए हैं। मेरे पास लाला काशीनाथ के ही समय की प्रति है।

इन पुस्तकों को लोग इतना पसंद करते हैं कि मैंने ३। ४ बार इनको मँगाया है और इतनी ही बार यह चोरी गईं। यह अनुवाद अच्छा हुआ है और इसकी हिन्दी वाग्व्यवहार के अनुकूल और चटकीली है।

अब इन पुस्तकों की प्रतिस्पर्धी पुस्तकें शेक्सपियर कथा-गाथा छप गई है जिसका अभी वर्णन होता है। इसलिये मैं बाबू केशवचन्द्र को यह परामर्श दूंगा कि वे इन दोनों भागों को एक साथ शेक्सपियर कथा-गाथा की भाँति सचित्र छपवा कर उस ही मूल्य पर इसको भी बेचें। इससे उनकी पुस्तक की अच्छी बिक्री होगी। इसमें वर्तमान प्रथा के अनुसार विराम इत्यादि चिन्हों का और परिच्छेदों (पैरेग्राफों) का भी विचार रखना होगा।

अनुवाद में देशी नाम रहें या विलायती--इस में मतभेद है। लाला काशीनाथ ने पहले हिन्दी नामकरण किया, पीछे ज्यों के त्यों अँग्रेजी नाम रहने दिये। मेरे 'ओथेलो' के अविकल अनुवाद के विषय में भी लोगों का मतभेद है। मेरी सम्मति में जैसा इन पुस्तकों को लाला काशीनाथ ने लिखा है वैसा ही रहने देना चाहिए। इससे दोनों पक्षों की तुष्टि हो जाती है। यहाँ पर इतना कहना आवश्यक है कि लाला काशीनाथ के प्रथम भाग और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'दुर्लभ बन्धु'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जिसका वर्णन पीछे होगा) की गई आवृत्तियाँ देखते हुए जो यह कहना पड़ता है कि हिन्दी जगत् इन नाटकों का हिन्दी वेष ही पसन्द करता है परन्तु साहित्य की दृष्टि से इनका केवल भाषान्तर होना और विलायती नाम यथास्थित ही रहना यथायोग्य जँचता है।

लाला काशीनाथ ने इस पुस्तक का जो नाम दिया है उसमें अतिशयोक्ति पायी जाती है परन्तु उस समय की हिन्दी की शोचनीय दशा पर विचार करके लाला जी की यह अतिशयोक्ति क्षमा योग्य है।

शेक्सपियर कथा गाथा।

यह भी उपरोक्त लैम्ब्स टेल्स का ही अनुवाद है। इसमें भी वही पूर्वकथित २० कहानियाँ हैं। यह पुस्तक छोटी साँची की ८+५१६ पृष्ठों की है और इसका मूल्य केवल १।) है। यह बाबू रामनारायणलाल पुस्तकविक्रेता इलाहाबाद से मिलती है। इसमें मनोहर आठ चित्र भी हैं। छपाई सफ़ाई काग़ज़ भले हैं। जैसा कि ऐसे अनुवादों में बहुधा होता है कहीं २ यह लाला काशीनाथ के अनुवाद से बढ़ गया है। और कहीं २ यह उससे बहुत ही न्यून है। यह पहिले से अधिकतर अक्षरमय है। सारी पुस्तक का विचार करके यह कहा जा सकता है कि लाला काशीनाथ की हिन्दी इससे बढ़िया है। होनी भी चाहिए क्योंकि वे प्रौढ़ लेखक थे, जब कि इसके अनुवादक पं० जयविजयनारायणसिंह शर्मा हैं जिनका "यह पहला प्रयत्न है।" तथापि शर्मा जी ने जो कुछ किया है, उसके लिए वे बधाई के योग्य हैं। केवल प्राचीन-भाषा-लालित्य का विचार छोड़ कर सर्वसाधारण के लिए यह पुस्तक सस्ती है और उनका काम इससे बखूबी चल सकता है। इस पुस्तक में एक सूचीपत्र की बड़ी न्यूनता है और कहीं कहीं हिन्दी भी उत्तम होने से रह गई है। आशा है कि अगले संस्करण में यह दोष जाते रहेंगे।

इन तीनों पुस्तकों में कुछ टीका टिप्पड़ियों की भी बड़ी त्रुटि है।

हिन्दी शेक्सपियर

इसके लेखक बाबू गंगाप्रसाद एम. ए. डिप्टी कलक्टर संयुक्त प्रदेश हैं। जो एक नामी विद्वान् हैं। यह पोथी छः भागों में समाप्त हुई है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) है। छपाई सफ़ाई के बारे में इतना कहना पर्याप्त है कि वह इंडियन प्रेस, इलाहाबाद में छपी है और वहीं से मिलती है। यह उपरोक्त पुस्तकों से छोटी साँची की है।

पहले भाग में ८+१५० पृष्ठ हैं। और उसमें उपरोक्त (१३) तेरहवीं (१६) सोलहवीं, (२) दूसरी (९) नवीं, (३) तीसरी, (१५) पन्द्रहवीं कहानियाँ हैं। इसकी भूमिका में शेक्सपियर के काव्यों के विषय में कितनी ही जानने योग्य बातें लिखी हैं।

दूसरे भाग में (५) पाँचवीं (१८) अठारहवीं (१) पहली (१७) सत्रहवीं और (२०) बीसवीं कहानियाँ हैं। और इसके अतिरिक्त जूलियस सीजर Julius Coeser. (१) की कथा भी है। आरम्भ में कवीन्द्रजीवन भी दिया गया है। इसमें प्रायः सब मिला कर १३+१६५ पृष्ठ हैं।

तीसरे भाग में ११+१४९ पृष्ठ हैं और इसके आरम्भ में एक ग्यारह पृष्ठ की समालोचना दी गई है। इसमें उपरोक्त (१६) उन्नीसवीं (१४) चौदहवीं (१०) दसवीं (७) सातवीं और इंलिस्तान का राजा जौन २ King John और द्वितीय रिचार्ड ३ King Rechard II दो कहानी और हैं।

चौथे भाग में ८+१७३ पृष्ठ हैं। आरम्भ में एक लेख "शेक्सपियर का नाट्य" विषय पर है। इसमें उपरोक्त (११) ग्यारहवीं (४) चौथी (८) आठवीं कहानियां हैं। इसके अतिरिक्त (४) चतुर्थ हनरी प्रथम भाग King Henery IV Part I (५) चतुर्थ हनरी द्वितीय भाग King Henery Part II और (६) पंचम हनरी King Henery V भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम भाग में ६+१४६ पृष्ठ हैं। आरम्भ में "शेक्सपियर और स्त्रीजाति" एक लेख है। इस में उपरोक्त (१२) बारहवीं (६) छठी कहानियाँ हैं। इनके सिवाय ७ छठा हनरी प्रथम भाग King Henery VI Part I (८) छटा हनरी दूसरा भाग King Henery VI Part II (९) छटा हनरी तीसरा भाग King Henery VI Part III (१०) ऐण्टनी और क्लियोपाट्रा Antony and Cleopatra की कहानियाँ भी हैं।

छठे भाग में ८+१६२ पृष्ठ हैं। पुस्तक के आरम्भ में "शेक्सपियर और वेकन" एक लेख है। इसमें विंडसर की हँसमुख स्त्रियाँ Merry wives of Windsor निष्फलप्रेम (१२) Loves Labour Lost (१३) तृतीय रिचार्ड King Rechard III (१४) आठवाँ हनरी King Henery VIII (१५) कोरिवो लेनस Coriolonus (१६) और एंड्रोनिकस Titus Andronicus (१७) ट्रोइलस क्रेसिडा Troilus and Cressida कहानियाँ हैं।

लाला काशीनाथ के अनुवाद से और शेक्सपियर-कथागाथा से "हिन्दी-शेक्सपियर" में इतना भेद है कि उसमें ६ अग्रलेख अधिक हैं जिन का ऊपर वर्णन है और उपरोक्त १७ कहानियाँ भी अधिक हैं एवं यत्र तत्र सूक्ष्म रीति से मनोरंजक वार्त्तालाप विशेष भी दिये गये हैं। प्रत्येक भाग का श्रीगणेश विद्वानों के लेखों से कुछ अंग्रेजी अवतरण देकर किया गया है। छै अग्रलेख जो आरम्भ में दिये गये हैं, वे महत्त्व के हैं। औरों के बारे में कुछ टीकाटिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। पाँचवें लेख में स्त्रियों के साथ हिन्दुओं के व्यवहार के विषय में कहीं २ व्यर्थ आक्षेप किये गये हैं। हमारे अधिकांश घरों में इस समय भी स्त्रियों का ही राज्य है। बुरे लोग यहीं क्या विलायत में भी जहाँ शेक्सपियर की जन्मभूमि है स्त्रियों के साथ कुत्सित व्यवहार करते हैं और करते आये हैं। छटा लेख जो "शेक्सपियर और वेकन" नाम का है उसमें इस बात पर विचार किया गया है कि जो ग्रंथ शेक्सपियर के नाम से हैं वे वास्तव में शेक्सपियर के ही हैं या तत्त्ववेत्ता वेकन के। युक्ति द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि वे शेक्सपियर के ही हैं। भाषा अच्छी है, पुस्तक लेने योग्य है। परन्तु इस पुस्तक का नाम "हिन्दी शेक्सपियर" अतिशयोक्ति है। क्योंकि इसमें न तो शेक्सपियर की छ कविताओं के ही सार आये हैं और न अवशिष्ट दो नाटक 'दो कुलीन बन्धु' The two Noble Kinsmen और राजा तीसरा इडवर्ड Edward III ही की कहानियाँ आई हैं। कहानियों मात्र से "हिन्दी शेक्सपियर" नामधारी पुस्तक का लाघव है, गौरव नहीं। आरम्भ में सोनहले पदों की भाँति जो अंग्रेजी के अवतरण दिये गये हैं उनका उल्था भी हिन्दी में नहीं दिया गया है। ऐसा अवश्य होना चाहिये था क्योंकि पुस्तक हिन्दी पढ़ने वालों के लिए लिखी गई है न कि अंग्रेजीदानों के लिए। टीका टिप्पणियों की भी कसर है। कहीं २ अग्र लेखों में भी ऐसी त्रुटियाँ रह गई हैं। कहीं २ अंग्रेजी से उल्था करने में भी भूल हो गई है। परन्तु एक कार्यभार से लदे हुए डिप्टीकलक्टर लेखक के लिए ये क्षमायोग्य हैं। जब कि एक हिन्दी के व्यापारी छापेखाने में पुस्तक छपी है उसका मोल ३) तीन रुपया बहुत मालूम पड़ता है। यदि १॥) या २) होता तो अच्छा होता। यह पुस्तक सन १९१३ और १९१४ में छपी है।

मेरी सम्मति में यदि बाबू जी केवल नई १७ (सत्रह) कहानी और ६ अग्रलेख ही छापते तो अच्छा था। शेष लिखने में जो परिश्रम हुआ है यदि वह पूर्ण अनुवाद करने में लगता तो बेहतर होता। हमें अब अधिकतर ध्यान नाटकों के पूर्ण अनुवाद करने में देना चाहिए। कहानियों की भरमार बहुत हो चुकी है। कई हिन्दीपत्रों में शेक्सपियर की कहानियाँ छपी हैं परन्तु मुझे मालूम नहीं कि वे पुस्तकाकार भी मुद्रित हुई हैं या नहीं।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) उपन्यास

"ओथेलो"

यह 'ओथेलो' नामी नाटक का छोटा उपन्यास रूप है। यह बहुत छोटी साँची की ६० पृष्ठों की पुस्तक है। इसका मूल्य ≡) है और यह कई पुस्तक विक्रेताओं (जैसे उपन्यास बहार आफ़िस काशी) से मिलती है। इसके लेखक बाबू गदाधरसिंह (अनुवादक कादम्बरी, दुर्गेशनन्दनी, वंगविजेता) हैं। सम्भवतः यह बङ्गला से अनुवाद किया गया है। यह पढ़ने के योग्य है। इसकी रचना का काल १८९४ ई० है।

"तूफान"

यह टेम्पेस्ट का उपाख्यान है। इसमें छोटी साँची के १६ पृष्ठ हैं। इसके लेखक हिन्दी में प्रसिद्धि प्राप्त पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी हैं। पुस्तक का मूल्य ⁄) है। उपरोक्त पते से यह भी मिलती है। हिन्दी इसकी चटकीली है। यह सन् १९०२ ई० में लिखी गयी है।

"रोमियो जुलियट"

यह शेक्सपियर के उपरोक्त नाटक का आख्यान पण्डित चतुर्भुज औदीच्य द्वारा लिखा गया है। इसमें भी छोटी साँची के ६० पृष्ठ हैं और मूल्य ≡) है। यह उपन्यासबहार काशी से मिलती है। यह भी बंगला का अनुवाद होना समझा जाता है, और वह अच्छा हुआ है। इसका रचनाकाल १९११ है।

"बादशाह लियर"

यह किंग लियर नाटक का उपन्यास रूप है। इसके लेखक भी उपरोक्त पंडित चतुर्भुज औदीच्य हैं। यह शेक्सपियर ग्रन्थमाला नं० १ है। इससे पाया जाता है कि अभी और भी इस कक्षा की पुस्तकें छपेंगी। इसमें छोटी साँची के ७८ पृष्ठ हैं। छपाई सफ़ाई और काग़ज़ अच्छे हैं। मूल्य ≡) है। यह बंगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीहारानचन्द्र रक्षित के एक आख्यान का हिन्दी अनुवाद है और इसका भी रचना काल १९१९ है। मिलने का पता हरिदास कम्पनी २०१ हरिसन रोड, सदा सुख का कटरा, कलकत्ता है। अनुवाद रोचक है लेखक लिखते हैं कि "शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करना मेरे जैसे मनुष्य का काम नहीं है।" परन्तु आपकी हिन्दी देख कर तो यही बोध होता है कि वे इस कार्य के योग्य हैं। और उन्हें यह करना चाहिये। इसमें अधिक तर भलाई होगी।

खेद का विषय है कि पुस्तकविक्रेता "तूफान "रोमियो जुलियट" "और" "बादशाह लियर" को मूल नाटकों का अनुवाद बतलाते हैं जो वास्तव में वे नहीं हैं।

और उपन्यास

लेखक, बाबू गोविन्ददास।

निम्न लिखित तीन नाटक बाबू गोविन्ददास ने लिखे हैं और इनके मिलने का पता सेक्रेटरी शारदाभवन लाइब्रेरी, गोपालनिवास, हनुमान ताल, जबलपुर सी. पी. है। पहले कुछ पुस्तकें इन्होंने अपने उपनाम प्रसू सरस्वतीप्रियः से प्रकाशित की थीं। ऐसा पाया जाता है कि इसी ढंग की वे और भी पुस्तक लिखने वाले हैं इनमें से 'व्यर्थ सन्देह' (विंटर्स टेल) 'दुष्टात्मा' (मैकवेथ) 'विकट सेनापति' (ओथेलो) "टू जेंटल मेन औफ़ विरोना" 'सिम्बेलीन' 'ट्वेल्फ़्थ नाइट' के बनाये जाने की सूचना मिल चुकी है।

इन उपन्यासों में शेक्सपियर के नाटकों का सार लेने का उद्योग किया है। और उन्हें पूरा पूरा हिन्दुस्तानी जामा पहिनाया गया है। यहाँ तक कि नाम और जाति तो हुई ही प्रत्युत दृश्य भी भारतवर्षीय ही बनाये गये हैं, यत्र तत्र हिन्दी संस्कृत और मौलवी हिन्दी (उर्दू) के पद्यों के अवतरण भी दिये गये हैं। योग्य लेखक ने स्वयं भी कुछ पद्यों की रचना की है। पुस्तकों को यथाशक्य रोचक बनाने में आपने कोई बात उठा नहीं रक्खी और इसमें सन्देह नहीं कि अपने ढंग की ये पुस्तकें निराली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा पाया जाता है कि लेखक महाशय पुरानी हिन्दी, वर्तमान हिन्दी, संस्कृत, मौलवी हिन्दी (उर्दू) और अँगरेज़ी के विद्वान् हैं। मेरी राय में यदि आप अपनी इस योग्यता को शेक्सपियर के पूर्ण अनुवाद करने में लगाते तो अच्छा होता। ऐसा करने से उनमें इनसे अधिकतर आनन्द आता। और पाठकों का अधिक लाभ होता। यही नहीं दीन हिन्दी के प्रायः छोटे भांडार की वृद्धि भी होती। इन उपन्यासों को सांगोपांग स्वदेशी बनाने का प्रयत्न किया गया है सही परन्तु फिर भी कहीं कहीं विदेशी गन्ध नहीं गयी है और वह प्रकृति के विरुद्ध मालूम पड़ती है।

इन पुस्तकों में भी "हिन्दी शेक्सपियर" की भाँति अँगरेज़ी के सोनहले पद यत्र तत्र उद्धृत किये गये हैं। परन्तु इनका उल्था हिन्दी में नहीं किया गया है। ऐसा अवश्य होना चाहिये था क्योंकि पुस्तक हिन्दी पाठकों के लिए रची गई है। छपाई काग़ज़ इन पुस्तकों का साधारण है। और सब छोटी साँची की हैं।

सुरेन्द्र सुन्दरी

यह "रोमियो जुलियट" का उपन्यास रूप है सन् १९१४ ई० में छपा है। इसमें १०९ पृष्ठ हैं। मूल्य ॥) है।

कृष्णकामिनी

यह 'ऐज़ यू लाइक इट' का उपन्यास रूप है। १९१५ ई० में छपा है। इसमें ८८ पृष्ठ हैं। मूल्य ।-) है।

होनहार

यह 'पैरे क्लीज़' का उपन्यास रूप है। इसमें १४२ पृष्ठ हैं। यह १९१५ ई० में छपा है। इसका मूल्य ॥=) है।

(३) पूर्ण नाटक

दुर्लभ बन्धु

अर्थात्

वंशपुर का महाजन

पूर्ण नाटकों में सबसे प्रथम उल्था किया गया, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का (१) मर्चेंट औफ वेनिस का अनुवाद, दुर्लभबन्धु मेरे देखने में आया है। लाला काशीनाथ ने इसे वेनिस का व्यापारी नाम दिया है। इस समय इसका तीसरा संस्करण १९१३ का छप रहा है। इससे पाया जाता है कि हिन्दी संसार ने इसका आदर किया है। यह संयोगान्त है यह १२८ पृष्ठों की छोटी साँची की पुस्तक है। काग़ज़, सफ़ाई, छपाई सब अच्छे हैं। पुस्तक का मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं, परन्तु ।॥) में यह उपन्यास बहार आफ़िस, काशी से मिलती है। पुस्तक में भारतेन्दु लिखित कोई प्रस्तावना नहीं इससे पुस्तक के लिखने का ठीक समय नहीं कहा जा सकता है। भारतेन्दु १८८५ ई० में अस्त हुआ है। सो इससे पहले यह पुस्तक कदाचित् १८८० ई० के समीप रची गई होगी।

भारतेन्दु ने अपने अनुवाद में जहाँ तक हो सका है शेक्सपियर के पूर्णभाव दरशाने का प्रयत्न किया है। और वह इसमें सफलप्रयत्न भी हुआ। मूल शब्दों का प्रतिबिम्ब खींचने की ओर उसने अधिक ध्यान नहीं दिया है। हिन्दी की मनोहरता के विषय में क्या कहना है, वह उत्तम सांचे में ढली हुई है। नाम, धाम, स्थान और देश इत्यादि भी इसमें सब स्वदेशी ढांचे पर रक्खे गये हैं।

भारतेन्दु ने एक अंगरेज़-रमणी के नाक को गोद कर उसमें एक बेसर पहना दी है, कानों को छेदकर उनमें बालियां डाल दी हैं, माथे में तिलक बनाकर बिन्दी लगा दी है, और सिर में मांग निकाल कर उसे रोली से विभूषित कर दिया है। आँखों में काजल लगा दिया है, और गले को पंचलड़ी हार इत्यादि डालकर सुशोभित कर दिया है। हाथों में पहुँची कंकण और चूड़ियां, बाजुओं में बाजूबन्द, कमर में करधनी और पैरों में पायज़ेब, छड़े कड़े इत्यादि पहना दिये हैं, सुन्दर बनारसी साड़ी और अंगिया से भी उसे सुसज्जित कर दिया है, हिन्दी भाषा भी उसे खूब सिखला दी है, वह बावन तोला पाव रत्ती आर्यसमाजी बन गई है। परन्तु उसकी बासना नहीं गई। सूकर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांस पर फिर भी उसकी राल टपकती है (८८ पृष्ठ देखिये) इस नाटक में आवश्यक टीका टिप्पणियों की न्यूनता है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को पढ़नी चाहिए।

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ के पूर्ण नाटक।

पुरोहित जी ने तीन नाटकों का पूर्ण अनुवाद किया है (१६) " ऐज़ यू लाइक इट " का १८९६ ई० में इसका नाम उन्होंने मनभावन रक्खा है। इसीमें उन्होंने (१३) "रोमियो और जूलियट" का अनुवाद किया है और उसका नाम " प्रेमलीला " रक्खा है। सन् १९०४ में उन्होंने (१) "वेनिस का व्यापारी" लिखा है। उसका उल्लेख "दुर्लभबन्धु" के नाम से मैं ऊपर कर आया हूँ।

प्रथम दो पुस्तकें ग्रन्थकर्ता महाशय से जैपुर के पते से मिलती हैं। और तीसरी पुस्तक वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से भी मिल सकती है। काग़ज़ छपाई, छपाई सब की अच्छी है।

"मनभावन" में ६+१२८ पृष्ठ हैं। साँची ९×५" है इसमें काग़ज़ की जिल्द भी बंधी हुई है। मूल्य इसका १) है यह संयोगांत है।

" प्रेमलीला " में ६+१७८ पृष्ठ हैं। साँची ९×५" है। इसका मोल भी एक कलदार है। यह वियोगांत है।

"वेनिस का व्यापारी" इसमें छोटी साँची के ८४ पृष्ठ हैं। इसका टाइप बारीक है। इसकी पीछावर भी एक ही मुद्रा है। पुस्तक पर लिखा नहीं। यह संयोगांत है।

ये तीनों पुस्तकें इतनी मनोरंजक हैं कि मैंने इनको कई बार मँगाया और ये चोरी गईं। ये संग्रह करने योग्य हैं।

नाटकों का अनुवाद प्रायः अक्षरमय हुआ है और मूल के नाटकपात्रों के नाम यथावत् रहने दिये गये हैं। पुरोहित महाशय हिन्दीभाषा-भाषियों के धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने राज-काज के झंझटों से समय बचा कर ऐसी साहित्य-सेवा की है। इन नाटकों के पढ़ने से शेक्सपियर के भाव अधिकांश ज्यों के त्यों विदित हो जाते हैं। यदि सटीक पुस्तकों से लेखक महाशय अनुवाद करते तो भद्रतर होता। ऐसा न होने से और अनुवाद अक्षरमय होने से कहीं कहीं अनुवाद क्लिष्ट हो गया है और समझ में नहीं आता। कई जगह भाषा की शुद्धता पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। "चूँकि, अगरचे, मगरचे" इत्यादि कई जगह बहुत बुरे खटकते हैं। साधारणतः जैसा विषय वैसी ही भाषा भी होनी चाहिए। आशा है कि इन पुस्तकों के और संस्करण छपने पर पुरोहित महोदय इन छोटी छोटी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। पुस्तकों में यथायोग्य पाद-टिप्पणियाँ दी गयी हैं और इनसे समझने में अच्छी सहायता मिलती है। लेखक महाशय बधाई के योग्य हैं कि हिन्दी-पाठकों को सबसे प्रथम शेक्सपियर की चाशनी उन्होंने ही इस प्रकार चखायी है।

भारतेन्दु और पुरोहित

जैसा ऊपर कहा गया है भारतेन्दु ने "दुर्लभ बन्धु" लिखा और पुरोहितजी ने उसी को "वेनिस का व्यापारी" बनाया है। भारतेन्दु का स्वतन्त्र भाषान्तर है और पुरोहितजी का प्रायः अक्षरमय अनुवाद है। भारतेन्दु की भाषा और कविता स्वभावतः बहुत सौन्दर्यमय है। पुरोहितजी की उतनी नहीं। भारतेन्दु ने अँगरेज़-रमणी को ख़ासी आर्य (समाजी)-ललना बना डाला है। पुरोहित जी ने उसकी भाषा मात्र बदली है, परन्तु रक्खी है उसे अँगरेज़न ही।

स्नेह-परीक्षा
अर्थात्
किंग लियर

यह (१५) किंग लियर का अनुवाद है। इसमें छोटी साँची के १४० पृष्ठ हैं। कपड़े की जिल्द बँधी हुई है। पुस्तक पर क़ीमत लिखी नहीं। मुझे ऐसा स्मरण है कि मैंने इसे १) में लिया है। इसके लेखक हैं, पण्डित बद्रीनारायण बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलर्क मेडिकल डिपार्टमेण्ट जयपुर। पुस्तक श्रीवेंकटेश्वर प्रेस से मिलती है और उसी के नामी स्वामी श्रीयुत सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी को अर्पण हुई है। यह, १९०३ ई० में पुरोहितजी के 'वेनिस के व्यापारी' से पहले छपी है। यह वियोगांत है।

अनुवाद बहुत ही साधारण कक्षा का है। कई जगह उसमें अनुवादक ने भूलें की हैं। भाषा भी प्रान्तीय है और यत्र तत्र वाग्व्यवहार के प्रतिकूल है। कई स्थानों पर यह समझ में भी नहीं आती। यदि इस पुस्तक को लेखक महाशय छपने से पहिले किसी अच्छे हिन्दी जाननेवाले को दिखला देते तो अच्छा होता। तो भी लेखक का परिश्रम प्रशंसा योग्य है। पुस्तक पढ़ने से नाटक का मुख्य प्रसंग समझ में आ जाता है। हिन्दी में नाटक का नाम "स्नेह-परीक्षा" बहुत ही ठीक है।

जयन्त

यह (११) हेमलेट डेनमार्क देश के राजकुमार का उल्था है। इसके लेखक बाबू गणपति कृष्ण गुर्जर हैं। और प्रकाशक ग्रन्थप्रकाशक समिति काशी। मूल्य बिना जिल्द १) काग़ज़ की जिल्द १।) और कपड़े की जिल्द का १॥) है। छपाई, सफ़ाई सुन्दर और काग़ज़ अच्छे हैं। नाटक के आरम्भ में १४ पृष्ठ की एक प्रस्तावना है, जिसमें विशेषतः अनुवादसम्बन्धी कई मनोहर बातें लिखी गयी हैं।

नाटक के नाम धाम सब बदल कर हिन्दी बनाये गये हैं। किसी किसी विद्वान् की सम्मति में 'हेमलेट' नाटक शेक्सपियर के सब नाटकों में सबसे ऊँची कक्षा का है। यह वियोगांत है।

यह उल्था अच्छा हुआ है। कहीं कहीं स्वतंत्र अनुवाद है और कहीं अक्षरमय। भाषा भी ख़ासी है।

इसको तीन विद्वानों ने मिलकर बनाया है। द्वंद भाग जो कहीं कहीं बहुत थोड़ा है, प्रख्यात पण्डित रूपनारायण पाण्डेय और पण्डित गोविन्द-शास्त्री दूबेकर की रचना है। परन्तु उसमें अधिकांश भावार्थ ही आया है। शब्दार्थ नहीं। कहीं कहीं भावार्थ भी ठीक नहीं आया है। कहीं कहीं फ़ारसी के शब्द निष्प्रयोजन लाये गये हैं, जहाँ हिन्दी के सुगम सुबोध शब्द मिल सकते थे।

लाला सीताराम बी० ए० अवसरप्राप्त डिपटी कलेक्टर, उपनाम भूप कवि

भूप कवि ने शेक्सपियर के सब नाटकों के हिन्दी में उल्था करने की प्रतिज्ञा की है। और इस प्रतिज्ञा के अनुसार निम्नलिखित आठ नाटक प्रकाशित भी हो गये हैं। छपाई सफ़ाई और काग़ज़ सबके सुन्दर हैं और ये बाबू रामनारायण लाल पुस्तकविक्रेता इलाहाबाद से मिलती हैं। साँची छोटी है। ये सब ग्रन्थ १९१५ में छपे हैं।

(१) 'भूल भुलैयां' (सुखांत) जो ऊपर नं० (१४) अद्भुत भ्रम जाल के नाम से आया है। इसमें ७८ पृष्ठ हैं और मोल ।) है।

(२) 'मनमोहन का जाल' (सुखांत) यह ऊपर नम्बर (१२) में व्यर्थ हीरा मचाने के नाम से आया है। इसमें १०८ पृष्ठ हैं मोल ।-)

(३) 'जंगल में मंगल' (सुखांत) यह नम्बर (२०) में "प्रचण्ड पवन" के नाम से आया है। इसमें ८६ पृष्ठ हैं और मोल ।-) है।

(४) "हेमलेट" (सुखांत) यह ऊपर नम्बर (२१) में हेमलेट डेनमार्क देश का राजकुमार नाम से आया है। इसमें १५२ पृष्ठ हैं। मोल ।≈) है।

(५) "राजा लियर" (सुखांत) यह ऊपर नम्बर (१५) में राजा लियर का वृत्तान्त नाम से आया है इसमें १४२ पृष्ठ हैं। मोल ।≈) है।

(६) राजा रिचर्ड दूसरा (दुखांत) इसमें ११५ पृष्ठ हैं। मोल ।≈) है। इसका नामोल्लेख भी ऊपर हो चुका है।

(७) "बगुला भगत" (सुखांत) यह ऊपर नम्बर (८) में "जैसे को तैसा" मेजर फौर मेजर नाम से आया है। इसमें ११० पृष्ठ हैं। और मोल ।≈) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा विदित होता है कि (१३) रोमियो और जूलिएट "प्रेमपरिणाम" के नाम से और (१९) ओथेलो शीघ्र छपनेवाले हैं।

प्रत्येक पुस्तक के आगे सब में एक ही ८ पृष्ठ की भूमिका है और उसकी कहानी का संक्षेप भी दिया गया है।

भूप कवि के हिन्दी-प्रेम, अध्यवसाय और बल की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस समय इसकी अवस्था ५६ वर्ष की है और यह पुस्तक-लेखन में लगा हुआ है। इससे छोटी आयु वालों को इसका अनुकरण करना चाहिए। मुझे अनुवाद का काम करना पड़ा है और मैं जानता हूँ कि इसमें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। खेल खेलना कठिन और दर्शक होना सुगम होता है। खिलारियों की त्रुटियाँ देखने में दर्शकों को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता परन्तु खिलारी जानते हैं कि उन पर क्या बीतती है। मैंने जो समालोचक का भार अपने सिर पर लिया है इसलिए मुझे कुछ-सच्ची किन्तु रूखी बातें कहनी पड़ेंगी। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

इनके नाटकों के उल्थे बहुत अच्छे हैं। और प्रत्येक हिन्दीभाषाभाषी को पढ़ने या सुनने चाहिएं – अधिकांश अक्षरमय हैं। कई जगह केवल भावार्थ देकर संतोष किया गया है। कवि ने भावार्थ देने का ही प्रयत्न किया है। किन्तु नाटकों के पढ़ने से ऐसा पाया जाता है कि कवि ने बड़ी शीघ्रता से इन्हें बनाया है और एक बार लिखकर इन्हें फिर नहीं दुहराया। इसमें कोई नाटक ऐसा नहीं है जिसकी भाषा में कई स्थलों पर कुछ बेढंगापन न आया हो और इबारत उखड़ी हुई न जान पड़ती हो। फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी कई स्थान पर अनावश्यक किया गया है। आशा है कि अगले संस्करणों में ये दोष दूर हो जावेंगे।

तुलना।

भूप कवि का 'राजा लियर' उपरोक्त "स्नेह-परीक्षा अर्थात् किंग लियर" से बहुत ही अच्छा है।

"जयंत" का गद्य सब मिलाकर भूप कवि के गद्य से अच्छा विदित होता है परन्तु पद्य वैसा अच्छा नहीं है। और जितना आवश्यक पद्य भूप ने लिखा है उतना जयंत में नहीं। उदाहरणार्थ – पोलो निअस ने अपने लड़के लयेर्टीज़ को जो हितोपदेश दिये हैं भूप ने पद्य में दिये हैं, जयंत में गद्य में ही दिये गये हैं। दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में नटों का, कवि भूप लिखित पद्य जयंत की अपेक्षा मूल से अधिक तर मिलता है। पाँचवें अंक के दूसरे दृश्य के पदों की भी यही दशा है।

जयंत की कविता खड़ी बोली में लिखी गई है कवि भूप की विशेष कर अवधी में। यहाँ कुछ बहुत प्रचलित वाक्य उद्धृत करने उचित समझे जाते हैं—मूल Something is rotten in the state of Denmark.

जयंत—इस बल भद्र देश में कोई ख़राबी अवश्य हुई है।

कवि भूप—डेनमार्क के राज में कुछ बिगड़ा है।

मूल—To be or not to be that is the qnstion.

जयंत – जीना या मरना बस यही एक प्रश्न है।

कवि भूप—बात तो यह है कि इस दुनियाँ में रहना चाहिए या नहीं।

मूल—Look here upon this picture and on this.

जयंत—यह चित्र देख और इस चित्र को भी देख।

कवि भूप—इस चित्र को देख और उसको देखो।

पाठक इसी से विचार कर लें कि कौन अनुवाद भद्रतर है और ये अनुवाद कैसे बने हैं। भूप के नाटकों में आवश्यक टीका-टिप्पणियों की बड़ी त्रुटि है।

(१८) ओथेलो।

इसका अनुवाद मैंने किया है। यह भी १९१५ में छपा है इसमें २३ + १६८ पृष्ठ हैं। सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनहरी कपड़े की जिल्द बंधी है। और मूल्य है केवल ॥) यह पुस्तक संयुक्त प्रान्त के वर्त्तमान लाट महोदय सर जेम्स मेस्टन को अर्पित हुई है। इसका मिलने का पता लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद है। यह शेक्सपियर नाटक-माला का प्रथम पुष्प है।

मैं अपने आप इस पुस्तक के विषय में कुछ नहीं लिख सकता। समाचारपत्रों ने और विद्वानों ने जो कहा है वही उद्धृत किये देता हूँ। "यह अविकल अनुवाद है। इसकी छपाई सफ़ाई-काग़ज़ तथा उपयोगिता को देखते हुए इसका मूल्य आठ आने बहुत ही कम है।" "यह पुस्तक सुचारु और सुबोध शैली में लिखी गई है।" इसमें २३ पृष्ठों की प्रस्तावना दी गई है। इसमें अँग्रेज़ टीकाकारों की भाँति नाटक की घटना का समय, बनने का समय, नाटक का आभाष, नाटक पात्रों के चरित्र इत्यादि की व्याख्या की गई है। यह हिन्दी में निरी नई बात है। सर जियोर्ज ग्रियर्सन भारत वर्ष की भाषाओं के उद्भट विद्वान् इस अनुवाद को उत्तम Excelleut बतलाते हैं।

(४) थियेटरी नाटक।

मैंने निम्नलिखित नाटक उपन्यास बहार आफ़िस काशी से मंगाये हैं-इनकी छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ अच्छे हैं। वहाँ, इसी ढंग के नाटक और भी छप रहे हैं। सबकी साँची छोटी है। ये वही नाटक हैं जिन्हें पारसी नाटक कंपनी खेला करती है। इनकी भाषा मौलवी-हिन्दी है। और इनमें मूल की कथाओं की छाया मात्र आ गई है। ये पूरे २ मुसलमानी ढंग के बनाये गये हैं। साहित्य की दृष्टि से ये किसी काम के नहीं और शेक्सपियर की आत्मा इनको देखकर आँसू बहाती होगी! परन्तु लोगों की भिन्न मतियाँ होती हैं। थियेटर के और मौलवी-हिन्दी के शौक़ीन इन्हें चाहें तो ले सकते हैं। (१) दिलफ़रोश नाटक (सुखांत) यह (१) मर्चेंट औव वेनिश का तमाशा है। इसमें ४+११२ पृष्ठ हैं। मूल्य ।≠) है

(२) काली नागिन (दुखांत) यह जूलियस सीज़र का तमाशा है। इसमें १०+१४५ पृष्ठ हैं। मूल्य ॥) है।

(३) भूल भुलैयाँ नाटक (सुखान्त)। यह (१४) नाटक का तमाशा है। इसमें ६+१०३ पृष्ठ हैं। मूल्य ।≠) है।

आगे जो शेक्सपियर के लेख छपेंगे, और यदि उनका मुझे पता मिलगया तो उनकी आलोचना भी यथासमय की जावेगी।

गोविन्दप्रसाद घिलडयाल
(बी. ए., डिप्टी कलक्टर)

हरिश्चन्द्र-तारामती

(इन्द्रवज्रा)

दानी हरिश्चन्द्र महानुभाव।
थे सत्यधारी अमित प्रभाव॥
सर्वस्वही कौशिक को दिया था।
वदान्यता को वश में किया था॥ १॥

थी दक्षिणा शेष तदर्थ राजा।
चाण्डाल का सेवक साज साजा॥
प्रिया तथा पुत्र समेत आप।
बिके, कि देदेंन मुनीश शाप॥ २॥

श्मशान में थे कर वे चुकाते।
दाहार्थ जो थे शव, लोग लाते॥
वैसा वहाँ वेष बना लिया था।
स्वकर्म सच्चा अपना लिया था॥ ३॥

चाण्डाल के गेह किये निवास।
दासी बनी थी तज के विलास॥
तारामती सत्य सुरक्षणार्थ।
छोड़े सभी सौख्य समस्त स्वार्थ॥ ४॥

था रोहिताश्वाभिध एक बाल।
वो भी बना सेवक बाल्यकाल॥
तड़ाग में पद्महितार्थ जाता।
था स्वामि के हेतु सदैव लाता॥ ५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिश्चन्द्र—तारामती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे डसा पन्नग* ने तुरन्त ।
हुआ वहाँ बालक जीवनान्त ॥
तारामती का वह नेत्रतारा ।
भविष्य का जीवन प्राणप्यारा ॥ ६ ॥
चला गया स्वर्ग तजा सुदेह ।
माता पिता मित्र समाज गेह ॥
तारामती विह्वल रोरही थी ।
निराश दुःखाकुल हो रही थी ॥ ७ ॥
हा ! भाग्य का चक्र बड़ा बली है ।
नहीं किसी की इससे चली है ॥
कभी न लीला इसकी टली है ।
भगे बचे कौन भली गली है ? ॥ ८ ॥
श्मशान में हा ! मृत पुत्र लाई ।
वहाँ स्वयं हन्त ! चिता बनाई ॥
उसे जलाने वह जा रही थी ।
वार्ता यही भूपति ने कही थी ॥ ९ ॥
" आज्ञा बिना तू शव क्यों जलाती ।
करार्थ है वित्त न शीघ्र लाती ! ॥ "
खींचा चिता से शव भूप ने था ।
कैसी कड़ी है ! करुणाभरी कथा ॥१०॥
दशा देखी रानी, विकल बिलखाने जब लगी ।
महादीना आँसू, नयन बरसाने जब लगी ॥
अहा ! देखा जाना, तुरत पहिचाना नृपति ने ।
हुये निस्तब्धात्मा, विकलित किया दैवगति ने ॥११॥
अहा ! कैसे कोई, विकट दुख में धीर धरता ।
नहीं कोई मित्रो ! कठिन दुख की पीर हरता ॥
महाराजा जो थे, सकल सुख के मङ्गल लहे ।
वही रोते धोते, विकट दुख से हैं जल रहे ॥ १२ ॥
अहा सत्यात्मा थे, अटल अपने मार्ग पर थे ।
अहो ! ऐसे ज्ञानी, हृदय बल से भूप वर थे ॥
प्रतापी धन्यात्मा विदिततम दानी नृपति थे ।
बड़े सत्यग्राही अतिशय सुखी थे सुमति थे ॥ १३ ॥
भली भाग्यों की भी, विकट घटना क्या अटल है ।
भरा धर्मों में भी, अहह ! कितना तीव्र बल है ? ॥
सहस्रों बाधायें, सहन करते थे नर अहा ! ।
उसी राजा का है, विहर धरती में यश रहा ॥१४॥
इन्ही भावों से है, भरित घटना चित्रित यहाँ ।
हुये ऐसे सत्य,-ग्रह पर भला हैं नृप कहाँ ? ॥
उसी पृथ्वी में हा ! कुल अनृत काहो पटल है ।
बढ़े मिथ्यावादी, मनुजमनमाया अटल है ॥ १५ ॥

महेश्वरप्रसाद मिश्र

निर्मोही दीपक

[१]

अब दीप ! तव निर्मोहता हमने भलीविधि जानली
प्रिय ! सत्य तू ही देवता क्यों धूर्तता यह ठानली ॥

[२]

सुन्दर तुम्हारा रूप अनुपम मानते सब लोग हैं ।
तू नित जलाता जीव लक्षों क्या यही सुख भोग हैं ॥

[३]

हैं कीट अरु पातंग कितने दर्श तेरा चाहते ।
हे मोह त्यागी ! प्रेयसों को व्यर्थ ही तुम दाहते ॥

[४]

बहु दीन के युत-पङ्ख आतीं दर्श करने के लिये ।
तुम दर्श करने दो, न दो, पर नाश क्यों उनके किये ॥

[५]

तम नाश करते हो तुम्हीं, कज्जल बनाते हो तुम्हीं ।
नित तैल अरु बत्ती जलें पर, नाम पाते हो तुम्हीं ॥

[६]

इस विश्व में भी है यही दिखता कहीं हैं ना भला ।
हम प्रेम करते हैं जिन्हें हा ! काटते वे ही गला ॥

[७]

अब, स्वार्थ-वश सब मंध हैं अपकार करना जानते ।
हृकालिमा में सन रहे उन्नति यहीं तक मानते ॥

[८]

'निर्मोह दीपक' नाश तम करता हमारे ही लिये ।
चलकर प्रभापथ भारतीयो ! देश उन्नति कीजिये ॥

'दास'

---

* सर्प ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च साहित्य।

सरस्वती के दफ़्तर से 'मनोरमा' के सम्पादकों को "संस्कृतज्ञ" का भारी डिप्लोमा मिला है। इसके लिए हम दोनों सम्पादकों को अलग अलग बधाई देते हैं।

*

मिस्टर गोपाल! अब की बार जब तुम कोई पुस्तक लिखो, ऊटपटांग चाहे जो कुछ लिख देना पर ७२ पृष्ठ से कम न रखना!

*

परीक्षा के स्थान में आजकल परिचय होने लगा है। यही कारण है कि साप्ताहिक पत्र का भी पुस्तकों में शुमार होने लगा।

*

ऋषिकुमार जी! ग़ज़ल उद्धृत करते समय, पत्रिका का नाम तो लिख दिया होता!

*

पण्डित शिवकुमार शास्त्री की राय है कि यह "एकता" बिना वर्णभेद को नाश किये कभी प्राप्त नहीं हो सकती!

*

पण्डित बालचन्द्र शास्त्री "विद्यावाचस्पति" बड़े विद्वान् आदमी हैं। आपका यह लिखना बिलकुल ठीक है कि "यस्य यद्रोचते तदेव तस्य मतम्" इति।

*

सुकुल जी को घिलडयाल जी की पुस्तक का प्राप्तिस्थान लिख देना चाहिये था।

*

साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्मा जैसा सुसंस्कृतज्ञ हिन्दी भाषा में शायद ही कोई हो। इस लिए कि वह साहित्याचार्य हैं और वेद, शास्त्रों के क़ायल नहीं।

*

१३ अक्तूबर के एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र में (जो पाठकों के पास १८ को पहुँचा है) सम्पादक महाशय समाचार देते हैं, झांसी की सभाएँ ७ ता० से न होकर ८ ता० से आरम्भ होंगी"। आपको अपने पाठकों को वहाँ सम्मिलित होने के लिए भेज देना चाहिये था।

*

पाठकजी के श्रीगोपिका गीत की एक कर्मचारी ने बड़ी मज़ेदार आलोचना की है। देखें, पाठक जी क्या उत्तर देते हैं। हम तो यही कहेंगे कि कर्म्मचारी जी को यह समझ कर सन्तोष कर लेना चाहिए था कि "महतां दूषणमपि भूषणम्"

*

'हिमालय' के साफ़ गो महाशय! पहिले अपना सुधार तो कर लिजिये! भंगी होने से पहिले अपना सुधार कर लेना चाहिये।

"मर्मज्ञ"

नागरी

अमर पूजित भारत देश में,
यदपि हैं, लसतीं, बहु रूप से।
लिपि, मनोज्ञ, महागुण से भरी,
तदपि है शिर भूषण नागरी॥ १॥

परम सुन्दर और पुनीत है,
मृदुल है अति ही सुखभौन भी।
मधुर है, गत संशय से तथा,
सरल है अति ही प्रिय नागरी॥ २॥

सकल मानव! भारत देश के,
हृदय में निज आप विचारिये।
उपल१ को लहि भूलत अन्न के,
सुमणिसी२ तज के निज नागरी॥३॥

परम जीवन भारत देश के,
ऋषि वशिष्ट पराशर आदि भी।
श्रुति, पुराण तथा इतिहास की,
सकल थे रखते लिपि नागरी॥ ४॥

मनुज जो द्रुम काट रसाल३ को,
कनक४ को तरु सींचत प्रेम से,
अधम कौन भला उससे कहो?
लिखत और लिपी तज नागरी॥५॥

सिद्धनाथ मिश्र "मयंक"

---

१ पत्थर। २ हीरा। ३ आम्र। ४ धतूरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की अर्थ-समस्या ।

विज्ञान का नियम एक है, पर प्रयोग विभिन्न। किन्तु उससे विज्ञान-प्रणाली की कोई हानि नहीं होती। अर्थ-नीति-शास्त्र भी एक विज्ञान है। इसके कितने ही साधारण सूत्र हैं। वे सब सूत्र सर्वत्र समान भाव से प्रयोग नहीं होते, उसका प्रधान कारण अर्थनीति जटिल समाज-विज्ञान का अङ्ग मात्र है। प्राकृतिक घटना जितनी सहज में देखी जा सकती है, सामाजिक जीवन और घटना उतनी सहज में अनुध्येय नहीं। इसी लिये अब भी बहुत से अर्थनीति को विज्ञान कहने में दुःख प्रकाश करते हैं। तब तो यह सर्ववादिसम्मत है कि यदि सामाजिक विज्ञान के किसी अंश को भी विज्ञान कह सकते हैं तो वह अर्थनीति है।

१७७६ ई० में आदम-स्मिथ साहब ने जातीय ऋद्धि (Wealth of Nations) नामक पुस्तक की रचना की थी। तब पण्डितगण कहने लगे थे सब देशों में ही आर्थिक विषय का नियम एक है। रिकार्डो और मिल, स्मिथ साहब के पीछे से अनुवर्ती हुए हैं। यह सब लोग रुपया को अर्थ कह कर भूल नहीं करते। जिससे मनुष्य का सुख और स्वाच्छन्द्य बढ़े, जिससे मनुष्य आनन्द और स्वास्थ्य-लाभ करे उसी सब विनिमय योग्य द्रव्य ही को अर्थ कह कर स्वीकार किया है। देश में केवल रुपये का समागम होने से ही देश धनी नहीं होता किन्तु देश के जन जितनी सामग्री उपभोग कर सकें उतना ही वह अर्थशाली है। पहिले मनुष्य रुपये को ही अर्थ समझते थे, इसी लिये वह लोग रफ़्तनी की वृद्धि और आमदनी के ह्रास की पालना करते थे। स्मिथ साहब की नीति, अवलम्बन करके अवाधवाणिज्य का आन्दोलन चला। जिस देश को जिस वस्तु के उत्पादन की अधिक क्षमता है, वह देश उसी वस्तु से अन्य देश के साथ प्रतियोगिता करेगा। जिस वस्तु के उत्पादन करने की उतनी सुविधा नहीं वह दूसरे देश से मँगावेगा। इससे जगत् की सम्पदा बढ़ जायगी और उसके साथ २ प्रत्येक जाति का विशेषत्व लाभ होगा। परस्पर एक दूसरे की सहायता कर और मनुष्य को दुर्बलता का नाश करके केवल शक्ति प्रकाश करेगा एवं एक विश्वप्रेम की सूचना होगी। जो कोई इस नियम का बाधक होगा निःसन्देह वह आत्मघाती होगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जर्मनी के फ्रेडरिक लिष्ट ने देखा कि अवाध वाणिज्य की चिन्ता में सारे देश की शक्ति विकाश नहीं पाती, बल्कि दूसरे पक्ष में किसी किसी जाति के नाश की संभावना है। उसके मत से प्रत्येक जाति को आत्मशील होना चाहिये।

अवाध-वाणिज्य-मन्त्र में मुग्ध यूरुप में आत्मशीलता के भाव का प्रचार होने में समय लगा। किन्तु लिष्ट का मत आज जर्मनी और अमेरिका का प्रधान मन्त्र है। जर्मनी का शिल्प जो इतना उन्नत हुआ है उसका प्रधान कारण यही है कि जर्म्मनी ने आत्मशक्ति को विकाश करने में पूरी चेष्टा की है। विश्वप्रेम में पागल होकर अपने सब द्वार, कुटुम्ब, जाति और बान्धव को उन्मुक्त नहीं कर दिया। अमेरिका की भी यही बात है।

इङ्गलेण्ड अपने गुरु का मन्त्र अब भी नहीं भूला। वर्तमान में कोई कोई आकर कहते हैं कि जब सब कोई हम लोगों को आत्मीय ज्ञान में समादर नहीं करते, तब हम क्यों उनको आदर से ग्रहण करें ?। ग्रेटब्रिटेन एक क्षुद्रद्वीप है। शिल्प में यद्यपि इसका स्थान अधिक ऊँचा है, पर कृषि क्षेत्र में यह यथेष्ट समर्थ नहीं, जिससे सारे देशवासियों को आहार-सञ्चय की आवश्यकता पूरी हो। इसी लिये ग्रेटब्रिटेन को परमुखापेक्षी बनना पड़ता है। इस लिये अवाध वाणिज्य की नीति सर्वत्र समान भाव से नहीं ठहर सकती। जुदे २ देशों की जुदी २ समस्या, कितनी ही अन्तर-जातिक और कितनी ही आभ्यन्तरिक हैं। वर्तमान में यह सब परस्पर में सम्मिलित है। द्रुतग्रामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणिज्य-पोतों ने अनेक समस्याओं को जटिल कर दिया है।

एक दिन भारतवर्ष सम्पदाशाली देश विख्यात था। वाणिज्य की सूची में अब भी भारत का नाम बहुत ऊँचा है। किन्तु प्रकृत पक्ष में भारत की जातीय सम्पदा का परिमाण कितना है, उसके निरूपण करने का क्या उपाय है? बहुत जन उत्पन्न और राजस्व का हिसाब करके जातीय सम्पदा का निर्णय करते हैं। कोई कोई एक साधारण परिवार के आयव्यय का हिसाब लगाकर जातीय शक्ति का परिमाण करते हैं। इङ्गलेण्ड जान पड़ता है कि धन में खूब बढ़ा चढ़ा है, किन्तु उसके कर्म-हीनता की समस्या है, अमेरिका भी खूब धनी है, किन्तु उसके धन की असम विभाग की समस्या है। भारत की समस्या साधारण दारिद्र्य है। भारतवासी साधारणतः कृषिजीवी हैं। इसके शहर थोड़े हैं। इसकी प्रधान रफ़्तनी कृषि-उत्पन्न पदार्थ की और प्रधान आमदनी शिल्प की है। हमारी रफ़्तनी का मूल्य आमदनी के मूल्य की अपेक्षा अधिक है। कारण यह है कि हम जो सारी शिल्प द्रव्यों की आमदनी करते हैं उसका मूल्य छोड़ कर जो सब विदेशी हमारे देश में कार्य्य करते हैं उनके काम का दाम और भारत की उन्नति के हेतु जो रुपया क़र्ज़ हो गया है उसका सूद हमें देना पड़ता है। हम खावें या न खावें हमें वह सूद देना ही होगा। यदि अपना पेट भरके यह सब देना दे सकें तो हम दिवालिया नहीं होंगे। और यदि अपना पेट न भर सके तो हमें अकाल में काल का ग्रास होना पड़ेगा।

भारतवर्ष एक महादेश विशेष है। इसमें लगभग तेंतिस करोड़ जन वास करते हैं। इसकी उत्पन्न सामग्री कुछ कम नहीं, किन्तु तब भी हम देखते हैं कि भारतवासी दीर्घजीवी नहीं होते, इस जीवन-संग्राम में बहुत से नहीं ठहरते। दारिद्र्य ने भारतवासियों को ऐसा दुर्बल कर दिया है कि वह अब रोग को परास्त नहीं कर सकते। उत्तम आहार और उत्तम स्थान में वास रोग दूर करने का प्रधान उपाय है। यह दोनों बातें भारतवर्ष में दुर्लभ नहीं, किन्तु भारतवासियों के पक्ष में दुर्लभ हैं। दोनों ही के प्राप्त करने के लिए अर्थ की आवश्यकता है और वही भारतवासियों के पास नहीं। इसी से भारतवासी मूर्ख और दुर्बल हैं। प्रोफ़ेसर पण्डित पेरिक्लिस ने कहा था—हम दारिद्र्य से घृणा नहीं करते किन्तु दारिद्र्य दूर न करने की चेष्टा को घृणा करते हैं। भारतवासी धर्म के प्राण हैं इसी लिये उन्होंने संसार त्याग को श्रेष्ठ स्थान दिया है। वह दरिद्र होने के लिए—दूसरे के दरवाज़े भीख माँगने में मस्त हैं। शाक, अन्न और फटी गुदड़ी को पाकर ही सतुष्ट हैं। उसे ही वह बहुत समझते हैं। जनक और शुकदेव का यह उपाख्यान सभी जानते हैं—"राजर्षिजनक प्रचुर धन के स्वामी और शुकदेव सर्वत्यागी थी। जनक ने शुकदेव के धर्मभाव की गम्भीरता की परीक्षा की। उनके महल में एक ओर आग लगी देखकर शुकदेव का मन अत्यन्त व्याकुल हुआ। इसका कारण यह था कि उन्होंने अपनी कौपीन उसी जगह सुखाने को फैलाई थी। किन्तु जनक निश्चल, शान्त और धीर थे। सर्वत्याग करने पर भी शुकदेव कौपीन की ममता न त्याग सके। मनुष्यों में कितने ही प्रकार की प्रवृत्ति हैं, उन प्रवृत्तियों को किसी से भी नाश नहीं किया जा सकता, किन्तु उनको परिचालित करके सुपथ में लाया जा सकता है। धनलाभ की आकांक्षा पाप नहीं, यह एक प्रबल प्रवृत्ति है। जठरानल में इसका जन्म और सुखभोगेच्छा में इसकी वृद्धि होती है। महापण्डित मार्सल कहते हैं कि धर्म और अर्थ की आकांक्षा से ही मनुष्यों ने पृथिवी में बड़े बड़े काम किये हैं। हमारे देश में कहा जाता है "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्" किन्तु अर्थ ही चारों वर्ग के बीच एक है। सुतराम् अर्थ पदार्थ एकदम तुच्छ नहीं है। हम कहें या न कहें सभी इसे स्वीकार करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न यह है कि अर्थ क्या मनुष्य के क्षमता के अधीन नहीं, भाग्याधीन है ? पाश्चात्य शिक्षा-लब्ध व्यक्तिगण तो इसे स्वीकार नहीं करेंगे । पुरुषकार की वाणी हमारे देश में भी सुनी गई थी । कर्मफल की आकांक्षा न करके कर्म करना ही धर्म है, कर्म परित्याग करके जड़जीवन होना धर्म नहीं । जान पड़ता है कि गीता की यही सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है । मनुष्यत्व-लाभ के लिये अर्थ आवश्यक है । बिना अर्थ के जीवन की परिपूर्णता नहीं होती । केवल "धर्म" "धर्म" कहने से धर्म नहीं होता, संयम में धर्म है । लाभ में ही प्रकृति-संयम का परिचय पाया जाता है, अभाव में नहीं । मनुष्य की देह, ज्ञान और आत्मा की उन्नति ही प्रकृत उन्नति है । उससे जातीय शक्ति की वृद्धि, भगवद्भक्ति का विकाश और प्रेम का प्रसार, एवं पुण्य-लाभ का सुयोग मिलता है । अर्थ इन सब शक्तियों के लाभ का प्रधान उपकरण है । उद्यम करने ही से यह अर्थ प्राप्त होता है । "उद्योगिनं पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मीः । दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति"

भारतवासी अपनी आर्थिक अवस्था के लिये स्वयं ज़िम्मेदार हैं । दूसरे के ऊपर दोष लादकर हम लोग आनन्द पाते हैं, किन्तु विचार के साथ देखने से जान पड़ेगा कि ऊपर की बात में कितनी सच्चाई है ।

आर्थिक अवस्था की आलोचना करने के पहिले हमें प्रधानतः तीन विषयों पर ध्यान देना होगा । प्रथमतः, हम अपनी सुविधा और सुयोग-अनुसार सामग्री उत्पन्न करते हैं या नहीं । दूसरे, हमारी उत्पन्न सामग्री यथार्थ वितरित होती है कि नहीं । तीसरे, क्रय-विक्रय और वाणिज्य की कोई बाधा होती है कि नहीं, किंवा उसके द्वारा सामग्री-पुनरुत्पादन की सुविधा होती है कि नहीं ।

सामग्री-उत्पादन का प्रधान साधन भूमि, श्रम और मूल धन है । भारत की सारी भूमि व्यवहार नहीं की जाती । इसी प्रकार उसकी उत्पादन-शक्ति शेष नहीं हुई । कृषिजात द्रव्य के लिए जितनी भूमि आवश्यक है उसके अतिरिक्त भूमि अब भी है, हाँ प्रदेश भेद से कम और ज़्यादा है । भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाई जाय । पाँस डाल कर अधिक परिमाण में अनाज पैदा किया जाय । भारत में बहुत थोड़ी ज़मीन में पाँस डाली जाती है ।

उसके बाद प्राकृतिक शक्ति भारत में अत्युच्च पहाड़, गहरी नदियाँ, वेग से बहने वाले जल-स्रोत अनेक हैं । वर्त्तमान दो एक स्थानों में इन सब सम्पदाओं का व्यवहार आरम्भ हुआ है । बम्बई प्रदेश में कावेरी-जल प्रपात से तडिच्छक्ति संग्रह होती है । हरिद्वार के तीव्रवेगी जल स्रोत में तडित् सञ्चार होता है, किन्तु अब तक भी वहाँ स्थायी भाव से कोई शिल्प स्थापित नहीं हुआ । हिमालय में बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ अनेक प्रकार के कल कारख़ाने बहुत थोड़े ख़र्च में चल सकते हैं किन्तु इस ओर कोई उद्यम नहीं, किसी का भी ध्यान नहीं । कभी कभी मन में समझ पड़ता है कि बाकल साहब ने सत्य ही कहा है कि भारत की प्राकृतिक शक्ति ने मनुष्य को पङ्गु बना रक्खा है । प्राकृतिक शक्ति की भीषणता मनुष्य की शक्ति के अधीन हो सकती है । जान पड़ता है कि मनुष्य इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । किन्तु हम उसे स्वीकार नहीं करते । इस भारत में समुद्रगामी नाविक हैं । एक समय भारत का समुदाय नदी में दूरगामी जहाज़ों पर चला करता था किन्तु इस समय भारतवासियों की आत्मचेष्टा कम है । द्रुतगामी रेल ने अन्तर्वाणिज्य की सहायता की है सही किन्तु भारतवासियों का व्यवसाय विनष्ट कर दिया है ! यही रेल यदि भारतवासियों द्वारा परिचालित होती तो देश की उतनी हानि न होती । केवल मात्र व्यवसाय का स्थान ही परिवर्त्तन होता । रेलवे परिचालित होती है विदेशियों के द्वारा, सारा लाभ विदेशी ही उपभोग करते हैं । मूल धन यदि उधार करके इस देश के लोगों द्वारा रेलवे परिचालित होती तो उसमें भी हमारा लाभ होता । इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान समस्त रेलवे जातीय (National) कर लेने की चेष्टा होती है। रेलवे भारत का सर्वश्रेष्ठ कारबार है, इसमें लाखों मनुष्य नियुक्त हैं। किन्तु भारतवासी गण केवल मात्र निम्नतम कर्म में नियुक्त होते हैं। ये प्रधान पद नहीं प्राप्त कर सकते। इसका कारण यह है कि विदेशी कम्पनियों ही ने अधिकांश रेलवे-परिचालन का भार पाया है। ठीक यही बात अन्यान्य कल और कारखानों में देखी जाती है। विदेशियों के उद्यम से देश में कल कारखाने प्रतिष्ठित हुए और होते हैं। बङ्गाल में जो पाट की कलें हैं उनके विषय में सोच देखिये, उसमें एक भी बङ्गाली प्रधान पद नहीं पा सका। कारण विदेशी व्यवसायी अपने देश के मनुष्यों के ऊपर अधिक विश्वास करते हैं। हम लोग केवल वहाँ कुली बन कर रह सकते हैं, इससे अधिक अधिकार हमारा नहीं। वर्तमान युद्ध के समय भारत की शिल्पोन्नति के लिये विभिन्न देशों में अनुसन्धान चलता है। बंगाल देश के अनुसन्धान कर्ता सोयान साहब ने कहा है कि इस देश में कोई बड़ा शिल्प प्रतिष्ठित नहीं हुआ। उसका प्रधान कारण देश के लोग परिचालन में अक्षम हैं और उनको धन का अभाव है। उन्होंने धनियों को अर्थ देकर शिल्प स्थापित करने का उपदेश दिया है। यौथ कारबार नहीं चल सकता, यही उनका मत है। क्रम से जब लोगों की शिक्षावृद्धि होगी तभी वे कर्मकुशलता लाभ करेंगे, जब परस्पर एक दूसरे का विश्वास करना सीख लेंगे, तब यौथ कारबार प्रतिष्ठित हो सकेगा। असल में बात तो यह है कि यहाँ के लोग व्यवसाय नहीं समझते और व्यवसाय को नीति उल्लङ्घन करते हैं। हमें जान पड़ता है कि सोयान साहब ने हमारी व्याधि का ठीक विश्लेषण किया है। तब उनका मार्ग अवलम्बन करके चलने से देश को धनवान् होने में बहुत समय लगेगा। हम लोग श्रमकुशल नहीं एवं हमारे पास धन नहीं। ये दोनों अभाव कैसे दूर किये जा सकते हैं? भारतवासी स्वाव-लम्बन का मार्ग अवलम्बन करके यदि ये दोनों अभाव दूर कर सकें तो इसकी अपेक्षा और कोई अच्छी बात नहीं हो सकती।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थनीति के अध्यापक डिभन्स साहब ने कहा है कि—इस देश की उन्नति करने के लिये सबसे पहिले शिक्षा का विस्तार करना ही प्रधान साधन है। उन्होंने साधारण में बाध्यकरी शिक्षा करने का उपदेश दिया है। हम लोगों का चरित्र ऐसा है कि कोई काम हमसे ज़बरदस्ती न कराने से हम नहीं करते। हमारी समाज की उन्नति में हो चाहे धर्म की उन्नति में हो। बच्चों को शिक्षित बनाने के लिये यदि हम बाध्य न होंगे तो हम उनकी शिक्षा का आयोजन न करेंगे! इसीलिये स्वनामधन्य महात्मा गोखले ने चेष्टा की थी कि जिससे प्राथमिक शिक्षा क्रम से विस्तृत हो। गवर्नमेंट शिक्षा-विस्तार करने के लिये प्रतिश्रुत और प्रत्येक देश की गवर्नमेण्ट प्राथमिक शिक्षा के लिये ज़िम्मेदार है। नाना कारणों से प्राथमिक शिक्षा का विस्तार नहीं होता। वह सब विषय इस समय आलोच्य नहीं है। इसलिये केवल यही कहना होगा कि देश के लोगों की ज़िम्मेदारी इससे कम नहीं है। देखने में आता है कि उच्च शिक्षा के लिये बहुत से दानी दान करते हैं। निम्नशिक्षा के लिये दान बहुत ही कम होता है। जो दरिद्रों का धन अपहरण करते हैं, सामान्य मानसिक परिश्रम करके यदि वह चाहें तो दरिद्रों के बीच ज्ञान का प्रकाश फैला सकते हैं। अपने देश के वकीलों की दृष्टि इस ओर विशेष भाव से आकर्षणीय है।

प्राथमिक शिक्षा इस प्रकार होना उचित है जिसमें मनुष्य के हृदय में धर्म भाव जागृत हो, उदारभावों का प्रसार हो, और शिल्पज्ञान का उन्मेष हो। वर्तमान में जिस भाव से निम्न शिक्षा दी जाती है, उसमें न तो उदारभाव ही है और न वह वैज्ञानिक शिक्षा ही है। जो पुस्तकें बनाते हैं जान पड़ता है कि उनका ग्राम्य जीवन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही कम सम्पर्क है। यदि पुस्तक में अजायब-घरों की गप्पें न लिखकर किस विधि से विभिन्न देशों में क्षुद्र शिल्प प्रतिष्ठित हुआ है, उसकी कहानी और क्षुद्र शिल्प की आवश्यकता तथा उन्नति के उपाय विषयक कहानी लिखी होती, यदि इस देश के इतिहास, क्रमानुसार प्रधान व्यक्तियों की जीवनी और उपाख्यान लिखे होते और सब आवश्यकीय कक्षाओं के द्वारा मानसिक वृत्ति समूह के परिचालन का बन्दोबस्त होता, तो हमारी समझ में देश की बहुत भलाई होती। इस समय विज्ञान पाठ पढ़ाया जाता है, उसमें बालक कण्ठस्थ करते हैं विज्ञान के कई एक अँग-रेज़ी नाम। उससे किस प्रकार विज्ञान की शिक्षा होगी हमारी बुद्धि में नहीं आता।

लोग आशा करते हैं कि शिक्षा द्वारा स्वास्थ्य की उन्नति होगी, मन सबल होगा, हृदय उच्च होगा, एवं नीति और धर्म की शक्ति बढ़ेगी। यदि यह न होकर केवल दासत्व की आकांक्षा बढ़े, तो उसमें केवल जातीय दुर्बलता ही आती है, शिक्षा का सुफल नहीं फलता। यदि देश को अर्थशाली करना हो तो पहिले सुशिक्षा की आवश्यकता है। कृषिक्षेत्र, बाज़ार, शिल्पकार और वाणिज्यबन्दर में सभी जगह नीति और ज्ञान की आवश्यकता है। यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं तो हम कर्म-कुशल नहीं हो सकते। यदि ज्ञान ठीक नहीं तो नये २ उपायों द्वारा उपज की वृद्धि नहीं कर सकते, यदि हम नीतिमान् नहीं हैं, यदि व्यवसाय में सद्भाव नहीं हो तो संसार हमारा विश्वास न करेगा। हमारे बनाये शिल्प का आदर न रहेगा, लोग कहेंगे कि यह अच्छी चीज़ नहीं है। यदि सत्यता न रहे तो लोग आवश्यकतानुसार साहाय्य न करेंगे। सुशिक्षा से यही सब गुण पाने की सम्भावना है।

शिक्षा की विस्तृति होने से लोगों का आचार व्यवहार परिवर्तन होगा। तब मैली जगह में न रह सकेंगे, गृहसामग्री के सौन्दर्य्य की ओर दृष्टि पड़ेगी, उत्तम असबाब और उत्तम सरञ्जाम का अभाव अनुभव करेंगे। उससे उद्यम बढ़ेगा और जिसके पाने की इच्छा हुई है उसके पाने की चेष्टा होगी। कृषिप्रधान देश में अनेक प्रकार के शिल्पों की सूचना होगी। देश में काठ के कारख़ाने, कपड़े के कारख़ाने, लोहे के कारख़ाने, जूते के कारख़ाने, और गाड़ी के कारख़ाने बढ़ जायँगे। इस समय गाँव के बाज़ारों में जाके देखो तो वहाँ तरकारी की दूकान, मांस की दूकान, अगोछों की दूकान, चनाचबेना की दूकान, बने मसाले की दूकान, मिट्टी की हाँडियों की दूकान और बिसातियों की दूकान दिखाई पड़ती हैं। इन दूकानों में प्रायः सब विलायती ही वस्तुवें हैं। बड़े बड़े बाज़ारों में लोहे और जूते की दुकानें देखने में आती हैं। इससे समझ में आ जायगा कि देश के लोग क्या पाकर सन्तुष्ट हैं। अधिक मनुष्यों को साधारण अभाव नहीं। देश की अर्थ-वृद्धि करने में अभाव की वृद्धि करनी होगी। अभाव बढ़ने से ही उद्यम बढ़ेगा। उद्यम के बढ़ने ही से शिल्प की प्रतिष्ठा होगी। प्रश्न हो सकता है कि थोड़ा अभाव जब नहीं मिटाया मिटता तब अधिक अभाव कैसे मिटेगा? इसके उत्तर में यीसु ख्रीष्ट की कथा है—जिसका है वही पावेगा, जिसका नहीं उससे छीन लिया जायगा। हमारा अभाव कम है कहना उद्यम नहीं। बहुत से लोगों को देखा है कि वह भीख माँग कर तो खाते हैं किन्तु परिश्रम करके धन संग्रह नहीं करते। सामान्य भिक्षालब्ध धनमें वह सन्तुष्ट हैं। परिश्रम करके अधिक उपार्जन करने की उनकी आकांक्षा नहीं। वास्तविक ही यह शोचनीय अवस्था है।

शिक्षा के फल से आचार परिवर्तित होने से देश में शिल्प प्रतिष्ठित हो सकता है। ग्रामों में खाट, मेज़, कुरसी और उत्तम चौखट किवाड़ बनाने की चेष्टा होगी। ज़मीन की उर्वरा शक्ति बढ़ाने की चेष्टा होगी। ज़मीन में खाद पड़ेगी। जुलाहों का काम बढ़ जायगा। अच्छा २ कपड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तयार होगा। अच्छे २ जूते तयार होंगे। दर्जियों का काम बढ़ जायगा। लोग अच्छी २ पोशाक चाहेंगे। इत्यादि नाना प्रकार के शिल्प की वृद्धि होगी। इसी प्रकार बहुत से छोटे २ शिल्पों की सृष्टि होगी। इसमें अधिक रुपये की आवश्यकता नहीं, अथच आय का उपाय है। यह सब शिल्प शहर के पास होवें। क्योंकि शहर के लोग शिक्षित होते हैं। शिक्षा का विस्तार होने से यह ग्रामों में भी फैल जायगा। यह तो हुई छोटे शिल्प की बात। देश में अर्थ आने का मार्ग घाट परिष्कार होगा, आने जाने की सुविधा होगी, अच्छे जल की व्यवस्था होगी। स्वास्थ्य और सौन्दर्य्य फिर आयेगा।

बृहत् शिल्प की व्यवस्था और भी कठिन है। इसमें बहुत रुपयों की आवश्यकता है। यौथ कारबार में भारतवासी अब भी प्रतिष्ठा लाभ नहीं कर सके। अर्थशाली धनियों की संख्या भी कम है। जिनके पास रुपया है वह लोग थोड़े लाभ में किंवा ऐसे स्थल में जहाँ लाभ होने में सन्देह हो अर्थ देने में प्रस्तुत नहीं। सुतराम् इसी प्रकार शिल्प स्थापित होने की आशा कम है। हमारे मन में आता है कि गवर्नमेंट जैसे रेलवे को जातीय करने का उद्योग कर रही है उसी प्रकार बड़े शिल्पों को भी जातीय कर सकें तो मङ्गल होने की सम्भावना है। किसी किसी पाट की कल में देखा जाता है कि हिस्सेदारों को २०) वा २५) रुपया मुनाफा दिया जाता है। बहुत से कारखानों में १०) रुपये सैकड़े से अधिक लाभ होता है। गवर्नमेंट चेष्टा करने से ३॥) वा ४) रुपया सैकड़ा सूद में रुपया पा सकती है। सुविधा होने से लाख रुपये के अधिक दाम वाले सारे कारखाने ख़रीद लिये जायँ तो देश का बड़ा उपकार हो। योग्यता के अनुसार देशी लोगों को इन सब कारखानों में काम दिया जाय। विचार और शासन विभाग में देश के लोगों ने योग्यता दिखाई है। अवस्था विवेचना करके देखने से व्यवसाय में भी देशियों की योग्यता बिलकुल कम नहीं है। शिल्प में किसी किसी विभाग में दक्षता प्रकाश होती है। सुयोग पाने से ही मनुष्य की शक्ति फूट उठती है। रानी एलिजबेथ के समय इङ्गलेण्ड के लोगों ने वाणिज्य विस्तार किया है। वाणिज्य विस्तार के फल से देश में धनागम हुआ है। धनागम के साथ ही साथ कलाकौशल की वृद्धि हुई। इसे कहते हैं भाग्य लक्ष्मी के चिकने मस्तक में तेल डालना Nothing Succeeds like success इङ्गलेण्ड की प्रबल राजशक्ति ने इस धनागम की सहायता की है।

भारतवर्ष उसी वृटिशसाम्राज्य का प्रधान अङ्ग है। भारत की अर्थवृद्धि होने ही में इङ्गलेण्ड का सुख और आनन्द है। जिस भाव से इङ्गलेण्ड की धन वृद्धि हुई है ठीक उसी भाव से भारतवर्ष की भी हो सकती है, किन्तु भारत को अन्यान्य देशों की भाँति सुयोग देना उचित है। आस्ट्रेलिया की सोने की सब खानें जातीय सम्पत्तियाँ हैं। उसी से देश का अर्थ बढ़ा है। जर्मनी की रेलें और अन्यान्य अनेक शिल्प जातीय हैं, इसी लिये जान पड़ता है कि जर्मनी इतना पराक्रमशाली है। हमारे देश के प्रधान सब शिल्प, जातीय करना विशेष आवश्यक हैं। इङ्गलेण्ड में भूमि जातीय बनाने का आन्दोलन चल रहा है। इस देश में शिल्प जातीय करने के प्रधान बाधक विदेशी व्यवसायी गण हैं। वह इतने दिनसे शिल्प की प्रतिष्ठा कर रहे हैं। यदि उनका हाथ गिर जाय तो आशङ्का की सम्भावना है। एक उपाय करने से इस विपत्ति से बचा जा सकता है। जितने कारखाने होंगे उनके साथ यह ठेका होना आवश्यक है कि, वह लोग देशी लोगों को विद्यार्थी के रूप में ग्रहण करें और शिल्प सीखने व परिचालना करने का सुयोग दें। दश वर्ष या किसी निर्दिष्ट समय के बाद, गवर्नमेंट इच्छा करने से यह कारखाना ख़रीद सकती है। धीरे २ जब इसी प्रकार बहुत से देशी लोग सीख जायँ तब सरकार इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

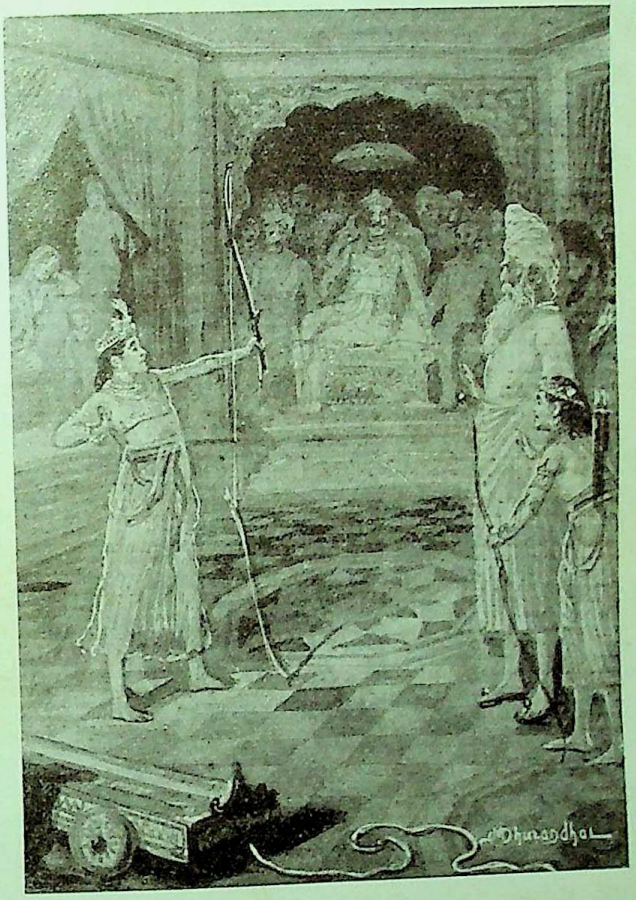

जनक-सभा में धनुर्भंग.

लक्ष्मी आर्ट, भायखळा, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कारखानों के परिचालन का भार देशी लोगों को देदे। इस भाव से सरकार की आमदनी बढ़ जायगी और देश के जन सुशिक्षित हो जायँगे। समय आने से, देश का अर्थागम होने से, देशी लोग विदेशियों के समकक्ष होंगे, समस्त कारखानों में सब को समान अधिकार दिया जा सकता है। जब देखा जाता है कि देशी लोगों को सुयोग का अभाव और उन लोगों का अधिकार नितान्त कम है तब सरकार को यह मार्ग अवलम्बन करना युक्ति-विरोधी न होगा। किसी किसी विभाग में सरकार ने यह नीति अवलम्बन की है।

लोगों को ऋण की विपत्ति से मुक्त करने के लिए समवाय समिति (Cooperative cradit Society) प्रतिष्ठित हुई हैं। छोटी छोटी चेष्टायें मिलाकर अनेक काम किये जा सकते हैं। देश की अर्थशालिनी व्यक्तियाँ यदि सचमुच ही देश का उपकार करना चाहती हैं तो वह समवाय समितियों की सहायता करके बहुत से छोटे छोटे शिल्पों की प्रतिष्ठा कर सकती हैं। अर्थ के अभाव से लोग कृषि की उन्नति नहीं कर सकते, छोटे शिल्प में हाथ नहीं डाल सकते और बृहत् शिल्प की तो कल्पना भी नहीं कर सकते। बहुत से देशों में समितियों द्वारा बहुत भलाई होती है। राकाइसन और स्कूल्स डिस्मिस की कृपा से जर्मनी के अनेक अनुर्वर प्रदेश उर्वर हुये हैं। मिसिर देश के पीपुल बैङ्कों ने बहुत उपकार किया है। इन कई सालों के बीच भारत में समवाय समितियों ने बहुत काम किये हैं। किन्तु देखा जाता है कि इसमें देशी लोगों का विशेष उत्साह नहीं है। इसका कारण यह है कि ऋणदाता महाजनों का इसमें लाभ कम और दरिद्र प्रजा-कुल के नाश की आकांक्षा उनको बहुत है। तब तो यहाँ जान लेना चाहिये कि रामचन्द्रजी की अयोध्या और नहीं, यदुपति की मथुरापुरी भी नहीं है। स्वार्थान्ध धनियो! तुम मन में सोचते हो! सम्पत्तिशाली होकर हम दरिद्रों को अपने ग्रास में रक्खेंगे? समय आयेगा, जब तुम भी दूसरे का ग्रास बनोगे। तुम दूसरे के सुख की चेष्टा करो, निज की सम्पत्ति कम हो जाने पर भी सुख कम न होगा। तुम्हारे अल्प त्याग से दूसरे की प्रचुर उन्नति होगी। देश का मुख उजला होगा। यदि यह त्याग न करके सुख की खोज करोगे तो भी, सुख न पाओगे। यह काल का कठोर नियम है। यदि कोई दूसरे की सहायता न करके केवल स्वयं उठना चाहे तो वह हवा के झोंके से गिर पड़ेगा। समत्व और समवाय में भय नहीं। समत्व वाणी के प्रचारार्थ पाश्चात्य जगत् में सोसियालिस्ट के सम्प्रदाय का अभ्युत्थान हुआ। इस देश में इस भाव के कोई लक्षण वर्तमान नहीं हैं इसलिये पश्चिम के साथ पूर्व का लेन-देन चलता है। समाज की उन्नति के लिए जो आवश्यक होगा वह एक न एक दिन अवश्य होगा। इस देश में भी श्रमजीवी लोगों की समिति होगी, भारत का वैराग्य उड़ जायगा। अभाव के बीच धर्म नहीं होता, धर्म होता है उस उपाय के बीच में जो अभाव-पूर्णार्थ किया जाता है।

हमने देखा है कि इस देश की उत्पत्ति बढ़ाने में कर्मकुशलता और अर्थ की आवश्यकता है। श्रम-कुशलता के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। क्षुद्र शिल्प के लिये समवाय को और बृहत् शिल्प के लिये सरकार की सहायता तथा विदेशीय अर्थ की आवश्यकता है। पाश्चात्य देश में देखा जाता है कि बहुत से व्यवसाय परिचालन-क्षमता के ऊपर निर्भर हैं। इन सब परिचालकों को Entrepreneur कहते हैं। यह अर्थशाली नहीं किन्तु धी-शक्ति-सम्पन्न होते हैं। इन लोगों ने अर्थ और श्रम का समावेश करके देश को सम्पत्तिशाली बनाया है। इस प्रकार के मेधा-सम्पन्न पुरुष अवसरजन्मा होते हैं। इस लिए देश की अनुकूल आबहवा से ऐसी मेधा की उत्पत्ति होती है। यदि भारत में शिल्प और व्यवसाय की आबहवा बह चले तो धीशक्ति-सम्पन्न परिचालकों का आविर्भाव होगा। मनुष्य को उसके लिये तयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना होगा। ज़मीन तैयार होने से बीज गिरकर शस्य की उत्पत्ति होगी।

इस समय आवश्यकता है। मनुष्य की आशा और आकांक्षा को फिरा के ले आने की। जिन प्राणों में चैतन्य नहीं है, तेज डालो, चैतन्य आयेगा, आशा का सञ्चार होगा, क्षुद्र शक्ति उपयुक्त कार्य में नियोजित होगी। भारतवासी पंगु नहीं, क्रियाविमुख हैं। एक बार कर्म का भाव जग उठे, देश में नवजीवन आ जायगा, दरिद्रता लोप हो जायगी, स्वास्थ्य फिरेगा और भारत की उत्पादिनी शक्ति बढ़ेगी। इस देश को लोग समझते हैं कि पुराकाल में अर्थशाली था, वह फिर सत्व-प्रतिपन्न होगा।

बहुत लोग सोचते हैं कि भारतवर्ष की समाज-पद्धति आर्थिक उन्नति में बाधक है। यह बात बिलकुल झूँठ है सो नहीं। भारत का जातिभेद एक कृत्रिम प्राचीर खड़ी करके लोगों को कार्य्य-निर्वाचन में बाधा देता है। हमारी शक्ति और इच्छा चाहे जो हो, पूर्व पुरुषों का पेशा हमें ग्रहण करना होगा। पूर्व पुरुषों का पेशा ग्रहण करने में अनेक उपकारिता हैं, जैसे कार्यतत्परता, निपुणता आदि। एक वंश में एक पेशा चिरकाल तक रहने से उस काम में लोग बहुत दक्ष हो जाते हैं। किन्तु कभी फिर विपरीत फल फलता है। मनुष्य नूतन तत्त्व का पक्षपाती है, एक नवीन वस्तु विना देखे उसकी जिज्ञासा का भाव जागृत नहीं होता। अभ्यासवशतः पुरातन में कौतूहल का उद्रेक नहीं होता। उसमें मानसिक वृत्ति के विकाश को बाधा पहुँचती है। धीरे धीरे ज्ञान का ह्रास हो जाता है, अपने वंश का काम भी भली प्रकार नहीं कर सकते। सेन्सस् रिपोर्ट पढ़ने से मालूम होता है कि इस देश में जाति के अनुसार कर्म का विभाग टूट गया है। ब्राह्मण व्यवसाय करते हैं, शूद्र क्षत्रिय का काम करते हैं, जुलाहे वकील हो गये हैं, इसे छोड़कर नाना प्रकार के कर्मों का मण्डल टूटा जा रहा है। जब कर्मव्यवसाय वंश परम्परा से निर्वाचित होगा तब उनकी उन्नति का पथ उन्मुक्त होगा। जो केवल परम्परा ही में व्यस्त हैं वह लोग बँधुआ और क्रीतदास हैं, मनुष्य नहीं। साधारण जनमण्डली के बीच निर्वाचन का भाव अब भी नहीं आया, शिक्षा के साथ यह निर्वाचन का भाव खिल उठेगा।

श्रमजीवीगण यथेष्ट मुनाफ़ा नहीं पा सकते। इसका प्रधान कारण श्रम का अधिकांश स्थल में स्थितिशील होना ही है। एक स्थान से अन्य स्थान में लोग सहज में जाना नहीं चाहते। इस विषय में विहार और आगरा प्रदेश के लोग अगुवा हैं। वह लोग अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा गतिशील हैं। कलकत्ते के निकटवर्ती कलकारखानों में अधिकांश श्रमजीवी परदेशी विहार, नागपुर, आगरा प्रदेश से आये हैं। छोटे नागपुर के अञ्चल में जितनी खानि हैं उसमें काम करने वाले प्रायः भिन्न प्रदेश के हैं, अथ च उन्हीं सब स्थानों में लोग महीने में १५) रुपया उपार्जन कर सकते हैं। गंगा में जितने जहाज़ और नावें चलती हैं उनके सब ख़लासी और माँझी मल्लाह मुसलमान हैं। ख़लासी लोग प्रायः १५) रुपये से २०) तक रोज़गार करते रहते हैं। साधारण श्रमजीवीगणों का इस विषय में उद्यम नहीं।

कलकत्ते के जूते और काठ के सब कारख़ाने चीनियों के हाथ में चले जा रहे हैं। इस देश के लोग उनके साथ प्रतियोगिता करके नहीं उठ सकते। रुपये के कारबार में जितने विदेशी सराफ़ अग्रगामी हैं, इस देश के उतने नहीं। अर्थ के अभाव में हम लोग उच्च आकांक्षा नहीं कर सकते। व्यवसाय में हमारा पैर बहुत पीछे है। हम ब्राह्मण हैं, यह काम नहीं करेंगे, वह हमारे वंश में लीन नहीं, इत्यादि बातें कहने से देश में धनागम न होगा। केवल प्राचीन रीति नीति की ओर देखने से प्राचीनों की भाँति ही विनष्ट हो जायँगे। प्राचीन नवीन के बीच छिप गया है, उसी तरह का प्राचीन भाव फेंक न देने से जातीय शक्ति न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ेगी। कोई चीज़ चिरकाल तक एक भाव में न रहेगी। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज इसी नियम के अधीन है। मनुष्य को यही स्वीकार करके संसार-धर्म-पालन करना होगा। अनन्तकाल-स्रोत की भांति समाज की गति है। प्राचीन के साथ नवीन अविच्छेद सम्पर्क है। किन्तु प्राचीन कभी भी नवीन नहीं हो सकता! अतीत के बीच वर्तमान पड़ा है, किन्तु वर्तना केवल अतीत का पुनरभिनय नहीं है।

तीसरी बाधा आर्थिक दुर्गति के बीच धर्म का विवाह है। लोग स्वर्ग लाभ करेंगे यह कहकर विवाह करते हैं, किन्तु देखा जाता है कि संसार में नरकयन्त्रणा ही भोगा करते हैं। भारत के लोग कर्मशील नहीं, इसका प्रधान कारण जान पड़ता है कि बाल्यविवाह ही है। थोड़ी उमर में संसार में घिर जाने से साहसिकता का काम नहीं कर सकते, धीरे धीरे जीवन बलहीन हो जाता है। केवल पुत्रोत्पादन करने ही से धर्म रक्षा नहीं होती, सामाजिक जीवन की रक्षा करनी होगी, प्रकृत पक्ष में वंशवृद्धि करनी होगी, सन्तान की शिक्षा और कार्यक्षमता प्राप्त करने का उपाय करना होगा। ऐसी चेष्टा करनी चाहिये जिससे हमारी सन्तान हमारी अपेक्षा सुख और स्वच्छंदता से रहे, किन्तु यदि हम संसार में घिरे हुये हैं तो सन्तान को वह सुयोग नहीं दे सकते। उससे वंश की दुर्बलता बढ़ती है, और दुर्बलता से निराशा होती है। श्रम शक्ति बढ़ाने में इन तीन बाधाओं को दूर करना आवश्यक है। उसके बाद श्रम और अर्थ का समावेश एवं श्रमोत्पन्न द्रव्य के क्रय-विक्रय का बन्दोबस्त होना चाहिये। इस विषय की आलोचना अभी हम नहीं करते। श्रम की उन्नति करना हमें प्रधान आवश्यक है। पहिले जिसे सम्पन्न करने में दो घण्टे लगते थे वह एक घण्टे में करना होगा। जिसे दो मनुष्य करते हैं उसे अकेले करना होगा, इत्यादि नाना प्रकार के उपायों से श्रमसंक्षेप और श्रम की शक्ति बढ़ानी होगी। हमारे देश के श्रमजीवी गणों की अपेक्षा इङ्गलेण्ड के श्रमजीवीगण अधिक कर्मशील हैं, इसका क्या कारण है? पर्य्यवेक्षण करना आवश्यक है।

इस प्रसंग में हमें अपने दूसरे प्रश्न – उत्पन्न वस्तु ठीक ठीक वितरण होती है कि नहीं – की आलोचना करनी है। पहिले कहा गया है कि वस्तु उत्पादन के लिये भूमि और मूल धन की आवश्यकता है। श्रम ही उत्पादन का प्रधान सहायक है, सुतराम् भूमि और मूल धन लेना देना निबटा कर जो बचे वह अंश श्रम का ही प्राप्य है। किन्तु वह कहीं नहीं होता। भूमि और मूल धन श्रेष्ठ अंश लेते हैं, श्रम निर्दिष्ट सामान्य सा पाता है। यूरुप और अमेरिका के श्रमजीवी गण इस विषय में विशेष आन्दोलन करते हैं। कार्ल-मार्कस ने श्रमजीवियों के प्राप्य सम्बन्ध में जो सुयुक्तिपूर्ण पुस्तक लिखी है वह श्रमजीवीगणों का वेद समझा जाता है। हमारे देश में श्रमजीवियों के विषय में उस प्रकार किसी ने आलोचना नहीं की। यहाँ सैकड़े पीछे ७० आदमी कृषिजीवी हैं, वह सारी शक्ति लगा कर उत्पादन करते हैं और भूम्यधिकारी श्रेष्ट अंश ले लेते हैं। इसी से श्रमजीवियों की शक्ति नहीं बढ़ती। अपने और बाल-बच्चों के भरण-पोषण के लिये एक मनुष्य श्रमजीवी, यदि उपार्जन न कर सके तो वह श्रम करके केवल विनाश की ओर ही चलता है। एक मनुष्य ने सारे दिन परिश्रम करके चार आना पाया। दो सेर आटा मोल लेने में ही वह धन उड़ गया। वस्त्र, ओषधि और शिक्षा का बन्दोबस्त कैसे हो? केवल श्रम के ऊपर उसका परिवार प्रतिपालित नहीं हो सकता। कृषि प्रधान देश में ऐसी अवस्था!!! इन्हीं सब कारणों से श्रमजीवियों की दुर्दशा बढ़ गई है। वह दोनों समय पेट भर के खा नहीं सकते। संसार की श्रीवृद्धि कैसे करें? यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि भूम्यधिकारियों का सुख और धनियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द इन्हीं श्रमजीवियों के श्रम में है। इनकी मज़दूरी एक पैसा भी बढ़ जाने से भूम्यधिकारी बड़े ही कातर हो जाते हैं। देश की श्रीवृद्धि करने में श्रमजीवियों को यथेष्ट पारिश्रमिक देना आवश्यक है। पाश्चात्य देश में कोई कोई सोचते हैं कि श्रमजीवियों को व्यवसाय में पत्तीदार बना लेने से वह उत्साह के साथ प्राण देकर काम करते और अधिक नफ़ा कमाते हैं। किसी किसी व्यवसाय में परीक्षा करके देखा गया है कि, वास्तविक ही उसमें श्रमजीवियों और व्यवसायियों दोनों ही की उन्नति हुई है। हमारा विश्वास है कि इस देश में ज़मीन बाँट देने की उत्तम प्रथा है, किन्तु उसके साथ कितने ही मन्द संस्कार भी हैं। ज़मीन बाँटने में उसके साथ कुछ धन धान्य दिया जाता है और अदा करने के समय उससे दुगना या डेढ़ गुना लिया जाता है। उससे श्रमजीवियों को जो मिलता है वह बहुत कम हो जाता है। वह जिस दुर्दशा के बीच में थे उसी दुर्दशा में रहते हैं, और बेचारे भूम्यधिकारियों का बोझ लादे ही मरते हैं।

बड़े बड़े कल कारख़ानों में कुली नियत मज़दूरी पाते हैं और परिचालक राजा बन बैठते हैं। इत्यादि नाना प्रकार से उत्पन्न द्रव्य का यथार्थ विभाग नहीं होता। श्रमजीवी लोग शिक्षा के अभाव से यह विषय लेकर आन्दोलन तक नहीं कर सकते, वह मशीन की भाँति काम करते हैं। किसी किसी जगह वह लोग जो धन पाते हैं उसका अपव्यवहार करते हैं। मालिक उनकी नीति एवं जीवन विषय में उदासीन—वह अपने ही लाभ के लिये व्यस्त रहते हैं। मालिकों को चाहिये कि श्रमजीविकों के सुख और स्वाच्छन्द्य की ओर देखें और उनकी सन्तानों की शिक्षा का बन्दोबस्त स्वयं करें। वर्तमान गवर्नमेन्ट, श्रमजीवी-सम्पर्कीय किसी किसी विषय में क़ानून बनाती है। उससे सुफल कहाने की सम्भवना है। किन्तु स्वत्वाधिकारी और परिचालक गण यदि श्रमजीवियों का मूल्य समझ कर उनकी उन्नति करने में चेष्टा करें तो प्रकृत उन्नति हो। नहीं तो क़ानून से कोई लाभ नहीं होगा।

तीसरा प्रश्न विनिमय का है। द्रव्य उत्पादन करके उसको बेचना आवश्यक है। विक्रय-लब्ध अर्थ में फिर उत्पादन होगा। उत्पन्न द्रव्य के जमा रहने से पुनरुत्पादन नहीं हो सकता। फिर क्रय विक्रय की प्रणाली के ऊपर लाभालाभ निर्णय है। दरिद्र प्रजा ने जो उत्पादन किया है वह बेच कर ख़ज़ाना दे सकेगी और संसार के अन्यान्य आवश्यकीय द्रव्य ख़रीद सकेगी। किन्तु जो ख़रीदेगी उस समय में उसकी उतनी आवश्यकता नहीं रह सकती, सुतराम् मूल्य अपेक्षा कृत कम होगा। अभाव और सरवराह के समावेश में वस्तु का मूल्य स्थिर होता है। यदि अभाव की अपेक्षा सरवराह अधिक है तो मूल्य कम होगा। फिर यदि अभाव सरवराह की अपेक्षा अधिक हो तो दाम अधिक होंगे। जितना अभाव उतना ही सरवराह होने से जो मूल्य होगा उसी साधारण मूल्य वा न्यायोचित दाम कहा जायगा।

हमारे देश में जो सब चीज़ें उत्पन्न होती हैं उनके लिए अभाव बहुत है। धान्य, गेहूँ मकई, दाल, चाह, पाट, कपास, कोयला प्रभृति का अभाव बहुत है। इस देश में और विदेश में इन सब चीज़ों की आवश्यकता है। महाजन लोग इन सब चीज़ों के क्रय-विक्रय का बन्दोबस्त करें। वह लोग किसानों से ख़रीद कर जिस जगह यह सब चीज़ें पैदा नहीं होती या आवश्यकता है वहां बेचने का बन्दोबस्त करें। एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने के लिये उनको परिश्रम करना पड़ेगा, और इस व्यवसाय में विपद् और क्षति की सम्भावना है, इसलिये नफ़ा कुछ अधिक लगाना चाहिये। देशी महाजनों का स्थान इस समय विदेशी ग्रहण करते हैं। भारत की चाह, गेहूँ, पाट, कपास आदि जो सब चीज़ें विदेश में जाती हैं वह विदेशी व्यवसायियों के हाथ से जाती हैं। वाणिज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हालैण्ड एक समय ख़ूब धनी था। इस समय इङ्गलैण्ड, अमेरिका क्रम से अग्रसर हुये हैं। भारत में इस समय भी इस विषय में नहीं सोचा गया। सुना जाता है कि पुरा काल में भारतीय वणिक् पूर्व और पश्चिम में फैले हुये थे। हम लोग इस समय उसका गर्व करते रहते हैं, किन्तु अब देखते हैं कि हमारी सामान्य सी वस्तु विदेशी वणिकों के हाथ ही विक्रय होती है। और हम विदेश से जो सब चीज़ें मँगाते हैं वह भी विदेशियों के द्वारा ही मँगाते हैं। आसाम से कलकत्ते चाह आवेगी विदेशी जहाज़ में। कारख़ानों में, ढुलाई के काम में, बेचने में हम लोग सर्वत्र विदेशियों ही के करतल-गत हैं। इससे भारत की अर्थ-वृद्धि कैसे हो सकती है। भारत के धन में नफ़ा उठावेंगे विदेशी हिस्सेदार, विदेशी परिचालक, और मैनेजर और भारतवासी पावेंगे केवल कुलियों का वेतन !!! विदेशी महाजन रुपया पेशगी बाँट कर, भारत की कृषिजात वस्तु ख़रीद, शिल्प अपने हाथ में करके सारे व्यवसाय का लाभ विदेश ले गये। धन-वृद्धि करने में व्यवसाय और वाणिज्य में भारत-वासियों को अग्रसर होना पड़ेगा। यहाँ भी क्षमता और अर्थ का अभाव है। इसके दूर करने का क्या उपाय है सो सहज में इसका उत्तर देना कठिन है। इसलिए प्रत्येक कार्य्य में ही सामान्य आरम्भ में धीरे २ सुफल होने की सम्भावना है। पहिले ग्रामों के बीच व्यवसाय में अपने आप प्रवेश करना होगा। शिक्षित लोग यदि व्यवसाय में मन लगावें और नौकरी की आशा परित्याग करदें, तो वह व्यवसाय में नवीन पन्थ आविष्कार कर सकते हैं। देश में जो चीज़ सहज में उत्पादन की जा सकती है उसका उत्साह देना होगा। इसी प्रकार जो चीज़ दूसरे स्थान से आकर बिकती है उसका अनुसन्धान करना होगा। पहिले विलायती कपड़ों की जब इस देश में आमदनी हुई तब कपड़ों की किनारी अच्छी न होती थी। लोग ऐसे कपड़े पसन्द न करते थे। विदेशी कारख़ानों से इस देश में कारीगर यहाँ की रुचि-पर्यवेक्षण करने के लिये आये। फल यह हुआ कि विलायती कलों में ख़ूब सुन्दर२ मनोहारी किनारी बनने लगी। इस देश के कपड़े की जगह लोग थोड़े दामों में सुन्दर कपड़ा पहिरने लगे। इसको कहते हैं व्यवसाय में उत्साह। इस देश में शिल्पप्रदर्शिनी होती है। कहा जाता है कि भारतवासी शिल्प में प्रतियोगिता करेंगे, किन्तु लाभ उठाते हैं विदेशी व्यवसायी। वह लोग इस देश का विशेषत्व ख़ूब समझ सकते हैं। जापान ने थोड़े ही दिनों में वाणिज्य बढ़ाकर भारत में फैला दिया है। किन्तु चीन और जापान में भारत का व्यवसाय कम हो गया है।

बहुत लोग मनमें सोचते हैं कि भारत में अबाध-वाणिज्य है इसलिये इस देश में शिल्प और वाणिज्य की उन्नति नहीं होती। बहुत से लोग अबाध वाणिज्य को दारिद्र्य का कारण समझते हैं। बात तो एकबारगी ही अयौक्तिक नहीं हो सकती, किन्तु हमारे मत से हम लोगों का निष्क्रिय भाव इस दुर्दशा के लिये विशेष भाव से उत्तरदायी है। हम लोग आज का आहार रहने से कल के आहार के लिये चिन्ता न करेंगे। वर्षा काल में कृषि करके शरत् काल में बाबूगीरी करते हैं। एक काम भी भली प्रकार से नहीं चला सकते। इस पर हम चाहते हैं अर्थ और स्वाधीनता। अबाध-वाणिज्य में देश की असुविधा हो सकती है किन्तु वह असुविधा दूर करना बहुत कठिन नहीं। किन्तु सर्वापेक्षा कठिन कार्य्य हम लोगों में शिल्प और वाणिज्य की बुद्धि पैदा करना है। हम भली प्रकार से कपड़ा, सूत तयार कर सकने से, विलायती आमदनी कर सकते हैं। अबाधवाणिज्य उठ जाने से केवल दरिद्रों के पक्ष में दाम बढ़ेंगे और कुछ धनियों का लाभ होगा। अबाधवाणिज्य की समस्या वा स्वर्णमुद्रा की समस्या हमारी प्रधान समस्या नहीं। दरिद्र देश में रौप्यमुद्राही यथेष्ट है। मुद्रासमस्या या अबाधवाणिज्य की आलोचना करने में विशेष लाभ नहीं। प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना होना उचित है कि कैसे देश की धन वृद्धि हो ?

धन-वृद्धि का प्रधान सहायक चरित्र है। चरित्र के ऊपर व्यवसाय का फलाफल निर्भर है। हम जिसे समझते नहीं, जानते नहीं, वही यदि करें तो उसमें हमारी दुर्बलता ही दिखाई पड़ती है। कई जगह देखा गया कि लोग अपने ही आदमी को नियुक्त करेंगे, वह काम जानता हो या न जानता हो। यौथ बैंक स्थापन करके रुपया उधार देंगे अपने कुटुम्ब को, उसके शोध करने की क्षमता हो या न हो। इन्हीं सब दोषों से चरित्र-हीनता का परिचय मिलता है। हाल में जो कई एक व्यवसायों का सत्यानाश होगया है वह इन्हीं दोषों के कारण हुवा है।

दूसरी आवश्यकता है अतृप्ति की। सामान्य लेकर तृप्त नहीं हो सकते। अतृप्ति के फल से आकांक्षा और उद्यम बढ़ेगा। साधारणतः मनुष्य के बीच अतृप्ति दिखाई पड़ती है, किन्तु हम लोग कभी कभी थोड़े ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं, उससे आर्थिक उन्नति नहीं होती। अमेरिका में छोटे व्यवसाय से एक एक करोड़ रुपये का एक एक कारबार चलता है। परिचालक गण एक एक देश के शासनकर्ता की भाँति क्षमता-परिचालन करते हैं, तब भी उससे सन्तुष्ट नहीं होते। लाख लाख श्रमजीवी उनके अधीन रह कर काम करते हैं। सेनापति की भाँति परिचालकगण सबको चलाते हैं। प्रबल आकांक्षा के लिये ही यह होता है।

तीसरी आवश्यकता है विश्वास की। आपस में एक दूसरे का विश्वास न करने से व्यवसाय नहीं चल सकता। श्रमजीवी परिचालक का विश्वास करें, परिचालक श्रमजीवी का विश्वास करें, धनदाता और हिस्सेदार परिचालक का विश्वास करें। यन्त्र की तरह प्रत्येक को प्रत्येक के ऊपर निर्भर होना चाहिये। यदि विश्वास न करके निर्भर नहीं हो सकें तो, यन्त्र विफल हो जायगा। विश्वास के द्वारा क्षुद्र अर्थ बृहत् समष्टि में परिणत हो जायगा, कर्मकुण्ठ व्यक्ति कर्म-कुशल के हाथ अर्थ समर्पण करेंगे, इससे देश की अर्थवृद्धि होगी। यौथ कारबार व्यतीत बृहत् कारबार-परिचालन असम्भव है और विश्वास बिना यौथ कारबार असम्भव है। अन्यान्य देशों में व्यवसायी गण आवश्यकता पड़ने पर बैङ्क से सहज में रुपया उधार पा जाते हैं। हमारे देश में व्यवसायीगण सहज में उधार नहीं पाते। खींचा-तानी के समय उधार न मिलने से व्यवसाय विनाश हो जाता है। देशी बैङ्क होने से देशीय व्यवसायियों को सुविधा हो सकती है, किन्तु सत्यता और विश्वास के बिना बैङ्क नहीं चल सकता।

उपसंहार

हमने इस प्रबन्ध में भारत की अर्थ-समस्या के सम्बन्ध में कई एक मोटी बातों की आलोचना की है। संक्षेपतः कहने में, देश में शिक्षा का विस्तार, चरित्र की उन्नति, व्यवसाय और वाणिज्य की ओर दृष्टि, व्यवसाय-केन्द्र में छोटे छोटे बैङ्कों की प्रतिष्ठा, ग्रामों में समवाय-समिति, और छोटे छोटे शिल्पों की प्रतिष्ठा, शिल्प-शिक्षा और बृहत् कारखानों के परिचालन का आयोजन, क्रम से वाणिज्य-विस्तार प्रभृति अन्यान्य अत्यावश्यक विषयों में भारतवासियों के विशेष मनोयोग करने की आवश्यकता है। यह होने से देश में लक्ष्मी आयेगी। जातीय सम्पदा की वृद्धि होगी, और जीवन के अनेक संग्रामों में मनुष्य ठहर सकेगा।*

रामदेव तिवारी

परमेश गान

सदा हे साँवरे ! दृढ़ भक्ति से तुमको रिझाऊँ मैं।
पदारथ चारिहीं कर्त्तव्य कर सेवा में लाऊँ मैं॥१॥
करूँ नित प्रेम आवाहन कि तुम पर आत्मा से हो
अचल निज ध्यान करने के लिये घंटी बजाऊँ मैं॥२॥

---

* प्रवासी में प्रकाशित एक शिक्षाप्रद लेख का अनुवाद। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि मौजूद पुष्पों में, उदक में मूर्त्ति में हो तुम,
विषय इच्छा मिटाने को सुमन तुमपर चढ़ाऊँ मैं॥३॥
तुम्हीं भोजन खिलाते हो सकल संसार को भगवन् !
तदपि तुम भाव के भूखे, समझ नैवेद्य लाऊँ मैं ॥४॥
तुम्हीं से यह जगत रोशन प्रकाशित किंतु तुम सत् में
असत् की वासना अंधेर दीपक पर जलाऊँ मैं ॥५॥
"सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्"
जगत् सब अंग तुम्हारा जानकर चंदन लगाऊँ मैं ॥६
निरंजन ! दुष्टदलगंजन ! तुम्हीं श्रीराम ! नारायण !
मुकुंदानंद के दाता कृपा का दान पाऊँ मैं ॥ ७ ॥

बालमुकुंदशर्मा

विविध विषय

१–शिक्षा का प्रचार और सभ्यता की डींग, शराब बेंचनेवालों का पत्र

अमृतसर से उर्दू में एक "आबकारी" नामक मासिकपत्र निकलना प्रारम्भ हुआ है। मुन्शी दुर्गादास, इसके प्रकाशक हैं। और लाहौर का सिविल मिलिटरी गज़ट प्रेस, इसका मुद्रक है। इसके उद्देश्य, इसी के शब्दों में ये हैं–

"शराबफ़रोशों का यह सच्चा क़ायममुक़ाम होगा। उनकी आवाज़, उनके ख़यालात और उन की तकालीफ़ को हाकिम वक़्त तक पहुंचाना, इस का फ़र्ज़ अव्वलीन है। शराब की साख़्त, उसके अच्छा बुरा होने की पहिचान, उसके मसालेजात की तशरीह, उसकी मिशनरी और कशीद के मुताल्लिक़ ताजराने शराब को ख़बरदार करना और अख़ीर में वह तमाम काम जो इस शराबे नाब के लिये लाज़मी हों, उनको सरअंजाम पहुंचाना। यह हैं हमारे मक़ासिद"।

दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि शराब बेचनेवालों का यह अख़बार होगा। पहले जो आज कल सभ्यता के ज़माने में बड़े बड़े अख़बार, शराब के विज्ञापन छापते हो हैं। एक इसी बात की कमी थी कि शराब बेचनेवालों का भी अपना एक मुख्य पत्र हो ! ईश्वर की दया से अब उसकी पूर्त्ति हो गई। शराबियों को बधाई है ! उन्हें भी अब खुले बाज़ारों शराब की पुष्टि में ज़ोरदार लेख लिखने का मौक़ा मिला करेगा। वे भी अब खुल्लमखुल्ला मिर्ज़ा ग़ालिब के अनुयायी बन सकेंगे !!! इसी नाम का मादक-वस्तुनिवारक, एक पत्र, विलायत से निकलता है। आश्चर्य है कि मादक वस्तु निवारक लोग अपने मुख्य पत्र का "आबकारी" नाम रखते हैं। और उसी नाम को मादक वस्तु प्रचारक लोग भी रखने का साहस करते हैं !!!

२–अमूल्य उपदेश।

अमेरिका के एक करोड़पति ने, जो स्वयं धन कमाकर कोषाधीश बना था, एक सभा का संगठन किया। और अपने सब कर्मचारियों को, जिनकी संख्या कई हज़ार थी, उसमें सम्मिलित किया और साथ ही साथ अपने सब पुत्रों को भी बुलाया। कर्मचारियों से कहने लगा कि जब मेरे पुत्रों में से कोई तुम्हारा नौकर हो, तो तुम मेरे बर्ताव और स्वामिभक्ति का स्मरण करके कृपया उससे अच्छा बर्ताव करना। फिर अपने पुत्रों को समझाया कि यद्यपि मेरा यह कहना तुम्हें अवश्य ही बुरा मालूम हुआ होगा, परन्तु सुनो–मैंने यह धन, तुम जैसे ही धनिक पुत्रों से कमाया है। और इससे पहले मेरी दशा केवल एक साधारण पुरुष (जैसे कि मेरे नौकर हैं) के समान थी। तुम यदि ऐसे ही सुखाकांक्षी अतएव निरुद्योगी रहोगे जैसे कि अब हो, और ये नौकर ऐसे परिश्रम से काम करते रहे तो याद रक्खो, कि किसी न किसी दिन ये धनिक और तुम इनके समान, नौकर बन जाओगे, क्योंकि प्रकृति का नियम है–"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः"।

"कुमुद"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३--एक कन्या की अनुकरणीय देशभक्ति।

लण्डन से निकलने वाले "टाइम्स" पत्र में एक अँगरेज़-कन्या की चिट्ठी छपी है जो अस्पताल के डाक्टर के नाम है। उस चिट्ठी में वह डाक्टर से पूँछती है कि "क्या यह बात सच है कि सैनिकों के घाव भरने के लिए, यदि बहुत सा चमड़ा मिल जाय तो उनके घाव, जल्द अच्छे हो सकते हैं। मैं सुनती हूँ कि एतदर्थ डाक्टरों को चमड़ा नहीं मिलता। इसलिये बहुत से सैनिकों के घाव अच्छे होने में देर लगती है। यदि यह समाचार ठीक है, तो मैं अपने को धन्य समझूँगी, यदि मुझे अपने इस नश्वर शरीर को इस शुभकार्य में लगा देने की आज्ञा दी जाय। आप मेरे शरीर के जिस भाग का चमड़ा चाहें, ख़ुशी से काटकर घाव में भर सकते हैं। जितना चमड़ा, मेरे शरीर का काम में आ सके, मैं उसे सहर्ष देने के लिये तैयार हूँ। मेरा यह लिखना आप बनावटी न समझें। मेरे दो भाई इस समय, युद्धस्थल में लड़ रहे हैं। और मैं उनके लिये इस बात की आवश्यकता, अनुभूत करती हूँ कि मैं भी कुछ करूँ। कन्ये! तू धन्य है!!! वास्तव में प्रत्येक नर-नारी को अपनी देशभक्ति के लिए इसी तरह सन्नद्ध रहना चाहिये।

४—"मनोरमा" और "शारदा"

८ वीं ध्वनि के विविध विषय में एक प्रसंग से यह लिखा गया है कि "संस्कृत, जिसकी हिन्दी आत्मजा बतलाई जाती है, में भी हिन्दी लेखों के अनुवाद होने लगे हैं, माघ की 'मनोरमा' और चैत्र की 'शारदा' देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।"

मालूम होता है कि 'शारदा' के सम्पादक महाशय को यह बात बुरी मालूम हुई। एतदर्थ आपका हमें एक पत्र मिला है। जिसका कुछ अंश नीचे लिखा जाता है। इससे पाठक समझ सकेंगे कि वास्तविक बात क्या है—

"एक सम्पादक की लेखनी से झूठी बात लिखी जाने के कारण दुःख होता है। शिरोमणि महाशय की जीवनी उनकी मृत्यु के पश्चात् तारा-चरण भट्टाचार्य जी ने संस्कृत में लिखी थी। मनोरमावाला लेख उसी का अनुवाद है। आपको विश्वास न हो, तो लेखक जी से पूछ लीजिए, ताराचरण जी की लिखी ही जीवनी, जो पहिले ही छप कर बँट चुकी थी शारदा में एक मित्र के अनुरोध से छापी गई।"

लेखक जी से पूँछने की जरूरत नहीं, हमें आपके लिखने पर ही विश्वास है। पर हमें यह मालूम न था कि यह चरित संस्कृत में पुस्तकाकार छपकर बँट चुका है, और शारदा में उद्धृत रूप से छपा है। शारदा में ही यदि यह बात छप जाती—उस चरित को उद्धृत लिख दिया जाता—तो यह गड़बड़ ही न पड़ती। फिर उसे हिन्दी का अनुवाद समझने का कोई उचित कारण ही न होता। आशा है कि हमारे इस लेख से शारदा के पाठकों में जो भ्रान्ति फैल गई है, वह दूर हो जायगी।

५—लकड़ी की रोटी

जर्मनी को मित्रों ने चारों ओर से घेर रक्खा है। उसे अब कहीं से प्रकट रूप से सामान नहीं मिलता। अन्य देशों से चुरा छुपा कर जो माल वहाँ जाता है वह इतना काफ़ी नहीं है कि जर्मनी की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। परन्तु जर्मनी में विज्ञान की अधिक चर्चा है। वे उसी की सहायता से अनेक रंग रूप बदलते रहते हैं। अनाज के कम प्राप्त होने के कारण भोजन की मुख्य सामग्री—रोटियों—का वहाँ बड़ा अकाल है। बिना पेट भरे, भूखे रह कर, भी कहीं काम होता है? इसीलिये वहीं के बड़े बड़े वैज्ञानिक यह सोच रहे हैं कि किन किन पदार्थों से रोटी बनाई जा सकती है। जहाँ पर उन्होंने अन्य पदार्थों के तजरुबे किये वहाँ पर लकड़ी से रोटी बनाने के भी तजरुबे किये गये। बहुत से वृक्ष ऐसे हैं जिनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूदा, छाल अथवा फलों को कूट कर रोटी बनाई जाती है और हमारे देश में तो सिंघाड़ा, कूटू, रामरंगा आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिनको रोटियाँ या पूड़ियाँ बना कर उपवास के दिन लोग खाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक ढंग से कोई भी तजरुबा नहीं हुआ। जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने अनेक प्रकार के वृक्षों की जाँच करके, अब साबित कर दिया है कि लकड़ी की रोटी किस प्रकार बनाने से स्वादिष्ट, खाने योग्य बन जाती है। परन्तु आप सलाह देते हैं कि उसमें थोड़ा सा आटा मिला लिया जावे तो रोटी और अच्छी होगी। आप यह भी बताते हैं कि वृक्ष की पत्तियाँ, टहनियाँ और मुलायम मुलायम लकड़ियों में यह पदार्थ अधिकता से मौजूद है, जो भोजन के लिये उपयोगी है। लकड़ी का आटा जहाँ मनुष्य के लिये खाने को बनाने के लिये अच्छा बताया जाता है वहाँ जानवरों के लिये भी वहाँ के वैज्ञानिक उपयोगी साबित करते हैं। क्या जर्मनी में अब लकड़ी की ही रोटी खाई जाती है? "जयाजी प्रताप"

६—माननीय पण्डित विशननारायण दर का स्वर्गवास

शोक है कि पण्डित विशननारायण दर ने भी देखा देखी, गोखले, महता और वर्मा आदि महाशयों की गति का अनुसरण किया। आप काश्मीरी ब्राह्मण थे। उर्दू और फ़ारसी के आप सुकवि और सुलेखक थे। आप अपनी कविता में अपना उपनाम "दर" लिखा करते थे। एक बार आप कांग्रेस के भी सभापति बनाये गये। बारिस्टर होते हुए, कभी आपने धन की अपेक्षा न की। आप बड़े त्यागशील थे। आपका स्थान भी देर से पूरा हो सकेगा। बहुत दिनों से आप बीमार थे। आपकी बीमारी में, अलमोड़े, कई बार, आपको देखने के लिये, आपके मकान पर लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर गये। शोक है कि आपकी कोई सन्तति नहीं। भारतीय मनुष्य ही आपकी सन्तान हैं। ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति दे।

७—एक आनरेरी मजिस्ट्रेट का हिंदी प्रेम

साहु रामकुमार साहिब आनरेरी मजिस्ट्रेट ठाकुरद्वारे के खानदानी और प्रतिष्ठित रईस हैं। आप संस्कृत, इङ्गलिश, हिन्दी और उर्दू आदि अनेक भाषाओं के व्युत्पन्न पंडित हैं। आजकल के नवयुवक रईसों की तरह, कालर और टाई सँवारने ही में आपका समय, व्यय नहीं होता, सदैव आप देशोन्नति और विद्योन्नति की चिन्ता में मग्न रहते हैं। हर्ष का विषय है कि अपनी मातृभाषा हिन्दी से आपका विशेष प्रेम है। संस्कृत के कई बड़े बड़े ग्रन्थों का अनुवाद भी आप परिमार्जित हिन्दी में लिख रहे हैं। आपके महाभारत और कौमुदी के रोचक अनुवाद का, हम शीघ्र ही दर्शन किया चाहते हैं। कहा करते हैं कि सरस्वती और लक्ष्मी एक जगह वास नहीं किया करतीं या कम किया करती हैं। पर आप पर यह सार्वत्रिक नियम आकर शान्त हो जाता है। हमें यह मालूम करके और भी प्रसन्नता हुई कि आप अपनी मजिस्ट्रेटी का अधिक काम हिन्दी द्वारा ही संपादन करते हैं। 'मनोरमा' जैसी तुच्छ पत्रिका भी आपकी विशेष सहायता की आभारिणी है। आप उसके ५०कापियों के खरीदार हैं।

एक प्रतिष्ठित रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट की यह विद्याभिरुचि और हिन्दी-प्रेम, सराहनीय और अनुकरणीय है। आपके चरित की कई बातें, नवयुवक विद्वान् और रईसों के लिये शिक्षाप्रद हैं, अतः आगामी मास में हम आपके सचित्र चरित-प्रकाशन का उद्योग करेंगे।

८—धन्यवाद

नीचे लिखे सज्जनों ने मनोरमा के एक एक, दो दो, ग्राहक बनाये हैं। एतदर्थ आपको धन्यवाद है। आशा है कि और पाठक भी इसी तरह ग्राहक बनाने की कृपा करेंगे—१ पंडित अमरनाथ शर्मा, बटाला। २ लाला ज्ञानचन्द्र, बटाला। ३ ठाकुर लल्लूसिंह, सबइन्सिपेक्टर पुलिस, धनौरा ४ सेठ टीकमदास, ख्यालदास, शिकारपुर (सिंध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-चर्चा।

१—ओथेलो। यह महाकवि शेक्सपियर के "ओथेलो" नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद है। संची छोटी और पृष्ठसंख्या २३ + १६८ हैं। पुस्तक पर सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। मूल्य ॥) है और मिलने का पता "लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद है"। अनुवादक हैं गढ़वालनिवासी हिन्दी के बहुत पुराने धुरन्धर लेखक पंडित गोविन्दप्रसाद घिलडयाल बी० ए०, डिप्टी कलक्टर,

प्रस्तुत अनुवाद, ओथेलो का प्रायः प्रत्यक्षर अनुवाद है और ऐसा होने पर भी सरस है। भाषा चटकीली और वाग्व्यवहार के अनुकूल है। यत्र तत्र पद्य भी दिये गये हैं। पद्यानुवाद वहीं किया गया है जहाँ आवश्यक था। पद्य भी लालित्यपूर्ण हैं। बानगी के लिये हम ५२ पृष्ठ से केसियो और "यागो" की बातचीत का कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं। यह बातचीत नाटक की नायिका देश दामिनी के विषय में है।

केसियो—वह अत्यन्त विशिष्ट श्रीमती है।

यागो—और मैं इस बात का बीड़ा उठा सकता हूँ कि वह कला-कौतुक-पूर्ण है।

केसियो—सचमुच उसका खिलता यौवन है और वह बड़ी सुकुमार भी है।

यागो—अहा! उसके क्याही मनोहर नयन हैं मानो, शत्रुओं से भी सम्मिलन करने के लिए घोषणा करते हैं।

केसियो—हाँ वे लुभाते तो हैं तोभी मैं सोचता हूँ उनमें यथोचित लज्जा भी है।

यागो—और सचमुच जब वह बोलती है तो मानो कामदेव का आहवान करती है।

केसियो—निःसन्देह वह सद्गुणों से परिपूर्ण है।

इस वार्तालाप से केसियो और यागो के सच्चरित्र और दुश्चरित्र होने का पता भी लग जाता है। हम और भी अवतरण देते परन्तु स्थानाभाव से लाचार हैं तथापि हम यहाँ एक पद्य का नमूना दिये विना नहीं रह सकते। अंक २ दृश्य ३—

If consequence do but approve my dream,
My boat sails freely both wind and stream.

जो वैसी ही बात हो पड़े, जैसा मैंने किया विचार,
वरुण, पवन, मिल सानुकूल हों, लगता मेरा बेड़ा पार।

हिन्दी में आज तक शेक्सपियर के कई नाटकों के अनुवाद हो चुके हैं परन्तु हम कह सकते हैं कि ऐसा अच्छा एक भी अनुवाद नहीं हुआ है। कुछ लोगों ने "देश दामिनी" को देशी नाम समझा है। यह उनकी भूल है। यह हिन्दी में "डेस्डिमोना" का रूपान्तर है। इस पुस्तक में एक विशेषता और भी है। अनुवादक ने ग्रन्थारम्भ में एक विस्तृत प्रस्तावना प्रायः २५ पृष्ठों में लिखी है जिसमें नाटक का रचना-काल, नाटक की सामग्री और नाटक-पात्रों के चरित्र इत्यादि की आलोचना की गई है। पुस्तक, वर्तमान लाट महोदय श्रीमान् सर जेम्स मेस्टन की सेवा में अर्पित की गई है।

इतनी अच्छी और बड़ी पुस्तक का मूल्य केवल ॥) है। जो बहुत ही थोड़ा है और यह भी हिन्दी में नई बात है। इससे अनुवादक कहीं कुछ नाम हिन्दी के भरोसे, उदर पोषण करनेवालों के क्रोधभाजन बन जावें तो आश्चर्य नहीं है! कहीं कहीं ऐसा देखने में भी आगया है।

छापे की अशुद्धियाँ पुस्तक में रह गई हैं, इसके परिहारार्थ पुस्तक के अन्त में शुद्धिपत्र दे दिया गया है। द्वितीयसंस्करण में अनुवादक को इसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये, जो हम सुनते हैं कि शीघ्र ही निकलने वाला है। हमारी राय है कि प्रत्येक हिन्दीप्रेमी को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। जो लोग अँग्रेज़ी कौलेजों में अँग्रेज़ी में मूल "ओथेलो" पढ़ते हैं उनसे भी हम इसे लेने के लिये सिफ़ारिश करते हैं।

अन्त में हमारी अनुवादक महाशय से यह प्रार्थना है कि वे कृपया शीघ्र ही और अनुवाद भी इसी भाँति प्रकाशित कर, हिन्दी-साहित्य की भी वृद्धि करें। हम उन्हें ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिये धन्यवाद देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printer—Ramjilal Sharma, Hindi Press, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORAMA REG. No. A,

अलंकार १] मार्गशीर्ष १९७६, नवम्बर १९१९ [ध्वनि १०

मनोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"
(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक —
प्यारेलाल दीक्षित
और
रामकिशोर गुप्त (अलंकार शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[वार्षिक मूल्य 3)] मनोरम-कार्यालय, मण्डी धनौरा यू०पी० से प्रकाशित [प्रति संख्या ।=)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

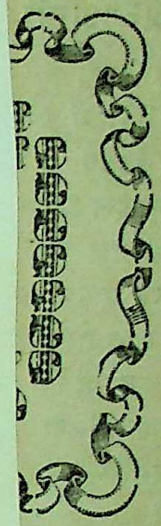

न से कहां हैं ?
मता, जहां है ॥

नता कहां है ?
जनता कहां है ?
तनता कहां है ?
ा जहाँ है ॥*
या काचित
लय की एक छात्रा

नोरमा'--सम्पादक लिखित
लेखिका ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

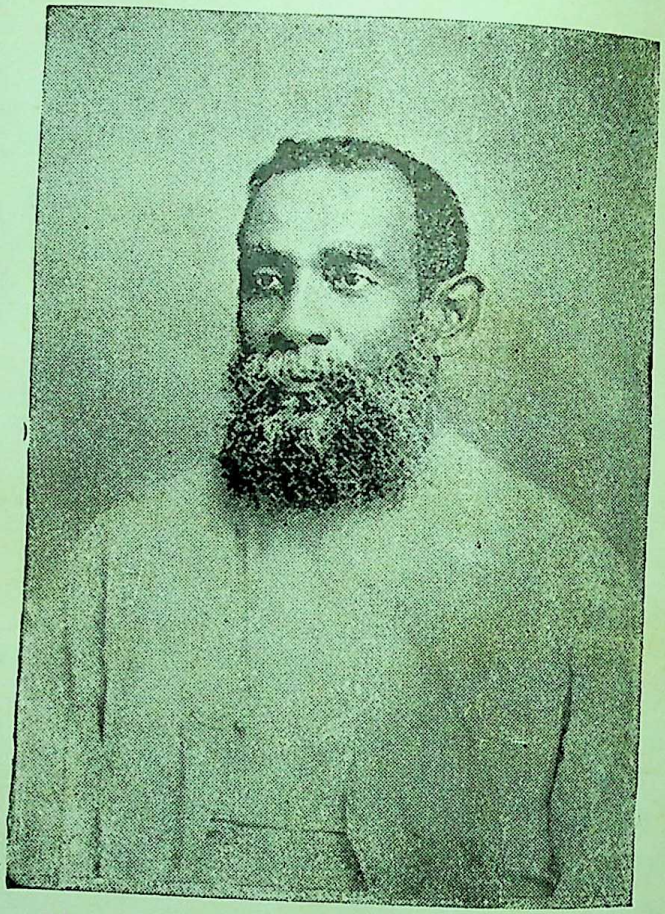

Hon. Babu. Surendranath Banerjee.

C. S. P.

हमें दुःख है कि चित्रशाला प्रेस की भूल से अब की बार यह चित्र छोटे काग़ज़ पर छप गया। भविष्यत् में ऐसा न होगा, पाठक क्षमा करें—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अंक १ | मार्गशीर्ष १९७६, नवम्बर १९१९ | ध्वनि १०

सच्ची बात।

(१)

हा! आज बाण सम विज्ञ कवी कहां हैं?
हा, कालिदास कवि की उपमा कहां है?
दण्डी, कहां सुरुचिरा, रचना, करे है?
उत्साहता, सहनता, दमता जहां है॥

(२)

विज्ञान-विज्ञ, अब गौतम से कहाँ हैं?
चाणक्य शुक्र-सम नीति-सुधी, कहां हैं?
आकाश-यान-घटना, घटती कहाँ है?
उत्साहता, सहनता, दमता जहां है॥

(३)

सत्य-प्रचारक, युधिष्ठिर से कहां हैं?
निर्भीक, भीम-सम, निर्भयता कहां है?
युद्धप्रवीण अब अर्जुन से कहां हैं?
उत्साहता, सहनता, दमता, जहां है॥

(४)

व्यापार में चतुरता, धनता कहां है?
शिल्पत्व-कार्य कुशला, जनता कहां है?
सच्ची, स्वदेश-हित-चिन्तनता कहां है?
उत्साहता सहनता दमता जहाँ है॥*

या काचित
घरेलू विद्यालय की एक छात्रा

---

* 'शारदा' में प्रकाशित, 'मनोरमा'-सम्पादक लिखित 'सत्यार्थ' के आधार पर। लेखिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीकी शब्दशैली कैसी होनी चाहिये?

वर्त्तमान हिन्दी के गद्य में किन किन भाषाओं के शब्द आने चाहियें और किन किन के न आने चाहियें, इस विषय में विद्वानों का मत-भेद है। इस की गणना इस प्रकार की जा सकती है—

(१) एक पक्ष वालों का कहना है कि हिन्दी में विदेशी शब्द एक न आना चाहिये, सारे के सारे शुद्ध संस्कृत शब्द होने चाहियें। वे लोग इस विषय में इतने कट्टर हैं कि वे 'हाथी' को 'हस्ती' और 'घोड़े' को अश्व लिखना ही पसन्द करते हैं। उन लोगों की सम्मति है कि 'हिन्दी भाषा' खिचड़ी न होनी चाहिये।

(२) दूसरा पक्ष कहता है कि हिन्दी में 'अरबी' 'फारसी' और 'अंग्रेजी' आदि के व्यावहारिक शब्द आने चाहियें, भाषा खिचड़ी हो जाय, इस की चिन्ता इसे नहीं है। क्यों कि 'उर्दू' या 'हिन्दुस्तानी' भी हिन्दी ही का एक रूप है। इस पक्ष वालों का विचार है कि ऐसा करने से भाषा सुबोध होती है, और लोग इसे सरलता से समझ जाते हैं।

(३) एक तीसरा पक्ष है, जो कैसे हो बिगड़े हुवे संस्कृत शब्दों को हिन्दी में लाने से नहीं हिचकता, उस की राय में 'पानछ' 'परगट' के ढर्रे के शब्द हिन्दी में व्यवहार करने से कोई हानि नहीं।

मेरी समझ में यह तीनों मत, पहले सिरे के इक्स्ट्रीम (Extreme) हैं। और इन तीनों को मिला कर एवं इन में से कुछ निकाल कर, हिन्दी शब्द-शैली, अत्युत्तम हो सकती है।

चाहें वह संस्कृत के बिगड़े हुए रूप हैं, या प्राकृत के, हिन्दी का अपना शब्द भाण्डार, साधारण कार्यों के लिये यथेष्ट है। इस लिये जहां तक सम्भव हो, हमें हिन्दी के अपने प्राकृत शब्द ही व्यवहार में लाने चाहियें। जैसे आंख, नाक, कान, इत्यादि। जब तक ऐसे शब्दों से हमारा काम चल सकता है, न हमें संस्कृत से सहायता लेनी चाहिये और न किसी अन्य भाषा से। हिन्दुस्तान, या संयुक्तप्रान्तवासी तुलसीदास, पंजाबप्रान्तवासी नानक, बंगालप्रांतवासी विद्यापति एवं महाराष्ट्र वासी स्वामी समर्थ दास, इन सब की भाषा प्रायः एक है। और अधिकांश लोगों की समझ में आजाती है। इस का कारण यही होसकता है कि वह प्राकृतभाषा है, बनावटी नहीं।

तुलसीदास की 'लेंहदाती' गढ़वाल, कुमायूं के पर्वती लोग भी समझते हैं और अधिकांश संयुक्त प्रान्त के लोग भी। पर्वतियों का 'अधान' इस देश का 'अधेन' और उन का 'ऐंसू' अवध वालों का 'असौं' है।

पर्वतियों की 'दाँय' और अवध वालों की 'दाँय' एक ही है। ऐसे शब्दों को जो प्रचलित हैं, हमें उन्हें ग्रामीण समझ कर त्यागना न चाहिये। हाँ इस बात का अवश्य विचार रखना चाहिये कि हमारी भाषा में, प्रांतीयता न आने पावे। तुलसीदास की रामायण में ऐसे ही प्राकृत शब्दों का प्रयोग होने से उस का अधिकांश, बहुत लोगों की समझ में आ जाता है। पर्वती भी उसे समझते हैं और भारत के सब प्रान्त-निवासी भी।

इन के अतिरिक्त, फारसी, अरबी और अंग्रेजी के कुछ शब्द ऐसे हैं, जो हिन्दी ने अपना लिये हैं और कहना चाहिये कि जिन्हें हम अपनी मां के दूध के साथ ही पी लेते हैं जैसे—शाबाश! सिफारिश, साहब, जुलम जेब, तहसीलदार, कोट, बूट, लालटैन इत्यादि। इन शब्दों का व्यवहार जैसे चला आया है, वैसा ही चलते रहना चाहिये।

एक 'खून' शब्द है, जैसे 'क्या खून होगया?' "खून करदिया' 'खून' का पर्यायवाची शब्द हिन्दी में 'हत्या' है। पर जो स्वाद 'खून' में कई स्थानों पर आता है, वह 'हत्या' में नहीं आता। 'खून' या 'कत्ल' मर्डर (Murder) को कहते हैं। इस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ अनुवाद 'हत्या' या 'नरवध' नहीं है। एक 'हत्या-कांड' शब्द भी बंगाली समाचार पत्रों ने निकाला है, पर वह Murder का ठीक ठीक बोधक नहीं है। हमारी राय में उस में कुछ बढ़ाव है।

अब रहे नये शब्द, जिन के लिये हिन्दी कोश में शब्द नहीं मिलते। उनके लिये पहिले संस्कृत शब्द ढूंढने चाहियें। जब संस्कृत शब्द न मिलें, तब और शब्द व्यवहार में लाने चाहियें। अब 'एडिटर' के लिये 'सम्पादक', 'प्रेस' के लिये 'यन्त्रालय' या 'छापाखाना', 'मैनेजर' के लिये 'प्रबन्धकर्त्ता' या 'प्रबंधक' और मुहाविरे के लिये वाग्व्यवहार आदि बड़े अच्छे और सरल शब्द हैं।

नये शब्द जिन्हें हिन्दी ने अब तक नहीं अपनाया है और जो अन्य भाषाओं से लिये जाते हैं, उन्हें जहां तक सम्भव हो, संस्कृत से लेना चाहिये। इस विपत्ति में जिन्हें हिन्दी ने अपना लिया है, वे अपनाये हुए रूप ही में रहने चाहियें, जैसे 'बैटेलियन' के लिये 'पलटन'।

कचहरी और अदालत में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वहां उर्दू का राज्य होने से वे फ़ारसी और अरबी ही के अधिक हैं। इस लिये हमें उन्हीं का व्यवहार करना चाहिये। 'मुद्दई' 'मुद्दाअलेह' और 'गवाह' के स्थान में 'वादी' 'प्रतिवादी' और 'साक्षी' शब्द लोग बहुत कम समझ सकेंगे। यदि हिन्दी में इतना बल होजाये कि वह उन का आकार बदल देवे तो दूसरी बात है। 'कब्ज़ा' शब्द सब समझते हैं। उस के लिये 'आवेश' या 'अधिकार' लाना, ज़रा कठिन पड़ेगा।

भारतवर्ष की सब भाषाओं में संस्कृत-मिश्रण है। मुसलमानों का राज्य होने से कई फारसी के शब्द भी सर्वत्र समझ में आते हैं। ऐसे शब्दों को हमें परित्याग न करना चाहिये।

यह प्रकृति का नियम है कि वह कुछ वस्तुओं को ग्रहण करती है, और किसी किसी का परित्याग करती है। जो जाति या भाषा प्रकृति के इस नियम पर न चलेगी वही जीवित रहेगी। जो शब्द अब पुराने होगये हों और व्यवहार में न आते हों उन्हें हमें छोड़ देना चाहिये। और जो नये शब्द व्यवहार में आते हों या आने योग्य हों, उन्हें काम में लाना चाहिये।

उर्दू या हिन्दुस्तानी, पश्चिमी हिन्दी का एक रूपान्तर है। पश्चिमी हिन्दी को मौलवियों ने फारसी और अरबी के शब्द मिला कर कठिन उर्दू बनादिया है। इधर पण्डितों ने उस में संस्कृत के कठिन शब्द मिला कर उसे पण्डिताऊ हिन्दी बना दिया है। जो सर्वसाधारण के बोल चाल की भाषा है, वह दोनों पक्षों से बची हुई है और हिन्दी है।

जब तक कि हम किसी गूढ़ (जैसे दर्शन या विज्ञान) विषय पर न लिखें हमें मौलवी साहब और पण्डितजी होने से बचना चाहिये।

जब कि उर्दू हिन्दी का एक रूप है, तो नाटकों, उपन्यासों और समाचारपत्रों में नगरनिवासी शिक्षक मुसलमानों के भाषण को हम साधारण उर्दू भाषा में लिख सकते हैं। इसी भाँति, अदालतों के उर्दू फैसले को भी हम हिन्दी में लिखते हुए, सीधी उर्दू में रख सकते हैं।

इस अवसर पर यह कह देना भी असंगत न होगा, कि यह भाषा, अलग इन्हीं प्रयोजनों के लिये रहनी चाहिये, और हिन्दी की साधारण शैली के साथ इस का मिलान न होना चाहिये।

हमें अपनी भाषा के प्राकृत रूप को बचाते हुए उसमें बाहरी आवश्यक शब्दों का आना, न रोकना चाहिये। कोई कोई उर्दू के पद्य या विदेशी शब्द हिन्दी में लाने से, वह बहुधा चटकीली और रसीली होजाती है। परन्तु उन का व्यवहार ऐसा होना चाहिये जो खटके भी नहीं, और अपनी भाषा के वैसे ही उत्तम प्राकृत पद्य और शब्दों का व्यर्थ बहिष्कार भी न करे।

कई लेखकों के लेखों और पुस्तकों में बहुधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनावश्यक विदेशी शब्द बड़े बुरे खटकते और लगते हैं। ऐसे ही प्रचलित विदेशी शब्दों के स्थान में संस्कृत शब्दों का व्यवहार कई लेखकों के लेखों में नीरस प्रतीत होता है। इन दोनों दूषणों से बचना चाहिये।

गोविन्द प्रसाद घिल्ड्याल बी० ए०

—०—

भोलानाथ भट्टाचार्य।

(१)

हज़रतगंज से एक सड़क सीधी स्टेशन को चली गई है—लखनऊ में रहनेवाला शायद ही कोई ऐसा हो, जिसने वह सड़क न देखी हो। नौरोजी होटल के आगे बढ़कर थोड़ी ही दूर पर बाएं हाथ को एक छोटा सा बाग़ है। बाग़ चारों तरफ़ लोहे के तार से घिरा हुआ है। और एक जगह पर, ठीक सड़क के किनारे, एक लोहे का नीचा फाटक लगा हुआ है। वही उस बाग़ के भीतर जाने का रास्ता है। भीतर की छोटी पटरी पर सुर्ख़ी बिछी हुई है और आस पास उसके हरीहरी मुलायम घास का फ़र्श है। फाटक में घुसकर उसी सड़क पर चलकर बाग़ के बीचों बीच पहुंचने पर एक दुमंज़िला मकान मिलता है। मकान अंगरेज़ी ढंग की कारीगरी से बनाया गया है। हमारे पाठकों में से जो कभी लखनऊ गये होंगे, या लखनऊ में रहते ही हैं, उन्होंने शायद कभी उस मकान को देखा हो। उन्होंने देखा हो या न देखा हो, पर मैंने उसे देखा है। केवल देखा ही नहीं है, कुछ दिनों तक उस में आया गया भी हूँ। अगर आप लोगों को विश्वास न हो तो आप मेरे गाँव में भोंदू महाजन के यहां जाकर उसके बहीखाते में देख सकते हैं कि रसिकलाल के पोते और भोगीलाल के लड़के मुझ भोलानाथ भट्टाचार्य के नाम ५०) रु० का क़र्ज़ लिखा है या नहीं।

उस मकान में आने जाने के साथ इस क़र्ज़ का क्या सम्बन्ध है, यह जाने बिना आप लोग अवश्य ही मुझे पागल समझ रहे होंगे। अच्छा ठहरिये, मुझे शुरू से कहने दीजिए, तब सब आपकी समझ में आजायगा। याद रखिए, मैं भोगीलाल भट्ट का लड़का कभी असङ्गत बात नहीं कह सकता।

वह मकान, जिसका ज़िक्र ऊपर आचुका है, ख़ूब सजा हुआ था। उसमें एक बङ्गाली बाबू रहते थे। अब रहते हैं, या नहीं, इसकी ख़बर मुझे नहीं है। इसका कारण यही है, कि बेल के वृक्ष के नीचे गञ्जा आदमी दुबारा नहीं जाता।

मेरे यहाँ बाप दादे के समय से पुरोहिती का पेशा होता आता है। इस घोर कलिकाल में यजमानों में उतनी श्रद्धा नहीं रही कि जिससे पुरोहित लोग मज़े से नित्य न्योते खाकर तोंद फटकाते फिरें, या महिषासुर की तरह निश्चिन्त हो कर पलँग पर पड़े पड़े खर्राटे लिया करें। घर में जो कुछ पूँजी थी उस से काम न चलता देखकर मुझे पेट पालने की चिन्ता हुई। मैं ही अकेला नहीं था, मेरी बूढ़ी विधवा मा थी, एक विधवा बहन भी और उसके दो लड़कियां तथा एक लड़का भी था। मेरी मौसा के भी कोई नहीं रहा, वह भी एक साल से मेरे ही यहां थी। एक मामा की लड़की विधवा होगई थी, उसने भी मेरी मा के चरणों में आकर आश्रय लिया था। मेरा ब्याह तो अभीतक नहीं हुआ—मेरी गृहलक्ष्मी मेरे घर नहीं आई-इसे भी मैं अपना अहोभाग्य ही समझता हूँ। वह आती, और अपने साथ जो कहीं दो चार लड़की लड़के भी ले आती तो और भी आफ़त हो आती। जो हैं, उन्हीं के खाने पीने की चिंता से रात को नींद नहीं आती। जिनके साथ रक्त मांस का सम्बन्ध है उन्हीं के प्रति कर्त्तव्य पालन करना कठिन होरहा है। ऐसी दशा में और एक नया नाता निकाल कर वर्त्तमान चिंता को और भी उन्नति देने से बढ़ कर मूर्खता का काम, मेरी समझ से, दुनियां में दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होसकता। मेरे ऐसे युक्तिपूर्ण इरादे से मा और मौसी वगैरह सब दुःखित थीं। परन्तु मैं क्या करता, मैं मूर्ख स्त्रियों को संतुष्ट करने के लिए ऐसी बेवकूफी कैसे कर सकता था?

साधारण आमदनी से काम नहीं चलता था। और उधर उसका उपाय भी कुछ नहीं सूझता था। इसी बीच में मेरे गाँव के परोसी शिवशंकर दादा लखनऊ से घर आये। लखनऊ में वह एक अँगरेज़ सौदागर के यहाँ ५०) रु० महीने के नौकर थे। लड़की का व्याह करने के लिए पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर आये थे।

व्याह-काज से छुट्टी पाकर एक दिन वह मेरे घर आये। बातचीत के प्रसंग में मैंने उनसे अपना सारा हाल कहा। उन्होंने कहा, तो एक काम करो तुम मेरे साथ लखनऊ चलो। मैं वहां जिस सौदागर के यहाँ काम करता हूं, उसके यहाँ एक बंगाली बाबू भी नौकर हैं। उनको बहुत लोगों से जान पहचान है। उनसे कहकर कहीं न कहीं मैं तुम्हारी नौकरी का प्रबंध करा दूँगा। या उन के किये कुछ न होगा तो और कहीं देखा जायगा। जबतक नौकरी न होगी, तब तक तुम मेरे यहाँ खाना-पीना। उसका प्रबन्ध तुम्हें न करना पड़ेगा।

मुझे एकदम बड़ा भारी सहारा मिलगया। मैंने उन के साथ लखनऊ जाने का निश्चय कर लिया। इस पर मा और मौसी ने बड़ी आपत्ति की; रोने लगीं। मैंने बहुत कुछ समझा बुझा कर उन्हें शान्त किया और तीसरे दिन राम का नाम लेकर दादा के साथ लखनऊ की यात्रा की।

दिहात के लोग समझते है कि शहर में जाते ही नौकरी मिल जाती है पर ऐसा समझना भूल है। जो लोग अँगरेज़ी पढ़े लिखे हैं उनको कुछ दिन शहर की खाक छानने पर कोई-न कोई नौकरी चाहे मिल भी जाय पर मुझ सरीखे कोरे व्याकरण या निरे नैयायिक संस्कृत के पण्डित को नौकरी मिलना असम्भव ही है।

शिवशंकर दादा ने बंगाली बाबू से कहा कि इस बेचारे दीन ब्राह्मण की कहीं नौकरी लगवा दीजिए। यह सुनकर उन्होंने साफ़ कह दिया कि मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर किसी को नौकर नहीं रख सकता। इसके अलावा इस समय मेरे अनुमान में कहीं कोई जगह भी खाली नहीं है।

दादा ने मेरी नौकरी की तलाश में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। शहर में एक आदमी को दोबार पेटभर खिलाने-पिलाने में कुछ कम खर्च नहीं पड़ता--आठ दस आने खर्च होजाते हैं। इस कारण से शिवशंकर दादा और भी कोशिश के साथ नौकरी की तलाश करने लगे। परन्तु कहींभी किसी नौकरी का सिलसिला नहीं जमा। जो सुनता था मैं अंगरेज़ी नहीं जानता वही 'नाहीं' कर देता था।

एक दिन सन्ध्या के समय मैं घर में बैठा हुआ था कि दादा दफ्तर से लौट कर आये। उन्होंने खुशी के साथ यह खबर सुनाई कि एक जगह तुम्हारी नौकरी का सिलसिला मैंने लगाया है। जिन बङ्गाली बाबू के लिए मैंने तुम से कहा था कि नौकरी लगा देंगे, उनके एक लड़की है। वह उसे संस्कृत पढ़ाना चाहते हैं। जो तुम पढ़ा सको तो दो घन्टे रोज़ पढ़ा आया करो। बारह रुपये का महीना मिलेगा। उसमें पाँच रुपय तुम खर्च करना और सात रुपये घर भेज देना।

मैंने मञ्ज़ूर कर लिया। न मंज़ूर करता तो करता क्या? दूसरे दिन पत्रा खोल कर देखा तो उस दिन त्र्यहस्पर्श योग था। मैंने दादा से कहा—पहले पहल नौकरी के लिए जाता हूँ। आज त्र्यहस्पर्श योग है। इस में किसी कार्य का आरम्भ करने से वह सिद्ध नहीं होता। इसलिए कल चलूँ तो कुछ हर्ज है?

उन्होंने कहा—नहीं, बाबू अँगरेज़ी फ़ैशन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी हैं; वह इन बातों को नहीं मानते। मुमकिन है, आज न जाने से नौकरी हाथ से निकल जाय।

लाचार हो, उसी दिन सिद्धिदाता गणेश का नाम लेकर मैं दादा के साथ उसी बाग में गया, जिसका जिक्र ऊपर कर चुका हूं वहीं वह बाबू रहते थे।

(२)

अपने मुँह अपना बखान करना शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है। पर जहां कोई दूसरा इस आवश्यक काम को करने वाला न हो, वहाँ, उस तरह जैसे कि आज कल बाबू साहब लोग अपने हाथ से हजामत बना लेते हैं, आप आप अपनी बड़ाई (वर्णन) कर लेना तो मैं महापाप नहीं समझता। इसी से यहां पर पाठकों के आगे मैं अपना एक साधारण फोटो उपस्थित किये देता हूं।

मेरा चेहरा बिलकुल खराब नहीं है। आंखें छोटी और आठ मोटे होनेपर भी मेरी नाक चपटी नहीं है। मस्तक चौड़ा और चेहरे पर एक आध शीतला का दाग है। दांत सुडोल न होने पर भी इतने लंबे नहीं हैं कि वे मुँह बन्द कर लेने पर भी बाहर निकले रहें। उस समय मेरी अवस्था लगभग २०-२२ बरस के होगी। इस के सिवा सिर पर मुट्ठाभर की चोटी और पैरों में वही चमरौधा जूता, बदन पर एक रामनामी दुपट्टा, गले में रुद्राक्ष की माला और मस्तक पर भस्म रहती थी।

दादा ने मुझ से वेश बदलने के लिए बहुत कुछ कहा, पर मैंने साफ इनकार कर दिया। बारह रुपयों के लिए बापदादों से चली आई चुटिया को छुटवा डालना, या चमरौधा जूता छोड़कर बूट जूता डाटना मैं कैसे स्वीकार करता। हाँ, अगर सौ दो सौ रुपये महीने की नौकरी होती तो इस विषय में विचार किया जासकता था।

मैं उन बंगाली बाबू की लड़की का संस्कृत-टीचर होगया। तीसरे पहर दो घंटे व्याकरण और काव्य पढ़ाना निश्चित हुआ। व्याकरण थोड़ा बहुत पहले ही वह पढ़ चुकी थी। उसे दोहराना और साहित्य में रघुवंश व मेघदूत पढ़ाना निश्चित हुआ। लड़की का वह प्रथमा परीक्षा दिलाना चाहते थे। लड़की आकर उपस्थित हुई। मैंने जो ऊपर से नीचे तक देखा तो सब अंगरेजी रंग ढंग।

उस की अँगरेजी पोशाक मुझे गंवार को अच्छी नहीं लगी। पर करता क्या, नौकरी करने गया था। मैंने सोचा मुझे इससे क्या प्रयोजन? बंगाली बाबू अब मेरे लिए तपोवनवासिनी, निराभरणा वल्कलधारिणी शकुन्तला कहां से ला सकते हैं? और इन बातों की उधेड़बुन से मुझे प्रयोजन ही क्या? पापी पेट पालने के लिए नौकरी करने आया हूं, मेरे कहने का असर ही क्या होसकता है।

वह लड़की हिन्दी भी खूब समझती थी और बोल भी लेती थी। उसदिन पढ़ाकर मैं चला आया पर मनमें यह चिन्ता बनी ही रही कि आज ब्यहस्पति के दिन नौकरी शुरू की है-देखें, कैसी बीतती है।

(३)

लड़की का नाम शशिकला था। मैं नित्य नियत समय पर शशिकला को पढ़ाने जाने लगा। उसकी अवस्था १६-१७ वर्ष के लगभग होगी। अभीतक ब्याह नहीं हुआ था। पहले पहल दोचार दिन तक वह कुछ सकुचती रही। और, कहने में लज्जा ही क्या है, उससे बढ़कर मुझे ही संकोच मालूम होता था। गाँव में ही मैं सिद्धान्त कौमुदी की फक्किकाओं का बड़े गर्व के साथ सब को सुनाया करता था। पर यहाँ, शहर में आकर तो जैसे मेरी नानी ही मर गई!

यही लज्जा अन्त को मेरे लिए काल हुई। यदि मैं ऐसा लजीला न होकर चटपटा बातूनी होता, तो मेरी पण्डिताई खूब चलती और मेरी बारह रुपये महीने की नौकरी पर भी पानी न फिरता।

सब काव्य इत्यादि पढ़कर मैंने यही सारांश निकाला था कि प्रेम एक बड़ी बुरी विपत्ति है। यद्यपि उस समय मेरी जवानी का प्रारम्भ ही हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, तो भी मैं प्रेम से बहुत दूर था। पर हाय रे अभागे विधाता! अथवा हाय रे मेरे फूटे भाग्य! मुझे अपनी शिष्या को इस बारे में सावधान करने का अवसर ही नहीं मिला, इसी बीच में वैरी प्रेम ने मुझ से बदला चुकाने के लिए शशिकला के कोमल हृदय पर आक्रमण करके मेरे मुण्डपात की व्यवस्था कर दी।

प्रेम के धर्मशास्त्र में ऐसा कोई नियम नहीं है कि शिष्य और शिष्याओं के साथ नित्य दो घंटे बराबर "एतोयवायावः" या "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" की ही चर्चा होनी चाहिए। कुछ इधर उधर की बातें होना भी स्वाभाविक है। इस कारण सात ही आठ दिन में शिष्या को मेरे घर का रत्ती रत्ती हाल मालूम होगया। यहाँ तक कि उसे यह भी मालूम होगया कि मेरा ब्याह अभी तक नहीं हुआ। इस हाल को भी मैं छिपा नहीं सका; छिपाने की विशेष आवश्यकता भी मैंने नहीं समझी। मैं क्या यह जानता था कि कालिदास के मेघदूत में इतनी शक्ति है कि उसके देवता कामदेव महाराज मुझ सरल पण्डित भोलानाथ भट्टाचार्य्य को ही शशिकला के कोमल हृदय का सारा प्रेम पाने का पात्र समझ लेंगे! काशी के पण्डितों ने प्रथमा परीक्षा के कोर्स में मेघदूत को रक्खा है। प्रथमा परीक्षा देनेवाले छात्री और छात्रगण प्रायः कम बुद्धि के नौजवान ही होते हैं। तो क्या परीक्षा का कोर्स निश्चित करने वाले सुपक्वबुद्धि शास्त्रियों को मेघदूत की यह शक्ति नहीं मालूम है? अस्तु, इस झगड़े से मुझे क्या प्रयोजन? परन्तु सिर पर भारी चोटी, पैरों में चमरौधा जूता और बदन पर रामनामी रखने वाले मुझ सरीखे निरीह ब्राह्मण पर कामदेव ने इतना बड़ा अन्याय क्यों किया, सो आज तक मेरी समझ में नहीं आया। कदाचित् यह उपहस्पर्श के दिन कार्यारम्भ करने का ही फल हो!

(४)

अस्तु, बात चीत में मुझे जरा जरा समय-पवन के पुष्पसौरभ की गन्ध आने लगी। सम्भव है, बात बात में या मेघदूत की व्याख्या में, मेरे मुख से कुछ प्रेम की बातें निकल गई हों; पर यह मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ कि मैंने जान बूझ कर ऐसा नहीं किया। पर धीरे धीरे मुझे यह स्पष्ट मालूम पड़ने लगा कि पण्डितजी के लिए छात्रा का आग्रह विशेष बढ़ता जाता है। अब मुझ आकर पढ़ने के कमरे में कुछ देर तक शिष्या के आने की राह नहीं देखनी पड़ती; छात्री एक घंटा पहले ही से आकर खिड़की के पास खड़ी रहती है। और, जब मैं चमरौधा जूते से उड़ी हुई धूल से सिर से पैर तक विभूषित होकर कमरे में घुसता हूँ तब वह जल्दी से मेरे बदन की धूल झाड़ देने के लिए विशेष आग्रह करती है। कुछ दिन से पुस्तकों के पास एक तश्तरी में पान और इलायचियाँ भी रक्खी रहती हैं। यदि मैं स्वतः उसमें से कुछ नहीं लेता तो छात्री आप ही पान-इलायची उठाकर मुझे देती है और मेरे अस्वीकार करने पर इतना आग्रह करती है कि मुझे चुपचाप लेलेना पड़ता है। एक भले घर की लड़की के ऐसे आग्रह-अनुरोध की अनेकों बातें प्रकट करना मैं उचित नहीं समझता। इसके सिवा अब उनके कहने से लाभ ही क्या है।

एक दिन पढ़ाने के समय जाकर मैंने देखा, खिड़की में छात्री नहीं है। कमरे के भीतर जाकर देखा, वहाँ भी उसका पता नहीं है। नौकर को बुला कर पूछा उसने कहा, बिटिया को कल से बड़ा बुखार है। आप बैठिए। मैं भीतर से खबर लाता हूँ। मैं बैठगया।

थोड़ी देर बाद भीतर से एक छोकरी ने आकर चुपके से मुझे एक पत्र दिया और चली गई। वह पत्र शशिकला का लिखा हुआ था। पत्र खोल कर मैंने पढ़ा। पढ़ते ही मुझ चक्कर सा आगया। पत्र में क्या लिखा था, सो मैं बताना नहीं चाहता। इस प्रकार सब के सामने किसी की गुप्त चिट्ठी प्रकट करना मेरी समझ में अच्छा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत देर तक मैं बैठा सोचता रहा। उसके बाद उठ कर धीरे धीरे अपने डेरे को लौट आया। डेरे में आकर फिर एक बार पत्र पढ़ने के लिए दुपट्टे के आँचल में पत्रका अनुसन्धान किया। परन्तु यह क्या सर्वनाश! आँचल में पत्र का पता नहीं। डेरे में ढूँढा, नहीं मिला। रास्ते में ढूँढते ढूँढते मैं उस बाग़ के फाटक तक गया। पर भीतर क्या कह कर जाता, लौट आया। पत्र नहीं मिला। शायद पढ़ने के कमरे में ही रह गया होगा। मन ही मन बड़ा डर मालूम हुआ।

दूसरे दिन बड़े सबेरे मैंने देखा कि बंगाली बाबू का आदमी उस महाने को पूरा तनख्वाह १२) रु० और एक पत्र दादा के नाम लेकर आया है। पत्र में दो-तीन लाइनों में लिखा है कि मेरी लड़की की तबियत अच्छी नहीं है। डाक्टर की राय से मैं उसे अपने देश (बंगाल) भेजता हूँ। अब पण्डित की कोई ज़रूरत नहीं रही। ये बारह रुपये पण्डित को दे देना।

दादा दुःखित हुए। मैंने सोचा, अवश्य वह चिट्ठी हाथ लग गई है। मेरे लिए और किसी तरह की व्यवस्था न करके बंगाली बाबू ने उसे १२) रु० दक्षिणा के भेज दिये, इसे मैंने अपना परम सौभाग्य समझा।

उसी दिन बोरिया बँधना उठा कर गाँव में आया। वहाँ माता ने इस आशा से किसी कमाने गये हैं इधर उधर पचास साठ रुपये का ऋण कर लिया था। पचास रुपये लगा कर तो मकान की ही मरम्मत कराई थी। अन्तको भादूँ महाजन से तमस्सुक लिख कर, पचास रुपये मंगा लिये और उससे कुछ कर्ज़ अदा किया। ऐसी भी बिडम्बना क्या कभी किसी मेरे भाग्यशाली पाठक को भोगना पड़ा है? नहीं भोगनी पड़ी तो मेरी यह कहानी पढ़ कर आगेके लिए उन्हें सावधान होजाना चाहिए।

रूपनारायण पाण्डेय

निस्सार मिलन।

(१)

हुआ प्रेम-वेदी पर जब, औचक ही आवाहन तेरा।
हृदय-हृदय से मिला, हुआ हां मैं तेरा औ तू मेरा।
रोक नहीं थी कोई, कुछ भी हुआ न आपस में अन्तर।
मुदित हृदयसे मिले स्वयं ही आके हमसे तुम प्रियवर।

(२)

कौन? कहांसे? क्या आये थे? क्या चाहा? अज्ञात रहे।
तौ भी तुम्हें देखके प्रियवर! सदा प्रफुल्लित गात रहे।
लक्ष नहीं कुछ जीवनका था जब स्वच्छन्द विचरते थे।
केवल चाहत को चाहा था, मरने को हम मरते थे।

(३)

अरण्य-हृदय जब बाह्य जगत में, भूला भटका फिरता था।
शून्य गगन-मंडल में आशा-हीन मेघ जब घिरता था।
तेरे उस संयोग से प्यारे, मरु जीवन में स्रोत हुआ।
हुए हां शैल शिखर करुणालय, मानस मर्म प्रबोध हुआ।

(४)

मरुमें स्वच्छ स्रोतके बदले क्या मालुम था सूखा।
जलधर मेघ निकल जाने पर, जान पड़ा तब रूखा।
अनन्त हृदय गगन में अपने बारी बारी सब हेरा।
निस्सारनिरसन्यूनाधिक जीवनमें 'निस्सारमिलन' तेरा।

(५)

पूर्व मिलन की सौख्य-कल्पना बड़ी हृदयको भाती है।
औचक ही वस्तु मिल जाने पर औचक खो जाती है।
इस खोनेका सुख भी प्रियतम! बड़ा विषद सुखदाई है।
खोया तुम को, पाऊँगा भी, समय बड़ा व्यवसाई है।

विश्वम्भरनाथ जिज्जा।

सामयिक उपदेश।

कागज़ में ख़ूब छपिये, मज़मूँ निगार होकर।
कालम सियाह कीजे, बन जाइये एडीटर।
भारत पै छापा मारें, अख़बार और रिसाले।
तेग़े ज़बान चमके, निकलें कलम के भाले।
चलिये कमेटियों में, दीजे वोटसीलेकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमी तराना गाकर, बनआइयेगा लीडर॥
बस, याद रखिये हरदम, मीटिङ्ग और चन्दा।
दुनिया वो आक़बत को, काफ़ी यही है धन्धा॥
पैदा हो दिल में इश्क़े, ज़ुल्फ़े रिफ़ारमेशन।
बनिये रिफ़ारमर और कहिये कि "हायनेशन"!॥
कौन्सिल की सीट को हम, समझे हैं तख़्ते शाही।
होजायें आप मिम्बर, वोट आयें या इलाही!॥
इशरत कदा है दफ़्तर, है नौकरी भी बेहतर।
तनख़्वाह के अलावा, मिलता है रुतबा आनर॥
बनिये हकीम, सरजन, चमकाइये तिबाबत।
या हूजिये प्लीडर, और कीजिये विकालत॥
"बी०ए०" की डिग्री अब तो, हासिल न कीजे जब तक।
फ़िक्रे जहां की कुरकी, मिलती नहीं है तब तक॥
अय साहिबाने हिन्दी! इन रास्तों प चलिये।
हो गुलशने तमन्ना, में फूलिये वो फलिये॥
किन न हूजियेगा, अब आलिम और पण्डित।
सभी किताब रद है, पोथी धरम की खण्डित॥
सरसब्ज़ होंगे इन से, कब यह किसान माली?
खेत और बाग़ से तो, होती है पायमाली॥
रोशक है ऐब ताजर, और दस्तकार होना।
पामिस्ता सब की नज़रों में बेवकार होना॥
रस्मो हुनर की फ़िक्रें, करती हैं अक़्ल चौपट।
सौदागरी की हसरत, झगड़ा है और झंझट॥

—०— (यः कश्चिदुपदेशकः)

पितृ पूजा।

(१)

हिन्दुओं की पितृपूजा पर विदेशी तो हँसते ही हैं, नई रोशनी वाले भारतवासी भी इसको व्यर्थ समझते हैं। हमारा विचार यह है कि अनेक लेखों से हम यह सिद्ध कर दें कि पितृपूजा सारे सभ्य देशों में थी। नई रोशनी में स्वार्थान्धता बहुत व्यापी है, इस से कृतज्ञता भी नष्ट हुई जाती है और जिन लोगों ने हम को जन्म देकर पाला उनके उपकारों को भूल कर साल में एक दिन उन को स्मरण करना, उनके नाम पर पुण्य दान करना, अखर जाता है। इस विषय पर हमारे गुरुवर राय बहादुर बाबू राजकुमार सर्वाधिकारी ने १८८० ई० के टागोरला लेकचर में अपने विचार प्रकट किये थे। उन्हीं के आधार पर ये लेख लिखे जाते हैं।

यूनान के इतिहासलेखक ग्रोट ने लिखा है कि यूनान वाले मुर्दा गाड़ने के धर्म को सब से श्रेष्ठ मानते थे। इसका अभिप्राय यह है कि मरे लोगों की प्रेतक्रिया कराने का सब तरह से अधिकार था। प्रेतक्रिया ठीक ठीक न की जाती तो प्रेत व्याकुल फिरा करते थे और इलीज़ियम (Elysium) नाम स्वर्ग का सुख भोग न सकते थे। सोलन (Solan) का एक नियम यह था कि माता पिता की अयोग्यता के कारण जो लड़के उनके लिये कुछ भी करने को बाध्य नहीं थे उन को भी माता पिता का क्रिया कर्म करना आवश्यक था। जो लोग इस से भूल करते थे उनकी बड़ी बदनामी होती थी। और पतित से माने जाते थे। किसी के चरित्र पर सब से बड़ा कलङ्क यह था कि उस ने अपने सगों का प्रेतकर्म नहीं किया है। मा बाप जब अपाहज हो जाते तो उनका भरण पोषण न करने के लिये लड़कों को जैसे राजदण्ड मिलता था वैसे ही क्रियाकर्म न करने से भी अपराधी माने जाते थे। दायाद (वारिस) का पहला धर्म यह था कि कुलाचार के अनुसार प्रेतकर्म करे। धन न भी हो तो भी सगे नातेदार जैसे बने इस काम को करें और वह लोग न करें तो राजा आप उनको चेतावनी दे कर क्रियाकर्म कराये और जो सगा नातेदार हो उस से दूना भरले। जब कोई धनी मर जाता था तो उसके नातेदार उसकी लोथ की पूजा सिंगार झट पट करने लगते थे जिससे यह जान पड़े कि येही लोग इसके दायाद हैं। यूनान वालों में प्रेतकर्म समय समय पर हुआ करते थे जैसे आगे लिखा जायगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायाद नियत समय पर करने के लिये बाध्य रहते थे। क्रियाकर्म का विधि से करना दाय (वरासत) का एक अङ्ग था और देश के आचार व्यवहार ने दायादों (वारिसों) से इस पितृपूजा के पाने का अधिकार मृतों को दे रक्खा था।

रोम में भी देशके क़ानून ने सैक्रा (Sacra) कराने के प्रबंध में बड़ी सावधानी थी। सैक्रा मरे पितरों के नाम पर पूजा और बलिदान को कहते थे। ये कुलाचार थे और कुल के एक एक मनुष्य का धर्म था कि मरे लोगों के नाम पर इनको करै। जब तब कुल में सैक्रा करने का पूरा पूरा प्रबंध न हो जाय, उस कुल का लड़का गोद नहीं लिया जाता था और न किसी वसीयत के अनुसार जायदाद बँट सकती थी जब तक सब वारिस सैक्रा का खर्चा देने को राज़ी न होजाते थे।

रोम में यह रीति थी कि मृत के क्रियाकर्म के लिये कुछ धन अलग कर दिया जाता था। मृत पुरुष मरने से पहिले इसका प्रबन्ध न करजाता तो वारिस का धर्म होता था कि खर्चा दे और क्रिया कर्म करै। और जो बिना वसीयत किये कोई मर-गया हो तो यह काम उसके नातेदारों के सिर उन के दायक्रम के अनुसार पड़जाता था।

इस विषय में रोम वालों और हिन्दुओं में कोई बड़ा भेद न था विष्णु स्मृति में लिखा है कि "जो धन का वारिस है वह पिंडा दे। बाप की जायदाद का कुछ भी हिस्सा न मिलै तो भी बेटे का धर्म है कि पिंडदान करै" रोम के क़ानून में भी बेटे का धर्म था कि जायदाद मिलै या न मिलै पर मरे बाप के लिये प्रेतकर्म करदे। हिन्दुओं की रीति इस से भी बढ़ गई। यहां यह नियम है कि जायदाद पाने का हक़ उतना ही है जितना पिंड-दान करने का अधिकार है। जायदाद का पाना है पिंडा देने की योग्यता के आधीन। दोनों अलग नहीं होसकते। जो जायदाद पाता है उसे जायदाद के पहिले मालिक का क्रिया कर्म करना चाहिये। और जो ऐसा कोई नातेदार नहीं है जो कानून की रू से इन कामों के करने का अधिकारी है तो वरासत का क़ानून फिर नहीं चलता और जायदाद नज़ूल होकर सरकार में चली जाती है। राजा उस जायदाद का वारिस बन कर लेता है और उसे वारिस के सब काम करने पड़ते हैं, उसे चाहिए कि मरे हुए का क्रिया कर्म करै और यह भी देखता रहै कि यह कर्म बँधे हुए दिनों पर बराबर किए जाते हैं। मरे हुए के प्रेत के सुख के लिए पिण्डा पानी बहुत ज़रूरी है और जो किसी की जायदाद ले उसे वह रीति सब करनी चाहिए जिससे प्रेत कुशल से रहै।

हिन्दूशास्त्र ने इस रीति से पिंडा पानी देने के धर्म को वरासत के हक़ से ऐसा जोड़ दिया है कि दोनों अलग नहीं हो सकते और इसी लिए यह बहुत ज़रूरी है कि श्राद्ध कर्म साफ़ साफ़ समझ में आजायँ जो हिन्दुओं के वरासत के कानून की जड़ है। हिन्दुओं के क्रियाकर्म का हाल लिखने से पहिले यह अच्छा होगा कि हम अगले दिनों में और और जातियों में जैसे जैसे क्रियाकर्म होता था उसे देख जाँय। पहिले पुराने यूनान को देखते हैं तो यह जाना जाता है कि वहां के लोग अपने मुर्दों को गाड़ते भी थे और जलाते भी थे। पहले यह रीति थी कि लाश को तेल लगाते थे, फूलों का मुकुट पहनाते थे और तब एक सिंहासन रखते थे। इस के पीछे दाह कर्म की और रीतियां की जाती थीं। मरने के तीसरे दिन मरे आदमी के भाई बन्धु सवेरे सूर्य्य निकलने से पहिले मुर्दे को शहर से बाहर लेजाते थे और वहाँ वह रीतियां की जाती थीं जिनके बिना प्रेत स्वर्गलोक में जिसे इलिज़ियम् (Elysium) कहते थे पितरों के साथ रहकर सुख भोग नहीं कर सकता था।

पवित्र करने वाली अग्नि को मुर्दा सौंपने से पहिले चेरन (Charon) के लिये उस के मुँह में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लड्डू और सेरिबरस (Cerebrus)के लिए मुंह में डबोई एक टिकिया रखदी जाती थी। जो लोग इन क्रियाओं में साथ रहते थे वे सब अशुद्ध समझे जाते थे और उन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ता था तब वह देवताओं के मन्दिर में जाने पाते थे।

मुर्दे के मुँह में लड्डू रखने की वैसी ही रीति है जैसी हिन्दुओं की रीति मुर्दे के मुँह में सोना डालने की यजुर्वेद में लिखी है। इस का मतलब क्या है कुछ समझ में नहीं आता। जब कोई आदमी दूर की यात्रा को जाना चाहता है तो राह के खर्च के लिये अपने साथ रुपया पैसा रख लेता है, ऐसे ही मालूम होता है कि जब मरा आदमी ऐसे दूर देश की यात्रा को निकला जहाँ से कोई फिर आया तो उस के स्नेही भाई बन्धु राह में उस आराम का बन्दोबस्त ज़रूर करते और सोने से तो सब सुख मिल सकता है इस से यात्री के हाथ में थोड़ा सा सोना दे देते थे।

यह बात तो बे ठिकाने की थी अब हम फिर यूनानियों के क्रियाकर्म का हाल कहते हैं। मरने के तीसरे दिन यूनान के लोग मरे बन्धु के लिये ट्रेटा नाम एक बलिदान देते थे और बलिदान और रीतियाँ जो क्रियाकर्म के पीछे होती थी वह ट्रेटा, इनेटा, हायाकेडीज, ईनाजिस्मेटा और कोए अटा कहलाती थीं। सबसे बड़ी पूजा जो प्रेत के लिये की जाती थी वह नवें दिन होती थी और इन्नेटा कहलाती थी। मरे बन्धु के लिये शोक करना क्रियाकर्म के तेरह दिन तक रहता था और तेरहवें दिन फिर बलिदान दिया जाता था। स्पार्टा में शोक के दिन ग्यारह ही थे। शोक के दिनों में मरे आदमी के भाई बन्धुओं का बाहर निकलना अनुचित समझा जाता था यह लोग काले कपड़े पहिने रहते थे और अगले दिनों में शोक का चिन्ह यह भी था कि वह लोग अपने बाल कटा डालते थे।

जिस कुल की जो कबर होती थी उस की वह बड़ी खबरदारी करता था और जन्मभूमि के साथ सब से बड़ा बन्धन यही कबरें मानी जाती थीं। नियत समय पर इन कबरों पर फूल चढ़ाये जाते थे और फलों की माला और कई चीज़ें प्रेत को भेंट दी जाती थीं। इस भेंट देने को इनैजिज़ाइन और भेंट को इनैजिजमेन्टा या केवआई कहते थे।

डाक्टर स्मिथ की पुस्तक में लिखा है कि हिरो डोटस का जिनोजिया भी उसी तरह की पूजा थी जिस में मरे आदमी के जन्म दिन को वैसे ही फूल माला चढ़ाई जाती थी और निक्यूजिया मरने के बरसवें दिन की पूजा को कहते थे जब प्रेत को अन्न देकर जला देते थे।

रोम वालों की रीतियां भी ऐसी ही थीं। सब से पहिले मुर्दे गाड़े जाते थे पर रोम में साधारण प्रजाराज्य के बीतने और कैसरों के राज के चारसौ बरस तक मुर्दा जलाया जाता था और राख कटोरे में रखकर एक कबर में गाड़ दी जाती थी। जब सारा मुर्दा जल जाता था तो जलते हुये अँगारों को शराब से बुझाते थे। जली हड्डियों को इकट्ठा कर के पहिले उस पर शराब छिड़कते थे फिर दूध डालते थे कपड़े से सुखाते थे और मँहगे सुगन्ध में लपेट कर बर्त्तन में बन्द कर देते थे और कुल के मकबरों में ताकों पर एक पंक्ति में लगा देते थे।

गाड़ने या जलाने के लिये मुर्दे को संवारने का काम किराये के लोग करते थे। मुर्दे को सब से अच्छे कपड़े पहनाये जाते थे। अगर वह फौजदारी का हाकिम होता था तो कचहरी के कपड़े पहिनाते। अगर जीते जी कभी उसे मुकुट पहिनाया गया था तो उस के सिर पर मुकुट रखते। अगले दिनों में मुर्दे रात को गाड़े जाते थे लेकिन पिछले दिनों में गरीब ही ऐसा करते थे जो धूम धाम से खर्च नहीं कर सकते थे। मरने के आठवें दिन मुर्दे को पत्थर के सन्दूक में रख कर काठ के और कभी २ सुनहरे ढाचों पर लाद कर बाजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजाते रोते और चिल्लाते और कभी कभी मरे आदमी के गुण और कामों की नटों से नाट्य कराते क़बर के पास ले जाते थे मरे आदमी के लड़के अपना मुंह ढांके और औरतें छाती पीटती थीं और गाल नोचती थीं। जब मुर्दा जलाया जाता था तो तेल सुगन्ध और गहने जो जो चीजें वह आदमी अपने जीते जी चाहता था आग में फेंक दी जाती थीं। दाह करके लौटने पर भाई बन्धु पवित्र पानी अपने ऊपर छिड़क कर या आग फांद कर शुद्ध होते थे। कुल के शुद्ध होने के दिन बँधे थे। मुर्दे के लिए शोक और रीतियां नौ दिन तक हुआ करती थीं और नौ दिन बीते नौवेरडिषेली नाम एक बलिदान होता था। और किताबों में हम यह भी देखते हैं कि दाह के नौ दिन पीछे फीना फिरेलिस नामक एक खाना क़बर के पास रख दिया जाता था और लोग यह समझते थे कि इसी को प्रेत खाता है।

मरे आदमी के नाम पर एक भोज भी होता था पर कितने दिनों पर होता था यह ठीक नहीं है। कभी तो दाह के समय लिखा है कभी नौवेरडेल के दिन और कभी उसके पीछे। इस भोज का नाम सिलीसर्नियम था।

बड़े आदमियों के क्रिया कर्म के पीछे मित्रों के लिए एक भोज तो होता ही था पर ग़रीबों को कच्चा मांस भी बांटा जाता था और कभी सब लोगों को खाना बँटता था। दाह के बरसवें दिन भी कभी २ भोज और खेल हुआ करते थे। जो लोग ऐसे भोजों में जाते थे वे सब उजले कपड़े पहने रहते थे।

रोमवाले भी यूनानियों की तरह अपने भाई बन्धुओं की क़बरों पर नियत दिनों पर जाया करते थे, और उन्हें बलिदान और भेंट भी दिया करते थे। प्रेत देवता समझे जाते थे और देवताओं की तरह माने भी जाते थे। किसी किसी दिन जिसे तेवहार मानते थे प्रेतों को बलिदान दिया जाता था, बरसवें दिन का त्यौहार सब प्रेतों का होता था, और फ़ेरोलिया या पागेटलिया नाम से उन्नीसवीं फरवरी को किया जाता था, क्योंकि माँ बाप और इन दोनों के प्रेतों का बलिदान देना लड़कों और वारिसों का धर्म था।

पितृपूजा पुराने फ़ारिस में भी थी। और बंबई के पारसी अबतक करते हैं। ये पारसी फ़ारिस के उन रहने वालों की सन्तान हैं जो मुसलमानों के देश जीतने पर वहां चले आये थे। एक बड़े विद्वान् ने लिखा है कि उनका धर्म जैसा उनके आचार्य ज़रतश्त ने ज़ेन्दा वेस्ता में लिखा है एक ईश्वर को मानता है और यह भी कहा जा सकता है कि विश्व भर को ईश्वर मानता है। यद्यपि इस में द्वैतवाद है और ईश्वर ही के प्रत्यक्षरूप मानकर आग, हवा, पानी, आकाश भी पूजे जाते हैं। यह लिखा हुआ है कि इनका धर्म दो दो शब्दों की तीन बातों में है। सत्य विचार, सत्य बचन और सत्य काम और इन्हीं तीनों की बार बार याद दिलाने के लिये पारसी सूत की तेहरी करधनी पहनते हैं। पारसियों के धर्म की जड़ हिन्दू आर्यों के धर्म में जैसा कि वेद में लिखा है मिली हुई है और आज कल के ब्राह्मणों * के धर्म की बहुतसी बातें उसमें पाई जाती हैं।

पारसियों में एक बात अनोखी है जैसा कि क्रिया कर्म इन लोगों में होता है वैसा और किसी दूसरी जाति में नहीं है। पारसी मुर्दे को घर से ले जाने के पहिले कुछ मन्त्र सा पढ़ते हैं और एक कुत्ते को, जिसे पारसी पवित्र समझते हैं मुर्दा दिखाया जाता है। मुर्दा गाड़ा नहीं जाता पर पुरानी में लोहे की छड़ों के ऊपर रख दिया जाता है जहां

* 'आज कल के ब्राह्मणों' से लाला जी का क्या मतलब है यह समझ में नहीं आता।

मनोरमा-संपादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप और ओस पड़ें और चिड़ियाँ मांस नोच कर खा जायँ। जब हड्डियां उजली रह जाती हैं तो वह नीचे गढ़े में गिर पड़ती हैं और वहां से उठा कर एक गहरे खत्ते में डाल दी जाती हैं। शोक करने वाले गाथा पढ़ते जाते हैं और इस बात की प्रार्थना करते हैं कि मरने के चौथे दिन प्रेत अपने अन्तिम विश्राम की जगह में पहुंचा दिया जाय।

पारसियों की धर्म की पुस्तक में पांच यज्ञ लिखे हैं जिसे कि आग के हर पारसी को करना उचित है। वह यह हैं--आम या खास तेवहारों में बलिदान, प्रार्थना करना, दारंस यज्ञ, जिसमें पवित्र रोटी और शराब धर्म चलाने वाले के नाम पर दी जाती है, प्रायश्चित्त की रीति जिसमें या तो कोड़ों से अपना बदन पीटते हैं या पुरोहित को दान देते हैं। पांचवां यज्ञ मरे लोगों के प्रेतों के लिये किया जाता है यह हिन्दुओं के श्राद्ध की भांति है। जब हम उन मन्त्रों को पढ़ते हैं जिनसे मरे पितरों के प्रेत बुलाये जाते हैं तो हमको वह वेद मन्त्र याद आते हैं जो हिन्दू पुरोहित ऐसे ही अवसरों पर पढ़ते हैं जब कि मरे लोगों के प्रेतों को पिंडा पानी दिया जाता है। हिन्दुओं और यूनानियों की मृत क्रियाओं से बढ़ कर हिन्दुओं और ज़रदश्त मत वालों की रीतियों में अन्तर का कम होना ही ठीक है। पुराने फारस के रहने वालों और वैदिक आर्यों के पूर्व पुरुषा बहुत दिन तक इकट्ठा रहे थे और मत ही के झगड़े के कारण अलग हो गये। इन दोनों का मत एक था और कहानियाँ भी एक सी इसी से इस बात की आशा करनी कि दोनों के धर्मों में बहुत सी बातें एक होंगी व्यर्थ नहीं हैं। पारसी भी अपने पुरुषों को पितर कहते हैं और यह जान पड़ता है कि मरे लोगों के प्रेतों का उतना ही आदर करते हैं। पुराने फारस के रहने वाले श्राद्ध को ऐसा ही जानते थे जैसा कि आज कल के हिन्दू मानते हैं।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि आज कल के दिनों में हिन्दू और चीन वाले यही दो जाति हैं जो अपने मरे पुरखों के नाम श्राद्ध करते हैं। हमने देखा कि पारसी भी यही रीतियां करते हैं जो श्राद्ध ही जैसी हैं। चीनियों के मृत कर्म में बहुतसी बातें ऐसी हैं जो हिन्दुओं के शास्त्रों में पाई जाती हैं। पर यह जानना कठिन है कि चीन वालों ने यह रीतियां कहां से लीं। बुद्ध मत के लोग तो इन रीतिओं से दूर भागते हैं इस से यह नहीं होसकता कि बुद्ध धर्म फैलाने वाले इन को हिन्दुस्तान से ले गये हैं। इस से यही निकला कि ये रीतियां उसी देश की हैं।

जब कोई चीनी मर जाता है तो उस का कोई भाई बन्धु या मित्र तुरन्त ही उस का कुरता उतार लेता है और घर के ऊपर चढ़ जाता है और उत्तर मुँह, होकर अपने ज़ोर भर चिल्ला कर मरे आदमी के प्रेत को पुकारता है। इस के पीछे कुरते को तह करके दक्षिणाभिमुख हो जाता है और फिर उसे मुर्दे के ऊपर डाल देता है और तीन दिन तक यह कुरता उसी तरह इस आशा से पड़ा रहता है कि जीव फिर लौट आवेगा।

चीन वालों के जीते जी ऐसा कोई काम बड़ा भारी नहीं समझा जाता जैसा कि मरने के पीछे उसका क्रिया कर्म है और जितना कि उसको उस सन्दूक के रचने का ध्यान रहता है वैसा किसी चाज़ या किसी शास्त्र को नहीं समझता। हमने सुना है कि धनी लोग इस व्यर्थ दिखावे के काम में ढाई तीन हज़ार रुपया तक खर्च कर डालते हैं। ग़रीब के पास जो कुछ रहता है वह इसी में लगा देता है और यह भी सुना है कि कभी कभी लड़के ने अपने मरे बाप के लिए मँहगा सन्दूक मोल लेने को अपने तईं बेंच कर ग़ुलाम बना दिया है।

चीन का हर एक आदमी वैसी गृहस्थी को बहुत चाहता है जैसी हिन्दुओं में होती है। जिस में बाप घर का मालिक रहता है और बेटे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुएँ सब एक ही घर में रहती हैं और इसीसे जब उसके मरने का दिन आता है तो मौत का डर उस के सामने आया रह जाता है। जब वह समझता है कि उसके लड़के उसकी क़बर पर रीतियाँ करेंगे और जो पूजा धर्म में लिखी हैं वह सब की जायँगा। हर चीनी को यह पूरा विश्वास है कि उसके मरने के पीछे इन्ही रीतियों के ठीक करने से उसके प्रेत को सुख मिलेगा।

नीचे लिखी हुई विचित्र बातें प्रसिद्ध पादरी मेडहर्स्ट ने बयान की हैं और हम समझते हैं कि लोग इन को ध्यान से पढ़ेंगे। कन्फूशिअस का हुक्म है कि लड़के अपने मरे पितरों की पूजा ज़रूर करें और मां बाप के मरने के बरसवें दिन और क़बरों पर भोज देने के दिन सब लोगों को चाहिए कि अपने पुरखों के प्रेतों को भेंट दें, यह भेंट कुछ प्रायश्चित्त के लिये उन लोगों को मनाने के लिए नहीं दी जाती बरन उन को खिलाने ही पिलाने के लिए होती है लोग यह समझते हैं कि प्रेत, जो खाना दिया जाता है उसे खाते हैं और तृप्त होकर अपनी सन्तान को नहीं सताते, यह भी हो सकता है कि उनके भलाईके लिए कुछ यत्न करते हों और प्रेतों के खाने के पीछे खाना तो घटता ही नहीं इस से चीन वाले समझते हैं कि रस हो ले लिया जाता है और सब पड़ा रहता है। इस से प्रकट है कि जो लड़के और नाती पोते छोड़कर मरते हैं उनको उनकी सन्तान खाना पानी दिया करती है पर जो बिना सन्तान मरते हैं उनकी दशा बुरी है वह बिना सहारे के इधर उधर हवा में भूखे और जाड़े खाते फिरा करते हैं। बुद्धमत वालों ने लोगों का ऐसा विचार पाकर बहुत सी रीतियां जमा दी हैं सन्तान को सिखाया है कि अब कभी किसी का क्रिया कर्म हो तब उन से मदद ली जाय जिससे कि मरे भाईबन्दों के प्रेत नरक से छुटकारा पावें। उन प्रेतों के लिए जिनके सन्तान नहीं है एक साधारण पूजा भी होती है। इसे बुद्ध मत वाले निरा धर्म का काम समझते हैं, और चन्दा जमा करके उचित रीति से खर्च करने के लिए एक कमेटी बनाई जाती है। उस दिन दो चबूतरे बनाए जाते हैं, एक पर पुजारी बैठते हैं दूसरे पर खाने की चीजें रक्खी जाती हैं। झंडियाँ और लालटेनें भी दिखाई जाती हैं बहुत से प्रेतों को इस बात की खबर करने के लिए कि उनके लिए अच्छा खाना रक्खा है घण्टा और ढोल बजाया जाता है और तब पुजारी अपने मन्त्र पढ़ते और उंगलियां नचाते हैं जिससे वह समझते हैं कि नरक का फाटक खुल जाता है और भूखे प्रेत अपनी भेंट लेने को दौड़ पड़ते हैं। कितने लोग जो वहां रहते हैं वह कहते हैं कि हम अपनी आँखों फाटक की राह देख रहे हैं कि पहिले प्रेत जिन के रोएं खड़े हैं और हड्डियाँ देख पड़ती हैं कूदते फांदते ऊँचे महलों को भागे जाते हैं और फलों के टोकरे भात के बर्तन पूरे पूरे सुअर और बकरे अपने कन्धों पर लादे हुए लौटे जा रहे हैं मानो उन्हें बस दिन को खाने भर को मिल गया। जब पुजारियों का काम हो जाता है तो चारों ओर से लोग दौड़ पड़ते हैं और जो कुछ प्रेतों से बचा है उसे लूट लेते हैं।

पुराने मिस्रवालों के क्रियाकर्म का विशेष ब्यौरा लिखने का कुछ काम नहीं है। जब कोई मरता था तो उस के कुल के सब लोग अपना घर छोड़ देते थे और मृत बड़ा आदमी होता तो ७० दिन तक नहीं तो ६० दिन तक सब सुख छोड़ देते थे आवश्यकतानुसार भोजन आदि करलेते थे। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मुर्दे को तेल मसाला लगाना और उस के कर्मों पर विचार करना मिस्रवालों ही में होता था। मुर्दे को सड़ने से बचाने के लिए तेल मसाला लगाते थे और घर में अच्छी जगह रखते थे या बड़े बड़े पिरामिड (Pyramid) में गाड़ देते थे। इन्हीं मुर्दों को मोमिया कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां मोमियाओं को जैसे जीते जी पहिने जाते थे वैसे कपड़े पहिना कर पूजते थे। इन मोमियाओं को वहां वाले बड़ा पवित्र धन मानते थे और कभी कभी प्रेतों का रूप मान कर उनकी पूजा करते थे। मुर्दे बारह महीने तक मसाला लगा कर घर में रक्खे जाते थे और उन के नाम पर भोज होते थे। साल बीते उन्हें निकाल कर एक ताल के किनारे ले जाते थे और यहां ४२ सज्जन बैठकर प्रेत के कामों पर धर्म के अनुसार विचार करते थे। उस समय यह प्रश्न होता था कि जिसका वह मुर्दा है उसके गुण जाते जी ऐसे थे या नहीं जिन से उनके गाड़े जाने का प्रतिष्ठित अधिकार मिले। जो लोग उस पर कोई दोष लगाते थे उन सब की सुनवाई होती थी और बहुत सोच विचार कर फैसला सुनाया जाता था। फैसला बुरा होता था तो रोना चिल्लाना पड़ जाता था और विचार करने वालों ने कहा कि मुर्दा गाड़े जाने के योग्य तो लोग मारे खुशी के चिल्लाने लगते थे। इस के पीछे एक मल्लाह जिसे चेरार कहते थे मुर्दे को बेड़े पर चढ़ा कर ताल के उस पार ले जाता था। उस प्रसिद्ध पुरुष के विषय में जो कहानियां यूनानियों और रामवालों के ग्रंथों में लिखी हैं वह सब नील नदी ही के तट पर गढ़ी गई थीं।

मिस्रवाले इन मुर्दों को वैसा ही समझते थे जैसे हिन्दू मूर्तियों को, तो भी न उन को देवता समझते थे और न समय समय पर उनकी पूजा होती थी। पितरों की पूजा होती थी पर उस रीति से नहीं जैसे हिन्दुस्तान या रोम में प्रचलित थी। आर्यों और मिस्र वालों की रीतियां बहुत कम मिलती जुलती थीं और श्राद्ध करना तो मिस्र वाले जानते ही न थे। कुछ लोगों का यह मत है कि हिन्दुस्तान और प्राचीन मिस्रवालों के आचार और धर्म बहुत कुछ एक थे। कुछ लोगों ने यह भी कह डाला है कि वैदिक ऋषियों ने अपना धर्म और देशाचार ऐसिस (Isis) और ओसिरिस (Osiris) के पुजारियों से लिया है यह समस्या बड़ी कठिन है और यहाँ उस पर विचार करने का काम नहीं। यहां इतना ही कहना है कि हिन्दुओं का श्राद्धकर्म मिस्र में प्रचलित न था-मिस्र में पितृपूजा थी या एक अनोखे रङ्ग की थी।

इब्रानियों में भी बहुत से भोज और बलिदान लिखे हैं। यूसुफ के मरने पर मिस्र में उनका क्रिया कर्म जिन रीतियों से हुआ था वह सब मिस्रवालों की थीं और इनमें हिन्दुओं को सी कोई बात न थी।

इस में सन्देह नहीं है कि किसी न किसी रूप में पितृपूजा संसार की सब जातियों में थी और थोड़ी बहुत अब भी है। आर्य जातियों की रीतियां अब भी थोड़ी बहुत मिलती जुलती हैं।

सीताराम

—०—

भारत का महत्त्व ।

है देश भारत, पयोनिधि पुण्य रूप,
जन्मे जहां विविध रत्न गुणी अनूप ।
विद्या, प्रभाव, बल वीर्य, तथा गुणों को,
पूर्ण प्रकाश जग के नृप भूषणों को ॥ १ ॥
आश्चर्य के जलधि में, कर मग्न डाला,
है, होरहा, अवनि; पै उनका उजाला ।
थी वीरता सुहृदता इस देश जैसी,
पाई कभी अपर ने अब लों न ऐसी ॥ २ ॥
सत्यव्रती कृकच[१] पै चिरते यहीं थे,
खाके कृपाण रण से हटते नहीं थे ।
आनन्द धाम यश गौरवरूप आपी,
ह्यां एक से अधिक एक हुवा प्रतापी ॥ ३ ॥
अन्यान्य देश जन ने धन स्वार्थ हेतु;
खोये शरीर अपने तजि धर्म सेतु ।
विख्यात वीर गण ने प्रिय धर्म द्वारा,
त्यागा यहां वचन कारण राज सारा ॥ ४ ॥

१ आरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झेलीं अनेक विधि की विपदा शरीर,
मर्याद हेतु कुछ भी न हुए अधीर।
था सत्य ही बस उन्हें दिन रात प्यारा,
प्राणान्त हो तदपि धर्म कभी न हारा ॥ ५ ॥
मार्त्तण्ड चक्र उलटा फिर जाय चाहे!
चंद्रांशु शीत गुण त्यागि मही विदाहे,
पृथ्वी, उड़े गगन को, गिरि-शृंग, हाले!
सामर्थ्य कौन उनके प्रण को विचाले? ॥ ६ ॥
श्रीरामचंद्र भरतादिक धर्मधारी,
श्रीकृष्ण से अनघ योगि परोपकारी।
व्यासादि से परम काविद ब्रह्मचारी,
ऐसे अनेक शुभ रत्न विशोकहारी ॥ ७ ॥
स्वछन्दता सहित भारत! गोद तेरी,
खेले सदा विशद खेल समोद तेरी।
जो आज भी सुयश है तनु तेज धारे,
भूलें तुझे हृदय से किस भांति प्यारे ॥ ८ ॥
दैव प्रकोपवश तू यदि सोगया है!
विद्याविहीन अरु भिक्षुक हो गया है!
चाहे प्रभा प्रथम सी तुझ में नहीं है,
तो भी उदाहरण क्या मिलता कहीं है? ॥ ९ ॥
तू सर्व-देश-पति, है सब राज राज,
तू विज्ञ सर्व गुण है सब शीश ताज।
विद्या कला जगत् ने विस[1] ही तुझी से,
सीखे सुचाल चलना सब ही तुझी से ॥१०॥
क्या ध्यान आज तुझ को यह भी नहीं है?
सत्य प्रतिज्ञ ऋषि देव[2] हुआ यहीं है।
तातानुराग, हृद, था किस भांति आहा!
जो दे दिया वचन तो उस को निबाहा ॥११॥
वीरत्व धर्म उनका इस लेखनी से,
देना महा कठिन है पर सत्य जो से।
वृत्तान्त योग्य लिखना इस हेत जाना,
आलस्य है स्वतनु का मनसे हटाना ॥१२॥

बालमुकुन्दशर्मा

[1] मोलली [2] भीष्म।

वर्षा।

जय जग-जीवन जुवक-जननु-जिय-जोन्ह जगावन।
जय जगतीतल-जरन, सकल-तप जनित जुड़ावन।
जय बुन्दन-सर छोरि विरहिजन-जिय-अकुलावन।
जय जीमूत-मतङ्गयाननृप पावस पावन ॥ १ ॥
जय २ सुन्दर-नयन-सुखद-बहु-सुमन सजावन।
जय सुरभित-मृदु-सीत-पवन-चहुँ ओर-बहावन।
जय-उपवन-वन सकल-भूमि-सुचि-छुटा-चढ़ावन।
जय २ सरितन-हृदय हरस सों नित उमँगावन ॥ २ ॥
चहुँ दिशि दादुर गान करहिं श्रुति-आनंददायन।
शिखिगन डोलत मुदित करत मृदुरस युतगायन।
घुमड़ २ घनघोर-घोषणा तीक्ष्ण मचावत।
रवि-आतप करिदूर महान वितान बनावत ॥ ३ ॥
दामिनि नभके माहिं नवलदुलहिन सी दमकत।
लाल पीत वह सारि पहिर के हुलसत फरकत।
पुनि मुख घूँघट स्याम मेघमहँ जाय दुरावत।
इमि छलबल ते आत्मपूर्व चरितनु दरसावत ॥ ४ ॥
प्रमुदित चातक हंस कुलाहल मृदुल मचावत।
श्रुतिप्रिय-'पीपी' बोलि पपीहा प्रीति दिखावत।
सारस ढारस बाँधि सुपावस-सद्गुन-गावत।
आहा बरसा-राज! अतनु सतनु अब आवत ॥ ५ ॥
पूरे भरे तड़ाग नित्य निज उर उछलावहिं।
जनु स्वातन्त्र्य-प्रमोद-मत्त फूले न समावहिं।
नव-पल्लवयुतवृक्ष गर्व ते गज सम झूमहिं।
बहतपवन अब शीत, प्रीति तें तिनको चूमहिं ॥ ६ ॥
कुञ्जनु-कुसुमनु भृङ्गभृङ्गिणी-पुञ्जगुँजारत।
पुहुपन-सुख-रस पाय धन्य वे 'धन्य' उचारत।
ग्रीसमसम नहिं आग बाग महँ सीतलथल सब।
सुरभी करत विहार मार को सङ्ग लिये अब ॥ ७ ॥
सकल-विटप हैं आज राज महँ हरसित पूरे।
केवल आक जवास दुष्ट सम दुःखित पूरे।
खल को होत स्वभाव सुजनसों वैर दिखावहिं।
सुजननु-उन्नति निरखि अनल मत्सरमहँ धावहिं ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झिरना झिरत प्रमोद होत तिनके हियमाहीं।
तहँसत-कवि-गन प्रेम-उमङ्गित मनयुत जाहीं॥
कहुँ अतिसुखकों देहिं ऋषिनुगन कानन माहीं।
स्वर्वेस्या कहुँ गान करहिं निज कला बताहीं॥ ९॥
घन २ पावसराज ! वसन्तहु के तुम स्वामी।
कृपा दृगनयुत होय हिन्दको करिये नामी॥
प्रेम-वृष्टि-जल-सिन्धु देव ! इत आय बहावहु।
शान्ति--धरममय वायुद्वार अधरमहिं नसावहु॥१०॥*

"भगवन्त"

विहारीकी सतसई ।

(आलोचना)

हर्ष की बात है कि पंडित पद्मसिंह जी शर्मा का लिखा हुआ, विहारी की सतसई का पहिला भाग, छपकर प्रकाशित होगया। इसे ज्ञानमण्डल काशी ने प्रकाशित किया है। इस के लिये उसे धन्यवाद।

प्रस्तुत भाग में भविष्यमाण भाष्य की भूमिका-तुलनात्मक आलोचना, सतसई का सौष्ठव आदि विषय हैं। दूसरे भाग में शायद सतसई के क्रमशः सात सौ दोहे और उनका भाष्य छपेगा। सम्प्रत पहिले भाग की क्रमशः आलोचना की जाती है।

इस का वक्तव्य बड़ी गवेषणा से लिखा गया है और हम इस के प्रायः सब अंशों से सहमत हैं। आधुनिक सुधारकमन्यों का इस में खब समाधान किया गया है।

इससे पहिले, कि हम इस विषय में कुछ लिखें, हम साफ तौर से कह देना चाहते हैं कि पण्डित विहारीलाल जी को हम हिन्दी का महाकवि मानते हैं और इस भाषा में हम उनका कोई सानी नहीं समझते। संस्कृत कालिदास पर जितना गर्व कर सकती है कोई कारण नहीं कि हिन्दी अपने पूर्ण विहारी विहारीलाल पर उस से बहुत ज्यादा गर्व करने में हेटी रहे। पर शोक है कि आपने हद से ज्यादा विकालत करके, उन्हें बहुत ऊँचे पहाड़ पर चढ़ा दिया है। हमारा अनुमान है कि वहां अकेली बैठी हुई, उनकी स्वर्गतोविहारी आत्मा को बेचैनी होती होगी। कहीं कहीं तो आप उन की कविता कामिनी को 'चार दिवारी' से बाहर खींच लाये हैं।

सतसई के आदर्श ग्रन्थ नामक विषय में आप विहारी को मजमून चुराने वाला नहीं, छीननेवाला बतलाते हैं। हमें यह बात विहारी के लिये कहे जाने पर बुरी मालूम होती है। चोर भी ठहर जाने पर नहीं, होने पर कोई कवि, निन्द्य नहीं कहा जासकता। पर डाकू होने पर कौन सहृदय उसे बुरी नजरों से न देखेगा। सचमुच यदि विहारी ने ऐसा किया है, तो 'इसलाह' देकर अपनी कविता को चमत्कृत नहीं किया, प्रत्युत उसे 'असलाह' देकर भयावनी डायन बना दिया है।

यहां तक हम विहारी की "कविता पर मक्खी बन कर भिन भिनाने का साहस" नहीं कर रहे हैं। हमारी समझ में यह आप की अतिशयोक्तियों का, केवल लावण्य है।

विहारी ने अपनी रचनाके लिये, जो 'दोहा' छन्द पसन्द किया। इसे आप बड़ा भारी मुश्किल काम बतलाते हैं। पर हम बड़ी नम्रता के साथ कहते हैं कि यदि विहारी, अपनी कविता के लिये दोहा छन्द न पसन्द करते और अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण करते हुए, छन्द भी 'शार्दूल विक्रीडित' ही जैसा पसन्द करते, तो उन्हें कहीं मुश्किलात का सामना करना पड़ता, और उन की कवितागामिनी का लावण्य, शार्दूल-विक्रीडन से दूर जा भागता !!!

छन्दःप्रवीण, कविताप्रेमी पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि कविता, मात्रा छन्दों में आसानी से लिखी जा सकती है या अक्षर छन्दों में।

* 'भगवन्त' महाशय की यह कविता हमारे पास बहुत दिनों से रक्खी थी, अतः अब समय न होने पर भी हम इसे प्रकाशित करते हैं।

मनोरमा सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन विवेचकों ने और सतसइयों को बिहारी की सतसई के बराबर बिठलाया है, हम भी उनका प्रबल विरोध करते हैं। उन्हें इस अंगूर की पिटारी में कच्चे बेर न मिलाने चाहिये थे।

यह देख कर बड़ा हर्ष होता है कि आप ने 'सतसई' का सौष्ठव, अच्छे प्रकार से प्रस्थापित किया है। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के कई बढ़िया बढ़िया कवियों की कविता से सादृश्य करके उस का खूब सौष्ठव बढ़ाया है। हम भी इस बात के हक में हैं, कि हिन्दी और उर्दू के कवि, प्रायः सब जगह बिहारी से पीछे रह गए हैं। संस्कृत के कवियों की उक्ति के मुकाबिले में भी बिहारी नये होने के कारण कहीं कहीं, बिलकुल नई—अनूठी बात कह गए हैं।

सब लोग इस बात को मानते हैं, और आप ने भी यह बात स्वीकार की है कि बिहारीलाल जीने अपनी 'सतसई' की रचना, ज्यादातर "गाथा सप्तशती" और "आर्या सप्तशती" के आधार पर की है। इन दोनों ग्रन्थों से भी मुकाबिला करा कर 'सतसई' का सौष्ठव बढ़ाने की चेष्टा की गई है। दुःख है कि हमें यह वर्णन-विस्तार पसंद नहीं। बूढ़ी जाया के मुकाबिले में नई नुकीली युवति के अलङ्कारों का वर्णन करके उसे चिढ़ाना अच्छा नहीं। कोई उसी के सवयस्क से पूँछे तो मालूम हो, कि वह भी जब यौवनारूढ़ थी, तब उस के पास भी अलङ्कारों की और उनमें ध्वनियों की बड़ी भरमार थी। यही नहीं, उसी की जायदाद में से कुछ थोड़े से हिस्से की यह मालिकन बन गई हैं।

'गाथा सप्तशती' और 'अमरूशतक' आदि ग्रन्थों के पद्यों से २०--२५ दोहों का सादृश्य कराया गया है। जो निःसंदेह बड़ा मनोहारी है। कई दोहे संस्कृत और प्राकृत पद्यों की अपेक्षा नई बात हासिल कर गये हैं। पर अनुभवी शर्मा जी हमें यह बात कहने के लिये क्षमा करें कि सादृश्यीकरण में आप बहुत जगह तुलना विचार की 'चारदिवारी' से बाहर हो गए हैं।

इस प्रकरण में 'सतसई' के सब से प्रसिद्ध "नहिं पराग नहिं मधुर" × वाले दोहे की मान-रक्षा के लिये सब से पहिले आप ने जो वाग्विस्तार रचना की है वह उचित ही है। इस अमूल्योपदेश के लिये मिर्ज़ा महोदय, बिहारीलाल जी के जितने उपकृत हुए होंगे 'गाथाकार' और 'आर्याकार' को तो उतना शायद वे जानते भी न होंगे। अंगूरों की अपेक्षा यदि किसी को झाड़ियों के चुड़े हुए लाल लाल बेर, ज़ायकेदार मालूम हों और वह उनके रूप लावण्य को अंगूरों से अच्छा बतलाने लगे, तो इस में बेचारे निरपराध अंगूरों का दोष न होगा!!!

गाथा और दोहे के भाव में ज़रा भी अन्तर नहीं, वह केवल गाथा का अच्छा अनुवादमात्र है। "आगे कौन हवाल" क्या गाथा से ध्वनित नहीं होता? अभिधावृत्ति के मुकाबिले में व्यञ्जना वृत्ति अब क्यों पसन्द नहीं की जाती! साहित्य विवेचना में इस बात पर हम कुछ न कहेंगे कि दोहे की तरह, 'गाथा' ने भी किसी का कुछ उपकार किया है या नहीं। सम्भव है कि इस बेचारी से किसी का कुछ उपकार न हुवा हो। पर स्वयं बिहारीलाल जी को यह उपकारवाली चर्चा बुरी लगेगी। हमारा अनुमान है कि उनकी आत्मा इस

+दोहा--नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इह काल।
अली कली ही ते बँध्यो आगे कौन हवाल॥

गाथा--जावण कोस विकास पावइ ईसीस मालई कलिआ।
मअरन्दपाण लोहिल्ल भमर तावच्चिअ अमलेसि॥
(यावन्न कोषविकासं प्राप्नोतीषन्मालती कलिका।
मकरन्दपानलोभयुक्त, भ्रमर तावदेव मर्दयसि)॥

भावार्थ- अरे रसपान लोलुप भौंरे! अभी तो वसंत भी नहीं आया, इस बेचारी मालती की कली को कुछ खिल तो जाने दिया होता अभी पीजाना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य से बहुत उपकृत हुई होगी । अन्यथा-"धारा नैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणम्"

*"यों दल मलियत निर्दई" वाले दोहे में हमारी समझ में नहीं आता कि "दुव्विअद्ध" (दुर्विदग्ध नहीं) की अपेक्षा निर्दई' में आप क्या औचित्य समझ रहे हैं । इस 'निर्दई' को 'दुव्विअद्ध' से अच्छा न बतलाइयेगा ।

"नेक उतै उठ बैठिये" × 'किञ्चिदपगच्छ' का बिल्कुल फिट अनुवाद है । इसके लिये बिहारी की जितनी प्रशंसा की जाय, कम होगी । किन्तु यदि यह "नेक उतै उठ बैठये" 'किञ्चिदपगच्छ' की तरह से दोहे में भी पीछे से ही लिखा जाता तो और ज्यादा अच्छा होता । तब बेचारे गरीब सज्जन के जी में इस बेवजह अनादर का—हटाये जाने का क्षणिक दुःख तो न होता !!!

आप कह तो रहे हैं कि कस्तूरी, सौगन्ध की मोहताज नहीं रखती, और भोले भाले पाठकों को इसी की आड़ में, दिखला रहे हैं हींग सहृदयता की सौगन्ध है, जरा गौर तो कीजिये, 'कंजनयनि" + वाले दोहे में, 'नन्दकुमार' में क्या वही रस है ।

---

*दोहा—यों दल मलियत निर्दई, दई कुसुम से गात ।
कर धर देखों धरधरा, अजौं न डर को जात ॥

गाथा—सहइ सहइ त्ति तह तेण रमिआं सुरअ दुव्वि अद्धेण ।
पम्पा असिरो साइं व जह से जाआई अंगाई ॥
(सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरत दुर्विदग्धेन ।
प्रम्लान शिरीषाणीन यथास्या जातान्यंगानि ॥

×दोहा—नेक उते उठ बैठिये, कहा रहे गहि गेहु ।
छुटी जात महंदी छनक, महंदी सूखन देहु ॥

गाथा—सुभग, व्यजन विचालन शिथिल भुजा भूदियं वयस्यापि ।
उद्धर्तनं न सख्याः समाप्यते किञ्चिदपगच्छ ॥

×दोहा—कंज नयनि मंजन किये, बैठी औरति बार ।
कच अंगुरिन बिच दीठि दे चितवति नंदकुमार ॥

गाथा—चिकुर विसारण तिर्पङ् नत कण्ठी विमुख वृत्ति रपि बाला ।
स्वामयमगुंलि कल्पित, कचावकाशा विलोकयति ॥

जो 'त्वाम्' में है ? और फिर कंजनयनि और बाला के साथ ।

हां, हम मानते हैं कि "सखी सिखावति मान विधि" वाले दोहे में विहारी, अमरुक से अवश्य आगे बढ़ गये हैं ।

चित्र न बन सकने वाली बात पर भी बड़ी माकूलियत के साथ विवेचना की गई है ।

विहारी का विरहवर्णन, बड़ी अच्छी रीति से हुवा है, और वह खासा है । यह कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं कि वह हिन्दी, उर्दू के कई कवियों से अच्छा है । संस्कृत-उक्तियों की अपेक्षा भी बिहारी की उक्ति कहीं कहीं नवीनता प्रकट कर गई है । इस विषय में हम संस्कृतभिज्ञ पाठकों से नैषध में वर्णित, दमयन्ती का विरह वर्णन, देखने की प्रार्थना करते हैं । विहारी के विरह वर्णन से वह बहुत बढ़ा चढ़ा है । × हमारी राय में बिहारी का कवित्व और व्यापक पाण्डित्य लिखने की कुछ ऐसी बड़ी जरूरत न थी । यह यदि न भी लिखा जाता तब भी यह समझा जा सकता था कि बिहारीलाल का शास्त्र-ज्ञान अच्छा था । बिहारीलाल ही क्यों सभी महाकवियों का शास्त्रज्ञान अच्छा होता है । यह एक मामूली सी बात थी । पर आपने इसे वृथा वैशद्य से लिखा है ।

दोष परिहार, आपने अच्छा किया है, व्यास जी के चरखे, वाले दोष को बड़ी खूबी के साथ चलाया है ।

तमाखु वर्णन की पुष्टि के लिये संस्कृत कवियों का आपने जो हवाला दिया है, वे कवि, बिहारी से कहीं पीछे के तो नहीं हैं इस बात का तथा उन के नाम का उल्लेख भी होजाता तो अच्छा था । हमारा ख्याल है कि यह 'तमाखुपिवेय्या' संस्कृत के कवि बिहारीलाल जी से पीछे के हैं । केवल

+ हिंदी प्रेमी जो सज्जन दमयंती का विरह वर्णन देखना चाहें, उन्हें 'मनोरमा' का तीसरा अंक देखना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतमें लिखी जाने के कारण कोई बात प्रामाण्य नहीं समझी जासकती। इस बात को जानते हुए भी आपने न मालूम इस मामले पर यह विचार क्यों नहीं किया !!!

सतसई संहार के विषय में हम क्या कहें, इस की लेखन शैली और मार्मिकता तो प्रसिद्ध ही है। इससे पहिले कई बार हम उसकी प्रशंसा कर चुके हैं।

हमारा विचार था कि हम इस भाग की विस्तर आलोचना लिखें, पर कई कारणों से हमारी यह इच्छा सफल न हो सकी। गृहस्थ के भार से छुट्टी हो नहीं मिलती। और कई कारणों के साथ साथ हमारी अयोग्यता भी इस में एक कारण था। खैर,

"अनुसृत्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद् बहु'

समालोच्य भाग में छोटी संची के ३७५ पृष्ठ हैं। और वह २) में ज्ञानमण्डल काशी से मिल सकता है।

—०—

स्वतन्त्रता की वंशी।

वंशी स्वतन्त्रता की श्रीकृष्णजी ! बजादो,
प्यारे स्वतन्त्रता के मृदु मंत्र भी सुनादो।
पर्दा कुबुद्धिरूपी अति शीघ्र ही हटादो,
यह देश सो रहा है करके कृपा जगादो॥ १॥
गीता पुनीत जैसे था पार्थ को बताया,
कायरपना हटाके वीरत्व था जगाया।
अतिदीन द्रौपदी का प्रभु चीर ज्यों बढ़ा के,
लज्जा पुनीत रक्खी थी दुष्टको थकाके॥ २॥
उससे बढ़ी चढ़ी भी इस देश की दशा है,
इस काल दुःख में ये सब भाँति से फँसा है।
अज्ञान की अँधेरी अति घोर रात छाई,
काली घटा अविद्या मय तीव्र घेर आई॥ ३॥
इस देश के निवासी सोते पड़े हुए हैं,
उठ कर सुभव्य वे भी होते पड़े हुए हैं।
मृदु तान को सुनाके, स्वामी ! उन्हें जगाके,
शुचि दीपज्ञान रूपी की दीप्ति भी दिखाके॥४॥
भूले हुए जनों को सत पंथ भी दिखादो,
तटिनी पुनीत विद्यामय देश में बहादो।
इस देश के निवासी जिस में सकल नहायें,
मलधार मूर्खता का धो मोद से बहायें॥ ५॥
शिक्षा पुनीत पाके, निज मान को बढ़ायें,
यह देश सभ्यता के गिरिपर पुनः चढ़ायें।
निज देश भाइयों में फिर प्रेम भी बढ़ायें,
सब द्रोहरूप अरि को पाताल में पठायें॥ ६॥
सुदयुक्त बालकों को सब साहसी बनायें,
प्यारी स्वतन्त्रता के शुचि लाभ भी बतायें।
कर्त्तव्यशील होने का पाठ भी पढ़ायें,
आलस्ययुक्त होने से भी उन्हें बचायें॥ ७॥
सच्चा सुशील ज्ञानी सच्चा स्वदेश-प्रेमी,
निर्लोभ सत्यवक्ता आचारपूर्ण नेमी।
निष्काम ब्रह्मचारी मदहीन भी बना के,
इस देश को उबारें साहित्य को बढ़ाके॥ ८॥
इस देश का बुबारा व्यापार भी बढ़ादें,
हर देश में जहाजों से वस्तुएँ पठादें।
सोती हुई कलायें सब फेर के जगादें,
सच्ची स्वतंत्रता फिर जग मध्य जगमगादें॥ ९॥

सिद्धिनाथ मिश्र

—०—

हिंदी कादम्बरी।

(१०)

हारीत--कृत, तोते का वृत्तांत--वर्णन, जाबालि के प्रति, मुनि-मण्डल का प्रश्न, और तदन्तर्गत सायंकाल-वर्णन।

इस प्रकार विचार करते २ मुझे उसी अशोक वृक्ष की छाया में एक तरफ़ रख कर, हारीत मुनि ने, पिता के चरणों को छू कर प्रणाम किया, और पास ही बिछे हुए कुशा के आसन पर बैठ गया।

मुझे देख कर वहां बैठे हुए, सारे मुनि--मण्डल ने हारीत से पूँछा—यह तोते का बच्चा कहाँ से मिला है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारीत कहने लगे—

स्नान के लिए जाते हुए, मुझे यह तोते का बच्चा, पद्म सर के किनारे वृक्ष के घोंसले से नीचे गिर कर, जलते हुए रेत पर पड़ा हुआ मिला था। यह धूप से भी बड़ा दुःखी होरहा था। यह ऊँचे से गिरा था। अत एव इस का शरीर विह्वल हो रहा था। लेकिन इसकी जिंदगी के दिन बाकी थे। मुझे उस वृक्ष पर चढ़ना कठिन था और यह बच्चा भी अपने घोंसले पर स्वयम् न चढ़ सकता था। अत एव मुझे दया आई और मैं उसको यहाँ ले आया।

इस लिये जब तक इस के, पङ्ख न निकलें, और यह आकाश में उड़ने के लिये समर्थ न हो, तब तक हम लोगों से लाये हुए फलों के रस और वन में पैदा होने वाले चावलों की किनकी से, यह अपना पालन पोषण करता हुआ अपने जीवन की रक्षा करे। क्या हरज है। अनाथों का पालन करना भी तो हम लोगों का धर्म है। पङ्खों के निकलने और आकाश में उड़ने लायक होजाने पर, जहां यह चाहेगा, चला जायगा। या परिचय होजाने पर यहीं रहने लगेगा।

इस प्रकार मेरे सम्बन्ध के आलाप को सुन कर जाबालि ऋषि को कुतूहल हुआ और वह नीचे को गर्दन किए हुए, पवित्र जल से जैसे स्नान कराते हों वैसे, बड़ी शान्त दृष्टि से बहुत देर तक मुझे देख कर यह वही है, ऐसे जानने वालों की तरह से, बार २ देख कर 'यह अपने किए हुए दुराचार का फल भोग रहा है।" यह कहने लगे।

त्रिकालदर्शी वह जाबालि अपने तप के प्रभाव से दिव्य चक्षुद्वारा करतलगत जैसा सारे संसार को देखते हैं। और अगले पिछले जन्मों को जानते और कहते हैं, प्राणियों को देख कर उनकी अवस्था (इस की इतनी उम्र होगी) बतला देते हैं।

जाबालि के प्रताप से परिचित वह सारी तापस-मण्डली यह सुन कर बड़े आश्चर्य में हुई कि इस ने ऐसा कौनसा अविनय किया है? और किया है तो क्यों किया है? अथवा कहां किया है? पहले जन्म में यह कौन था?

उस ने महात्मा जाबालि से प्रार्थना की। भगवन्! कृपा कर बतलाइए तो सही! यह तोता किस अपराध का फल भोग रहा है? पहले जन्म में यह कौन था? पक्षि जाति में इस का क्यों जन्म हुआ और इस का नाम क्या है। हमारा यह आश्चर्य दूर कीजिए। आप सारे के सारे आश्चर्यों को दूर करने वाले हैं।

इसप्रकार मुनि-मण्डली से, उपयाच्यमान हो कर जाबालि ने कहा।

यह आश्चर्यवाली बात बहुत बड़ी है। और दिन थोड़ा है। इधर हमारे स्नान का समय आ रहा है। आप को भी पूजा पाठ के लिये देर होरही है। इस लिये उठिए। दैनिक कृत्य आरम्भ कीजिए दोपहर बाद जब आप कुछ मूल फल खालेंगे और सावधान होकर बैठ जायगे तब मैं आप को आदि से अन्त तक इस का सारा वृत्तान्त सुनाऊँगा। इस तोते का पहले जन्म कहां हुआ था और इसने पहले क्या किया था एवं इस संसार में किस प्रकार इस ने जन्म लिया।

इतने यह तोता भी चुग्गा खाकर थकावट दूर कर लेगा। निःसन्देह मेरे कहने पर यह तोता भी स्वप्न की जैसी, अपने जन्म की सारी बातों को याद कर लेगा। यह कहते हुए जाबालि ऋषि ने, तापस-मण्डली-सहित, अपनी स्नानादिक क्रियायें कीं। इन क्रियायों के करते २ दिन छिपाऊ हो आया। स्नान से उठ कर, लाल चन्दन और पुष्पादिकों से मुनि जनों द्वारा सूर्य के लिये पृथ्वी पर दिये हुए अर्घ को ही, आकाश में, मानो, उस समय वर्त्तमान सूर्य, लाल चन्दन का अंग-राग, धारण कर रहा था। ऊपर को मुंह किए हुए, और सूर्य-मण्डल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दृष्टि डालते हुए, अग्नि जैसे तेजस्वी, तपस्वियों द्वारा ही मानो, चूसे गये तेजःपुञ्ज वाला और छीदी २ धूप वाला सूर्य कृशता को प्राप्त होगया था—छिपने वाला था। और वह आकाश-मण्डल से लटक आया था उससमय वह कबूतरों के पैरों के समान, पाटल मालूम होता था। निकलते हुए सप्त ऋषियों के स्पर्श को दूर करने की इच्छा ही से मानों वह किरणों को सिकोड़े हुए था—बात यह है कि उस समय किरनें भी छिपी जारहीं थीं।

इस के बाद, सूर्य-मण्डल, कुछ लाल २ किरनों वाला दीखने लगा। उस समय वह पश्चिमीय समुद्र में, जलरूपी शय्या पर विराजमान विष्णु भगवान् का, प्रतिमा में आया हुआ नाभि-कमल जैसा कुछ लाल २ मालूम होरहा था। उस समय, सूर्य की किरनों ने, आकाश और कमल कुलों को छोड़ कर, सायङ्काल में पक्षियों के समान वृक्षों और पर्वतों की चोटियों पर निवास किया। तब कुछ लाल २ धूप के बिथड़े, मुनियों द्वारा लटकाये हुए लाल २ वल्कलों वाले वृक्ष जैसे दीखने लगे और सूर्य भगवान् के छिप जाने पर पश्चिमीय समुद्र तल से, निकलती हुई विद्रुम-लता जैसी पाटल, सन्ध्या दिखाई देने लगी। उस समय आश्रम में भी मुनियों के ध्यान लगने लगे।

एक तरफ, दुही जाती हुई होम धेनुओं की दूध की धाराओं के शब्द से वह आश्रम बड़ा मनोहर और धन्य दिखाई देने लगा। अग्नि मण्डप में हरो२ कुशायें बखेरी जाने लगीं। मुनि कन्यायें दिग्देवताओं के लिये बलि का सिद्ध अन्न बखेरने लगीं।

तपस्वियों ने कहीं घूम कर दिन के अन्त में, वन की कपिला गौ जैसी लोहित, तारक, सन्ध्या का दर्शन किया। बात यह है कि कपिला गौ की आंखों के तारक (पुतलियां) लोहित होते हैं। सन्ध्या में लोहित तारक (तारे) होते हैं। अतः सन्ध्या और कपिला गौ का उपमानोपमेय भाव ठीक ही मालूम हो रहा था।

सूर्यरूपी पति, प्रोषित हो जाने पर—परदेश चले जाने पर, शोक से व्याकुल हुई, डंडे रूपी कमण्डलु को धारण किये हुए, और हंसरूपी दुपट्टे को ओढ़े हुए, यही नहीं, बसींड रूपी सुफेद यज्ञोपवीत पहने हुए, और भ्रमरसमुदायरूपी रुद्राक्ष की माला लिये हुए, कमलिनी, सूर्य की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान जैसा कर रही थी। बात यह है कि स्त्री, परदेश गये हुए अपने पति की प्राप्ति के लिये या और किसी कार्य्य के लिये व्रत धारण करे तो वह भी धोती, कमण्डलु यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष की माला धारण करता है, कमलिनी ने डाढ़ा रूपी कमण्डलु बसींडा रूपी यज्ञोपवीत, और रूपी माला, धारण कर रही थी और कमलिनी पर हंस भी बैठ जाते हैं वही सुफेद धोती जैसे मालूम होते थे। आकाश पश्चिमीय समुद्र में सूर्य नारायण के गिरने पर, वेग से उठे हुए जलकणों को तारे जैसे धारण कर रहा था। तभी सिद्धों की कन्याओं द्वारा, सायंकालीन पूजा में बखेरे हुए पुष्पों से चितकबरा, जैसा तारों वाला आकाश सुशोभित होने लगा। इस के बाद, ऊपर को मुंह किये हुए, मुनि-जन-द्वारा, ऊपर को फेंके हुए प्रणामाञ्जलि के जलों से धोया गया जैसा सारे का सारा सन्ध्याराग नष्ट होगया। (अपूर्ण)

—०—

मधुप।

कहो कहाँ हे मधुप! भला क्या,
कहते हो उड़ उड़ कर तुम?
किसी सुमन पर बैठ कभी फिर,
कौन ध्यान में जाते रम?
सूक्ष्म-विचारी कहलाते हो,
कुछ तो सीखें तुम से हम।
यद्यपि बात समझना तेरी,
प्रियवर! है नहिं नेक सुगम॥
तौ भी हम ने जान लिये हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितू, तुम्हारे वचन अगाध ।
हर्ष सहित उच्चारण करता,
रहता है तू नित मम मम ।
कुसुम तोड़ जन ले जाते हैं,
छूटे तब नाता इक दम ।
पुष्प न तेरा हुआ किसी विधि,
व्यर्थ हुआ तब "सर्व अहम्" ।
सीखो मित्रो ! यही मधुप से,
जग तब है नहि जग के तुम ।
हित की शिक्षा देकर सबको,
रुकी हमारी काष्ठ कलम ।

—०— 'दास'

धर्म-विचार ।

मनुष्य का विशेष धर्म ।

आज कल इस देश में अनेक धर्म-पंथ प्रचलित हैं और वे सब स्वयं अपने को सत्य और परम श्रेष्ठ बतला कर दूसरों को सदोष ठहराते हैं। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" इस वचन के भरोसे पर कोई २ भारतीय अपने परंपरागत पंथ को पकड़े रहते हैं सही, परन्तु जब भिन्न भिन्न मतों के अभिमानी ऊँचे स्वर से यह प्रतिपादन करते हैं कि उन्हीं का मत सत्य और उसके सिवा जितने मत हैं वे सब मिथ्या और भ्रामक हैं, तब केवल परम्परा को पकड़े रहना कठिन ही नहीं, दुःसाध्य हो जाता है और सत्य का ही आश्रय लेना पड़ता है। कई लोग सब पंथों में साधारण तौर पर दीख पड़ने वाले तत्त्वों को सत्य मान कर उनका सम्मान करना ठीक समझते हैं। पर इस प्रकार सब पंथों की मुख्य २ बातें छोड़ देने से शेष कुछ भी नहीं बच रहता और समाज के व्यवहारों को सरलतापूर्वक चलाने के लिए जो नियम रूढ़ होगये हैं वे ही धर्मसर्वस्व बन बैठते हैं। पर केवल समाज की सुस्थिति ही मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म नहीं है। और यदि [illegible] जाय तो भी वह 'सुस्थिति' है या नहीं इस का भी निर्णय कुछ निश्चित तत्त्वों के अनुरोध से ही करना पड़ता है। तब इस तत्त्व का निश्चय करने के लिये फिर धर्मतत्त्व का अन्वेषण और संशोधन अवश्य होता है। इस बात का प्रयत्न करते [illegible] युवक गड़बड़ा जाते हैं और इस से फल [illegible] है कि कई लोग धर्मसम्बन्ध में उदासीनता धारण कर लेते हैं और कोई कोई तो धर्मान्तर तक कर डालते हैं। आशा है कि ऐसी दशा में नीचे किये गये विवेचन से थोड़ा-बहुत लाभ अवश्य होगा।

आधुनिक काल में, कुछ व्यक्तियों के वचनों को सत्य मान कर तदनुरूप आचरण रखने को ही धर्माचरण समझने की प्रथा चल पड़ी है। बुद्ध के वचनानुसार बर्ताव करने वाले बौद्ध, ईसा के अनुयायी ईसाई और मुहम्मद के अनुचर मुहम्मदी अथवा मुसलमान होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, वेद अथवा भारतीय ऋषियों के वचनों का शासन पालन करने वाले अपने को ब्राह्मण कहते हैं। पर तत्त्वतः धर्म व्यक्तियों के वचनों से नियमित नहीं होता; अर्थात् इनके कहने मात्र से ही अमुक बात धर्म नहीं हो जाती, किन्तु वे कहें चाहे न कहें यानी उनके बिना कहे ही वह धर्म ही है। ये व्यक्तियां, केवल इतना ही करती हैं कि उस धर्म का पहचान कर उसे लोगों में ज्ञात, संमत और प्रचलित करती हैं। इस लिए जिसे धर्म का ज्ञान प्राप्त करना है, उसे ऐसी व्यक्तियों के वचनों पर ही अवलम्बित न रह कर उस का स्वयं खोज करनी चाहिए। और इस विधि से प्राप्त हुए सत्य का पहले के धर्म-संस्थापकों और संशोधकों के वचनों में प्रत्यन्तर मिलने पर अपना निश्चय दृढ़ करना चाहिए।

ऐसे धर्म संस्थापकों और संशोधकों को भारतवर्ष में ऋषि अथवा आचार्य कहते हैं। यहां ऋषि अथवा आचार्य का जो सम्मान होता है वह व्यक्तिविषयक न होकर सत्यविषयक अथवा तत्त्वविषयक होता है। और तत्त्व समझने पर फिर कोई इस की

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परवा नहीं करता कि उस की स्थापना करने वाला ऋषि कौन था, कब और कहाँ रहता था। जिसकी सत्य दृष्टि है उसे ही ऋषि कहते हैं और वह कोई भी रहे तो भी पूज्य ही होता है। अस्तु।

इसलिए धर्म विचार करते हुए ऊपरी दृष्टि से किसी का भी प्रमाण न मान कर हमें स्वतन्त्रता पूर्वक शोध लगाना चाहिए और अपने निश्चय का कहीं दूसरी जगह प्रत्यन्तर मिलने पर वह उस समय तक के लिए दृढ़ कर लेना चाहिए। 'धर्म' शब्द संस्कृत किंवा भारतीय है और "धारणा लक्षणा धर्मः" अर्थात् जिससे धारणा होती है वह धर्म इस प्रकार का उसका एक व्याख्या प्रचार में है। सक्रिय अथवा निष्क्रिय वस्तुओं का अथवा आचरणशील मनुष्य किंवा तदितर प्राणियों का यह धर्म मान लिया जाय तो भी वह इस व्याख्या में बाधा उपस्थित नहीं करता। जलाना, अग्नि का धर्म है और जहाँ यह जलाता नहीं वहां अग्नि का भी अस्तित्व नहीं हो सकता। उसी तरह शैत्य जल का धर्म है बहना वायु का धर्म है इत्यादि। इस प्रकार से, आधिभौतिक पदार्थों के ज्यों ज्यों हम ऊपर आते हैं त्यों त्यों हमें विलक्षण धर्म उपलब्ध होते हैं निर्जीव पदार्थों को छोड़ कर सजीवों के धर्म का अवलोकन करने से यह दीख पड़ता है कि दूसरे पदार्थों को अपने में एक रूप कर अपने स्वरूप में विद्यमान होना और संतति उत्पन्न करके स्वजाति की रक्षा करना—यह एक धर्म वनस्पति, जलचर, स्थलचर और खेचरादि सभी प्राणियों में साधारण तौर पर पाया जाता है। वनस्पति उन पदार्थों से ही अपना धर्म चलाते हैं जो उन्हें उसी जगह प्राप्त हो जाते हैं। पर दूसरे प्राणियों का यह हाल नहीं है। अपना धर्म चलाने के लिए उन्हें योग्य स्थलांतर अथवा स्थित्यन्तर करना पड़ता है।

मनुष्य एक स्थलचर प्राणी है और अब यह भी सिद्ध हो चुका है कि योग्य साधनों के द्वारा वह जलचर और नभश्चर भी हो सकता है। इसी लिए अनुकूल साधन और परिस्थिति को प्राप्त करके अपनी धारणा करना अथवा अपना और अपनी संतति का जीवन स्थिर करते हुए स्वजाति की रक्षा करना—यह मनुष्य का स्वभाव धर्म निश्चित होता है, और अन्य पशु-पक्षियों के समान उसकी उस प्रकार के आचरण की ओर प्रवृत्ति होती है। मनुष्य धर्म के निर्वाह के लिए पशु-पक्षियों से अधिक और विविध साधनों की अपेक्षा होती है इसलिए उसके धर्म की व्यापकता और समूह संघात उसी तरह प्रचण्ड और विविध प्रकार का होता है। इस धर्माचरण में जिसतरह और और वस्तुओं तथा प्राणियों का संग्रह करना पड़ता है उसी तरह स्वजातियों का भी संग्रह करना होता है। इसीलिये उन्हें दूसरों का बला देना पड़ता है, उसी तरह उन्हें भी दूसरों का बली पड़ना पड़ता है। इस लिए दूसरों को स्वयं बली न पड़ दूसरों को अपना बली करना—यह मुख्य धर्माचरण होता है। इस तरह अनुकूल साधनों और परिस्थिति को प्राप्त करके अपना, अपनी संतति का और अपनी जाति का संरक्षण करना जो सब प्राणियों का स्वभावधर्म है, वही अधिक प्रमाण से मनुष्य का धर्म सिद्ध होता है।

परन्तु इस प्रकार अपनी, अपनी संतति की और अपनी जाति की एकमात्र रक्षा करना—केवल इस देहधर्म से बहुत ही थोड़े विचारी और सुसंस्कृत मनुष्यों का समाधान होता है। एक तो इस धर्म के लिए मनुष्य को दूसरे प्राणियों की अपेक्षा बहुत ही ज़ियादा कष्ट भोगना पड़ते हैं और इसी तरह उसे सुख दुःखों का भी अधिक अनुभव करना पड़ता है। इतर प्राणियों को बहुतायत से वर्तमान ही सुख दुःख होते हैं। परिचित वस्तुओं का अथवा परिस्थिति का पुनः समागम होने से उनके मनके गत संस्कार कदाचित् जाग्रत होते होंगे, तथापि उन्हें पहले के अनुभवों का स्मरण नहीं होता और आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घटनाओं की कल्पना, आशा किंवा भीति नहीं मालूम होती। भूख-प्यास लगने पर यदि दाना, पानी मिल गया तो उसे ग्रहण करना, अन्यथा उसी तरह भूखे और प्यासे पड़े रहना, यही क्रम उन की दूसरी सब स्थितियों में कायम रहता है। पर मनुष्य का यह हाल नहीं है। वह पहले जिन सुख दुःखों का अनुभव कर चुकता है उन के स्मरण से उसी तरह आगे आने वाले सुख दुःखों की आशा तथा भीति से उस की वर्तमान स्थिति में महत्वपूर्ण अंतर पड़ कर वह अधिकाधिक सुखकारी अथवा दुःखकारी होती रहती है। और दुखी जन अपने दुःखों के प्रमाणानुरूप अपने जीवन से तंग आजाते हैं। पर जिन लोगों को जीवन के साधनों और परिस्थिति की अनुकूलता होती है उन्हें भी थोड़े या अधिक मान से केवल जिन्दा रहना ठीक नहीं मालूम होता। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य यह समझता है कि मैं स्वयं स्वतन्त्र कर्त्ता हूँ, मेरे व्यापारों पर और कर्मों पर मेरी पूर्ण सत्ता है। और इन व्यापारों तथा कर्मों के द्वारा केवल जीवित रहने के अतिरिक्त मुझे कुछ तो भी श्रेष्ठतर कार्य करना चाहिए। इस स्वकर्तृत्व की भावना से उस के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होजाता है कि "मुझे क्या करना चाहिए?" और इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है उस के अनुसार उस का धर्म निश्चित होता है। इस प्रकार निर्जीव वस्तु के ऊपर आते आते ज्यों ही हम मनुष्य जाति तक आन पहुँचते हैं त्यों ही धर्म की यह व्याख्या कि "धारणा लक्षणो धर्मः" अर्थात् जिस से धारणा होती है वह धर्म है, अधूरी मालूम होने लगती है। और "जो आचरण धारण करना चाहिए वह धर्म है"—इस व्याख्या को स्वीकार करके किस तरह का आचरण स्वीकृत करना चाहिए, इस की खोज करनी पड़ती है। दूसरे प्राणियों और वस्तुवों को धर्म से धारणा होती है। पर मनुष्य को धर्म की धारणा करनी पड़ती है और इस तरह का विशिष्ट आचरण करना ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य का विशेष धर्म निश्चित होता है। यही नहीं, किन्तु जिसे धर्माचरण के लिए जीवित रहना अथवा मरजाना श्रेष्ठ नहीं मालूम होता, और केवल जीवित रहना ही श्रेष्ठ मालूम होता है और जिसकी दृष्टि-जीवित रहने के लिए ही धर्माचरण करना चाहिए-इस तत्त्व के परे जो श्रेष्ठ बातें हैं उन तक नहीं पहुंचती, तो वह मनुष्य नहीं, वरन पशु ही समझा जाता है।

इस प्रकार केवल जीवित रहने की अपेक्षा कुछ तो भी अधिक करना है यह मनुष्य का विशेष धर्म निश्चित हो चुका। और किसी भी मनुष्यसमाज का निरीक्षण करने पर उसमें इस विशिष्ट कर्तव्य की जानकारी दीख पड़ती है। इस विशिष्ट कर्तव्य के सम्बन्ध में सारे संसार भर में मतभेद दीख पड़ेंगे। कहीं मनुष्यों को मार कर खाजाना पवित्र समझा जाता होगा, तो कहीं आत्महत्या करना श्रेष्ठ माना जाता होगा। कहीं पत्थरों की उपासना होती होगी, और कहीं निर्गुण निराकार ब्रह्म का चिन्तन होता होगा। कहीं सब प्राणी बलिदान पर चढ़ाये जाते होंगे और कहीं अहिंसा परम धर्म माना जाता होगा। पर इन सब प्रकारों की जड़ एक ही धर्म ही है और वह धर्म यह है कि "मनुष्य केवल जिन्दा रहने के लिए नहीं है। उसे जीवित रहने के अतिरिक्त और भी कुछ अधिक करना है। और उसी के लिए मनुष्य को जीवित रहना या मरना चाहिए।"

इस प्रकार मनुष्य के विशेष धर्म का विवेचन हो चुका। अब इस धर्म के अंगभूत आचारों में किस तरह अंतर पड़ता है इस का विवेचन आगे होगा। ×

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

—०—

× मराठी लोकशिक्षण से अनुवादित।

लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शफ़ाख़ाना।

(१)

पं० देवदत्तजी शुक्ल पुराने ढर्रे के आदमी होने पर भी नये सांचे में ढली अच्छी बात को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से न देखते थे। इसी कारण से उनकी ज्येष्ठ कन्या जयदेवी हिन्दी की कक्षा में पास होकर तीसरे में पहुंची है। पण्डितजी का विचार अपरम्पार यमरी पास करा कर धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ाने का है। अतएव जयदेवी के दर्जा ४ में पहुंचते ही यत्किञ्चित् धार्मिक ग्रन्थावलोकन होने लगा। स्त्री शिक्षा के अनुयायी होने के साथ ही साथ पं० जी बालविवाह को भी बुरा समझते थे। इस कारण यद्यपि जयदेवी १२वें वर्ष में पदार्पण कर चुकी किंतु पं० जी को ब्याह की चिन्ता तो दूर चर्चा भी करना पाप ज्ञात होता है।

अकस्मात् पं० देवदत्त जी के गांव में हैजे का प्रकोप हुआ, पहिले चपेटे में पं० जी ही रोगग्रस्त हुए। कै, दस्त जारी हुए, देखते २ पं० जी बेहोश होगये। पास ही शफाख़ाना था और डाक्टर भी एक हिन्दू सज्जन पं० ब्रजकिशोर जी थे। आप बड़े मिलनसार, दयालु और विशेष कर रोगियों के परम हितैषी थे। सुनने की देर थी कि डाक्टर साहब, पं० देव दत्त जी को देखने गये किन्तु पं० जी की इतनी ही देर में दशा पलट गई थी। आँखें बंद थीं और दस्त धड़ाधड़ जारी थे। पानी की प्यास भी बहुत थी। डाक्टर साहब ने पहुँच कर देखा, औषधि पिलाई पर आँखें न खुलीं। कर्पूरादि भी सुँघाया किन्तु होश न आया। ज्यों त्यों करके २ घंटे पीछे 'राम राम सत्य है' की तैय्यारी होगई, अड़ोसी पड़ोसी तो बहुत थे परन्तु पं०जी का निकट सम्बन्धी कोई न था जो दाह आदि कर्म करता। ख़ैर, पड़ोसियों ने ज्यों त्यों लेजाकर गंगाजी में जो ग्राम से १ मील पर थीं जल प्रवाह कर दिया। इधर पण्डिताइन की दशा बिगड़ने लगी पं० जी का भूत, पण्डितानी पर सवार हो गया। जबतक डाक्टर साहब बुलाये गये पंडितानी भी सांसारिक लीला समाप्त कर चुकी थीं। पं० जी को जल प्रवाह करके लोग लौटे कि कि पंडितानी की दशा खराब सुनी, सन्न रह गये। बोले, यदि यही दशा है तो ईश्वर ही रक्षक है। सबने बेचारी पंडितानी को भी पं०जी के थोड़ी दूर पर प्रवाहित कर दिया। इधर गांव में एक चमार मरा, दूसरा वैश्य बीमार पड़ा, तीसरा धोबी। संध्या को आनन्द से सोया पर सवेरे उठाने पर भी नहीं उठा। यह दशा देख, लोग गांव छोड़ कर भागने लगे सरकार में खबर हुई तो कुँएं इत्यादि का जल, आस पास का कूड़ा करकट इत्यादि स्वच्छ किये गये। जहां कोई न था वहाँ मर्दों के ढोने का भी प्रबन्ध किया गया। डाक्टर साहब पं०ब्रजकिशोर जी ने भी खूब दौड़ धूप की यहां तक कि आप भी एक दिन ज्वर से पीड़ित होगये।

बेचारी जयदेवी के माता पिता तो गंगा माता की गोद में सो रहे। यह अवाक् होरही, एक आंसू आंख से न निकला। ४वर्ष के छोटे भाई ने तो यही समझा कि माता पिता कहीं गये हैं आते होंगे। उस ने जयदेवी से कहा 'जीजी अम्मा कहां गई? कब तक आवेगीं? मुझे भूख लग रही है' अब जयदेवी का कण्ठ फूटा तो दौड़ कर भाईको गोद में चिपटा लिया और बिलख २ रोने लगी। इतने में शाम हो गई। बेचारी जयदेवी ने भाई को चिपटा लिया वह सो गया। जयदेवी ने इस डर से कि कहीं भाई न उठ खड़ा हो पास ही लेट रही। बेचारी लड़की तो थी ही सो गई, घर द्वार सब ज्यों का त्यों खुला पड़ा रहा। सब लोग निद्रा देवी की गोद में खुर्टि मार रहे हैं किन्तु किसी२ को ऐसे में भी नींद नहीं। देखते २ तीन मनुष्य पं० देवदत्त जी के घर में घुसे; एक लाठी लेकर जयदेवी के पास खड़ा रहा, शेष दो ने ताला आदि तोड़ ताड़ कर सब गहना पाता कपड़े लित्ते तथा बर्त्तन आदि बांध लिये। जब ताला टूटा तो जयदेवी जागी। पास ही एक लट्ठधारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देख भाई के ऊपर एक हाथ रख कर आंखें बंद करके बोली- हे हैजा महाराज, मेरे माता पिता को तो तुम ने खा लिया अब मुझे खालो पर मेरे भैय्या को न बोलना, चोरों ने जो २ पाया लेकर चम्पत हुए। सवेरे जयदेवी ने देखा कि घर साफ हो गया, पानी लेने को लोटा भी नहीं है। इधर भाई ने कुछ नहीं खाया था सो उसे बड़े वेग से ज्वर चढ़ आया। बेचारी जयदेवी भाई के पास बैठ कर सिसक२ रोने लगी। दोपहर पीछे एक पड़ोसी ने जयदेवी को पुकारा। भीतर गया तो घर भांय २ कर रहा है, भाई मरणासन्न हो रहा है, जयदेवी पास बैठी रो रही है। उसने जाकर डाक्टर साहब से कहा। उन्होंने आकर यहाँ देखा तो घर में कुछ नहीं है, लड़का ज्वर से पीड़ित! कन्या शोकसागर में निमग्न !!

पं० व्रजकिशोर के कई संतानें हुईं पर एक भी जीवित न रही। आयु भी ४५ के लगभग है अब किसी के बच्चे को देखकर स्नेह से द्रवीभूत हो जाते हैं। पं० देवदत्त के घर की दशा देख कातर हो उठे। जयदेवी से कहा यहाँ क्या खाकर रहेगी। जयदेवी ने सरलस्वभाव से कहा कि 'हैजा मुझे खा जावेगा मैं किसी को न खाऊँगी' डाक्टर साहब ने आँखों में आँसू भर कर उस से कहा कि भाई को गोद में लेकर मेरे पीछे २ आओ। जयदेवी ने वैसा ही किया। डाक्टर साहब ने एक कोठरी में जो शफ़ाख़ाने के एक कोने की ओर थी एक चारपाई पर जयदेवी के भाई को लिटवाया। नब्ज़ देखी, दवा दी, पर ज्वर न उतरा इधर जयदेवी से खाने को कहा तो बोली भैय्या जब खावेगा तभी मैं भी खाऊँगी। बहुत कहा पर कुछ फल न हुआ। डाक्टर साहब ने बड़े यत्न से दवा की पर ज्वर टस से मस न हुआ, यहां तक कि तीसरे दिन बेचारे सुकुमार को सदा के लिए सुला दिया। जयदेवी की दशा का कहना लेखनी की शक्ति से बाहर है। एक बार बेहोश होगई। मुर्दा भाई को चिपटाये रात भर पड़ी रही, डाक्टर ने बड़ी मुश्किल से लड़के को अलग किया।

(२)

लाला करुणाशंकर कलक्टरी में पेशकार थे, उन्हों ने रिश्वत में बहुत सा धन एकत्रित किया था। उन के एक लड़का दयाशंकर था जो बड़े प्रेम से लालितपालित किया जाता था। लाला करुणाशंकर की आंखों का तारा दयाशंकर था। लालाजी ने जैसे तैसे वर्नाक्यूलर मिडिलपास करा पाया कि दयाशङ्कर की माता ने कहा कि बस, मेरा पुत्र बहुत पढ़ गया, अब उस का विवाह होना चाहिए। जिस से मैं पौत्र का मुख देख कर ख़ुशी से मर सकूं। लाला ने कहा-नहीं, अभी यह केवल १३ वर्ष का है, पढ़ने की उम्र है यदि विवाह हो जावेगा तो फिर पढना न बनेगा। अन्त में स्थिर हुआ कि प्रथम विवाह होजावे पश्चात् पढ़ना पूर्ववत् जारी रहे।

कहने की देर थी एक नहीं चार विवाह दयाशंकर के तैयार होगये। या यों कहिये कि लालाजी की सम्पत्ति ही वैवाहिक रूप धारण कर लेती थी। जो सुनता कि लालाजी के २ गांव की ज़मींदारी तथा नक़द रुपया भी कई हज़ार है, वही अपनी कन्या दयाशंकर से विवाहने को प्रस्तुत होजाता।

बड़ी धूम धाम से विवाह हो गया। लालाजी के यहाँ एक पुराना नौकर रामदयालु था जो जात का ब्राह्मण होने पर भी निरक्षर भट्टाचार्य था। उस के एक पुत्र था जिस का नाम जयकिशोर था। वह जैसा शरीर से हृष्ट पुष्ट था वैसा ही बुद्धिमान् भी था। दयाशंकर के साथ कभी २ मदर्से जाता था कुछ चाव लगा तो बाप से बोला चाचा जी! मुझे भी क्यों नहीं पढ़ाते? रामदयालु बोले—मेरे पास क्या है? कौन ख़र्च देगा? वह बोला कि कुछ ख़र्च नहीं होगा, मैं तो कल से पट्टी लेकर पढ़ने जाऊँगा।

यद्यपि जयकिशोर ने दयाशंकर से एक वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे पढ़ना प्रारम्भ किया था किन्तु मिडिल दोनों ने साथ२ किया। दयाशंकर का विवाह होगया, अब करुणाशंकर ने पढ़ाने का प्रबन्ध सोचा कि पास ही कहीं हाई स्कूल के स्पेशल क्लास में दयाशङ्कर को भर्ती करा दिया जाय। एक ब्राह्मण रोटी करने को और एक कहार चौका बर्तन को चाहिए। लाला जी ने सोचा कि यदि मेरे दयाशङ्कर के साथ जयकिशोर भी चला जावे तो अच्छा है क्यों कि दोनों में खूब पटती है और जयकिशोर रोटी भी कर लेता है और शरीर से हृष्ट पुष्ट होने के कारण और ऊपरी काम भी सब कर लेगा। जब जयकिशोर से पूछा गया तो उस ने कहा कि यदि मैं भी दयाशङ्कर के साथ पढ़ूँगा तो जाऊँगा अन्यथा नहीं। लाला जी ने सिर हिला कर कहा कि वहां तो और बहुत खर्च पड़ेगा वह कौन देगा? जयकिशोर ने जाने से इनकार कर दिया तब उस के पिता से पूछा गया। वे बेचारे दीन दशा में थे कहने लगे-यदि२) मासिक और खूराक मिलेगी तो उसे भेज देंगे। लाला जी ने कहा कि १) मासिक खूराक और कपड़े हम देंगे, बेचारे रामदयालु ने स्वीकार कर लिया। किन्तु इन की स्वीकारी से क्या होता है, जाने वाला जब स्वीकार करे तब न! जयकिशोर अपने पढ़ने को छोड़ किसी दूसरी बात पर राजी ही नहीं होता और लाला करुणाशङ्कर एक लड़के के पढ़ाने को २का व्यय क्यों स्वीकृत करने लगे हैं।

जयकिशोर गांव के एक वकील पं० विष्णुदत्त के पास गया और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वकील साहब ने कहा हम क्या करसकते हैं। जयकिशोर बोला--कोई ऐसा उपाय कर करा दीजिये, जिस से मेरा भी पढ़ना हो जावे। वकील साहब तीव्रबुद्धि थे। सोच लाच कर बोले तू घर परचल मैं १ घंटे पीछे करुणाशंकर के यहाँ आता हूं वहीं मिलना।

पं० विष्णुदत्त ने भोजन करके लालाजी के घर की ओर प्रस्थान किया लालाजी दयाशंकर के पढ़ाने का प्रबन्ध सोच रहे थे। पर कतरब्योंत ठीक नहीं बैठता था कि इतने ही में सामने से पं० विष्णुदत्त जी वकील को आते देखा उठ कर पालागन किया और आदर पूर्वक बैठाया। वकीलसाहब ने कहा कि लालाजी कुछ चिन्तित से ज्ञात होते हो? लाला जी ने कहा-दयाशंकर के पढ़ाने का प्रयत्न कर रहा हूं कोई बात ठीक नहीं बैठती उस के साथ एक रोटी करने वाला और एक कहार चाहिए इधर उस का व्यय भी अब बढ़ जावेगा। कोई राय नहीं पटती, आप ही कुछ उपाय बतलाइये। वकील साहब बोले—मेरी सम्मति में तो नौकर के लड़के ही को क्यों नहीं भेज देते?

लाला०-वह तो जाने को राजी ही नहीं होता।

वकील०-क्यों?

लाला०-कहता है कि मैं भी वहाँ जाकर पढ़ूँगा तो जाऊँगा, अन्यथा नहीं?

वकील०-अच्छी बात है दयाशंकर की रोटी वह उसे हर प्रकार सुख पहुंचावे और स्वयं भी सुख रहे। आपको इस में क्या हानि है?

लाला०-दो लड़कों के पढ़ाने का व्यय कौन सहेगा? मैं १) रु० मासिक और खूराक से अधिक नहीं दे सकता चाहे जावे चाहे न जावे।

वकील०-फिर बात ही कौनसी रह गई? मासिक आप देंगे फ़ीस मुआफ़ करा दी जावेगी। पुस्तकें, सो मैं ही ले दिया करूँगा। आप १) मासिक देंगे उस से क़लम कागज़ का खर्च चलेगा।

लाला०-(हँसकर) पं० जी आप तो रसोई का खाते हैं। कैसी अच्छी सम्मति बतलाई। अच्छा जयकिशोर भी स्वीकार करे तब न।

वकील०-क्यों न स्वीकार करेगा, बुलवाइये।

जयकिशोर बुलवाया गया वह तो पढ़ने पर लट्टू था ही झट से सहमत हो गया। दूसरे ही दिन लाला करुणाशंकर जा कर एक स्पेशल क्लास में दोनों को भर्ती करा आये। जयकिशोर ने वकील साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना पत्र हेडमास्टर साहब को दिया । सहपाठी के कारण हेडमास्टर को बात माननी पड़ी और जयकिशोर की फ़ीस माफ़ हो गई ।

(३)

दयाशंकर अभी कैसे लौट आये ! आज गये पूरे दिन भी नहीं हुवे ! पाठक भूले न होंगे कि का विवाह हो गया है । अब द्विरागमन होने पश्चात् स्कूल गये थे सो तीसरे ही दिन लौट आये । अच्छा हुआ कि लाला जी घर न थे माता ने आने का कारण भी न पूछा ३ दिन घर रह कर दयाशंकर फिर चले गये । आठवें दिन २ दिन की छुट्टी थी । दयाशंकर घर पर मौजूद, लाला जी ने डांटा, फटकारा माता ने दयाशंकर की तरफ़दारी की । होते २ दयाशंकर का घर आना एक साधारण सी बात हो गई ।

दयाशंकर ने ८ वें की परीक्षा दी .फेल जयकिशोर ! किसी कारण रोगग्रस्त हो गया से २ रे नम्बर पर उत्तीर्ण हुआ । लालाजी ने कड़ी चिट्ठी लिखी पर अब क्या होता है । दयाशंकर की माता सब से कहती कि भाड़ जाय पढ़ना मेरा पुत्र दो दिन भी घर पर नहीं पाता । हे ईश्वर ! शीघ्र मुझे पौत्र के दर्शन हों नाम पर कथा कहलाऊंगी । मदार की चादर ऊँगी और कोई जो उपचार बतावेगा करूँगी ।

२ दयाशंकर एन्ट्रेन्स में पहुंचे और जयकिशोर एन्ट्रेन्स की परीक्षा दी किन्तु फल अभी ज्ञात न था । गर्मी के दिन थे दयाशंकर बोले गंगास्नान चलेंगे, जयकिशोर भी दयाशंकर की धोती लिया साबुन तथा अपना अंगौछा धोती गङ्गा स्नान के लिए तैयार होगये । दोनों ने कर खूब स्नान किया । दयाशङ्कर ने जयकिशोर कहा थोड़ा और घुस जाओ, देखें कहाँ तक पानी है ! पहिले तो जयकिशोर ने टालमटूल की स्वामी की आज्ञा आगे पाँव बढ़ाया तो गरदन पहुँचे । दयाशङ्कर ने कहा एक .कदम और । बेचारे जयकिशोर फिर बढ़े, अब आगे दह था । पांव बढ़ाने की देर थी कि अगाध जल में जा रहे और फिर न जाने कहाँ विलीन हो रहे ।

दयाशङ्कर चुप घर आए और कह दिया कि जयकिशोर बड़ा शरीर लड़का था, न जाने कहाँ चला गया ? मुझे तो सुख कुछ न था वह दिन रात स्वयम् पढ़ा करता था उल्टी सीधी जली भुनी रोटी मुझे भी खिला दिया करता था । सो भी कल से कहीं भाग गया । जयकिशोर के पिता रामदयाल सुन कर बड़े दुःखित हुए और यह कह कर सन्तोष कर लिया कि दो चार दिन में आजावेगा । पर जयकिशोर कहां !!!

दयाशङ्कर की माता को अपनी धुन सवार थी किन्तु फल कुछ न होता था । दयाशङ्कर को क्षय रोग हो गया, दिनो दिन दुबले होते गये । अब उन की बहू देखने में उन से ड्योढ़ी ज्ञात होने लगी । दवा दारू की गई किन्तु विशेष फल न हुआ कोई दोस्त पूछता कि क्यों दयाशङ्कर ! कैसी हालत है ? तो सूखे मुँह से कह देते कि-

'न मरते हैं न जीते हैं यही हालत हमारी है'

पढ़ना छोड़ दिया । घर का काम लाला जी करते थे दयाशङ्कर कभी घर कभी बाहर कभी कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगे, बस और अब कुछ अच्छा न लगता था । लालाजी ने भी यह जान कर कि लड़का सयाना होगया और काम चलाऊ होगया, कुछ न कहा । थोड़े दिन पीछे लालाजी बीमार पड़े और सब कुछ करने पर भी काल के आगे किसी की दाल न गली ।

बेचारे दयाशंकर पर सब बोझ आपड़ा, ज्यों त्यों करके काम चलने लगा । ज़मींदारी के काम को एक कारिन्दा नौकर रखा गया क्योंकि लाला करुणाशंकर स्वयं ही सब काम करलेते थे । इधर दयाशङ्कर पर फ़ैशन का भूत सवार हुवा । पहले साइकिल मोल ली । घर में रुपया था माता ने कुछ न कहा । ४ जोड़ी बूट मोजा सहित, २ सूटपर गेटिस ४ पतलून,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ बनियाइन, ८ कमीज, ६ कोट, ४ वेस्टकोट, ४ कालर नेकटाई, मफलर, सेफ्टीपिन कहांतक गिनावें कमरा इन्हीं चीज़ों से भरा रहता था। धोबी की ४) माहवार धुलाई ठहरी। यही धोबी लाला के कपड़े धोने पर साल भर में ५ सेर अन्न और एक पुराना कपड़ा पाता था। दयाशङ्कर को एक रबरटायर बग्घी की आवश्यकता प्रतीत हुई पर रुपया नक़द न था चुप एक साहूकार को १२००) का हुंडी लिख बग्घी ख़रीद लाये। अब व्यय बढ़ा। घोड़े पर एक साईस साफ़ करने को, १ घास दाना इत्यादि के हेतु रखा। दाना चारा इत्यादि सबमे १००) मासिक के लगभग दयाशंकर का ऊपरा व्यय होगया। विवश हो एक गांव बेच डाला। दूसरे वर्ष दूसरे से भी हाथ धो बैठे जब गहने पाते पर नौबत आई तब माता ने भला बुरा कहना प्रारम्भ किया। इधर दयाशङ्कर कभी निकल जाने कभी डूब मरने का भय घर वालों को दिखाने लगे, इस से किसी ने विशेष कुछ न कहा। तीन चार वर्ष में सब हिसाब किताब बराबर होगया न गांव रहे न नकद। अब दयाशंकर नकद रह गये बग्घी बेची, साइकिल नीलाम कर दी। घर की बढ़िया वस्तुएं भी कहीं की कहीं जा लगीं और बड़े ही दुःख से कालयापन करने लगे।

(४)

पं० व्रजकिशोर के शफ़ाख़ाने में एक ऐसा शव आया है जो गङ्गाजी में बहता आता था। एक किसान ने उस में कुछ गर्मी देख समझा कि सम्भवतः हमारे पं० जी इस ठीक करदें। पं० जी की प्रशंसा ने गंगा के मुर्दे को शफ़ाख़ाना दिखाया। पं० जी ने शव देख कर कहा कि इस में गर्मी अवश्य है पर ८ घंटे डूबे होचुके हैं। ईश्वर कृपा करें तो बच जाये। प्रथम उलटा टांग कर उस के भीतर का जल निकाला, औषधि तथा यंत्र प्रयोग भी किया पर अभी कुछ लक्षण अच्छे न देख पड़े। चिन्ता अपयश के भय एवं कर्तव्य के वश हो पं० जी ने शव पर दत्तचित्त हो औषधादि प्रारम्भ की। प्रातः उठ कर देखा तो एक २ कर सांस आने लगी पं० जी आनन्द में विह्वल हो उठे बराबर औषधोपचार करते रहे तीसरे दिन मुर्दे ने आँखे खोल दीं किन्तु मुख से एक शब्द न निकला। जिस कोठरी में जयदेवी थी उसके बग़ल वाली कोठरी ही में यह शव था पर हां! अब उसे शव क्यों कहें! आंखें खुलीं, सांस चल रही है। अरे वह देखो, गरदन घुमा कर जयदेवी की ओर देखने लगा, आस पास कोई था नहीं उँगली के इशारे से जयदेवी को बुलाया। जयदेवी ने समझा कि रात को मेरे घर में माता पिता की मृत्यु होने पर हैजा दिखाई दिया था, हो न हो इस ने मुझे यहां आकर पकड़ा है। ख़ैर, मेरे माता पिता तथा भाई सब को इसने खा लिया अब मैं ही जी कर क्या करूँगी? झट उठ कर उस के सामने जा खड़ी हुई। पाठक, जान गये होंगे कि यह शव जयकिशोर का था जिसे बाबू दयाशङ्कर साहब ने बरबश पानी में घुसा कर गङ्गा को अर्पण कर दिया था।

जयदेवी को पास खड़ा देख जयकिशोर अवाक् रहे क्योंकि न तो इन के माता थी न कोई बहिन सो इन्हों ने भर आंखों किसी स्त्री को अपनी सुध में न देखा था। जयदेवी को देख आंखों से हृदय तक तृप्ति होगई। एक विद्युत्प्रवाह शरीर में दौड़ गया। उठ कर बैठना चाहा पर बल कहाँ! जयदेवी बोली,—कहो क्यों बुलाया है?

जयकिशोर०—भूख लगी है।

जयदेवी०—यदि तुम यथार्थ में हैजा हो तो मुझे भी खा कर अपनी क्षुधा शांत करलो।

जयकि०—देवी! मैं भूखा हूँ (धीरे से) हाय कहाँ आया!

जय०—तुम कौन हो?

जयकि०—मैं ब्राह्मण का बालक हूँ, दीन हूँ, और भूखा हूँ कृपा कर कुछ खिला दो, (साथ ही जयकिशोर के आंसू निकल आये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब जयदेवी से न रहा गया । उसके पीने को जो गर्म दूध डाक्टर साहब ने भेजा था अपनी कोठरी में से जाकर लेआई और चम्मच से जयकिशोर के मुँह में धीरे २ डालने लगी । एक दो करके जयकिशोर वह आधसेर दूध पी गये।तब जयदेवी ने कहा अब मेरे पास दूध नहीं रहा ।

जयकि०—देवी, तुम कौन हो ?

जयदे०-मैं देवी नहीं जयदेवी हूँ ।

जयकि०-हे देवी ! तुम्हारी जय हो ।

जयदे०-अच्छा अपना परिचय दो ।

जयकि०-मैं एक ब्राह्मण का बालक हूँ, स्कूल में अँग्रेजी पढ़ता था । गङ्गाजी में नहाते समय डूब गया अब शायद मर कर यहाँ आया हूँ,यह क्या स्वर्ग ? जब तुम ऐसी देवियाँ उपस्थित हैं तो अवश्य यह स्वर्ग ही है । पर मेरे कर्म तो स्वर्ग-योग्य न थे ।

जयदे०-मैं एक अनाथ(रोने लगी)कन्या हूँ ।मेरे माता पिता तथा भाईको हैजे ने खालिया मैं अभागिनी सांसारिक यंत्रणा भोगनेके निमित्त बची हूँ ।

जयकि०-तुम कौन जाति हो? यहाँ क्यों आई ?

जयदे०-मैं ब्राह्मण की कन्या हूँ । पास ही मेरा घर है । जब सब मर गये तो मैं यहां शुफ़ाखाने में ज्वरपीड़ित भाई को लेकर आई थी । वह भी दुर्भाग्य से मर गया । अब मैं यहीं इस कोठरी में क्यों त्यों दिन बिताती हूं । मृत्यु को बुलाती हूँ पर नहीं आती ।

अब जयकिशोर के होश ठिकाने आये,बोले,ऐं ! यह शफ़ाखाना है !

जयदेवी०-हाँ, यह शफ़ाखाना है ।

जयकिशोर- तो डाक्टर साहब कहाँ हैं ?

जयदे०-उस ओर रोगियों को देख कर पर्चे लिख रहे हैं ।

जयकि०-अच्छा उन्हें बुलाओ ।

जयदे०-वे स्वयम् तुम्हें अवकाश पाते ही मिलने आवेंगे ।

इतने में खट से दर्वाजा खुला और डाक्टर साहब एक नौकर के साथ भीतर पधारे जयदेवी को उस के सामने देख, कुछ चकित हो बोले कि क्यों 'जयदेवी' तुम यहाँ क्यों आई, ? जयदेवी उत्तर भी न देने पाई थी कि जयकिशोर ने अपनी मधुर मुग्ध नम्रता भरी वाणी से अँग्रेजी में डाक्टर साहब से कहा कि मैं ने बुलाया था मुझे भूख लगी थी इस देवी ने मुझे दूध पिला कर शांत किया अ मुझ में बल आ गया इस देवी के इस ऋण से तो कैसे ही उऋण भी हो जाऊँ परपिता आप के ऋण से उऋण होना असम्भवहै । इतना कह कर डाक्टर साहब के पैरों पर चारपाई से झुक कर शिर रख दिया । डाक्टर साहब ने चारपाई पर लिटा कर कहा निर्बल हो, चुप चाप लेटे रहो नीरोग हो जावोगे । नाड़ी देख कर शरीर टटोला, दशा अच्छी थी दवा देकर अपनी कुर्सी पर आ विराजे । ओठों में मन्द२ मुसक्यान. आँखों में आनन्दातिरेक से कभी २ अश्रु भर आने लगे। आज डाक्टर साहब की ऐसी दशा जयकिशोर के अच्छे होने के कारण हो रही थी ।

गांव में जिसने सुना जयकिशोर को देखने को दौड़ा और सहस्र मुख डाक्टर साहब की प्रशंसा करता घर गया । अब जो बात होती जयकिशोर जयदेवी से कहते । जयदेवी की कोठरी पास ही थी प्रायः अधिकांश समय जयकिशोर के पास बिताती जयकिशोर एक दिन कहने लगे:—

आ अन्दलीब ! मिलके करें आहो ज़ारियाँ,
तू हाय गुल प्रकार मैं चिल्लाऊँ हाय दिल ।

जयदेवी तुम माता पिता एवम् भ्राता की मृत्यु से दुःखित हो मैं पिता विछोह एवम् विद्या से विरत किया गया शरीर भी आपत्ति में फँसा हम तुम दोनों दुखीहैं क्या दुखियों की जोड़ी मिलाने ही के लिए ईश्वर ने हम तुम को इकट्ठा किया है ?

जयदेवी०-ईश्वर ही जाने कि उसके कार्यों में क्या २ रहस्य हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयकि०--क्यों देवी,तुम्हारे पिता ने तुम्हारा विवाह अब तक क्यों नहीं किया ?

जयदे०--(कुछ लज्जित हो कर) चाचा जी बाल विवाह को बुरा समझते थे। आप के घर में पिता को छोड़ और कौन कौन है ?

जयकिशोर--पिता को छोड़ कर मैं,और मुझे छोड़ कर पिता,तीसरे का नाम नहीं। माता पहिले ही मर चुकी थीं और मैं पढ़ने पढ़ाने में लग रहा।

जयदेवी०-आप ने क्या २ पढ़ा है ?

जयकि०-प्रथम गांव की पाठशाला में मिडिल हिन्दी में उत्तीर्ण किया पश्चात् अंग्रेजी पढ़ने लगा। एन्ट्रेन्स की परीक्षा दे चुका था पर फल प्रकाशित नहीं हुआ।

जयदे०-फल कब तक प्रकाशित होगा ?

जयकिशो०-अब तो दो मास हो गये सोमवार को होगा, आज कौन दिवस है।

जयदे०-आज सोमवार ही है।

जयकि०-चाहे आज ही की डाक में आया हो पर पता कैसे लगेगा ?

जयदे०-डाक्टरसाहब को कुछ न कुछ ज्ञात होगा?

जयकि०-अच्छा तो पूछ आओ कि इन्ट्रेन्स वालों के गजट का कुछ हाल आपको मिला कि नहीं।

जयदेवी डाक्टर साहब के पास पहुंची। डाक की चिट्ठियां देख रहे थे इस से डाक्टर साहब ने जयदेवी को न जाना। दृष्टि उठी तो जयदेवी को देखा, बोले—'क्यों बेटी' ? जयदेवी ने कहा क्या इन्ट्रेन्स के गजट का हाल आप को ज्ञात है। उसी दिन गजट आया था। डाक्टर साहब ने कहा हां आज आया है तू क्या करेगी ?

जयदे०-उन्होंने मँगाया है।

डाक्टर—किन्होंने ?

जयदेवी लज्जित हो नीची दृष्टि कर खड़ी हो रही। डाक्टर साहब भी चतुर थे समझ गये। गजट उठा कर जयदेवी को दे दिया। यह ले कर जयकिशोर के पास आई। जयकिशोर निर्बल होने पर भी झट उठ बैठा और जयदेवी के हाथ से फुर्ती से गजट लेकर देखने लगा। पहला पृष्ठ, दूसरा, यह लो तीसरे पृष्ठ पर सब से प्रथम जयकिशोर लिखा है। पास खड़ी जयदेवी का हाथ पकड़ चारपाई पर बिठा चिपट गया। बोला मित्र! अव्वल नम्बर पर पास हुआ। प्रसन्नता में उसे सुधि न रही कि मैं किस से क्या व्यवहार कर रहा हूं। जयदेवी ने भी आनन्द मनाया पर इस के पकड़ने और चिपट जाने तथा मित्र कहने पर कुछ चकित हुई।

आगे मित्रों के नाम देखे कोई उत्तीर्ण कोई अनुत्तीर्ण। गजट के अंतिम पृष्ठ पर एक नोटिस था वह किसी ईसाई सभा के मंत्री ने दिया था कि जो कोई ईसाई विद्यार्थी इस वर्ष में इन्ट्रेंस में अव्वल नम्बर उत्तीर्ण होगा उसे २०) मासिक और यदि और कोई जाति का होगा तो १५) मासिक बी०ए० तक पढ़ने को यह ईसाई समाज देगा। आज जयकिशोर बिना दवा के चंगे हो गये। फिर जयदेवी को सम्बोधन कर कहा कि ईश्वर को सहस्र धन्यवाद है कि मैं सब से प्रथम नम्बर पर उत्तीर्ण हुआ और आगे पढ़ने को १५) मासिक एक ईसाई मिशन देगा।

जयदे०—तो क्या आप ईसाई हो जावेंगे ?

जयकि०—(कानों पर हाथ धर के) राम २ ऐसा कभी न कहना, वैदिकधर्म के सामने मुझे संसार भर के मत फीके मालूम पड़ते हैं।

जयदे०—तो अब आप कहां पढ़ेंगे ?

जयकिशोर—आगरा, कानपुर या इलाहाबाद।

डाक्टर साहब इस वृत्तान्त को सुन अतीव प्रसन्न हुए। इधर जयकिशोर की दशा भी उत्तरोत्तर अच्छी होने लगी। कालिज १५ जुलाई के लगभग खुलेगा केवल १ मास शेष है इस हेतु से जयकिशोर जाने के हेतु शीघ्रता करने लगे। डाक्टर साहब ने कहा अच्छा परसों चले जाना पर किराया पास नहीं, खैर देखा जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने क्यों जयकिशोर का जाना सुन कर जयदेवी की हिलकी भरआई। जयकिशोर से बोली परसों आप जावेंगे। मैं, अकेली यहां रह जाऊँगी, क्या करूँगी, कहां रहूँगी, सो नहीं कह सकी। जयकिशोर ने कहा मेरे तो ऐसा धन नहीं जो कुछ सहायता करूँ। पिता के पास इतना घर भी नहीं जो बेचबाच कर कुछ उपाय करूँ। यह शरीर है जो तुम्हारे ऋण से जीवन भर उऋण न न होगा। मुझे नहीं सूझता कि मैं इस उपकार को कैसे निपटा सकूँगा।

जयदे०-मुझे कुछ नहीं चाहिये। भीख मांगूँगी और पापी पेट भरूँगी। तुम जहां रहो आनन्दित रहो। खूब विद्या प्राप्त करो। किन्तु यदि कष्ट न हो तो इस जीवन में फिर कभी दर्शन देना और कहते डरती हूँ कि मैंने आप के साथ क्या उपकार किया जो आप ऐसे कहते हैं। अंतिम प्रार्थना है कि मुझे बिलकुल ही भूल मत जाना यदि कोई अपराध हुआ हो तो उसे क्षमा करना।

जयकि०—देवी मेरा तुम्हारा अकस्मात् बड़ी दुःखितावस्था में सम्मिलन हुआ। देखें अब कब ईश्वर मिलावे? मेरा घर यहाँसे दूर है कैसे पहुंचूँगा।

जयदे०—(गले की हंसली उतार) लो इसे बेचकर काम में लाना।

जयकि०—नहीं नहीं ऐसा नहीं होसक्ता।

जयदेवी ने किसी प्रकार न माना हंसली दे ही दी। आज जयकिशोर के जाने की तैयारी है। डाक्टर साहब जयकिशोर के घर का हाल सुन ही चुके थे। बोले घर जाकर पिता को दर्शन दे आओ और सीधे कालिज जाकर विद्याध्ययन करो यह २५) तुम्हारे व्यय के हेतु दिये जाते हैं। जयकिशोर ने बहुत हाथ पैर जोड़े पर डाक्टर साहब ने एक न मानी अब जयकिशोर अपनी कोठरी में आकर जयदेवी की हंसली लौटा देने लगे कि मुझे तो २५) मिल गये मैं इस का क्या करूंगा। जयदेवी ने लेकर उनके कोट की जेब में डाल दी कि मेरी यह सेवा स्मरण दिलाती रहेगी इतना कहकर जयकिशोर को लिपट गई। दोनों के आंसू भर आये। बाहर से डाक्टर साहब ने आवाज दी, जयकिशोर! इक्का खड़ा है चलो देर होती है।

(५)

जयकिशोर घरगये। कालिज पहुंचे, परिश्रम एवम् मेधावान् होने के कारण बी० ए० करके ला क्लास की परीक्षा में उत्तीर्ण हो घर आये। पं० विष्णुदत्त जी पुराने वकील थे अब वृद्ध भी होआये जयकिशोर को पढ़ाने का भी परिश्रम उन्होंने किया था इस से जयकिशोर ने गांव में पहुंच प्रथम उन्हीं के चरण छुए उन्होंने अपनी कलम दवात उठाकर जयकिशोर को देदी कि लो मेरे स्थानापन्न होकर कार्य करो। 'नया वकील और पुराना मुहर्रिर' की कहावत ठीक होगई। दयाशंकर अब तक ठिकाने लगचुके थे इधर उधर घूमे पर १०) तक की नौकरी न मिली। दयाशंकर पर दया करके जयकिशोर ने अपने मुंशी के नीचे रख लिया और १५) मासिक देने लगे।

जयकिशोर जब कालिज में पढ़ते थे पं० व्रजकिशोर डाक्टर से बराबर पत्र व्यवहार होता रहा डाक्टर साहब ने अपने घरपर ही जयदेवी को रखा क्योंकि उसका सिवाय ईश्वर के कोई न था। अतएव डाक्टर साहब अपने पत्र में जयदेवी की कुशल भी लिख दिया करते थे परन्तु जयकिशोर ने ६ वर्ष में एक बार भी अपने पत्र में जयदेवी के हेतु कुछ न लिखा इस से जयदेवी ने अपने भाग्य को दोष देकर संतोष किया किन्तु डाक्टर साहब कैसे संतोष करें अब तो जयदेवी १८वी वर्ष में है और कुँवारी, किन्तु जयदेवी की चाल ढाल बड़ी ही सराहनीय थी।

किसी क़त्ल के मुकद्दमे में डाक्टर साहब साक्षी देने कचहरी में सदर आये हमारे चरितनायक श्रीयुत पं० जयकिशोर बी. ए. एल. एल. बी. उसी ओर से वकील थे कचहरी में मिलते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों दूध शक्कर सदृश मिलगये। साक्षी देकर डाक्टर साहब ने दो रेल के टिकट लिये और हाथ पकड़ कर जयकिशोर को पास ही रेल में बिठालिया। घर आकर जयदेवी ने जो देखा कि जो मुर्दा कोठरी में था आज एक सभ्य सुन्दर और अमीराना ठाठ का वकील है। देखा और आपे को भूलगई। इधर जयकिशोर ने १२ वर्ष की कुमारी अनाथा दुखिया मलिन वस्त्रा को देखा था आज बनारसी सारी पहिने डाक्टर साहब के विशाल भवन में अपनी ज्योत्स्ना से अंधेरे घर (डाक्टर साहब निस्सन्तान थे) को प्रदीप्त कर रही है जयकिशोर ने जयदेवी की दी हुई हँसली का कड़ा सा हाथ में पहन रखा था उसे कभी उतारते न थे कई मित्रों ने कहा भी कि क्या आप भूत प्रेत मानते हैं? जो कड़ा एक हाथ में बे ढंगा पहन रखा है पर ये तो प्रेमोपहार जान धारण कर रहे थे। आज भी वही उनके कर कमल में सुशोभित है। भोजन करते समय जयदेवी ने ध्यान से उसे देखा तो अपनी हंसली का मुड़ा हुआ रूप पाकर आनन्दातिरेक से विह्वल हो गई।

दूसरे दिन डाक्टर साहब ने कहा 'जयकिशोर! आज तक जयदेवी को अपनी कन्या समझता रहा अब मेरी इच्छा है कि मैं जयकिशोर को भी इसी नाते पुत्र समझूं क्या मैं ऐसा कर सक्ता हूं? जयकिशोर ने डाक्टर साहब के चरणों पर शिर रख दिया। उन्हों ने उठा कर गले लगा कर पुकारा जयदेवी! कहने की देर थी कि जयदेवी आ उपस्थित हुई डाक्टर साहब ने हाथ पकड़ कर जयकिशोर के चरणों पर डाल दिया। जयकिशोर कुछ शर्मा कर नीचे देखने लगे। थोड़े दिन बाद लोगों ने देखा कि डाक्टर साहब ने अपना सर्वस्व जयदेवी को दे दिया। उधर जयकिशोर के पिता एक नन्हे से कोमल बालक को खिला रहे हैं जो इन से तोतली आवाज़ में बार २ बाबा २ कहता है।

मदनमोहनलाल दीक्षित

मनोरम-श्लोक।

(१)

प्रियं न मृत्युं न लभे त्वदीप्सितं,
तदेव न स्यान्मम यत्त्वमिच्छसि।
वियोगमेवेच्छ, मनः! प्रियेण मे,
तव प्रसादान्न भवत्वसौ मम॥

विरहिणी कहती है——

अरे मन! जिस चीज़ को तू चाहता है, वही मुझे नहीं मिलती। पहले तूने प्यारे को चाहा था वह नहीं मिला, अब तू मौत को मांगता है और वह भी मुझे नहीं मिलती। हाय, जो कुछ तू चाहता है वही मेरे लिये अप्राप्य होजाता है। इस से तू प्रिय-वियोग ही को क्यों न मांग? तेरी ही कृपा से मुझे प्रिय-वियोग न होगा !!! इसी विषय पर 'ग़ालिब' कहते हैं—

"किस से महरूमिये क़िस्मत की शिकायत कीजै।
हमने चाहा था कि मरजायें सो वह भी न हुआ।

विचारशील पाठक देखेंगे कि श्लोक के केवल पूर्वार्ध से जो बात निकलती है, वह 'ग़ालिब' का सारा पद्य भी नहीं कह सका है।

(२)

रूपं जरा, सर्वं सुखानि तृष्णा,
खलेषु सेवा, पुरुषाभिमानम्।
याच्ञा गुरुत्वं, गुणमात्मपूजा,
चिन्ता बलं हन्त्यदया च लक्ष्मीम्॥

बुढ़ापा, रूप का और तृष्णा, सब सुखों का नाश करदेती है। इसी प्रकार दुष्टों की सेवा, से पुरुष का अभिमान-भङ्ग होता है। माँगना, बड़प्पन का और अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना, अपने गुण का एवं चिन्ता, बल का और निर्दयता, लक्ष्मी का नाश करती है।

केशवशरण गुप्त

——०——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध-विषय।

१-भारत की पत्र पत्रिकायें।

योरप में पत्र-पत्रिका-सञ्चालन, एक अच्छा खासा रोज़गार है। वहां के अनेक लेखकों ने, इतना धन इकट्ठा कर लिया है कि भारत का कोई बड़े से बड़ा बारिस्टर भी इतना धन नहीं कमा सकता। पत्र-सम्पादन और लेखन-कार्य, वहां बड़ी गौरव की दृष्टि से देखा जाता है।

भारत में योग्य अनुभवी सज्जन, क्यों इस रोज़गार के प्रति अचेष्ट और उदासीन हैं। इसका कारण यह है कि यहां इस रोज़गार में रत्ती भर भी आर्थिक उन्नति नहीं होती। यही एक कारण है, जिस से भारत के लेखकों को, उन के लेखों के बदले में अच्छा पुरस्कार नहीं मिलता। इस से किसी को, पत्र पत्रिका के मैनेजर को कञ्जूस न समझना चाहिये। वास्तव में उन लोगों को पत्र की छपाई और कागज़ ही का भार सहना मुश्किल हो जाता है। भारत में हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी की शायद ही सैकड़े पीछे पाँच, ऐसी पत्र-पत्रिकायें हों, जिन की आर्थिक दशा कुछ अच्छी कही जा सकती है। इन सारी बातों का कारण शिक्षा की यथेष्ट उन्नति का न होना है। आवश्यकीय शिक्षा हुए बिना यह अभाव कदापि पूरा नहीं होसकता! इस के सिवा यह भी बड़ी कमी है कि भारत में सम्पादन-कला सिखलाने वाला कोई विद्यालय नहीं। देखें, स्वर्गीय आनरेबल बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा की आशा कब पूरी होती है! हमारी राय में यह विषय, हिन्दु विश्वविद्यालय ही अपने हाथ में लेले, तो बड़ा अच्छा हो।

२ श्रीयुत बैनरजी।

अब की बार 'मनोरमा' ने भारत की उन्नति-साधन के अनथक वीर श्रीयुत बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के चित्र को प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इस लिये पाठकों को आप का संक्षिप्त परिचय कराया जाता है—

आप का जन्म गदर से ६ वर्ष पहिले, सन १८४८ में एक ब्राह्मण वंश में हुवा था। कलकत्ते ही में आप ने शिक्षा प्राप्त की। बड़ी बड़ी परीक्षाओं में आप सदैव प्रथम नम्बर रहे। आप की बुद्धिमत्ता को देख कर आप के कालिज के प्रिन्सिपल ने आप के पिता जी को सम्मति दी कि आप को इण्डियन सिविल सर्विस (I.C.S.) की परीक्षा पास करने के लिए विलायत भेजा जाय।

यह कहना यहाँ अनावश्यक न होगा कि इस से पहिले कोई भारतवासी, पढ़ने के लिए विलायत नहीं गया था। विलायत जाने वाले भारतीय छात्रों में आप ही अगुआ हैं। हाँ, आप के साथ मिस्टर रमेशचन्द्र और बाबू बिहारीलाल गुप्त अवश्य गए थे। विलायत जाकर आप ने इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास करली, पर अवस्था कुछ अधिक हो जाने के कारण, आप को जगह देने से इन्कार किया गया। एतदर्थ आप ने विलायत की बड़ी अदालत में अपील की, और गवर्नमेंट के इस जगह न देने वाले फ़ैसले को रद्द कराया। भारत लौटने पर आप ज़िला सिलहट के असिस्टेंट मजिस्ट्रेट नियत किये गये। असिस्टंट मजिस्ट्रेटी का आप ने २ साल काम करके और ६००) रुपया वार्षिक पेंशन लेकर नौकरी छोड़ दी। कुछ दिनों आप पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के कहने से एक कालिज में इंगलिश के प्रोफ़ेसर भी रहे थे।

सन् १८७९ईसवी में आप ने 'बंगाली' निकाला। इंगलिश का यह दैनिक पत्र, बड़े गौरव की दृष्टि से देखा जाता है। बंगाल की लेजिसलेटिव कौंसिल और वाइसरीगिल कौंसिल के मेंबर की हैसियत से देश के बड़े बड़े काम आपने किये हैं।

पहिले आप कांग्रेस के नेताओं में गिने जाते थे। दो बार आप उस के प्रधान भी चुने गए, पर अब उस से कुछ मत-भेद होजाने के कारण 'मा-डरेट कान्फ्रेंस' नामक एक नई संस्था की आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना करली है। उसी के डेपूटेशन में सम्मिलित हो कर आप अब इंगलैंड गये हैं।

ईश्वर आप को चिरायु करे।

३--ऊँची एड़ी के जूते।

भारतीय स्त्रियाँ, बराबर योरोपियन लेडी होने की कोशिश करती जारही हैं। इसे भारत का मन्द-भाग्य ही कहना चाहिये। यह देख कर तो और भी दुःख होता है। कि बहुत से घरानों की लड़कियाँ, जो इंगलिश फैशन पर बेसमझे पूंछे, जो जान से लट्टू हैं, ऊँची एड़ी वाले जूतों को भी पहिनने लगी हैं। उन के विचार में पूरी 'मेम साहिबा' बनने के लिये शायद इसी बात की कमी होगी। चलते हुए बार बार गिर जाने से उन्हें यह तो ज़रूर मालूम होगा, कि इन जूतों को पहिन कर अच्छी तरह नहीं चला जा सकता, और हर समय पैर मुड़ कर मोच आने का डर रहता है।

इंगलैंड की स्त्रियाँ इन्हीं कारणों से ऐसे जूतों को पहिनना छोड़ती जारही हैं, और इधर हमारी भारतीय महिला उन्हें शौक़ के साथ अपना रही हैं!!!

डाक्टर बतलाते हैं कि ऊँची एड़ी का जूता पहिनने से मस्तिष्क का बल घटता है, पर उन बेचारों की यहां फ़ैशन के ज़माने में सुनता कौन है। यहां तो-

'मस्त हैं अपने नशे में उन्हें परवाह क्या है'

प्राप्तिस्वीकार।

अमृतधारा। लाहौर के कविविनोद पण्डित ठाकुरदत्तजी शर्मा की बनाई हुई, "अमृतधारा" की १ शीशी हमें समालोचनार्थ मिली है। कहा जाता है कि "अमृतधारा" प्रायः सब रोगों पर हितकर है। कान के दर्द और ज़ुकाम में तो इसे हम ने भी आज़माया। पण्डितजी जैसी बतलाते हैं, ठीक वैसी ही यह गुणकारी औषध है। इस की १ शीशी २॥) में और आधी १।) में मिलती है।

मिलने का पता—

मैनेजर अमृधारा लाहौर।

साहित्यचर्चा।

१—दलजीतसिंह। यह एक ऐतिहासिक नाटक है। शिवाजी के घराने के, दलजीतसिंह वीर के वीरत्व को नाटक रूप में लिखा गया है। नाटक वीररस-पूर्ण है। साहित्य-दृष्टि से नाटक के पूरे लक्षण न होने पर भी यह पढ़ने योग्य है। हिन्दी में ऐसे नाटकों की बड़ी ज़रूरत है। हम, इस के लेखक बाबू कृष्णलाल वर्मा को बधाई देते हैं। अनुरोध करते हैं कि आप राजपूताने के वीरों में से भी किसी वीर का चरित लिखें। पुस्तक का साईज़ छोटा और पृष्ठ संख्या १४३ है। मैनेजर प्रेम महला कार्यालय, पोस्ट मोहना, ज़िला रोहतक से ॥) में मिलती है।

२—संक्षिप्त सचित्र जीवनी। हिज़हाइनेस महाराज सर प्रभु नारायणसिंह बहादुर, जी. सी. आई. ई. काशी नरेश की यह संक्षिप्त जीवनी है। जीवनी में जो बातें हुआ करती हैं, वह इस में भी हैं। इसे बाबू भवानीप्रसाद सिंह ने लिखा है पुस्तक के आदि में श्रीमान् काशी नरेश का दर्शनीय चित्र भी है। कागज़ और छपाई बड़ी अच्छी है। आकार मंझोला और पृष्ठ संख्या कुल मिला कर २० है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। हां, इस के प्रकाशक महाशय ने हमें यह लिखा है कि 'मनोरमा' के ग्राहकों को यह मुफ्त दीजावेगी। इस के लिये, आप को धन्यवाद! पर यह तो बतलाइये कि आप यह मालूम कैसे करलेंगे, कि पत्र-प्रेरक वास्तव में 'मनोरमा' का ग्राहक है या नहीं। उचित यह है कि आप 'मनोरमा' के ग्राहकों को नहीं, पाठकों को यह जीवनी मुफ्त देवें। मिलने का पता—पण्डित हरिप्रसाद शर्मा बरियापुर स्टेट बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORAMA REG. No. A. 755

अलंकार १] पौष १९७६, दिसम्बर १९१९ [ध्वनि ११

मनोरमा

1915-019

"समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"

(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक—

प्यारेलाल दीक्षित

और

रामकिशोर गुप्त (अलंकार शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वार्षिकमूल्य ३)] मनोरम-कार्य्यालय, मण्डी धनौरा, यू० पी० से प्रकाशित [प्रति संख्या ।=)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची।

[१] देवोत्थान—[लेखक—कविकुमार पं० महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य ... ५७१
[२] प्रार्थना—[लेखक—श्रीयुत किशोरीलाल ज़मींदार ... ५७२
[३] त्याग(गल्प)—[ले०पं०रामदेव तिवारी ५७२
[४] सन्ताप—[ले० पं० राधावल्लभ पाठक ५८१
[५] स्त्री शिक्षा-[लेखक-एक जिन्दादिल उर्दू कवि ... ५८१
[६] दमयन्ती का स्वयम्बर (३) ... ५८२
[७] आश्वासन—[लेखक पं० सिद्धिनाथ मिश्र ... ५९१
[८] महाकवि माघ—[ले० ला० सीताराम बी० ए०, रिटायर्ड डिप्टीकलक्टर ... ५९१
[९] हिन्दी में सामवेद-[ले० साहित्योपाध्याय पं० शिवदत्त त्रिपाठी काव्यतीर्थ ... ५९३
[१०] हिन्दी शिशुपालवध-[ले० ला० सीताराम बी०ए०, रिटायर्ड डिप्टीकलक्टर ५९४
[११] हिन्दी कादम्बरी ५९५
[१२] विविध विषय ६०१
[१३] साहित्य-चर्चा ६०३
[१४] मनोरम श्लोक-[ले० बा० केशवशरण गुप्त ६०४

—०—

आवश्यकता

धामपुर के हाईस्कूल के लिये बहुत ही शीघ्र एक हिन्दी टीचर की आवश्यकता है। वेतन १५) मासिक मिलेगा॥ प्रार्थना पत्र भेजने वाले महाशय को कम से कम काशी की प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए।

बाबू नानकचन्द मुख़्तार,
सेक्रेटरी, हाई स्कूल,
धामपुर, जि० बिजनौर

मनोरमा के नियम।

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्ययसहित इसका वार्षिक मूल्य ३) और एक संख्या का ।=) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढ़ाने तथा प्रकाशित करने, न करने का अधिकार सम्पादक को है।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धनौरा, यू०पी०" के पते से आने चाहियें। मूल्य तथा प्रबंध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर, मनोरम कार्य्यालय, मण्डी धनौरा, यू० पी०" के पते से आने चाहिएँ।

५—पत्रोत्तर के लिये टिकट आना आवश्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं छापे जायँगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उन्हें लेना स्वीकार भी करेंगे तो मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रसन्नतापूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध भी युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन।

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई	७॥)	प्रतिमास
१ पृष्ठ या दो कालम की छपाई	५)	"
आधा पृष्ठ या एक कालम की "	३)	"
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की	२)	"
१/८ पृष्ठ या चौथाई कालम की "	१॥)	"

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपाने वालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—मनोरम कार्यालय,
मंडी धनौरा, यू० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलंकार १ | पौष १९७६, दिसम्बर १९१९ | ध्वनि ११

देवोत्थान ।

(शार्दूलविक्रीडितछन्दः)

हे हे विश्वविधानकारण विभो ! त्रैलोक्यलीलापते !
सोये आप अनल्पकाल अब भी, क्यों हैं नहीं जागते !
तीरम्भोधि कहाँ रहा अब हरे!, है शेष शय्या कहाँ !
ऐसी नींद बड़ी कड़ी अब लगी, है योगनिद्रा कहाँ ॥१॥
हे हे पङ्कजनेत्र ! नेत्र अब तो, खोलो, सवेरा हुआ ।
लीरी सुन्दर साधना पवनका, है मन्द फेरा हुआ ॥
हीना दीनतरा विषण्णवदना, धेनुस्वरूपा मही ।
आई है शरणागता वह खड़ी, प्रत्यक्ष बम्बा रही ॥२॥
ऐसा भूल गये तुझे पशुपते ! गोपाल लीला सभी ।
मानो भेंट नहीं, नहीं हम रहीं, प्यारी तुम्हारी कभी॥
मिश्रीमाखन चाखना अब कहां, है धेनु सञ्चारणा ।
ऐसी निष्ठुर हाय क्योंकर हुई, दुर्दैवकी धारणा ॥३॥
माना काल करा रहा सब यहां, है काल भी आपसे ।
कैसा दुःखित देश हाय ! यह है, सन्ताप से पापसे ॥
देवो दिव्यदया सुमान्नति मिले, संसारका त्राण हो ।
होवे वैर विरोध शान्त सब का, सर्वत्र कल्याण हो॥४॥
हे त्रैलोक्यपते ! प्रभो ! अब हमें कर्तव्यता दीजिए ।
स्वत्वत्कर्ष सदा रहे हृदयमें, सच्ची कृपा कीजिए ।
कोई युक्तिविशेष भासितकरो, सन्मार्गका ज्ञान हो ।
विद्याबुद्ध विशुद्ध देशभर हो-ऐश्वर्य्य सम्मान हो॥५॥
हे हे मोहन ! एकबार फिर भी, वंशी बजा दीजिए ।
सूखे कुञ्जनिकुञ्ज मन्दिर सभी, शोभा सजा दीजिए॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोती है चिरकाल से फिर वही, श्रीभारत-श्री जगे।
हाय अच्युत! सौख्यवाल फिरभी, आपत्ति भारी भगे॥६॥
रोगाक्रान्तकलेवरा सब यहां, हा देशवासी हुए।
स्वार्थानन्दपरायणाश्च बहुधा खाने विलासी हुए॥
हे हे देवि! वसुन्धरे! अब कहां तेरा गया साज है।
हा हा भूरि धनुर्धरे! अब हुई क्या दुर्दशा आज है॥७॥
यत्रासीद्वरसिंहगर्जनघटा, देखो शृगालावली।
यत्रासीत्ससुमेरुरवे विदितः, हैं कौड़ियां भी भली॥
पूर्वं येन विकाशितम् अब वही अज्ञान में मग्न है।
कालः किन्नकरोति, वैभव सभी, प्राचीनता भग्न है॥८॥
यस्मिन्भारतवर्षनामनि, रहे थे चन्द्रवर्ती कभी।
तस्मिन् कालवशेन, कायर हुए हैं देशवासी सभी॥
स्वातन्त्र्याम्बिगतम्, पराश्रय तथा सारे पराधीन हैं।
उच्चत्वन्त्रिदिवं गतम्, अबसभी दैन्यार्त हैं हीन हैं॥९॥
नान्नन्तत्र निरन्तरम्, दुख महा खेती किसानी हुई।
शून्यं सर्वमिहाभवत्, विभव को देखो कहानी हुई।
सूर्यश्चैव शशी स एव, अब क्या है भारत श्री वही॥
स्वामिन्! प्राणिपते! तुम्हें प्रिय रहीथी पुण्यपूर्णा मही॥१०

महेश्वरप्रसाद शास्त्री

कलाज्ञान, विज्ञान, आदि से हीन हुए हैं।
बल, कीरति अरु धन से भी अति दीन हुए हैं।
शीत काल में दीन जनों को वस्त्र नहीं है।
भूँखों मर कर प्राण त्यागते और कहीं हैं॥
भारत की वह कौमुदी नष्ट भ्रष्ट सब होगई।
भलमंसी सब हिन्द की नाथ धूल में मिलगई॥३॥
कुटिल फूट के भाव भरे हैं सब की रग में।
छोड़ नीति का मार्ग चले अन्यायी मग में॥
सत्वों से अतिहीन हुए हैं पापी हम ही।
जीते ही मरचुके नाथ! अब देखो तुमहीं॥
जो जो दुख हम को दिये शत्रू को मत दीजिये।
अभय दान देकर हमें पुनि नवजीवित कीजिये॥४॥
जो दीन-दयालु नहीं कछु कर पाओगे।
तो हम दीन-अनाथों के क्या काम आओगे॥
विश्व बीच में भारत सब का मुकुट बना था।
बल, बुद्धि, धन, विविध कला की खान बना था॥
वही अभी चिल्लारहा सुनते क्यों नहीं आजहो।
क्या जन्मभूमि प्यारी नहीं धन्य २ यदुराज हो॥५॥

किशोरीलाल ज़मींदार

प्रार्थना।

षट्पदी।

मङ्गलमय! भगवान्! भक्त-मन-रञ्जन-हारे।
दीन-बन्धु! विश्वेश! दुष्ट-दल--भञ्जन-वारे॥
करते, नाथ! पुकार भारतीय कालान्तर से।
त्राहि त्राहि का शोर मचा है देशान्तर से॥
द्रुपद-सुता की लाज को राखन हारे आप हैं।
भारत की लज्जा रखो पाय रहा सन्ताप है॥१॥
जब जब भारत अन्धकूप में गिरने पाया।
तभी दौड़ कर प्रभुवर! तुमने इसे बचाया॥
घोर अंध-सागर में भारत डूब रहा है।
उत्थति का अब पतन हुआ बहु क्लेश सहा है॥
व्यभिचारी, रोगी, छली, बना मूढ़ का दास है।
झूंठ व्यसन में सन रहा हुआ इसी से नाश है॥२॥

त्याग।

जीवन में मनुष्य को कितनी ही विपत्तियों का सामना करना पड़ता है-कितनी ही आपदाओं के ग्रास से अपने को बचाना पड़ता है-कठिन परिश्रम करना पड़ता है-और दुःख सहने पड़ते हैं-तब कहीं मनुष्य बड़ा होता है। राजा के भाग्य में जो लिखा था वह विचारा उसे न जानता था। विपद-बाधायें अनेक रूप धरके मनुष्य के पास दिखाई देती हैं राजा के पास वे विवाह की रोशन चौकी बजा कर, आतिशबाज़ी और मसालों का प्रकाश करके और चुनरी का घूँघट काढ़ कर बहू का रूप धरके आई। जिस रात्रि से अशिक्षिता ग्राम्य-बालिका गङ्गा के साथ राजा का विवाहसूत्र ग्रथित हुआ-उस रात्रि से-उसी मुहूर्त से, उसके जीवन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब आशायें-सब उद्यम कहीं दुर्भेद्य अन्धकार में मिल गये। उसने देखा कि एक बालिका अपना अवगुण्ठनावृत मुख व्यादान करके उसके जीवन के श्रेष्ठ आदर्शों को खाने के लिये आई है। जीवन के प्रभात में भगवान् की यह शान्ति राजा को बड़ी ही दुःखदायक जान पड़ी। गङ्गा का कुछ दोष न था। दोष था केवल उसके भाग्य का। रूप तो अच्छा था, गुण भी था कि नहीं। उसका परिचय किसी ने न लिया। जो हो-रूप गुण था या न था-गङ्गा अपने जीवन के एकमात्र आराध्य देवता स्वामी के सभी कामों में विघ्नस्वरूप होगई। किन्तु वह कुछ समझ न सकी-केवल राजा, अपनी दुर्दशा समझ कर मर्माहत होगया।

(२)

राजा, जिस समय पहिले प्रयाग में आकर कालिज में भरती हुआ था, वह आज बहुत दिन की बात है। राजा के पिता अपने ग्राम में ही रहते थे-पठन पाठन की सुविधा के लिये राजाको प्रयाग भेज दिया था।

पढ़ने की अवस्था में अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़कर, विशाल प्रयाग नगर में नित्य नूतन थियेटर देख कर, देश विदेश की कहानी पढ़कर, राजा अपने नवलब्ध ज्ञान-भाण्डार को भली प्रकार कर्तव्य में न ला सका। इतिहास के पृष्ठों में जब वह पढ़ता कितने ही दरिद्र असहाय अनाथ बालक अपने धैर्य्य और मन के जोर से संसार में श्रेष्ठ स्थान पाकर अपनी अमरकीर्ति-गाथा को, देश देशान्तरोंमें प्रचार कर गये हैं-कितनी ही दीना नारी समग्र देश की पूजनीया होगई हैं-कितने ही पितृ-मातृहीन शिशु, धूलि में लोटते हुए, मनुष्य होकर अन्तमें यशोमहिमा से अपने को और समस्त जगत् को धन्य कर गये हैं। उस समय राजा अपने मन को खो देता था। पढ़ते पढ़ते उसे जान पड़ता था कि उसकी आँखों के सामने वही पुरानी कहानियाँ दृश्यमान हो रही हैं। केवल यही नहीं—वह जितना ही नवीन ज्ञान पाने लगा उतना ही उसका हृदय उनके प्रति आकर्षित होने लगा।

राजा बोर्डिङ्ग में अवश्य रहता था किन्तु वह किसी के साथ न मिलता जुलता-कालिज से चल कर अपने घर में आजाता फिर किसी बहाने से भी कोई उस को घर के भीतर से बाहर न निकाल सकता था। घर में बैठ कर वह थोड़ा पढ़ता, थोड़ा सोचता। पढ़ते-पढ़ते सोचते-सोचते राजा एक असाधारण व्यक्ति की तरह घर में रहने लगा। सभी लड़के उसको Sentimental कह कर हँसी करते थे, पर वह उन की बात सुनता भी न था।

अन्त में सोचते सोचते राजा एक सिद्धान्त में आगया। वह पुरातन महावाक्य है "What man has done man can do" का वह बारम्बार स्मरण करने लगा। मन ही मन में कहा "मैं भी तो एक आदमी हूं—अपने जीवन को सामान्य अकिञ्चित्कर कार्य्य में क्यों नष्ट करूँ? मैं भी समग्र देश में ऐसा कार्य्य करने के लिये क्यों न सामर्थ्यवान् होजाऊँ? जिससे वंश परम्परा में मेरा दृष्टान्त सब के पक्ष में दुर्लभ दृष्टान्त हो रहे।" यही नहीं एक दिन सन्ध्या के समय उस ने छत पर बैठ कर ऊपर नीलाकाश—चारों ओर अट्टालिकाश्रेणी-नीचे पुण्य-पवित्र भारतभूमि—सब को साक्षी कर के उसी समय यह प्रतिज्ञा भी करडाली।

राजा का ऐसा महान् उद्देश्य बहुत ही अच्छा था। किन्तु उसके कान में कोई कह गया। "बाबू! सावधान! विवाह इन सब कामों में बाधक है—विवाह न करना।"

सारी बातें इसी जगह से चलीं। वह बातें हृदय में जमा लीं और प्रतिज्ञा करली कि जितने दिनों तक एक मनुष्य की तरह मनुष्य न हो सकूँगा, जबतक अपने उच्च आदर्श-लाभ के मार्ग में यथेष्ट अग्रसर न हूं तब तक प्रकृत सहधर्मिणी न पाऊँगा—तब तक विवाह न करूंगा। प्रतिज्ञा के साधने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आवश्यकता होगी तो नभो नक्षत्र मण्डल भी हिला दूँगा।

किन्तु हाय! उसकी प्रतिज्ञा न रही—बी० ए० पास करके जब वह कलकत्ते के मेडिकेल कालिज में पढ़ने गया तब ही उसके पिताने उसका विवाह सम्बन्ध स्थिर कर लिया। इस नवीन घटना के तीव्र श्रोत में पड़कर गति स्थिर करनेके पहिले ही उसने अपने को विवाह की भंवर में पड़कर गोता खाते देखा। अब वह अपनी यात्रा पूरी नहीं कर सकेगा।

बनावके साथ ही साथ नौका पार लगाने की वह चेष्टा करता—किन्तु उसके गले में एक बड़ा जबरदस्त पत्थर बँधा था—वह पत्थर गङ्गा है। मग्नप्रायः राजाने किसी प्रकार बड़े कष्टसे उस पत्थर को छोड़ फेंका।

(३)

बहुत दिन बीत गये हैं-राजाने अपने जन्मकी सुख-स्मृति, यौवन की उच्च आशा, सभी दुर्भेद्य रहस्य के भीतर खादी। ऐसी अवस्थामें जो हुआ करता है इस क्षेत्रमें वही हुआ। राजा का विवाह हुए प्रायः छै वर्ष हुए—इस दीर्घ छै वर्ष के समय में स्त्री से मिलना तो दूर रहा अबतक उसको एक पत्र भी नहीं लिखा। वह घर में बहुत नहीं जाता—पिता बुलाते तब भी समय का अभाव आदि बहुतसे बहाने लिख देता, जब कभी घर जाता—पहिले गङ्गा को उसके पीहर भेजने का बन्दोबस्त कर देता था।

राजा सब क्षमा कर सकता था, किन्तु जब वह सोचता कि, जीवनके पहिले जो एक सामान्य प्रतिज्ञा लेकर कर्मक्षेत्रमें अग्रसर होना स्थिर कर लिया था उसे यदि न रख सकूँगा, तो भविष्यमें किस प्रकार उस कार्य के सफल होनेकी आशा हो सकती है। वह जितना ही सोचता उतना ही गङ्गा के ऊपर, परोक्ष में पिताके ऊपर उसे क्रोध आता। वह हृदयसे माया ममता सब एक एक विसर्जन करके, अचल, अटल हो, बैठ रहा।

राजाके बन्धु बान्धव विशेष न थे। माधव उस का सहपाठी था। यदि किसी से वह कुछ कहता, तो उससे ही कहता। उसका विवाह होगया है यह बात माधव जानता था, वह घर नहीं जाता, आजतक उसकी स्त्री का एक भी पत्र उसने नहीं देखा—यह सब बातें राजा के नवविवाहित जीवन में जो बड़ी ही रहस्यमयी थीं, उन्हें माधव खूब जानता था।

एक दिन राजा कालिजसे आकर अपने घरमें सदैव की भाँति घोर चिन्तामग्न होकर बैठा था। ऐसे ही समय में माधव आगया। राजाने उसकी ओर देखा ही नहीं। बहुत धीरे २ वह राजाके पीछे जाकर खड़ा होगया, माधवने हाव भाव देखकर मनमें कहा "क्या वही सवार है?"

धीरे धीरे बुलाया "राजा।"

सोते हुए की भाँति चौंक कर राजाने कहा—"कौन! माधव! आओ, बैठो।"

साधारण कुशल प्रश्नोंके अनन्तर माधवने राजा को एक बहुत ही दुःखदायक बात सुनाई। कहने लगा "राजा! आज तुमसे एक बात पूछूंगा-बताओगे?"।

राजाने कहा-"क्या बात है बिना जाने कैसे कहूँ कि बतलाऊंगा कि नहीं।"

माधव ने हँस कर कहा—"अरे भाई! मैं कोई ऐसी बात नहीं पूंछता कि जिस में तुम्हें बतलाने में सङ्कोच हो-तुम्हारे निज के सम्बन्धमें पूछूंगा।"

राजा ने चकित होकर कहा "मेरे सम्बन्ध में?"

"हाँ तुम्हारी ही बात। इधर देखो! भाई! प्रायः छै वर्ष हुए हम तुम एक साथ रहते हैं-एक कालिज में पढ़ते हैं-किन्तु इन छै वर्षों के भीतर मैं तुम्हारे मनका भाव कुछ भी न समझ सका—तुम्हारा हावभाव, तुम्हारा कार्य्यकलाप एक कठिन पहेली से ढका सा जान पड़ता है।"

राजा ने कहा—"क्यों ऐसी क्या बात तुम ने देखी? मैं तो बड़ा ही साधारण मनुष्य हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधव ने कहा--"अच्छा तुम्हारा विवाह हुआ है—बाप मा घर में रहते हैं—तब भी तुम घर क्यों नहीं जाते बतला सकते हो ?"

राजा चौंक उठा—उस ने कुछ उत्तर न दिया।

माधव ने कहा—"चुप्पी क्यों साधली ?"

राजा चुप होगया। बहुत देर बाद एक लंबी सांस लेकर वह बोला--"उसका कुछ कारण है।"

माधव बोला "वही तो सुनना चाहता हूं।"

राजा अपनी मर्म कथा किसी को भी जतलाने में राजी नहीं होता था, इसलिये आज माधव ने जब किसी तरह न छोड़ा तब विवश होकर राजाने अपने जीवन की पूरी कहानी उस से कह सुनाई।

कहानी राजा के पक्ष में चाहे गुरुत्वपूर्ण हो पर माधव ने उसे बहुत ही मामूली समझी। राजा की बात सुन कर माधव कुछ विरक्त सा हो कर बोला-"यह बात ! वही भारतीय वीरों के दाम्पत्य जीवन का चिरविख्यात इतिहास है। वाह! तुम बड़े बहादुर हो !!! घर जाओ बाबू। सभी काम घर में रहकर आरम्भ किये जाते हैं। इस प्रकार धोखा देकर और दायित्वशून्य होकर बड़े नहीं हो सकते। संसार में रहकर, आत्मीय स्वजनों के साथ रहकर, वहां के सारे कर्त्तव्य पालन करते हुए, सारी विपत्ति बाधाओं को दूर करते हुए, जो बड़े हो सकते हैं, वही यथार्थ में बड़े हैं। बड़ा कौन है ? जो वन में जाकर संन्यासी होजाय, या जो संसार में रहते हुए दश जनों को भोजन वस्त्र देकर मनुष्य बनावे ? बड़ा कौन है ? जो बोर्डिङ्ग में रह कर घोर चिन्ता में दिन काटे और अपनी निरपराध स्त्री के जीवन का समस्त सुख छीन ले, या जो अपनी स्त्री पुत्र को सुखी करे माता पिता को सुखी करे देश का उपकार करे ? यह बेहूदापन छोड़ दो।"

अब सहन न होसकी—माधव की बातें राजा के कान में विष की तरह लगती थीं। वह चीत्कार करके बोल उठा—"बस! मैं तुम्हारा लेक्चर सुनना नहीं चाहता। लेक्चर सुनने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं। मैं आशा करता हूं कि मेरे सम्बन्ध में अब तुम फिर कभी कुछ कहासुनी न करोगे।"

मेरे उच्च आदर्श का मर्म, उच्च आकांक्षा की बातें तुम क्या जान सकते हो ?

माधव ने हँस कर कहा--"अच्छा देखा जायगा।"

उस दिन की घटना का फल यह हुआ कि, माधव ने जो जो सुना था वह बोर्डिङ्ग में सब से अलङ्कार समेत कह दिया। हँसी ठट्ठा, परिहास राजा को सहन न हो सका। जब कोई उपाय न देखा तब बिना किसी को जतलाये चुप चाप स्थान परिवर्त्तन कर दिया।

(४)

छः वर्ष काल के अतीत गह्वर में लुप्त होगये हैं। गङ्गा ने यह छै वर्ष अपने हृदय में पत्थर बाँध कर काटे हैं।

वह अशिक्षिता सामान्या ग्राम्य-बालिका—उसके क्षुद्र हृदय में भविष्य का जो एक अस्पष्ट चित्र स्वप्न की भाँति उसके जीवन प्रभात में कुछ खिल उठा था, हताशा का कठोर हाथ वह धीरे २ पोंछ लेगया। भविष्य जीवनकी ज़रासी भी उच्चकांक्षा, कभी भी उस के मन में स्थान न पाती—वह सामान्या बालिका वधू, उस के मन में उच्चाआशा कुछ भी नहीं थी। यन्त्र की भांति सास ससुर की आज्ञा पालन करना ही वह अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं की सफलता समझती थी। वैदेशिक इतिहास में वीराङ्गनाओं की कीर्ति उस ने कभी नहीं पढ़ी, उस आदर्श के ऊपर उस का मन कभी चलायमान नहीं हुआ। पितृगृह में पिता माता को छोड़ कर सुसराल में सास-ससुर को देख कर उन्हीं का अपना एकमात्र आदर्श समझती थी। सुख—दुःख की छवि कभी उसके हृदय में न आई। वह न कभी दुःखसे दुखी होती और न कभी अधिक आनन्द में विकल ही होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात न थी कि पति के सम्बन्ध में वह न सोचती हो। अब तक उसने पति के साथ कभी बात नहीं की—स्नेह और सहानुभूति पाना तो दूर रहा, एक मीठी बात भी नहीं सुनी-उसने दाम्पत्य जीवन का चित्र उस प्रकार के भाव में ही आँक रक्खा था। पति के दर्शन न होने से उस के मन में जब कष्ट होता तो वह सोचती "पढ़ाई के कारण वह नहीं आसकते—इस में क्या हानि है?" जिन जिन बातों को सब स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार कहते हैं उन बातों को वह आवश्यक समझती थी वह सरल हृदया थी इसी लिए जान पड़ता है कि वह इतना सह सकी, यदि कभी इशारे में वह अपने निर्दय स्वामी का मनोभाव जान सकती तो उसका कोमल हृदय इतने दिनों में पिस जाता या नहीं, कौन जाने?

(९)

राजा, इस समय नये घर में रहता है। इस घर में आकर आजतक उसने पिताको कोई सम्वाद नहीं भेजा। इसका कारण यही था कि इस बार जो हो सकेगा—इस व्यापार को वह अब अपने जीवन का कण्टक बना कर न रक्खेगा। स्त्री पुत्र के साथ संसार यात्रा प्रतिपालन करना उससे न होगा, यह तो वह पहिले ही स्थिर कर चुका है। अन्तमें उसने अपना कर्तव्य देखा-यदि उस पाप का बोझा अपनी गर-दन से उतारना चाहता है तो उसे देश छोड़ना होगा। यह सोच कर उसने स्थिर कर लिया कि ज़रा सी सुविधा पाकर ही विदेश चला जाऊँ—वहाँ जाकर मनुष्य की भाँति जीवन बिताऊँ। यदि अपनी अवस्था उन्नत कर लूँ तब देश लौटूँ, नहीं तो नहीं। उसकी भाँति सामान्य लोग तो महामारी में प्रतिवर्ष लाखों मरते हैं—महामारी में मर के क्या होगा? उसकी अपेक्षा जहाँ मनुष्य मनुष्य की भाँति मरना जानते हैं—वहीं जाकर मरना अच्छा है। यह प्रस्ताव पिता के कानों में पहुंचनेसे शायद किसी प्रकार का विघ्न पड़े—यह सब झंझट है। यथा समय संवाद देना, स्थिर कर लिया।

(६)

जीवन का कष्ट किसे कहते हैं यह गङ्गा को जतलाने के लिये इस बार उसका ससुर बीमार हुआ। बहुत दिनों से उसे दम आती थी, अब बीमारी ने ज़्यादा ज़ोर पकड़ लिया। अपने जीवनव्यापी इस रोगके लिये ही राजाको उस ने डाक्टरी पढ़ने के लिये भेजा था। राजा के डाक्टर होजाने से इस रोग के लिये उसे सुचिकित्सा की चिन्ता न रहेगी वह आशा तो ख़ूब ही पुरी! संसार में उसके एकमात्र पुत्रवधू और स्त्री थी। राजा की अनु-पस्थिति में उसने गङ्गा को ही अपने पुत्र की जगह समझा। एकमात्र पुत्रवधू गङ्गा सास ससुर दोनों ही के पूर्ण हृदय में अधिकार रखती—उनकी सारी सहानुभूति, स्नेह और प्रेम के ऊपर वह एकछत्र आधिपत्य करती थी।

सास ससुर के आनन्द में गङ्गा भी आनन्दित थी। ससुर की बीमारी में गङ्गा बड़ी चिन्तित हो गई-उस का कोमल अन्तःकरण व्यथित होने लगा। पहिले तो वह उठकर घूमते फिरते थे, अब की डाक्टर ने वह भी मना कर दिया है।

ऐसी अवस्था में, राजा को घर आने के लिये लिखना उन्होंने बहुत ही आवश्यक समझा। वृद्धने रोगशय्या पर पड़े पड़े स्वयं ही पत्र लिखा—"बेटा, मैं बहुत बीमार हूं, बहुत जल्दी घर आओ।" किन्तु अन्यान्य पत्रों की भाँति इस पत्र का भी उत्तर न आया। फिर पत्र लिखा, उसका भी उत्तर न मिला। दो पत्रोंका उत्तर न पाकर वह सब बड़े ही चिन्तित हुए। इस प्रकार पत्र का उत्तर न पाने का विशेष कारण कोई निश्चय न कर सका। कुछ दिन ऐसी अवस्था में कटे सही, किन्तु वृद्ध की पीड़ा का कम होना तो दूर रहा धीरे २ बढ़ती ही गई। एक तो अपना शरीर जीर्ण, उसके ऊपर पुत्र का सम्वाद न पाने से अतिशय चिन्तित होकर राजा का पिता, क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाय, ठीक न कर सका। अन्तमें उसने कलकत्ते जाना ही स्थिर किया।

गङ्गाने अपने बूढ़े रोगी ससुर की सच्चे सुपुत्र की भाँति रात दिन परिश्रम के साथ सेवा शुश्रूषा करके उसे मार्ग में कोई कष्ट न होने दिया। वह जिस प्रकार ग्राम से अपने ससुर को कलकत्ते ले आई उसका वह कार्य यथार्थ में प्रशंसा के योग्य है। स्टेशन पर पहुंच कर स्वयं ही कुली बुलाकर असबाब वगैरः उसने उठा दिया। शम्भू नाम का नौकर साथ में था। उसका लड़कपनका सा व्यवहार देख उसके दो थप्पड़ लगाये और उसे ज़रा देर के लिये भी अकेले न छोड़ा। गङ्गा का हाव भाव देख कर उसे कौन कहेगा कि वह ग्राम्य बालिका है, कौन कहेगा कि वह अशिक्षिता है—वह "संसारका कुछ नहीं जानती" यह तो बेचारी घूँघुट से ढकी भारतीय बधू है। वृद्ध ससुर अपनी बहू का यह कार्यकलाप देख कर मुग्ध हो गये। कहने लगे "देवी, तू ही मेरा लड़का है।"

(७)

उस दिन सन्ध्या समय राजा अपने नवीन घर के बरामदे में एक कुरसी पर बैठा सदा की भांति अपने अतीत जीवन के इतिहास के पन्नों को एक एक करके उलट पलट कर देखता था। पहिले पढ़ी बाल्यकाल की कथा। फिर प्रयाग का कालिज। उसके बाद डाक्टरी पढ़नेके लिये कलकत्ते का आगमन। उस समय अपने जीवन की दीक्षा। अपने हृदय की एकमात्र आदर की सामग्री उच्च आशा का विकाश। और पृथिवी में कर्मवीर होने की एक तीव्र आकांक्षा का जागरण, सभी बातें एक एक करके उस के मन में उदय होने लगीं। उसके बाद उसने पढ़ा—वही भयानक दृश्य-अपने जीवन का हलाहल—अपना विवाह।

अब तक राजा सोच-सोचकर ही शान्त हुआ करता था पर, अब करने का निश्चय किया। उस दिन को अन्तिम दिन समझ कर सोची हुई बातों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये हृदय को मज़बूत बनाया। एक बार उसके मनमें आया—"अच्छा क्या इसका कोई उपाय नहीं? अगर विवाह ही कर लिया है तो क्या उस पाप का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता? स्त्री तो सहधर्मिणी है-यह शास्त्र कहते हैं। जीवन में उसकी सहायता तो बहुत से कामों में हो सकती है-तब क्यों वृथा कष्ट पा रहा हूं?" इतना सोचते ही, वह चौंक उठा। क्या अपने ही हाथ से-वह ज़हर खायगा? नहीं नहीं। उसका मन फिर दृढ़ हुआ, प्रतिज्ञा की बात याद आई। वह बोल उठा "यह नहीं हो सकता।"

फिर उसने सोचा, यह स्त्री क्या वही स्त्री है? अशिक्षिता ग्राम्यबालिका। विवाह की रात्रि में अवगुण्ठनावृता गङ्गा की चकित दृष्टि याद आते ही उसको और भी घृणा होने लगी।

सन्ध्या चली गई है, मार्ग में गैस के लेम्प जल रहे हैं, राजा अब भी उसी बरामदे में बैठा हुआ इस विषय की आलोचना कर रहा था। इस बार वह पिछली बार की तरह तीन बार बोल उठा—"यह नहीं हो सकता-यह नहीं हो सकता-यह कदापि नहीं हो सकता।" एक घोड़ागाड़ी के 'घुर' 'घुर' शब्द के साथ उसकी यह निभृत विलापध्वनि मिल गई।

(८)

कलकत्ते में आकर रहते हुये एक महीने के लगभग हुआ, राजा का कोई हाल अब तक नहीं मिला। राजा का हाल जानने के लिये पिता बड़े ही व्याकुल होउठे। पहले राजा जहां रहता था वहां नौकर को कई बार भेजा पर कुछ पता न चला। यह हाल देख कर जान पड़ता था कि वृद्ध को बड़ा ही आश्चर्य है। चिन्ताजीर्ण होने से उस के शरीर की अवस्था इस समय बड़ी ही ख़राब थी। गङ्गा, जिस समय कलकत्ते आई उस समय ससुर के बीमार होते हुये भी एक गुप्त आनन्द की आशा में उसका मन खिल उठा था। उसने मन-ही मन में एक बार सोचा कि मेरे ही सुख के लिये जान पड़ता है कि भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां लिवा लाये हैं। यहीं तो उसका स्वामी रहता है। इस बार तो वह बहुत ही समीप आगई है। एक अपरिचित आनन्द का आवेग गङ्गा के हृदय के बीच अदेख में बह गया।

बहुत उपाय करने पर भी जब राजा का कुछ पता न चला तब पिताने एक बार अपने आप पता लगाने का निश्चय किया। उसके मन में विचार होने लगा कि चिट्ठियां डाक में अवश्य ही खोगई हैं, नहीं तो ऐसा न होता।

एक दिन उसके ससुर दुपहर के समय जब सोते थे तब उसने धीरे२ जाकर नौकरको बुलाया-"शम्भू!"

शम्भू, शम्भू ही की तरह सोने वाला है। जल्दी२ उठकर उत्तर दिया "हां"।

गङ्गा ने कहा "तू एक बार उसी घर में जा तो। यदि उनसे भेंट न हो तो और किसी से पूंछ कर उनका हाल मालूम कर आ।"

सन्ध्या का समय था। शम्भू लौट कर आया। गङ्गा ने जल्दी २ उसके पास जाकर पूँछा-"क्यों शम्भू, भेंट हुई?"

"जी नहीं।"

गङ्गा, ज़रा चिन्तित हुई, सोचा, 'ठीक है।' फिर पूँछा—"और किसी से भेंट हुई?"

"जी हां, एक बाबूके साथ मुलाकात हुई थी।"

जब शम्भू बोर्डिङ्ग गया तब माधव वहां उपस्थित था। उसने राजा के सम्बन्ध में यथासाध्य सब हाल बतला दिया था। राजा के मन की अवस्था को उसके पिता के कर्णगोचर करा देने के लिये शम्भू को अच्छी तरह समझा दिया था। गङ्गा ने शम्भू की बात सुन कर फिर पूँछा—"उन्होंने क्या कहा?"

"उन्होंने कहा राजा बाबू यहाँ नहीं रहते। और उन्होंने कहा कि—" (कहते कहते वह चुप हो गया)

"क्यों रे! चुप क्यों हो गया।"?

तब भी उसने कुछ न कहा। गङ्गा ने उत्कण्ठित होकर फिर कहा—"क्या है कहता क्यों नहीं।"

कुछ २ डरता हुआ शम्भू बोला "जी, उन्होंने कहा कि राजा बाबू आप के ऊपर खफ़ा होकर शायद कहीं चले गये हैं। और अब शायद घर भी न आवें।"

शम्भू की बात सुन कर अमङ्गल की आशङ्का से गङ्गा व्याकुल हो उठी। उसने स्वप्न में भी ऐसी बात सुनना न सोचा था। वह क्षण भर के लिये ज्ञानशून्य सी होगई। होश में आकर नौकर से अपने मन का भाव छिपाने के लिये कहने लगी—"किस ने तुझ से यह बातें कहीं? किसी काम का नहीं है—जिस काम को भेजो कभी तुझ से वह न होगा।"

उस रात्रि में गङ्गा को नींद न आई। किन्तु इतने दिनके अन्ध विश्वास के विरुद्ध एक सामान्य नौकर की बात ज़रा भी नहीं ठहर सकती थी। मन में सोचा "यह बेवकूफ़ सा तो है ही शायद किसी ने मज़ाक़ की हो।"

आज तक तो उसका कोई निज का दोष जान नहीं पड़ता जिसके लिये उसका स्वामी उसके ऊपर क्रुद्ध होकर गृहत्यागी हो। इन बातों को झूँठी बनाकर भूल जाने की चेष्टा की।

किन्तु हज़ार उपाय करने पर भी इस चिन्ता ने गङ्गा को बहुत ही व्याकुल कर डाला। फिर सोचने लगी—यह कैसे होगा? जिसके लिये जीवन के सारे सुख त्याग दिये हैं—वह कैसे अपने मन में यह सोच सकता है? अब तक जिसके ऊपर मैं हृदय की श्रेष्ठ भक्ति, प्यार अर्पण करती आरही हूँ-वह इतना निर्दयी है?

अन्धे की तरह वह अपने स्वामी की भक्ति करती आरही है, विश्वास करती रही है। आज कभी वह मनका भाव ऐसा बनाकर गृहत्यागी नहीं होसकता। निस्तब्ध रात्रि में सोते २ वह कितने ही आकाश पाताल सोचने लगी। अन्त में उसने सोचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात ठीक भी हो सकती है "इसीलिए जान पड़ता है वह घर नहीं आते--इसीलिए जान पड़ता है कि वह पत्र नहीं लिखते।" सन्देह-कीट उसके मन में घुस गया। सारे दिन के परिश्रम के बाद, ससुर की बीमारी की चिन्ता के ऊपर, यह चिताक्लेश, गङ्गा को बड़ा ही दुःखदायक जान पड़ा। जीवन भर में आज उसने यह दुःख पाया है, स्वामी के लिए इतना दुःख उसने कभी अनुभव नहीं किया। सोचते सोचते गङ्गा के दोनों नेत्र जल से लबालब भर गये।

गङ्गाको नींद आगई थी; हठात् एक कातर स्वर में उसकी नींद टूटगई। उठकर देखा तो ससुर को बड़े जोर से बुखार चढ़ा है, वह प्रलाप कर रहे हैं। गङ्गा की आँखों से पानी गिरने की तयारी हुई। ससुर के सिरहाने जाकर धीरे धीरे बैठ गई और पसीने से भीगे हुए मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

"कौन! गङ्गा!-आओ देवी। राजा, आया?"

काँपते हुए स्वर से गङ्गा ने कहा "नहीं"।

फिर पूछा "राजा आया है?"

गङ्गाने फिर कहा "नहीं"।

गङ्गा के नेत्र पानी बरसाने से न माने-दो बूंदें वृद्ध के उत्तप्त ललाट के ऊपर भी गिर पड़ीं। वृद्धने चौंक कर पुकारा—"देवी—गङ्गा!"

गङ्गाने भक्तिपूर्ण कण्ठसे उत्तर दिया-"क्यों!"

"रोती हो?"

रुद्ध कण्ठमें गङ्गाने कहा--"कहां? नहीं तो।"

(९)

कलकत्ते की स्टीमर-कम्पनीवाले प्रायः डाकूर के लिये विज्ञापन दिया करते हैं। बड़ी चेष्टा करके राजाने एक जहाज में डाकूरी के काम में नौकरी करली। विदेश यात्रा का सभी प्रबन्ध ठीक करके उसने स्थिर किया कि पिताको खबर दूँ। गङ्गा को उस ने कभी चिट्ठी नहीं लिखी। उस दिन अन्तिम चिट्ठी उस को भी लिखी। यात्रा के चार दिन पहिले उसने अपने गांव के पतेसे दो लिफाफों में दोनों चिट्ठी बन्द करके डाकमें डाल दीं, और मन ही मनमें सबसे सदा के लिये विदा मांग ली। वह उस समय यह नहीं जानता था कि मेरा पिता मृत्यु के निकट पहुंच गया है।

गङ्गाके ससुर की बीमारी जिस रात को बहुत बढ़ गई थी उसके दूसरे दिन सबेरे दो लिफाफे गङ्गा को मिले। गङ्गा ससुर की बीमारी में चिट्ठी पत्री वही पढ़ा करती थी। दोनों चिट्ठियों को उसने देखा कि उसके ग्राम में होकर फिरती हुई आई हैं--एक उसके नाम, दूसरी उस के ससुर के नाम थी। गङ्गा ने पहिले अपनी चिट्ठी खोल कर पढ़ी—

देवि! तुम्हारे साथ मेरा सामाजिक नियम से सम्बन्ध हुआ था सही, किन्तु मेरे हृदय ने तुमको कभी पत्नीरूप में ग्रहण नहीं किया। मालूम होता है कि यह बात तुम पहिले ही से जान चुकी थीं। मेरा जीवन केवल तुम्हारे ही कारण विषमय हो गया है, किन्तु मैं अब दुःख की अन्तिम सीमा में आपड़ा हूँ, इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए एक ही उपाय मैंने स्थिर किया है-देश छोड़ कर चला जाना। भगवान् की कृपा से वह सुभीता भी होगया है—आगामी बृहस्पतिवार सन्ध्या समय मैं एस०एन० कम्पनी के जहाज में विलायत जाता हूँ। देश में लौट आऊँगा या नहीं इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। माता पिता से प्रणाम कहना। तुम मेरी याद भूल जाना। इति

तुम्हारा—

राजाराम।

सब चिट्ठी पढ़ चुकनेपर गङ्गा भय से काँप उठी।

ससुर की चिट्ठी खोली—उस में लिखा था—

पिता जी!

आपने ही मेरा जीवन खराब किया। असमय में विवाह करके मेरे जीवन का व्रत नष्ट कर दिया। दोष आप का नहीं, मेरे भाग्य का है। यह दोष मिटाने के लिये मैं देश त्याग दूंगा। आप के अरो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँजी के चरणों में सहस्रवार क्षमा प्रार्थना करके मैं आप लोगों से सदैव के लिए विदा माँगता हूँ। आज से सोच लेना—राजा मरगया है। इति

हतभाग्य—

राजा

दोनों चिट्ठी पढ़ कर गङ्गा ने किसी से कुछ नहीं कहा। एक ऐसा शोक होता है जिस में रोते नहीं बनता—तब फिर सारा संसार घोर अन्धकार में आच्छन्न जान पड़ता है। गङ्गा की भी ठीक यही दशा हुई।

उसका ससुर मृत्यु की शय्या पर सोरहा है। उसके शोक मनाने का यह समय नहीं है। गङ्गा ने फिर छाती मजबूत की—दोनों चिट्ठी छिपा रक्खी—फिर ससुर की रोग-शय्या की बगल में जाकर कहा—"दादा! आप का तबीयत अब कैसा है?"

उन के ज्वर का अब भी बड़ा प्रकोप है—अब भी 'राजा' 'राजा' कहके रोरहे हैं—गङ्गा की बात के जवाब में कहा "दवा! राजा आया है?" गङ्गा ने चुप चाप आँसू पूँछे।

आज हो तो बृहस्पति है न? गङ्गाने दुपहरको फिर एक बार चिट्ठियाँ पढ़ीं। हाँ ठीक है? नीचे नौकर सोता था-गङ्गा धीरे २ उस के पास जाकर बोली—"शम्भू, एक गाड़ी ले आओ।"

शम्भू ने पूछा "कहाँ जाओगी?"

"कहना, विलायत जानेवाले स्टीमर-घाटमें।"

शम्भू गाड़ी ले आया। गङ्गा ने किसी से भी कुछ नहीं कहा-शम्भू को साथ लेकर गाड़ी में बैठ गई। कोचवान से कहा—'जिस घाट से विलायती जहाज छूटता है उसी घाट पर चलो।"

कोचवान ने कहा—'बहुत अच्छा।"

उस समय दिन के तीन बजना चाहते थे।

(१०)

यथा समय, राजा, जहाज में चढ़ गया। अभी सन्ध्या नहीं हुई थी। राजा अपने निर्दिष्ट केबिन के सामने डेक के ऊपर एक बेञ्च में बैठा है।

अब तक राजा ने एक अपरिचित आशा की छलना में अपने जीवन को कितना ही कष्ट दिया है। उसने एक दुर्लभ मानसिक दृढ़ता लेकर इस लम्बे छै वर्ष के समय को छाती में पत्थर रखकर काटा है—किन्तु आज सन्ध्या समय उसने अपना वह बल खोदिया। इतने दिन जो हुआ हो, क्रोध किया या जो किया, मन ही मन में स्त्री से जितनी घृणा की, माता पिता के ऊपर जितना ही असन्तुष्ट हुआ, वह सब ही काल्पनिक था। आज सन्ध्या समय उसने जब देखा कि वास्तव में वह अपने जनों को छोड़ कर किसी अनजान दूर देश में जा रहा है, तब उसका हृदय काँप उठा। कहाँ हैं आज उसके माता पिता? कहाँ है उसकी स्त्री? कहाँ है उसका बन्धु माधव? क्यों? आज तो उसे कोई उपदेश देने नहीं आता? बार-बार वह उसी अलीक प्रतिज्ञा की बातें स्मरण करके मन स्थिर करने का उद्योग कर रहा है, किन्तु उस का हृदय आज बड़ा दुर्बल है—प्राण बड़े शून्य हैं। अनुताप में वह जलने लगा, मनमें आया, "आः, उस निरपराध बालिका को कितने कष्ट दिये हैं—माता पिता के प्रति कितने दुर्व्यवहार किये हैं—क्यों? किसके लिये?" वह दुःख अब राजा न सह सका। जहाज में कितने ही लोगों के आत्मीय स्वजन उन को विदा करने के लिए आये हैं, उस के लिये कोई क्यों न आया? संसार में क्या उस का कोई नहीं? उसने सहस्र-कण्ठ-मुखरित, सहस्र-आलोक-उज्ज्वल उसी जहाज के डेक में बैठ कर समझ लिया कि वास्तविक ही आज वह बन्धुहीन-साहाय्यहीन-पितृहीन और हतभाग्य है।

एक बार फिर उसने मन में सोचा "चलो लौट चलें" फिर सोचा "क्या मुँह लेकर लौटें" उसी बेञ्च के ऊपर बैठे हुए राजा को आकाश पाताल सोचते सोचते झपकी आगई।

हठात् उसने चौंक कर सुना कि कोई बुला रहा है "राजा बाबू"। राजा ने आँखें खोलीं—अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह से आँखें पोंछ डालीं—देखा सामने उस के घर का नौकर-शम्भू है। उसने मनमें सोचा-क्या यह भ्रम है? या स्वप्न है?

उसने फिर बुलाया "राजा बाबू।"

"क्या है रे शम्भू, तू यहाँ कैसे आगया?"

"मैं भी आया हूँ और बहू जी भी आई हैं, वह घाट में गाड़ी पर रहगई हैं, आपको बुलाती हैं।"

राजा सहम गया, बोला—हैं—क्यों?

चलते हुए यंत्र की भाँति राजा, शम्भू के साथ-साथ डेक से उतर कर घाट पर आया। पास ही एक गाड़ी खड़ी थी।

शम्भू ने कहा—"बहू जी इसी गाड़ीमें बैठीहैं।"

आज छै वर्ष के बाद, राजाने गङ्गा को देखा—देखते ही वह लज्जित होगया। उसी एक दिन उस को राजा ने देखा था—जिस दिन वह घूंघट डारे हुए बालिका वधू थी। या फिर आज देखा है, मानो साक्षात् देवी—असङ्कोच से गौरवान्वित हो रही है। उसने सोचा आज यह क्या स्वप्न है? उसे सारी पृथिवी हिलती हुई जान पड़ी।

गङ्गाने धीरे २ राजा के चरणों की रज अपने मस्तक में लगाई।

राजा ने कहा—"तुम गङ्गा हो? तुम यहाँ क्यों?

"तुम्हारे पिता मृत्युशय्या पर पड़े हैं, मालूम होता है यह बात तुम नहीं जानते।"

गङ्गा का कण्ठ रुकगया। थोड़ी देर बाद बोली "तुम्हारा विदेश जाना अब न होगा। तुम घर लौट चलो, तुम्हारा सब दुःख-सब क्षोभ मैं मिटा दूंगी"।

राजा ने वह आदेश अग्राह्य करने का अवसर न पाया।

गङ्गा ने कहा—"असबाब जहाज़ से उतार लाओ।"

राजा, धीरे २ क्रीतदास की भाँति वह आदेश अतिपालन करने के लिए गया।

राजा, असबाब लेने को जहाज़ में फिर गया।

गङ्गाने चारों ओर एक बार ध्यान से देखा—देखा ऊपर नील आकाश है—बगल में गङ्गा—चारों दिशायें हज़ारों दीपावली से शोभायमान हैं-स्वामी का दर्शन हो रहा है।

शम्भू से कहा "शम्भू खड़ा रह! मैं गङ्गा में एक गोता लगा आऊँ।"

यह कह कर उसी अँधेरे में गङ्गा के भीतर बुड़की लगाने के लिए वह घुसी।

राजा ने लौट कर बहुत ढूंढा। जिस को छै वर्ष से वह पैर से ढकेलता आरहा है जिसके लिए वह व्याकुल होकर भगा जाता था, वह नहीं है। जिस गङ्गा को वह त्याग कर जाता था, आज वही गङ्गा उसे त्याग कर चली गई। ×

रामदेव तिवारी

सन्ताप।

समय पाय यदि हे तड़ाग! तव शुष्क नीर होजायेगा।
अम्बर पंथ गहैं पक्षी गण, निकट न कोई आयेगा॥
विकसित-अंबुज, निरखि नित्य जो, भ्रमर, यहां अब आते हैं।
हर्षित हो मीठे स्वर से अति अद्भुत राग सुनाते हैं॥
पङ्कज बीते जाति, स्वार्थि यह मुख तक नहीं दिखायेंगे।
करि-दल, भी फिर अन्य किसीसर पर जा प्यास बुझायेंगे
दुख के साथी नहीं मित्र ये केवल हैं सुख के भोगी।
पर तू हृदय विचार, मीन दुखिया की हालत क्या होगी?॥

राधावल्लभ पाठक.

स्त्री-शिक्षा।

इल्मे मग़रब पढ़ के होंगी, ऐसी खुदसर बीबियाँ।
बीबियाँ, शौहर बनेंगी, और शौहर, बीबियाँ॥
क्या बताऊँ क्या करेंगी, इल्म पढ़ कर बीबियां।
होंगीं सब डिप्टी से लेकर, ता गवर्नर बीबियां॥

× 'प्रवासी' की एक गल्प के आधार पर लिखित।

लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्द सब मातहत होंगे, और अफ़सर औरतें।
दफ़्तरी शौहर बनेंगे, अहले दफ़्तर बीबियां॥
आदमी क्या चीज़ है, देखो के सर चढ़ जायेंगी।
जब परी बन जायेंगी, साया पहन कर बीबियां॥
जिन के पल्ले पांच गज़ मलमल की भी कीमत नहीं।
डाल देंगी उन के सर साये का लंगर बीबियां॥
नफ़ा यह होगा असर से इतना तो साहब ज़रूर।
होंगी ईसाई मिशन में जाके नौकर बीबियां॥
इनके फ़िक्रो कौम से बचना अभी दुश्वार है।
और आफ़त ढायेंगी, साइंस पढ़ कर बीबियां॥
इतनी आज़ादी की जब उन को हवा दीजायगी।
उड़ चलेंगी हद से भी बाहर मुक़र्रिर बीबियां॥
हां मगर इतना पढ़ाना चाहिये, उनको ज़रूर।
मर्द की ग़मख़्वार हों, बच्चों की रहबर बीबियां॥

एक ज़िंदादिल—
(उर्दू कवि)

दमयन्ती का स्वयम्बर।*

(३)

नल की इन बातों को दमयन्ती ने अक्षर अक्षर सत्य समझा। इसे पूर्णतया विश्वास हो आया कि अब नल का मिलना सर्वथा असम्भव है। इस के गोल गोल और कज्जल लगे नेत्रों में सावन भादों की जैसी घनघोर घटा छागई। इस अवसर पर इसे, विप्रलम्भ-शृङ्गार-रस की नदी कह दिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं। इस का सारा धैर्य जाता रहा। इसे उस समय, उन्माद सा हो गया और यह रोने लगी। अपने जीवन से उकता जाने के कारण, कुलाङ्गनोचित लज्जा की सीमा को भी इसे नमस्कार करना पड़ा और यूँ विलाप करने लगी—

अरे कामाग्ने! अब तू खूब अच्छी तरह प्रज्वलित होजा, और मुझ अबला को जला कर, अपनी मनमानी कीर्त्ति बढ़ा ले। अबला ही के मारने से तेरी सचमुच कीर्त्ति बढ़ेगी! वियोगाग्नि से तप्त हुए हृदय! बतला तो सही तू किस चीज़ का बना हुआ है? लोहे का तो तू है नहीं, यदि होता तो इतना तपाये जाने पर अवश्य ही पिघल जाता! वज्र भी तू नहीं, यतः कामदेव के बाणों से तू बुरी तरह छिदा हुआ है। और वज्र में छेद होने सम्भव नहीं। अतएव तू कहता क्यों नहीं कि क्यों तू फूट फूट कर दो टुकड़े नहीं हो जाता? हे प्राण! अब तुम यहाँ से क्यों नहीं भाग जाते? इस हृदय में जो तुम्हारा घर है, आग लग रही है। हाय!! सुख की इस व्यर्थ आशा को तुम अब तक नहीं छोड़ते! तुम्हारे इस अपूर्व आलस्य को धिक्कार है!!! अरे नेत्रो! तुम किधर से इतने बड़े हो गये? मन जो अणु है, उसे यदि दुष्ट-मनोरथ, ठग लें तो कुछ आश्चर्य नहीं, पर तुम्हें इतने बड़े बड़ों को उन्हों ने कैसे ठग लिया? हाय तुम उन की ठगाई में कैसे आगये? अच्छा, अब जब तक जियो, अपने इस पातक को अपने आँसुओं के पानी से धोये जाओ। अरे मन! जिस चीज़ को तू चाहता है, वही मुझे नहीं मिलती। पहिले तू ने नल को चाहा था। वह नहीं मिला। अब तू मौत माँगता है और वह भी मुझे नहीं मिलती। हाय, जो कुछ तू चाहता है, वही मेरे लिये अप्राप्य होजाता है। इससे तू प्रिय-वियोग ही को क्यों न माँग, तेरी ही कृपा से मुझे प्रिय-वियोग न होगा।

मेरी जैसी वियोगिनियों के वैरी, चन्द्रमा और कामदेव आदि से तो मैं दीन वचनों से कुछ प्रार्थना करती नहीं। यतः ये लोग तो और दुःख के बढ़ाने वाले हैं। पर हाँ, दक्षिणवायु से मैं यह सविनय याचना करती हूँ कि तुम सर्वत्रगामी हो अतः जिस दिशा में और जहाँ मेरा प्राणाधार नल, तुमने देखा हो, उसी दिशा को कृपा करके मेरी भस्म उड़ा ले जाना!

इस समय, एक एक क्षण मुझे कई कई युगों के समान बीत रहा है। इन दुःखों की कुछ हद भी है!

* आठवीं ध्वनि से आगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर कब तक मुझे यह यातनायें सहनी पड़ेंगी? मांगने से तो मौत भी नहीं मिलती! इधर मेरा प्यारा मेरे अन्तःकरण को नहीं छोड़ता, उधर प्यारे को मेरा अन्तःकरण नहीं छोड़ता, और अन्तःकरण को भी निर्दयी प्राण नहीं छोड़ते। हाय, कैसी दुःख परम्परा है!!!

अरे सुरो! जिसकी एक ही बूँदसे मेरा विरह-जन्य बड़े से बड़ा सन्ताप, शान्त हो सकता है, वह तुम्हारा, दयासागर अब किसने पीलिया? तुम यदि चाहो, तो अपने सङ्कल्प मात्र से ही, एक नहीं सैकड़ों, मुझ से उत्तम स्त्रियाँ प्राप्त कर सकते हो। मुझे न सताओ! मैं तुम्हारी सर्वथा दयाभाजन हूँ। हाय, देवताओंके प्रति मेरा यह सारा रोना धोना भी अरण्य-रोदनवत् होरहा है। यतः मैं स्वयं ही अपने आँसुओं से, सावन भादों का ऐसा दुर्दिन कर रही हूँ। और इसी से वर्षाऋतु समझ कर सता सोगये होंगे * सुने कौन? हाय, हाय,

हे नैषध! मैं जीजान से तुम पर अनुरक्त हूं। तुम्हारे कारण इस समय, जो यातनायें मैं भोग रही हूँ। उसका समाचार मैं किस तरह तुम तक पहुंचाऊँ? ब्रह्मा ने उस हंस को भी न मालूम कहाँ छुपा दिया? एक एक सरोवर, कई कई बार ढुँढ-वाया गया, पर उसका कहीं पता न चला। वही यदि मिल जाता, तो मेरी यह दुरवस्था तो तुम्हें मालूम हो जाती। मेरा मन एक मात्र तुम्हारे चरणों में निमग्न है। क्या इस बात को तुम नहीं जानते? और यदि जानते हो, तो तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आती? अथवा इसमें तुम्हारा कुछ भी अप-राध नहीं है। विधि, जो चाहे सो करे, वही दूसरों के मन को अज्ञान में डुबो देता है। खैर, मेरे मर जाने पर कभी न कभी तो तुम्हारे कानमें यह भनक अवश्य ही पड़ेगी कि दमयन्ती ने मेरे लिए प्राण छोड़ दिये। अच्छा, नाथ! अब मुझ पर दया न आई तो न सही, उस समय ही—मेरे प्राण निकलने के समय ही, तुम मुझ पर कुछ दया दिखाने का अनुग्रह करना। मैंने सुना है कि तुम बड़े दानी हो। याचकों के लिये कल्पद्रुम हो। इसलिये मैं भी तुम से एक छोटी सी याचना करती हूँ। हे प्राणाधार! मेरा हृदय अब फटना ही चाहता है, और उसमें से प्राण अब निकलने ही को हैं। सो, इन हतभाग्य प्राणों के साथ ही साथ कहीं तुम भी मेरे हृदय से न निकल खड़े होना! यतः अब न सही, जन्मान्तर में तो मैं तुम्हें प्राप्त करूँगी।

दमयन्ती के इन दीन वचनों ने नलको फिर एक बार उद्भ्रान्त बनादिया। जिस काम के लिये, देव-ताओं ने उसे भेजा था, उससे एक दम वह बेसुध होगया, और प्रलाप करने लगा—

प्यारी! तुम किस के लिये इतना विलाप करती हो! और हाय! तुम अपने मुख को क्यों वृथा आँ-सुओं से व्याप्त कर रही हो? यह नल तो तुम्हारे सामने ही खड़ा है और तुम्हें झुक कर प्रणाम कर रहा है। स्वभावसिद्ध अपनी टेढ़ी चितवन से क्या तुमने इसे अब तक नहीं देखा? मैं जानता हूँ कि अलङ्कारविषय में तुम बड़ी चतुरा हो। बस, रहने दो, अपने मुख पर इन आँसुओं के बहाने से "बिन्दु-च्युतक" अलङ्कार मुझे मत दिखलाओ! लीला कमल को हाथ में लेने के बदले अपने मुख को क्यों तुमने उस पर रख छोड़ा है? सच जानो, तुम्हारे इस हृदय ने किसी अपराध से अपने गहनों को नहीं उतारा है किन्तु विरह के कारण इस ने ऐसा किया है, तो अब आखिर, फिर कितनी देर इसे, अपने मोती रूपी आँसुओं के हार पहिनाती रहोगी? अतः रोना छोड़ो और इस का अपराध क्षमा करो। तुम्हारे नेत्रोंसे बहने वाले इन अमङ्गल आँसुओं को, लाओ, मैं अपने हाथ से पूँछ दूँ। और अपने मस्तक से तुम्हारे चरण कमलों की धूलि को दूर कर दूँ और साथ ही साथ अपने अपराध भी दूर करा दूं। हे दमयन्ति! मेरे किरीट की मणियों की कान्ति द्वारा

* वर्षर्तुर्देवराजनीति ज्योतिःशास्त्रम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने चरण कमलों की कान्ति की सेवा होने दो। प्यारी गुस्से को थूक दो। तुम मेरी विनयोक्तियों का यदि थोड़ा सा भी मान करके अपने रोष को कुछ कम कर दो, तो देखो, मैं फिर किस तरह तुम्हारे पैरों में पड़कर तुम्हारे सब रोष को दूर करता हूँ। अच्छा, यदि तुम मेरा कुछ भी मान नहीं करना चाहतीं, तो न करो, मेरे प्रणाम को तो कमसे कम स्वीकार करलो, इसमें तो कुछ परिश्रम का काम नहीं! याचकों के लिये तुम कल्पलता हो, फिर मुझे दृष्टि-दान तक में क्यों इतनी कृपणता कर रही हो? मेरी तरफ़ एक बार देखती भी नहीं।

हे दमयन्ती! तुम तो बड़ी कोमल हो, फिर कैसे कामदेव के बाणों की इस असह्य-पीड़ा, को सहन कर रही हो? पर हां, पक्की दीवार में सिर मारने से दीवार का कुछ नहीं बिगड़ता, उलटा सिर ही फूट जाता है। इसी तरह, कठोर स्तन युक्त तुम्हारे हृदय में बेचारे कामदेव के बाण नहीं लगते, लगकर वैसे ही नीचे गिर पड़ते हैं। अब तुम्हें हँसी क्यों नहीं आती? मेरी तरफ़ को ज़रा देख तो लो! मुझसे दो बात तो करलो!! प्यारी! आओ इसी आसन को, नहीं नहीं, मेरी गोद को सुशोभित करो! हाय, हाय, मैं उन्माद से यह क्या कह गया! मुझे क्षमा करो, मेरे हृदय के सिवा, तुम्हारे लिये दूसरा आसन उचित नहीं। इसी पर बैठो! मुझे भी इस में बड़ा लाभ है। फिर मैं कामदेव के क़ाबू का न रहूँगा। यतः तुम, मेरे हृदय के भीतर तो मुद्दत से हो ही, हृदय के ऊपर भी होजाने का यदि अनुग्रह करोगी तो मेरा हृदय एक प्रकार से बीच में आजायगा। नीचे, ऊपर तुम होगी। मेरे हृदय के सम्पुट में हो जाने पर कामदेव के तीखे तीखे बाणों की फिर एक न चलेगी। लाओ, मैं तुम्हारे इस अधरोष्ठ को चूम लूँ। जिस से तुम्हारी वाणी रूपी अमृत-धारा बहती है।

यह कहते कहते सहसा नल का उन्माद जाता रहा, और यह सँभल कर यूँ कहने लगा—

हाय, क्यों मैं ने अपने को प्रकट कर दिया! इन्द्र मुझे अब क्या कहेंगे? मैं तो उन के सामने जाने योग्य भी नहीं रहा। फ़िज़ूल ही अपना नाम अपने मुँह से बतला कर, देवताओं का काम मैं ने बिगाड़ दिया। हनूमान् आदि ने जिस दूत-पद को इतना प्रशस्य बनादिया था, हाय, मैं ने उसे बदनाम करदिया! पर जान पूछ कर मैं ने ऐसा नहीं किया है। उन्माद से मैं अपना नाम बतलागया हूँ। ईश्वर मेरा साक्षी है। अब लज्जा-भार से मेरी छाती फटजाय, तभी अच्छा है। यतः देवताओं को मेरी हृदय-शुद्धि का ज्ञान तो हो जायगा। ख़ैर, वे तो सर्वज्ञ हैं। तत्त्व क्या है, यह वे जान लेंगे। पर संसार के मुँह पर कौन हाथ धरता फिरेगा? लोकनिन्दा तो इस में बड़ी होगी।

बड़ी देर तक नल को इस तरह प्रलाप करते देख, उस दिव्यहंस को नल पर दया आगई। और वह अकस्मात् अपने परों को फड़फड़ाता हुआ वहीं आकर उपस्थित होगया।

अचानक ही परों की फड़फड़ाहट सुन कर नल ऊपर को देखने लगा, और हंस को देख कर बोला—अहो! यह तो वही हंस आगया!

नल से हंस कहने लगा——

बस, बहुत हो चुका। अब और अधिक दमयन्ती को न सताइये, अधिक निराशा करने से वह अवश्य ही मर मिटेगी। आप ने अपने आप को कुछ जान पूंछ कर थोड़ा ही प्रकाशित किया है। इस में आप का कुछ अपराध नहीं। देवता आप पर कदापि अप्रसन्न नहीं हो सकते। यतः वे आप की हृदय-शुचिता को अच्छी तरह जानते हैं।

नल ने हंस से इस प्रकार सान्त्वना पा कर, मन ही मन में देवताओं को नमस्कार किया, और वह दमयन्ती से इस प्रकार कहने लगा—

दमयन्ति! देवताओं में अनुराग उत्पन्न करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली बातें कह कर अब मैं तुम्हें व्यर्थ पीड़ा न पहुँचाऊँगा। मैंने अच्छी तरह देख लिया है कि देवताओं में तुम्हारा अनुराग नहीं है। भले ही देवता मुझ से नाराज़ हो कर मुझे दण्ड दें या वे मेरी निष्कपटता जान कर मुझ पर दयाभाव दिखलायें, कुछ परवा नहीं।

सच पूँछो, तो यह उद्भ्रान्तता भी मेरे हित ही के लिए हुई। यतः इस उद्भ्रान्तता में मुझे विरह-वेदना, ज़रा भी मालूम नहीं हुई। सीमातिक्रान्त जलाने से कामाग्नि ने भी एक प्रकार से मुझ पर दया ही की, वह यदि मुझे इतना बावला न बनाता, तो शायद मैं अपना नाम न बतला सकता!

देवता, तुम पर जी जान से अनुरक्त हैं। पर तुम मुझे अपना दास बनाने का आग्रह कर रही हो। यह बड़े झगड़े की बात है। अच्छा, जो कुछ करो, सोच समझ कर करना, ऐसा न हो कि तुम्हें मुझे पछताना पड़े। दमयन्ति! मेरी इस सम्मति को पक्षपातपूर्ण न समझना। मैं उदासीन भाव से तुम से यह कह रहा हूँ, कुछ देवताओं के डर से या तुममें अनुराग कम होने के कारण से नहीं। तुम्हारे हित के लिए, यदि मुझ प्राण भी दे देने पड़ें तो भी मैं बड़ी खुशी से प्राण समर्पण करने के लिए तैयार हूँ।

दमयन्ती, नल की यह बातें सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई। नल को परपुरुष समझ कर, उस से बातें करने के कारण, इस के हृदय में जो घृणा और आत्मनिन्दा का भाव उदित हुआ था वह सब जाता रहा। पर नल के सामने फिर यह कुछ न कह सकी। और लज्जा से परदे में होगई। परदे में होजाने पर भी नल से तो प्रकाश में कुछ कहना दूर रहा, सखी के कान में भी यह कुछ न कह सकी। तब इसकी एक सखी मुसकराकर नल से यूँ कहने लगी—

महानुभाव! आप को प्रिया इस समय लज्जावश, कुछ नहीं कह सकती। इसके मौनावलम्बन का और कोई कारण नहीं, कारण केवल लज्जा है। अतः आप कहीं न बोलने का इस समय, इस पर दोष न लगायें! सुनिये, इसने जब कभी आपकी इच्छा से समय समय पर कहा है। उसी को सूक्ष्मतया मेरे मुँह से सुन लीजियेगा। इससे आप यह अनुमान कर सकेंगे कि दमयन्ती का आप में कितना दृढ़ स्नेह है—

"प्राणाधार! आपका कुछ अपराध नहीं, उस हंस ही ने मेरे सङ्कटमय जीवन का आप से यथातथ्य वर्णन न किया होगा। आप को यदि यह मालूम होजाता कि दमयन्ती, मेरे विरह से दुखी है, तो अवश्य ही कृपा करते। क्योंकि यह निर्दयता चन्द्रवंशियों के कभी अनुकूल नहीं ठहर सकती। अपने मुख से चन्द्रमा को और अपनी कान्ति से कामदेव को बुरी तरह पराजित किया है आपने, और उसका बदला वे मुझ से लेना चाहते हैं, यह कितनी उलटी और असमञ्जस की बात है! कोई अपराध करे और दण्ड किसी को दिया जाय! पर हाँ, वे यह समझ कर मुझे सताते हैं, कि यह नल ही की है। नल का तो हम कुछ कर नहीं सकते, अतः इसी को सतायें। देवताओं के ऐसा समझ कर करने से भी एक प्रकार से मैं परम सन्तुष्ट हूँ। यतः उन का यह समझना कि यह नल ही की है, कभी मिथ्या नहीं हो सकता। देवता, मिथ्या संकल्पधारी, नहीं हुआ करते।

मुझे जलाकर मेरी खाक से चन्द्रमा, व्यर्थ ही अपने पराजित भाव के लाञ्छन को दूर करना चाहता है। इससे उसके मुख की कान्ति, आपके मुख की कांति जैसी तो होने से रही। यह माना कि मेरी खाक से उसका लाञ्छन ढक जायगा। पर, स्त्रीवध का पातक तो उसे लग ही जायगा। यह कलङ्क ज़रा मुश्किल से छूटेगा! नाथ! आप तो क्षत्रिय हैं। अपने त्राण-धर्म को कैसे भूल गये? क्षत्रिय का यह धर्म है, कि वह शरणागत का इन्द्रायुध के भय से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बचावे, स्त्री, पुरुष का वहां कुछ नियम ही नहीं है पर आप उस नियम के कायल ही नहीं मालूम होते, या आप का वह क्षत्रिय-धर्म ही भ्रष्ट हो गया है। यदि नहीं, तो मुझे कुसुमायुधसे ही बचाइये, मुझे तो यही मारे डालता है। मैं जब आप की हूँ, तो इस मारते हुए कामदेव से मुझे क्यों नहीं बचाते? अपनी खुशी से मैं स्वयम्बर में आप को वरूँगी, आप के या किसी के लिखलाने बहकाने से नहीं। अतः देवता, आप पर ज़रा भी नाराज़ न होंगे। शौक़ से वे स्वयम्बर-मण्डप में आवें, देखिये, किस प्रकार से मैं उन्हें प्रसन्न करके आप को वरती हूँ! आप अपना सा कठोर हृदय समझकर शायद यह कहेंगे कि "जब वे तुम्हें वरने की इच्छा से वहां आयेंगे, तो फिर ऐसी कौनसी बात है, जिस से तुम, उन्हें बिना वरे ही प्रसन्न करलोगी"। सुनिये—मेरा विचार है कि आप को और कामदेव को छोड़ कर सारा जगत् दयालु है। आप की तरह से निर्दयी नहीं, जो खुशामदों से भी न मानेगा!"

इस प्रकार नल, सखी के मुंह से, अपनी प्यारी की बातें सुनकर, बड़ा प्रसन्न हुआ। और दमयन्ती से इस बात की पूर्ण प्रतिज्ञा करके, कि स्वयम्बर में मैं देवताओं के साथ अवश्य आऊँगा, वहां से चल दिया।

कल स्वयम्बर होने वाला था। केवल एक रात बाकी थी। और वह भी दमयन्ती से कटनी मुश्किल होगई।

इधर नलने, सर्वद्रष्टा दिगीश्वरों के पास जाकर, उनके सामने, दमयन्ती-सम्बन्धिनी, अपने इतत्व की, सारी बातें, निष्कपटभाव से, याथातथ्य कह सुनाईं।

प्रातःकाल होते ही स्वयम्बर में शरीक होने के लिए राजकुमारों का तांता बँध गया। शायद ही कोई राजकुमार ऐसा होगा, जो वहाँ न आया हो! छोटे से बड़े तक सभी राजाओं के राजकुमार वहाँ आये। प्रश्न होगा कि उन बेचारों को बड़ों के सामने कौन पूछता? अतः वे क्यों आये? इस के लिए केवल यही कहदेना पर्याप्त है कि वे, दमयन्ती के साथ विवाह करने की इच्छा से नहीं, किन्तु उसे देखने मात्र की इच्छा से वहां आये थे। रथों का इतना झमघट हुआ कि सड़क पर तिल धरने तक को जगह न थी। देवसमाजमें से भी पूर्वोक्त केवल चार देवता वहां आये। और देवताओं ने वहां, अनेक कारणों से अपना आना उचित न समझा।

कुबेर, यह समझ कर वहां न आये, कि दमयन्ती तो, और दमयन्ती ही क्यों, प्रत्येक स्वयम्बरार्थिनी कन्या, रूप सौन्दर्य देखती है। धन-राशि की तरफ़ उस की नज़र ही नहीं होती। जिस का हमें घमण्ड है, उस की वहाँ पूँछ नहीं, अतः वहां जाना बेकार है।

वायु के वाहन, मृग ने स्वयम्बर में आने से इसलिए साफ़ इन्कार कर दिया कि दमयन्ती के सामने मेरी आंखें न पड़ सकेंगी।

पार्वती, शिव जी की अर्धाङ्गी है। आधा अङ्ग उसका है, अतः उस ने अपने हिस्से को जाने से रोक दिया।

नागराज को यह न सूझ सका कि वह पृथ्वी का भार किस पर सौंप कर, स्वयम्बर में जावें इस लिए नहीं गये।

सारी श्रुति और स्मृतियों के ज्ञाता, पितामह ब्रह्मा स्वयम्बर में इस लिए नहीं आये, कि मुझे देखकर कोई क्या कहेगा? दादा पोती के विवाह को कौन पसन्द करेगा?

इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम, चारों देवताओंने वहां स्वयम्बर में निर्लज्ज बन कर प्रस्थान किया। उन के मुख पर निराशा की मलिनता छाई हुई थी। वे दूत दूतियों के वैसे ही वापस आने से यह तो समझ ही रहे थे कि हमें दमयन्ती न वरेगी। पर सम्भवतः हमारे भाग्य उदय ही होजायें, इस आशा से वे चल दिये। उन का निश्चय था कि दमयन्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नल के गले में वर-माला पहिनायेगी । अतः उन चारों ने नल का रूप बना लिया। नकल कभी असल के बराबर नहीं हुआ करती । उन बेचारोंने नलका रूप बनाने में भरसक प्रयत्न किया सही, पर उन का ठीक नल का जैसा रूप न बन सका । यह बात स्वयं उन्होंने भी आपस की देख रेख से जाँचली। कभी पूर्णिमा का चन्द्रमा अपने मुख पर बनाते और फिर उसे अयोग्य समझ कर खिले हुए कमल का आकार बनाते । इतना कर लेने पर भी अपना मुख, दर्पण में देख कर और क्रुद्ध होकर बेचारे निरपराध दर्पण को तोड़ डालते ।

ख़ैर, जूँ तूँ करके अपना रूप बना कर वे वहां स्वयम्बर मण्डप में आ बैठे। और राजकुमार भी वहां आये । विदर्भराज ने सब का यथायोग्य आतिथ्य किया । सारा शहर विशेष प्रबन्ध के साथ सजवाया गया ।

देवता और राजकुमारों में वहां कुछ भी अंतर न दीख पड़ता था । जिस ठाठ और सजधज से देवता थे । प्रायः उसी ठाठ और सजधज से राजकुमार भी थे । देवता, पलक नहीं मारा करते—उनकी आंखें खुली रहती हैं। राजकुमार भी बिना पलक मारे—अनिमेष दृष्टि से उस मण्डप की शोभा देख रहे थे । प्रायः सभी देशों के राजकुमार उस में शरीक हुए थे । पर कुण्डिनपुर के लोग यह न पहिचान सके, कि इन में कौन राजकुमार किस देश का है या इन में देवता, कौन से हैं ? इस का कारण यह था कि आपस की बोल चाल,न समझने के कारण, देववाणी—संस्कृत भाषा ही का वहां परस्पर व्यवहार होरहा था । मातृ भाषा ही एक ऐसी चीज़ है, जिससे देश की पहिचान होसकती है, और उसका वहां कोई उस समय व्यवहार न करता था ।

सब समाज, इकट्ठा होजाने पर, नल भी वहाँ आगया । नल को देखते ही सारे राजकुमार और देवता, झेंप गये । और आपस में एक दूसरे का मुँह ताकने लगे । जिन अपरिचितों ने उसे एक बार चकित दृष्टि से देखा, वे उसी समय, दुबारा ईर्ष्या से देखने लगे । कितने ही मुँह फट तो स्तुति व्याज से उसकी निन्दा करने लगे ।

नलको अपने ही रूपसमान चार पुरुषों को देखकर बड़ा विस्मय हुआ । वह उन्हीं से पूंछने लगा कि आप पुरूरवा, काम और अश्विनीकुमार तो नहीं हैं ! देवताओं ने इस बात का कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं दिया । नलने भी इस पर विशेष ध्यान न दिया । वह अपने ही विचार में निमग्न था । अस्तु

वह स्वयम्बर-मण्डप बड़ा रमणीय था । अनेक कवियोंने वहीं उसका वर्णन किया । दमयन्ती के पिता विदर्भराज ने सब राजकुमारों को यथायोग्य आसनों पर बिठलादिया। और वह अपने मनमें विचार करने लगे कि न मालूम ये किन किन देशों के राजकुमार हैं ! इन के गुण, नाम और गोत्रादि का कैसे वर्णन होसकेगा ? थोड़ी देरके बाद उन्हें स्मरण आया और सरस्वती को, बड़ी प्रार्थनायें करके, इस काम पर नियुक्त किया गया। सरस्वती के यह बात मंजूर कर लेने पर दमयन्ती को स्वयम्बर मण्डप में बुलाया गया । सब राजकुमारों ने इसे स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखा । सब की इस की तरफ़ उँगलियां उठने लगीं ।

दमयन्ती की दाहिनी तरफ सरस्वती होगई और उसने कहा—

दमयन्ती ! ये जितने राजकुमार, यहां बैठे हैं इन सब का पृथक् पृथक् और पूरा पूरा वर्णन करने के लिये तो सैकड़ों वर्ष चाहियें । अतः इनमें से जिसे तुम्हारा जी चाहता हो एक को वर लो । यह कहकर सरस्वती ने वर्णन करना प्रारम्भ करदिया। वह, स्वयम्बर में शरीक होने वाले प्रत्येक युवा का अपनी स्वभावसिद्ध चमत्कारिणी वाणी से वर्णन करती और दमयन्ती, उस युवा को बड़े नम्र भाव से हाथ जोड़ते हुए, सरस्वती को आगे बढ़ने का इशारा करती जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि हर्ष ने राजाओं के वर्णन में, सरस्वती के मुख से कई सर्गों में बड़ी पाण्डित्यपूर्ण शैली से कहलाया है। लेख-विस्तारभय से, उसे हम यहां लिखना नहीं चाहते, और न वह हिन्दी वालों को विशेष रुचिकर ही होगा।

बस, सरस्वती जिस का वर्णन करती, दमयन्ती उसे किसी न किसी इशारे से नापसन्द करती जाती। चलते चलते यह सुन्दरि-समाज, उस स्थान पर पहुंच गया, जहां नल बैठा था और नल का रूप बनाये, चारों देवता बैठे थे।

यहां सरस्वती को बड़ी ही वाक्य-चातुरी से काम लेना पड़ा। वह, दोनों का, नहीं नहीं, सब का भला चाहता था। इन्द्र आदि दिगीश्वर भी, उन्हें दमयन्ती से इन्द्रादि दिगीश्वर ही साफ़ साफ़ कहने के कारण रुष्ट न हों। नल भी यह न कह सके कि सरस्वती ने पक्षपात से काम लिया। दमयन्ती भी धोका देने का उसे दोष न लगाये। यह सब बातें, उसे, अपनी पाण्डित्य पूर्ण उक्तियों में साधना पड़ीं। अतः उसने इस योग्यता से वर्णन किया कि एक ही वाक्य के कई कई अर्थ हो सकें। देखती आंखों, उनसे नल का अर्थ निकले, और साथ ही साथ गहरा विचार करने से चारों दिगीश्वरों का भी अर्थ निकल सके।

दमयन्ती को यह देखकर बड़ा सन्ताप हुआ। वह, यह निश्चय न कर सकी कि इन में असली नल कौनसा है। यतः पाँचों का एक सा ही रूप था। पर यह केवल रूप पर तो अनुरक्त थी ही नहीं यह तो नल पर अनुरक्त थी।

सरस्वती से तो इसे कुछ आशा रही नहीं, हाँ, उस हंस का इस ने, इस घोर संकट के समय अवश्य स्मरण किया कि वही यदि इस समय होता, तो असली नल को बतला देता। इस के बाद, इस ने एक बार फिर उस पंचनली को दत्तदृष्टि से देखा। और दत्तदृष्टि से देखने पर भी इसे कुछ भेद न मालूम हुआ। और बावले की तरह से यह मन ही मन में यूं कहने लगी—

नल, सब कलाओं का ज्ञाता है, अतएव बड़ा योगी है। सम्भवतः उस ने अपने योगबल से मुझ से हँसी करने के लिए, इन चारों को अपनी ही जैसी सूरत का और बना दिया है। अथवा इन में एक नल है और बाकी एक पुरुरवा, दूसरा कामदेव, और दो अश्विनी कुमार!!! पहिले मुझे स्वप्न में भी नल ही नल दीखता था। कहीं अब भी मेरी वही दशा तो नहीं होगई। जो भ्रम से एकदम, पांच नल ही नल देख रही हूं। हां अब मैं समझी। ये सारी सरस्वती की रूठे पोक्तियाँ थीं। इन्द्रादि देवताओं ने ही कृपा की है। और वही यह बोल रही थी। प्राणनाथ नल में कोई चिन्ह विशेष भी तो नहीं दीखता! अथवा, इन्द्रादि देवताओं ही से नल को मांग लेती हूं। पर हाय, ये क्यों ऐसा करने लगे हैं! इन की सारी दया को तो कामदेव के बाण ने पीलिया है। बरसों पूजने से जिन के दरबार में कुछ सुनवाई नहीं हुई, उन से अब इस समय, क्या आशा होसकती है!! अरे दिगीश्वरो! नल का रूप तो तुम ने बना लिया, पर तुम्हारा वह परोपकार-व्रत कहां नष्ट होगया? तुम्हारी दशा, इस समय ठीक वैसी ही हो रही है, जैसी मूर्ख के पास जाकर, शास्त्रों की हो जाती है। ब्रह्मा ने जिस के मस्तक पर बुराई लिखदी है उस की भलाई की गई भी हर तरह से बुराई ही होगी। कमल, इस बात में प्रमाण है। जो सूर्य की तीखी तीखी किरणों से नहीं जलता, और चन्द्रमा की शीतल किरणों से जल जाता है। हाय, हाय, मैं चाहती हूं कि मैं नल ही के गले में वरणमाला पहिनाऊँ। पर यहां, और ही कुछ हुआ चाहता है। न मालूम ब्रह्मा ने मेरे मस्तक पर क्या लिख दिया है!

अच्छा यह है कि वरणमाला को इस सरस्वती के ही हाथ में देदूँ। और कह दूं कि इन में जो नल हो, उसी के गले में वरणमाला पहिनादो। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह करना भी उचित नहीं। इस से सरस्वती की अकारण ही देवताओं से शत्रुता हो जायगी। मैं नहीं चाहती, कि मैं अपनी सखी के साथ ऐसी स्वार्थ-परता का व्यवहार करूं। लज्जा त्याग कर यह कह दूं तो काम बनजाय, कि आप में जो सच्चा नल हो, वही इस वरणमाला को स्वीकार करले। पर ऐसा कर कैसे सकती हूं। भरी सभा के सामने ऐसी बेशरमी का बर्त्ताव करना, स्वयं अपने को उपहासास्पद बनाना है।

ऐसे ही न मालूम कितने विचारों को दमयन्ती ने एक दम तिलाञ्जलि देदी। इसे यह निश्चय न हो सका कि इनमें सच्चा नल कौन है। अतः यथेष्ट की अप्राप्ति में इसका चांदसा मुखड़ा फीका पड़ गया।

इस के बाद सहसा इसे एक बात सूझी, इस ने विचारा कि देवताओं के आराधन से इष्टसिद्धि होसकती है। अतः इस ने नल की निश्चय प्राप्ति के लिये, देवताओं की षोडश उपचारों से पूजा करनी प्रारम्भ की। पहिले इस ने सब देवताओं के अलग अलग नाम लेकर उन्हें नमस्कार किया। सुन्दर सुन्दर पुष्पों और गीतों से उन का पूजन किया। एकाग्रचित्त होकर भली भांति उनका ध्यान किया। इतनी ही भक्ति से देवता प्रसन्न होगये।

पाठक, पूछेंगे कि देवताओं ने प्रसन्न होकर, दमयन्ती को क्या दे दिया? या उससे क्या कह दिया? इसका उत्तर स्वयं ही महाकवि हर्ष यूं देते हैं—

देवता प्रसन्न होकर और कुछ नहीं दिया करते। वे, जिस से प्रसन्न होते हैं उसे केवल सुबुद्धि देते हैं। ×

दमयन्ती को भी उन्होंने यही सुबुद्धि दी। जिस का फल यह हुआ कि यह सरस्वती की सारी श्लेषोक्तियों को अच्छी तरह समझ गई। और उसी हिसाब से इसने जानलिया, कि इनमें अभिलषित सच्चा नल कौनसा है। नल को ठीक ठीक समझ कर यह बड़ी प्रसन्न हुई। और मन ही मन में सरस्वती की प्रशंसा करने लगी।

अब दमयन्ती को नल और देवताओं में साफ साफ भेद नजर आने लगा। इसने देखा कि देवता पलक नहीं मारते और नल पलक मार रहा है। देवताओं को पसीना आता भी नहीं और नल रूमाल से पूंछ रहा है। देवताओं के गले की फूलमाला नहीं कुम्हलाई और नल की कुम्हला गई है।

ऐसी ही बातों से दमयन्ती ने अच्छी तरह समझ लिया कि इनमें सबसे आखिर में असली नल है।

निश्चय होजाने पर दमयन्ती को नल के गले में माला पहिनाने के लिये, कामदेव, प्रेरित करने लगा। इधर लज्जा इसे एक भी कदम आगे चलने के लिये मना करने लगी। इसने दोनों का अनुरोध बड़े आदर के साथ स्वीकार किया। यह कुछ रुक रुक कर नल के पास तक आई। नल के गले में माला पहिनाने के लिये, इसने अपने हाथ उठाये। पर शरम के मारे हाथ, उठे के उठे ही रहगये। सरस्वती ने यह देख कर बड़े नम्रभाव से देवताओं के प्रति निवेदन किया—

महानुभाव! आपकी भक्त यह दमयन्ती, नल को वरने की अनुमति रूप कृपा चाहती है। अतः आप इसे सहर्ष अनुमति दीजियेगा। इस बात का लेश मात्र भी आप के शुद्धान्तःकरण में विचार न होना चाहिये कि दमयंती ने हमें क्यों नहीं वरा। सुनिये—यह वस्तुतः ठीक है कि आप सर्वगुणालंकृत हैं। पर आप जानते हैं कि दमयन्ती, सती साध्वी एकमर्तृका है। इस लिये वह आप चारों को एक साथ नहीं वर सकती। वह यह भी अच्छा नहीं समझती कि वह आपमें से किसी एकको वर ले और बाकी तीन का अपमान करे। और मैं कह

× व्यास जी भी महाभारत में यही कहते हैं—

न देवा दण्डमादाय रक्षंति पशुपालवत्। यं तु रक्षितुमिच्छंति बुद्ध्या योजयंति तम् ॥ इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती हूं कि उस का यह समझना उचित भी है।

शास्त्र बतलाते हैं कि आठों लोकपालों का अंश राजा में हुआ करता है। नल राजा है, अतः उस में शास्त्र के वचनानुसार, आप सब का अंश मौजूद है। अतः उसके वर लेने पर आप सब का प्रसन्न होना अवश्यम्भावी और उचित है।

एक और बात है। नल को आप ने जब दूत बना कर दमयन्ती के पास भेजा था। तभी भूल से नल का दमयंती के साथ आलिङ्गन होगया था। आलिङ्गन को भी शास्त्रकारों ने एक प्रकार का सम्भोग बतलाया है। अतः दमयन्ती, नल की स्त्री एक प्रकार से पहिले ही से होचुकी है। इसी लिये परस्त्री होने के कारण, आप लोगों को यह सर्वथा अग्राह्य है। यही नहीं, आप यहाँ स्वयम्वर में दमयन्ती के साथ विवाह करने की इच्छा से कुछ थोड़े ही सम्मिलित हुए हैं। आप तो यहां केवल नल का मान बढ़ाने के लिये पधारे हैं।

सरस्वती की इस वाचालता से, चारों दिगीश्वर मुसकराये, और उन्होंने अनुमति देदी।

देवताओं की अनुमति पाकर, सरस्वती ने शरम की मारी दमयन्ती के हाथ को खींच खांच कर नल के बिलकुल पास ही करदिया। और दमयन्ती ने नल के कण्ठ में माला पहना दी। दोनों को परम आनन्द हुआ। पुरकामिनियों ने मंगल गीत गाये।

चारों देवताओं ने अपना अपना वही पहिला रूप धारण करलिया। विवाहोत्सव में मन बहलाने के लिये, रंग तमाशे हुआ करते हैं, एतदर्थ वे लोग बुलवाये जाते हैं। "हर्ष" कहते हैं कि उन तमाशा करने वालों की वृत्ति को, दमयन्ती के स्वयम्वर में देवताओं ने छीन लिया। उन्हों ने ही आगत राजकुमारों का अपने रूप आदि बदलने से मन बहलाया। निःसन्देह बेचारे तमाशा करने वालों के चित्त, अपनी वृत्ति छिन जाने के कारण दुखी हुए होंगे। अफ़सोस!!

इन्द्र ने दूल्हा दुलहन को आशीर्वाद दिया। आप ने और कई बातों के साथ, यह भी कहा कि काशी के पास ही (इतना पास कि वह पंचक्रोशी में न आ सके) नलपुर या नैषधपुर में तुम रहा करोगे।+

इस के बाद और सब देवताओं ने नल को वर दिया। वर देकर देवसमाज स्वर्ग को चला गया। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। भीमराज ने खुशी के बाजे बजवाये। निषधाधिपति नल भी अपने डेरों में चला गया। जाते हुए मार्ग में इस ने बड़ा दान किया। अन्य राजकुमारों का मन बड़ा खिन्न हुआ।

स्वयम्वरमण्डप में जरूर दमयन्ती ने नल के गले में माला पहिनादी। पर भीमराज, वैदिक विधि से भी श्रुतिस्मृति विहित विवाह करना चाहते थे। अतः ज्योतिर्विदों से शुभमुहूर्त्त पूछकर नल को, उस के डेरों से बुलाया गया।

दमयन्ती को यथायोग्य इस की सहेलियों ने अलंकृत किया। इधर नल भी सुसज्जित हो कर और रथ में बैठकर राजभवन की तरफ चलदिया। शहर की सड़कों पर ही इस के रथ पर कामिनियोंने फूल बरसाये। राजभवन में पहुँच कर, वैदिकविधि से विवाह कराया गया। भीमराज ने अपने जामाता को बहुत सा धन और हाथी घोड़े दहेज में दिये। विवाह विधि होजाने के पश्चात् वर और वधू को अट्टालिका पर पहुंचाया गया। जहाँ इन्हें तीन दिन तक ब्रह्मचर्य्य से रहना पड़ा। भीमराज ने बारातियों का यथोचित आतिथ्य किया। सुसराल में ५-६ दिन रह कर नल ने अपनी राजधानी को प्रयाण किया। अपने नगर के बाहर तक, भीमराज, इस के साथ साथ आये। जामाता और पुत्री को बिदा करते समय, उन का मन भारी हो आया।

+ बनारस ज़िले के कोई सज्जन, इस बात पर प्रकाश डालें कि काशी के आस पास इस नाम का या इस से मिलते जुलते नाम का कोई ग्राम है या नहीं। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

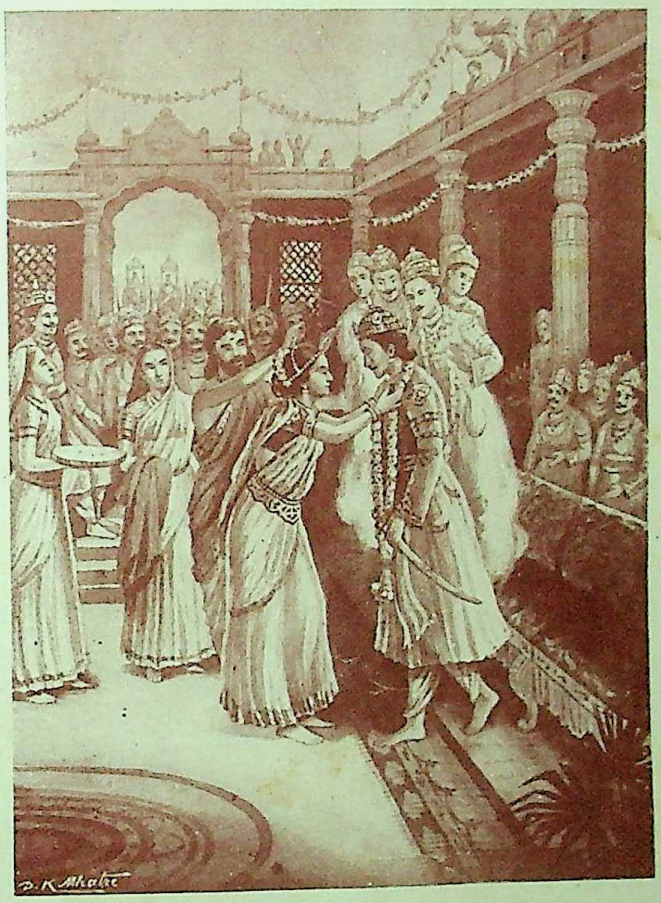

दमयन्ती, नलके कण्ठमें माला पहिना रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलते चलते नल, अपनी राजधानी में पहुंच गया। नगर के बाहर ही से इस के मन्त्री, आदि इस की पेशवाई के लिये आये।

अथ नगरधृतैरमात्यरत्नैः,
पथि समियाय स जाययाभिरामः।
मधुरिव कुसुमश्रिया सनाथः,
क्रममिलितैरलिभिः कुतूहलोत्कैः॥

आश्वासन।

(१)

प्यारी चम्पक कलिके! दिन दिन, पीली पड़ती जाती हो—
क्यों तुम चिन्तानल, में अपना, सुभग वदन झुलसाती हो।
क्या कहती हो—"मधुकर लखता, मेरी ओर भूल कर भी-न—
बस इतनी ही तुच्छ बात पर, कलिके! यों रहती ग़मगीन!

(२)

कोई अज्ञ मनुज यदि कङ्कर, समझ उसे नहीं अपनाये—
तो क्या मूल्यवान हीरे का, मूल्य न्यून कुछ हो जाये?
यों ही चञ्चल चञ्चरीक यदि, करता है तेरा उपहास—
तुझ सी कलित कली तज करता, मूढ़ मालती बीच विलास॥

(३)

तो इस से तेरी गुण गरिमा, क्या लाञ्छित हो जायेगी?
मनो सुगन्धकारी तव सौरभ, मान न जग में पायेगी!
या प्राभातिक पवन न थपकी, देकर तुझे खिलायेगी?—
टोली मधुलोलुपा मक्खियों, की न तुझे अपनायेगी?

(४)

सुर प्रतिमाओं पर क्या तेरा, सुमन न शोभा पायेगा?—
सुखमय रूप रङ्ग जनता को, तेरा या न लुभायेगा?
तब पुष्पों की सुन्दर माला, माली क्या न बनायेंगे?—
जो ले रसिकाओं को कम्पित, हाथों रसिक पिन्हायेंगे॥

(५)

बतला अब रहगया और क्या, अन्य पुष्प और तुझ में भेद—
यदि आजीवन एक कुटिल अलि, रहे तना ही तो क्या खेद?
एक न एक रोज़ करनी का, भोग स्वयं शठ पायेगा—
न्यायशील पङ्कज के द्वारा, दृढ़ तर बांधा जायेगा॥

सिद्धिनाथ-मिश्र

महाकवि माघ।

संस्कृत भाषा में छः काव्य प्रसिद्ध हैं—

रघुवंश
कुमार सम्भव
मेघदूत
किरातार्जुनीय
शिशुपाल वध
नैषधीय चरित

पहिले तीन काव्य महाकवि कालिदास के रचे हैं और लघुत्रयी कहलाते हैं। इनका यथाशक्ति भाषा छन्दों में अनुवाद करके हिन्दी पाठकों की भेंट कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका हूँ। शेष तीन में से जो बृहत्त्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं किरातार्जुनीय के दस सर्गों का अनुवाद भी सरस्वती के पहिले भाग में सन् १९०० में छपा था उन्हीं दिनों शिशुपालवध में हाथ लगाया था वह अब तक अप्रकाशित रहा। अब वह मनोरमा के पाठकों को उपहृत किया जायगा। संस्कृत कवियों के विषय में कहा जाता है कि—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥

"कालिदास की उपमा सबसे बढ़ कर होती है किरातार्जुनीय के रचयिता भारवि का अर्थगौरव और नैषधीय चरित के पदों का लालित्य प्रशस्य है पर माघ कृत शिशुपालवध में तीनों गुण हैं।"

महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद जी ने भी अपने सम्पादित शिशुपालवध सटीक में शिशुपालवध को किरात और नैषध दोनों से बढ़कर माना है। हम इस लेख में यह विचार करेंगे कि महाकवि माघ कहाँ के रहने वाले थे और कब हुये थे।

वल्लाल कृत भोजप्रबन्धसार एक विचित्र ग्रन्थ है। इसमें संस्कृत के सारे महाकवि, भोज के दानपात्र बना दिये गये हैं। इसमें लिखा है कि एक दिन राजा भोज सिंहासन पर बैठे थे द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि गुर्जर देश से आया हुआ माघ नामक पंडित नगर के बाहर खड़ा है उसने अपनी स्त्री को भेजा है। राजा ने स्त्री को बुलाया और उसने आकर एक पत्र दिया जिसमें शिशुपालवध के ग्यारहवें सर्ग का ६४ वाँ श्लोक लिखा था।

कुमुद्वनमयश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं,
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदय महिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं,
हत विधि ललतानां ही विचित्रोविपाकः॥

कोका बेली के वन की शोभा नष्ट हो रही है। कमलों की शोभा बढ़ रही है उल्लू का सुख छूट रहा है चकवा प्रसन्न होरहा है, सूर्य निकल रहा है, चन्द्रमा डूब रहा है। दैव भी कैसा दुष्ट है इसकी चेष्टा विचित्र है।

यह प्रभात का वर्णन है। राजा भोज इसको पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए और तीन लाख रुपये देकर बोले, माता, इसे भोजन के लिये ले जाइये। सवेरे हम पण्डित जी के दर्शन करेंगे।

रास्ते में माघ की स्त्री ने याचकों के मुँह से अपने पति के गुणों का बखान सुन कर सब रुपये उन्हें दे दिये और अपने पति से सारा ब्योरा कहा। माघ बोले "तुमने बहुत अच्छा किया पर यदि और याचक आजायँ तो उन्हें क्या दोगी?"। इतने में और याचक आगये। माघ को उनकी याचना सुन कर और अपनी दरिद्रता सोच कर ऐसी ग्लानि हुई कि उन्हों ने प्राण छोड़ दिये। सवेरे राजा भोज ने सुना कि माघ जी परलोक सिधार गये तो ब्राह्मणों के साथ आकर नर्मदा के किनारे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

जैनमेरु तुंगाचार्य १३६५ संवत् के लिखे अपने प्रबन्धचिन्तामणि में कहते हैं कि माघ की बड़ाई सुन सुन कर राजा भोज ने उन्हें श्रीमालनगर से बुलाया और उनका बड़ा आदर किया।

भोजप्रबन्धसार और प्रबन्धचिंतामणि दोनों की कथायें कपोलकल्पित सी जान पड़ती हैं केवल इतना पता लगता है कि माघ श्रीमाल के रहने वाले थे। उन्हों ने अपने वंश का वर्णन काव्य के अन्त में यों लिखा है।

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः,
श्रीवर्मला तस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव,
देवोपरः सुप्रभदेव नामा॥
तस्याभव दत्तक इत्युदात्तः,
क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।
तस्यात्मजः सुकविनीतिदुराशयादः,
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥

इसका अभिप्राय यह है कि राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी महामंत्री सुप्रभदेव के पुत्र दत्तक हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके बेटे माघ ने शिशुपालवध काव्य रचा।

श्रीमाल अथवा भिल्लमाल जिसको अब भीनमाल कहते हैं माड़वाड़ में बहुत ही प्राचीन नगर जोधपुर से १०५ मील दक्खिन पश्चिम के कोने में है। यही ब्राह्मणों की प्रसिद्ध श्रीमाली कुल की जन्मभूमि है। विक्रम संवत् की सातवीं शताब्दी में यहाँ चापोत्कट (चावड़ा) वंश के राजा राज करते थे जिन्हें लोग गुर्जर मानते हैं। सिरोही राजमें वसन्तगढ़ में एक शिला लेख सं० ६८२ का मिला है। यह राजा वर्मलात के समय का है। इस से सिद्ध होता है कि सुप्रभदेव जी इसी राजा के महामंत्री थे दैव की गति जानी नहीं जाती महामन्त्री का पोता भूखों मरता रहा यह समझ में नहीं आता। शिशुपालवध के दूसरे सर्ग में राजनीति का प्रकरण जिस रीति से वर्णन किया गया है वह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि माघ अपने दादा की भांति नीतिशास्त्र के पारदर्शी पण्डित थे। पितामह का समय संवत् ६८२ है तो पौत्र का आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

सीताराम !

हिन्दी में सामवेद ।

तत्र आग्नेयंपर्व ।

ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दाहये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

हे अग्निदेव ! हविष्य पाने यज्ञ बिच आइये।
स्तुति किये जाकर देवगण को भोज्यभी पहुँचाइये॥
होता कहाते इसलिये मखका निमंत्रण दीजिये।
पुनि शुद्ध कुश आस्तीर्ण पै अपना शुभागम कीजिये॥१॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

हे अग्नि ! सब मख कृत्य के होता पुकारे जात हो।
भोग्यभाग समस्त देवों को बुला पहुँचात हो॥
इन्द्रादि सुर वा ऋत्विजों से गार्हपत्य कहात जो।
उस रूपसे यजमान नरमें स्थान को तुम पात हो॥२॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

श्रीदेव के समुदाय का मख में बुलावन हार है।
सब मर्म का ज्ञाता तथा सब धनों का रखवार है॥
इस यज्ञ का ख्याता तथा जो देव दूत कहात है।
अस अग्निसंज्ञक देव को हम भली भाँति मनातहैं३॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया समिद्धः शुक्रभाहुतः ॥ ४ ॥

जो भक्त को धन देन चहता वा हविर्धन चाहता।
समिधादि से प्रज्वलित,भास्वर,आहुतिनको पावता
अस अग्नि हमरी स्तुतिनसे राक्षस तथा अँधियारजो
जगको सताते रहत तिन्हको बहुत करके मारियो॥४॥

श्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

हे अग्नि ! पूजक को विभव दो अतः प्यारे लागने।
मेहमान सम पूजार्ह मित्र समान सुख उपजावने॥
रथ तुल्य धनकी प्राप्तिमें अति सहायक कहलातहो।
अस पूज्य तुमको स्तोत्रद्वारा मैं प्रसन्न बनात हों॥५॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषोमर्त्यस्य ॥ ६ ॥

हे अग्नि ! तुम सत्कार किंवा वित्त दे रक्षा करो।
सब भाँति के रिपुवर्ग से निश्चय सुरक्षण आचरो॥
बलदान कर नरशत्रुसे संत्राण हमरा कीजिये।
अथवा पुरुष के वैरसे अलगहि हमें रखलीजिये॥६॥

एह्युषु ब्रवाणि हेऽग्न इत्येतरा गिरः । एभिर्वर्धसि इन्दुभिः ॥ ७ ॥

हे अग्निदेव ! पधारिये स्तुतियां तुम्हारे ही लिये।
इस भाँति शुद्ध उचारता उनको श्रवण कर लीजिये॥
औ राक्षसों का वर्ग स्तुति गाता जिसे सुन पावना।
आकेइन्ही श्री सोमरस से वृद्धि को पा जाव ना॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते वत्सा मनोयमत्परमाञ्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वा कामये गिरा ॥ ८ ॥

हे अग्नि! स्तुतिसे वत्सने तुम्हरा शुभान्तःकरण जो।
अत्यन्त उन्नतियुक्त औ दिवलोक जिसका सदन हो॥
उस सेति आकर्षण करत इस रीति तुमको चाहता।
अर्थात् राउर चित्त मुझ पै झुकै यह मैं माँगता॥ ८॥

त्वामग्न पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥ ९॥

हे अग्नि! मूर्द्धा के सरिस जो धारणे के योग्य है।
संसार के धारण करनको सर्व भाँति सुयोग्य है॥
अस कमल पत्ते पै तुझे श्रीयुत अरणि संयोग से।
श्री अथर्वाने मथन कर प्रकटित किया उद्योग से ९

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे। देवोह्यसि नो दृशे॥ १०॥

हे अग्नि! तुम हम सबन की सब भाँति रक्षाके लिये।
स्वर्गादिमें स्थित हो अतः यह काम फलयुत कीजिये
कारण, यदपि संसारके हितकारि देव अनेक हैं।
पै सामने देने दरस आपहि प्रकाशित एक हैं॥१०॥

शिवदत्त त्रिपाठी
(काव्यतीर्थ)

हिन्दी शिशुपालवध।

प्रथम सर्ग।

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥ १॥

मनुज रूप प्रभु जगत् अधारा।
शासन हेत सकल संसारा॥
करत वास रुक्मिणी समेता।
श्रीयुत श्री वसुदेव निकेता॥
ब्रह्मा तनय मुनिहि एक बारा।
उतरत नभसन कृष्ण निहारा॥

गतं तिरश्चीन मनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधोधाम विसारि सर्वतः किमेतदीत्याकुलमीक्षितं जनैः॥२॥

चलत अकास तिरीछहि भानू।
उठत ऊर्ध्व मुख ज्वाल कृसानू॥
नीचे गिरत तेज फैलावत।
को यह दैव! भूमि पर आवत॥
यहि बिधि अचरज करत विसेखा।
मुनिहि लोग तेहि अवसर देखा॥

चयस्त्विषामित्यव धारितंपुरा ततः शरीरीति विभाविता कृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥३॥

तेज पुंज सो प्रथम लखाना।
पीछे देह धरे तेहि जाना॥
पुरुष रूप निकस्यो पुनि सोई।
फिरि नारद जान्यो सब कोई॥

नवानधोऽवृहतः पयोधरान्समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र कृतिनास्फुटोयंमभूतिसितेन शम्भुना॥४॥

तन धरि मनहुं कपूर परागा।
निसरत नव घन सन अस लागा॥
जनु इक छिन गज खाल उतारी।
लसत भस्म सोहत त्रिपुरारी॥

दधान मम्भोरुह केसरद्युतिर्जिटाशरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाक पिङ्गास्तुहिन स्त्रलीरुहोधरा धरेन्द्र व्रतती ततीरिव॥५॥

जटा कमल केसर छबि लाजत।
शरद चन्द्र सम तेज विराजत॥
हिम पर उगी पीत रंग नाना।
बेल सहित ज्यों गिरि हिमवाना॥

पिशङ्ग मौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिन मञ्ज न द्युति।
सुवर्ण सूत्रा कलिता धराम्बरां बिडम्बयन्तं शिति नाससस्तनुम्॥६॥

चर्म कृष्ण मृग कर तन धारे।
मूंज डोर सन कसे सँवारे॥
गौर देह छबि यहि विधि होती॥
पहिरे मनहुं नीलपट धोती॥

विहंग राजांग रुहैरिवायतैर्हिरण्य मयोर्वीरुह वल्लि तन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिम शुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड़ रोम सम लसत सुहाये।
सुबरन मूंज जनेउ बनाये॥
सोहत मनहुं शरद ऋतु मांहीं।
बिज्जु डोर युत मेघ लखाहीं॥

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूदमपद्मणा लसद्विसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना।
चकासतं चारुचमूरुचर्म्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्॥ ८॥

टूटे मृणाल सरिस शुचि अंगा।
धारे हरिन चर्म बहु रंगा॥
मुनि शरीर उत्तम छवि पावत।
मानहुं धरे भूत ऐरावत॥

रजसमास्फालितवल्लकगुणवतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया।
पुरःप्रवालैरिव पूरितार्द्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया॥९॥

बार बार बीना पर धावत।
रगरत नख उज्ज्वल द्युति पावत॥
सोहत फटिक अक्ष की माला।
तहँ फेरत जनु गुंधे प्रवाला॥

यद्विराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
तुभिवद्ग्रामावशेषमूर्च्छना मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥१०॥

रहै वायु मँह स्वर धुनि व्यापी।
बार बार सोइ स्वरन अलापी॥
ग्राम बीच मूर्छना निसारत।
बार बार महतीहि × निहारत॥

सीताराम

हिन्दी कादम्बरी।

(११)

सायङ्कालीन चन्द्रोदयवर्णन और उज्जेयिनी का वृत्तान्त।

सन्ध्या के नष्ट होजाने पर, अपनी सहेली के दुःख से दुःखित हुई रात्रि ने, काले मृग-चर्म के समान, नये अँधेरे के आविर्भाव को धारण कर लिया। अन्धकार ने, मुनियों के मन को छोड़ कर, और सारे के सारे वस्तु जात पर कब्जा कर लिया।

इधर "सूर्य छिप गया" यह मालूम करके चन्द्रमा भी, अपने मित्र के वियोग में, मुनियों के आश्रम पर जैसे आकाशतल पर आ विराजे।

उस समय चन्द्रमा जात वैराग्य था-विशेषतः (ललाई) वाला था। उस के धुले हुए दुकूलरूपी वक्कल ही श्वेत अम्बर (वस्त्र) होते हैं, उस समय धुले हुए दुकूलरूपी वक्कल जैसा अम्बर (आकाश) था। उस का लैङ्गिक शरीर तारा (अश्विनी) और अन्तःपुर (कुण्डलिनी नाड़ी) के कमल में स्थित रहता है चन्द्रमा का शरीर तारा (अश्विनी आदि) सहित अन्तःपुर (रनवास) के पर्य्यन्त (निकट) वर्त्तमान था। उस समय चन्द्रमा अश्विनी आदि तारों के पास थे।

अब आकाश और आश्रम की तुलना का वर्णन सुनिए—

उस समय आकाश में अंधेरा ही तमाल वृक्ष था। आश्रम में अँधेरा जैसे तमाल के वृक्षों की पंक्तियां थीं।

आकाश, सप्तर्षि-मण्डल, (सात तारों) से अध्युषित (सेवित) था। वह आश्रम भी सप्तर्षि (सप्त ऋषि जैसे ऋषियों) से सेवित था।

आकाश, अरुन्धती (अरुन्धती नामक तारे) के सञ्चरण से पवित्र था। आश्रम भी अरुन्धती (वशिष्ठ ऋषि की स्त्री) के सञ्चरण (भ्रमण) से पवित्र था। आकाश, आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ नक्षत्र) से उपहित था। आश्रम भी; आषाढ़ (ढाक के दण्डों) से उपहित (युक्त) था।

आकाश में मूल (मूल नामक नक्षत्र) दिखाई दे रहा था। आश्रम में भी मूल (वृक्षों की जड़ें) दिखाई दे रहीं थीं।

आकाश के एक भाग में तारकारूपी मृग

× महती=नारदमुनि की वीणा का नाम है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नक्षत्र) था। उस आश्रम के भी विजन स्थानों में बड़े अच्छे तारक मृग (सुफ़ेद २ हिरन) विचरते थे।

उस आश्रम का पृथिवी पर चन्द्रमारूपी अलङ्कार को धारण करनेवाले, और तारेरूपी कपालों के टुकड़ों से अलङ्कृत, आकाशतल से, शिवजी महाराज के मस्तक से गंगा जैसी समुद्रों को उमड़ाती हुई और हंसों के समान सुफ़ेद २ चांदनी का पतन हुआ—वहां चांदनी अपनी निराली ही शोभा देने लगी।

उस समय खिले खिले और सुफ़ेद २ कुमुदों से और भी सुफ़ेद २ चन्द्रमारूपी तड़ाग में, चांदनी रूपी जल-पान के लोभ से, बीचों बीच घुसा हुआ और साथ ही साथ निश्चल मूर्त्ति चन्द्रमा का हिरन भी, अमृत की कांच से बना हुआ जैसा मालूम हो रहा था।

उस समय अंधेरेरूपी, वर्षा ऋतु के बीच जाने पर नये २ और सुफ़ेद २ निर्गुण्डी के पुष्पों के समान श्वेत यही नहीं समुद्रों से आये हुए हंसों से भी तुलना करने वाली चन्द्रमा की किरनों से कुमुदों के तड़ाग विलोडन किए जा रहे थे। बात यह है कि चन्द्रोदय पर कुमुदोदय होता है। प्रथम तो कुमुद ही बड़े श्वेत होते हैं और फिर उन पर चन्द्रमा की किरनों के पड़ने से उन की छवि कुछ निराली ही दिखाई देने लगी थी।

चन्द्रमा का सारे का सारा राग (निकलते समय की ललाई) दूर होजाने पर चन्द्रबिम्ब भी, आकाशगङ्गा में स्नान करने से सिन्दूर के धुलजाने पर, ऐरावत हाथी का गण्डस्थल जैसा दिखाई देने लगा था। ऐरावत हाथी सुफ़ेद होता है लेकिन मस्तक की सुन्दरता के लिये उस के गण्डस्थल पर सिन्दूर लगा दिया जाता है उस के धुल जाने पर गण्डस्थल निरा सुफ़ेद रह जाता है। बस इसी तरह चन्द्रमा का राग दूर हो जाने पर ठीक चन्द्रमा ऐरावत सा दिखाई देने लगा था।

ओस का स्राव करनेवाले चन्द्र भगवान् शनैः कुछ ऊँचे चढ़ आये थे, अमृत के धूलि-समुदाय के समान, चन्द्रमा की चाँदनी से भी संसार श्वेत होगया था, पाले के जल की बूंदों से मन्द २ चाल वाली सायङ्कालीन हवायें भी चलने लगी थीं, इन हवाओं में खिले हुए बहुतसे कुमुदों का गन्ध भी था।

यही नहीं नींद के भार से स्थगित पुतलियों वाले, परस्पर जुटे हुए पलकों के पुटवाले, तथा जुगाली के फेरने से अचञ्चल मुखवाले सुख से बैठे हुए आश्रम के हिरनों ने भी उस समय इस हवा का अभिनन्दन किया था।

चार घड़ी के लगभग रात चली गई थी। अब चुगा चुगे हुए मुझ को लेकर, बहुत से मुनियों सहित चन्द्रमा की चांदनी से चमकीले, तपोवन के एक हिस्से में विराजमान, और पास अपने जालपाद नामक, शिष्य द्वारा कुश जैसे पवित्र मृगचर्म्म से बनाये गये पंखे से उपवीज्यमान अपने पिता से हारीत ने कहा—

पिताजी! यह सारी की सारी तापस-मण्डली आप की सेवा में उपस्थित है। अद्भुत वस्तु के श्रवण-कुतूहल से इस का मन आकलित है। अपना गोल बांधे हुए यह बिलकुल तैयार है और आप की प्रतीक्षा कर रहा है। बस आप ही की देर इस की देर है। इस तोते ने भी अपनी थकावट दूर करली है।

अब तो सुनाइए कि इसने क्या किया है? पहले यह कौन था? और आगे को कौन होगा? इस प्रकार उस महामुनि जाबालि ने आगे रक्खे हुए मुझे देखकर और सब मुनियों को एकाग्रमन से श्रवणतत्पर समझकर, धीरे २ यूँ कहना प्रारम्भ किया। यदि आप लोगों को इस में ऐसा कुतूहल है तो सुनिए।

त्रिलोकी में तिलकरूप और कृतयुग की भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मभूमि जैसी उज्जयिनी नाम की एक नगरी है, इस को, त्रिलोकी के सर्जन, पालन और संहार करने वाले महाकाल नामक शिव ने अपने रहने के योग्य, दूसरी ही पृथिवी जैसा बनाया है--महाकाल नामक शिव उज्जयिनी में निवास करते हैं।

यह, मानो दूसरी पृथिवी की शंका से रसातल तक गहरे समुद्र जैसे परिखावलय से आवृत है—इस की रक्षा के लिये, इस के चारों तरफ समुद्र जैसे गहरे खन्दक खुदवा दिये गये हैं।

यह उज्जयिनी शिवजी महाराज के रहने की जगह है। इसी प्रेम से यह आकाश की खबर लेने वाली चोटियों वाले कैलास पर्वत जैसी और चूने से सुफेद सुफेद पुश्तपनाह से सुशोभित है।

वह नगरी, अगस्त्य ऋषि ने जिन का जल पी लिया है ऐसे समुद्रों के समान लम्बे चौड़े बाज़ारों से सुशोभित है। उन बाज़ारों में शंख, सीपी, मोती, मूंगे और मरकत मणियों के ढेर लगे हुए हैं। भुरभुल रूपी वालुका-समूह से वे व्याप्त हैं।

वह नगरी, अच्छे २ चित्रों वाले मकानों से भी बड़ी अच्छी मालूम होती है। उन मकानों में, देव, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और नाग निवास करते हैं। वे मकान निरन्तर उत्सवों में स्त्रियों के निरीक्षणरूपी कुतूहल से आकाश द्वारा उतरे हुए दिव्य विमानों की पंक्ति जैसे मालूम होते हैं।

ऊपर से आकाश गंगा जिन पर गिर रही है ऐसी हिमालय की चोटियों के समान ऊंचे २ देव-मन्दिरों से उस नगरी के रास्ते बड़े ही अच्छे मालूम होते हैं। देव-मन्दिर भी, विलोते समय उठे हुए दूध से सुफेद २ किये गये मन्दिराचल की छवि जैसी छवि को धारण कर रहे हैं। उन देव-मन्दिरों की चोटियों पर बहुत साफ २ सोने के छोटे २ कलशे रक्खे हुए हैं. मन्दिरों की सुफ़ेद २ ध्वजाओं को भी हवा, हिंडोले जैसे हिलाती है। वह नगरी अपने सीमाप्रदेश से भी अपना गौरव समझती है। वहां के कुओं की मनें, सुफेद चूने से पुती हुई बड़ी ही अच्छी मालूम होती हैं। निरन्तर रहट से जल देने के कारण, वहां के बागीचे ही अंधेरा जैसे मालूम होते हैं और मालती के पराग से वे सीमाप्रदेश धूसर हो रहे हैं।

वहां मकानों के चमनों में भी मधुपान करने के लिये भिनभिनाते हुए भौंरों से अंधेरा जैसा ही दिखाई देता है।

खिली हुई उपवनों की लताओं के फूलों के गन्ध से वहां का वायु बड़ा सुगन्धित रहता है।

×उस उज्जयिनी में मकानों के झण्डों से ही कामदेव की पूजा प्रकट होती है। वे झण्डे, प्रत्येक मकान में सब से ऊँची जगह पर रहते हैं। उन में मूंगे लगे रहते हैं और मछली के आकार से वे कढ़े रहते हैं। झण्डों के चारों तरफ़ लाल २ चमर बांधे जाते हैं। उनकी पताकाओं का कपड़ा भी लाल २ होता है। शुभ शकुनता के कारण, उनमें 'रनरन' शब्द करने वाले घण्टे भी वहां बांधे जाते हैं।

निरन्तर वेदाध्ययन की ध्वनि से उस नगरी के पाप धुल गये हैं।

वहां फुव्वारों वाले मकानों में, अपने पंखों को गुम्बदाकार किये हुए, बड़े नचैया अतएव नृत्त के रसिया, मत्त मयूर, मण्डल बांधे हुए अपनी वाणी से कोलाहल मचाया करते हैं। वे मकान बड़े ही सुन्दर हैं। उन में निश्चल मृदङ्ग के शब्द ही की गम्भीर-गर्जना है। फुव्वारों के जल-कणों की जिन गुच्छों पर वर्षा हुई है उन से वहां नित्य नई बरसात सी रहती है।

उन फुव्वारों पर सूरज की किरनें पड़ती हैं। उन्हीं से वहां इन्द्र के धनुष की कल्पना की जाती

×वसन्त ऋतु में इसीविधि से कामदेव का पूजन कियाजाता है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः वे फुव्वारे और भी अच्छे मालूम होते हैं।

वह उज्जयिनी, इन्द्र के नेत्रों के समान, हज़ारों सरोवरों से बड़ी ख़ूबसूरत मालूम होती है। वे सरोवर भी खिले हुए कमलों से बड़े मनोहर मालूम होते हैं और विकसित कुमुदों से उनका मध्य भाग सुफ़ेद २ हुआ रहता है। उन सरोवरों में मछलियां भी रहती हैं उनके दीखने से उन सरोवरों का सौन्दर्य्य और भी बढ़ जाता है।

वहां बहुत से घरों में हाथी दांत की बनी हुई कबूतरों की छतरियां लग रहीं हैं। अतएव वह नगरी सुफ़ेद २ मालूम होती है। वे छतरियां घिसके घिसके केलों से आकलित और अमृत के झागों के समान सुफ़ेद २ हैं।

यौवन-मद से मत्त हुईं, मालवीय महिलाओं के कुच—कलशों से जिस का जल हिलाया गया है ऐसी सिप्रा नदी से वह नगरी व्याप्त है—वह सिप्रा नदी के किनारे पर है।

वह नदी, महाकाल नामक शिव के मस्तक पर गंगा को देख कर, कुढ़ती हुई जैसी निरन्तर तरंग रूपी भ्रकुटि चढ़ाये हुए मानो आकाश पर पानी फेंकती हुई मालूम होती है।

वह नगरी, विलासी जनों से भी अधिष्ठित है—वहां बहुत से विलासी पुरुष निवास करते हैं। उन लोगों का, शिव जी महाराज की जटाओं में स्थित चन्द्रमा की समान सारे संसार में यश प्रसिद्ध है। चन्द्रमा का भी सारे संसार में यश (कान्ति) प्रसिद्ध है।

चन्द्रमा कोटिसार है—शिव जी के अग्रभाग—मस्तक में विराजमान होने के कारण प्रधान है।

वे लोग भी कोटिसार—करोड़ों की सम्पत्ति वाले हैं। वे मैनाक जैसे अविदित पक्षपात हैं। मैनाक पर्वत का पक्षपात (पंखों का पतन) अविदित है। उन लोगों का भी किसी तरह का पक्षपात अविदित है—विदित नहीं है।

वे लोग, गंगा के प्रवाह से भी बराबरी करते हैं। गंगा के प्रवाह में कनक पद्म राशि-सुवर्ण जैसे कमलों का समुदाय प्रकटित होता रहता है। उन लोगों के यहां भी कनक (सुवर्ण) और पद्मराग मणियों का समुदाय प्रकटित है।

वे लोग, स्मृति शास्त्र से भी तुलना करते हैं।

स्मृति शास्त्र, सभा, छात्रों के लिये सदावर्त, कुवे, पौशाला, बगीचे, देवमन्दिर, पुल और रहटों का प्रवर्तक (प्रेरक) है—इन कामों के लिये प्रेरणा करता है।

वे लोग भी, सभा, सदावर्त, कुवे आदि के प्रवर्तक (बनवाने वाले) हैं।

वे लोग मन्दिराचल से भी बराबरी करते हैं।

मन्दिराचल ने सागर रत्नसार—समुद्र से १४ रत्नों को निकाला था—बाहर किया था।

उन के यहां सागररत्नसार (समुद्र के समान रत्नों में मुख्य रत्न) उद्धृत रहते हैं—बाहर रक्खे रहते हैं।

वे विलासी, गरुडरत्न पास रखते हुए भी भुजंग—भीरु हैं—सांपों से डरते हैं। नहीं, नहीं, भुजंगभीरु हैं—धूर्तों से डरते हैं। उन लोगों का, खलोपजीवी होते हुए भी सज्जन पुरुषों से विभव (धन) भोगा जाता है—वे सज्जन से जीविका करते हैं। वे खल (खत्ती) का व्यवहार करते हैं। वे लोग, वीर होते हुए भी नमनशील हैं। प्रियवक्ता होते हुए भी सत्यवादी हैं। वे बड़े ख़ूबसूरत हैं तदपि अपनी ही स्त्रियों में सन्तुष्ट हैं। वे अतिथि जनों के स्वागत के लिये प्रार्थी हैं—इच्छुक हैं। परञ्च परपुरुषों से याचना करने में अकुशल हैं—कैसी ख़ास बातें हैं! वहां के निवासी कामार्थ (काम—केलि और धन) में आसक्त होते हुए भी धर्म प्रधान हैं—धर्म ही को मुख्य समझते हैं। बात यह है कि वे कामार्थपर हैं—वाञ्छित पदार्थों के साधन करने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बड़े पराक्रमी होते हुए भी परलोक(शत्रुओं) से डरते हैं। नहीं नहीं वे परलोक (दूसरे लोक) से डरते हैं--परम आस्तिक हैं।

वे लोग, समस्त शिल्पादिकों के तारतम्य में कुशल, दानशील, बड़े चतुर, मन्दमुसकान पूर्वक भाषण करनेवाले, हास्य विद्या में विद्वान् और उज्ज्वल वेष सारे के सारे देशों की भाषाओं में शिक्षित, वक्रोक्ति-निपुण, आख्यान और आख्यायिका के परिचय देने में बुद्धिमान् सब लिपियों के जानने वाले, महाभारत, पुराण और रामायण में अनुराग करनेवाले वाशिष्ठादिक कथाओं के रहस्य को कहनेवाले और द्यूतादिक कलाओं में पारगामी हैं। शास्त्रों और सुभाषितों के अनुरागी और व्यसनी हैं। बड़े शान्त हैं।

वे लोग वसन्त माल के वायु-समान, सतत दक्षिण हैं—निरन्तर दक्षिणा देनेवाले हैं। वासन्ती वायु भी सतत दक्षिण होती है-निरन्तर दक्षिण दिशा से चलने वाली होती है—वसन्त में प्रायः दक्खनी हवा चला करती है।

वे लोग, हिमालय के वनों के समान अन्तःसरल हैं-उन के मन साफ़ हैं। वनों के भी अन्तः (अन्दर) सरल (वृक्ष) होते हैं।

वे लोग, लक्ष्मण से बराबरी करते हैं। लक्ष्मण रामाराधन--रामचन्द्रकी सेवा-में कुशल थे। वे लोग रामा (स्त्रियों) के आराधन में कुशल हैं।

वे शत्रुघ्न से भी तुलना करते हैं। शत्रुघ्न,भरत (अपने भाई) से खूब प्रेम प्रकट किया करते थे। वे लोग भी भरत (नाट्यशास्त्र) में अपना परिचय प्रकट करते हैं।

वे लोग दिन जैसे मित्रानुवर्ती भी हैं—अपने मित्रों के अनुगामी भी हैं। दिन भी मित्रानुवर्ती है--सूर्य के पीछे २ चलने वाला है।

वे बौद्ध जैसे सर्वास्तिवाद में शूर हैं—सारी की सारी वस्तुओं के अस्तिवाद में शूर हैं—कभी किसी वस्तु के लिये नास्ति का प्रयोग करना ही नहीं जानते। बौद्ध भी सर्वास्तिवाद (निकाय भेद) में शूर होते हैं।

वे लोग सांख्यसिद्धांत जैसे प्रधानपुरुषोपेत हैं—मुख्य २ मनुष्यों से युक्त हैं—उन के पास खास २ आदमी बैठते हैं। सांख्यसिद्धान्त भी प्रधान पुरुषयुक्त होता है—प्रधान (प्रकृति) और पुरुष (चेतनरूप) का मानने वाला होता है।

वे जैनियों के धर्म से भी बराबरी करते हैं। वे बड़े जीवानुकम्पी हैं-जीवों पर दया करने वाले हैं। जैनियों के धर्म में भी जीवानुकम्पा का वर्णन है।

वह नगरी, राजमहलों से पर्वतसहित जैसी, बड़े मकानों से राजधानीसहित जैसी, सत्पुरुषों से सकल्प वृक्ष जैसी, और चित्रोंसहित दीवारों से सारे संसार का रूप प्रकाशित किये हुए जैसी मालूम होती है।

वह नगरी, सन्ध्या जैसी भी मालूम होती है। सन्ध्या में पद्म राग मणि जैसी लालिमा होती है। वहां भी पद्मराग मणियों की लालिमा है—वहां रईसों के मकानों में पद्मराग मणियां लगी हुई हैं।

वह नगरी इन्द्र मूर्त्ति जैसी भी मालूम होती है। इन्द्र मूर्त्ति मख-शत (सौ अश्वमेधों) के अग्नि-धूम से पवित्र है—इन्द्र ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं। वह नगरी भी मख शत (सैंकड़ों यज्ञों) के अनल-धूम से पवित्र है—वहां सैंकड़ों याज्ञिक निवास करते हैं।

वह नगरी, शिवजी की नृत्य-क्रीड़ा से भी बराबरी करती है। शिवजी की नृत्यक्रीडा में सुधा धवलाट्टहास (अमृत के समान सुफेद २ महाहास) होता है। उस नगरी में भी सुधाधवलाट्टहास है-चूनेकी पुती हुई सुफेद २ दूकानें ही हास्यरूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस नगरी को बूढ़ी स्त्री से भी तुलना दी जा सकती है। बूढ़ी स्त्री जातरूप क्षय-रूप का नाश किये हुए होती है। उस नगरी में भी जातरूप (सोने) के क्षय (मकान) हैं।

वह नगरी गरुड़ की मूर्त्ति से भी बराबरी करती है। गरुड़ की मूर्त्ति अच्युत (विष्णु भगवान्) की स्थिति से बड़ी रमणीय मालूम होती है। वह नगरी अच्युत (सदा रहने वाली) स्थिति (मर्यादाओं) से बड़ी रमणीय है—वहां की मर्यादायें अविचलित हैं। वह नगरी, प्रभात वेला से भी बराबरी करती है। प्रभात वेला में सब लोग प्रबुद्ध होते हैं—सोकर जागते हैं। उस नगरी में भी सब लोग प्रबुद्ध हैं—बड़े विद्वान् हैं।

उस नगरी की भीलों की नगरी से भी तुलना की जासक्ती है। भीलों की नगरी में लटके हुए चामर और नाग-दंत (हाथी दांत) से गृह (मकान) सुफेद हुए रहते हैं। उस नगरी में भी, चामर जिन पर लटके हुए हैं ऐसे नागदंत (खूँटियों) से मकान सुफेद हो रहे हैं।

वह नगरी, शेषनाग के शरीर से भी तुलना करती है। शेषनाग के शरीर के समीप वसुधाधर (पर्वत) सत्—बड़े अच्छे मालूम होते हैं। वह नगरी सदा निकटवर्त्तिनी वसुधा (पृथिवी) को धारण कराती है—पालन कराती है।

वह नगरी समुद्र-विलोडन के समय से बराबरी करती है। समुद्र-विलोडन के समय महाघोष (महा-शब्द) से सारी की सारी दिशायें पूरित होगई थीं। उस नगरी की भी दिशायें महाघोष (बहुतसे अहीरों के गावों) से पूरित हैं—उस नगरी के चारों तरफ अहीरों के गोहरे हैं।

वह नगरी, प्रस्तुत राज्याभिषेक भूमि से भी समता करती है। राज्याभिषेक के समय सैकड़ों सोने के कलशे समीप में रक्खे जाते हैं। उस नगरी में भी सैकड़ों सोने के कलशे हैं।

वह पार्वती के तुल्य है। पार्वती की महासिंहासन (बहुत बड़े सोने के आसन) पर मूर्त्ति होती है। उस नगरी की भी महासिंहासन (बहुत बड़े आसन) पर उचित मूर्त्ति है-वह नगरी बहुत लम्बी चौड़ी है।

वह नगरी अदिति से भी बराबरी करती है। अदिति देवकुल सहस्र (हजारों देवताओं) से सेव्य है—देवता अपनी माता की भले प्रकार सेवा किया करते हैं। वह नगरी भी देवकुल सहस्र (हजारों देव-मन्दिरों) से सेव्य है-वहां हजारों देवमंदिर हैं अतः मनुष्यों को सेवन करने योग्य है।

वह नगरी शूकरावतार की क्रीड़ा से भी तुलना करती है। शूकरावतार की क्रीड़ा में हिरण्यनामक दैत्य के अक्ष (इन्द्रियों) का पात (नाश) हुआ है। उस नगरी में भी हिरण्य (सोने) के अक्ष (पासों) का पात हुआ करता है—वहां सोने के पासे फेंके जाते हैं।

वह नाग माता से भी समता करती है। नाग माता, भुजङ्ग लोक (साँपों) को आनन्दित करती है। उस नगरी में भुजङ्ग लोक (वेश्यापति समुदाय) भी आनन्दित रहता है।

वह नगरी, हरिवंश कथा जैसी भी है। हरिवंश पुराण की कथा बाल (बाल नामक राजा) की अनेक क्रीड़ाओं से बड़ी रमणीय है। वह नगरी भी बालकों के खेलों से रमणीय है।

उस नगरी में स्त्रियों का संभोग स्पष्ट है तदपि वह अखण्डित चरित्र है—उस के चरित्र पर कोई धब्बा नहीं है।

वह नगरी, रक्तवर्ण होते हुए भी चूने से खूब पुती हुई है—अतः सुफेद २ है। बात यह है कि वह नगरी रक्तवर्ण है। उस नगरी में ब्राह्मणादि वर्ण बड़े अनुरक्त हैं।

उस नगरी में बहुत से मोती लटके हुए हैं तो भी वहां कामक्रीड़ा में हार ही का भूषण मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। बात यह है कि उस नगरी के विहार (जैनप्रासाद) ही भूषण हैं-उस नगरी में जैनियों के बड़े बड़े स्थान हैं।

वह नगरी बहुप्रकृति होते हुए भी स्थिर है, उस में बहु (बहुत सी) प्रकृति (जनता) है-उस की जनसंख्या भी बहुत है। उस की कहां तक प्रशंसा की जाये। उस ने अपनी कान्ति से स्वर्ग की कान्ति को भी फीका कर रक्खा है। मालवे में उज्जयिनी एक खास नगरी है। (क्रमशः)

—०—

विविध विषय।

१-हिन्दी नैषधचरित।

'मनोरमा' की दूसरी और तीसरी ध्वनि में 'दमयन्ती और हंस' एवं सातवीं और आठवीं में 'दमयन्ती का स्वयम्वर' के नाम से जो लेख प्रकाशित हुए हैं वह महाकवि हर्ष प्रणीत नैषधचरित महाकाव्य का हिन्दी भाषानुवाद है। स्वयम्वरसम्बन्धी एक अन्तिम लेख इस ध्वनि में भी दूसरी जगह प्रकाशित हुआ है। हिन्दी जनता ने इस लेखमाला को बड़ा पसन्द किया है। इस लिये हमारा विचार है कि हम इस लेखमाला को पुस्तकरूप में प्रकाशित कर दें। संस्कृतज्ञ पाठक इस बात को जानते होंगे, कि नैषधचरित को हिन्दी में लिखना कितना सहल या कठिन काम है। बहुत सम्भव है कि हमारी लेखनी से प्रस्तुत हिन्दी नैषधचरित में कुछ कमी रह गई हो अतः पुस्तकाकार प्रकाशित होने से पहिले इस विषय पर आलोचनायें होजायें तो बड़ा अच्छा हो, इस साहित्यवाद में उभयपक्ष के लेखकों के सिवा, पाठकों की भी खासी ज्ञानवृद्धि होने की सम्भावना है।

इस सम्बन्ध में जो महाशय कुछ लिखने की कृपा करेंगे, 'मनोरमा' उन्हें प्रकाशित करने के लिये सहर्ष तैयार होगी।

व्याकरणाचार्य्य पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी भूतपूर्व प्रधानाध्यापक ऋषिकुल हरिद्वार ने 'मनोरमा' की आलोचना करते हुए वास्तव में यह ठीक ही लिखा था कि "जिन ग्रन्थों का अनुवाद हम करने लगे हैं, उन के लिए बहुत अधिक प्रौढ़ता की आवश्यकता है" बात ठीक है। इसी लिये हम इस विषय पर पहिले आलोचना हो जाना अच्छा समझते हैं। बड़ा अच्छा हो, यदि चतुर्वेदीजी ही इस विषय पर लिखने की कृपा करें।

—०—

२-सम्पादक विद्यालय।

लंडन यूनिवर्सिटी में तो सम्पादकों के पढ़ाने का काम शुरू हो गया। वहाँ हर साल जूलाई में परीक्षा हुवा करेगी। पहिली परीक्षा सन् १९२१ में होगी। पाठक यह सुन कर प्रसन्न होंगे कि भारत में भी इस शुभ कार्य का प्रारम्भ होगया है। यहां इस काम के नेतृत्व का सेहरा बाबू ब्रजेन्द्रनाथ बैनर्जी के सिर से बांधा गया है। आप के सभापतित्व में कलकत्ते में एक सम्पादक-विद्यालय खोल दिया गया है। कलकत्ते में जो कुछ हुवा है, यू०पी० में भी तो वह होना चाहिये। क्या 'हिन्दुविश्वविद्यालय' के नेताओं का ध्यान इस ओर न होगा?

—०—

३-शिष्य और गुरु।

कलकत्ते का 'मुसलमान' गर्म दल का एक पत्र है। इस ने 'बंगाली' के सम्पादक बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनरजी पर माडरेट पार्टी के नेता होने के कारण जो बोदेपन का एतराज किया था, इसपर बैनरजी ने एक वक्तृता में कहा—

"आश्चर्य्य है कि जिस पत्र के बीज बोने में हम ने स्वयं सहायता दी थी, आज वह स्वतन्त्रता में हम से भी चार कदम आगे जाता है। इस का जो उत्तर 'मुसलमान' के अनुभवी सम्पादक ने दिया है, वह बड़ा ही उपयुक्त और समयो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित है। वह कहते हैं कि बाबू साहब अवश्य हमारे राजनैतिक गुरु थे, मगर अब वह मकतब के मुल्ला की तरह वहीं के वहीं रह गये, और हम उन के पुराने शिष्य बी० ए० एम० ए० हो कर उनसे बहुत आगे बढ़ गये !!!

मुसलमान-सम्पादक के कथनानुसार बैनरजी पर वास्तव में अब यह कहावत चरितार्थ होगई—

गुरु तो गुड़ रह गये और चेले शकर होगये।

—०—

४-बूढ़े को डर।

संसार की दशा भी बड़ी विचित्र है। एक तरफ़ यहां छः छः सात सात वर्ष के बालक, साधु हो कर देश को बरबाद करते हैं, और स्वयं वे आख़िर दम तक निरे बाबाजी बनेरहते हैं। 'जौक़' की यह उक्ति ऐसे लोगों पर अच्छी चरितार्थ होतीहै—

"घर से भी वाक़िफ़ नहीं उसके कि जिसके वास्ते।
बैठे हैं घर बार सब हम खाना, वीरां छोड़कर॥"

दूसरी तरफ़ योरुप में ९०-९० वर्ष के बूढ़े अपना विवाह रचाते हैं। हाल ही में एक ऐसे विवाह का समाचार मिला है, जो इसप्रकार है—

मिस्टर 'जान' ने ९० वर्ष की अवस्था में ७६ वर्ष की एक विधवा स्त्री से विवाह किया है। विशेष आनन्द की बात यह है कि इस अनुपमेय विवाह में जो आदमी सम्मिलित हुए वे भी सब के सब बूढ़े ही थे। वैसे तो यह विवाह ही स्वयं विचित्र था, पर वर महाशय का इस विवाहकरण का कारण बहुत ही विचित्र था। जब आप से पूँछा गया कि आप का इस घोरतर बुढ़ापे में तीसरे विवाह का विचार क्यों हुवा तो आप ने उत्तर में कहा कि मुझे रात में अकेले सोते हुए डर मालूम होता है !!!

कभी २ योरुप के ऐसे समाचारों को पढ़ कर हम सन्तोष कर लेते हैं।

—०—

५-सूद और महर्षि याज्ञवल्क्य।

'सूद लेना और देना बड़ा हराम है। वैश्यों ने सारे संसार को लूट लिया यह बड़ी बुरी वृत्ति है। वैश्य, जितना सूद आज कल लेते हैं, वह शास्त्रीय विधान के विरुद्ध है। 'हिन्दू ला' भी इस का निषेध करता है। मेरठ के ख़्वाजे गुलामुस्सलीन साहब ने ठीक ही किया, जो मरते मरते इस सम्बन्ध के प्रस्ताव को पेश कर दिया। और जो अब कुछ परिवर्तित रूप में पास भी होगया है।"

ऐसी ऐसी न मालूम कितनी बातें हैं, जिन्हें नित्यप्रति वाचाल मुखों पर आने का अभ्यास हो गया है।

गवर्नमेंट के इस क़ानून को पास करने के विषय में मेरठ के 'रायसाहब' लाला सीताराम जी एम० ए०, एल एल० बी० ने जो कुछ लिखा है, वही बहुत काफ़ी है। हम नीचे, महर्षि याज्ञवल्क्य के मत का उल्लेख करते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति का व्यवहाराध्याय इस विषय में बड़ा ही अच्छा है, इस में सूद की सब बातें विशेषतया लिखी हैं। वह लिखते हैं—

किफ़ालती सूद, एक रुपया चार आने सैकड़ा माहवार हो। और सादा, ब्राह्मणों से दो रुपया सैकड़ा, क्षत्रियों से ३), वैश्यों से ४) और शूद्रों से ५) सैकड़ा माहवार लिया जाय।

जंगलात के ठेकेदारों से १०) सैकड़ा और मल्लाहों से—समुद्र में ग़ोता लगाने वालों से—२०) सैकड़ा माहवार लिया जाय।

यही नहीं, जिससे जो ठहर जाय लिया जाय। अपनी ग़रज़ के लिये कोई लेता देता है, इस में क़ानून की पाबन्दी का क्या दख़ल ?

—०—

६-इबादत और तिजारत।

इबादत करते हैं जो लोग, जन्नत* की तमन्ना में।

* स्वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इबादत तो नहीं है,एक तरह की वह तिजारत है ॥
जो डर कर नारे दोज़ख़ ÷ से, ख़ुदा का नाम लेते हैं।
इबादत क्या वह ख़ाली बुज़दिलाना एक ख़िदमत है॥
मगर जब शुक्रे नेमत में जबीं + झुकती है बन्दे की।
यह सच्ची बन्दगी है, इक शरीफ़ाना इताअत है ॥

एक मिसल।

जो जमड़ा गया, आगया बनके बूट।
तसद्दुक़ किया हिन्द ने सीमो ज़र॥
हमारी तो देखो हुई वह मिसल।
मियां ही की जूती मियां ही का सर॥

सभ्यता का ज़ोर शोर।

हिन्द में उन्नीससौचौदह से सन अट्ठारह तक।
नालिशें दायर हुई हैं आठलाख और इक करोर॥
मरहबा! सरसब्ज़ होजायेगा सारा मुल्क अब।
गर यूं हि क़ायम रहा तहज़ीब का यह ज़ोर शोर॥

"देश"

साहित्य-चर्चा।

१-बीबी की तालीम। हिस्सा अव्वल, आकार मँझोला, पृष्ठ संख्या १४४, मूल्य ॥।)

मिलने का पता—सैयद मुहम्मदसादिक़ कारकुन, अरब सराय, देहली।

उर्दू साहित्य में ख़्वाजा हसन नज़ामी साहब का नाम ख़ूब प्रसिद्ध है। आज कल आप उर्दू के बेनज़ीर लेखक समझे जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के आप और आप की प्यारी, दूसरे विवाह से विवाहिता, सप्तदशवर्षीया धर्मपत्नी लैले ख़्वाजा बानो साहिबा, लेखक हैं। गृहस्थ से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर, पत्रप्रेषण के नये ढङ्ग से, आप ने शिक्षाजनक अच्छे लेख लिखे हैं। उर्दू जानने वाले गृहस्थी के लिये पुस्तक बड़े काम की चीज़ है।

यह जान कर हम बड़े प्रसन्न हुए कि 'बीबी की तालीम' को रियासत हैदराबाद के शिक्षा-विभाग ने अपनी पाठ्य प्रणाली के कोर्स में ले लिया है। आपकी लेखन शैली की हम क्या तारीफ़ करें, वह बड़ी मज़ेदार है। प्यारी लैले के 'अस्तु वचन' वाले छोटे छोटे जवाबी लेख भी उसका ख़ूब लावण्य बढ़ाते हैं। आप के 'दमड़ी' वाले लेख को हम ने बड़े शौक़ के साथ पढ़ा। इस के सिवा हमें आप के और कई लेख बहुत पसन्द आये।

२-भूलोक का अमृत-लेखक, वैद्य गोपीनाथ गुप्त, प्रकाशक, आर्य पुस्तकालय, हलदौर, ज़िला बिजनौर, पृष्ठ संख्या ६१ मूल्य ।-) प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक में दूध के गुण, उपयोगिता और उस की परीक्षा आदि बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई हैं। पुस्तक का विषयारम्भ वैद्यजी ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखा है। किस्से कहानियों की पुस्तकें अब हिन्दी में बहुत लिखी जाने लगी हैं, ऐसा न होकर इस विषय की भी पुस्तकें लिखी जायें तो बड़ा लाभ हो। हम वैद्य जी को इस सामयिक और लोकोपयोगी पुस्तक-लेखन के लिये बधाई देते हैं।

३-गौड़हितकारी-यह मासिकपत्र मैनपुरी से निकलता है। इसे निकलते हुए ६-७ वर्ष होगये। गौड़ जाति की इस ने बड़ी सेवा की है। पर हिन्दी भाषाभिज्ञ जनता किसी को सेवा का बदला अच्छे रूप में नहीं देना जानती। सितम्बर के गौडहितकारी के देखने से मालूम हुआ कि इस के साथ भी हिन्दी भाषाभिज्ञ गौड़जाति ने यही व्यवहार किया है। इसी से गत वर्ष बेचारे को ४००) का घाटा रहा है। आशा है कि गौड़ जाति अपने हितकारी का, उसी के लिए किया हुआ यह घाटा शीघ्र पूरा करके अपनी गुणग्राहिता का परिचय देगी। आ तक इस के सम्पादक पण्डित नारायणप्रसाद गौड़ हैं।

४-जयाजी प्रताप। महाराज के जन्म दिन का अङ्क समालोचनार्थ हमारे पास आया है। हिन्दी भाषा का यह एक अच्छा साप्ताहिक पत्र है। प्रस्तुत अङ्क में कई कवितायें और लेख बड़े महत्व के हैं। पद्मावती नामा लेख ऐतिहासिक दृष्टि से

÷ नरक। + मस्तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित-समाज के मनन करने योग्य है। वार्षिक मूल्य ३) मिलने का पता—मैनेजर जयाजी प्रताप, लश्कर, ग्वालियार।

५--जासूसी पुस्तकें--जासूस के सम्पादक, पण्डित गोपालराम गहमरनिवासी ने, दो पुस्तकें हमारे पास समालोचनार्थ भेजी हैं। पहली का नाम है, 'जासूस की डाली' और दूसरी का 'जासूस-की बुद्धि'। दोनों पुस्तकें जी बहलाने के लिये अच्छी हैं। जिन्हें उर्दू की तरह हिन्दी में जासूसी नाविल पढ़ने का शौक़ होवे, गहमर ज़िला ग़ाज़ीपुर से मँगा सकते हैं। पहिली का मूल्य १)और दूसरी का ॥।-) है। कागज़ लिखाई, छपाई सब अच्छी है।

६-उपनिषद् रहस्य-पृष्ठ संख्या ४०, मूल्य ढाई आने। इस के सम्पादक और अनुवादक हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक, लाला कन्नोमल जी एम० ए० हैं। ईश, केन आदि ८-१० उपनिषदों में से आप ने आत्मा और परमात्मासम्बन्धी वाक्यों का संग्रह किया है। नीचे हिन्दी और इंगलिश में अनुवाद भी है। पुस्तक पाठ करने योग्य है। श्रीमती एनी बिसंट भी इस की प्रशंसा करती हैं। लाला जी का यह धार्मिक परिश्रम प्रशंसनीय है। पुस्तक की छपाई और कागज़ बड़ा अच्छा है। मिलने का पता-दामोदर यन्त्रालय, परतापपुरा, आगरा है।

—०—

नीचे लिखी पुस्तकें और समाचार पत्र भी हमारे पास आगये हैं, भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

नाम	प्रेषक
१-व्यापार (मासिक पत्र)	मैनेजर, व्यापार, लखनऊ
२-शिक्षा प्रभाकर (मासिक पत्र)	मैनेजर शिक्षा-प्रभाक, अलीगढ़
३-श्रीमहीपाल उपन्यास। ४-धन। ५-प्रश्नोत्तरशतक धर्मचर्चासंग्रह। ६-दास विलास	बनारसी उर्फ़ दास जैनमदन मोती खां, रामपुर स्टेट
७-प्रण भंग ८-देशी माला-प्रथम पुष्प	श्रीयुत नरसिंह दास, मन्त्री देशहितकारिणी समिति, सदरबाज़ार, जबलपुर।

मनोरम श्लोक।

(१)

स्मर नृशंसतमस्त्वमतो विधिः,
सुमनसः कृतवान् भवदायुधम्।
यदि दृढं धनुरायसमाशुगं,
तव सृजेत् त्रिजगत्प्रलयं व्रजेत्॥

मन्मथ महाराज से सताया हुवा विरही कहता है-

हे कामदेव! तुम बड़े निर्दयी हो, इसी लिए ब्रह्मा ने तुम्हें पुष्पों का शस्त्र समर्पण किया है। कहीं तुम्हारे लिये वह यदि कोई मज़बूत लोहे का धनुष बना देता तो निःसन्देह तुम त्रिलोकी को प्रलय कर डालते। इतने पर तो तुम्हारी यह दशा है।

(२)

यद्यपि शिरोऽधिरोहति,
रौद्रः क्रोधेन सिंहिकातनयः।
त्यजति न शरणं यातं,
सागरसुतुर्मृगं तदपि॥

अच्छे आदमी घोरतर विपत्ति में भी अपनी आदत नहीं छोड़ते, इस पर एक कवि कहते हैं—

राहु बड़े ग़ुस्से में भर कर चन्द्रमा के शिर पर चढ़ता है-उस की चोटी पकड़ कर खींचना चाहता है। ऐसी दशा में भी चन्द्रमा अपनी सरन में आए हुए--अपने अधीन रहने वाले, हिरन को नहीं छोड़ता-ऐसी धीरता और शरणपालकता वास्तव में सराहनीय है।

केशवशरण गुप्त

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोरमा

"समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुमिति"
(प्रश्नोपनिषद्)

सम्पादक—
प्यारेलाल दीक्षित
और
रामकिशोर गुप्त (अलंकार शास्त्री)

कमूल्य ३)] मनोरम-कार्य्यालय, मण्डी धनौरा, यू०पी०से प्रकाशित [प्रति संख्या ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[१] प्रभु प्रार्थना—[लेखक-'प्रभुजन' ... ६०५
[२] संस्कृत रूपक और भास—[ले० बाबू भवानी प्रसाद गुप्त ... ६०५
[३] हमारा परिचय—[ले०-बाबू गङ्गा-शरण गुप्त ... ६१२
[४] हंस की पुकार—[लेखक-मुंशी अब्दुल-लतीफ़ खां ... ६१३
[५] अशोक वाटिका में सीता जी—[ले०-ला०सीताराम बी०ए० रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर ... ६१४
[६] एक दुखिया—[लेखक-पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ६१५
[७] प्रतिभा का साहित्य संवाद ... ६१५
[८] मातृपूजा—[लेखक-साहित्याचार्य पण्डित महेश्वरप्रसाद शास्त्री ... ६२१
[९] कात्यायन—[लेखक-विद्याभूषण पंडित श्री हरिहर सुरूप शर्मा शास्त्री ... ६२२
[१०] आर्य असुर और दानव—[लेखक-मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ ... ६२४
[११] हिन्दी में सामवेद [लेखक-साहित्योपाध्याय पं०शिवदत्त काव्यतीर्थ ६२६
[१२] नहीं अच्छा—[लेखक साहित्याचार्य पं० महेश्वरप्रसाद शास्त्री ... ६२७
[१३] फूल—[लेखक-पं० लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी ... ६२९
[१४] हिन्दी कादम्बरी ६२९
[१५] विविध विषय ६३२
[१६] साहित्य चर्चा ६३६
[१७] छोटे बच्चों की बात चीत-[लेखक प०गोविन्दप्रसाद घिलड्याल बी० ए० डिप्टी कलक्टर ६३६
[१८] अख़बार का नमूना—[ले०-'नमूने बाज़ भंगड़' ... ६३८
[१९] मनोरम श्लोक—[लेखक-बाबू गङ्गा-शरण गुप्त ६३८
[२०] मनोरमा और लोकमत ६३९
[२१] चित्र की बात- ६४०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—मनोरमा प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इस का वार्षिक मूल्य और एक संख्या का ।≈) है।

३—किसी लेख को घटाने, बढ़ाने तथा प्र करने, न करने का अधिकार सम्पादक को

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें बदले के पत्र "सम्पादक मनोरमा, मण्डी धन यू० पी०" के पते से आने चाहियें। मूल्य तथा प्र सम्बन्धी पत्र "मैनेजर, मनोरम कार्य्यालय, म धनौरा, यू० पी०" के पते से आने चाहियें।

५—पत्रोत्तर के लिये टिकट आना श्यक है।

६—मनोरमा में राजनैतिक लेख नहीं जायँगे।

७—जो लेख पुरस्कार देने योग्य समझे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार भी करे मनोरमा के नियमानुसार पुरस्कार भी प्रस पूर्वक दिया जायगा।

८—मनोरमा में सम्पादकों के मत के विरुद्ध युक्तियुक्त लेख छापा जा सकता है।

मनोरमा में विज्ञापन।

कवर पेज पर १ पृष्ठ की छपाई ७॥) प्रतिमास
१ पृष्ठ या दो कालम की छपाई ५) "
आधा पृष्ठ या एक कालम की " ३) "
चौथाई पृष्ठ या आधे कालम की २) "
⅛ पृष्ठ या चौथाई कालम की , १॥) "

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वी नहीं की जायगी।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छ वालों को मनोरमा बिना मूल्य भेजी जायगी को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

मैनेजर—**मनोरम कार्यालय,**
मंडी धनौरा, यू०-पी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहकों से निवेदन ।

हर्ष की बात है कि इस संख्या के साथ 'मनोरमा' के पहले अलंकार की १२ ध्वनियाँ सानन्द प्रकाशित होगईं ।

कहा करते हैं कि चतुरानन ब्रह्मा का चार युगोंका एक दिन होता है । इस हिसाब से उन के एक वर्ष को बड़ा समय लगता है । अतः कुछ आश्चर्य नहीं जो—देवताओं की न सही---गुण ग्राही पुरुषों ही की—'मनोरमा' का वर्ष इतने दिनों में पूरा हुवा !!!

हम जानते हैं कि 'मनोरमा' के पाठक, इस के पिछले प्रकाशन शैथिल्य से अधीर हो उठे थे, पर अब इधर तीन महीनों से वे इस के वर्तमान व्यवहार को अच्छी तरह समझ गये होंगे । अब इसके ठीक समय पर प्रकाशन का बड़ा ही माकूल इंतज़ाम कर दिया गया है ।

'मनोरमा' के वैभव के विषय में हमें यहां कुछ कहने का अधिकार नहीं है। पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दी के प्रायः सभी धुरन्धर लेखक और कवियों की कृपादृष्टि का यह लक्ष्य रही है । इतने कम मूल्य में प्राप्त होने वाली कोई भी पत्रिका आज तक, इतने रंगीन और सादे चित्र प्रकाशित नहीं कर सकी । यह मनोरमा' ही का काम था जिस ने अपने गुणग्राही ग्राहकों की शुभ आशा पर यह सब कुछ किया है । अस्तु ।

अब कहना यहां यह है कि जिन ग्राहकों का मूल्य इस संख्या के साथ समाप्त होता है, उन की सेवा में 'मनोरमा' के दूसरे अलंकार की पहिली ध्वनि अर्थात् फ़रवरी सन् १९२० या फाल्गुन सम्वत् १९७६ का अंक ३-) के वी. पी. द्वारा भेजा जायगा ।

हमें आशा है कि 'मनोरमा' के पुराने हितैषी उसे सादर अपनायेंगे ।

साथ ही ग्राहकों की सेवा में एक मुद्रित कार्ड भी भेजा जाता है । आशा है कि वे शीघ्र ही एक नया ग्राहक बना कर उसे वापस भेजेंगे ।

निवेदक-
मैनेजर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मनोरमा'के फ़रवरी या फाल्गुन के अंक की विशेषता

इस अंक में और कई प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के सिवा निम्न लिखित, लेखकों के लेख और कवितायें भी होंगी—

लाला सीताराम जी बी० ए० रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर।

मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ।

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय कविरत्न।

पण्डित गोविन्दप्रसाद बिलड्याल बी० ए० डिप्टी कलक्टर।

विद्याभूषण पण्डित श्री हरिहर सुरूप जी शास्त्री।

पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय।

साहित्याचार्य पण्डित महेश्वरप्रसाद जी शास्त्री कविकुमार।

यही नहीं, हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक वाराणसीय शास्त्री महाशय का लिखा हुवा, परलोकवासी महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार जी शास्त्री का जीवन वृत्तान्त भी होगा। शास्त्री जी के चित्र का भी प्रबन्ध किया जा रहा है।

इस के सिवा इस अंक में एक और दर्शनीय चित्र रहेगा।

मतलब यह है कि यह अंक लेखों और चित्रों की दृष्टि से बड़े ही महत्व का होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा

सचित्र मासिक पत्रिका

अलंकार १ माघ १९७६, जनवरी १९२० ध्वनि १२

प्रभु-प्रार्थना।

हे! नाथ! अब दया कर, मम ओर भी निहारो।
दुर्दैव से दबा हूँ, करके कृपा उबारो॥
रघुवर का रव मचाता, तबहूँ न चैन पाता।
हा! वाम है विधाता, अब शीघ्र ही सम्हारो॥१॥
निर्बल हूँ घोर दुख से, एकदम विमुख हूँ सुखसे,
तव नाम रटता मुखसे, केवल प्रभो! विचारो॥
विषयों में झूमता हूँ, कामान्ध घूमता हूँ।
प्रभुपाद चूमता हूँ, करके दया सुधारो॥२॥

—०—

संस्कृत रूपक और भास।

संस्कृत रूपक का आदिम स्रोत, सर्वविद्याओं के आदिभाण्डार वेदों में पाया जाता है। संसार के पुस्तकालय में सब से प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद की ऋचाओं में उस के आदि चिन्ह पाए जाते हैं। ये चिह्न विविध देवताओं और स्त्री पुरुषों के मध्य के संवादों के रूप में हैं। उदाहरणार्थ यमयमीसंवाद (ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १० में), पणिसरमा-संवाद (ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १०८ में) और उर्वशी पुरूरवा संवाद (ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८५ में) विद्यमान हैं। इन में से प्रथम यमयमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त शाङ्गारिक कविता है और उसमें शृङ्गाररस ही प्रधान है जिस में विवस्वत मनु की संतान यमज भ्राता भगिनी यम और यमी के परस्पर प्रेमका वर्णन है।

दूसरा पणिस और देवसरमा का संवाद है, और उस में वीर रस प्रधान है। उस में पौरस्त्य आर्यों की उस समय की प्राचीन राजनीति प्रकाशित की गई है जब वे भारतीय और पारसीक शाखाओं में विभक्त नहीं हुए थे।

तीसरे संवाद का कथानक भी शृङ्गारमय है और उस में संभोग और विप्रलंभ, शृङ्गार के दोनों प्रकार प्रदर्शित हैं। उस में राजा पुरूरवा और उर्वशी नाम्नी अप्सरा के प्रेम की कथा है। महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का आधार यही वैदिक संवाद है, और शतपथ ब्राह्मण और महाभारत में यह कथा उससे भी पूर्व विस्तार से वर्णित है।

रूपक का यह आदिम स्वरूप उस वैदिककाल में पाया जाता है जब कि वर्तमान चतुर्युगी के सतयुग के उत्तरार्ध में भारतीय और पारसीक आर्य हिमालय के उत्तर प्रदेश मध्य एशिया में देव और असुर नाम से एकत्र वास करते थे। इस समय यह नहीं कहा जा सकता कि रूपक ने नियमित रूप धारण कर लिया था। उस के पश्चात् के भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में कुछ प्राचीन नाटकों के नाम और महामुनि पतञ्जलि कृत महाभाष्य में उनके कुछ उद्धरण भी पाए जाते हैं। भरतमुनि ने निम्नलिखित नाटकों का निर्देश किया है।

(१) पितामह प्रणीत समुद्रमथन यह रूपक का समवकार नामक भेद है और सर्वप्रथम इस का अभिनय इन्द्रध्वज महोत्सव में देवों के सामने हुआ था।

(२) पितामह प्रणीत त्रिपुरदाह—यह रूपक का डिम नामक भेद है। और सर्वप्रथम स्वयं भरतमुनि ने अप्सराओं के साथ इसका अभिनय देवाधिदेव महादेव के सामने हिमालय की अधित्यका में किया था।

(३) चतुराननपत्नी सरस्वती कृत लक्ष्मीस्वयंवर—यह नाटक इन्द्र की सभा में भरत मुनि से शिक्षा पाई हुई अप्सराओं ने उन्हीं के निरीक्षण में खेला था। कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीय में इस अभिनय का उल्लेख किया है और बतलाया है कि उर्वशी और मेनका ने क्रमशः लक्ष्मी और वारुणी का वेष धारण किया था।

(४) भरतमुनि प्रणीत जामदग्न्यजय—यह व्यायोग है। इसमें जमदग्निपुत्र ब्राह्मण वीर परशुराम द्वारा क्षत्रियाधिनायक महाराज कार्तवीर्यार्जुन के पराजय की कथा है। दशरूपक में भी इस को व्यायोग का उदाहरण लिखा है।

(५) भरतमुनिकृत कुसुमशेखरविजय—यह रूपक का भेद ईहामृग है।

(६) भरतमुनिकृत शर्मिष्ठाययाति—यह रूपक का अंक नामक भेद है। और यह सर्वप्रथम महाराज नहुष के सामने उस समय खेला गया था जब कि वह इन्द्र रूपसे इन्द्रासन पर विराजमान थे।

(७) सौगन्धिकाहरण—यह एक अंक का नाटक है, और इसमें राजकुमारी सौगन्धिका पर

१ भरतमुनि ईसा से पूर्व [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए गए बलात्कार का वर्णन है। यह वर्णन अलंकार-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है। बौद्धग्रन्थों के कथनानुसार यह नाटक भगवान् बुद्ध के दो शिष्य मौद्गल्यायन और उत्तिष्य के सामने मगध की राजधानी राजगृह में खेला गया था।

(८, ९) **कंसवध तथा बलिबंध**—ये दोनों रूपक नाटक श्रेणी के हैं और प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पाणिनि मुनि-कृत बतलाए जाते हैं। इन का उल्लेख पाणिनि मुनि. कृत पातालविजय काव्य में आया है। महाभाष्य से ज्ञात होता है कि इन दोनों नाटकों का अभिनय पतञ्जलि के समय में सौभीक लोगों ने किया था।

किन्तु रूपक का नियमित और सुव्यवस्थित रूप महाकवि भास के नाटकों में ही मिलता है और इस लिए हम भास को संस्कृत नाटकों का पिता कह सकते हैं। महाकवि भास ईसा से पूर्व ५वीं शताब्दी में वर्तमान थे, और वह उज्जयिनी के महाराज श्रीहर्ष विक्रमादित्य के सभापण्डित थे। इस श्रीहर्ष विक्रमादित्य को दूसरे विक्रमादित्यों से पृथक् रखने के लिए शकारि विक्रमादित्य कहते हैं। यह शकारि विक्रमादित्य ईसासे ५७ वर्ष पूर्व विक्रमसंवत् चलानेवाले विक्रम महाराज से ठीक चारसौ वर्ष पूर्व हुआ है। ईसा से ५७ वर्ष पूर्व प्रचारित संवत् को ऐतिहासिक लोग मालवविक्रमसंवत् कहते हैं। शकारि विक्रमादित्य का संवत् इस संवत् से भिन्न है, और वह नैपाल आदि पर्वतीय प्रदेशों में हर्ष संवत् के नाम से अब भी प्रचलित है। इसी लिए उसको पहाड़ी संवत् भी कहते हैं।

भास के विषय में यह परंपरागत दन्तकथा चली आती है कि वह महाराज हर्ष विक्रमादित्य का धावक अर्थात् धोबी था और इसी लिए उसको उस के समकालीन कवियों ने निन्दा दृष्टि से धावक कवि कह कर निर्देश किया है। एक दिन जब महाराज हर्ष विक्रमादित्य वायुसेवनार्थ बाहर जारहे थे तो उन्हों ने अपने इस प्रधान धावक को अपने हाथ में एक लेख लिए हुए देखा। वह इस लेख के पढ़ने में ऐसा निमग्न था कि उस ने न तो वायु से उड़े हुए सूखते हुए वस्त्रों की ओर ध्यान दिया और न महाराज की सवारी पर ही दृष्टि डाली। महाराज ने उसके इस विद्याव्यासंग से विस्मित होकर उसको उस लेख सहित अपनी सभा में बुलाया और उसके आने पर वह लेख सुप्रसिद्ध 'नागानन्द' नाटक निकला। महाराज उस पर अतिप्रसन्न हुए और उसको बहुत कुछ पारितोषिक देकर उन्होंने अपनी सभा के नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया। प्रसिद्ध है कि भास महाकवि ने अपने तीन अन्तिम रूपक 'प्रियदर्शिका' 'रत्नावली' और 'नागानन्द' महाराज श्रीहर्ष विक्रमादित्य को समर्पण किए थे, और इसी लिए ये तीनों नाटक महाराज श्रीहर्ष के बनाए हुए प्रसिद्ध हैं, क्योंकि स्वयं महाकवि भास ने उन नाटकों में ही उनका कर्ता महाराज श्रीहर्ष को लिखदिया है। भास और धावक एक ही व्यक्ति हैं, इस बातकी पुष्टि मालविकाग्निमित्र और काव्यप्रकाश के कई संस्करणों से होती है। भारतवर्षीय पंडितों की कई पीढ़ियां यह बात एक स्वर से मानती चली आई हैं कि श्रहिर्ष के उपर्युक्त तीनों नाटक भास या धावक के बनाए हुए हैं। श्रीमम्मटाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत काव्यप्रकाश इस विषय में प्रबल प्रमाण है। काव्य के प्रयोजन को बतलाने वाले प्रसिद्ध पद्य "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये" इत्यादि पर टीका करते हुए श्रीमम्मटाचार्य लिखते हैं—"कालिदासादीनामिव यशः, श्रीहर्षादेर्धावका (भासा) दीनामिव धनं"। इस का अर्थ विस्पष्ट है कि काव्यनिर्माण से कालिदास को यश और धावक या भास को श्रीहर्षादि द्वारा धन की प्राप्ति हुई थी। काव्यप्रकाश की महेश्वरकृत प्रकाशादर्श नामक टीका भी इसी मत की पुष्टि करती है और लिखती है—"श्रीहर्षो राजा धावकेन (भासकेन) रत्नावल्यादीनि रूपकाणि तन्नाम्ना कृत्वा बहुधनं लब्धम्।" अर्थात् धावक या भासक ने राजा श्रीहर्ष के नाम से रत्नावली आदि नाटक बनाकर उस से बहुत धन प्राप्त किया। यही मत काव्यप्रकाश की अन्य टीकाओं में अर्थात् नागेशभट्ट कृत उद्योत, वैद्यनाथकृत प्रकाशप्रभा और जयराम कृत प्रकाशातिलक में माना गया है। इसी विषय में श्री पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति, मालविकाग्निमित्र नाटक की अपनी भूमिका में ८ वें पृष्ठ पर इस प्रकार लिखते हैं—

"एतच्च रत्नावल्यां वर्णितं सागरिकया सह वत्सराजसमागमवृत्तान्तमनुहरति। तस्य नाटकस्य धनप्रत्याशया कविना श्रीहर्षकृततया ख्यापितत्वेऽपि धावककृतत्वं धावकस्य चैतस्मात्कवेः (कालिदासात्) पूर्वकालिकत्वं, ग्रन्थकृतैव स्वयं पूस्तावनापूसङ्गेऽभिहितमित्यतस्तद्वृत्तान्तमनुसृत्य, एतद्ग्रन्थकारेण निरमायीति प्रतिभाति।"

इस से यह विस्पष्ट ही है कि तर्कवाचस्पति जी धावक को रत्नावली का कर्ता मानते हैं और उस को कालिदास का पूर्ववर्ती बतलाते हैं। महाकवि कालिदास ने भास की रत्नावली का अनुकरण करके ही अपना मालविकाग्निमित्र नाटक निर्माण किया था। मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में महाकवि कालिदास ने सौमिल्ल आदि अन्य कवियों के साथ धावक (भास) का भी उल्लेख किया है। इस पर टीका करते हुए श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति लिखते हैं—"धावको नागानन्दरत्नावल्यादिग्रन्थकारकः" अर्थात् धावक नागानन्द और रत्नावली आदि का कर्ता है। इस के अतिरिक्त श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति ने धावक के नाम से ही प्रियदर्शिका नाटिका प्रकाशित की है। इस से स्पष्ट है कि श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति का मत, जिन की विद्वत्ता "वाचस्पत्य बृहदभिधान" नामक संस्कृत कोष से अमर बनी हुई है, यही है कि भास या धावक ही प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द का कर्ता है।

अब यह मानने के लिए प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं है कि धावक या भास एक ही पुरुष है। और श्रीहर्ष से उस का घनिष्ठ संबंध था। यह भी ऊपर दिखलाया जा चुका है कि कविकुलगुरु कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावना में भास या धावक के नाम का उल्लेख किया है। इस से भास कालिदास के समकालीन या पूर्ववर्ती माने जा सकते हैं। किन्तु कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक बनाने और उस में विक्रम को नायक रखने से स्पष्ट ही प्रमाणित होता है कि कालिदास महाराज विक्रम के आश्रित थे। अब यह जानना शेष है कि कविकुलगुरु कालिदास का आश्रयदाता महाराज विक्रम कौन सा विक्रम है क्योंकि भारतवर्ष में विक्रम नामधारी अनेक राजे महाराजे हुए हैं। कविकुलगुरु कालिदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तीन नाटक मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल प्रसिद्ध हैं। इन में से अभिज्ञान शाकुन्तल का उल्लेख श्रीकुमारिलभट्ट ने जैमिनिमुनि-कृत पूर्वमीमांसा के शबर भाष्य पर अपने प्रसिद्ध श्लोकवार्तिक में यह पद्यार्ध उद्धृत कर के किया है।

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।"

कुमारिलभट्ट का जन्मसमय जिनविजयकाव्य में इस प्रकार वर्णित है—

"ऋषिर्वारस्तथा पूर्णं मत्यर्क्षौ वाममेलनात्।
एकीकृत्य लभेतांकः, क्रोधी स्यात्तत्र वत्सरः॥
भट्टाचार्यकुमारस्य, कर्मकाण्डैकवादिनः।
ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन्, वर्षे यौधिष्ठिरे शके॥"

अर्थात् यदि हम ऋषि = ७, वार = ७, पूर्ण = ०, और मत्यर्क्ष = २ को वामगति से क्रमपूर्वक मिलाएं तो २०७७ क्रोधीनामक संवत्सर निकलता है इस २०७७ युधिष्ठिरशक में कर्मकाण्डवादी भट्टाचार्य कुमार का जन्म हुआ था। जैनलोग भूल से युधिष्ठिरशक कलियुग से ४६८ वर्ष पश्चात् मानते हैं, किन्तु वस्तुतः महाभारतानुसार युधिष्ठिरशक कलियुगारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। इस लिए २०७७ में ४६८ जोड़ देनेसे २५४५ कलिसंवत्सर निकलता है अर्थात् कुमारिल भट्ट का जन्म २५४५ कलिसंवत्सर तदनुसार ५५७ वर्ष ईसासे पूर्व हुआ था। कुमारिलभट्ट के अपने श्लोकवार्तिक में अभिज्ञानशाकुन्तल का उल्लेख करने से अभिज्ञानशाकुन्तलकार महाकवि कालिदास का कुमारिल का समकालीन या पूर्ववर्त्ती होना सिद्ध होता है। और कवि कालिदास का श्रीहर्ष विक्रमादित्य का आश्रित होने का ऊपर वर्णन हो-चुका है। और यह भी बतलाया जा चुका है कि श्रीहर्षविक्रमादित्य ने ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व अपना हर्षसंवत् चलाया था। यह संवत् उन्हों ने शकों पर विजयप्राप्ति के उपलक्ष्य में अपनी शक्ति और समृद्धि के यौवनकाल में ही चलाया होगा और उन का सिंहासनारोहणकाल इस समय से लगभग ५० वर्ष पूर्व रहा होगा यह प्रबल अनुमान है। क्योंकि जिनविजय के अनुसार कुमारिलभट्ट की आयु ६३ वर्ष की प्रमाणित होती है। और यदि उक्त श्लोकवार्तिक को कुमारिलभट्ट ने अपने स्वर्गवास से ४ वर्ष पूर्व रचा हो तो ४६८ वर्ष ईसा से पूर्व उनकी मृत्यु के समय से पूर्व ही अभिज्ञानशाकुन्तलकार और हर्षविक्रमादित्य के आश्रित महाकवि कालिदास का होना प्रमाणित होता है। इस लिए श्रीहर्षविक्रमादित्य का भी कुमारिलभट्ट का समकालीन होना सिद्ध होता है। इस से यह सिद्ध हुआ कि कालिदास कुमारिल के समकालीन थे और ईसा से पूर्व पाँचवी शताब्दि में वर्तमान थे। और भास भी उन से कुछ पूर्व या उन के समय में ही उसी हर्षविक्रमादित्य के आश्रित थे, जिनके नवरत्नों में से एक कालिदास भी थे। इससे भास और कालिदास दोनों का ईसा से पूर्व पाँचवीं शदाब्दी में श्रीहर्षविक्रमादित्य की नवरत्न सभा का सदस्य होना भली प्रकार सिद्ध होगया।

भास कवि ने २४ नाटक निर्म्माण किये थे जिनके नाम नीचे उन ग्रन्थों के क्रम से लिखे जाते हैं जिनसे उन के कथानक लिए गए हैं।

(क) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के आधार पर लिखे हुए नाटक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **बालचरित**-(बालकाण्ड) इसका उद्धरण श्रीविश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्यदर्पण के छटे परिच्छेद में दिया है।

(२) **प्रतिमानाटक**-(अयोध्या तथा आरण्यकाण्ड) ७ अंकों में है।

(३) **अभिषेकनाटक**-(किष्किन्धा सुन्दर और युद्धकाण्ड) ६ अंकों में है।

(४) **उदात्तराघव**-(उत्तरकाण्ड) इसका उद्धरण राजशेखर ने अपने कविविमर्श में, शारदातनय ने अपने भावप्रकाश में और विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्यदर्पण में दिया है।

इन चार रूपकों में से केवल दूसरे और तीसरे त्रिवेन्द्रम् संस्कृतमाला में हाल ही में छपे हैं।

(ख) श्रीव्यास कृत महाभारत के आधार पर लिखे हुए नाटक-

(५) **मध्यमव्यायोग**-(इस में भीमसेन के पाण्डव वनवाससमय एक दीन ब्राह्मण परिवार की डिडिंबा राक्षसी से उत्पन्न अपने ही पुत्र घटोत्कच से रक्षा करने का वर्णन है) केवल १ अंक में है।

(६) **पञ्चरात्र**-(इस में पाण्डवों के अज्ञात वनवास के समय गोग्रहण, और अभिमन्यु के उत्तरा से विवाह का वर्णन है) ३ अंकों में है।

(७) **दूतवाक्य**—(इस में महाभारतयुद्ध आरम्भ होने से पहिले श्रीकृष्ण के राजा दुर्योधन के प्रति संधि के लिए दौत्य कर्म का वर्णन है) १ अंक में है।

(८) **दूतघटोत्कच**-(इस में घटोत्कच के अभिमन्यु के बध का समाचार पाकर बड़े क्रोध के साथ दुर्योधन के दूत का रूप धारण करके जाने और कौरवों के नाश करने का वर्णन है) १ अंक में है।

(९) **कर्णभार**-(इस में रूप बदले हुए देवराज इन्द्र द्वारा महायोद्धा कर्ण के कवच और कुण्डल हर लेने का वर्णन है) १ अंक में है।

(१०) **उरुभंग**-(इस में भीमसेन के महाभारत युद्ध में दुर्योधन की जंघा तोड़ने का वर्णन है) १ अंक का करुणरसप्रधान नाटक है।

ये छहों रूपक त्रिवेन्द्रम् संस्कृतमालिका में प्रकाशित होगए हैं।

(ग) पुराणों के आधार पर लिखित रूपक—

(११) **अविमारक**-(इस में सौवीरराजके पुत्र विष्णुसेन के पाण्डवों के समकालीन कुन्तिभोजकी पुत्री कुरंगी से विवाहकी कथा वर्णित है) ६ अंकों में है।

(१२) **बालचरित**-(इस में श्रीकृष्ण की उत्पत्ति और आदिम इतिहास की कथा वर्णित है) ५ अंकों में है।

(१३) **प्रभावती**-(इस में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न से प्रभावती के विवाह की कथा वर्णित है) इस का उद्धरण विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण पृष्ठ ४० तथा १४८ में दिया है। इन में से ग्यारहवां और बारहवां नाटक त्रिवेन्द्रम् संस्कृतमालिका में पहिले ही प्रकाशित हो चुका है।

(घ) श्रीगुणाढ्यकृत पैशाची भाषाकी बृहत्कथा के आधार पर लिखित नाटक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) **उदयनचरित**–(इस में वासवदत्ता के साथ वत्सराज के विवाह का वर्णन है)। इस का उद्धरण विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण पृष्ठ १६९ में और कालिदास ने अपने मेघसंदेश में दिया है।

(१५) **प्रतिज्ञायौगंधरायण वा प्रतिज्ञानाटक**–(इस में यौगंधरायण के प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के साथ वत्सराज को भगा ले जाने का वर्णन है) ४ अंकों में है।

(१६) **तापसवत्सराज**–इस का उद्धरण अभिनवगुप्त और शारदातनय ने अपने अलंकार ग्रन्थों में दिया है।

(१७) **स्वप्नवासवदत्ता–या स्वप्ननाटक** ६ अंकों में है।

(१८) **प्रियदर्शिका**– ४ अंकों की नाटिका है।

(१९) **रत्नावली**–४ अंकोंकी नाटिका है।

(२०) **नागानन्द**–५ अंकों का नाटक है।

तापसवत्सराज के अतिरिक्त उपरिलिखित सब नाटक त्रिवेन्द्रम् संस्कृतमालिका में प्रकाशित होगए हैं। अन्तिम तीन नाटक बहुत काल पहले भारत में बहुत जगह श्रीहर्ष के नाम से, जिस को साधारण तौर पर भूल से बाण का संरक्षक शिलादित्य समझा गया है, प्रकाशित होगए हैं।

(ङ) आधे ऐतिहासिक रूपक।

(२१) **चारुदत्त–या दरिद्रचारुदत्त** (जिस का विस्तृत रूप शूद्रक का मृच्छकटिक है) ५ अंकों में है।

(२२) **किरणावली**–(इस में माकन्द और किरणावली के प्रेम की कथा वर्णित है) ९ अंकों में है।

संक्षेप से इस का अन्त नायिका की दुःखपूर्ण मृत्यु से कहा जाता है जिसका उद्धरण राजशेखर, शारदातनय और बहुत से अन्य नैयायिकों ने प्रशंसायोग्य किन्तु अपूर्ण ग्रन्थ के रूप में दिया है। अन्तिम नाटक अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

(च) मौलिक रूपक—

(२३) **मुक्ताताडितक**–इस का उद्धरण चन्द्रपालेन अपने दमयन्ती काव्य में दिया है।

(२४) **भगवद्-अज्जुका**-एक प्राकृत प्रहसन है।

उपरिवर्णित वृहन्नाटकावली के देखने से ज्ञात होता है कि रूपक-रचना में भास की प्रतिभा और कल्पनाशक्ति कैसी विशाल और प्रौढ़ थी अतएव रूपक को प्रथम ही व्यवस्थित और नियमित रूप देने के कारण उनको "रूपक के पिता" नाम से निर्देश करने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है, और संस्कृत की प्रसिद्ध कहावत "नाटकान्तं कवित्वं" को दृष्टि में रखते हुए उन को महाकवि भी अवश्य कहना पड़ता है। क्या ही अच्छा हो यदि आज कल के उपन्यासप्रेमी, गंदे उपन्यासों को पढ़ने में समय खोने के स्थान में भास के नाटकों के मूल नहीं तो अनुवादों ही को पढ़कर अपना मनोरञ्जन किया करें। और उपन्यास लिखने की धुन में लगे हुए हिंदीसाहित्यसेवी रैनाल्ड आदि के विदेशी गंदे उपन्यासों के अनुवाद करने की सनकको छोड़ कर भारत के गौरवस्वरूप महाकवि भास की नाटका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वली को हिंदीरूप देनेकी कृपा करें। कैसे आश्चर्य और खेद की बात है कि भास के स्वप्नवासवदत्त का अंग्रेज़ी अनुवाद The Dream Queen नामक लिखने का कष्ट M. A. G. Sherriff I. L.S. एक गौरांग विद्वान् महाशय तो उठावें और हिंदी में उसके किसी नाटक का भी अनुवाद प्रकाशित + न हो !!! क्या आजकल की हमारी नाटक कंपनियां "बुरी बला" और "सफ़ेदखून" आदि अश्लील और लोगों की रुचि बिगाड़नेवाले नाटकों का खेल छोड़कर भास के धर्म्मग्रन्थों के आधार पर लिखे हुए नाटकों को रङ्ग-मञ्च पर लाकर जनता में सुरुचि और धर्मभाव उत्पन्न करने का उद्योग नहीं करसकतीं ? इन नाटकों को यथोचित परिवर्तन करके उनको आधुनिक रंगमञ्च के योग्य बनाया जा सकता है और उन के अभिनय से लोगोंके मज़ाक़, विचार, भाव और भाषा आदि में महापरिवर्तन उत्पन्न किया जासकता है क्योंकि इन बातों के लिए नाटक सब से उत्तम साधन है। जो काम बड़े से बड़े व्याख्याताओं के व्याख्यान और सुलेखकों के लेख नहीं कर सकते वह एक अभिनय से सुगमता से सिद्ध होजाता है। अभिनय में देखे हुए दृश्यों और सुनी हुई भाषा का प्रचार अनपढ़ जनता में भी शीघ्र ही हो जाता है। आशा है कि हमारे हिन्दी भाषा के नेता महाशय इस ओर ध्यान देंगे।

भवानीप्रसाद गुप्त।

—०—

+ हमें याद पड़ता है कि हम ने 'स्वप्नवासवदत्ता' का हिन्दी अनुवाद २-३ वर्ष हुए कहीं देखा था। मनोरमा-सम्पादक।

हमारा परिचय।

(कविवर पण्डित रामचरित उपाध्याय की कविता का दूसरा रूप)

(१)

हम सत्य से सटे हैं, प्रण से हटे नहीं हैं,
धन में घटे सही हैं, मन में लटे नहीं हैं।
कायर, कदर्य कोई, हम को नहीं कहेगा,
हम भारतीय नर हैं सब को स्मरण रहेगा॥

(२)

निज कर्म जान लें जो, फिर दुःख कभी न होवे,
मुख दुष्ट का हमारे, सम्मुख कभी न होवे।
चाहें न जो हमें हा, फिर क्यों उन्हें चहें हम,
हम भारतीय गुरु हैं, सब को स्मरण रहे सम॥

(३)

यदि ऐक्य जोड़ लें हम, आलस्य तोड़ दें हम,
मुख मोड़ लें खलों से, प्रतिबन्ध तोड़ दें हम।
हुंकार से हमारे, फिर गिरि न क्यों ढहेगा?
नर-सिंह तो हमीं हैं, सब को स्मरण रहेगा॥

(४)

क्या हम मनुज नहीं हैं, क्यों क्रीत-दास होंगे?
जग में हमीं सुखों से, कैसे निराश होंगे?
अपमान क्यों किसी से, संसार में सहेंगे?
हम बात के धनी हैं, सब को स्मरण रहेंगे॥

(५)

चोटें लगीं अनेकों, तोभी न क्यों जगेंगे?
निज पूर्वजों के पथ पर, चलने न क्यों लगेंगे?
कब तक अचेत हो कर हम वारि को गहेंगे?
निःसत्व हम न होंगे, सब को स्मरण रहेंगे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

निःस्वार्थ हो परस्पर, परमार्थ को करेंगे,
अपकीर्त्ति से डरेंगे सत्कीर्त्ति से मरेंगे।
जातीयता का सागर कैसे नहीं बहेगा ?
एकी अनेक हैं हम, सब को स्मरण रहेगा ॥

गंगाशरण गुप्त ।

—०—

हंस की पुकार ।

प्यारे, सुनो, व्याध ! तुम हमको
नाहक़ क्यों दुख देते हो ?
मानस के बसैया हम पर
पिंजरा डाले देते हो ॥
तुम को भी तो परमेश्वर ने
दारा बन्धु दिलाया है।
मेरे सुत बनिता से ज़ालिम !
फिर क्यों मुझे छुड़ाया है?॥
हा ! प्यारी बनिता, सुत मेरे
रो रो कर मरते होंगे !
भूख प्यास का वे दुख सहते
मुझे याद करते होंगे !! ॥
जब जब हाय ! याद आते हैं,
मान-सरोवर के व्यापार।
तब-तब हृदय द्रवित हो जाता,
सब छूटे मेरे अधिकार !! ॥
हा ! भूमि पावन हरियाली,
जहां मनोज्ञ विचरता था।
खाने को सुन्दर पाता था,
सुख से सदा विहरता था ॥
कहाँ ढेर वह मुक्तामणि के,
स्वच्छ वायु जल वह पावन ?
बल-पौरुष-कर सुभग पदारथ
कहाँ हाय ! सब मन-भावन ?
रोग शोक से बचा हुआ पुनि
चैन साँथ दिन जाता था।
निज बन्धुन से हिल मिल के,
हा ! निज सुख दुःख सुनाता था ॥
अति पुचकारि प्यार से सन्तति
हृदय सहर्ष लगाता था।
किसी बात की कमी नहीं थी,
सुख से दिवस बिताता था ॥
जब से तुम ने बन्द किया है,
यदपि अन्न बिखराता है।
पर हा ! हृदय द्रवित होता है,
खाना नेक न भाता है ॥
बोली बोल अनेक हमारी,
तू ने मुझे फँसाया था।
अधिक लोभ की बातें कहकर,
बहुत मुझे फुसलाया था ॥
माता मेरी बड़ी दरिद्रा,
नाहक़ कारागार दिया।
उस की वृद्धावस्था पर भी,
तरस, न, खाई अरे ! ज़रा ॥
तू मत जाने अधिक दिनों लों,
ऐसे हि सुख पायेगा।
तेरे ऊपर दुःख पड़ेगा,
जब सुध बुध बिसरायेगा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो ! बहुत नहीं दिन जीना,
सब को इक दिन जाना है ।
तब क्यों अनरथ की गठरी को—
बांध, मूढ़ ! मनमाना है ॥
अब्दुल लतीफ़ खाँ ।

—०—

अशोक वाटिका में सीताजी ।

न्याय ।

किसी अयोग्य पुरुष को अनायास कोई काम की चीज़ मिल जाती है तो हम लोग कहते हैं कि अंधे के हाथ बटेर लगगई । संस्कृत में इसे कहेंगे कि " अंधवटकन्यायेन प्राप्तम् " । अर्थात् अन्धे और चिड़िया के न्याय से मिल गई । इसी अर्थ में घुणाक्षरन्याय भी बोला जाता है । कभी कभी देखा गया है कि घुन ने ऐसा छेद कर दिया कि एक अक्षर बन गया । घुन न अक्षर जानता है और न उसकी इच्छा थी कि लकड़ी में अक्षर खोद डाले पर संयोगवश ऐसा छेद बन गया जो अक्षरके आकार का है । यह न्याय ऐसे अवसर पर कहा जाता है जब किसी अयोग्य पुरुष से संयोगवश कोई अच्छा काम होजाता है ।

ऐसे ही किसी काम को करने चले और तुरंत ही कोई विघ्न पड़ गया तो कहते हैं कि सिर मुड़ाते ही ओले पड़गये । संस्कृत में कहेंगे कि "काकतालीयन्यायेन संप्राप्तम्" (कौआ पेड़ की डाल पर ज्यों ही बैठा त्यों ही उस के ऊपर ताड़ का फल गिर पड़ा ।) संस्कृत न्याय और भाषा की कहावत में भेद इतना है कि भाषा में अनर्थ की सूचना है और संस्कृत न्याय में अर्थ और अनर्थ दोनों सूचित होते हैं ।

संस्कृत में ऐसे ही हज़ारों न्याय हैं । पंडित लोग वाद विवाद में इन न्यायों को काम में लाते हैं और न्याय स्वयंसिद्ध समझे जाते हैं ।

ऐसा ही एक " अशोकवनिकान्याय " है । जब किसी काम के करने के कई उपाय हों और करने वाला बिना किसी विशेष कारण के उन अनेक उपायोंमें से किसी उपाय से उस काम को कर डाले तो कहते हैं कि उसने वह काम अशोकवनिका न्याय से किया । इस न्याय की उत्पत्ति यों है कि लंका में बाग़ और वाटिकायें बहुत सी थीं । वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकांड सर्ग १४ में लिखा है कि लंका में बड़े बड़े बाग़ थे जिन में अनेक प्रकार के वृक्ष थे ।

"कानैनः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम् ।
ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपकाः ॥

सर्ग १५ में जिस मैदान के बीच में अशोकवाटिका थी उस का वर्णन पढ़ने से पाया जाता है कि वहां संतानक तक के वृक्षों और कुंज और सुनहरे कमलों से भरी बावलियां भी थीं । फिर क्या कारण था कि रावण ने सीताजी को अशोक वनिका में लेजाकर रक्खा ? जो न्याय हम ने ऊपर लिखा है उस से यह सिद्ध होता है कि अशोक वाटिका में रखने का कोई विशेष कारण न था । उस के पास हज़ारों बाग़ बगीचे थे । कहीं ता वह रखता ही उस ने अशोकवाटिका ही में उन्हें जगह देदी । मैं ने एक महात्मा से पूछा तो वह कहने लगे कि अशोकवन सब से सुन्दर था इस से उन को वहां बंद किया । सीताजी ने रावण की प्रार्थना स्वीकार न की थी । रावण उन को नाना प्रकार के दुख देकर राह पर लाना चाहता था । उन को सुख देने का उपाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों करता। जो राक्षसियां उन के पास थीं वह भी उन्हें डराया और धमकाया करती थीं आरण्यकांड सर्ग ५६ में लिखा है कि जब सीताजी ने रावण को कड़ा उत्तर दिया तो रावण ने उन से कहा कि यदि तुम बारह महीने में मेरे पास न आवोगी तो सबेरे के भोजन के लिये मेरे रसोइये तुन्हारी बोटियां काटेंगे। फिर उस ने क्रोध में आ कर राक्षसियों से कहा कि "हे विरूपा, घोरदर्शन, मांस भोजन करने वाली राक्षसियो इन के घमंड को शीघ्र ही मिटा दो। वे घोर दर्शन राक्षसियां रावण की आज्ञा से हाथ जोड़ सीता को समझाने लगीं रावण अपने चरणों के आघात से मानो पृथ्वी खोदे डालता था उन घोरदर्शन राक्षसियों से बोला कि सीताको अशोक वाटिका में ले जाओ वहां तुम चारों ओर से घेर कर उसकी रक्षा करना और तर्जन गर्जन तथा समझाने बुझाने से जंगली हथिनी की तरह उन्हें अपने वश में कर के हमारे पास ले आना।

इस से सिद्ध होता है कि रावण सीता जी को दुख देना चाहता था न कि सुख।

अब दूसरे लेख में हम यह दिखलायेंगे कि अशोक वाटिका में रखने से भी उसका यही विचार था कि सीताजी को दुख हो और वह उसका कहना मानलें।

सतिराम।

—०—

एक दुखिया।

द्विपद

क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता।
बिन कहे भी रहा नहीं जाता॥ १॥
बे तरह दुख रहा कलेजा है।
दर्द अब तो सहा नहीं जाता॥ २॥
इन झड़ी बाँध कर बरस जाते।
आँसुओं में बहा नहीं जाता॥ ३॥
चोट खा खा मसक मसक कर के।
भीत जैसा ढहा नहीं जाता॥ ४॥
थक गया, हाथ कुछ नहीं आया।
मुझ से पानी महा नहीं जाता॥ ५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

—०—

प्रतिभा का साहित्य संवाद।

हिन्दी साहित्य में हम से वस्तुतः एक बड़ा अपराध होगया, जो 'ललिता'—सम्पादक की प्रार्थना पर, हिन्दी के सुलेखक वीर पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा के लिखे हुए महान् ग्रन्थ 'विहारी सतसई' की हम ने आलोचना लिखदी। पद्मसिंह जी, हिन्दी और उर्दू के अच्छे पण्डित हैं, वह संस्कृतज्ञ भी हैं यह हम मुद्दत से जानते हैं। जहां तक हमें मालूम हुवा है आप की क़लम से बस यही एक महान् ग्रन्थ निकला है। जिसे आप की सुदीर्घ अवस्था का परिश्रम कहना चाहिये।

हमें यह मालूम न था कि आप किसी सच्ची बात का भी इतने दिनों तक अपने जी में कांटा रखते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरादाबाद से एक निगुरवे और अल्हड़ किन्तु कई बंगला लेखों के अनुवादक के सम्पादकत्व में 'प्रतिभा' नाम की मासिक पत्रिका निकलती है। उसी में 'समालोचक' की आड़ में होकर शायद आप ही ने 'मनोरमा' की दशमध्वनि की आलोचना करने की कृपा की है। आलोचना क्या है, शुरू से आख़िर तक, 'विहारी सतसई' पर कुछ लिखने के कारण अच्छा ख़ासा शिकायत नामा है।

आप के वाग्जाल की विस्तीर्णता का पाठक इस से अनुमान करसकेंगे कि 'प्रतिभा' में हर मास प्रायः ३२ पृष्ठ निकला करते हैं, उसके पूरे १४ पृष्ठों में आप ने आलोचना लिखी है।

आलोचना के फ़िज़ूल और बेहूदा फफोलों को छूकर हम फोड़ना नहीं चाहते, उन के छेड़ने में बहुत ज्यादा जलन बढ़जाने का भय है।

'ज्ञान मण्डल' के 'स्वार्थ' के बहाने मनमाना नाच कर, प्रतिभा–सम्पादक का चञ्चलमन बहुत बढ़ चला है। अतः यह उन्हीं की क़ाबिलेदाद हिम्मत थी, जो उन्हों ने अपने माननीय मित्र और सहायक की आलोचना के लिये, अपनी 'प्रतिभा' के १४ पृष्ठ देदिये। द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुशता' वाली लेख माला से उन्हों ने यह बात सीखी होगी कि इसी बहाने 'प्रतिभा' की ग्राहक वृद्धि हो जाने पर वे 'प्रतिभा' के नवयुवक सञ्चालकों के प्रति सुर्ख़रू होजायेंगे, उन के निगुरवे पन ने उन्हें यह न सूझने दिया कि निरंकुशता वाली बात से इसे क्या निसबत है। इन भटियारख़ाने की गालियों को कौन पसन्द करेगा?

अपने पाठकों से हम यह प्रार्थना तो करेंगे नहीं कि वे १६ डबल ख़र्च करके 'प्रतिभा' मंगायें और अपना अमूल्य समय भी नष्ट करें, पर यह ज़रूर कहेंगे कि उन्हें यदि कहीं मुफ़्त ही में अल्हड़ सम्पादक की सम्पादित प्रतिभा' मिलजाय, तो उसे पढ़कर वे अपना ज़रूर मनोरञ्जन करें।

कोई आश्चर्य नहीं जो गिद्ध को बारह कोस का दीखता है। अब तो प्रतिभा के प्रकाश से कैलास में आकर, ग्राम्य पुरुषों को ५० कोस तक का दीखने लगा है! ऐसा न होता तो सच्ची बात पर, परदे में हमें न पहिचाना जाता! लक्ष्मी नारायण यन्त्रालय के परिचित प्रूफ़ शोधक महाशय, दस्तख़त पहिचानने में बड़े चतुर मालूम होते हैं। हमें मालूम नहीं कि वह किसी दफ़्तर में नक़ल नवीस रह चुके हैं या नहीं। जो कुछ भी हो हम उन की इस पहिचान-कुशलता की प्रशंसा करते हैं। बड़े विनय से उन से हम एक बात पूंछते हैं कि उन्हों ने समालोचक नामधारी आलोचना के खूसट-लेखक को यह बात आधी क्यों बतलाई? घिलड्याल जी वाला लेख भी तो सम्पादक ही के क़लम का लिखा हुवा था। एक बड़े आदमी के नाम से उसे छापने का दोष भी तो उन्हें आप बतलादेते !!! ×

× यहां हम भोले भाले पाठकों का भ्रम दूर करने के लिये यह बात और ज़रा साफ़ किये देते हैं, कि बहुत से लेखकों के लेख ऐसे सन्दिग्धाक्षरों में हमें—और हमें ही क्यों अल्हड़ सम्पादक को छोड़कर सब सम्पादकों को—लिखे मिलते हैं। जिन में प्रेस के भूतों से बहुत ही गड़बड़ी होजाने का डर रहता है इस लिये ऐसे लेखों को हम साफ़ लिखकर प्रेस भेजदेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः 'सच्ची बात' के सहारे जो जली कटी हमें सुनाई गई हैं, उन का हम कोई उत्तर देना नहीं चाहते। वास्तव में हम ने यह बुरा ही किया जो एक छात्रा की कविता होने के कारण 'सच्ची बात' को 'मनोरमा' में सब से पहिले स्थान देदिया।

इस सिलसिले में एक मुहाविरे के सही इस्तेमाल के लिये, हम समालोचक महाशय को बधाई देते हैं पहिले आप ढोल या ड्योंडी पिटवाने के अर्थ में 'मनादी' ही पिटवाया करते थे। अब आप यह बात बुरी समझने लगे हैं और अब आप ने अपनी उस मनादी को छोड़ दिया है। यह बड़ा अच्छा हुवा।

पहिले आप साहित्यवाद में साहित्य दर्पण के प्रमाण पेश किया करते थे। ख़ुशी की बात है कि अब आप ने काव्यप्रकाश भी देख लिया है और अब आप उस का भी कहीं कहीं प्रकाश करते हैं।

'उत्साहता' को आप शायद अशुद्ध प्रयोग समझते हैं। यह देख कर हमें आप की भारी संस्कृतज्ञता पर सन्देह होता है।

हम पहिले ही लिखचुके हैं कि इस १४ पृष्ठ व्यापी, आलोचना नामधारी शिकायत नामे को फ़िज़ूल बातों से भरने की बेजा कोशिश की गई है। 'सच्ची बात' की अंड बंड गप्प गाते हुए आपने डेढ़ दो पृष्ठों में एक मज़ेदार 'लतीफ़ा' भी लिख दिया है।

हमें इस से पहिले यह मालूम न था, कि यह बूढ़े समालोचक लतीफ़ागो भी हैं। एक बार, माननीय पण्डित राधाकृष्ण दास वकील से हमें मालूम हुवा था कि "ऐसे लोगों की अवध के ताल्लुकेदारों में ख़ूब क़दर होती है।" अख़बार नवीसी में तो कुछ मिलता नहीं, अतः हम कोशिश करेंगे कि आप को किसी शौक़ीन ताल्लुक़े दार के पास रखा दिया जाय।

कुमार सम्भव के अनुवाद पर आप ने जो कुछ लिखा है, हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि वह अब बिलकुल बेकार है। आप ने नमूने के तौर पर जो २ श्लोक लिखे हैं। उन में कोई दोष नहीं दिखलाया, जिस का हम उत्तर लिख कर आप को समझायें। एक बात और है कुमार सम्भव के अनुवाद को कई समाचार पत्रों के विशेष महत्व का बतलाने पर भी, उसे मुद्दत हुई हम ने एकदम प्रकाशित करना बन्द करदिया है। इसीसे वह पांचवी ध्वनि से आगे नहीं छपा। दोषैक दृष्टि का परित्याग कर के आप यह बात यदि देख लेते, तो इस मामले में भी दो तीन पृष्ठों को काला करने का यह अदम्य उत्साह न किया जाता! पर हां, त्यागियों से परित्याग होने क्यों लगा था!!! माफ़ कीजियेगा, ज़रा ग़ौर तो कीजिये, आप 'मनोरमा' की आलोचना लिखने बैठे हैं या उसके बहाने से 'सतसई' के आलोचनान्तर्गत आक्षेपों का उत्तर देने? आपको यदि इन आक्षेपों का ही उत्तर देना था, तो इसे तो 'ललिता' में प्रकाशित हुए, कुछ महीने कम एक साल होयगा! इतने दिनों से क्या सोचते रहे थे? चतुर्वेदी जी या उत्साही त्रिवेदी जी अब भी आपके लिये कुछ दूर नहीं हैं।

'सतसई' की आलोचना के आक्षेपों में सिर्फ़ "मज़मून छीनने वाली" बात पर आपने ज़रा गर्दन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाई है। वह भी अपने बल पर नहीं, परलोक वासी मौलाना हाली और मेरठ वासी बाबू घासीराम जी के सहारे, शाबाश !!!

भाई जान, हम मनाज़रा नहीं कर रहे, आप से पूंछते हैं आप उत्तर दीजिये। हम यह नहीं कहते कि किसी से विना पूँछे, आप हमें उत्तर दें। आप के दोस्त मौलाना हाली तो अब इस जहान में हैं नहीं, मेरठ के बाबू घासीराम जी से ही पूँछ कर हमें जवाब दीजिये कि उन्हों ने यह क्यों लिख दिया है जिनके सहारे पर विना समझे बूझे आप मुँह की खागये हैं। अब 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'' का ज़माना नहीं रहा है,इसे .खूब अच्छी तरह ध्यान में रखियेगा। बूढ़े होकर भी आप दूसरों की दुहाई क्यों दिया करते हैं ? क्यों इतने आदमी जमा किया करते हैं ??

इसी बात से तंग आकर शायद 'ग़ालिब' ने कहा है—

"जमा करते हो क्यों रक़ीबों को।
एक तमाशा हुवा, गिला न हुवा" ॥

अपनी सुबकी का .ख्याल न करके यह साफ़ साफ़ क्यों नहीं कह देते कि यह "मज़मून छीनने वाली" बात हमारे दिमाग़ की उपज नहीं है, हम ने सिर्फ़ 'हाली' की देखा देखी लिख दिया है इस लिये इसके उत्तर दायित्व का भार मौलाना हाली और उन के बाद बाबू घासीराम जी पर है। बस, इतनी सी बात सुनकर हम मान गये और हार गये। छुट्टी हुई—ग़म ग़लत हुवा।

आप व्यर्थ ही बदनाम करते हैं, हमें यह कब दावा है कि हम उर्दुसाहित्य के अच्छे जानकार हैं। बक़ौल आप के यह बिलकुल ठीक बात है कि हम "मामूली उर्दू भी अच्छी तरह नहीं जानते। अरे, ग़ज़ब करते हो, हम सब आप की चौपाल पर, पांचों सवारों में शामिल होने के लिये घुड़िया मांगने गये हैं ??? इन बातों से और 'मनोरमा' की आलोचना से क्या सम्बन्ध ? चलो, ख़ैर. आप और आप के मुशफ़िक़ प्रतिभा-सम्पादक ही उर्दु-साहित्य के अच्छे जान कार सही, जो **अशआर** को **शेरें** लिखकर अपनी जानकारी की **लावण्यता** बढ़ाते हैं।

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय के 'भोलानाथ भट्टा चार्य' में आप को किस बंगला गल्प की गन्ध आगई ? यह भी प्रतिभा—सम्पादक से पूंछकर लिख देते तो अच्छा था, तब हमें पाण्डेय जी से यह पूंछने का हक़ होजाता कि आप ने ऐसा वञ्चना-व्यवहार क्यों किया है। शुक्र है और हज़ार बार शुक्र है जो आप को ग्रेजुएटी हिन्दी होने पर भी 'पितृपूजा' पसन्द आगई !!!

बधाई है, लाला सतिराम जी को, जो काव्यकानन केसरी की इस कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होगये।

सब से पीछे हिन्दी कादम्बरी के विषय में आप ने जो कुछ लिखा है। उस के लिये हम आप के उपकृत हैं हम यह बात पहिले ही से चाहते हैं, कि इस पर चर्चा होनी चाहिये, पर वह चर्चा करने वाले महाशय, इस के अधिकारी हों। आप की तरह से कोरे छिद्रान्वेषी और दूसरों के सहारे पर चलने वाले न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात के लिये हम वर्तमान हिन्दी लेखक पण्डित मण्डली में व्याकरणाचार्य पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी को सब से योग्य समझते हैं। उन के पाण्डित्य और उदासीनभाव को हम निःसन्देह श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि प्रकारान्तर से ११ वीं ध्वनि में हम ने उन्हें, इस काम के लिये सादर निमन्त्रण दिया है। अस्तु।

समालोचक महाशय ने हिन्दी कादम्बरी की आलोचना करते हुए ५ त्रुटियां लिखी हैं, जिन्हें हम क्रमशः नीचे लिखते हैं।

"सब से पहिले आप बड़े गर्व के साथ लिखते हैं—

मुनिकुमार हारीत, कादम्बरी के कथक्कड़ 'सूत' शुक शिशु को लिये हुए आश्रम में लौट रहे हैं, शुकशिशु आश्रम की अलौकिक महिमा पर आश्चर्यचकित हो विविध प्रकार से विचार कर रहा है, हारीत उसे एक ओर रखकर पिता को प्रणाम करते हैं।

"एवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यैव रक्ताशोकतरोच्छायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः—

इसपर हिन्दीकादम्बरीकार कहते हैं--इस प्रकार विचार करते२ मुझे उसी अशोक वृक्ष की छाया में एक तरफ़ रख कर हारीत—

इन के मत में इस से पहले आश्रम की महिमा के सम्बन्ध में जो विचार हुआ है, वह हारीत ने किया है, इसप्रकार विचार करते २ हारीत ने रक्ताशोक की छाया में तोते को ला रक्खा है 'एवं चिन्तयन्तमेव मां' की जगह 'एवं चिन्तयन्नेव हारीतः' होगयाहै।

जी हां, 'हारीतः' होगया है! और 'मां' और 'मुझे' को इसी ने दूर कर दिया है! ठीक है, हमारे मत में इस से पहिले आश्रम की महिमा के सम्बन्ध में जो विचार हुवा है, वह ज़रूर हारीत ही ने किया है! इस सम्बन्ध में हारीत ने विचार किया है या शुकशिशु ने, खेद है कि यह बात नवम ध्वनि में स्वयं लिखकर भी हमें याद नहीं रही!

बलिहारी है इस समालोचकता की? 'अवलोक्य चाहमचिन्तयम्' को हम इतनी जल्दी भूल गये! हमारे या सिलसिले वार जो पाठक इसे देख रहे हैं, उनके मत में तो नहीं, हां, आप जैसे समालोचक वीरों के मत में, कादम्बरी की हिन्दी को देख कर नहीं केवल हट से, यह बात ज़रूर होगी कि आश्रम की महिमा का विचार, हारीत ने किया है!

वञ्चना चातुरी, इसी का नाम है। हिन्दी की चुन्दी और किसे कहते हैं?

दूसरी बात आप कहते हैं—

"इहैवोपजातपरिचयः स्थास्यति—की हिन्दी हुई है 'या परिचय होजाने पर यहीं रहने लगेगा—'परिचय होजाने पर' की जगह हिन्दी जानने वाला, परच जानेपर लिखता। पशु पक्षीके परिचय को हिन्दीमें परच जाना बोलते हैं"।

लीजिये, अपने चंचल मनको यूं ही मनाकर खुश कर लीजिये कि हम हिन्दी नहीं जानते। हिन्दी जानते होते, तो निःसंदेह 'परच' के स्थान में 'परिचय' जैसा बाण सम्मत और रद्दी शब्द न लिखते? 'ज़ौक़' के शब्दों में—

जो कहोगे तुम कहेंगे हम भी हां यूं ही सही।
आपकी यूं ही खुशी है, मेहरबां यूं ही सही॥

इस के बाद तीसरी त्रुटि दिखलाते हैं—

"इत्येवमुपयाच्यमानस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः प्रत्यवोचत्।

इसकी हिन्दी बनी है—

इस प्रकार मुनिमण्डली से उपयाच्यमान होकर जाबालिने कहा आप ने भी जाबालि को उपयाच्यमान की उपाधि देकर जो कहा सो खूब कहा"।

हां साहब! हम ने भी जो कहा सो खूब कहा। साफ़ साफ़ आप यही क्यों नहीं कहदेते कि 'उपया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्यमान' की हम हिन्दी नहीं लिख सके ! आप ने तो उसकी हिन्दी बतलाई भी नहीं ! कादम्बरी को पुस्तकाकार छपने का गौरव प्राप्त होने पर, आप का नामोल्लेख करके, तभी हम उसे लिख देते !!!

अच्छा, अपनी अयोग्यता से न समझ सकने के कारण हम 'उपयाच्यमान' जैसे गूढ़ शब्द की हिन्दी ही तो न लिख सके हैं। कोई अर्थ का अनर्थ तो नहीं होगया ?

आगे चल कर आप एक और नई बात की उत्प्रेक्षा करते हैं—

"किञ्चिदुपजातकुतूहलो भगवान् जाबालिरीषदावलितकन्धरः पुण्यजलैःपूतालयन्निव मामति शान्तया दृष्ट्वा दृष्ट्वा सुचिरमुपजातपूर्वाभिज्ञान इव पुनः पुनर्विलोक्य स्वस्यैवा विनयस्य फलमनेनानुभूयेत इत्यवोचत् ।

इसकी हिन्दी सुनिये —

"इस प्रकार मेरे सम्बन्ध के आलाप को सुनकर जाबालि ऋषि को कुतूहल हुआ और वह नीचे को गर्दन किये हुए पवित्र जल से जैसे स्नान कराते हों, वैसे बड़ी शान्त दृष्टि से बहुत देर तक मुझे देखकर यह वही है ऐसे जानने वालों की तरह से बार बार देखकर यह अपने दुराचार का फल भोग रहा है यह कहने लगे ।"

'ईषदावलितकन्धरः' का अर्थ गर्दन नीची करना नहीं कुछ मुड़कर देखना है, द्रष्टव्य पदार्थ को ध्यानपूर्वक देखने के लिए कुछ मुड़कर देखना है ।

समालोचक जी ! 'ईषदावलित कन्धरः' का यह अर्थ आप को सचमुच किसी ने हँसी कराने के लिये बतलादिया है । हम आप की तरह से यह फ़िजूल दावा नहीं करते कि इस पद का 'कुछ मुड़ कर देखना' अर्थ बिलकुल होता ही नहीं है। 'अनेकार्थाः शब्दा भवन्ति' के अनुसार किसी अंश में और कहीं कहीं यह भी हो सकता है, पर यहां ऐसा लिखना नितान्त असंगत होता । सुनिये ।

जैसा कि आप लिखते हैं, यह बात ठीक है कि तोता कुछ जाबालि की गोद में न बैठा था, न किसी गढ़े में था । वह तो जाबालि से कुछ फ़ासले पर एक ओर बैठा था । यह आप और लिख देते तो बात साफ़ खुल जाती कि किस ओर बैठा था, पीठ की ओर बैठा था या मुंह की ओर ? इस मामले में फिर हमें कुछ लिखने की ज़रूरत ही न पड़ती ।

वह यदि पीठ की ओर बैठा हो, तो उसे देखने के लिये ज़रूर ही गर्दन घुमानी या फेरनी होगी । और यदि वह मुंह के सामने की ओर बैठा हो तो गर्दन घुमाने या फेरने की ज़रूरत नहीं। उसे ध्यान पूर्वक देखने के लिये गर्दन को कुछ नीची करने की—झुकाने की—आवश्यकता पड़ेगी ।

अच्छा तो, अब यह बात हल होजाने पर मामला तय होजायगा कि वह तोता किस ओर को बैठा था ।

जाबालि के देखने से कुछ देर पहिले, तोते ने जाबालि को देख लिया था, वह जाबालि को जिस प्रकार से देखता है, उसका वह दर्शन—प्रकार, जाबालि के सामने ही से होना सम्भव है या पीठ पीछे होजाने पर ।

तोता कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" तस्य चैवं विधस्य ... ... रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम् ... ... उपरचितभस्मत्रिपुण्ड्रकेण तिर्य्यक्प्रवृत्तत्रिपथगास्रोतस्त्रयेण हिमगिरिशिलातलेनेव ललाटफलकोपेतम्, अधोमुखचन्द्रकलाकाराभ्यामवलम्बितवलिशिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमानदृष्टिम्, अनवरतमन्त्राक्षराभ्यासविवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिरिव करुणारसप्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलितपुरोभागम्, ... अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिः शापाक्षरैरिव सदामुखभागसंनिहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतरगण्डगर्तमुन्नततरहनुघोणमाकरालतारकमवशीर्यमाणविरलनयनपक्ष्ममालमुद्गतदीर्घरोमरुद्धश्रवणविवरमानाभिलम्बकूर्चकलापमाननमादधानम्, अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानामन्तःसंयमनरज्जुभिरिवाततानिभिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्धकन्धरम्, समुन्नतविरलास्थिपञ्जरमंसावलम्बियज्ञोपवीतम् वायुवशजनिततनुतरङ्गभङ्गमुत्प्लवमानमृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहमकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमलस्फटिकशकलघटितमक्षवलयमत्युज्ज्वलस्थूलमुक्ताफलग्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलिविवरगतमावर्तयन्तम् ... ... भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।

इस सारे अवतरण का मतलब, पाठक यदि देखना चाहें, तो वे 'मनोरमा' की आठवीं ध्वनि में देख सकते हैं। हम यहां पर केवल इतनाही कहेंगें कि तोते ने जाबालि का खौड़ चढ़ा मस्तक देखा, उनकी भौंएं देखीं, गालों में गढ़े पड़े हुए देखे, नाक और ठोड़ी देखी, और भी एक चीज़ देखी, जो इस बात को बिलकुल साफ़ करती है, वह देखी चमकती हुई, दन्तावली। उस ने उन की डाढ़ी भी देखी और उन्हें माला घुमाते भी देखा।

हमारा ख़्याल है कि हमें यहां अब कुछ कहने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती। पाठक देख सकेंगें कि यह बातें पीठ पीछे से देखी जासकती हैं, या मुंह के सामने से। और मुँह के सामने होने पर फिर गर्दन घुमाने या मुड़ कर देखने की ज़रूरत नहीं है।

यही नहीं, बाण को यदि यहां आपकी तरह से गर्दन घुमानी अभीष्ट होती तो वह कुछ ही पहिले मुंह के सामने का इतना तवील क़िस्सा न लिखते और अमरुशतक के रचयिता की तरह से ईषद्वक्रितकन्धरः" लिख देते।×

इस मामले पर 'कादम्बरी-हाईकोर्ट' के जज, महामहोपाध्याय पण्डित भानुचन्द्र जी की सम्मति और देख लीजिये संभव है, यह आपकी अदालत में नज़ीर मान लीजाय—

'ईषदावलित कन्धरः' की व्याख्या आप यूं करते हैं—

ईषत् किञ्चिदावलिता नमिता कन्धरा ग्रीवा यस्य स तथा। इदं तु सावधानलक्षणम्।

समालोचकजी को 'इदं तु सावधानलक्षणम्' पर ध्यान देना चाहिये।

सब से आख़िर में आप फ़रमाते हैं—

'विशेष व्याख्या का एक नमूना और सुन लीजिये और बस, सायंकाल का समय है, सूर्य डूब रहा है, उस की किरणें सिमट रहीं हैं, सप्तर्षि आदि तारे निकलने को हैं। इस मौक़े पर कवि कहता है—

"उद्यत्सप्तर्षि सार्थस्पर्श परिजिहीर्षयेव संहृत पादः पारावत पादपाटलरागोरविरम्बरतलादवलम्बत"—

× दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा,
देकस्या नयने पिधाय विहित क्रीडानुबन्धच्छलः।
ईषद्वाक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसाः,
मन्तर्हास लसत्कपोलफलकां धृतोऽपरां चुम्बति ॥
अमरुशतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कादम्बरीकार कहते हैं—.....सूर्य कृशता को प्राप्त होगया था—छिपने वाला था और वह आकाश मण्डल से लटक आया था। उस समय वह कबूतरों के परों के समान पाटल मालूम होता था। निकलते हुवे सप्त ऋषियों के स्पर्श को दूर करने की इच्छा ही से मानो, वह किरणों को सिकोड़े हुवे था—बात यह है कि उस समय किरने भी छिपी जा रही थीं।"

इसे चमत्कार शून्य बतलाकर आप अपनी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

"संहृतपाद" में "पाद" पद श्लिष्ट है, यह श्लेष यहीं'... ...स्पर्शपरिजिहीर्षयेव' इस उत्प्रेक्षा की जड़ है, उत्प्रेक्षा से, जगत्पूज्य सूर्य की अपेक्षा सप्तर्षियों का गौरवातिशय्य व्यङ्ग्य है, जगत्पूज्य परम पावन सप्तर्षियों से कहीं—'पादस्पर्श' न हो जाय—पांव न छू जाय—इस लिये मानों सूर्य ने अपने'पाद' (किरण) समेट लिये हैं, जिस तरह किसी पूज्य पावन पुरुष को सामने आता देख कर कपड़े समेट कर हाथ पांव सकोड़ कर कोई एक ओर रास्ता छोड़ कर खड़ा होजाय। सूर्य के चरण चारों ओर आकाश में फैले थे, सामने सप्तर्षियों का "सार्थ" क़ाफला आरहा था,(एक दो ऋषि होते तो कुछ रास्ता छोड़ने से ही काम चल जाता पर यहां पूरा क़ाफला आरहा था) सूर्य चरण फैलाये पड़ा रहता तो वह सप्तर्षियों के लगते,सूर्य के किरन ठहरे हज़ारों, समेटने पर भी सम्भव था कुछ फैले रह जाते, इस लिये वह सब को समेट कर अम्बरतल से लटक पड़ा पूरा रास्ता छोड़ दिया, और सप्तर्षियों के अपमानजनित अनर्थ से अपने को बचा लिया।

अत्र मद्रदेशस्थानामाभ्यर्णां तदितराणां च मार्गसम्मेलन-समाधिः तत्र हि मध्ये मार्गमागच्छन्तमार्यं (ब्राह्मणम्) दूराद्-दृष्ट्वा,स्वच्छाया—स्पर्शं परिजिहीर्षयाऽस्पृश्यो मार्गं परित्यज्य सत्व-रमपसरति, उपसंहृतकरचरणो भूमौ वा दण्डायमानो निपतति।"

पाठक, देखेंगे कि आप के इस इतने लम्बे चौड़े भाष्य में कोई ऐसा भाव है, जो हमारी मिता-क्षरा हिन्दी में रह गया हो? "निकलते हुए सप्त ऋषियों के स्पर्श को दूर करने की इच्छा ही से मानो वह (सूर्य) किरणों को सिकोड़े हुए था" इस इतने वाक्य में क्या आप के इस सारे गवड़गंड का मतलब नहीं आजाता?

बाण की गाड़ी भरी व्यङ्ग्योक्तियां हैं। प्र-त्येक व्यङ्ग्योक्ति का इतना बड़ा भाष्य या भाव लिख कर यदि समझाया जायगा, तो हमें सन्देह है कि यह ग्रन्थ, बाण की तरह से हम भी पूरा करसकेंगे या नहीं?

हिन्दी कादम्बरी लिखते हुवे हमारा उद्देश यह रहता है कि कोई बात रह भी न जाय और ग्रन्थ भी विशेष विशालकाय होकर, 'चन्द्रकान्ता' या 'महाभारत' की सूरत अख़्त्यार न करले। यह उद्देश अच्छा है या बुरा इसे सिर्फ़ विवेकशील पण्डित ही समझ सकते हैं—

समझे जनाबे आली यह बात है निराली।
पड़ते हैं आप ख़ाली क़ादम्बरी के पीछे॥

'मनोरम श्लोक' पर जो कुछ आप ने लिखा है, 'सच्ची बात' की तरह उस पर भी हमें कहने का कुछ अधिकार नहीं है।

अन्त में हम ऐसी लम्बी आलोचना लिखने के लिये आप को बधाई देते हैं, सचमुच पण्डित-राजके शब्दों में—

कृतं त्वयोन्नतं कृत्यमर्जितं चामलं यशः

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृ-पूजा ।

सदैव मातृभूमि की-अमन्द वन्दना करो ।
ममत्व मातृ-पाद-पद्म भक्ति में घना करो ॥
समस्त एक-तत्त्व हो-समान-साधना धरो ।
कराल-कष्ट-राशिके विकार भार को हरो ॥१॥
अहा ! स्व-मातृ-भूमि की-प्रशस्तता कहाँ गई ?
उठारही विखिन्न हो-विपत्तियाँ नई नई ॥
अनल्प-कोटि पुत्र आज हा ! उसे भुलारहे ।
अशक्त हीन दीन हो-स्व-मातृ को रुलारहे ॥२॥
यही प्रधान-कार्य्य है- स्व-जन्म-भू सुधारिए ।
स्व देश-दैन्य-पंक में पड़ाहुआ उधारिए ॥
समस्त-भेद-भावना-विभिन्नता बिसारिए ।
अदम्य साहसी बने-न धैर्य्य-धाम हारिए ॥३॥
न विघ्नजाल से डरें-कि मार्ग छोड़ नर्म हों ।
न क्रोध के अबोधमें, फँसें विशेष गर्म हों ॥
सुधार के भरे जहाँ-अदम्य दिव्य मर्म हों ।
वही प्रयोजनीय हैं-विचारयुक्त कर्म हों ॥४॥
पतंग के समान कौन-जान के विनाश भी ।
विपन्न-बन्हि वीच में-पड़े मनुष्य जो कभी ॥
स्वशक्ति के समान कार्य-बर्ग में बढ़े चलो ।
स्वलक्ष्य-शैल-शृङ्गपै- उमंग से चढ़े चलो ॥५॥
प्रकाश आज जो तुम्हे-सुलक्ष्य है दिखारहा ।
वही अलभ्य श्रेय है-विधेय जो सिखारहा ॥
समस्त विश्व-शक्तियाँ विकाशमान आज हैं ।
समृद्ध सिद्धवृद्ध हैं-स्वतन्त्र सत्व साज हैं ॥६॥
अहा ! स्वदेश-दुर्दशा-विचार अश्रुपात है ।
कराल कालकी बड़ी-विशाल चाल घात है ॥
अहो ! कही न जासके-महाविषाद की कथा ।
स्वदेशने सही अहा ! बड़ी कड़ी कड़ी व्यथा ॥७॥
अनेक मातृ-भक्त हैं, ममत्व मग्न मानते ।
मनुष्य जन्म मातृके-सुधार हेतु जानते ॥
स्वजन्मभूमि के लिये मनुष्य का शरीर है ।
वही मनुष्य रत्न है. वही स्वकर्म वीर है ॥८॥
अनेक विश्व-भोग-भाव-भावना भरे हुए ।
स्वकीय-चित्त-चाहके प्रवाहमें परे हुए ॥
अनल्प-कल्प-कल्पना- विचार को लहे हुए ।
समस्त-विश्वसिद्धिकी-विभूति को चहे हुए ॥९॥
रहे तथापि क्या मिला ? विना स्वमातृ-भक्तिके ।
प्रमाण क्या मिले उसे ? यहां मनुष्य शक्तिके ॥
स्वकीय-सिद्धि साधना-स्वभाव-सिद्ध कर्म्म है ।
परोपकार भी परन्तु-एक मुख्य धर्म्म है ॥१०॥
स्वनामधेय धन्य भक्त-मातृ-भूमि के लिए ।
महोपकार आज जो अनेक भाँति के किए ॥
वही सुमार्ग आपका-सुलक्ष्य शुद्ध बोध है ।
वही स्व-मातृ-भूमिके-हितार्थ दिव्य-शोध है ॥११॥
स्व-जन्म-भूमि-हेतु ही-स्वजन्म योग जोड़दे ।
अशेष-विश्व--सौख्यसे समस्त-चाव छोड़ दे ॥
वही प्रजा प्रजा कि जो प्रजेश के लिए मरे ।
वही स्वदेश-भक्त जो-स्वदेश के लिए मरे ॥ १२ ॥
यहां मनुष्य जन्म भी मिला न वार वार है ।
चले चलो बढ़े चलो-मनुष्य कार्त्ति-सार है ॥
विचित्र विश्व-सिन्धु है-अगाध है अपार है ।
स्व-कर्म्म-योग-सिद्धिका-यही प्रसिद्ध द्वार है ॥१३॥
उपाय के प्रबन्ध से--विकार को हटा हटा ।
तमो विभाग-राशि को-प्रकाश से घटा घटा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदम्य शक्ति का विकाश-आत्मसंस्थ कीजिए।
सदैव शान्ति की सुधा-विधान-लग्न पीजिए ॥१४॥
स्वदेश- भक्ति--भूतिही--मनुष्य--जन्म--तत्व है।
यही महाप्रसाद है-यही महा महत्व है॥
यही मनुष्य जन्म का विपाक है यथार्थ है।
यही मनुष्य वर्ग के-लिए महा पदार्थ है ॥ १५ ॥

महेश्वरप्रसाद शास्त्री

—०—

कात्यायन। *

पाणिनिके ग्रंथ की जो कुछ भी समालोचना मिलती है उसमें कात्यायन के वार्तिक ही सर्वप्रधान गिने जाते हैं कात्यायन से पहले किसी भी माई के लालका पाणिनिके सूत्रों पर हस्ताक्षेप या ननुनच करने का साहस नहीं हुआ। कात्यायन ने पाणिनिकी समालोचना करने में अपनी दक्षता और विद्वत्ता का पूरा परिचय दिया है।

किंतु खेद यही है कि, पाणिनिकी भांति कात्यायन की जीवन घटनाएं भी प्रगाढ़ अंधकार से आवृत हैं। कथा सरितसागर ने पाणिनि और कात्यायन को एक सूत्रमें ग्रथित किया है। कथा सरित्सागर एक उपन्यास ग्रंथ है, इससे उसपर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। पर आश्चर्य आजकल के उन पण्डितों पर है, जो इस उपन्यास पर आस्थावान् हो अपने ग्रंथों को असार पंडिताई से पुर कर डालते हैं। निःसंशय, यही भारत के दुर्भाग्य और पण्डितों के कलंक का हेतु है।

मॉनियर विलियम्ज़ महोदय नें लिखा है कि, संभवतः कात्यायन पाणिनि के एक सौ वर्ष बाद संसार में आविर्भूत हुए होंगे[1]। अध्यापक मोक्षमूलर के ख़याल में, वार्तिककार कात्यायन वररुचि और "प्राकृत प्रकाश" नामक प्रसिद्ध प्राकृत व्याकरण के कर्त्ता वररुचि एक ही हैं[2]। मालूम होता है कि, इण्डिया हाउस के पुस्तकालय की सर्वानुक्रमणी में- "अत्र शौनकादिमतसंगृहीतुर्वररुचेरनुक्रमणिका" यह वाक्य पढ़कर उनको इस भांति भ्रांत होना पड़ा है। मेदिनीकोषमें कात्यायन का दूसरा नाम वररुचि लिखा देखकर उनका भ्रम और भी दृढ़ होगया है। फ़िट्ज़ एडवर्डहलसाहब भी इसी भ्रममें पड़े हैं[4]। कहा जाचुका है कि, प्राकृतप्रकाशकार वररुचि वासवदत्ता प्रणेता सुबन्धु के मामा थे। ऐतिहासिकों के मत में यहा वररुचि हर्ष विक्रमादित्य के समय में अर्थात् क्राइस्ट की छटी सदीमें वर्त्तमान था। किन्तु पाणिनिका वार्तिककार इससे बहुत पहले हुआ। अतः कात्यायन के साथ वररुचि की अभेद कल्पना नहीं की जासकती।

कोई कोई कहते हैं कि, गोल्डष्टुकर महोदय के मत में वार्तिककार कात्यायन भाष्यकार पतंजलि के

* रजनीकान्त गुप्त लिखित 'पाणिनि' के आधार पर।

1. Indian Wisdom P. 176.
2. Muller's An. San. Lit. P.239-240
३. 'कात्यायनो वररुचौ विशेषे च मुनेः पुमान्' मेदिनी।
४. हल साहब प्रकाशित वासवदत्ता भूमिका—२३ पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समसामयिक हैं[६]। किसी किसी ने तो कात्यायन को पतञ्जलि का आचार्य लिखा है[७]। हमें इन दोनों मतों पर आस्था नहीं होती। कात्यायन पाणिनिका एक महा प्रतिद्वन्द्वी है; कितने ही स्थलों पर तो केवल पाणिनि के दोष दिखलाने के लिये ही उसके वार्तिक बने हैं। वस्तुतः कात्यायन की तरह कोई भी विद्वेषबुद्धि से परिचालित हो, पाणिनि की समालोचना में प्रवृत्त न हुआ होगा। दूसरी तरफ़ पतञ्जलि का महाभाष्य अन्य प्रकार के ही उपादान पर निर्मित हुआ है। पतञ्जलि ने अनेक स्थानों पर कात्यायन के प्रबल आक्रमणोंसे पाणिनि को बचाने के लिये यथासाध्य चेष्टा की है। वस्तुतः वार्तिककार के आक्रमणों के निवारण करने के लिये पतञ्जलि का महाभाष्य एक सुदृढ दुर्ग है। यदि कात्यायन और पतञ्जलि का गुरुशिष्यभाव होता तो पतञ्जलि कदापि कात्यायन का विरोध कर पाणिनि की पोषकता स्वीकार न कर सकता। शिष्य, किसी भांति भी पूज्य आचार्य की अवहेला करने की विचारमल्लता नहीं दिखा सकता।

यद्यपि कात्यायन के आविर्भावकाल का निर्णय आज तक पुष्ट प्रमाणों से स्थिर नहीं हो सका है, किन्तु यह दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि, वे पाणिनि के पीछे और पतञ्जलि के पहले वर्त्तमान थे। इस बारे में अध्यापक मॉनियर विलियम्ज़ ने जो अभिप्राय प्रकट किया है, वह नितान्त असङ्गत प्रतीत नहीं होता।

कात्यायन नाम से केवल एक ही व्यक्ति भारत के इतिहास से सम्बद्ध नहीं है। बौद्ध धर्म-प्रचारक शाक्यसिंह के शिष्यों में से भी एक का नाम कात्यायन देखा गया है। किन्तु ख्यात नामा वैदिक ऋषि कात्यायन के साथ इसका कोई भी सम्बन्ध मालूम नहीं देता।

कात्यायन ने पाणिनीय व्याकरण के वार्त्तिकों के अतिरिक्त, शुक्ल यजुर्वेद संहिता का माध्यन्दिन प्रातिशाख्य, सर्वानुक्रमणी और वैदिक कल्पसूत्र का प्रणयन किया है। गोल्डष्टुकर के मतानुसार कात्यायन ने माध्यन्दिन प्रातिशाख्य की रचना के बाद पाणिनीय व्याकरण के वार्त्तिकों की रचना की है।

गोल्डष्टुकर और अध्यापक वेबर दोनों ने ही कात्यायन को पूर्वदेशवासी निर्दिष्ट किया है[८]। किन्तु अध्यापक रामकृष्णगोपाल भाण्डारकर ने महाभाष्य का एक वाक्य उद्धृत कर, यह सिद्ध किया है कि, कात्यायन दाक्षिणात्य थे। उन के मत का पोषक कात्यायनका शब्दानुशासन सम्बन्धी एक यही वार्तिक है—"यथा लौकिकवैदिकेषु (जैसे लोक और वेद प्रसिद्ध वाक्य) पतञ्जलि ने इस वार्तिक को लक्ष्य कर व्यङ्ग रूप से लिखा है—"प्रियतद्धिता दाक्षिणा-

६. Chamber's Encyclopaedia, Katyayana.

बाबू रामदाससेन ने अपने ऐतिहासिक रहस्य स्थित वररुचि-शीर्षक प्रस्ताव में भी इसी प्रकार की बात लिखी है। किंतु गोल्डष्टुकर ने कहीं कात्यायन को पतञ्जलि का समकालवर्त्ती लिखा है इसका बड़ा अनुसंधान करने पर भी हमें पता नहीं मिला।

७. Chamber's Encyclopaedia, Vol. VII. P 232., article Panini.

८. Goldstucker's Panini P. 205.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याः । यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिक-वैदिकेष्विति प्रयुञ्जते" (दाक्षिणात्य लोग तद्धित प्रिय होते हैं । लोके वेदे के स्थानमें लौकिक वैदिक प्रयोग करते हैं ।) कात्यायनके वार्तिक की रचना देखकर दक्षिणी लोगों का, पतञ्जलि ने जो ठट्ठा उड़ाया है, उस से यह निःसन्देहरूप से पता चलता है कि, कात्यायन दक्षिण के ही किसी स्थान में जन्मे होंगे[९] ।

रामकृष्णगोपाल भाण्डारकर ने जिस 'यथा लौकिकवैदिकेषु' वाक्यकी वार्त्तिकों में गणना की है, अध्यापक वेबर उसको पतञ्जलिका एक उदाहरण-विशेष बतलाते हैं । अर्थात् पतञ्जलि ने केवल दक्षिणी लोगों के शब्दप्रयोग दिखलाने के लिये—'यथा लौकिकवैदिकेषु' यह वाक्य उद्धृत किया है । वेबरने महाभाष्य में से इसी के जोड़ का एक और वाक्य उद्धृत कर अपनी बातका समर्थन किया है, यथा-"अस्ति च लोके सरसी शब्दमस्य प्रवृत्तिः । दक्षिणापथे हि महान्ति सरांसि सरस्य इत्युच्यन्ते ।" इस से यह पता चलता है कि, जिस भांति दक्षिण में प्रचलित वाक्य का उदाहरण दिखलाने के लिये पतञ्जलि ने सरस्यः' पद दिखलाया है वैसे ही 'लौकिकवैदिकेषु' का भी प्रयोग किया होगा । किन्तु भाण्डारकर ने इसे पुष्ट नहीं किया । असल बात यह है कि, महाभाष्य में जिस तर्ज़ से 'यथा लौकिक-वैदिकेषु' इसवाक्य की व्याख्या और आलोचना की गई है, उस के अनुसार यह वार्तिकों में ही गिना जाना चाहिये । वार्तिकों के दोष और गुणों के विचारके ही लिये महाभाष्य प्रणीत हुआ है । विशेषकर नागोजीभट्ट ने इस के पहले के इसी क़िस्म के दो और वाक्य-(१) "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे, (२) लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः"—वार्तिकोंमें निवेशित किये हैं । समझमें नहीं आता कि, जब पहले और दूसरे को वार्तिकोंमें स्थान मिलगया, तो तीसरा भी उन्हीं में कैसे नहीं गिना जायगा[१०] ?

श्रीहरिहरसुरूपशर्मा ।

—०—

आर्य्य असुर और दानव ।

जनवरी सन् १९१५ के "बाल हितैषी" में जो इन्द्र और अश्वी की वैदिक कथापर १ लेख बाबू जगन्मोहन वर्म्मा का छपा है, वह विद्यार्थियों और विशेष करके आर्य्यावर्त के प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों को बहुत उपयोगी है विद्यार्थियों के लिये तो इस वास्ते कि यदि अभीसे उनको वैदिक इतिहास जानने में आने लगेंगे तो वे आगे को और भी स्वयं इस विद्या में उन्नति करेंगे जिस से आर्य्यों का पुराना इतिहास जो आलंकरिक-कथाओंसे छुपा हुआ है बहुत कुछ प्रकाश में आसकेगा और प्राचीन इतिहास के खोजियों के वास्ते इस लिये कि उससे हिन्दू और फारसियों के इतिहासका १ परदा हटकर दोनों को एक दूसरे के सामने ला खड़ा करता है क्योंकि उस में लिखा है कि आर्यों की सबसे पहिली १ शाखा, सारस्वत से पश्चिम के ओर चली गई और इरण प्रदेश में जिसे अब ईरान

९. 'Indian Antiquary.' Vol, II.P.71.

१०-Vide Indian Antiquary. Vol.II.PP. 208, 239.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा फ़ारस कहते हैं आबाद हुई-सो इसका पता फ़ारसियों के पुराने ग्रंथों में से भी लगता है परन्तु इतना अंतर है कि फारसी, यों कहते हैं कि हम लोगों के दादा परदादा तो आदि में खेती करनेवाले और शान्ति से बसने वाले थे और हिंदुओं के दादा परदादा पशु चरानेवाले और लड़ाका थे वे लड़ झगड़ कर पूर्व की तर्फ़ चलेगये ख़ैर ! कुछ ही हो मूल जाति दोनों की १ ही अर्थात् आर्य्य है पारस के पुराने बादशाहों ने भी शिला लेखों में अपने को आर्य्य और अर्य्य पुत्र लिखा है ।

दूसरी बात उस लेख में यह लिखी है कि आर्यों के २ बड़े शत्रु असुर और दानव थे जो आर्यों से लड़ा करते थे सो इसकी तसदीक़ फ़ारसियों की किताबों से भी होती है जिनमें दानव को दनु लिखा है और दनू भी दानव से मिलता हुआ है जैसे इरन ईरान से । दनु के निवासस्थान का पता फ़ारसियों की किताबों से योरप और एशिया के उस सीमा प्रांत प्रदेश में लगता है जहां डेनोएल पहाड़ और डैनूब नदी है जिसपर तुर्कों की राजधानी कुसतुन्तुनिया बस्ती है और अब जरमन और अंग्रेज़ों की लड़ाई के प्रसंग से इन दोनों का नाम हमारे विद्यार्थी भूगोल से ज़ियादा समाचार पत्रों में देखते होंगे ।

डेनोएल और डैनूब के यथार्थ रूप और नाम दनु आल वा दानु आल और दनु अब अर्थात् दनू का पहाड़ और दनु का पानी है वेदों में खोज करने से भी शायद दानवों के प्राचीन निवासस्थान यही निकल आवें और यहीं से वे लोग सारस्वत और ईरान में रहनेवाले आर्य्यों से लड़ने आते हों !

बनी इसराईल जातिमें दानयाल नाम १ पैग़म्बर अब से प्राय ३०००बरस पहिले हुआ है और यह नाम दनु वा दानव से मिलता हुआ है इससे क्या आश्चर्य है कि जो बनी इसराईल जाति ही दानव या दनु की उत्तराधिकारीहो इसका प्राचीन देश जो पेलसतायन है ईरान के पश्चिम, मिश्र और शाम के बीच में था जहां अब अरब जाति के मुसलमान लोग विशेष करके रहते हैं और बनी इसराईल जो यहूदी कहलाते हैं मुसलमानों की जीत और मारधाड़ से यौरप वग़ैरा परदेशों में जा बसे हैं जैसे फ़ारसी हिन्दुस्तान में आकर मुसलमानों से बचे हैं।

अब रहे, असुर कि वे कौन थे और कहां रहते थे इस प्रश्न के उत्तर में कोई २ ऐसा कहते हैं कि हिन्दू आर्य्य फ़ारसियों को असुर कहते थे परन्तु मेरी समझ में असुर दानवों के पड़ोसी शामदेश के रहेनवाले आशरिया और आशूरियन लोग होंगे। शाम का पुराना नाम आशूरिया या सरिया—था जहां की बोली सुरयानी कहलाती थी असुर से मिलता हुआ नाम है—आशूरिया की पुरानी कथाओं में वहां की रानी समरामस के लशकरका हिन्दुस्तान तक आना कहा जाता है इसपर कई अंग्रेज़, इतिहासवेत्ता ऐसी कल्पना करते हैं कि हिन्दुओं में जो देवासुरसंग्राम की कथा चलती है वह समरामस के लशकर और हिन्दुओं की लड़ाई से निकली है और हिन्दुओं की समराय नाम देवी समरामस ही है क्योंकि उसकी जीत होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हिन्दू उसको समराय देवी* कहकर पूजने लगे थे।

इस तरह पुराने आर्य्यों के शत्रु असुर और दानवों का कुछ पता बाहर की ऐतिहासक घटना की कथाओं में लगता है, बड़ा अच्छा हो यदि बाबू जगन्मोहन साहिब ऊपर लिखी बातों की जांच वेदों और ईरान, अशूरिया, बाबुल ननवा, फुसलतायन मिश्रर, और फ़ारसियों के पुराने इतिहासों से करके फिर कोई लेख असुर दानव और देवासुर--संग्राम के विषय में भी लिखने का कष्ट उठावें।

देवीप्रसाद

—०—

हिन्दी में साम वेद।

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।

नमस्त अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ॥ अमैरमित्र मर्दय ॥ १ ॥ ॥ ११ ॥

हे अग्निदेव! मनुष्य श्री पुरुषार्थ पानेके लिये।
श्री नमस्कृतिका शब्द तेरे हेतु उच्चारत रहें ॥
अतएव मैं भी आपको श्रद्धासहित प्रणमतिकरों।
तुम बलों से रिपुवर्ग का संहार सबविधि आचरो ॥११॥

दूतं वो विश्ववेदस ँ हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥ ॥१२॥

हे अग्नि! तुम सबसृष्टिकी धनराशि के ज्ञातारहो।
चरु पुरोडाश हविष्य सब सुरवृन्द को पहुँचात हो ॥
निर्जर, मखोंका परमसाधन देवदूत कहात हो।
स्तुतियुक्त वाणी सेति मैं तुमको मनाय बढ़ात हों ॥१२

उपत्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः। वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥ १३ ॥

हे अग्नि! श्रीयजमान द्वारा गुणावलि काहिजावती।
भगिनी सरिस स्तुति गावती सान्निध्य तेरे आवती ॥
पुनि वायुका जो पार्श्ववर्त्ती स्थान माना जात है।
उस ठौर तुझको प्रज्वलित करतीहुई स्थिति पातहै ॥१३॥

उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ १४ ॥

हे अग्नि! नैमित्तिक, तथा जो नित्यकर्म कहावते।
उन सभी के कर्त्तार, हम जो अनुष्ठाता बाजते ॥
प्रतिदिन तथा रजनी विषें निज बुद्धिसे नमते हुए।
हम सभी मिलकर आपके सान्निध्य को पाजावते ॥१४

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय। स्तोम ँ रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥१५॥

हे स्तोत्र से जग जानवारे अग्नि! जो याजक प्रजा।
उन पै कृपा करने तथा मख सिद्धि देने को सदा ॥
उस यज्ञ में आजाय तू जो क्रररूप धरावता।
यजमान भी तेरे लिये अति दिव्य स्तुतिको गावता १५

प्रति त्यञ्चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे। मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ६ ॥ १६ ॥

हे अग्नि! अंग उपांग संयुत यज्ञ जो कहलावता।
उस यज्ञका अभिलक्ष्य करके तू बुलाया जावता ॥
श्रीदिव्य गुण युत सोमरस के पान करने के लिये।
श्री मरुतदेव समूह को निज साथ में ले आइये ॥१६॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥१७॥

श्री पूंछ वाले अश्वसम उस अग्निमख अधिराज को।

* समराय माता के मन्दिर। कई जगह सुने जाते हैं जिनके बाबत फिर कभी लिखाजावेगा —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना स्तवों से याजकों का वर्ग गुण गाने लग्यो ॥
अर्थात् घोड़ा पूंछ से ज्यों मच्छरादि हटावता ।
त्यों तू भि ज्वालावली से दुष्टादि को निवटावता॥१७॥

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुये ।
अग्नि ५ समुद्रवासमम् ॥ ८ ॥ ॥ १८ ॥

श्री जलधि में रहता असा जो वाड़वानल वाजता ।
अत्यन्त आभाकारिणी श्रीकान्ति को जो धारता ॥
अस अग्निको श्री और्वभृगु औ अप्नवान समानसा ।
श्री यज्ञमण्डप बीच मैं श्रद्धासहित बुलवावता ॥१८॥

अग्निमिन्धानो मनसाधिय ५ सचेत मर्त्यः अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥ १९ ॥

जो मरणरूपी धर्म धरता वही मर्त्य कहावता ।
श्री अग्निको समिधादिसेती प्रज्वलित करता हुवा ॥
श्रीमानसी श्रद्धा सहित नियमादि समयों परकरै ।
औ ऋत्विजोंके साथ अग्निहिं ज्वाल संयुत आचरै ॥१९

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योति पश्यन्ति वासरम् परोयदिध्यते दिवि ॥१०॥२०॥

दिवलोक सेभी उच्चपद पर दिवसमणि के रूपसे ।
जब अग्नि यह करता प्रकाश स्वकीयरूप अनूपसे ॥
तत्काल तब प्राचीन प्रसरण शील श्री दिननाथ के ।
श्रीवासहेतु स्वरूप कान्तिहिं प्राणि दर्शन पावते ॥२०॥

शिवदत्त त्रिपाठी
(काव्यतीर्थ)

—o—

नहीं अच्छा ।

बेमोल जन्म व्यर्थ बिताना नहीं अच्छा ।
संसार सूना छोड़ के जाना नहीं अच्छा ॥
अनेक पुण्य राशि से जन्मे मनुष्य हो ।
कर्त्तव्यहीन स्वर्ग कमाना नहीं अच्छा ॥

(२)

वह कौन सत्व शक्ति है तुम में नहीं भरी ?
अपना महत्व बीज गँवाना नहीं अच्छा ॥
बढ़ के यहां प्रधान हैं कितने पुरुष हुए ।
उनका यशोवितान गिराना नहीं अच्छा ॥

(३)

सर्वस्व हस्त प्राप्त हो, पुरुषार्थ जो करो ।
मोहान्धकार जान के जाना नहीं अच्छा ॥
संसार कार्य्य-क्षेत्र में आलस्य त्याग दो ।
स्वार्थानुराग दास्य दिखाना नहीं अच्छा ॥

(४)

कर्तव्यवीर बन के भला कुछ तो कर चलो ।
मनुष्यता प्रमाण मिटाना नहीं अच्छा ॥
प्रत्येक व्यक्ति शक्ति से सुधरे सुधार कर ।
मात्सर्य भेद द्वेष बढ़ाना नहीं अच्छा ॥

(५)

मत भेद, वर्ण भेद को मानो, अवश्य तुम ।
भिन्नात्मता विचार दिखाना नहीं अच्छा ॥
एकत्व, ऐकमन्य से कर्तव्य सिद्ध हो ।
पाण्डित्य पृथग्भाव दिखाना नहीं अच्छा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

आरम्भ कार्य जो करो, पुरुषार्थ से करो।
फल सिद्धि बिना पैर हटाना नहीं अच्छा ॥
कांटे कुचल के विघ्न के आगे बढ़े चलो।
साहस जगत्समर में घटाना नहीं अच्छा ॥

(७)

सब भ्रातृभाव प्रेम से एकत्र मिल चलो।
श्री जन्मभूमि भाव भुलाना नहीं अच्छा ॥
साहित्य दिव्य देश में हिन्दी प्रचार हो।
भाषान्य कोष ज्ञान छिपाना नहीं अच्छा ॥

(८)

जिसके फलान्न पान से परिपुष्ट देह है।
उसके हितार्थ प्राण चुराना नहीं अच्छा ॥
दुर्दान्त वीर युद्ध में लड़ लड़ के कट गये।
शय्या के संग प्राण गंवाना नहीं अच्छा ॥

(९)

नश्वर मनुष्य देह है यश तो अमर सदा।
आजन्म यशोराशि न पाना नहीं अच्छा ॥
उत्साह शक्ति चित्त से छोड़ो कभी नहीं।
कर्तव्य मार्ग में घबड़ाना नहीं अच्छा ॥

(१०)

राजा प्रजा प्रसंग है युग युग से चल रहा।
विद्रोह किसी व्यक्ति में आना नहीं अच्छा ॥
ऐश्वर्य्ययुक्त विश्व में कर्मण्य क्यों करें।
कंजूस मक्खीचूस कहाना नहीं अच्छा ॥

(११)

पड़के व्यसन के वेग में कितने बिगड़ गये।
लज्जा समाज दुर्ग ढहाना नहीं अच्छा ॥
सन्मार्ग श्रेय के लिए प्रस्तुत अनेक हैं।
उन्मार्ग कभी लक्ष्य बनाना नहीं अच्छा ॥

(१२)

सद्धर्म प्रेम भक्ति से अपना हृदय भरो।
नास्तिक्य नया पंथ चलाना नहीं अच्छा ॥
दर्पान्धवीर बन के न हिंसारसिक बनो
निर्बल समझ किसी को सताना नहीं अच्छा ॥

(१३)

उत्साह चित्त नित्य हो उद्योग में लगो।
आलस्य का प्रवाह बहाना नहीं अच्छा ॥
कार्य्यार्थ सिद्धि के लिए उद्युक्त तो रहो।
चिन्ता वृथा शरीर जलाना नहीं अच्छा ॥

(१४)

आनंद धाम राम के चरणों का ध्यान हो।
सिद्धांत निराकार बताना नहीं अच्छा ॥
प्यारा शरीर प्राण से जब तक सनाथ है।
तब लों सुकर्म हाथ थकाना नहीं अच्छा ॥

(१५)

वे पंचभूत देह के मिलते प्रपंच में।
सद्धर्म विना रत्न ख़ज़ाना नहीं अच्छा ॥
हे धर्ममित्र! स्वर्ग के साथी बने रहो।
एकान्त अकेले कहीं जाना नहीं अच्छा ॥

कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री

साहित्याचार्य

—०—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल ।

मत इठलावो ऐसे फूल ।
भूल मत जावो अपनी भूल ॥

आख़िर पैदा मिट्टी से हो, मिट्टी में मिल जावोगे ।
थोड़े क्षणमें ही प्रिय ! मिलकर मिट्टी ही कहलावोगे ॥
अभी तुम्हारा आदर है, फिर पैरों रौंदे जावोगे ।
यह सुन्दर सुकुमार सालिलता, कहो कहां फिर पावोगे॥
कभी नहीं, फिर वृथा हाथमल अकुलाकर पछतावोगे ।
साथ न कोई पावोगे तुम रोते ही रह जावोगे ॥
इससे मनमें समझ बूझ लो कैसे पड़े हुए बेभूल ।
धर्म-कर्मका मर्म जानकर, करो कार्य जगके अनुकूल॥
मातृभूमि की सेवा करलो जन्म जहां पर है पाया ।
जहां हुए फिर फिर पैदा और पावोगे नूतनकाया ॥

लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी ।

—०—

हिन्दी कादम्बरी ।

(१२)

उज्जयिनी में दिन और रात और तारापीड का वर्णन ।

उज्जयिनी में ऊंचे २ मकानों के ऊपर की छत्तों पर, नाचने गाने में लगी हुई स्त्रियों के सुरीले गाने से, अपनी तरफ खींचे गये, अतः एव मानों, नीचे को मुख किये हुए, घोड़ोंवाले, रथपर विराजित उस नगरी में चलते हुए, और अपने रथ की पताका के कपड़े को आगे किये हुए, सूर्य्य भगवान् महाकाल नामक शिव जी को प्रतिदिन प्रणाम करते हुए, जैसे मालूम होते हैं । वहां, सिन्दूर-मणियों, की फर्श बन्दियों, पर सूरज की किरनें सायंकालीन राग से लाल २ जैसी मालूम होती हैं ।

मरकत-मणियों, के चबूतरों पर तो वेकिरनें कमलनियों पर मण्डल बांधे हुए जैसी विराजित होती हैं । और वैडूर्य्य-मणियों, की फर्शबन्दियों पर नीचे फैली हुई भी आकाश में विस्तृत जैसी ही मालूम होती हैं ।

काली अगर के धूम मण्डल पर सूर्य्य-किरनें बहुत से अंधेरे को नाश करने के लिये बिलकुल उद्यत जैसी सुशोभित होती हैं और मोतियों पर वे किरनें तारों की पंक्तियों को भी तिरस्कृत किये हुए जैसी विराजित रहती हैं ।

सचमुच वे किरनें, स्त्रियों के मुखों पर खिले हुए कमलों का चुम्बन करती हुई जैसी मालूम होती हैं ।

स्फटिक-मणियों से बनी हुई दीवारों की कान्ति पर वे किरनें, प्रातःकालीन चांदनी में पड़ी हुई जैसी सुशोभित होती हैं ।

वहां, बहुत सुफेद २ पताकाओं के पल्लु ों पर वे किरनें आकाश गंगा की तरंगों पर अवलम्बित जैसी मालूम होती हैं ।

सूर्य्य-कान्त मणियों, पर छोटे २ अंकुर जैसी और इन्द्र नीलमणियों के रोशनदानों में राहु के मुख रूपी बिल में प्रविष्ट हुई जैसी वे मालूम होती हैं ।

वहां रात में कामिनियों के अलंकारों की कान्ति से ही अन्धकार दूर होजाने के कारण, चकवा चकवी के जोड़े की कभी जुदाई ही नहीं होती और न काम केलि के लिए दीपक ही काम में लाये जाते हैं । वहां रात्रियां, इस अजीब ढंग से बीतती हैं कि उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कामाग्नि से ही दिग्दाह रहता है--चारों तरफ लपटें निकलती रहती हैं।

अतएव वे रात्रियां, निकलते हुए सूर्य्य की धूप से पाटल जैसी मालूम होती हैं। अनवरत प्रसृत होता हुआ बड़ा मनोहर घरों के हंसो का कोलाहल, रतिविलाप जैसा उस नगरी को शब्दायमान करता रहता है। उस नगरी में शिव जी महाराज निवास करते हैं अतः कामदेव के दाह के कारणीभूत रति-विलाप की ध्वनि बड़ी ही अच्छी मालूम होती है।

वहां, रात्रि में बड़े सुन्दर और हवा से हिलाये गये दूकूलों के पल्लुओं से, मालवीय-महिलाओं के मुख कमल की कान्ति से लज्जित, चन्द्रमा के कलंक को, मानो दूर करते हुए, ऊपर को दूर तक गई हुई ध्वजारूपिणी भुजा वाले, प्रासाद दिखाई देते हैं।

वहां, चन्दन मिले हुए जल के छिड़काव से ठंडे २ मणिजटित फ़र्श पर, दुमंज़िलों पर सोती हुई नगर-नारियों के मुखों को देख कर, कामदेव के अधीन हुआ जैसा, प्रतिविम्ब के कहाने से पड़ा हुआ, चन्द्रमा, लोट लगाया करता है

वहां बहुत विस्तृत कामिनियों के अलंकाररव से प्राभातिक गीत तिरस्कृत होते हैं यही नहीं प्रातः काल जगे हुए ऊंचे स्वर से पढ़ते हुए, अतः एव घर के सारसों के स्वर को भी फीका करने वाले मैना और तोतों के सुरीले शब्द से तो प्रभातियां बिलकुल व्यर्थ ही मालूम होने लगती हैं--वहां मैना और तोतों के होते हुए प्रभाती पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती।

वहां मणिदीपकों की अनिर्वृति (बुझना) है। जनता को अनिर्वृति (दुःख) नहीं है--वहां की जनता बड़ी सुखिया है!

उस नगरी में, मोतियों के हारों के अन्त [बीच] में तरल (एक मणि) रहता है। जनता का वहां अन्तः (चित्त) तरल (चञ्चल) नहीं रहता!

वहां गाने बजाने के समय मृदंग के शब्द में अस्थिति (ताल लय आदिक में रुकावट का न होना) है।

जनता में अस्थिति (अमर्य्यादा) नहीं है--वहां की जनता अपनी मर्य्यादा को छोड़ना उचित नहीं समझती!!!

वहां सोने की वर्ण परीक्षा खरे खोटे की जांच की जाती है। जनता में वर्णसंकरता न होनेके कारण वर्ण [ब्राह्मणादि वर्णों] की परीक्षा करने की वहां आवश्यकता ही नहीं होती!

वहां द्वन्द्व (जोड़े की जुदाई चकवा चकवी में ही होती है स्त्री पुरुष में द्वन्द्व लड़ाई झगड़े' से वहां जुदाई कभी नहीं होती!

वहां मित्र द्वेष है तो केवल कुमुदों का, मित्र सूर्य के साथ द्वेष है!

वहां तलवारों के कोश (मियानों के) लिये गुप्ति (ग़िलाफ़) हैं जनता के कोश (रुपये पैसे) की गुप्ति नहीं है--वहां की जनता अपने रुपये पैसे दबाकर रखना नहीं जानती---अपने कारोबार म लगाती है। उस नगरी की प्रशंसा में अधिक क्या कहें जहां कैलास- वास के भी प्रेम को छोड़ कर महाकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक शिव स्वयम् निवास करते हैं इन के चरण नखों की किरनों का, देव और दानवों के मुकुटों की किरनें चुम्बन किया करती हैं। इन ही शिवजी महाराज ने अपने तीखे शूलसे अन्धकासुर को विदीर्ण किया था। एक और अद्भुत बात है, इन ही महादेव महाराज के मस्तक में विराजित चन्द्र शकल का, पार्वती की सान्त्वना करते समय, उनके नूपुर की कोन से घर्षण किया गया था! इन ही ने त्रिपुरासुर की भस्म से अपना अंगराग किया था—उसको मार कर उसकी भस्म को अपने शरीर पर लपेटा था कामदेव के नष्ट होजाने से दुःखित, इन ही की प्रसन्नता में लगी हुई कामदेव की स्त्री रति ने फैलाई हुई अपनी भुजाओं से अत एव निकले हुए कंकणों से इनके चरणों की पूजा की है। प्रलयाग्नि की लपटों से लोयरीं इनकी जटाओं से गंगा महारानी भी इन से भयभीत हैं।

उस उज्जयिनी में, नल नहुषादि राजाओं की तुल्य, अपने बाहुबल से सारे भू-मण्डल पर राज्य करने वाला, तीनों शक्तियों को चरितार्थ करने वाला, बुद्धिमान् उत्साही, नीतिशास्त्र में कुशल, और धर्मशास्त्र का जानने वाला, "तारापीड" नामक राजा रहता था।

वह, अपने तेज और कान्ति से सूर्य्य और चन्द्रमा में तृतीय जैसा मालूम होता था। बात यह है कि सूर्य में तेज की और चन्द्रमा में शोभा की, मात्रा अधिक होती है। परंच उसके शरीर में तेजमात्रा सूर्य के समान और शोभामात्रा चन्द्रमा के समान थी—उसके शरीर में दोनों ही गुण अधिकता से विराजित थे। अतः वह सूर्य और चन्द्रमा में से तीसरी ही व्यक्ति जैसा समझा जाता था।

वह अनेक यज्ञों से अपने शरीर को पवित्र करने वाला सारे संसार के झगड़ों को शान्त करने वाला, और प्रजा की पीड़ा को दूर करने वाला था।

खिले हुए कमलों के समान हाथों वाली और वीर पुरुषों के समागम ही पर लट्टू होने वाली लक्ष्मी ने कमलों को छोड़कर, और विष्णु भगवान् के हृदय निवास के, सुख पर भी लात मार कर उसका निष्कपट आलिङ्गन किया था—लक्ष्मी ने उस तारापीड के वीरतादि गुणों पर मुग्ध होकर बड़े शौक़ से उस के पास रहना स्वीकार किया था।

वह राजा गंगाप्रवाह का विष्णु चरण जैसा, मुनिजनों से सेवित, सत्य का उत्पत्ति स्थान था—बड़ा सत्यवादी था।

वह, चन्द्रमा का समुद्र जैसा यश का भी उत्पत्ति स्थान था—बड़ा यशस्वी था। चन्द्रमा शीतल होता हुआ भी रिपुजन (विरहियों को सन्ताप करने वाला होता है। उसका यश भी रिपुजन (शत्रुओं) को सन्ताप करने वाला था—दुश्मनों के दिलों पर चोट पहुँचाने वाला था। चन्द्रमा स्थिर होता हुआ भी—कल्प पर्य्यन्त स्थायी होने के कारण नित्य होता हुआ भी सदा घूमता रहता है। उसका यश भी सदा स्थिर होता हुआ—अविनाशी होता हुआ—सर्वत्र घूमता रहता था।

चन्द्रमा निर्मल होता हुआ भी विरहियों की स्त्रियों के मुख जैसी कमल कान्ति को मलिन करता रहता है। उसका यश भी शत्रुओं की स्त्रियों के मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपी कमलों की कान्ति को मलिन करता था--उसके यश सुनकर उसके शत्रुओं की स्त्रियों के चेहरे फीके पड़ जाते थे।

चंद्रमा श्वेत होता हुआ भी सब मनुष्यों को रागकारी--आनन्द देने वाला है। उसका यश भी श्वेत होता हुआ प्रजा को रागकारी--प्रेमकारी था। उसके यश को सुनकर उसकी प्रजा बड़ी प्रसन्न होती थी। अपने पक्ष (स्वराज्य) की क्षति से भयभीत हुए, क्षिति-भृत्कुल, (राजाओं ने पाताल जैसा उसका सहारा ले लिया था। क्षितिभृत् [पर्वतों] ने भी एक समय पक्ष (पंखों) की क्षति से डरकर पाताल का सहारा लिया था--बहुत से पर्वत रसातल चले गये थे।

वह राजा ग्रहगण जैसा बुधानुगत था-पण्डितों सहित रहता था-"व्यवहारान्नृपः पश्येद् विद्वद्भि र्ब्राह्मणैः सह" इस बात का मानने वाला था।

और कामदेव जैसा उत्सन्न विग्रह था--लड़ाई झगड़ों को दूर किये हुए था। कामदेव भी उत्सन्न विग्रह है--शरीर का नाश किए हुए है--अशरीरी है। वह, दशरथ जैसा सुमित्रोपेत था--अच्छे२ मित्रों सहित था। उसकी मित्रमण्डली बड़ी अच्छी थी। दशरथ भी सुमित्रोपेत थे--सुमित्रा युक्त थे।

वह शिव के समान महासेनानुयात भी था। शिव, महासेन (स्वामी कार्तिकेय) से अनुगत हैं। वह भी महासेना (बड़ी सेना से अनुगत था--उसके साथ बहुत बड़ी सेना रहती थी।

वह शेष नाग के समान क्षमाभरगुरु भी था। शेष नाग पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ हैं। वह भी क्षमा का भार धारण करने में समर्थ था-बड़ा क्षमाशील था।

वह नर्मदा का प्रवाह जैसा महावंशप्रभव भी था। उस का एक बड़े वंश में जन्म हुआ था-बड़ा कुलीन था। नर्मदा प्रवाह का भी महावंश (एक बड़े बांस× से जन्म हुआ है।

वह तारापीड धर्म का अवतार जैसा विष्णु भगवान् का प्रतिनिधि जैसा भी था।

(क्रमशः)

—०—

विविध विषय।

१-हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति

अब की बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दशम अधिवेशन, पटना में होना निश्चित हुवा है। स्वागत समिति की तरफ़ से सभापति बनाये जाने के लिये हिन्दीजनता के सामने जिन ५ सज्जनों के नाम पेश किये गये हैं। उन में सरस्वती सम्पादक पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम न देख कर हमें आश्चर्य के साथ दुःख होता है। हिन्दी भाषा के इन प्रबन्धकम्मन्यों का यह रागद्वेषलिप्त व्यवहार सर्वथा निन्दनीय है। हमारी राय में साम्प्रत, हिन्दी सेवियों में द्विवेदी जी से बेहतर और कोई व्यक्ति नहीं है। जिन ५ सज्जनों के नाम इस पद के लिये बतलाये गये हैं, वे भी निःसन्देह हिन्दी के धुरीण सेवक हैं, और उनसे भी हम आगामी वर्षों

× बांस की जड़ से नर्मदा नदी निकली है, ऐसा सुना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभापत्य आसन को सुशोभित होते देखना चाहते किन्तु इस वर्ष उन की ऐसी जल्दी नहीं। इस द्विवेदी जी निर्वाचित होने चाहियें हम यह ते हैं कि द्विवेदी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता न ही वह इस पद के अभिलाषी हैं, वह इस को मंजूर न करें न सही, पर हमें उन्हें निर्वा- त करके अपनी गुणग्राहिता का परिचय तो देना हिये।

—०—

२—श्रीयुत बाबू मोतीलाल घोष।

सन १८४७ में अमृतबाज़ार ग्राम में आप जन्म हुवा। आप अपने मित्र और प्रतिपक्षी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी से, अवस्था में एक साल बड़े आप के विचार बड़े ही स्वतन्त्र हैं। आप का वन वृत्त, सचमुच 'अमृतबाज़ार पत्रिका' का वनवृत्त है।

आप और आप के भाई, परलोकवासी युत शिशिर कुमारघोष ने सन् १८६९ ईसवी में पने निवासस्थान अमृतबाज़ार से साप्ताहिकरूप में मृत बाज़ार पत्रिका' प्रकाशित की। यह पत्रिका भी केवल ५ महीने ही प्रकाशित हुई थी कि अंग्रेज़ डिप्टी मजिस्ट्रेट ने इस की किसी वालोचना के कारण, इस पर मानहानि का दावा रदिया। मुक़दमा बहुत दिनों तक चला, आख़िर इन की विजय हुई। विजय तो होगई पर यह ख़र्चा भी पूरे होगये।

सन १८७२ में आपने 'पत्रिका' को कलकत्ते से प्रकाशित करना प्रारम्भ किया लेखनी तो आप की शक्तिशालिनी थी ही, ज़ोरदार लेख निकलने लगे, पत्रिका बहुत ही शीघ्र सर्वप्रिय होगई। इधर इस की इस सर्वप्रियता से गवर्नमेंट नाराज़ होगई। कहते हैं कि इस बार, इस की नाराज़गी का प्रकाशन, इस प्रकार हुवा कि भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन ने वरनाक्यूलर प्रेस एक्ट जारी किया। इस सर्वत्रगामी एक्ट के पंजे से, जिस तरह आप बचे, वह आप ही का काम था। एक्ट के पास होने पर, उसी रोज़, अंग्रेज़ी टाइप कहीं से मांगकर आप ने बंगला में न छापकर अंग्रेज़ी में पत्रिका छाप दी! सारे देश को और विशेष कर गवर्नमेंट को बड़ा आश्चर्य हुवा कि किसतरह इतनी जल्दी 'पत्रिका' बंगला से अंग्रेज़ी में होगई!!!

बाबू मोती लाल घोष, बनावटी टीप टापको बिलकुल पसन्द नहीं करते, न आप कौंसिल की मेम्बरी चाहते हैं, और न ही कांग्रेस के प्रधान पद के इच्छुक हैं। ऐसा होने पर गवर्नमेंट आप की प्रतिष्ठा न करती हो, सो बात नहीं, आफ़िसर लोग, आपको स्पष्टवक्ता होने के कारण बड़ी श्रद्धा दृष्टि से देखते हैं। वे, जानते हैं कि आप गवर्नमेंट के कामों की कड़ी आलोचना करते हुए भी उस के हार्दिक हितैषी हैं।

लार्ड कर्ज़न जैसे कटु वाइसराय भी आप का बड़ा मान करते थे। लार्ड मिण्टो तो आप के इतने भक्त थे कि बंगाल विभाग के परिवर्त्तन के सम्बन्ध में, आप के विचारों को उन्हों ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिफ़ारिश के साथ, इण्डिया आफ़िस को भेजना मंजूर कर लिया था।

खलना डकैती के अपराधियों की मुक्ति के सम्बन्ध में लार्ड हार्डिङ्ग ने केवल दो बंगालियों से मशवरा किया था जिन में एक बाबू मोतीलाल घोष थे।

सन १९०६ में जब महाराज जार्ज पंचम राजकुमार की हैसियत से बंगाल गये थे, तो वहां आप से केवल घोष बाबू कोही मुलाकात का सौभाग्य प्राप्त हुवा था। बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर कारमाइकल महाशय तो आप के बड़े ही मित्र थे। वह आप के स्थान पर प्रायः आया जाया करते थे।

आप के विचार बड़े स्वतन्त्र और निर्भीक हैं। गत २३ दिसम्बर सन् १९१९ को भारतेश्वर के जिस सन्देश की घोषणा हुई है, आप की राय में वह सम्राट् के मुंह से निकली हुई नहीं है, वरन् भारत के भाग्यविधाता मिस्टर माण्टेगु की एक पालिसी है।

'मनोरमा' इसबार आप ही के चित्र को प्रकाशित कर रही है। निःसंदेह आप का अस्तित्व भारत के भाग्योदय का सूचक है। भारत में १--२मोतीलाल घोष भी और होजायें, तो फिर इस की स्वराज्य-प्राप्ति में कुछ देर नहीं।

—०—

३उर्दू के महाकवि अकबर की सूक्तियां।

उर्दू साहित्य में सैयद अकबर हुसेन साहिबका नाम बड़ा प्रसिद्ध है। आप जो कुछ कहते हैं अजीब ढंग से कहते हैं। हमारी इच्छा है कि हम प्रतिमास आपकी सूक्तियां प्रकाशित किया करेंगे। पाठक, आप की उक्तियों को ज़रा ध्यानपूर्वक पढ़ें और विचार करें—

ज़बाने उर्दू

जहां तक अपने लिए हूं वह "मे" की मस्ती है।
जो कुछ खुदा के लिये हूं वह असिल हस्ती है॥
न भूल शहरे ख़मोशां का नक़शा ऐ कालिज!
ख़याल रख कि यही हिस्ट्री की बस्ती है॥
बुतों को मुझसे तवक़्क़ा है मदह की अकबर
यह सुन लिया है कि उर्दू ज़बान सस्ती है॥

गिरजा और मसजिद।

तरकीब तो देखो यह ज़माने के चलन की।
अफ़सोस, कि इस से कोई वाक़िफ़ भी नहीं है॥
गिरजा में तो करनेलो कमिश्नर भी हैं मौजूद।
मसाजिद में कोई डिप्टी व मुंसिफ़ भी है॥

पाश्चात्य फ़ैशन।

हरचंद के कोट भी है पतलून भी है।
बंगला भी है, पाट भी है, साबून भी है॥
लेकिन मैं यह तुझ से पूछता हूं हिन्दी।
योरुप का तेरी रगों में कुछ खून भी है?

मे = शराब।
मदह = प्रशंसा।
पाट = अंग्रेज़ी फैशन का पाखाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४–नेपालको भेंट ।

भारत सरकारने नेपाल राज्यको उस की युद्धकाल की सहायताओं के पुरस्कारस्वरूप प्रति वर्ष दश लाख रुपया देने का प्रस्ताव किया था और नेपाल राज्य ने उसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया है। इस तरह अब हमें नेपाल राज्य को प्रतिवर्ष दस लाख रुपये देने पड़ेंगे। पिछली अफ़ग़ान लड़ाई के पहले काबुल के अमीरको प्रतिवर्ष १८॥ लाखरुपये देने पड़ते थे। भारतपर वर्षों पहिले जब रूस के आक्रमण का भय था तब काबुल को अपने हाथमें रखनेके लिये सरकार वह रक़म अमीरको दिया करती थी और उस के बदले में वह काबुल के वैदेशिक संबन्धपर नियन्त्रण रखती थी। नेपाल को यह १० लाखकी सहायता इस लिये दी जा रही है कि उन्होंने युद्धस्थल में हज़ारों सैनिक ब्रिटिश सरकार की सहायता को युद्ध में भेजे थे और वैसे भी हज़ारों गोरखे सैनिक सरकारका काम करते आ रहे हैं। परन्तु निश्चय ही एक इसी बातसे सदा के लिये भारत के ऊपर इतना बड़ा बोझ लादना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। और यदि सरकारने इस आशंका से नेपाल राज्य को .खुश रखने के लिये यह किया है कि, रूस के प्रश्नका निपटारा मुसलमानों के लिये सन्तोषजनक न होगा और उस दशा में मुसलमान सरकार बोलशेविकों से मिल उपद्रव करने की चेष्टा करेगी इस से उस का सामना करने के लिये हिन्दू राज्य नेपाल को अभी से मिला रखने से बड़ी सहायता मिलेगी, तो भी उस ने मूर्खता की है। कारण यह कि यदि वह आशंका सच भी निकले तोभी नेपाल कोई विशेष सहायता पहुंचाने में समर्थ न होगा। हम पूछते हैं कि, भारत को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार दे ब्रिटिश सरकार क्यों नहीं उसे सन्तुष्ट कर लेती कि यहां ही उसे लाखों सैनिक देश और साम्राज्य की रक्षा के लिये जान देने को सदा तैयार मिलजायं और किसी बाहरी राज्यको .खुश रखने के लिये उसे भेंट लेकर दौड़ते रहने की कभी ज़रूरत ही न पड़े ? जो हो, गवर्नमेण्ट के इस कार्य की कोई प्रशंसा नहीं कर सकता।

(विश्वमित्र)

—०—

५–एक अंधे की निपुणता ।

कहा जाता है कि लीड (इंगलेण्ड) में मि० विल्किन्सननामक बनस्पति शास्त्रका एक धुरन्धर विद्वान् है वह जब २२ वर्ष का था तब अन्धा होगया और तभी से उसे बनस्पति शास्त्र के अध्ययन की चाट पड़ी। वह अन्धा होने पर अपने एक मित्र के साथ एक गांव में गया। इस के पहले वह उस गांव का एक नक़शा खींचा था उसी स्मरण शक्तिके सहारे वह उस गांवका पूरा २ दृश्य खींचने लगा। वह केवल वृक्षों को छूकर ही नाम बता दिया करता था। इस शक्ति को उसने यहांतक बढ़ाया कि आज केवल छूकर ही ८०० पेड़ों के नाम और उस का पूरा इतिहास बता देता है। वर्षाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनोंमें उसने इसका पता लगाया कि भिन्न भिन्न वृक्षों से भिन्न भिन्न ध्वनियां निकलती हैं। इस शक्तिको भी उस ने तरक्की देनी शुरू की और आज अधिकांश वृक्षों के नाम बूदों की आवाज़ों को ही सुनकर बता सकता है।

(विश्वमित्र)

—०—

साहित्य चर्चा।

स्वार्थ। इस नाम का एक मासिक पत्र, इधर ३—४महीने से ज्ञान मण्डल काशी से प्रकाशित होने लगा है। सम्पादक हैं, श्रीयुत अध्यापक जीवनशंकर याज्ञिक एम० ए० एल० एल० बी०। समालोच्य तीसरे अंक में ९ लेख हैं। सभी लेख साधारणतया सुपाठ्य हैं। श्रीयुत श्रीप्रकाशजी का लेख बड़ा उत्तम है। 'सरस्वती' में आप की जैसी प्राञ्जल भाषा होती थी, 'स्वार्थ' में आकर वैसी नहीं रही। इस का कारण 'स्वार्थ'के सुयोग्य सम्पादक ही समझ सकते हैं। पत्र होनहार है। वार्षिक मूल्य ४॥) है। हम इस की उन्नति के अभिलाषी हैं।

—०—

छोटे बच्चों की बातचीत।

अमेरिका के कुछ विज्ञान-शास्त्रियों की अनुमति में बाल वार्त्तालाप व्यर्थ प्रलाप नहीं। उस में बालक बुद्धिमानी के साथ, अपने विचार प्रकट करने का उद्योग करता है, और वह पूर्ण रीति से सार्थक होता है। जब कोई दूध पीता बच्चा असाधारण रीति से घुर घुराता है तो उसका समीपवर्ती दूसरा बच्चा उसका आशय समझ जाता है। तरुण लोग भले ही यह समझ लेवें कि यह बच्चा केवल 'चेंचें' केंकें' करता है। या कदाचित् व्यर्थ हल्ला मचाकर लोगों को दिक़ करना चाहता है। परंतु, ऐसी कोई बात नहीं होती—बच्चा जब कभी ऐसा करता है, वह अपनी तोतली बोली में निर्दिष्ट विचार प्रकट करता है। वह वास्तव में संसार भर में उन लोगों को अपने विचार बतलाना और समझाना चाहता है जो उसके शब्द कोश को जानते हैं।

बच्चों के शब्दों का विश्लेषण कुछ अमेरिकन अध्यापकों ने किया है, और सर्व साधारण को इसकी सूचना इसप्रकार मिली है कि वहां एक सीटल नाम के स्थानपर, दो ऐसे बालक अचानक हाथ आगये कि जिन्हें बोलना कभी नहीं सिखलाया गया था, परन्तु वे फिर भी आपस में एक दूसरे को मौखिक शब्दों के द्वारा अपने विचार बतला सकते थे। कहा जाता है कि इन दो बालकों की अवस्था दस वर्ष की थी और वे एक योगी के लड़के थे, जो उन के साथ जंगल में रहता था और जिसने अपने उन बालकों को कभी बोलना नहीं सिखलाया था। सरकारी कर्मचारियों को इस बात की सूचना मिल गई और वे उस निर्जन स्थान से उन्हें सभ्य संसार में ले आये। उनकी मानसिक शक्ति वैसी ही पाई गई, जैसी साधारण रीति से हुआ करती है परंतु उन्हें अंग्रेज़ी भाषा का एक शब्द भी नहीं आता था। उन के पास अपना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजके शब्दों और संकेतों का एक भांडार था। जिसका वे आपस में विचार विनिमय में उपयोग करते थे।

अमेरिका के विज्ञान शास्त्रियों से जब यह प्रश्न किया गया कि भाषण का ऐसा अद्भुत संवर्धन अपने आप कैसे होजाता है ? तो उन्हों ने उत्तर दिया कि मनुष्य के हृदय में वाक्शक्ति एक ऐसी व्याप्त वस्तु है जो अपने आप प्रत्येक संभव अवस्था में बाहर आजाती है और इस समय तक विविध प्रयोगों द्वारा इतना ही पता चल सका है। उन्हों ने यह भी कहा कि यदि एक अमेरिकावासी एक चीनवासी और एक .फ्रान्स वासी—तीन नन्हे बच्चे एक साथ रखदिये जाँय तो वे तुरंत परम मित्र बन जायँगे। वे तीनों के तीनों एक दूसरे के शब्दों को समझ जायँगे, जिन से बच्चों का विश्वव्यापी शब्द—कोश बना हुआ है।

इस सम्बन्ध में कम से कम चार सारभूत शब्द हैं जिनका प्रयोग सारे जगत् के बच्चे करते हैं।उनसे सुख, असुख, क्लेश और भूख प्रकट होते हैं ये बच्चों में सर्वथा सहजोपलब्ध होते हैं। जैसे बालक को आवश्यकता पड़ती है इन आरम्भिक शब्दों के साथ वह अन्य शब्द भी जोड़ लेता है। यह बात विशेष वक्तव्य है कि न तो कभी किसीने ये शब्द बच्चों को सिखलाये और न कभी किसी ने उन्हें यह बतलाया कि अमुक शब्द का प्रयोग अमुक विचार के प्रकट करने में ही सर्वदा होना चाहिए।एक अध्यापक महाशय ने बंदरों के जीवन के विषय लगातार अनुसंधान करके बड़ी ख्याति पाई है। उनका विचार है कि जैसे हमारे बच्चे करते हैं ठीक वैसे ही पशुजाति भी किसी आशय विशेष को प्रकट करने के लिए कोई शब्द विशेष व्यवहार करती है। हां, इन शब्दों में भिन्नता ज़रूर रहती है। अर्थात् जिन शब्दों का प्रयोग हमारे बच्चे करते हैं उनका प्रयोग पशुजाति के बच्चे नहीं करते। एक अध्यापक महोदय का यह मत है कि पशुजाति के शब्द भी भाषण में संवर्धित होजाते, यदि उनके जीवन के सुख और आकांक्षायें जिनकी उन्हें आवश्यकता पड़ती है और जिनका उन्हें ज्ञान है परिमित नहीं होते।

विज्ञान-शास्त्रियों का कथन है कि किसी बच्चे का "मामा" शब्द का प्रथम उच्चारण यथार्थ में ऐसा शब्द नहीं है जिसे वह अपनी माता को बतलाने के लिए गढ़ता है। वास्तव में मामा वह शब्द है जिसकी उत्पत्ति बालक अपना विलास और हर्ष प्रकट करने के लिए करता है और उसका अस्तित्व उसीसे आरंभ होता है। सन्तोष को सूचित करने वाले इस शब्द का उच्चारण, बालक "मु" या 'म' भी करते देखे जाते हैं। कालांतर में यह शब्द प्रयत्न करते करते 'मु ! मु !' या 'मामा' बनजाता है।

फिर जब बच्चा अपनी माता को देखपाता है तब वह इस शब्द का उच्चारण करता है। वह जान जाता है कि इस शब्द के प्रभाव से उसकी माता कितनी संतुष्ट होजाती है और उसके प्रयोग से उसे दुग्ध पान या कदाचित् मिष्ठान्न का सुखद उपहार मिलता है। विचारों का मिश्रण बढ़ता जाता है। जब २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चे को दुग्ध पान या मिष्टान्न की इच्छा होती है तब२ वह मुः मुः या 'मामा' शब्द को दुहराता है। माता की अनुपस्थिति में इन शब्दों के उच्चारण का परिणाम बच्चे के लिए ऐसा संतोषदायक नहीं होता। इस प्रकार इन शब्दों का संबंध न केवल दुग्धपान या मिष्टान्न से रह जाता है, प्रत्युत वह विशेष रीति से माता से हो जाता है। बचपन के गुप्त भेदों के ढूंढने वालों का कहना है कि, इस प्रकार बच्चा क्रमशः बोलना सीख जाता है।

विज्ञान यह नहीं बतला सकता कि यह शब्द कहां से आते हैं।*

गोविन्दप्रसाद घिलड्याल बी० ए०।

—०—

अख़बार का नमूना।

फटकरी से मुझ को मतलब है, न हर्रे से ग़रज़।
रंग बेदामों ही इस दामन में चोखा आयगा॥
एक कारड सिर्फ़ लिक्खा है नमूने के लिये।
बन्द होकर डाक में अख़बार मुफ़्त आजायगा॥
एक नये पर्चे की मैं हर रोज़ कर लेता हूँ सैर।
यूँही मेरेपास यां चिट्ठीरसां रोज़ आयगा॥
कूंडी डंडा मुझ रंगीले का सलामत चाहिये।
भंग रोज़ाना मेरा दाता मुझे पिलवायगा॥
है ग़रज़ परचेसे, मतलब उसके मालिक से नहीं।
मुझको इससे क्या, वह उसको किसतरह छपवायगा॥
काग़ज़ी का बिल करेगा किस तरीक़े से अदा।
और छपाई के लिये रोकड़ कहां से लायगा॥
डाकख़ाने से वह क्या देकर ख़रीदेगा टिकट।
और किन वादोंसे भूखे अमले को परचायगा॥
बाल बच्चों के लिये काटेगा किस के पेट को।
उनको क्या खानेको देगा और ख़ुद क्या खायगा॥
क़ौम का मख़दूम है ख़िदमत है जिसकी उसप फ़र्ज़।
इस से बढ़कर क्या ख़िलत हां, क़ौम से वह पायगा॥
फ़र्ज़ है उस का सुबह ही मेरी पिलवाये मुझे।
बालियां बीबी की बेचे परचा भिजवाये मुझे॥

'नमूने बाज़ भंगड़'

—०—

मनोरम श्लोक।

मांसभक्षण का आलंकारिक रीति से मनु महाराज कितने अच्छे प्रकार से निषेध करते हैं—

मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

मनुस्मृति

मांसभक्षयिता कहता है—जिस का मांस मैं यहां खाता हूँ वह परलोक में मुझे खायगा। यहां "मांसभक्षयिता" पद श्लोक की जान है। इस के दो अर्थ होते हैं, सीधा सादा "मांसभक्षयिता" का अर्थ है—मांसभोजी। पर उसे ज़रा और तरह पढ़ने पर "मां स भक्षयिता" का अर्थ होता है—मुझे वह खायेगा। मनु महाराज कहते हैं कि लो, यह हैं, 'मांस' की सच्ची निरुक्ति, जिसे

* "पायनियर" के एक लेख का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाब्दिक वैयाकरण भी मानते हैं। और इतने पर भी हटी और दुराग्रही मांसभोजी नहीं समझते! छि ! छि !!!

इस सिलसिले में यह हर्षजनक समाचार लिख देना भी कुछ अनुचित न होगा कि अब की बार अमृतसर में होने वाले आल इंडिया मुसलिम लीग के अधिवेशन में उसके सुयोग्य प्रधान, देहलीवासी हकीम अजमल खां साहब ने बड़े ज़ोर के साथ अपने मुसलमान भाइयों को गो हत्या एक दम बंद करने का मशवरा दिया है—

दिवि देवाः प्रशंसन्ति अजमल खां ! ते मतम् ॥

केशवशरण गुप्त

—०—

मनोरमा और लोकमत।

गौडाहितकारी—

मनोरमा—यह मासिक पत्रिका पिछले दिनों धनौरा मंडी से प्रकाशित होती थी परन्तु १ मास प्रकाशित होकर सामइक अड़चनों के कारण इधर कुछ समय से बंद थी।

परम हर्ष का विषय है कि इस मास से उसका पुनः प्रकाशन प्रारम्भ होगया और उसकी १० वीं संख्या प्रकाशित होगई जो इस समय हमारे सामने है हम इस के लिये युग्मसम्पादकगण को धन्यवाद देते हैं।

इस अंक में गद्य, पद्य, छोटे बड़े १५ लेख हैं जो सब के सब सुंदर रोचक और चिताकर्षक हैं। इन लेखों में सब से अधिक विशेषता यह है कि प्रत्येक में हृदयस्पर्शता इतनी है कि लेख को आरंभ करके इस को बिना अन्त तक पढ़े रहा ही नहीं जाता। (१) भोलानाथ भट्टाचार्य्य और दूसरे शफाखाना शीर्षक गल्पों ने तो ख़ासा मनोरमा बना दिया।

'हिन्दी शब्द शैली कैसी होनी चाहिये'। 'पितृपूजा' 'धर्म विचार' गद्य लेख और 'भारत का महत्व' 'निस्सार मिलन' 'स्वतन्त्रता की बन्शी' शीर्षक कवितायें बहुत ही गम्भीर भाव से भरी हुई हैं।

वास्तव में 'मनोरमा का यह अंक बहुत ही योग्यता के साथ सम्पादन हुआ है और आशा है कि अब प्रतिमास इस से भी बढ़ कर प्रकाशित होकर यह अपने ग्राहकों का चित्त मनोरंजन किया करेगा।

पुस्तकालय 111/34

सरस्वती के आकार में मुरादाबाद के प्रसिद्ध यंत्रालय 'लक्ष्मीनारायण प्रेस' में सुन्दर अक्षरों में मुद्रित होकर इस की सुन्दरता और भी बढ़ गई है। आरम्भ में भारत के कर्मवीर नेता आनरेबिल बाबू सुरेन्द्रनाथ बनरजी का सुन्दर चित्र भी है। जिसने मनोरमा की आभा को द्विगुण कर दिया है। समय की महगाई और पत्र की सजावट को देखते हुये इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया कुछ भी नहीं है। इसी लिये हम बड़े ज़ोर के साथ हिंदी भाषा भाषियों से प्रार्थना करेंगे कि वह शीघ्र इस के ग्राहक बन कर इस के संचालकों का उत्साह बढ़ावें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे यह और भी सज धज के साथ प्रकाशित होकर हिंदी भाषा का मस्तक ऊँचा करे मिलने का पता—सम्पादक 'मनोरमा' मंडी धनौरा यू० पी०।

—०—

सनातन धर्म पताका—

मनोरमा—यह मासिकपत्रिका दो वर्ष पहले ९ संख्या निकल कर बंद होगयी थी, इसके सम्पादक पं० प्यारे लाल दीक्षित और लाला राम किशोर (अलंकारशास्त्री) ने गत नवम्बर से इसके पुनः प्रकाशन का उत्साह दिखाया है। हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि-वह मनोरमाको चिरजीवन और जगन्मोहक सुरूप प्रदान करें, लेख हिन्दीसाहित्य के अंगपोषक हैं, छपाई काग़ज़ भी अच्छा है। वार्षिकमूल्य ३) और एक संख्या का।=) है। पता—संपादक मनोरमा धनौरा (मुरादाबाद है।

—०—

ब्राह्मण सर्वस्व—

मनोरमा—मण्डी धनौरा जि० मुरादाबाद से जो मनोरमा कई महीने निकल कर बन्द होगई थी वह इसी नवम्बर मास से फिर निकलने लगी है। आकार वही सम्पादक वही और प्रकाशन स्थान भी वही है। पहिले इसमें प्राचीन संस्कृत काव्योंका हिन्दी अनुवाद अधिक रहता था अब उसमें कुछ कमी मालूम पड़ती है या यों कहना चाहिये कि उसका स्थान गल्पों ने ले लिया है। भाषा में कहीं २ सुधार की आवश्यकता है। वार्षिक मूल्य ३) मिलने का पता-मैनेजर मनोरमा कार्यालय मण्डी धनौरा जि० मुरादाबाद यू० पी०।

—०—

चित्र की बात।

जनवरी की पत्रिका के लिये पहिले से यह विचार था कि उस में घोष बाबू का चित्र और चरित्र प्रकाशित किया जाय। इसी लिये उन का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त लिखकर प्रेस को भेजदिया गया था। इधर चित्र के लिये चित्र शाला प्रेस को आर्डर देदिया गया था।

अब ठीक उस समय, जब कि पत्रिका छप कर बिलकुल तैयार होगई और घोष बाबू वाला नोट भी विविध विषय में छप चुका, चित्रशाला प्रेसका हमें पत्र मिला है कि "खेद है, हम ने भ्रांति से आप का एडवांस स्वीकार कर लिया हमारे पास घोषबाबू का ब्लाक नहीं है। क्षमा कीजियेगा।"

पराये प्रेस में छपने के कारण पत्रिका में यूंही देर होगई। अब दूसरे चित्र का इन्तज़ाम करने में और भी ज़्यादा देर होजाती। इस लिये यही उचित समझा गया कि पत्रिका निकाल दी जाय।

आशा है, इस बार पाठक हमारी पराधीनता को देखते हुए, विचित्र पत्रिका ही से अपना मनोरञ्जन कर लेंगे।

८-२-१९२०] मनोरमा-सम्पादक।

गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Corrected
19.09.2000

111134

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri